

पंचरात्रं वा सप्तरात्रमथापि वा ॥ १०८ ॥ लंघनञ्च समुद्दिष्टं
ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ कफं विशोषितं ज्ञात्वा ततो वातनिवा-
रणम् ॥ १०९ ॥ पित्तसंशमनं कार्यं ज्ञात्वा पित्तस्य कोपनम् ॥
शोषणीयौ वातकफौ न तु पित्तं विनाशयेत् ॥ ११० ॥

प्राणोंके हरनेवाला और घोररूप ऐसे त्रिदोषजज्वरको देखकर प्रथम कफको शोषनेकी उपाय
कहा है ॥ १०६ ॥ जो वैद्य अपने यशकी इच्छा चाहे तो त्रिदोषजज्वरमें पित्तको शांत नहीं
करै, क्योंकि कफ और वातकी अधिकतावाले त्रिदोषजज्वररोगीको ज्वर मारदेता है ॥ १०७ ॥
त्रिदोषजज्वरमें लंघन, वमन, घ्रीघन ये हित हैं और इस रोगमें तीनरात्रि, पांचरात्रि, सातरात्रितक
॥ १०८ ॥ दोषके बल और अबलको जान लंघन करना चाहिये, जब कफके शोषको जानले
तब वातको निवारण करे ॥ १०९ ॥ पित्तके कोपको जानकर पित्तकी भी शांति करनी और
वात तथा कफको जरूर शोषे और पित्तको कभी भी नहीं नष्ट करे ॥ ११० ॥

अथ सन्निपात ज्वरका लक्षण और चिकित्सा ।

सत्तृष्णा शूलशोषः श्वसनमथ निशाजागरो वासरस्तु तन्द्रा
मोहश्च शोषो भवति च वदने घ्राणजिह्वाधराणाम् ॥ पाकं
निष्ठीवते यः कृशतनुश्च भवेन्मण्डलानाञ्च देहे सम्भूतिः श्या-
वनेत्राधरवदनमदस्वेद आध्मानशोषः ॥ १११ ॥ क्षुब्धाशो वा
भ्रमार्तिर्भवति शिरसो लोडनं वा शिरोऽर्त्तिः स्रोतोरोधो वमिर्वा
गलकधुरधुराशूलकैर्वा वृत्तस्तु ॥ एतैर्लिङ्गैर्युतानां प्रभवति च
नृणां सन्निपातेति संज्ञा रोगाणामाशुकारी ज्वर अतिदुःखदो
वाजिनां वा द्विपानाम् ॥ ११२ ॥

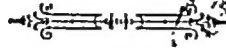
अच्छी तृषा, शूल, शोष, श्वास, रात्रिका जागना, दिनमें तन्द्रा, मोह, मुखमें शोष ये उपजें और
नासिका, जीभ, ओष्ठ इनका पाक होवे और वारंवार थूके और कृशशरीर होजावे और शरी-
रमें मंडलोंकी उत्पत्ति हो और कालेनेत्र हो जावें होंठ काले हो जावें, मद और पसीना उपजे,
अफारा और शोष भी हो ॥ १११ ॥ भूख जाती रहे, शिर भ्रमे अथवा शिरको हिलावे और
शिरमें पीड़ा हो, स्रोत रुक जावे अथवा छर्दि हो और गलेमें घुर्घुरशब्द और शूल उपजे
ये सब लक्षण होवें तब मनुष्यके सन्निपातज्वर जानना, यह रोगोंको शीघ्र करता है, घोड़ोंको
तथा हाथियोंको भी अतिदुःख देता है ॥ ११२ ॥

अथ सन्निपातज्वरकी चिकित्सा ।

सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्याद्वातकफापहम् ॥ पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे

श्रीः ।

हारीतसंहिता ।



१०९३४

१५-१-४५

श्रीमदात्रेयमहर्षिहारीतमुनिसंवादरूपा ।

(वैद्यकग्रन्थः)

पुस्तकालय

वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनु-
वादितया भाषाव्याख्यया समन्विता ।

उन्नाव-मण्डलान्तर्गत-टेढ़ाचिलौली-ग्रामनिवासिनायुर्वेदाचार्य-
कविरत्नकालीप्रसादत्रिपाठिना संशोधिता च ।



सैव

क्षेमराज-श्रीकृष्णदास इत्यनेन

मुम्बय्यां .

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) मुद्रणालये
मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

शके १८४९, संवत् १९८४.

अस्य ग्रन्थस्य सर्वेऽधिकाराः प्रकाशका-

धीनाः सन्ति ।

अथ तालीसचूर्ण ।

तालीसचूर्णमिह पित्तकफस्य कासे पेयं न किं वृषभपत्ररसेन
युक्तम् ॥ हन्ति भ्रमं श्वसनकासनमाशु यो वै भङ्गस्वरे त्वरित-
मेव सुखं ददाति ॥ २७ ॥

पित्त और कफके कासमें अड्डसाके पत्तेके रससे युक्त तालीस चूर्ण क्या न पीना चाहिये जो
भ्रम, श्वास और कासको शीघ्र हटाता है और भङ्गस्वरमें शीघ्र ही सुख देता है ॥ २७ ॥

अथ अड्डसाका काथ और कल्क ।

आटरूपकमृद्रीकापथ्याकाथः सशर्करः ॥ क्षौद्राढ्यः कसनश्वास-
रक्तपित्तनिवारणः ॥ २८ ॥ छागं पयो वा सुरभीपयो वा
चतुर्गुणश्चापि जलेन कल्कः ॥ सशर्करं पानमिदं प्रशस्तं सर-
क्तपित्तं विनिहन्ति चाशु ॥ २९ ॥

बांसा, मुनका, दाख इनके काथमें खांड मिला और शहद मिला देनेसे श्वास, खांसी,
रक्तपित्त इनका निवारण होता है ॥ २८ ॥ बकरीका दूध अथवा गौका दूध और चौगुना
जल इनमें बांसाका कल्क मिला सिद्ध कर फिर खांडके संग इसका पीना श्रेष्ठ है यह
रक्तपित्तको नाशता है ॥ २९ ॥

बलाश्वदंष्ट्रामलकीफलानि द्राक्षा मधूकं मधुयष्टिकानाम् ॥
सिद्धं पयःपानमिदं हितं स्यात्पित्ते सरक्ते मनुजस्य शान्त्यै ॥
॥ ३० ॥ खदिरस्य प्रियंगूनां कोविदारस्य शाल्मलेः ॥ पुष्प-
चूर्णं तु मधुना लिह्यादारोग्यमस्तुते ॥ ३१ ॥ आटरूपकरसेन
सप्तधा भाविता च पुनरेव शोषिता ॥ पिप्पलीमधुसमन्विता-
भया रक्तपित्तमतिदुर्जयं जयेत् ॥ ३२ ॥ एलाफलानि च सपद्मक-
नागकेशरं द्राक्षा घना मधुकपिप्पलिका समांशा ॥ एषां समां-
शसितशर्करयुक्तलेहः खर्जूरिका समभिहन्ति च रक्तपित्तम् ॥
॥ ३३ ॥ दाहं ज्वरार्तिश्वसनं च विमोहतृष्णां मूर्च्छां निहन्ति
रुधिरं वमिजित्तथैव ॥ ३४ ॥

खैरहदी, गोखरु, आंवला, दाख, महुआवृक्षकी छाल, मुरहटी, इनके दूधमें मिला



यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाड़ी ७ वीं गली खम्बाटा लेन निज
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित की ।



और पित्तसे उपजे मूत्ररोधमें नमक, कांजीका पीना हित कहा है और पाडलवृक्ष, टेंदूवृक्ष, नीव, गोखरू ॥ १६ ॥ इलायची, दालचीनी, तेजपात, त्रिफलाका काथ बना गुड़के संग मिला पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है ॥ १७ ॥ अनारदानाकी कांजी पीना मूत्ररोगवाले पुरुषोंको हित है और त्रिफला, ईख, मिश्रीका काथ बना गुड़, सेंधानमकके संग पीनेसे ॥ १८ ॥ या हरद्वै गुड़ इनके खानेसे मूत्ररोधका निवारण होता है अथवा इंद्रियोंको मलना अथवा स्त्रीके संग मूत्र आनेके समय विषय करना श्रेष्ठ है ॥ १९ ॥ और स्त्रीके मूत्र बंध होंवे तो उसकी योनि मर्दन करे तो शीघ्र ही सुख उत्पन्न होता है ॥ २० ॥

इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सा नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ३१.

अथ अश्मरी अर्थात् पथरी रोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ पितृमातृकदोषेण अथवा मूत्ररोधनात् ॥ अप-
थ्यसेवनाचारैर्जायते चाश्मरीगदः ॥ १ ॥ मूत्राविष्टौ च पितरौ
सुरतं कुरुतो यदि ॥ मूत्रेण सहितं युक्तं च्यवते गर्भसम्भवम् ॥
॥ २ ॥ पञ्च यस्य सदेहस्य स च तत्र प्रजायते ॥ मूत्रं मूत्रस्य संस्था-
ने करोति बन्धनं त्रिषु ॥ ३ ॥ सोऽप्यसाध्यो मूत्रगदश्चाल्पाद्भ-
वति मानुषे ॥ तारुण्ये चापि साध्यश्च जायते मूत्रशर्करा ॥ ४ ॥
विपरीतेन चोत्ताने स्त्रिया च पुरुषेण वा ॥ शुक्रश्च प्रबलेत्तस्य
स्त्री शुक्रं विचिनोति च ॥ ५ ॥ पुनश्च मेहने वासो वातेन शो-
णितं च तत् ॥ द्रव्यं दत्तं प्रपद्येत मूत्रद्वारं प्ररुध्यति ॥ ६ ॥ तेन
मूत्रप्ररोधश्च जायते तीव्रवेदना ॥ अण्डसन्धिस्थिता याति
शर्करा शस्त्रसाध्यका ॥ ७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—माता पिताके दोषसे अथवा मूत्रके रोकनेसे पथ्य वस्तुओंके सेवन नहीं करनेसे पथरीरोग होजाता है ॥ १ ॥ मूत्रके वेगसे युक्त हुए माता पिता जब मैथुन करते हैं तब गर्भको उत्पन्न करनेवाला वीर्य मूत्र सहित क्षिरता है ॥ २ ॥ फिर उस गर्भके शरीरमें वह मूत्र उसीस्थानमें प्राप्त होजाता है वह मूत्र मूत्रके स्थानमें बंधाकर देता है ॥ ३ ॥ यह पथरी-

श्रीधन्वन्तरिस्तवः ।



आविर्बभूव जगतः परिपालनाय

कृत्वा करे कलशमम्बुनिधेः सुधायाः ।

यश्चामरत्वकरणाय दिवि स्थितानां

धन्वन्तरिं तमहमाद्यविदं समीडये ॥ १ ॥

ये नाम कोविदिह ते प्रथयन्त्यवज्ञां

विद्यानवद्यगदने विमुखाग्रगास्ते ।

वाचां भटाः स्वभवने विभवो भवन्तु

प्राप्स्यन्ति किं सुपदधीं तव शिष्यकाणाम् ॥ २ ॥

दृष्ट्वेदमस्ति किमपिप्रथितुं प्रभूताः

सन्तीह तस्य करणे किल तेऽभिभूताः ।

त्वन्नाथ किन्तु रचनाचतुराढ्यचक्र-

चूडामणिप्रखरकान्तिरसीति सत्यम् ॥ ३ ॥

अद्यापि यद्यापि विदो विचरन्ति वैद्याः

सन्तस्त्वनन्तमहतामपि ते भवन्तः ।

सन्तीह किन्तु बहवः किल वैद्यकल्पा

धन्वन्तरेऽद्यगतसत्त्वहरा हि दुःखम् ॥ ४ ॥

वाचामगोचरचारित्रि न चित्रमत्र

यन्नास्तिका ननु भवन्ति चिकित्सकाज्ञाः ।

अम्भोमलापनयनप्रभविष्णुकोऽपि

पङ्कं प्रसादयति किं कतकः कदाचित् ॥ ५ ॥

अष्टाङ्गप्रशरहितान्विहिताभिमाना-

न्मूढान्दरिद्रहृदयांश्च दयाविहीनान् ।

वैद्यान्नियम्य वितरिष्यति यः सुभावं

धन्वन्तरिः स भगवानवतु त्रिलोकीम् ॥ ६ ॥

कालीप्रसादकविना विहितः स्तवोऽयं

धन्वन्तरेर्भगवतः करुणामयस्य ।

श्रेयस्तन्नोतु भवतां भवतां बुधानां

धुन्वन्सुधामरझरीवचनस्तुतानाम् ॥ ७ ॥

कालीप्रसाद शास्त्री त्रिपाठी ।

रोग असाध्य होता है बालक अवस्थामेंही यह पथरी रोग होता है । यह तीन प्रकारसे होता है ॥ ४ ॥ और जवान अवस्थामें मूत्रशर्करा रोग होता है वह साध्य होता है स्त्री और पुरुषके विपरीत तथा मोघेहोके मैथुन करनेसे जो वीर्य क्षिरता है और स्त्रीका वीर्य इकट्ठा होता है ॥ ५ ॥ वह वीर्य तो मूत्रके संग वासमें युक्त होता है और स्त्रीका रुधिर वातके संग युक्त होजाता है फिर इन दोनोंके गर्भमें संयुक्त होनेसे मूत्रद्वारा रुक जाता है ॥ ६ ॥ वह जो बालक उत्पन्न होवे उसके मूत्ररोध रोग होवे, तीव्र पीड़ा हो यह अंडसंधिमें शर्करासंज्ञक रोग हो जाता है यह शस्त्रसाध्य होता है ॥ ७ ॥

अथ अश्मरीरोगपर चिकित्सा ।

अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र महामते ॥ शुण्ठी गोक्षुरकं
चैव वरुणस्य त्वचस्तथा ॥ ८ ॥ काथोगुडयवक्षारयुक्तश्चाश्मरी-
नाशनः ॥ कुशकाशनलं वेणु अग्निमन्थाक्षनृत्तकम् ॥ ९ ॥ श्वदं-
ष्ट्रा मोरटा वापि तथा पाषाणभेदकम् ॥ पलाशस्त्रिफलाकाथो
गुडेन परिमिश्रितः ॥ १० ॥ पाने मूत्राश्मरीं हन्ति शूलव-
स्तौ व्यपोहति ॥ ११ ॥

हे पुत्र, हे महामते ! अब इन्होंकी औषध कहते हैं सुनो सोंठ, गोखरू, वरणाकी छाल
॥ ८ ॥ गुड, जवाखार इनका काथ बना पीनेसे पथरीका नाश होता है ॥ ९ ॥
कुशा, कास, उशीर, बांस, अरणी, बहेड़ा, बेत, गोखरू, मोरबेल, पाषाणभेद ॥ १० ॥
टेशू, त्रिफला, इनका क्वाथ बना गुडमें मिला खानेसे पथरीका नाश होता है और वस्तिशूल
दूर होता है ॥ ११ ॥

अथ एलादि काथ ।

एलाकणावृषत्रिकण्टकरेणुकाचपाषाणभेदमधुकं च फलत्रि-
कञ्च ॥ एरण्डतैलकशिलाजतुशर्कराद्यं काथोऽश्मरीघ्नइति
सोष्णजलस्य पानम् ॥ १२ ॥

इलायची, पीपल, बांसा, दोनों कटेहली, गोखरू, रेणुका, पाषाणभेद, त्रिफला,
अरंडीका तेल, शिलाजीत, खांड इनका काथ बना गरम २ पीनेसे पथरी रोग दूर
होता है ॥ १२ ॥

अथ गोक्षुरकादि चूर्ण ।

गोक्षुरकस्य बीजानां धातुमाक्षिकसंयुतम् ॥

अश्मरीपातनं चूर्णं महिषीदुग्धभक्षितम् ॥ १३ ॥

वक्तव्य ।

हारीतसंहिता सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी चर्चा या इसके प्रणेताकी चर्चा वैद्यके सैकड़ों ग्रन्थोंमें की गयी है। इस संस्करणमें अनेकों विशेष विषय बताये हैं। जिन्हें आप पढ़नेसे और गत संस्करणके देखनेसे ही समझ सकेंगे। अबकी सभी त्रुटियां यथासम्भव निकाल दी गयी हैं। इस कारण इसका संशोधन प्रयागीय मासिकपत्र “आलोक”के सम्पादक, आयुर्वेदाचार्य कविरत्न पं० कालीप्रसाद शास्त्रीजीने किया है। आशा है इससे विद्वन्मनोरञ्जन अवश्य होगा। संस्कृत और हिन्दी अल्प ही परिवर्तनमें बड़ी उत्तम हो गयी है। गूढ़ और गम्भीर उलझनोंको सुलझानेके लिये विशद गवेषणापूर्ण सरल संस्कृत और हिन्दीमें टिप्पणियां लगा दी गयी हैं। साथ ही मनोहर धन्वतन्तरिस्तव भी प्रथम पाठार्थ लगा दिया है, जिससे ग्रन्थकी उपयेगिता और भी बढ़ गयी है। हमें आशा है कि, हमारा यह ग्रन्थ वैद्यकप्रेमियोंमें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त करेगा।

प्रकाशक—

२० । ३ । १९२७

खेमराज श्रीकृष्णदास.

अपनी बात ।

प्रिय प्राठको !

आपके हाथमें यह ग्रन्थ रखते हुए मुझे हर्ष होता है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि इस नूतन संस्करणको देखकर आप अवश्य सानन्द होंगे। यथासम्भव और यथाविवेक हमने इसके प्रत्येक भागपर दृष्टि डाली है। जो कुछ इसके उत्तम बनानेमें कर सकते थे किया। यह बात आप गतसंस्करणको देखकर समझ लेंगे। हमारा विशेष ध्यान मूलभागपर रहा है। उसीको शुद्ध और सुपाठ्य बनानेमें भरसक प्रयत्न हमने किया है। टीकामें सुबोधता और यथार्थताका ध्यान रखते हुए उचित परिवर्तन यथास्थानपर किया गया है। हिन्दी पुरानी है वह वर्तमानपद्धतिके अनुकूल कहांतक बन सकती है ? तब भी ऐसी नहीं जो सुश्राव्य और समझने योग्य न हो, वैद्यक संसारमें हारीतसंहिताकी प्रतिष्ठा कम नहीं किन्तु आर्ष और वृत्तभङ्गके गम्भीरगर्तमें पड़कर इसका जो भाग दुर्बोध और अदृश्य हो गया था वह पुनरुद्धृत हुआ है। हम अपने अनुभवसे कह सकते हैं कि इसका कालज्ञान, वस्तुविवेक, गुणदोषदर्शन सरल, सर्वमान्य, उपादेय और अनुभूत नुस्खांका समूह अन्यत्र दुर्लभसा है। विश्वास है कि अवशिष्ट त्रुटियोंकी ओर वैद्यकके विशिष्ट विद्वान् हमारा ध्यान दिलाएँगे, जिससे हम पुनस्वागत संस्करणमें उनका संशोधन कर सकेंगे। उचित ग्रन्थोंका सर्वमान्य बनाना सभीका काम होना चाहिये जिससे वे अपनी विशुद्ध प्राचीन प्रभा पुनः पा सकें। किमधिक महत्सु।

सजीवन औषधालय मु० चिलौली पो० टेढ़ा,) निवेदक—कालीप्रसाद त्रिपाठी (श्रीवार)
जि० उन्नाव चैत्रकृष्ण द्वितीया सं० १९८३) सम्पादक आलोक आयुर्वेदाचार्य, कविरत्न,

और गोखरूके बीज, सोनामाखी इन्होंके चूणकी भैंसके दूधके संग पीनेसे पथरी गिरती है ॥ १३ ॥

अथ अन्य उपाय ।

शस्त्रविधिरुत्तरीय सूत्रस्थाने प्रोक्तं घृताध्याये च स्मृतम् ॥ १४ ॥
पुराणपट्टिका शालिरुक्ततण्डुलकास्तथा ॥ श्यामाकः कोद्रवो
दालो मर्कटी तृणधान्यकम् ॥ १५ ॥ यवगोधूमकुलत्थास्तथा
चैवाढकी भिषक् ॥ वातहराः प्रयोक्तव्या भोजने वातरोगिणाम्
॥ १६ ॥ ॥ क्रौञ्चाद्यानि च मांसानि पथ्यान् यश्मरीनाशने ॥ १७ ॥
इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अश्मरीचिकित्सा-
नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

उत्तर सूत्रस्थानमें शस्त्रविधि कहदी है, तैलाध्यायमें तेल कह दिया है और घृता-
ध्यायमें घृत कह दिया है ॥ १४ ॥ पुराने सांठी चावल, शालिसंज्ञक चावल, लाल
चावल, शामक, कोदूधान्य, दाल, क्रौंच, तृणधान्य आदि अन्न ॥ १५ ॥ जव, गेहूं, कुलथी,
आढकी धान्य, इन भोजनोंको देवे और वातरोगवाले पुरुषोंको वातनाशक भोजनोंको देवे ॥
॥ १६ ॥ पथरी रोगके नाशके वास्ते कूँजी आदि पक्षियोंका मांस देना चाहिये ॥ १७ ॥

इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने अश्मरीचिकित्सानामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२.



अथ वृषणचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अत ऊर्ध्वमण्डवृद्धिर्दृश्यते भिषजां वर ॥
बाल्ये मातुः पितुर्दोषाज्जायते वृषणानुगा ॥ १ ॥ दुष्टादाराविहा-
राच्च वातो बस्तिगतो भृशम् ॥ अण्डस्थानं च संप्राप्य तस्य
वृद्धिं करोति वै ॥ २ ॥ एकैकसन्निपातश्च चतुर्थः सन्निपातिकः ॥
पित्तदोषात्सन्निपातात्तथाऽसाध्या इमे स्मृताः ॥ ३ ॥

आत्रेय कहते हैं—हे उत्तमवैद्य ! हारीत ! इसके उपरान्त अंडवृद्धि रोग होता है

हारीतसंहिताविषयानुक्रमणिका ।



विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अथ प्रथमस्थानम् ।		लघनकी योग्यता	१३
मंगलाचरण ...	१	जठराग्निका कर्म	"
आत्रेयहारीतसंवाद ...	"	सामनिरामव्यांधिका उपक्रम	१४
वैद्यशास्त्रपठनविधि ...	६	वैद्यकी योग्यता	"
चिकित्सालेखग्रह ...	७	पुण्यार्थ उपचार करनेयोग्य मनुष्य	"
शल्यतंत्र ...	८	उपचारसे धन लेने योग्य मनुष्य....	१५
शालाक्य ...	"	यश मिलने योग्य मनुष्य	"
कायचिकित्सा ...	"	चिकित्सा करनेको अयोग्य मनुष्य	"
अगदोंके नाम ...	९	वैद्यकर्तव्यका उपसंहार	१६
बालचिकित्सा ...	"	देशकालबलावल	"
विपत्तन्त्रके नाम ...	"	देशके भेद ...	"
भूतविद्याका नाम ...	"	अनूपदेशलक्षण	"
वाजीकरण ..	"	जाङ्गलदेशलक्षण	१७
रसायनतन्त्र ..	१०	साधारणदेशलक्षण	"
उपाङ्गचिकित्सा ...	"	कालज्ञान	१८
वैद्यशिक्षाविधान ...	"	कालका स्वरूप	"
उपचार करनेकी योग्यता	११	उत्पातकालका स्वरूप ...	"
देशकाल आदिका ज्ञान	"	प्रवर्तककालका स्वरूप	"
उपचार करनेका फल	"	संहारकालका स्वरूप	१९
वैद्यका वैद्यत्व	"	कालका सनातनत्व	"
दो प्रकारका उपचार उपक्रम	"	कालका नाशिक स्वरूप	"
दो प्रकारके वैद्य	"	अन्यकालोंके स्वरूप	"
व्याधिके साध्य असाध्य विचार....	१२	क्रतुचर्त्या	"
उपचारका फल	"	अयनोंका वर्णन	२०
दोषके शेष रहजानेसे हानि	"	दक्षिणायनका लक्षण	"
अपथ्यसे हानि	१३	उत्तरायणका लक्षण	२१
		वर्षाऋतुलक्षण	"
		शरदृतुका लक्षण....	२२

सो बालकके मातापिताके दोषसे वृषणोंका रोग होता है ॥ १ ॥ दूषित स्त्रीके संग मैथुन करनेसे वस्तिस्थानमें प्राप्त हुआ बहुतसा वायु अंडस्थानमें प्राप्त होके अंडवृद्धि करदेता है ॥ २ ॥ एक एक दोषसे तीन प्रकारका और चौथा सन्निपातसे होता है और पित्तके दोषसे उपजे हुए और सन्निपातसे उपजे हुए अंडवृद्धिरोग असाध्य कहे हैं ॥ ३ ॥

दोषान् वक्ष्याम्यौषधानि शृणु तानि भिषग्वर ॥ स्वेदनान्यभ्य-
जनानि काथ्यपानं विधीयते ॥ ४ ॥ शिरःस्नावो भिषक्श्रेष्ठ
तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ कंपश्च घृदुवातेन पित्तेन दाहक-
ज्वरः ॥ ५ ॥ कफाद्धनश्च शोषश्च कठिनो वृषणो भवेत् ॥
रसालशल्लकीकाथस्तर्कारी कटुतुम्बिका ॥ ६ ॥ काथसं-
सेवनार्था च मुष्कवृद्धिः सवालिके ॥ शीततोयावगाहो वा
शीतसंसेवनं तथा ॥ शीतशीतैश्च लेपश्च पित्तमुष्के प्रशस्यते ॥

हे उत्तमवैद्य ! अब दोषोंको और औषधोंको कहते हैं सुनो । पसीना दिलाना, मालिस करनी और काथ पान, नसोंका स्नाव ये विधि करनी चाहिये ॥ ४ ॥ अब इनके लक्षणोंको कहेंगे, वातदोषसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें कंपनाहो कोमलहो और पित्तसे दाहहो, ज्वरहो ॥ ५ ॥ कफसे कडाहो, शोषहो, कठिन अंड हो, वातसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें आंव, शल्लकी वृक्ष, अरणी, कडुई तुंबी, इनका क्वाथ बना सेवन करना चाहिये ॥ ६ ॥ और पित्तसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें शीतल जलमें गोता मारना, शीतल वस्तुसे बना और चंदन, कपूर चीता इनका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

वृषणवृद्धिपर चिकित्सा ।

वचालवणतोयेन कदम्बार्जुनसर्षपैः ॥ कषायसेवनैः प्रोक्तं कफ-
मुष्केऽहितापहम् ॥ ८ ॥ अरुणवरुणकोलं च शालिपर्णी शता-
वरी ॥ काथः पित्तसन्निपातमुष्कवृद्धौ विदां वर ॥ ९ ॥ वरुण-
वृक्षादनी चैव दशमूली शतावरी ॥ क्वाथपानं वातिके च मुष्क-
वृद्धौ हितावहम् ॥ १० ॥ एतेन भवते सौख्यं तदा कर्मावकार-
येत् ॥ कर्णकोषस्य मध्ये तु रक्ताग्निर्हारयेच्छिराम् ॥ ११ ॥
वामकोष्ठस्य वृद्ध्या तु दक्षिणां हारयेच्छिराम् ॥ उभाभ्यां द्वे शिरे
वेध्ये तेन वा तत्सुखं भवेत् ॥ १२ ॥ इति चाण्डक्रिया प्रोक्ता

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
हेमन्तवर्णन	२४	वायुका कोप	३५
शिशिरवर्णन	२५	पित्तप्रकोपनिदान....	३६
वसन्तऋतुका वर्णन	"	कफप्रकोपनिदान....	३७
ग्रीष्मवर्णन	२६	दो दोषोंके कोपकी उत्पत्ति	"
इसके बाद वंयोज्ञानका कथन	२७	सन्निपातकी उत्पत्ति	३८
मध्यमवयोलक्षण	"	रसोंके गुणदोषका वर्णन	"
प्रकृतिका ज्ञान	२९	षड्रसके गुणदोषवर्णन	३९
वातादिप्रकृतिका ज्ञान	"	रसगुणोंके गुणकर....	"
वातप्रकृतिका लक्षण	"	वातादिविरुद्धरस	"
पित्तप्रकृतिका लक्षण	"	दोषोंके विरोधीरसोंका वर्णन	"
कफप्रकृतिका लक्षण	३०	वातादिकोंमें रसयोजना	४०
समप्रकृतिका लक्षण	"	मधुररसका वर्णन	"
पूर्वदिशाका वायु	"	कटुए रसका वर्णन	"
आग्नेयदिशाका वायु	३१	चरपरे रसका वर्णन	"
दक्षिणदिशाका वायु	"	खट्टे रसका वर्णन....	४१
नैऋत्यदिशाका वायु	"	कसैले रसका वर्णन	"
पश्चिमदिशाका वायु	३२	खारे रसके वीर्यका वर्णन	"
वायव्यदिशाका वायु	"	पानीका वर्ण	४२
उत्तरदिशाका वायु	"	जलके भेद	"
ऐशानदिशाका वायु	"	गंगापानीकी परीक्षा	"
अन्य पंचविध वायुके गुण	"	गंगाजलके गुण	४३
बलवायुके गुण	"	सामुद्र पानीका लक्षण और गुण....	"
वेणुवायुगुण	३३	चारप्रकारकी वृष्टि....	"
कांस्यपात्रवायुके गुण	"	रात्रिको वर्षे हुए पानीके गुण-	"
रंभातालपत्रवायुके गुण	"	दोष वर्णन	"
खसशिखिपुच्छव्यजनवायुके गुण....	"	दुर्दिनमें वर्षे हुए पानीके गुण-	"
षट्पुत्रोंमें उत्तमदिक् वायु	३४	दोषवर्णन	"
प्रतिदिन षट्पुत्र	"	दुर्दिनमें वर्षे हुए पानीके गुणदोष	"
सविषवायु	"	वर्णन	४४
ऋतुभेदसेवातादिकोंका संचय, कोप, उपराम ३५		क्षणवृष्टिके गुण	४५

सा चैवोन्नीतरोगिणे ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृती-
यस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सा नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

कफसे उपजे अंडवृद्धिमें वच, तमक, कदंबवृक्ष, सरसों, इनका काथ बना सेवन करना हित है ॥ ८ ॥ लाल उंणा, वायवरणा, कंकोल, शालपर्णी, शतावरी, इनका काथ पित्त और सन्निपातसे उपजे अंडवृद्धिरोगमें हित है ॥ ९ ॥ अमरवेल, वायवरणा, दशमूल, शतावरी, इनका काथ वातके अंडवृद्धिरोगमें पीना हित है ॥ १० ॥ रस करके सुख हो जाता है पीछे अन्यकर्म करें। कानके मध्यमें रहनेवाली रक्तको धारण करनेवाली नाड़ीको विधावे ॥ ११ ॥ बाईतर्फ अंडवृद्धि होवे तो दाहिने कानकी नस विधावे और दोनोंतर्फ अंडवृद्धि होवे तो दोनों कानोंकी नसोंको विधावे ऐसे करनेसे सुख उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥ यह दारुण क्रिया कही है जिसके ज्यादा अंडवृद्धि हो रही हो उस रोगीके करनी चाहिये ॥ १३ ॥

इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रयनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने वृषणवृद्धिचिकित्सानाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३.

अथ विसर्परोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ लवणाम्लक्षारकटुकैरुष्णस्वेदातिदोषतः ॥ रक्त-
पित्तं प्रकुण्ठ्येत स विसर्पी भिषग्वर ॥ १ ॥ स सप्तधा परिज्ञेयः
पृथग्दोषैश्च द्वन्द्वजैः ॥ केवलो रक्तजस्त्वन्यः सन्निपातेन सप्तमः
॥ २ ॥ तथापरे प्रवक्ष्यन्ते नामानि च पृथक्पृथक् ॥ आज्ञेयो
ग्रन्थिको घोरः कर्दमश्च तथापरः ॥ ३ ॥ आज्ञेयो वातपित्तेन
ग्रन्थिकः पित्तश्लेष्मणा ॥ कदमो वातश्लेष्मोत्थो घोरः स्यात्सा-
न्निपातिकः ॥ ४ ॥ रक्तं लसीकात्वंङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ॥
विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः ॥ ५ ॥ न्यग्रोधवि-
ल्वखदिरकषायो धावने हितः ॥ काञ्जिकाम्लैः पिच्छिलया
सौवीरकरसेन वा ॥ ६ ॥ मातुलुङ्गरसेनापि धावनं वातसर्पिषु ॥
क्षीरेण शीततोयेन धावनं पित्तसर्पिणि ॥ ७ ॥ श्लेष्मविसर्पिणे

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
श्रावणवृष्टिके गुण	४४	अंशूदकके गुणदोष	५४
भादुवाके वृष्टिके गुण	४५	आरोग्योदकके गुणदोष	५५
आश्विनवृष्टिके गुण	४५	शीतपानीके गुण	५५
कार्तिकके वृष्टिके गुण	४५	गर्म पानीके गुण	५५
स्वातिजलके गुण	४५	पानीविषयक विधि	५५
अकालवृष्टिके लक्षण और गुण	४५	दुग्धवर्गवर्णन	५७
अकालमें वर्षाहुई वर्षाके पानीका लक्षण	४५	दूधकी उत्पत्ति	५७
घाससंज्ञक आदि चारप्रकारके	४५	पृथक् २ रंगकी स्त्रियोंके दूध	५८
कारजलकी उत्पत्ति	४६	पृथक् २ रंगकी गायोंका दूध	५९
कारजलके गुण	४६	गायके दूधके गुण	५९
तुषारपानीके गुण	४६	बकरीके दूधके गुण	५९
पृथ्वी ऊपरके आठ प्रकारका जल	४७	भेडके दूधके गुण	५९
नदीके पानीका गुण	४७	भैंसके दूधके गुण	६०
औद्विद पानीका गुण दोष	४८	ऊटनीके दूधके गुण	६०
झिरनाके पानीका गुण	४८	स्त्रियोंके दूधके गुण	६०
चौडय संज्ञक पानीका गुण	४८	प्रभातके दूधके गुण	६०
कूवाके पानीका गुण दोष	४८	दिनके दूधका गुण	६०
तलावके पानीके गुण दोष	४८	रात्रिके दूधका गुण	६०
सारसपातीके गुण दोष	४९	दूधपीनेकी विधि	६१
बावडीके जलके गुण	४९	गायके दहीके गुण	६१
नदियोंकी प्रकृति	४९	बकरीके दहीके गुण	६१
सदा बहनेवाली नदीके गुण दोष	४९	भैंसके दहीके गुण	६२
पत्थरोंवाली नदीके गुण दोष	५०	ऊटनीके दहीके गुण	६२
बालूरेतवाली नदीके पानीके गुण दोष	५०	स्त्रीके दहीके गुण	६२
उत्तरसे बहनेवाली नदियों और पानीके गुण दोष	५०	भेडके दहीके गुण	६२
तापी आदिनदियोंके गुण दोष	५१	वर्षाकालके दहीका गुण	६२
पृथिवीके भागका पानी	५२	शरदऋतुके दहीका गुण	६३
ओदकका गुण दोष	५३	हेमन्तऋतुके दहीका गुण	६३
ओदकके गुणदोष	५३	शिशिरऋतुके दहीका गुण	६३
		वसन्तऋतुके दहीका गुण	६३

अथ रक्तस्थ कुष्ठ ।

रूक्षं तथा सकण्डु त्वक्स्थितञ्च नृदु शीतलम् ॥

आस्त्रावदाहरक्ताभं रक्तस्थं रक्तग विदुः ॥ १५ ॥

जो रूखाहो, खाजहो, कोमलहो, शीतलहो वह त्वचामें स्थित कुष्ठ जानना और जिसमें क्षिरनाहो, रक्तसरीखी कांतिहो वह रक्तमें स्थित हुआ कुष्ठ जानना ॥ १५ ॥

अथ मांसस्थ मेदःस्थ तथा अस्थिस्थ कुष्ठ ।

सुस्निग्धं तोदगम्भीरं मांसगञ्च विनिर्दिशेत् ॥ मेदःस्थं तोदवेष्टत्वं
सुस्निग्धं रक्तलोचनम् ॥ अस्थिसंस्थञ्च गम्भीरं विसर्पे नासि-
कामुखे ॥ १६ ॥

स्निग्धहो गम्भीर व्यथावाला वह मांसमें प्राप्त हुआ कुष्ठ जानना जो मेदमें स्थितहो उसमें पीडाहो और ऐंठन चिकनाहो, रक्तनेत्रहों और जो अस्थिमें स्थितहो वह गम्भीर होता है मुखमें तथा नासिकामें विसर्परोग दीखता है ॥ १६ ॥

अथ मज्जास्य तथा शुक्रस्थ कुष्ठ ।

मज्जसंस्थञ्च विकलो मज्जास्त्रावञ्च जायते ॥ विशीर्यते च सर्वाङ्गे
तथैव शुक्रगं विदुः ॥ १७ ॥ अतो वक्ष्ये समासेन प्रतिकर्म
भिषग्वर ॥ १८ ॥

मज्जामें स्थितहोनेसे विकल होजावे, और मज्जास्त्राव होता है और जिसमें सब अंग शिथिल होजावें वह वीर्यमें प्राप्त हुआ कुष्ठ जानना ॥ १७ ॥ हे उत्तम वैद्य ! अब संक्षेप मात्रसे इनकी चिकित्साको कहेंगे ॥ १८ ॥

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

त्वक्स्थे स्वेदस्तथालेपो रक्तस्त्रावञ्च रक्तगे ॥ विरेकं मांसगे प्रोक्तं
मेदोगे काथपाचनम् ॥ १९ ॥ अथ तानि च त्रीण्येवमस्थिमज्जा-
गतानि च ॥ वातिके स्वेदनं पथ्यं पित्त शीतोपचारणम् ॥ २० ॥
कटुसाध्यमिदं प्रोक्तमसाध्यं सान्निपातिकम् ॥ रोगकारणमा-
लोच्य तदा कम समारभेत् ॥ २१ ॥

त्वचामें स्थितहुए कुष्ठमें पसीना दिलावे, लेप करे, रक्तमें प्राप्तहुएमें स्त्राव करावे, मांसमें प्राप्तहुए कुष्ठमें जुलाव देवे और मेदमें प्राप्तहुएमें काथ पाचन देवे ॥ १९ ॥ और यही उप-
चार अस्थि, मज्जा, इनमें प्राप्तहुएमें भी करना चाहिये, वातसे उपजे कुष्ठमें पसीना दिवाना

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
ग्रीष्मऋतुके दहीका गुण	६३	हाथीके मूत्रका गुण	७१
दहीका वर्जना	"	घोड़ेके मूत्रका गुण	"
दहीके खानेकी विधि	६४	ऊँटके मूत्रका गुण	"
गायके छाछका गुण	"	गधाके मूत्रका गुण	"
भैंसके तक्रका गुण	"	नरके मूत्रका गुण	"
बकरीके तक्रका गुण	"	प्रसूता और अप्रसूताके मूत्रका गुण	७२
तक्रवर्णन	६५	मूत्रविशेष	"
साधारण तक्रका गुण	"	इक्षुवर्ग	"
बहुत पानी वालेतक्रका गुण	"	स्वादुईखका गुण	७३
विशेष वर्णन	६६	संफेद ईखका गुण	"
हाथसे मर्दित किये तक्रका गुण	"	काली ईखके गुण	"
तक्रनिषेध	"	यंत्रसे निकालेहुए रसका गुण	"
तक्रपानविधि	"	दाँतोंसे पीड़ितकिये रसका गुण	"
नौनीघृतकी विधि	"	बासीरसका गुण	७४
फेनविधि	६७	पेक रसका गुण	"
गायके घृतका गुण	"	फाणित रसका गुण	"
बकरीके घृतका गुण	६८	गुड़का गुण	"
भैंसके घृतका गुण	"	गुड़की खांडका गुण	"
ऊँटनीके घृतका गुण	"	साधारण खांडका गुण	७५
भेड़के घृतका गुण	"	मिश्रीके खांडका गुण	"
घोड़ीके घृतका गुण	"	सुंदर खांडका गुण	"
दूधसेही निकाले घृतका गुण	६९	गुड़विशेषता	"
पुराने घृतका गुण	"	कांजिकवर्ग	७६
नारीके घृतका गुण	"	चावल्लोंके पानीका गुण	"
घृतका विशेष वर्णन	"	तुषोदकका गुण	"
मूत्रवर्णन	७०	जव और गेहूँकी कांजीका गुण	"
गोमूत्रके गुण	"	तेलयुक्त कांजीका गुण	"
बकरीके मूत्रका गुण	"	युगंधर कांजीका गुण	७७
भेड़ाके मूत्रका गुण	"	कांजीका परिहार	"
भैंसाके मूत्रका गुण	७१	कांजीकी प्रशंसा	"

खैर, सफेद खैर, मूर्धा, नेत्रवाला, बड़ा अमलतास, कुडाकी छाल; नींबू, अमलतासको पीस इन्हींके समान घृत मिला काथ बना पीनेसे संपूर्ण कुष्ठरोग विसर्पदोष इनका नाश होता है ॥ ४२ ॥

अथ भल्लातक तैल ।

भल्लातकऋषणमक्षचूर्णं कुष्ठञ्च गुञ्जालवणानि पञ्च ॥ फलत्रिकं तैलविपाचितानि चाभ्यञ्जनं हन्ति च दद्रुकुष्ठम् ॥ ४३ ॥

भिलावा, ऋषण अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, बहेडा, कूठ, घोंघचिल, पांचों नमक, त्रिफला इनको समान भाग ले चूर्ण बना तेलमें पकावे पीछे इस तेलकी मालिस करनेसे दद्रुकुष्ठका नाश होता है ॥ ४३ ॥

अथ तिलतैल ।

अश्वघ्नमूलं मलिनं समङ्गा निशाद्वयं सर्पपचित्रकञ्च ॥ सभृङ्ग-
राजं कटुतुम्बिका च कुष्ठं विडङ्गं मगधा च चूर्णम् ॥ ४४ ॥ सु-
हृर्कदुग्धेन विपाचितं तु तैलं तिलानां परिपक्वमेतत् ॥ अभ्यञ्जनं
चैव नरस्य नूनं दद्रूणि कण्डूनि विनाशयेच्च ॥ ४५ ॥

कनेरकी जड़, अगर, मंजीठ, दोनों हलदी, सरसों, चीता, मंगरा, कुटकी, तुन्वी, कूठ, वायविडंग, पीपली ॥ ४४ ॥ इनको थोहरके और आकके दूधमें पका पीछे इसमें तिलोंके तेलको पकावे इसकी मालिस करनेसे मनुष्यके दद्रुकुष्ठोंका नाश शीघ्र ही होता है ॥ ४५ ॥

अथ हरिद्रादि तैल ।

हरिद्रा समङ्गा सुराह्वं सचित्राविडङ्गानि कृष्णा विशालाम्बु
कुष्ठम् ॥ तथा लाङ्गली चक्रमर्दं च गुञ्जा विशाला तथारिष्ट-
पत्राणि चैतत् ॥ ४६ ॥ सुचूर्णीकृतं भावितं वै तथैतद्भुङ्गेनैव सर्वं
हि घर्मे विपाच्यम् ॥ हितं लेपने कुष्ठपामाविचर्चीनरस्याति
शीघ्रं निहन्तीति शल्यम् ॥ ४७ ॥

हलदी, मंजीठ, देवदार, चीता, वायविडंग, पीपली, इंद्रायण, नेत्रवाला, कूठ, कलहारी, चकौड़ी, घोंघचिल, इंद्रायण, नींबूके पत्ते ॥ ४६ ॥ इनको समान भाग ले चूर्ण बना गुड़के रसमें भावना दे । घाममें घरके पका लेप करना हित है । कुष्ठ, पामा, विचर्चिका इन रोगोंका शीघ्र ही नाश होता है ॥ ४७ ॥

अथ निंवादिघृत ।

निम्बं पटोलं च किरातकञ्च जाती विशाला सपुनर्नवा च ॥

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
चावलोंके मंडका गुण....	७७	सालपर्णी और देशूके तेलका गुण....	८२
लालचावलके मंडका गुण	७८	वसावर्ग	११
सफेदचावलके मंडका गुण	११	धान्यवर्ग	८४
जवोंके मंडका गुण	११	शालिचावलका वर्णन....	११
गेहूँके मंडका गुण	११	शालियोंके गुणदोष	११
क्षुद्रअन्नके मंडके गुण	११	क्षुद्रधान्यवर्ग....	८५
कोदू अन्नके मंडका गुण	११	श्यामाक और कोदूके गुणदोष	८६
क्षुद्रअन्नके कांजीका गुण..	११	विदलानका गुण	११
यूपवर्ग	७९	जवोंका गुण	११
कुलथीके यूपका लक्षण गुण	११	गेहूँका गुण....	११
हरडके यूपका गुण	११	तिलोंका गुण	११
मूंगके यूपका गुण	११	चनाका गुण	८७
चनाके यूपका गुण	११	उड़दका गुण	११
उड़दके यूपका गुण	८०	मूंगका गुण	११
अन्ययूपोंके गुण	११	तुवरका गुण	११
तेलवसावर्ग	११	मोठका गुण	११
तिलोंके तेलका गुण	११	कुलथीका गुण	८८
सरसोंके तेलका गुण	८१	चौलाईका गुण	११
अलसीके तेलका गुण	११	मटरका गुण	११
अरंडके तेलका गुण	११	मसूरका गुण	११
तेलकी विशेषता	८२	धान्यवर्गका उपसंहार	११
लालअरंडके तेलका गुण	११	शाकवर्ग	८९
कुसुमके तेलका गुण	११	जीवती शाकके गुण..	११
अन्यान्य तेल	११	चौलाईके शाकके गुण	११
कुरटाके तेलका गुण	११	कासविदके शाकके गुण	११
तेलकी विशेषता	८३	जीवती और मुकोह शाकके गुण	११
स्वच्छ तिवसाका तेल अच्छोड़का तेल	११	बयुवा और चिल्ली शाकके गुण	९०
नारियलका तेल महुवाके तेलका गुण	११	केतकी और मेथी शाकके गुण	११
काकडी, खीरा, कोदला आदिके		सरसों और सौंपके शाकका गुण	११
तेलका गुण	११	कटेली और कुसुम्भा शाकके गुण	११

अथ बालकोंकी वाणीको करनेवाले औषध ।

त्रिकटु त्रिफला धान्या यवानी सालमूलिका॥वचा ब्राह्मी तथा
भाङ्गी चूर्णञ्च मधुना हितम् ॥ वाक्पटुत्वञ्च बालानां नादो
वीणासमस्वरः ॥ २५ ॥

सूँठ, मिरच, पीपली, धनियां, अजवायन, सालवृक्षकी जड़, वच, ब्राह्मी, भारंगी, इनका
चूर्ण बना शहदके संग चाटनेसे बालककी जुवान अति चपल होती है और वीनके समान
शब्दका स्वर होता है ॥ २५ ॥

अथ बालकोंके अपस्माररोगकी चिकित्सा ।

यस्य श्वासो विचैतन्यं तन्द्रा चातीव वेपथुः॥शिरोर्तिःसंज्वर-
श्चैव सचासाध्यो भिषग्वर ॥ २६ ॥ लालाकृतिर्विचैतन्यं तृप्त-
विभ्रान्तलोचनम्॥स्तब्धाङ्गविकृतिर्यस्य चापस्मारी च उच्यते
॥ २७ ॥ अपस्मारे तु बालस्य शीतलानि प्रयोजयेत्॥ वचा-
सैन्धवपिप्पल्यो नस्यं हि गुडनागरः ॥ २८ ॥ रसं चागस्ति-
पत्रस्य मरिचैः प्रतियोजितम् ॥ एतेन प्रतिसौख्यं स्यात्तदा
चान्दोलनं हितम् ॥ २९ ॥ मस्तकान्ते ललाटे च दहेछोहश-
लाकया ॥ ३० ॥

जिसके अत्यन्त श्वास हो, चेत नहीं रहे, तन्द्राहो, अत्यन्त कंपनाहो, शिरमें पीडाहो, ज्वरहो
हे वैध ! वह असाध्य रोग होता है ॥ २६ ॥ लाल आकृतिहो, चेत नहीं हो, और फटे
हुए भ्रमते हुए नेत्रहों, अंग जकडबंध बुरावर्णवाला होजावे वह अपस्मार अर्थात् मृगीरोग
जानना ॥ २७ ॥ अपस्मार रोगमें बालकको शीतल वस्तु देनी चाहिये और वच, सैन्धानमक, पीपली, सूँठ, इनको मिला नस्य देवे ॥ २८ ॥ अथवा अगस्तिवृक्षके पत्तोंके
रसमें मिरच मिला नस्य देवे, इसप्रकार करनेसे सुख होजाये तब आंदोलन अर्थात् हिलाने
चलानेका कर्म करे ॥ २९ ॥ मस्तकके अंतमें शिरके ऊपरकी नसको शलाईसे दग्ध
करना हित है ॥ ३० ॥

अथ बालकोंके पूतनाका दोष ।

शून्यागारे देवकुले श्मशाने देवमध्यगे ॥ चत्वरं सङ्गमे नद्यो-
र्मयक्षुभितबालके ॥ ३१ ॥ संक्रामन्ति भिषक्छ्रेष्ठबालकस्यापि
पूतनाः ॥ ३२ ॥ लोहिता रेवती ध्वांक्षी कुमारी शाकुनी शिवा ॥

विषय.	पृष्ठ.
चूकाशाकके गुण	९०
दूसरे शाकोंके गुण	९१
कफकारक और वातल. शाक	९१
शाकोंके विशेष गुण	९१
अन्य प्रकारके शाक	९१
कोहलाका गुण	९१
कुरडूके शाकका गुण	९२
करेलाका गुण	९१
लालतूरके पुष्पका गुण	९१
तोरि ककोड़ा करेला कडुई	९१
तोरिका गुण	९१
परचलका गुण	९१
बैंगनका गुण	९१
बड़ी कटेलीका गुण	९३
कन्दशाकका गुण	९१
जमीकन्दका गुण	९१
अम्लिका-कन्दका गुण	९१
पिण्डशाकका गुण	९१
आलूका गुण	९१
प्याजका गुण	९१
रतालूका गुण	९४
हस्तिकन्दका गुण	९१
चाराहकन्दका गुण	९१
फलवर्ग	९१
आंबके फलका गुण	९५
जामन, बेर, अनार, चिरौजीके गुण	९१
विशेष वर्णन	९१
विजोराका गुण	९१
नींबूका गुण	९६
नारंगीका गुण	९७

विषय.	पृष्ठ.
अम्लीका गुण	९७
दाखका गुण	९१
नारियलका गुण	९१
केलाके फलका गुण	९८
कैथका गुण	९१
खजूरिआ अथवा छुहाराका गुण	९१
सुपारीका गुण	९१
नागरपानका गुण	९१
कत्थाका गुण	९९
चूनेका गुण	९१
कत्था कपूरसे संयुक्त नागरपानका गुण	९१
मधुवर्ग	९१
शहदका गुण	९१
शहदकी विशेषता	१००
मधुवर्ग	१०१
सीधुमदिराका गुण	९१
गौड़ी मदिराका गुण	९१
मत्स्यंडी मदिराका गुण	१०२
माध्वीकमदिराका गुण	९१
साधारणमदिराका गुण	९१
पैथी मदिराका गुण	९१
महुआवृक्षकी मदिराका गुण	९१
ताड़की मदिराका गुण	१०३
मदिराकी विशेषता	९१
चौपायोंका और दुपायोंका मांसवर्ग	९१
सरीसृपवर्णन	१०४
आनूपवर्णन	९१
जांगलवर्णन	९१
जलचरजीववर्णन	१०५
ग्रामचारी पशुवर्ग	९१

युक्त हुआ जीव सोवता है ॥ ५५ ॥ और तमोगुणके योगसे जो वायु होता है वह स्वप्नअवस्था कहाती है और सत्त्वगुण, तमोगुण, वायु ये तीनों स्वप्नअवस्थामें एक योगसे चर्त्ते हैं ॥ ५६ ॥ आहार, निद्रा, क्षुधा, तृषा, मय, मत्सरपना, मद, मोह, क्रोध, अभिलाष, सुखकी तृप्ति, शान्ति ये सब देहधारियोंके होते हैं ऐसे तुम सुनो ॥ ५७ ॥ देहमें विचरताहुआ अग्नि भोजनकी इच्छा कर देता है ॥ ५८ ॥ जठराग्नि जब २ मलोंको शोषती है तब उसकी तृप्ति रहती है और जब उसकी तृप्ति नहीं होती है तब इसे बाँछाको उपजा देती है ॥ ५९ ॥

इति वैरीनिवासिविषयसहस्रसूत्रवैद्यविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
शारीरस्थाने षष्ठे शारीराध्यायो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ परिशिष्टाध्यायः ।

इति प्रोक्तः शरीरार्थस्तद्व्यासेनोपदिश्यते ॥ श्रुत्वा चैनं महा-
तेजा हारीतो मुनिसत्तमः ॥ १ ॥ प्रणिपत्य गुरुश्रेष्ठं हृष्टान्तःकरण-
स्ततः ॥ जगाम स्वर्णदीतीरं स्नानध्यानरतस्तथा ॥ २ ॥ य एत-
त् पठति शास्त्रं महर्षेर्वचनाच्छ्रुतम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो नीरुजः
सुखमश्नुते ॥ ३ ॥ आदौ यद् ब्रह्मणा प्रोक्तमग्निना तदनन्तरम् ॥
धन्वन्तरिणा प्रोक्तञ्च अश्विना च महात्मना ॥ ४ ॥ एवं वेदस-
मं ज्ञेयं नावज्ञाकारणं मतम् ॥ अन्यैश्च बहुधा प्रोक्तं नानाशा-
स्त्रविशारदैः ॥ ५ ॥ अमीषां च मतं ग्राह्यं तस्मात् सर्वे समं
विदुः ॥ चरकः सुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथापरः ॥ ६ ॥ मुख्याश्च
संहिता वाच्यास्तिस्र एव युगे युगे ॥ ७ ॥ अग्निः कृतयुगे वैद्यो
द्वापरे सुश्रुतो मतः ॥ कलौ वाग्भटनामा च गरिमात्र प्रदृश्यते
॥ ८ ॥ वैष्णवी चाश्विनी गार्गी तत्र माध्याह्निकापरा ॥ मार्क-
ण्डेया च कथिता योगराजेन धीमता ॥ ९ ॥ संहिता ऋषिभिः
प्रोक्ता मन्त्रैर्नानाविधैर्विभो ॥ १० ॥ अग्निवेशश्च भेडश्च जातू-
क्कर्ण्यः पराशरः ॥ हारीतः क्षीरपाणिश्च षडेते ऋषयस्तु ते ॥ ११ ॥
अथा सिंहो मृगेन्द्राणां यथाऽनन्तो भुजङ्गमे ॥ देवानाञ्च यथा

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
ग्रामचारी पक्षी १०६	जलचरोका मांसवर्ग	१११
हरिणीके मांसका गुण	आड़ीआदि पक्षियोंके मांसका गुण
कृष्णमृगके मांसका गुण १०६	मकरमच्छके मांसका गुण
चित्रांगके मांसका गुण	मच्छके मांसका गुण	११२
छिक्कारके मांसका गुण	कछुवाके मांसका गुण
रक्तमृगके मांसका गुण	खेंकड़ाके मांसका गुण
गैंडा, रोज़, भैंस, ऊँट, घोड़ा इनके मांसके गुण	मांसविशेषता
शूकरके मांसका गुण १०७	वर्जनीय मांस
शशाके मांसका गुण	अन्नपानवर्ग	११३
शेहके मांसका गुण	मंडका गुण
शैल्यकनामवाले जीवके मांसका गुण	मातका गुण	११४
गोहके मांसका गुण	गुड़याणीका गुण
मूषके मांसका गुण १०८	यवागूका लक्षण
स्थलमें विचरनेवाले जीवोंका मांसवर्ग	मंडका विशेष गुण
लावापक्षीके मांसका गुण	खीरका गुण
तीतरके मांसका गुण	खिचड़ीका गुण	११५
नीलामोरके मांसका गुण १०९	दालका गुण
साधारणमोरके मांसका गुण	खलका गुण
मुर्गाके मांसका गुण	अनारका पन्ना
कपोतके मांसका गुण	पापडका गुण
परेवाके मांसका गुण	संडाकीका गुण
कक्केराके मांसका गुण	उडद आदिके बडोंका गुण	११६
खात्तीचिड़ाके मांसका गुण ११०	शिखरणका गुण
चकोर, तोता, मैना, इनके मांसका गुण	घृतयुक्त दहीके पतले शिखरणके गुण
कुंजके मांसका गुण	ग्रंथका लक्षण और गुण
कोयिलके मांसका गुण	मांसका गुण
विवृताक्षके मांसका गुण	मांसकी श्रेष्ठता	११७
घरके बत्तकके मांसका गुण	भूँजे हुए मांसका गुण
		अत्युष्णमंडका गुण

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
मांडाका गुण	११७	स्वप्नाध्यायका वर्णन	१२७
पूरी और घेवरका गुण	"	वर्ज्यस्वप्न	"
गूँझमालपूवाका गुण	"	कालसे स्वप्न	१२८
सोमालिकाका गुण	११८	स्वप्नमें शुभद्रव्य	"
फेनीका गुण	"	अशुभद्रव्य	"
भिन्नबडाका गुण	"	शुभस्वप्नोंका वर्णन	"
अभिन्नबडाका गुण	"	शुभस्वप्न	१२९
लड्डूका गुण	"	अशुभस्वप्नोंका वर्णन	१३०
यवपोलिकाका गुण	११९	स्वास्थ्यारिष्ट	१३२
अन्नके गुणोंका उपसंहार	"	ध्रुवादिक न देखनेका अरिष्ट	"
थकेहुए मनुष्यको भोजननिषेध	"	द्वितीयाचंद्रका अदर्शनका अरिष्ट	"
भोजनके उपरांत मेहनत और सुरतका निषेध	"	कर्णघोष न सुननेका अरिष्ट	१३३
थंडा और गरम भोजनका निषेध	"	मुखस्वासादिका अरिष्ट	"
श्रमिंत आदिकोंके भोजनका निषेध	"	प्रभातमें मस्तकशूलका अरिष्ट	"
भोजनमें फलादिकोंका नियम	१२०	सूर्यविंबादिकके दर्शनका अरिष्ट	"
भोजनके पीछे बैठनेका नियम	"	इंद्रधनुष देखनेका अरिष्ट	"
भोजनमें पानीका नियम	"	विपरीत देखने सुननेका अरिष्ट	१३४
भोजनके ऊपर व्यायाम	"	शरीरके स्पर्शसे अरिष्टकथन	"
भोजनके उपरांत नेत्रादिकोंका मार्जन	"	प्रतिबिम्ब न देखनेसे अरिष्ट	"
अड़कारका नियम	१२१	व्याध्यरिष्टका लक्षण	१३५
व्यायामादिकोंका नियम	"	अष्टमहाव्याधियोंका नाम	"
दिनमें शयन करनेका निषेध	"	आठ महारोगोंके उपद्रव	"
दिनमें शयनकराने लायक मनुष्य	"	ज्वररोगीके अरिष्ट	"
इति प्रथमस्थानं समाप्तम्		दारुण उपद्रवका अरिष्ट	१३७
		अतीसारका अरिष्ट	"
		सूजनका अरिष्ट	"
		शूलका अरिष्ट	"
		पांडुरोगीका अरिष्ट	१३८
		क्षयरोगका अरिष्ट	"
		श्वासरोगका अरिष्ट	"

द्वितीयं स्थानम् ।

अथ कर्मविपाक	१२३
पापदोषप्रतीकार	१२५
अन्य अन्य रोगोंका कारण	१२६

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
बहुत दिनतकके रोगका अरिष्ट....	१३८	रोहिणी नक्षत्र	१४७
उदररोगका अरिष्ट	१३९	मृग नक्षत्र	"
गुल्मरोगका अरिष्ट	"	आर्द्रा नक्षत्र	"
रक्तपित्तका अरिष्ट	"	पुनर्वसु नक्षत्र	१४८
बवासीररोगका अरिष्ट	"	पुष्य नक्षत्र	"
विद्रधिरोगका अरिष्ट	"	आश्लेषा नक्षत्र	"
अमरोगका अरिष्ट	१४०	मघा नक्षत्र	"
आर्तवका अरिष्ट	"	पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र	"
कामला और पांडुरोगका अरिष्ट....	"	उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र	१४९
भगंदरका अरिष्ट	"	हस्त नक्षत्र	"
अश्मरीरोगका अरिष्ट	"	चित्रा नक्षत्र	"
मूद्वर्गभक्का अरिष्ट	१४१	स्वाती नक्षत्र	"
अपस्माररोगका अरिष्ट	"	विशाखा नक्षत्र	"
वातव्याधिका अरिष्ट	"	अनुराधा नक्षत्र	१५०
अग्नेहका अरिष्ट	"	ज्येष्ठा नक्षत्र	"
कुष्ठरोगका अरिष्ट	"	मूल नक्षत्र	"
उन्मादरोगका अरिष्ट	१४२	पूर्वा नक्षत्र	"
पंचेन्द्रियविकारवर्णन	"	उत्तराषाढा नक्षत्र	"
नक्षत्रज्ञानवर्णन	१४३	श्रवण नक्षत्र	१५१
मृत्युयोगोंका वर्णन	"	धनिष्ठा नक्षत्र	"
अमृतयोगकथन	१४४	पूर्वा भाद्रपदा	"
क्रययोगवर्णन	"	रेवती नक्षत्र	"
योगविज्ञान	१४५	अश्विनी नक्षत्र	१५२
विशेष वर्णन	"	भरणी नक्षत्र	"
असाध्य नक्षत्र	"	नक्षत्रारिष्टोंका उपसंहार	"
साध्य नक्षत्र	"	अथ होमकी विधि	"
कष्टसाध्य नक्षत्र	"	शांतिप्रकार	१५३
नक्षत्रोंके पीडाकी मर्यादा	१४६	दूतकी परीक्षाका लक्षण	१५५
नक्षत्रोंके भागानुसार रोगोंकी मर्यादा	१४७	वर्ज्यदूतके लक्षण	"
कृत्तिका नक्षत्र	"	शुभदूतके लक्षण	१५७

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
दूतलक्षणोंका उपसंहार	१५८	लंघित करनेमें अयोग्य रोगी	१६५
शकुनवर्णन	"	लंघित करनेमें योग्य रोगी	"
शुभशकुन	"	छः प्रकारके लंघन	१६६
दुष्टशकुन	१५९	विरतकज्वरलक्षण	"
सृगादिकोंका शकुन	"	दोषपरत्वसे लंघनकी मर्यादा	"
सृगोंके संख्याका शकुन	"	वयपरत्वसे दोषोंके कोपका प्रकार	"
मौरआदिकोंका शकुन	"	ज्वरवालेको काथ देनेका समय	१६७
काकशकुन	१६०	काथका प्रकार	"
जाहशरादिकोंका शकुन	"	सातप्रकारसे काथ देनेके समय	"
गमन समयके विविधपदार्थदर्शन शकुन ..	"	औषधादि देनेके समयकी संज्ञा	१६८
शकुनाध्यायका उपसंहार	१६१	काथके सात प्रकार	"
इति द्वितीयस्थानं समाप्तम् ॥		सात प्रकारके काथोंका लक्षण	"
अथ तृतीयस्थानम् ।		सात प्रकारके काथोंका कार्य	"
औषधपरिज्ञानविधान	१६१	काथरक्षणका उपदेश	"
ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले रोग	१६२	काथसंबन्धी अनिष्ट लक्षण	१६९
ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले अन्य		हीनकाथके लक्षण	"
प्रकारके रोग	"	उत्तम काथका लक्षण	"
दिनमें शयन करनेसे होनेवाले रोग ..	"	वातज्वरमें पाचनकी विधि	"
सहामयंकर रोग	१६३	पित्तज्वर और कफज्वरमें पाचनकी	
सर्वव्याधियोंका हेतु	"	विधि	"
वातादिदोषोंका पाचनकाल	"	पाचनका निषेध	१७०
पाचनादिक्रियाका समय	"	ज्वरकी मर्यादा	"
घातुगतदोषोंका पाचनकाल	१६४	ज्वरमें पाचनादिदेनेकी मर्यादा	"
अपक्वदोषमें औषधका निषेध	"	काथके विपत्तिका प्रकार	"
लंघनका उपचार	"	पथ्यकी आवश्यकता	"
लंघनप्रकरण	"	ज्वरितको पथ्य भोजनका उपदेश ..	"
शुद्धलंघितका लक्षण	"	मध्यलंघितकी अन्नविधि	१७१
मध्यमलंघितका लक्षण	"	क्रमशः शांतिकी विधि	"
अतिलंघितका लक्षण	१६५	काथ पीनेकी विधि	"
		ज्वरचिकित्सा	१७२

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
कुवैद्यनिंदा	१७२	ज्वरकी विशेषता	१७९
वैद्यका लक्षण	"	वातज्वरमें पाचन	"
वैद्यकशास्त्रकी पठनकी आवश्यकता	"	पित्तज्वरका पाचन	१८०
रोग नहीं जाननेसे हानि	१७३	कफज्वरमें पाचन	"
वैद्यशास्त्रज्ञताका फल	"	संनिपातज्वरमें पाचन	"
रोगादिक जाननेकी आवश्यकता	"	ज्वरमें पथ्य	"
देशकालआदिक जाननेकी आवश्यकता	"	वातज्वरका निदान और चिकित्सा	"
रोगहेतु वातादि दोष	"	वातज्वरका पाचन	१८१
रोगपरीक्षाके प्रकार	१७४	अन्नहीन औषधका गुण और	"
साध्यासाध्यका लक्षण	"	निषेधका विशेष वर्णन	"
साध्यादिक होनेका कारण	"	पाचन हुए औषधका लक्षण	"
उपद्रवका लक्षण	"	उल्लूनेवाले औषधका लक्षण	"
रोग निर्मूल करनेकी आज्ञा	१७५	पाचन होनेमें शेष रहे औषधका लक्षण	"
सूक्ष्म भी रोग शत्रुसमान है	"	भोजनके उपरांत देनेके औषधका गुण	१८२
रोगके फैलनेके प्रथम ही प्रती-कार करना	"	वातज्वरमें पंचमूलका काथ	"
व्याधियोंका प्रकार	१७६	पित्तज्वरके निदान और चिकित्सा	"
तीनप्रकारके व्याधियोंका प्रकार	"	रोध्रादि काथ	१८३
ज्वरकी व्यापकता	"	शक्ताहादि काथ	"
जातिपरत्वमें ज्वरकी असाध्यता	"	दुरालभादि काथ	"
ज्वरकी बलिष्ठता	"	पित्तपापडा काथ	"
मनुष्य ज्वर सह सकता है तिसका कारण	१७७	शुठ्यादि काथ	१८४
सर्वरोगमें ज्वरकी श्रेष्ठता	"	गुडूच्यादि काथ	"
पृथक् प्राणिभेदसे ज्वरके नामान्तर	"	ब्राक्षादि काथ	"
ज्वरके स्वरूपका लक्षण	१७८	दाहतृणमूर्च्छाके ऊपर विदार्यादिकोंका उपचार दाहज्वरका उपाय	"
ज्वरकी उत्पत्ति	"	ज्वरशोषकों उपाय	१८५
ज्वरकी निदानसहित संप्राप्ति	"	कफज्वरकी निदान और चिकित्सा	"
ज्वरके हेतु	१७९	कफज्वरका पाचन पिप्पल्यादि कल्क	"
प्रकट हुए ज्वरका लक्षण	"	व्याध्यादि कल्क	१८६
		वासादि काथ	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
आमलक्यादि काथ	१८६	भूनिंबादि काथ	१९३
पिप्पल्यादि काथ	"	बृहद्रास्त्रादि काथ	१९४
पिप्पलीका अवलेह	"	लघुरास्त्रादि	"
चातपित्तज्वरका निदान और चिकित्सा ..	"	त्रिवृतादि मलभेदन	"
चातपित्तज्वरका पाचन त्रिफलादिकाथ १८७		सन्निपातस्वेदहर	१९५
शालिपर्ण्यादि कल्क	"	नस्यविधान	"
किरातादि काथ	"	प्रघमनविधि	"
पंचभद्र काथ	"	अंजनविधि	"
पित्तकफज्वरका निदान और चिकित्सा ..	"	निष्ठीवनविधि	१९६
पित्तकफज्वरका पाचन शुण्वादिकाथ १८८		सन्निपातमें विशेषता	"
ब्राक्षादि काथ	"	कर्णमूलका निदान और चिकित्सा	१९८
गुडूच्यादि काथ	"	कर्णशोथ ऊपर लेप	"
अन्य गुडूच्यादि काथ	"	दूसरा लेप	"
पटोलादि काथ	१८९	व्रणरोपण औषध	१९९
अन्यपटोलादि काथ	"	कर्णशोथवालेको पथ्य	"
चातकफज्वरका निदान और चिकित्सा ..	"	अतर्दाहका कारण	२००
आरग्वधपंचक	"	अतर्दाहकी चिकित्सा	"
क्षुद्रादि पाचन	१९०	बाह्यदाहका कारण और चिकित्सा	"
पर्पटादि काथ	"	शरीर शीतल और आधा गरम होनेका	
दशमूल काथ	"	कारण और चिकित्सा	"
त्रिदोषज्वरका निदान और चिकित्सा ..	"	शीतल अंगमें गरम करनेकी चिकित्सा	२०१
त्रिदोषज्वरकी यशःप्राप्त चिकित्सा ..	"	गर्मीका उपचार	"
सन्निपातज्वरका लक्षण और चिकित्सा १९१		शीतत्वका उपचार	२०२
सन्निपातज्वरकी चिकित्सा	"	ज्वरादिकोंका कारण वायु है	"
दशांग काथ	१९२	ज्वरमुक्तिका लक्षण	"
भूनिंबादि काथ	"	ज्वर उतरनेका लक्षण	"
शुण्वादि काथ	"	ज्वर नहीं उतरनेका और लौट	
सुस्तादि काथ	१९३	आनेका लक्षण	"
बृहत्यादि काथ	"	विषमज्वरका लक्षण और चिकित्सा	२०३
शुण्वादि पाचन	"	एकाहिक ज्वरका लक्षण	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
तृतीयज्वरलक्षण	२०३	अतिसारका लक्षण	२१२
चातुर्थिकज्वरलक्षण.....	"	ज्वरातिसार	२१३
वेलाज्वरादिकका लक्षण	२०४	अतिसारकी चिकित्सा	"
भूतादिकसे उपजे रोग	"	ज्वरातिसारके ऊपर उत्पलपट्टक	"
निदिग्धिकादि काथ.....	"	शुठ्यादिकाथ	२१४
गुडपिप्पली	२०५	पाठादिकाथ	"
लघुपंचमूलकाथ	"	शुठ्यादिपाचन	"
जीर्णज्वरपर पटोलादि काथ	"	वत्सकादिकाथ	"
विषमज्वरका औषध.....	"	पंचमूलाकाथ	"
चातुर्थिक ज्वरका उपाय	"	उत्पलादिपाचन	२१५
चातुर्थिकपर नस्य.....	२०६	उशीरादिकाथ	"
विषमज्वरपर लशुनकल्क	"	जंघादिस्वरस	"
विषमज्वरपर अष्टांगधूप	"	काकमाचीका प्रयोग.....	२१६
वेलाज्वरआदिकोंका उपाय	"	जंघूलगादिका अवलेह	"
ज्वरनाशक हनुमानका पूजन	२०७	अतिसारका पूर्वस्वप.....	"
ज्वरनाशक मंत्र	"	वातातिसारका लक्षण और चिकित्सा ..	"
चारवर्णवाले ज्वरोंके चिह्न	२०८	अतिसारका पाचनकल्क	२१७
ब्राह्मण ज्वर	"	बालकादि कल्क	"
क्षत्रिय ज्वर	"	शालिपर्ण्यादि पानक	"
वैश्य ज्वर	"	तिंदुकादिरसपानक.....	"
शूद्र ज्वर	"	कुटजपुटपाक	२१८
ब्राह्मणज्वरका लक्षण और शांति	"	पित्तातिसारका लक्षण और चिकित्सा ..	"
क्षत्रियज्वरका लक्षण और शांति.....	२०९	शालिपर्ण्यादि पान	२१९
वैश्यज्वरका लक्षण और शांति	"	दशमूलका काथ	"
शूद्रज्वरका लक्षण और शांति	२१०	धान्यपंचकादि काथ	"
सर्वरोगोंपर उपचार	"	शाल्मलीमूलकल्क	"
ज्वरवालेको पथ्य आहारादि	"	कफातिसार लक्षण	"
ज्वरवालेको अपथ्य.....	२११	कफातिसारकी चिकित्सा	२२०
ज्वरमुक्तोंका वर्तना.....	"	ज्यूषणादिक पाचन.....	"
अतिसारचिकित्सा.....	२१२	कोलिंगादि कल्क.....	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
चत्सकादि काथ	२२०	गुल्मचिकित्सा	२२९
रक्तातिसारका लक्षण	"	गुल्मके भेद	२३०
धान्यादि काथ	२२१	गुल्मके निदान	"
दाडिमादि काथ	"	यकृद्गुल्मका लक्षण	२३१
गुडविल्वादियोग	"	शुंठ्यादिचूर्ण	"
चत्सकावलेह	"	क्षारामृत	"
कुटजादि चूर्ण	"	यकृद्रोगपर पाचन	२३२
सन्निपातके अतिसारका लक्षण और		यकृद्गुल्मपथ्य	२३३
चिकित्सा	"	निवादिकाथ	"
कुटजाष्टक	२२२	सौराष्ट्रिकादिकाथ	"
असृत्तवटक	"	धवादिकाथ	"
विल्वादि चूर्ण	२२३	कदलीजलपानक	"
गुदाके निकसनेको बंध करनेकी		विजोरा आदिक पान	२३४
चिकित्सा	"	खारका सेवन	"
अतीसारविशेषता	२२४	आमाजीर्णका उपाय	"
अतीसारका भेद संग्रहणीरोगका		दिवास्वापविधान	"
निदान और चिकित्सा	"	हरीतक्यादि अंजन विषूचीपर	२३५
ग्रहणीके प्रकार	२२५	राल्लादिभक्षण	"
ग्रहणीका उपद्रव तथा गुल्मादिकोंकी		स्वेदका उपयोग	"
संप्राप्ति	"	गंधकादिकभक्षण	"
गुल्मसंज्ञक ग्रहणीरोगका लक्षण	२२६	कृमिरोगके प्रकार और तिन्होंके भेद	"
चातकी संग्रहणीका लक्षण	"	जूमकी उत्पत्ति	२३६
पित्तकी संग्रहणीका लक्षण	"	कृमि उत्पन्न होनेका कारण	"
कफकी संग्रहणीका लक्षण	"	छःप्रकारके अंतर्गत कृमि	२३७
सन्निपातकी संग्रहणीका लक्षण	"	कृमिरोगका लक्षण	"
चातग्रहणीका पाचन	२२७	सूचीमुखकृमिका लक्षण	"
पित्तग्रहणीका पाचन	"	धान्यांकुसकृमिका लक्षण	२३८
शुंठ्याद्यमृतप्राशन	"	हारीतका ग्रन्थ	"
अभयाद्यवलेह	२२८	आत्रेयजीका उत्तर	"
द्राक्षादि पिण्डी	२२९	कृमिपातनका औषध	२३९

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
रुमिनष्टकरनेकी औषध	२३९	वृद्धिगु चूण	२५१
मंदाग्नि आदि अग्नियोंके निदान		पित्तशूलचिकित्सा	२५
और चिकित्सा	२४०	दाडिमादिचूर्ण	२५२
चार प्रकारके अग्निका लक्षण	२४१	जीवंत्यादि घृत	२५
चार प्रकारके अग्निका परिणाम विशेष	२४१	पित्तशूलका दूसरा उपचार	२५
जठराग्निकी चिकित्सा	२४२	पित्तशूलमें भोजन	२५
विषमाग्निकी चिकित्सा	२४३	कफशूलचिकित्सा	२५
तीक्ष्णाग्निकी चिकित्सा	२४३	त्रित्यादि काथ	२५३
हरीतक्यादियटी	२४४	मातुलुंगादि रस	२५
यवाना खांडवचूर्ण	२४४	तुवरादि चूर्ण	२५
अरोचक चिकित्सा	२४५	एरंडादि काथ	२५
शूलनिदान	२४५	वातपित्तशूलचिकित्सा	२५४
वातशूलकी उत्पत्ति	२४६	द्वारालभादि कल्क	२५
पित्तशूलनिदान	२४६	वातकफशूलचिकित्सा	२५
कफशूलकी उत्पत्ति	२४७	दारवादि काथ	२५
द्विदोषजशूलकी उत्पत्ति	२४७	त्रिदोषशूलचिकित्सा	२५५
दशप्रकारके शूल	२४८	सर्वशूलपर उपाय	२५५
शूलोंकी साध्यासाध्यपरीक्षा	२४८	शंखक्षार	२५
शूलोंकी संख्या और पृथक्करण	२४८	सामान्यसे सब शूलोंकी चिकित्सा	२५६
वातशूलका लक्षण	२४८	चित्रकादि मोदक	२५६
पित्तशूलका लक्षण	२४९	यवान्यादि चूर्ण	२५६
कफशूलका लक्षण	२४९	हिंवादिगुटी	२५७
द्वंद्वजशूलका कारण	२४९	शूलरोगके उपद्रव	२५७
सब प्रकारके शूलोंकी चिकित्सा	२४९	शूलमें पथ्यापथ्य	२५८
शूल तथा गुल्मपर हिंवादि काथ	२५०	पांडुरोगचिकित्सा	२५८
वातशूलपर हिंवादि काथ	२५०	पांडुरोगका निदान	२५८
सैधवादि चूर्ण	२५०	पांडुरोगका पूर्वरूप	२५९
हिंवादि चूर्ण	२५०	वातपांडुका लक्षण	२५९
तुंबुरु आदि चूर्ण	२५०	पित्तपांडुका लक्षण	२५९
एरंडादि काथ	२५०	कफपांडुका लक्षण	२५९

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
त्रिदोषजपांडुका लक्षण २९९	रसवृद्धिकारक औषध २६९
मट्टीखानेसे हुए पांडुका लक्षण ,,	मेदोवृद्धिकारक औषध ,,
लोहचूर्णवटी २६०	अस्थिवृद्धिकारक औषध ,,
शुंठ्यादिमिश्रित लोहचूर्ण ,,	शुक्रवृद्धिकारक औषध ,,
संडूकवटी ,,	बलादि चूर्ण २७०
वज्रमण्डूकवटक २६१	च्यवनप्राशननामक अवलेह २७१
दूसरा वज्रमण्डूकवटक ,,	अगस्ति हरीतकी पाक २७३
अमृतवटक २६२	बलाकाथ २७४
पांडुरोगका पथ्यापथ्य २६३	पिप्पलीवर्धमान ,,
क्षयरोगकी चिकित्सा ,,	शिलाजतुचूर्ण २७५
क्षयरोगमें पापरूपी कारण २६४	जीवत्यादि घृत ,,
क्षयरोगके हेतु ,,	पिप्पली आदि घृत २७६
क्षयरोगके प्रकार २६५	पंचकोल आदि घृत ,,
वातक्षयका निदान ,,	पाराशरघृत २७७
वातक्षयका लक्षण ,,	बला आदि घृत ,,
वातक्षयमें सेव्यपदार्थ ,,	चन्दनादि तैल २७८
पित्तक्षयके हेतु ,,	राजयक्ष्मारोगका निदान २७९
पित्तक्षयकी चिकित्सा २६६	राजयक्ष्माके लक्षण ,,
कफक्षयका कारण ,,	राजयक्ष्माका इलाज २८०
कफक्षयका लक्षण ,,	राजयक्ष्मावालेकी आयुष्यमर्यादा ,,
कफक्षयकी चिकित्सा ,,	अमृतप्राशन घृत २८१
त्रिदोषजक्षयकी चिकित्सा ,,	तालकाम्रातक २८२
धातु रस आदि सात ७ प्रकारके ,,	मुडूच्यादि चूर्ण ,,
क्षयरोगके लक्षण ,,	क्षयरोगपर पथ्यापथ्य ,,
रसक्षयका लक्षण २६७	रक्तपित्तका निदान और चिकित्सा २८३
मांसक्षयका लक्षण ,,	रक्तपित्तके उपद्रव २८५
मेदःक्षयका लक्षण ,,	रक्तपित्तका लक्षण ,,
अस्थिक्षयका लक्षण ,,	रक्तपित्तकी चिकित्सा २८६
वीर्यक्षयका लक्षण २६८	ऊर्ध्वरक्तका उपाय ,,
रसरक्तवृद्धिकारक औषध ,,	बासादि काथ ,,

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
निवकाथ अथवा अङ्गसाका काथ	२८६	गुदामें अर्शका स्थान ३००
वासाकी प्रशंसा "	अर्शकी चिकित्साका प्रकार "
तालीस चूर्ण २८७	अर्शरोगके उपद्रव "
अङ्गसाका काथ और कल्क "	असाध्यअर्श ३०१
नासामृतस्रधिरचिकित्सा २८८	पाचनकाथ "
हारितालकादि नस्य "	कल्कयोग "
आम्रादि नस्य "	पत्रकादिकाथ "
पण्डवादि नस्य २८९	पिप्पल्यादि योग ३०२
वासादि पानक "	वार्ताकयोग "
दाडिमादि रस "	भल्लातकचतुष्टय "
मुखमें प्रवृत्त हुए स्रधिरकी चिकित्सा "	कल्याणनामकलवण "
दाडिमपुष्पादि नस्य "	भल्लातक वटक ३०३
शतावरीघृत २९१	प्राणदेनेवाला मोदक "
मृद्वीका आदि घृत "	कांकायन गुटिका ३०४
कूष्मांडावलेह २९२	लवणोत्तमादि ३०५
अन्य कूष्माण्डका अवलेह २९३	एलादिगुटिका "
खंडकाद्यरसायन "	अर्शनाशकचतुःसम मोदक "
रक्तातिसारचिकित्सा २९५	त्रिकटुकाद्यमोदक "
योनिप्रवाहचिकित्सा "	मरिचाद्यमोदक ३०६
अर्शचिकित्सा २९६	सूरणपिंड "
अर्शके प्रकार "	भीमवटक "
वातार्शके हेतु और संग्राप्ति २९७	चव्याद्यघृत ३०७
पित्तार्शका हेतु "	पिप्पल्याद्यतैल "
कफार्शका हेतु "	मुस्ताद्यवटक ३०८
वातार्शका लक्षण २९८	भल्लातकगुड़ ३०९
पित्तार्शका लक्षण "	अन्यभल्लातकगुड़ "
कफार्शका लक्षण "	भल्लातकावलेह ३१०
त्रिदोषार्शका लक्षण "	रक्त बवासीरकी चिकित्सा ३११
गुदरोगलक्षण "	वर्तियोग ३१२
अर्शके स्थान २९९	देवादात्यादिलेप "

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
अश्वरोगपर शस्त्रादिकर्म	३१२	वात आदि दोषोंसे उपजी तृषाके	
अश्वरोगमें पथ्य	३१३	क्रमसे लक्षण	३२६
अथ खांसीकी चिकित्सा	३१४	त्रिदोषकी तृषाका लक्षण	३२७
कासरोगके हेतु	३१५	अन्यतृषाओंके लक्षण	३२८
कासरोगकी संप्राप्ति	३१६	असाध्य तृषाका लक्षण	३२९
कासरोगके प्रकार	३१७	वातकी तृषाकी चिकित्सा	३३०
वातसे उपजी खांसीका लक्षण	३१८	पित्तकी तृषाकी चिकित्सा	३३१
पित्तसे उपजी खांसीके लक्षण	३१९	कफकी तृषाकी चिकित्सा	३३२
कफकी खांसीके लक्षण	३२०	त्रिदोषकी तृषाकी चिकित्सा	३३३
त्रिदोषकी खांसीके लक्षण	३२१	तालुशोषकी चिकित्सा	३३४
क्षतजखांसीके लक्षण	३२२	दाडिमकोल	३३५
रक्तकी खांसीके लक्षण	३२३	तृषाआदिकोंकी साधारण चिकित्सा	३३६
सबप्रकारकी खांसियोंके लक्षण	३२४	मूर्छाकी संप्राप्ति	३३७
वातकी खांसीकी चिकित्सा	३२५	मूर्छाका लक्षण	३३८
कट्फल आदि औषध	३२६	वातज आदि मूर्छालक्षण	३३९
द्राक्षादि औषध	३२७	पित्तज मूर्छालक्षण	३४०
वालकादिकल्क	३२८	कफजमूर्छा	३४१
मुस्तादिचूर्ण	३२९	सन्निपातजमूर्छा	३४२
पित्तकी खांसीकी चिकित्सा	३३०	रक्तगंधजमूर्छा	३४३
लघुतालीस आदि औषध	३३१	मद्यादिजन्यमूर्छा	३४४
बृहत्तालीसाद्य औषध	३३२	मूर्छा, भ्रम, निद्रा और तन्द्रा इन्होंका	
छर्दिलक्षण	३३३	हेतु	३४५
वातछर्दिकी चिकित्सा	३३४	मूर्छाकी चिकित्सा	३४६
पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा	३३५	रक्तमूर्छा आदिकोंका उपाय	३४७
कफकी छर्दिकी चिकित्सा	३३६	नष्टसंज्ञमूर्च्छितकी चिकित्सा	३४८
एलादिचूर्ण	३३७	मूर्छा, मद, भ्रम इन्होंकी चिकित्सा	३४९
छर्दिकी शमनक्रिया	३३८	मूर्छादिकोंके साधारण उपाय	३५०
छर्दिरोगमें पथ्यापथ्य	३३९	निद्राचिकित्सा	३५१
तृषा और तालुशोषकी संप्राप्ति	३४०	मदात्ययचिकित्सा	३५२
		वातादिदोषजन्य मदात्यय	३५३

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
मदात्ययकी चिकित्सा	३३७	सोलह प्रकारके समान वायुके कोप ..	३६१
खुपारीके मदका निदान और चिकित्सा	३३८	सोलह प्रकारके अपान वायुके लक्षण ..	३६२
कोढ़ आदिसे उपजे मदात्ययकी चिकित्सा	३३९	अर्दित अर्थात् लङ्घाके लक्षण ..	३६३
दाहकी संप्राप्ति आदिक	३४०	द्वंद्वज अर्दितका लक्षण	३६४
दाहकी चिकित्सा	३४१	असाध्य अर्दित	३६५
मृगीरोगकी संप्राप्ति आदिक	३४२	अपान आदिक वातोंकी चिकित्सा ..	३६६
मृगी रोगकी चिकित्सा	३४३	स्नेहन नामक घृत	३६७
कूष्मांडलेह	३४४	निरूहण वस्ति	३६८
कूष्मांड घृत	३४५	पाचन तथा शमनका कथन	३६९
दीपघृत	३४६	सर्वांगवायुकी चिकित्सा	३७०
ब्राह्मीघृत	३४७	रसोनक योग	३७१
अन्य उपाय	३४८	वातको शमन करनेवाले काथ	३७२
ज्यूपणादि गुटिका	३४९	बला आदिक औषध	३७३
चंदनादि चूर्ण	३५०	बलाआदितैल	३७४
ब्राक्षावलेह	३५१	भृंगराजतैल	३७५
अन्य उपाय	३५२	आमपाककी चिकित्सा	३७६
उन्मादनिदान ..	३५३	नारायणनामकतैल	३७७
वातव्याधिचिकित्सा तहां सोलह		आमवातचिकित्सा	३७८
प्रकारकी शिरोगत प्राणवायुका		विष्टम्भी आमके लक्षण	३७९
प्रकोप	३५४	गुल्मीआमका लक्षण	३८०
सोलह प्रकारके उदान वायुके कोप	३५५	स्नेही आमके लक्षण	३८१
व्यानवायुके कोपके लक्षण	३५६	आमके लक्षण	३८२
समानवायुका प्रकोप	३५७	पकाम और सर्वांगआमके लक्षण ..	३८३
आक्षेपक वायुका लक्षण तथा अपतन्त्रक		पाचनविधि	३८४
वायुके लक्षण	३५८	आमवातरोगको शमनकरनेवाली	
अप्रतानक वायुका प्रकोप	३५९	औषध	३८५
एकांग वायु	३६०	आमवातमें वर्ज्य	३८६
एकांग पक्षघात वायु	३६१	गृध्रसीवातका निदान और लक्षण ..	३८७
क्षती तथा प्रतित्क्षती वायु ..	३६२	गृध्रसीवातकी चिकित्सा	३८८
व्यानवायुके कोपका लक्षण	३६३	वातरक्तका निदान और लक्षण	३८९

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
वातरक्तकी चिकित्सा	३६९	प्रमेहके लक्षण	३८५
अम्लपित्तका निदान	३७०	प्रमेहचिकित्सा	३८६
अल्मपित्तकी चिकित्सा	३७१	प्रमेहपिटिकाकी चिकित्सा	३८८
शोफचिकित्सा	३७१	प्रमेहमें पथ्यापथ्य	३८९
पुनर्नवादि काथ	३७३	प्रीतप्रमेहपर हरिद्रादि काथ	३९०
अन्य उपाय	३७४	पित्तप्रमेहपर कमलादि काथ	३९०
गुल्मनिदान और लक्षण	३७४	आमलक्यादिचूर्ण	३९१
गुल्मचिकित्सा	३७५	खादिगादि चूर्ण	३९१
शुंठ्यादि काथ	३७५	कुष्ठादि चूर्ण	३९१
स्नेह विधि	३७६	मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा	३९२
शुंठ्यादि पानक	३७६	मूत्ररोधचिकित्सा	३९२
विरुक्षण	३७७	मूत्रकृच्छ्रका कारण	३९३
वातगुल्मपाचन	३७७	मूत्रकृच्छ्रपर उपाय	३९३
पित्तगुल्म तथा कफके गुल्मका पाचन	३७८	अश्मरी अर्थात् पथरी रोगकी चिकित्सा	३९५
वातके गुल्ममें जुलाव	३७८	अश्मरीरोगपर चिकित्सा	३९६
पित्तके गुल्ममें जुलाव	३७८	एलादि काथ	३९७
कफगुल्मपर विरेचन	३७९	गोधुरकादि चूर्ण	३९७
क्षारपान	३७९	अन्य उपाय	३९७
अजमोदादि औषध	३८०	वृषणचिकित्सा	३९८
हिंवादिचूर्ण	३८०	वृषण वृद्धिपर चिकित्सा	३९८
पित्तगुल्मोदरचिकित्सा	३८१	विसर्ग रोगकी चिकित्सा	४०१
कफके गुल्मकी चिकित्सा	३८१	उपसर्ग चिकित्सा	४०१
वातकफके गुल्मकी चिकित्सा	३८१	मसूरिकाकी चिकित्सा	४०२
सन्निपातके गुल्मकी चिकित्सा	३८२	व्रणचिकित्सा	४०४
शोथचिकित्सा	३८२	जात्यादिघृत	४०७
शोथरोगमें वर्ज्य	३८३	क्षीपदरोगका निदान तथा लक्षण	४०८
रक्तगुल्ममें पाचन	३८३	अर्बुदरोगकी चिकित्सा	४०८
रक्तगुल्ममें पथ्य	३८४	द्वत तथा गंडमाला रोगका निदान और लक्षण	४०९
जलोदरका निदान तथा लक्षण	३८४		
जलोदररोगकी चिकित्सा	३८४		

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
लतागंडमाला चिकित्सा	४१०	कुंकुमादिघृत	४२५
कुष्ठचिकित्सा	४१२	भूदोषलक्षण	४२६
कुष्ठोंके सामान्यभेद और लक्षण	४१३	भूदोषकी चिकित्सा....	”
कुष्ठोंके नाम	”	नासारोगलक्षण	४२७
कपाल व उदुंबर कुष्ठलक्षण	”	नासारोगचिकित्सा....	४२८
मंडलकुष्ठ तथा गजचर्मकुष्ठका लक्षण	”	इंद्रलुप्तारोगका लक्षण	”
गोजिह्वकुष्ठलक्षण	४१४	इंद्रलुप्तारोगकी चिकित्सा	४२९
विपादिकाकुष्ठलक्षण	”	कर्णरोगलक्षण	४३०
वातादिजन्यकुष्ठका लक्षण	”	कर्णरोगकी चिकित्सा	४३१
रक्तस्थकुष्ठ	४१५	नेत्ररोगके लक्षण	४३२
मांसस्थ मेदस्थ तथा अस्थिस्थकुष्ठ	”	नेत्ररोगकी चिकित्सा	४३३
मज्जास्थ तथा शुक्रस्थ कुष्ठ	”	नेत्रके फूलेकी चिकित्सा ..	४३४
कुष्ठचिकित्सा :....	”	नेत्रपटलका लक्षण....	४३५
शुठ्यादि काथ	४१६	नेत्रपटलचिकित्सा....	”
गुडूच्यादि काथ	४१७	नेत्ररोगमें वर्ज्य	४३६
कुष्ठरोगमें लेपविधि....	”	मुखरोगकी चिकित्सा	”
खदिरादि काथ	४१८	ओष्ठरोगकी चिकित्सा	”
आरगवधादि काथ	”	दंतारोगलक्षण	४३७
खदिरादिघृतपानक....	”	दंतारोगचिकित्सा	”
भल्लातकतैल ...	४१९	जिह्वारोगलक्षण	४३८
तिलतैल	”	जिह्वारोगचिकित्सा....	”
हरिद्रादितैल	”	गलगंडरोगके लक्षण	४३९
निंबादिघृत	”	गलगंडरोगकी चिकित्सा	”
पांडुरकुष्ठकी चिकित्सा	४२०	गलशुडिकारोगके लक्षण	४४०
अथ शालाक्यतंत्र....	४२१	गलशुडिकारोगकी चिकित्सा	”
शिगोरोगचिकित्सा	”	नपुंसकके लक्षण	४४१
षट्त्रिंशुनामकतैल	४२४	शुक्रवृद्धिके उपाय	४४२
त्रिदुत्रयतैल	४२५	विदार्यादि औषध....	४४३
कुष्ठादिघृत	”	शुक्रवृद्धिमें वर्जित पदार्थ	”
काक्षादितैल	”	वन्ध्यारोगके लक्षण....	४४४

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
बन्ध्यारोगके दूरकरनेवाले औषध	४४५	बालकोंके पूतनाका दोष	४६१
त्रिदोषदूषितरजकी चिकित्सा	"	भूतविद्या	४६४
पित्तदूषितरजकी चिकित्सा	४४६	ग्रहदोषनाशक धूप....	४६७
कफदूषितरजकी चिकित्सा	"	भूतेश्वरमंत्र	"
स्त्रियोंके गर्भार्थ पथ्य	४४७	आवेश मंत्र	४६८
गर्भोपचारविधि	"	विषतंत्र	"
चलितगर्भचिकित्सा	४४९	मुखसिंचन मंत्र	४६९
गर्भोपद्रवचिकित्सा	४५०	कानमें जपनेके वास्ते मंत्र	"
मधुकादि कल्क	४५१	विषशमन औषध	४७०
गर्भोपद्रवमें उपचारकी शिक्षा	४५२	जंगमविषकी चिकित्सा	४७१
मूढगर्भचिकित्सा	"	विषबंधनमंत्र	"
मृतगर्भका लक्षण	४५३	लेप	४७२
वातिकमूढगर्भचिकित्सा	"	मंत्र	४७३
पैत्तिकमूढगर्भचिकित्सा	"	भिन्न अर्थात् शस्त्रआदिसे टूटे- हुएकी चिकित्सा	"
कफजमूढगर्भचिकित्सा	"	भिन्नअस्थिकी चिकित्सा	४७४
रक्तपित्तजमूढगर्भचिकित्सा	४५४	शल्योद्धारचिकित्सा	४७५
मूढगर्भमें शस्त्रचिकित्सा	"	अस्थिभग्नकी चिकित्सा	४७६
उत्पत्तिके उपायके वास्ते मंत्र और औषध ४५५	"	घृष्टहाड़की चिकित्सा	४७७
सुखसे बालक होनेके यत्न	"	क्षारफालित हाड़की चिकित्सा	४७८
मन्त्र	"	अभिघात अर्थात् चोट लगी हुईकी चिकित्सा	"
यंत्र	४५६	अग्निदग्ध चिकित्सा	४७९
मंत्र	"	धूमपानचिकित्सा ...	४८०
सूतिकासेगकी चिकित्सा	"		
स्त्रीके दूध बढ़ानेके उपाय	४५७		
बालरोगनिदान और चिकित्सा	४५८		
उत्कुलरोगकी चिकित्सा	४५९		
बालरोगचिकित्साके अन्य उपाय	"		
बालकोंकी वृद्धिको बढ़ानेवाले औषध ४६०	"		
बालकोंकी वाणीको करनेवाले औषध ४६१	"		
बालकोंके अपस्माररोगकी चिकित्सा ..	"		

इति तृतीयस्थानं समाप्तम् ।

अथ चतुर्थस्थानम् ।

तुलामानविधि....	४८१
अन्यमत	"

विषय.	पृष्ठ.	विषय.	पृष्ठ.
तैलपाकविधि	४८३	त्रिफलाकाथ	४९१
निरूहवस्तिर्कर्मविधि	४८४	हरडेके कल्प और वर्णोंका भेद	४९४
स्वेदनविधि	४८५	रसोनकल्प	४९६
रक्तावसेच फस्त खुलानेकी विधि	४८६	लहसुनके गुण	४९८
रक्तलक्षण	४८७	पेयरसोनविधि	"
जलौकाविचारविधि	"	गुग्गुलकल्प	५००
इन्द्रायुधके लक्षण	"	इति पञ्चमस्थानं समाप्तम् ।	
रोहिणीके लक्षण	"	अथ षष्ठं शारीरस्थानम् ।	
कालिका जोखके लक्षण	४८८	शारीराध्याय	५०३
धूम्रा जोखके लक्षण	"	नपुंसक तथा अपत्ययुग्मका विचार	५०७
जोख लगवानेका क्रम	"	नपुंसकका विचार	"
इति चतुर्थस्थानं समाप्तम् ।		गर्मका विवर्णन	५०८
अथ पंचमं कल्पस्थानम् ।		परिशिष्टाध्याय	५११
हरीतकीका कल्प	४८९		

इति हारीतसंहिताविषयानुक्रमिका समाप्ता ।



श्रीगणेशाय नमः ।

अथ हारीतसंहिता ।

भाषाटीकासमेता ।



प्रथमोऽध्यायः १.

मंगलाचरण ।

नत्वा शिवं परमतत्त्वकलाविह्वलं ज्ञानाभृतैकचटुलं
परमात्मरूपम् ॥ रागादिद्वेषशमनं दमनं स्मरस्य
शश्वत्क्षपाधिपधरं त्रिगुणात्मरूपम् * ॥ १ ॥

श्रीमद्देवीपदद्वंद्वं प्रत्यूहव्यूहनाशनम् ।

तन्नमामि नतिर्घ्यस्य वितरत्युत्तमां मतिम् ॥ १ ॥

शिवसहायपुत्रेण रविदत्तेन धीमता ।

हारीतसंहिताभाषाटीका रम्या विरच्यते ॥ २ ॥

परमतत्त्व रूप कलाको उत्पन्न करनेवाले, ज्ञानरूपी अमृतसे सुन्दर परमात्मरूप राग आदि
रोगोंको शांत, कामदेवको दम, निरंतर चन्द्रमाको मस्तकमें धारण करनेवाले, त्रिगुणात्मस्वरूप
महादेवजीको प्रणाम करके (यह हारीतसंहितानामक ग्रन्थ करता हूं) ॥ १ ॥ २ ॥

आत्रेयहारीतसंवाद ।

हिमवदुत्तरे कूले सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ शान्ते मृगगणाकीर्णे नाना-
पादपशोभिते ॥ २ ॥ तत्रस्थं तपसा युक्तं तरुणादित्यतेजसम् ॥
शुद्धस्फटिकवच्छुभ्रं भूतिभूषितविग्रहम् ॥ ३ ॥ जटाजूटाटवी-
मूले उषितं शुभ्रकुण्डलम् ॥ आत्रेयं बहुशिष्यैस्तु राजितं तपसा-
न्वितम् ॥ ४ ॥ पप्रच्छ शिष्यो हारीतः सर्वज्ञानमिदं महत् ॥ ५ ॥

१ 'विरुद्धोऽकुरिते जाते' इति मेदिनी । २ 'चटुलः सुन्दरोऽखिलाम्' इत्यमरः । * संहितां करोमीति
शेषेणान्वयः ।

सिद्ध और गन्धवोंसे सेवित, बाधाओंसे रहित, मृगोंके समूहसे व्याप्त और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे शोभित हिमालयपर्वतके उत्तर कूल पर बैठे ॥ २ ॥ तरुण सूर्यके समान तेजवाले, तपसे युक्त शुद्ध हुए विलौरी पत्थरके समान श्वेत और भूतिसे भूषित शरीर ॥ ३ ॥ जटाजूटरूपी वनके मूलमें वसनेवाले श्वेतकुंडलोंको धारण किये और बहुतसे शिष्योंसे शोभित, तपस्वी आत्रेयजी महाराजसे ॥ ४ ॥ हारीत नामके शिष्यने इस सम्पूर्ण महाज्ञानको पूछा ॥ ५ ॥

हारीत उवाच ॥ भवन् गुणगणाधार आयुर्वेदविदां वर ॥
विनयाद्विनीतोऽहं पृच्छामि मुनिपुङ्गव ॥ ६ ॥ कथं रोगसमुत्प-
त्तिरुत्पन्नो ज्ञायते कथम् ॥ उपचारः प्रचारश्च कथं वा सिद्धिमि-
च्छति ॥ ७ ॥ एतत्सम्यक्परिज्ञानं कथयस्व महामुने ॥ एवं
पृष्टो महाचार्यो हारीतेन महात्मना ॥ प्रत्युवाच ऋषिः पुत्रं
प्रहस्योत्फुल्ललोचनः ॥ ८ ॥

हारीत बोले—हे पूज्य ! हे गुणोंके समूहके आधार ! हे आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ !
हे मुनियोंमें उत्तम ! अशिक्षित मैं विनयसे पूछता हूँ ॥ ६ ॥ कैसे रोगकी उत्पत्ति होती है ?
उत्पन्न हुआ रोग कैसे जाना जाता है ? रोगकी चिकित्सा और पथ्य कैसे होता है ? और वही
रोग कैसे सिद्धिको प्राप्त होता है ? ॥ ७ ॥ हे महामुने ! इस परिज्ञानको अच्छी तरह कहो ।
इस प्रकार महात्मा हारीतसे पूछे गये खिले हुए नेत्रवाले महा आचार्य आत्रेयजी हँसकर शिष्य
हारीतसे बोले ॥ ८ ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥
चिकित्साशास्त्रकुशल वैद्यविद्याविचक्षण ॥ ९ ॥ आयुर्वेदमपा-
रन्तु श्लोकानां लक्षसंख्यया ॥ कथं तस्य परिज्ञानं कालेनाल्पेन
पुत्रक ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! हे महाप्राज्ञ ! हे सर्वशास्त्रोंमें कुशल ! हे चिकित्साशा-
स्त्रमें कुशल ! हे वैद्योंकी विद्याके जाननेवाले ! ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! श्लोकोंकी लक्ष संख्यासे युक्त
आयुर्वेद अपार है । उसका परिज्ञान थोड़े समयमें कैसे हो सकता है ? ॥ १० ॥

अल्पायुषोऽल्पवक्ताः स्वल्पशास्त्रविशारदाः ॥ अल्पावधारणे
शक्ताः कलौ जाता इमे नराः ॥ ११ ॥ अल्पः कलियुगश्चायं
नरोपद्रवकारणम् ॥ कथं पुत्र प्रवक्ष्यामि विस्तरेण तवा-
गमम् ॥ १२ ॥

अल्प आयुवाले और अल्प बोलनेवाले और स्वल्प अर्थात् थोड़े शब्दको जाननेवाले और थोड़ा धारण करनेवाले अर्थात् अल्पबुद्धि ये मनुष्य कलियुगमें उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥ यह कलियुग भी अल्परूप है परंतु मनुष्योंके उपद्रवोंका कारण है इसलिये हे पुत्र ! विस्तारसे तुमसे वैद्यक शास्त्र कैसे कहूँ ॥ १२ ॥

यस्य श्रवणकालो यो याति चान्तञ्च पुत्रक ! ॥ तस्माच्चाल्पत-
रेणाऽपि वक्ष्यामि शृणु साम्प्रतम् ॥ १३ ॥ चतुर्विंशसहस्रैस्तु
संयुक्ता चाद्यसंहिता ॥ तथा द्वादशसाहस्री द्वितीया संहिता-
मता ॥ १४ ॥ तृतीया षट्सहस्रैस्तु चतुर्थी त्रिभिरेव च ॥ १५ ॥
पञ्चमी दिक्पञ्चशतैः प्रोक्ताः पञ्चात्र संहिताः ॥ तस्माच्चाल्पत-
रेणापि वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ १६ ॥

जिस वैद्यकके सुननेका जो समय है वह तत्काल ही समाप्त हो जाता है अर्थात् दिन जाते देर नहीं लगता इसलिये इस समय मैं तुमसे संक्षेप ही में कहूँगा, सुनो ॥ १३ ॥ मैंने चौबीस हजार श्लोकोंसे युक्त प्रथम संहिता कही है और तैसे ही बारह हजार श्लोकोंसे संयुक्त दूसरी संहिता कही है ॥ १४ ॥ और तैसे ही छः हजार श्लोकोंसे युक्त तीसरी संहिता कही है और तीन हजार श्लोकोंसे संयुक्त चौथी संहिता कही है ॥ १५ ॥ और डेढ़ हजार अर्थात् पंद्रहसौ श्लोकोंसे संयुक्त पाँचवीं संहिता कही है। ऐसे पाँच संहिता मैंने कही हैं इसलिये हे पुत्र ! मैं संक्षेपसे कहूँगा तुम सुनो ? ॥ १६ ॥

येन विज्ञानमात्रेण गदवेदविदो भवेत् ॥ किमत्र बहुनोक्तेन चा-
ल्पसारे विशारद ॥ १७ ॥ येन धर्मार्थसौख्यं च तद्धि कर्म
समाचरेत् ॥ येन संजायते श्रेयो येन कीर्तिर्महत्सुखम् ॥ १८ ॥
तत्कर्म नितरां साध्यं जनानन्दविधायकम् ॥ १९ ॥

जिसके जानने मात्रसे आयुर्वेदको जाननेवाला मनुष्य हो जाता है। हे विशारद ! अल्प, आयु, बुद्धि और बलवाले इस कलमें अधिक कहनेसे लाभ ही क्या ? ॥ १७ ॥ जिस कर्मसे धर्म, अर्थ और सुख प्राप्त हो, जिससे कल्याण हो और जिससे कीर्ति तथा महा आनन्द प्राप्त हो वही कर्म करे ॥ १८ ॥ वह कर्म अवश्य कर जो मनुष्योंको आनन्द देनेवाला है ॥ १९ ॥

१ इस संहितामें १०३ अध्याय और ३९१७ श्लोक हैं। मेरी समझमें यह ३ हजार श्लोकवाली संहिता है। १५ वें इसी श्लोकके अनुकूल इस संहितामें सैकड़ों श्लोक एक या दो चरणके ही श्लोक पूर्ण माने गये हैं। वही सब मिलकर ९१७ हो गये हैं। इनमें भी बहुत कुछ सुधारने योग्य सुधारे गये हैं।

एकं शास्त्रं वैद्यमध्यात्मकं वा सौख्यं चैकं यत्सुखं वतपो वा ॥
 वन्द्यश्चैको भूपतिर्वा यतिर्वा एकं कर्म श्रेयसं वा यशो वा ॥२०॥
 बहुतरमुपचारात् सारमाधारलोके जननमतिसुखानां वद्धनं
 श्रेयसां वा ॥ विगतकलुषभावा चोज्ज्वला कीर्तिमूर्तिर्न खलु
 कुटिलतास्याः श्रूयते लोकवृन्दैः ॥ २१ ॥

एक ही शास्त्र ठीक है, वैद्यक अथवा वेदांत और सुख भी एक ही ठीक है, भोग अथवा
 तप, वंदनाके योग्य भी एक ही ठीक है, राजा अथवा संन्यासी, कर्म भी एक ही ठीक है,
 कल्याण अथवा यश ॥ २० ॥ इस संसारमें चिकित्सा करनेसे अपने और दूसरोंके सुखोंको
 देनेवाला, कल्याणके बढ़ानेवाला बहुत सा लाभ होता है । कलुषतासे हीन, उज्ज्वल कीर्ति प्राप्त
 होती है । रसकी कुटिलता मनुष्योंके द्वारा कहीं नहीं सुनी जातीः ॥ २१ ॥

आयुर्वेदमिदं सम्यङ् न देयं यस्य कस्यचित् ॥ २२ ॥ नाभ-
 क्तायाप्यशान्ताय न मूर्खाय न चाधमे ॥ शान्ते देयं न देयं
 स्यात् सर्वथा नाधमेऽधने ॥ २३ ॥

अच्छी तरहसे यह आयुर्वेद हर एक मनुष्यको नहीं देना चाहिये ॥ २२ ॥ अभक्त, शान्त, मूर्ख
 और नीचको कभी न दे । शान्त पुरुषको दे । नीचप्रकृति और कंगालको न देना चाहिये ॥ २३ ॥

धर्मिष्ठः कुहनाविवर्जितमनः शान्तः शुचिः शुद्धधीधीरो-
 ऽभीरुविवेकसारहृदयो विद्याविलासोज्ज्वलः ॥ प्राज्ञो रोगगणप्र-
 चारनिपुणोऽलुब्धः सदा तोषधृगित्थं सर्वगुणाकरो नृपजनैः
 पूज्यः सदा रोगवित् ॥ २४ ॥

धर्ममें स्थित, कपटसे वर्जित मन, शांत, पवित्र, शुद्धः बुद्धि, धीर, निर्भय, विवेकके सारसे
 संयुक्त हृदय, विद्याके आनंदसे प्रकाशित, पंडित, रोगोंके समूहके प्रचारमें, निपुण, निर्लोभी, सब
 कालमें संतोषको धारनेवाला और सब गुणोंका खजाना वैद्य राजालोगोंका पूज्य होता है ॥ २४ ॥

दृष्ट्वा यथा मृगपतिं गजयूथनाथः संशुष्कमानमदबिन्दुकपोल-
 धारस्त्यक्त्वा वनं व्रजति चाकुलमानसेन दृष्ट्वा तथा गदगजो

भिषजं प्रयाति ॥२५॥ यद्वत्तमोवृतमिदं भुवनं संयूखैः प्राका-
श्यमाशु कुरुते सकलं रविस्तु ॥ तद्वत्सुवैद्य उपलभ्य रजो-
ऽतिनाशं शीघ्रं करोति गदिनं गदमुक्तभारम् ॥ २६ ॥

जैसे सिंहको देखके हस्तियोंके समूहके स्वामीकी मदविंदुओंकी धारा गंडस्थलमें ही सूख जाती है और वह हाथी उस वनको त्याग व्याकुल मन करके भागता है तैसे वैद्यको देख कर रोगरूपी गजराज गमन करता है ॥ २५॥ जैसे अन्धकारसे आच्छादित इस समस्त संसार-को सूर्य अपनी किरणोंसे प्रकाशित कर देता है तैसे ही सुवैद्य रोगको नाशकर रोगीको रोगके भारसे छुड़ा देता है ॥ २६ ॥

लुब्धः क्रूरः शठजठरको मद्यपश्चालसश्चाधीरो भीरुर्विकलहृदयो
हीनकर्मार्थमन्दः ॥ शास्त्रज्ञाताऽप्यविदितगदज्ञानपाखण्डखण्डो
वज्र्यो वैद्यः प्रबलमतिभिर्भूमिपैर्वा सुदूरात् ॥ २७ ॥

लोभी, हिंसक, शठ, कठोर, मदिरा पीनेवाला, आलसी, अवीर, डरनेवाला, विकल हृदय, हीनकर्मवाला, कैंगल, वैद्यक न जाननेवाला, पाखंडी ऐसा वैद्य यदि अन्यशास्त्रोंके जाननेवाला भी हो तो भी उसको अच्छी बुद्धिवाले राजाओंको दूर रखना चाहिये ॥ २७ ॥

वैद्यशास्त्रपठनविधि ।

अद्भुतं चाप्यशङ्कश्च नात्युच्चं नीचमेव च ॥ यः पठेच्छास्त्रमि-
त्थञ्च शास्त्राप्तिस्तस्य दृश्यते ॥ २८ ॥ चर्वणं गिलनं चापि
कम्पितं श्वसितं तथा ॥ नीचोच्चं चैव गम्भीरं वर्जयेत्पाठकेनतु २९

जो विचार विचार कर वे खौफ न अति उच्चस्वरमें न अति नीचस्वरमें पढ़ता है, उसे शास्त्रकी प्राप्ति होती है ॥ २८ ॥ चाबना, निगलना, काँपना, अतिश्वास लेना, नीचापना, ऊँचापना और गंभीरपना विद्यार्थीको छोड़ देना चाहिये ॥ २९ ॥

अनध्याये न शास्त्रस्य नोत्सवे यज्ञकर्मसु ॥ जातके सूतके चाथ
पठनं न विधीयते ॥ ३० ॥ चतुर्दश्यष्टमीदर्शप्रतिपत्पूर्णिमास्तथा ॥
वज्र्याः पञ्च इमाः पाठे मुनिभिः परिकीर्तिताः ॥ ३१ ॥ अकाले
दुर्दिने गर्जे दिग्दाहे भूमिकम्पने ॥ शास्त्रपाठस्तथा वज्र्यो ग्रहणे

चन्द्रसूर्ययोः ॥ ३२ ॥ अनध्याया द्वादशैते प्रोक्ताः शृणु तु पुत्रक ॥
 गुरुपीडासमुत्पन्ने नृपे संपीडितेऽथवा ॥ ३३ ॥ आहवे जीवस-
 म्पाते प्रदोषे वाऽथवा पुनः ॥ राष्ट्रपीडासमुत्पन्ने न कुर्याच्छा-
 स्त्रपाठनम् ॥ ३४ ॥ एतैस्तु पठितं शास्त्रं न स्वार्थे सिद्धिसाध-
 कम् ॥ न श्रेयसे न माङ्गल्ये नोपकारे सुखावहम् ॥ ३५ ॥

अनध्याय, उत्सव, यज्ञकर्म, जन्मका सूतक और मृतसूतकमें शास्त्रको नहीं पढ़ना चाहिये ॥ ३० ॥ चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, प्रतिपदा, पूर्णिमा ये पाचों तिथियां मुनिजनोंने पढ़नेमें वर्जी हैं ॥ ३१ ॥ अकाल, दुर्दिन, गज्जना, दिग्दाह, भूमिकंप अर्थात् भूचाल, चंद्रमाका ग्रहण और सूर्यके ग्रहणमें शास्त्रका पढ़ना वर्जित है ॥ ३२ ॥ हे पुत्र ! बारह अनध्याय कहे हैं, तुम सुनो । गुरुके पीडा उत्पन्न होनेपर, राजाके पीडित होनेपर ॥ ३३ ॥ युद्ध, जीवोंके मरनेपर, प्रदोष, देशके दुःखित होनेपर ॥ ३४ ॥ इन अनध्यायोंमें पठित किया शास्त्र अपने प्रयोजनमें सिद्धिको नहीं देता और कल्याणको नहीं करता और मंगलको नहीं देता और उपकारमें सुखको नहीं देता ॥ ३५ ॥

एवं ज्ञात्वा पठति निपुणो वैद्यविद्यानिधानं श्रेयस्तस्य प्रतिदिन-
 मसौ वाञ्छितार्थं प्रपद्येत् ॥ कीर्तिः सौख्यं भवति नितरां तस्य
 लोकप्रशंसा पूज्यो राज्ञां सततमपि वै जायते स्वार्थसिद्धिः ॥ ३६ ॥
 इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे वैद्यगुणदोषशास्त्रपठनवि-
 धिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऐसे जानके जो कुशल वैद्य शास्त्रका पठन करता है उसको कल्याण मिलता है और नित्यप्रति मनोवांछित प्रयोजन प्राप्त होता है और उस वैद्यको नित्यप्रति सुख होता है, संसारमें कीर्ति और प्रशंसा प्राप्त होती है और अपने प्रयोजनकी सिद्धि होती है और ऐसे पठन करने-
 वाला पंडित राजा लोगों करके निरंतर पूजनेके योग्य है ॥ ३६ ॥ इति वेरीनिवासि-बुध-
 शिवसहायतनयवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादित-हारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने वैद्यगुणदोष-
 शास्त्रपठनविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

चिकित्सासंग्रह ।

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि शास्त्रस्यास्य समुच्चयम् ॥

आयुर्वेदसमुत्पत्तिं सर्वशास्त्रार्थसंग्रहम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—इस पहले अव्यायको कहकर अब दूसरे अध्यायमें इस शास्त्रके समुच्चय आयुर्वेदकी समुत्पत्ति और सब शास्त्रोंके अर्थके संग्रहको कहूंगा ॥ १ ॥

अष्टौ चात्र चिकित्साश्च तिष्ठन्ति भिषजां वर ॥

ता वक्ष्यामि समासेन चिकित्साश्च पृथक्पृथक् ॥ २ ॥

हे वैद्योंमें श्रेष्ठ ! इस ग्रन्थमें आठ प्रकारकी चिकित्सायें स्थित हैं, सम्पूर्णतासे उन्हें और भांति भांतिकी चिकित्सायें कहूंगा ॥ २ ॥

संग्रहस्य प्रवक्ष्यामि प्रथमं चान्नपानकम् ॥ अरिष्टं च द्वितीयं

स्यात्तृतीयं च चिकित्सितम् ॥ ३ ॥ कल्पं चतुर्थकं प्रोक्तं सूत्र-

स्थानन्तु पञ्चमम् ॥ षष्ठं चात्र शरीरं स्यादित्यायुर्वेदकारकाः

॥ ४ ॥ शल्यशालाक्यकायाश्च तथा बालचिकित्सितम् ॥ अगदं

विषतन्त्रश्च भूतविद्या रसायनम् ॥ वाजीकरणमेवेति चिकित्सा

चाष्टधा स्मृता ॥ ५ ॥ वैद्यागयेषु सर्वेषु प्रोक्तं श्रेष्ठमिदं महत् ॥

तथा चाष्टौ चिकित्सायां वदन्ति वेदविज्जनाः ॥ ६ ॥

संग्रहके अन्नपाननामक प्रथमस्थान, अरिष्ट नामवाले दूसरे स्थान और चिकित्सित नामवाले तीसरे स्थानको कहूंगा ॥ ३ ॥ कल्प नामवाला चौथा स्थान है, सूत्रस्थान पाँचवाँ है, शारीर-स्थान छठा है ऐसा आयुर्वेदको करनेवाले कहते हैं ॥ ४ ॥ शल्य, शालाक्य, कायचिकित्सा, बालचिकित्सित, अगद, विषतन्त्र, भूतविद्या, रसायन, वाजीकरण इसतरह चिकित्सा आठ प्रकारसे कही है ॥ ५ ॥ वैद्योंके सब ग्रन्थोंमें यह उत्तम और बड़ा ग्रन्थ माना है तथा आयुर्वेदज्ञोंने चिकित्सामें यह आठ प्रकारकी चिकित्सा श्रेष्ठ कही है ॥ ६ ॥

यन्त्रशस्त्राग्निक्षारणामौषधं पथ्यमेव च ॥

स्वेदनं मर्दनं चैव कथितान्युपकारिणाम् ॥ ७ ॥

यन्त्रकर्म, शस्त्रकर्म, अग्निर्कर्म, क्षारकर्म, औषध, पथ्य, स्वेदन और मर्दन यह आठ श्रेष्ठ चिकित्सायें उपकार करनेवाली चिकित्साओंमें श्रेष्ठ कही गयी है ॥ ७ ॥

एतैर्वैद्यकशास्त्रस्य सारो भवति सर्वतः ॥ ८ ॥

इन्हीं आठोंसे वैद्यक शास्त्रका सब ओरसे काम निकल आता है ॥ ८ ॥

अथ शल्यतन्त्र ।

यन्त्रशस्त्रार्थबन्धैस्तु येन चोद्ध्रियते भिषक् ॥ तच्च शल्योद्धरणकं
श्रोच्यते वैद्यकागमे ॥ नाराचवालवल्लीभिर्भल्लैः कुन्तैश्च तोमरैः
॥ ९ ॥ शिलाग्निभिन्नगात्रस्य तत्र साय्यादिशल्यकम् ॥ १० ॥
तत्प्रतीकारकरणं तच्च शल्यचिकित्सितम् ॥ तथा बाणसमु-
द्दिष्टतृणपांशुकृमीकचम् ॥ रक्तवस्तु तथा पेशी पूयं शेषान्तरेऽपि
यत् ॥ ११ ॥ तच्छल्यमिति जानीयाल्लोष्ठकाष्ठविभिन्नकम् ॥ १२ ॥

वैद्य यंत्र, शस्त्रार्थबन्धनोंसे तथा जिस शल्यसे रोगको दूर करता है, वैद्यक शास्त्रमें उसे शल्यो-
द्धरण कहा जाता है । बाण, केश, वल्ली, भल्ली, कुन्त और तोमरोंसे शिला और अग्निसे भिन्न
गात्रवाले पुरुषके शरीरमें प्राप्त शल्यके निकालनेका उपाय करना शल्यचिकित्सा कहलाता
है ॥ ९ ॥ १० ॥ और बाण अर्थात् तीरका उद्देश लेके कहा हुआ तृण, फांस, कीड़ा, बाल, आदि
लाल चीज, मांसकी पेशी, राद और शेष अन्तरमें जो कुछ हो और लोहा, लकड़ी आदि जो
है इन सबोंको शल्य जानना वह शल्यतंत्र है ॥ ११ ॥ १२ ॥

अथ शालाक्य ।

शिरोरोगा नेत्ररोगा कर्णरोगा विशेषतः ॥ अकण्ठशंखमन्यासु
ये रोगाः सम्भवन्ति हि ॥ १३ ॥ तेषां प्रतीकारकर्म नासावर्त्य-
जनानि च ॥ अभ्यङ्गं मुखगण्डूषक्रियाशालाक्यनामिका ॥ १४ ॥
इति शालाक्यं नाम ॥

अथ शालाक्य तंत्रका लक्षण-शिरके रोग, नेत्रोंके रोग, कानके रोग और विशेष
करके श्रुकुटी, कनपटी और कंधामें उत्पन्न जो रोग ॥ १३ ॥ उनके दूर करनेके लिये जो
नस्यकर्म, अंजन, अभ्यंग अर्थात् मालिस, गंडूष अर्थात् कुल्ले करना आदि क्रिया ये सब शालाक्य
कहलाते हैं ॥ १४ ॥

अथ कायचिकित्सा ।

कषायचूर्णगुटिकाः पञ्चानां शोधनानि च ॥

कोष्ठामयानां शमनी क्रिया कायचिकित्सितम् ॥ १५ ॥

अथ कायचिकित्साका लक्षण—काढ़ा, चूरन और गोली स्वेदन, स्नेहन, वमन, विरेचन और वस्ति कर्म ये सब और कोष्ठके रोगोंको शांत करनेवाली क्रिया कायचिकित्सित कहाती है ॥ १५ ॥

अथ अगदोंके नाम ।

गुदास्यं वस्तिरुजं शमनं वस्तिरूहकम् ॥

आस्थापनानुवासन्तु अगदं नाम एव च ॥ १६ ॥

अथ अगदतंत्रलक्षण—गुदाके रोग और मूत्राशयके रोगको शांत करना, निरूहवस्ति, आस्थापन वस्ति, अनुवासन वस्ति ये सब अगदतन्त्रनामसे विख्यात हैं ॥ १६ ॥

अथ बालचिकित्सा ।

गर्भोपक्रमविज्ञानं सूतिकोपक्रमस्तथा ॥

बालानां रोगशमनी क्रिया बालचिकित्सितम् ॥ १७ ॥

अथ बालचिकित्सितका लक्षण—गर्भके मलीमांति आरम्भका सूतिकाकी चिकित्साका विज्ञान और बालकोंके रोगको शमन करनेवाली क्रिया बालचिकित्सा कहलाती है ॥ १७ ॥

अथ विषतन्त्रके नाम ।

सर्पवृश्चिकलूतानां विषोपशमनी तु या ॥

सा क्रिया विषतन्त्रश्च नाम प्रोक्ता मनीषिभिः ॥ १८ ॥

अथ विषतन्त्रका लक्षण—सांप, वीछू और मकड़ीके विषको शांत करनेवाली क्रिया बुद्धिमानोंसे विषतन्त्र नामकी कही जाती है ॥ १८ ॥

अथ भूतविद्याकानाम ।

ग्रहभूतपिशाचाश्च शाकिनीडाकिनीग्रहाः ॥

एतेषां निग्रहः सम्यग्भूतविद्या निगद्यते ॥ १९ ॥

अथ भूतविद्याका लक्षण—ग्रह, भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, ग्रह इनका अच्छी तरह निग्रह करना भूतविद्या कहाती है ॥ १९ ॥

अथ वाजीकरण ।

क्षीणानां चाल्पवीर्याणां बृंहणं बलवर्द्धनम् ॥

तर्पणं समधातूनां वाजीकरणमुच्यते ॥ २० ॥

१ 'ज्ञात्वारम्भ उपक्रमः, प्रक्रमः स्यादुपक्रमः, उपायपूर्व आरम्भ उपधा चाप्युपक्रमः' इत्यमरः ।

२ ग्रहशब्दभ्य पुनरुक्त्या बालग्रहाणां सूर्यादीनां च ग्रहणम् ।

अथ वाजीकरणका लक्षण-क्षीण हुए और अल्प वीर्यवाले मनुष्योंको पुष्ट करना और बलको बढ़ाना और समान धातुवालोंको तृप्त करना यह वाजीकरण कहाता है ॥ २० ॥

अथ रसायन तन्त्र ।

देहस्येन्द्रियदन्तानां दृढीकरणमेव च ॥ वलीपलितस्वालित्यवर्जनेऽपि च या क्रिया ॥ २१ ॥ पूर्ववैद्यप्रणीतं हितद्रसायनमुच्यते ॥ २२ ॥

अथ रसायनका लक्षण-शरीर, इंद्रिय और दंतोंको दृढ करना और शरीरकी वली, वालोंकी सफेदी और चँदुआपनको हटानेवाली जो क्रिया ॥ २१ ॥ और पूर्ववैद्य धन्वन्तरि आदिका बनाया वह रसायनके नामसे कहा जाता है ॥ २२ ॥

अथ उपांगचिकित्सा ।

छिन्नं भिन्नं तथा भग्नं क्षत पिञ्चितमेव च ॥

तेषां दग्धप्रतीकारः प्रोक्तश्चोपाङ्गसंज्ञकः ॥ २३ ॥

अथ उपांगचिकित्साका लक्षण-छिन्न अर्थात् छेदित हुआ, भिन्न अर्थात् विदारित हुआ, भग्न अर्थात् टूटा हुआ, क्षत अर्थात् घाव आदि, पिञ्चित अर्थात् पिचलित हुआ, दग्ध अर्थात् जला हुआ इनकी चिकित्साको उपांगसंज्ञक कहते हैं ॥ २३ ॥

इति वैद्यकसर्वस्वं चिकित्सागमभूषणम् ॥

पठित्वा तु सुधीः सम्यक्प्राप्स्यते सिद्धिसङ्गमम् ॥ २४ ॥

इति वैद्यकसर्वस्वे चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ऐसे चिकित्सारूपी शास्त्रसे भूषित हुआ वैद्यकसर्वस्व वैद्य अच्छी तरह पढ़के सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादितहारीतसंहिताभाषा-टीकायां प्रथमस्थाने चिकित्सासंग्रहो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

वैद्यशिक्षाविधान ।

अथ वक्ष्यामि रोगाणामुपचारक्रमं तथा ॥

जानाति यो बुधः सम्यक् पूज्यते नृपसत्तमैः ॥ १ ॥

अथ रोगोंके चिकित्साक्रमके लक्षण-इसके अनंतर रोगोंकी चिकित्साके क्रमको कहेंगा जो पंडित इसको अच्छी तरह जानता है वह राजालोगोंसे पूजित होता है ॥ १ ॥

उपचारकरनेकी योग्यता ।

ज्ञात्वा रोगसमुत्पत्तिं रोगाणामप्युपक्रमम् ॥

ज्ञात्वा प्रतिक्रियां वैद्यः प्रतिकुर्याद्यथोचिताम् ॥ २ ॥

कुशल वैद्य रोगकी उत्पत्ति, रोगोंके पथ्य आदि और चिकित्साको जानके पश्चात् यथोचित प्रतिकार करे ॥ २ ॥

देश-काल आदिका ज्ञान ।

देशं कालं वयो वृद्धिं सात्त्विकप्रकृतिभेषजम् ॥

देहं सत्त्वं बलं व्याधेर्दृष्ट्वा कस्य समाचरेत् ॥ ३ ॥

देश, समय, अवस्था, जठराग्नि, सानुकूलता, प्रकृति, औषध, देह, सत्त्व, और रोगका बल देखके पीछे चिकित्साका आरंभ करे ॥ ३ ॥

उपचारकरनेका फल ।

धर्मार्थकामलाभः स्यात् सम्यगातुरसेवनात् ॥

यदा नाचरतस्तस्य विनाशश्चात्मनस्तदा ॥ ४ ॥

रोगीकी अच्छी तरह चिकित्सा करनेसे धर्म, अर्थ, और कामकी प्राप्ति होती है । जो वैद्य रोगीकी चिकित्सा नहीं करता उस वैद्यके शरीरका नाश हो जाता है ॥ ४ ॥

वैद्यका वैद्यत्व ।

व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः ॥

एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः ॥ ५ ॥

रोगके तत्त्वको जानना, पीड़ाका नाश करना, वैद्यका यही वैद्यपना है और आयुका मालिक वैद्य नहीं है ॥ ५ ॥

दो प्रकारका उपचार-उपक्रम ।

द्विविधोपक्रमश्चैव शमनः कोपनो रुजाम् ॥

तथैव ज्ञात्वा विबुधः क्रियां कुर्याद्विचक्षणः ॥ ६ ॥

चिकित्सा २ प्रकारकी है, एक शमन दूसरी कोपन । सो रोगको जानके कुशल वैद्य क्रियाको करे ॥ ६ ॥

दो प्रकारके वैद्य ।

वैद्योऽपि द्विविधो ज्ञेयो विकारेऽङ्गितरोगयोः ॥ उपचारापचारज्ञो

द्विविधः प्रोच्यते भिषक् ॥ ७ ॥ उपचारेण शमनमपचारेण

कोपनम् ॥ एवं विज्ञाय सदैवः कुर्यात् संशमनक्रियाम् ॥ ८ ॥

वैद्य भी १२ प्रकारका है, रोगके उपचार अर्थात् चिकित्साको जाननेवाला और रोगके अपचार अर्थात् दुष्परिणामको जाननेवाला ऐसे दो प्रकारका वैद्य कहा है ॥ ७ ॥ उपचारसे रोगकी शांति होती है, अपचारसे रोगका कोप होता है, कुशलवैद्य ऐसा समझकर संशमन अर्थात् रोगको शांत करनेवाली क्रिया करें ॥ ८ ॥

व्याधिके साध्य और असाध्यका विचार ।

साध्योऽसाध्यश्च याप्यश्च कृच्छ्रसाध्यस्तथैव च ॥ व्याधिश्चतुर्विधः प्रोक्तः सद्बैद्यैः शास्त्रकोविदैः ॥ ९ ॥ उपचारेण साध्या ये रोगा गच्छन्ति याप्यताम् ॥ याप्यास्त्वसाध्यतां यान्ति साध्यः कष्टेन पुत्रक ॥ १० ॥ सम्भवन्ति महारोगाः कष्टसाध्या ध्रियन्ति वै ॥ एवं चतुर्विधो व्याधिर्ज्ञात्वा कर्म समाचरेत् ॥ ११ ॥

साध्य, असाध्य, याप्य, कष्टसाध्य इन भेदोंसे रोग भी ४ प्रकारके कुशल वैद्योंने कहे हैं ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! चिकित्साके नहीं करनेसे साध्यरोग याप्यपनेको प्राप्त होते हैं और याप्य रोग असाध्यपनेको प्राप्त होते हैं साध्य कष्ट करके ॥ १० ॥ महारोग होते हैं और कष्टसाध्य रोगवाले मर जाते हैं इस तरह व्याधि चार प्रकारकी जानकर कर्मका आचरण करें ॥ ११ ॥

उपचारका फल ।

उपचारकृता दोषाः कृच्छ्रास्त यान्ति याप्यताम् ॥ याप्याः साध्यत्वमायान्ति कष्टसाध्यं भवेद्भुवम् ॥ १२ ॥ सुखसाध्यः सुखी शीघ्रं स्यात् सुधीभिरुपक्रमैः ॥ साध्यासाध्यपरिज्ञाने ज्ञात्वोपक्रमणं तथा ॥ १३ ॥

चिकित्साके करनेसे कष्टसाध्य रोग याप्यपनेको प्राप्त होते हैं और याप्य रोग साध्यपनेको प्राप्त होते हैं ऐसे कष्टसाध्यकी व्यवस्था है ॥ १२ ॥ सुबघोंकी चिकित्सासे सुखसाध्य रोगी शीघ्र सुखी होजाता है । इसलिये साध्य और असाध्यके परिज्ञानको जानकर पीछे चिकित्सा करें ॥ १३ ॥

दोषके शेष रहजानेसे हानि ।

साध्य गतो यदा रोगो दोषशेषं न धारयेत् ॥ दोषशेषेऽपि कष्टं स्यात्तस्माद्यत्नान्निकृन्तयेत् ॥ १४ ॥ यथा हि कालो दुष्टः स्यात् सूक्ष्मोऽग्नश्च यथा कणः ॥ स्वल्पस्तद्वत् क्रियाप्राप्तो गदो घोर-

तरो भवेत् ॥ १५ ॥ तथा दोषस्य शेषे तु शमनं याति चाल्पशः ॥

दैवाद्यदुष्टतां याति यथाग्निः कुपितो भृशम् ॥ १६ ॥

जब साध्य रोग हो तब वात आदि दोषके शेषको नहीं धारण करना क्योंकि दोषके बाकी रहनेमें कष्ट हो जाता है इसलिये दोषका नाश कर दे ॥ १४ ॥ जैसे काल दुष्ट होता है जैसे अग्निका सूक्ष्म किनका बढ़ जाता है तैसे क्रियाको नहीं प्राप्त हुआ स्वल्प भी रोग अतिघोर हो जाता है ॥ १५ ॥ दोषके शेषमें अतिअल्परोग शांत हो जाता है परंतु दैवयोगसे यदि फिर दूषित होजाता है तो दवे अग्नि ही के समान कुपित होता है ॥ १६ ॥

अपथ्यसे हानि ।

यथा काष्ठचय दूरात् प्राप्य घोरतरोऽग्निकः ॥ तथा पथ्यस्य
संयोगाद्भवद्घोरतरो गदः ॥ १७ ॥ कषायैश्च फलैश्चूर्णैः
पिण्डलेहादुवासनैः ॥ सर्वाः क्रिया भृशं व्यर्था न शमं याति
चामयः ॥ १८ ॥

जैसे काष्ठके समूहमें दूरसे प्राप्त हुआ अग्नि भयंकर होजाता है तैसे अपथ्यके संयोगसे रोग भी अतिघोर हो जाता है ॥ १७ ॥ काढा, फल, चूरन, गोली, चटनी, अनुवासन वस्तिकर्म इनकी सब क्रियायें व्यर्थ होजाती और रोग शांत नहीं होता है ॥ १८ ॥

एवं ज्ञात्वा सदा वैद्यै रोगशान्तिककारणम् ॥

कर्तव्यमतियोगेन येन रोगः प्रशाम्यति ॥ १९ ॥

ऐसा जानकर सब कालमें वैद्योंको रोगशान्ति करनेवाली क्रिया अतियोगसे अर्थात् पूर्वोक्त क्रियाविशेष करके करनी चाहिये जिससे रोग शांत हो जावे १९ ॥

लंघनकी योग्यता ।

ज्ञात्वा दोषबलं धीमल्लंघनानि समाचरेत् ॥

दोषे सति न दोषाय लंघनानि बहून्यपि ॥ २० ॥

वैद्य दोषके बलको समझकर लंघन कराये । क्योंकि दोष रहनेपर बहुत भी लंघन कोई उपद्रव नहीं करते ॥ २० ॥

जठराग्निका कर्म ।

पचेत्प्रथममाहारं दोषानाहारसंक्षये ॥

दोषक्षयेऽनलो धातून्प्राणान्धातुक्षये सति ॥ २१ ॥

जठराग्नि प्रथम भोजनको पकाता है और भोजनके नाश होनेमें वात आदि दोषोंको पकाता है और दोषोंके क्षय होनेमें धातुओंको पकाता है और धातुओंके क्षय होनेमें प्राणोंको पकाता है अर्थात् नाश करता है ॥ २१ ॥

सामनिराम-व्याधिकाउपक्रम ।

ज्ञात्वा बलाबलं व्याधेः सामं निराममेव च ॥

तदा सामे पाचनं स्यान्निरामे पथ्यसंक्रमः ॥ २२ ॥

रोगके बल और अबल, साम तथा निरामरूप रोगको जानकर पीछे साम अर्थात् आमसे संयुक्त हुए रोगमें लंघन करावे और निराम अर्थात् आमसे रहित हुए रोगमें पथ्य दिलावे ॥ २२ ॥

वैद्यकी योग्यता ।

सामं निराममथ संसुखसाध्यमेवं सम्यग्रुजश्च परिलक्ष्य रुजो विनाशम् ॥ एतद्भवेत्सकलवैद्यकशास्त्रसारो नैवायुषश्च बलदानकरो हि वैद्यः ॥ २३ ॥

दोषयुक्त, निर्दोष, इसके अनन्तर सुखसाध्य इस तरह रोग और रोगकी नाशिनी चिकित्साको देखकर कर्म करे, यही समस्त वैद्यकशास्त्रका तत्त्व है । आयुके बलको देनेवाला वैद्य नहीं ॥ २३ ॥

नो वैद्यो मनुजस्य सौख्यमथवा दुःखश्च दातुं क्षमो जन्तोः कर्म-विपाक एव भुवने सौख्याय दुःखाय च ॥ तस्मान्मानवदुःखकारणरुजां नाशस्य चात्र क्षमो वैद्यो बुद्धिनिधानधाम चतुरो नास्मैव वैद्योऽपरः ॥ २४ ॥ सम्यग्रुजां परिज्ञानं ज्ञात्वा दोषविनिग्रहम् ॥ प्रत्याख्येयं च यः साध्यं जानाति स भवेद्भिषक् ॥ २५ ॥

मनुष्यको सुख अथवा दुःख देनेको वैद्य समर्थ नहीं है किंतु संसारमें सुख और दुःखको देनेवाला जीवोंके कर्मोंका विपाक है इस कारण मनुष्यको दुःख करनेवाले रोगोंके नाशनेके लिये वैद्य समर्थ है और वैद्य बुद्धिभांडारका घर है, चतुर है और इससे विपरीत जो दूसरा वैद्य हो वह नामसे ही वैद्य है ॥ २४ ॥ जो रोगोंको अच्छी तरह जानकर और दोषोंके निग्रहको समझ कर साध्य और असाध्य रोगीको जानता है उसे वैद्य कहते हैं ॥ २५ ॥

पुण्यार्थउपचार करनेयोग्य मनुष्य ।

तपस्वी च ब्राह्मणश्च स्त्रियो वा बालकस्तथा ॥ दीनो वा दुर्बलो वापि प्राज्ञो वा पण्डितस्तथा ॥ २६ ॥ महात्मा श्रोत्रियः साधु-

रुनाथो बन्धुवर्जितः ॥ एतान्व्याधिविनिग्रस्तान्प्रतिकुर्याद्वि-
शेषतः ॥ २७ ॥

तपस्वी, ब्राह्मण, स्त्री, बालक, दीन, दुर्बल, बुद्धिमान्, पंडित ॥ २६ ॥ महात्मा, वेदपाठी,
साधु, अनाथ और बन्धुओंसे रहित इतने रोगियोंकी दवा विशेष करके करे ॥ २७ ॥

उपचारसे धन लेने योग्य मनुष्य ।

राजा च सुधनी च व मण्डलीको बलाधिपः ॥

उपचार्योऽर्थसिद्धिः स्याद्वित्तं ब्राह्मं भयं न च ॥ २८ ॥

राजा, धनवाला, साहूकार, छोटा राजा, ठाकुर, सेनाका स्वामी इन्होंकी चिकित्सा करे, जय
दे अच्छे होजायें तब उनसे निर्भय होकर धन लेना चाहिये ॥ २८ ॥

यश मिलने योग्य मनुष्य ।

मध्यमा वणिजां पत्तिः पुरोधा ब्राह्मणादयः ॥ भट्टो वा गणका-
ग्रण्यश्चिकित्स्यास्तु विशेषतः ॥ रोगग्रस्तेषु चैतेषु चिकित्सा
कीर्तिकारिणी ॥ २९ ॥

इनसे नीचे वनियोंका व्यापार करनेवाले, पुरोहित, ब्राह्मणादिक, वेदज्ञ वा भाट, ज्योतिषी
इनकी चिकित्सा ध्यानसे करें क्योंकि इन रोगियोंकी दवा करनेसे कीर्ति प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

चिकित्सा करनेके अयोग्य मनुष्य ।

व्याधश्चोरस्तथा म्लेच्छो वह्निदो सत्स्यबन्धकः ॥ ३० ॥
बहुद्वेषो ग्रामकूटो बन्धकी मांसविक्रयी ॥ एतेषां व्याधिग्रस्तानां
नैव कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ३१ ॥ एतेभ्यः स्वार्थसिद्धिर्नोप-
कारो हितमङ्गलम् ॥ तेषां जीवात्संजातो वैद्यो भवति
दोषभाक् ॥ ३२ ॥

और कसाई, चोर, म्लेच्छ अग्नि लगानेवाला, मछलियोंको बंधनेवाला ॥ ३० ॥ बहुतोंका
वैरी, ग्राममें चुगली करनेवाला, व्यभिचारिणी, मांसको बेचनेवाला इनके यदि रोग उत्पन्न हो
तो वैद्य चिकित्सा नहीं करे ॥ ३१ ॥ क्योंकि इनसे स्वार्थकी सिद्धि नहीं है, न उपकार है
और कल्याण भी नहीं है और मंगल भी नहीं है, इन्हें जीवदान देनेसे वैद्य दोषका भागी
हो जाता है ॥ ३२ ॥

एवं ज्ञात्वा तु सदैवः कुर्यादथ प्रतिक्रियाम् ॥

धर्मार्थकामसम्पत्तिः कीर्तिलोके प्रवर्तते ॥ ३३ ॥

ऐसे जानके पीछे कुशल वैद्य चिकित्साको करे, चिकित्सासे धर्म, अर्थ, और कामकी प्राप्ति और लोकमें कीर्ति प्रवृत्त होती है ॥ ३३ ॥

वैद्य-कर्तव्यका उपसंहार ।

इति बहुविधियुक्तो वैद्यविद्याविचारः क्षणमपि हृदये यो धारणं
संकरोति ॥ स भवति गदसंघस्याथ विध्वंसशक्तो विमलवि-
दितकीर्तिः पूज्यमानो नरैर्द्वैः ॥ ३४ ॥ इति आत्रेयभाषित
हारीतोत्तरे वैद्यशिक्षाविधानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

ऐसे बहुतसी विधिसे युक्त और वैद्यकविद्याको विचारनेवाला जो वैद्य एक क्षणभर भी अपने हृदयमें यह धारणा करता है, वह वैद्य रोगके समूहको नाशनेमें समर्थ, स्वच्छ तथा विख्यात कीर्तिवाला और राजा लोगोंसे पूज्यमान होता है ॥ ३४ ॥ इति वेरीनिवा-
सिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रि-अनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने वैद्यशिक्षा-
विधानं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ देशकालबलाबल ।

इदानीं संप्रवक्ष्यामि देशकालबलाबलम् ॥

सात्त्व्यं प्रकृतिदेहश्च तथाग्नीनां विशेषणम् ॥ १ ॥

अब देश, काल, बल, अबल, सात्त्व्य, प्रकृति, देह, अग्नियोंकी विशेषता कहूँगा ॥ १ ॥

देश भेदाः ।

देशस्तु त्रिविधो ज्ञेयो ह्यनूपो जाङ्गलस्तथा ॥

साधारणो विशेषेण ज्ञातव्यास्ते मनीषिभिः ॥ २ ॥

और इस तरह देश तीन प्रकारके जानने चाहिये । अनूप, जाङ्गल, और साधारण। वे विद्वानों-
को विशेषकरके जानने चाहिये ॥ २ ॥

अथ अनूपदेशलक्षण ।

बहुतरशुभनद्यश्चारुपानीयपुष्टाः सरससरउपेता शाद्वलासार-
भूमिः ॥ हरितकुशजलानां शालिकेदाररम्या दिनकरकरदीप्ति
वाञ्छते यत्र लोकः ॥ ३ ॥ गुरुमधुररसाढ्या भाति चेक्षुः सदाद्रा

विविधजनितवर्णाः शालिगोधूमयूषाः ॥ मधुररसविभुक्त्या
लानवातां प्रकोपी भवति कफसमीरः स्यात्तद्वानूपदेशः ॥ ४ ॥

अथ अनूपदेशलक्षण-मुन्दर पानीसे पुष्टहर्ष बहुतसी मुन्दर नदियां, जलभरे तालाव, हरी दूब, हरनोसे व्याप्त हुई पृथिवी जहां हो, हरीकुशा तथा पानीसे व्याप्त हुए जो चावलके खेतोंसे रमणीक और जहां सूर्यकी किरणोंकी संसार इच्छा करता है ॥ ३ ॥ और जहां भारी और मधुर रससे संयुक्त और सब कालमें गीली ऐसी ईख होती हैं और जहां अनेक वर्णोंवाले चावल, गेहूँ और यूर । म दालका पानी या दो तरहके पात्र उपजते हैं और जहां मधुर रसको खानेसे मनुष्योंके वात और कफका कोप होता है वह अनूपदेश है ॥ ४ ॥

अथ जांगलदेशलक्षण ।

खरपरुषविशालाः पर्वताः कण्टकीर्णा दिशि दिशि मृगतृष्णा
भूरुहाः शीर्णपर्णाः ॥ अतिखररविरक्ष्मीपांशुसम्पूर्णभूमिः सरसि
रसविहीना कूपकाम्भः प्रकर्षः ॥ ५ ॥ तदनु विरससस्याहारिणो
गोमहिष्यः प्रभवति रसमांसे रूक्षभावश्च सम्यक् ॥ पुनरपि हिम-
वाहं शालिशस्यं न चेक्षुर्भवति रुधिरपित्तं कोपमाशु ह्युपैति ॥ ६ ॥

अथ जांगलदेशलक्षण-तीक्ष्ण, कठोर, बड़े और कांटोंसे व्याप्त जहां पर्वत हैं, प्रति-
दिशामें जहां मृगतृष्णा होती है, जहां बिना पत्तोंके वृक्ष हैं, अति तेज सूर्यकी किरणोंके समान
जल जलाती धूलवाली जहां सम्पूर्ण भूमि है, जो भूमि तालावसे रससे हीन है, और जहां
केवल कुयेंके जलसे काम निकलता है ॥ ५ ॥ और जहां बिनारसका धान्य खानेवाले गाय-
और भैंस हैं और जहां रस और मांसमें रूखापन उपजता है, और शीतलवायु, चावलकी खेती,
ईख ये नहीं उपजते हैं और जहां रक्त और पित्त शीघ्र कोपको प्राप्त होता है उसको जांगलदेश
कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ साधारणदेशलक्षण ।

उभयगुणशतं वा नातिरूक्षं न स्निग्धं न च खरबहुलं चेच्चाभितः
कण्टकाढ्यम् ॥ भवति च जलकीर्णं नातिशीतं न चोष्णं सम्-
प्रकृतिसमेतं विद्धि साधारणं च ॥ ७ ॥

अथ साधारणदेशलक्षण-जहां अनूपदेशके और जांगलदेशके बहुतसे लक्षण अर्थात्
गुण हों और जहां न अति रूखापन हो और न चिकनापन है और जहां तेजकी बहुलता नहीं

‘१ यूषं चमसचिकसौ’ इत्यमरः । ‘चमसचिकसौ पात्रमेदौ’ इति महेचरः, यूषं मंड इति वेद्या यथा
मुद्गामलकयूषस्तु ग्राही पित्तकफे हितः । २ ‘क्षिप्रशुद्राक्षीप्सितं पृथुपीवरबहुलप्रकर्षार्थाः’ इत्यमरसिंहः ।

हो और जो सब औरसे कांटोंसे व्याप्त न हो रहा हो और जहां साधारण पानी हो और न अति शीत अर्थात् जाड हो और न अति गर्मी हो और समानप्रकृतिसे संयुक्त हो तिसको साधारण देश कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ कालज्ञान ।

कालस्तु त्रिविधो ज्ञेयोऽतीतोऽनागत एव च ॥

वर्तमानस्तृतीयस्तु वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ॥८॥

अथ कालज्ञान—काल तीन प्रकारका है, अतीत अर्थात् बीता हुआ, अनागत अर्थात् आनेवाला, वर्तमान अर्थात् वर्तता हुआ इन्होंके लक्षण कहता हूँ तुम सुनो ॥ ८ ॥

कालका स्वरूप ।

कालः कालयते लोकं कालः कालयते जगत् ॥ कालः कालयते विश्वं तेन कालो विधीयते ॥९॥ कालस्य वशगाः सर्वे देवर्षि-सिद्धकिन्नराः ॥ कालो हि भगवान्देवः स साक्षात्परमेश्वरः ॥१०॥ सर्गपालनसंहर्ता स कालः सर्वतः समः ॥ कालेन कालयते विश्वं तेन कालो विधीयते ॥ ११ ॥

काल लोककी संख्या करता है, काल जगत्की संख्या करता है, काल विश्वकी संख्या करता है, इससे काल कहाता है ॥ ९ ॥ सब देव, ऋषि, सिद्ध, किन्नर, ये सब कालके वशमें हैं और भगवान् देव साक्षात् परमेश्वर ऐसा काल ही है ॥ १० ॥ सृष्टि, स्थिति, संहार, इन्होंको करनेवाला और सब जगहसे समान ऐसा काल ही है, कालसे विश्व संख्याको प्राप्त होता है इससे काल कहाता है ॥ ११ ॥

उत्पादक-कालका स्वरूप ।

येनोत्पत्तिश्च जायेत येन वै कल्पते कला ॥

सत्त्ववांस्तु भवेत्कालो जगदुत्पत्तिकारकः ॥ १२ ॥

जिससे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, जिससे कलायें कल्पित होती हैं और जो बलवान् है, जगत्को अर्थात् पञ्चमहाभूतादिको जो बनाता है वही काल है ॥ १२ ॥

प्रवर्तक-कालका स्वरूप ।

यः कर्माणि प्रपश्येत प्रकर्षं वर्तमानके ॥

सोऽपि प्रवर्तको ज्ञेयः कालः स्यात्प्रतिकालकः ॥ १३ ॥

जो वर्तमानके कर्मोंको देखता है और उनके अनुकूल आगेके लिये भविष्यत् के निर्माण करता है, एक दूसरेके बाद आनेवाला वह काल प्रवर्तक काल कहलाता है ॥ १३ ॥

संहारक-कालका स्वरूप ।

येन मृत्युवशं याति कृतं येन लयं व्रजेत् ॥

संहर्त्ता सोऽपि विज्ञेयः कालः स्यात्कलनापरः ॥ १४ ॥

जिस काल करके जीव मृत्युके वशको प्राप्त होता है और जिस करके कृत अर्थात् किया हुआ कार्य लयको प्राप्त होता है वही काल संहार करनेवाला जानना, यही काल प्राप्त करनेवाला है ॥ १४ ॥

कालका सनातनत्व ।

कालः सृजति भूतानि कालः संहस्ते प्रजाः ॥

कालः स्वपिति जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ १५ ॥

काल ही जीवोंको रचता है, काल ही प्रजाको हरता है, काल ही शयन करता है, काल ही जागता है, क्योंकि काल दुरतिक्रम है अर्थात् उल्टवन नहीं किया जाता ॥ १५ ॥

कालका नाशकस्वरूप ।

काले देवा विनश्यन्ति काले चासुरपन्नगाः ॥

नरेन्द्राः सर्वजीवाश्च काले सर्वं विनश्यति ॥ १६ ॥

काल अर्थात् समयमें देवता नष्ट हो जाते हैं और कालमें ही दैत्य और सर्प नष्ट होते हैं राजा ही क्यों सब जीव कालमें ही नष्ट होते हैं, कालमें संपूर्ण नष्ट होता है ॥ १६ ॥

अथ अन्यकालोंके स्वरूप ।

त्रिकालात्परतो ज्ञेय आगन्तुर्गतचेष्टकः ॥ सूक्ष्मोऽपि सर्वगः

सर्वैर्व्यक्ताव्यक्ततरः शुभः ॥ १७ ॥ तथा वर्षाहिमोष्णाख्या-

स्त्रयः काला इमे मताः ॥ तथा त्रयोऽन्येऽपि ज्ञेया उदयमध्या-

स्तमेव च ॥ १८ ॥

आगंतुकं किन्तु चेष्टासे रहित, सूक्ष्म होनेपर भी सर्वगत, सबसे अतिव्यक्त होकर भी अत्यंत अव्यक्त और शुभ ऐसा काल त्रिकालसे परे जानना चाहिये ॥ १७ ॥ वर्षा, शीत, गर्मी ये तीन काल माने गये हैं और उदय, मध्य, अस्त ऐसे तीन अन्य भी काल जानने ॥ १८ ॥

अथ ऋतुचर्या ।

वर्षा शरच्च हेमन्तः शिशिरश्च वसन्तकः ॥ ग्रीष्मोऽतिक्रमतो

ज्ञेय एवं षडृतवः स्मृताः ॥ १९ ॥ पृथक्पृथक् प्रवक्ष्यामि

खेर्गतिविशेषणैः ॥ प्रकोपं शमनं ज्ञात्वा अयने द्वे स्मृते बुधैः
॥ २० ॥ दक्षिणायनमेकं स्याद्वितीयं चोत्तरायणम् ॥

अथ ऋतुचर्या—वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर, वसंत और ग्रीष्म एक दूसरेके बाद आने-वाले क्रमसे छः ऋतु कहे हैं ॥ १९ ॥ इन ऋतुओंको पृथक् पृथक् कहेंगा । सूर्यकी गतिके विशेषसे प्रकोप और शमनको जान पंडितोंने दो अयन कहे हैं ॥ २० ॥ एक दक्षिणायन होता है दूसरा उत्तरायण होता है ॥

अयनोंका वर्णन ।

वर्षा शरच्च हेमन्तो दक्षिणायनमध्यगाः ॥ २१ ॥
शिशिरश्च वसन्तश्च ग्रीष्मः स्यादुत्तरायणे ॥

वर्षा, शरद, हेमंत ये तीन ऋतु दक्षिणायनमें होते हैं ॥ २१ ॥ शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, ये तीन ऋतु उत्तरायणमें होते हैं ॥

दक्षिणायनका लक्षण ।

याम्ये गतिर्यदा भानोस्तदा चान्द्रगुणा सही ॥ २२ ॥ वारि
शीतलसम्भूतं शीतं तत्र प्रजायते ॥ बलिनो मधुरास्तित्काः
कषायास्तु विशेषतः ॥ २३ ॥ जीवानां सात्त्विकमतुलमोषधीनां
च वीर्यता ॥ आर्द्रत्वं भूधराणाञ्च दिशश्चाप्यतिशीतलाः ॥ २४ ॥
सक्लेदा पृथिवी सर्वा तस्मादार्द्रा सफेनिला ॥ कथं चिकित्सयेत्
पित्तं कोपं याति विलीयते ॥ २५ ॥ तस्मादनुविपर्ययासादु-
पचारेण शाम्यति ॥

जब सूर्यकी गति दक्षिणमें होती है तब चंद्रमाके गुणोंवाली पृथिवी हो जाती है ॥ २२ ॥ और शीतल पानी हो जाता है और शीत पडने लगता है और मधुर तिक्त कसेला ये रस विशेष करके बलवाले हो जाते हैं ॥ २३ ॥ और ओषधी अर्थात् अन्न आदिकोंकी तथा जीवोंकी प्रकृति बहुत ही अच्छी रहती है और पर्वत भी गीले होजाते हैं और दिशामें अति शीतल हो जाती हैं ॥ २४ ॥ क्लेदभावसहित संपूर्ण पृथिवी हो जाती है और इसी कारणसे गीली और ज्ञागोंवाली पृथिवी होजाती है इसमें कभी पित्त कोपको प्राप्त हो जाता है और लीन होजाता है ॥ २५ ॥ इस कारणसे कि विपर्ययास करके चिकित्सासे पित्त शांत होता है ॥

उत्तरायणका लक्षण ।

यदोदीच्यां गतिर्भानोस्तदा सूर्यां जलाधिपः ॥ २६ ॥
 तस्मादुष्णगुणास्तीव्राः सम्भवन्ति विदाहिनः ॥ खरसूर्या-
 गुजालैस्तु शुष्यते वनकाननम् ॥ २७ ॥ संशुष्का मेदिनी सर्वा
 दिशः पानादिनीरसाः ॥ वलिनोऽम्लकटुक्षाराः सम्भवन्ति विदा-
 हिनः ॥ २८ ॥ तस्मात्संकुप्यते पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥
 संशुष्क ओषधिरसो गोजातीनां पयांसि च ॥ २९ ॥ अल्पं
 बलं च जन्तूनां कथञ्चित्कफसम्भवः ॥ दृश्यते च वसन्ते च
 स्वयमेव शसं व्रजेत् ॥ ३० ॥ एवं ज्ञात्वा सुधीः सम्यक्कुर्व्यात्सर्व-
 प्रतिक्रियाम् ॥ ३१ ॥

जब उत्तर दिशामें सूर्यकी गति होती है तब सूर्य जलोंका स्वामी हो जाता है ॥ २६ ॥
 इसलिये उष्णगुणवाले तीव्र और विदाही पदार्थ होते हैं ॥ २७ ॥ और संपूर्ण पृथिवी सूख
 जाती है और जरूआदिसे रहित सब दिशा हो जाती हैं और खट्टा, चर्चरा, खारा ये रस बलवाले
 और विशेष करके दाहको करनेवाले होते हैं ॥ २८ ॥ उससे रक्तके साथ मूर्च्छित हुआ
 पित्त कुपित होता है और ओषधियोंका रस और गाय आदिका दूध सूख जाता है ॥ २९ ॥
 और जीवोंमें अल्प बल उपजता है और कदाचित् कफकी भी उत्पत्ति होजाती है और
 यहां कफकी उत्पत्ति वसंत ऋतु अर्थात् चैत्र वैशाखमें दीखती है और आप ही शांत हो जाती
 है ॥ ३० ॥ ऐसे अच्छी तरह वैद्य जानके सब रोगोंकी चिकित्साको करे ॥ ३१ ॥

अथ वर्षाऋतुका लक्षण ।

सघनवारिदवारिसमाकुला अखिलवत्प्रवरोदकपूरिताः ॥ समद-
 वातकरा विदिशो दिशः प्रसुदितक्रिमिकीटभृता मही ॥ ३२ ॥
 नीलसस्यहरितोज्ज्वला मही कुल्यका सलिलसंप्लुता नता ॥
 इन्द्रगोपकविराजिता वरा पङ्कभूषणविभूषिता धरा ॥ ३३ ॥
 उद्भिन्नचूताङ्कुरभूधरः स्याद्रेजे वनं वा मधुरं व्यकूजन् ॥ भृङ्गा
 मयूरा जलदस्य घोषं सर्वेऽपि जीवा बलमाप्नुवन्ति ॥ ३४ ॥ केकी
 कूजति कानने च सरसी ग्लानाम्बुपूर्णा तथा हंसा मानसमाव्र-
 जन्ति कमलान्युन्मलानतां यान्ति च ॥ गर्जन्मेघमहेन्द्रकन्दर-

दूरी सस्यावृता श्यामला भात्येवं पवनस्य कोपनकरी वर्षा-
 ऋतुः श्रेयसी ॥३५॥ किञ्चिद्भोद्भवानि स्युः सस्यानां दृढता-
 गमः॥ बहुसस्या भवेद्धात्री वारिपूर्णा शरन्मुहुः ॥३६॥ नद्यः
 पूर्णाम्भसोत्खातशीर्णपातास्तद्वृषाः ॥ कुल्याप्रस्रवणानां तु
 स्रवत्यम्भो दिशो दिशः॥३७॥ बहुदकधरा मेघा बहुवृक्षा घन-
 स्वनाः॥ एवंगुणसमायुक्ता वर्षा स्यादृतुकोविदैः ॥३८॥ तस्मा-
 द्वातकफः कोऽपि जायते च नृणां भृशम्॥ इति ज्ञात्वा भिषक्छ्रेष्ठः
 कुर्यात्तस्यां प्रतिक्रियाम् ॥३९॥ स्वेदनं पर्दनं पथ्यं निर्वात-
 सेवनं तथा ॥ गौरारामारतं शस्तं व्यायामक्रमविक्रमः ॥४०॥
 कट्वम्लक्षारसुरसाः सेव्या वातकफापहाः ॥ निरूहवस्तिकर्मात्र
 कफवातरूजापहम् ॥ ४१ ॥

अथ ऋतुलक्षण-प्रथम वर्षाऋतुका लक्षण और उपचार-मोटे बादल और पानीसे अच्छी तरह आकुल, संपूर्ण तरहसे सुंदर पानी करके पूरित, मदसहित वायुको करनेवाली सब विदिशा और दिशा होवें और आनंदित हुए कीड़ोंको धारण करने वाली पृथिवी होवे ॥ ३२ ॥ और नीलीकी खेती और दूब घाससे प्रकाशित पृथिवी होवे, पानीसे मग्न हुए और नये हुए छोटी नदीके किनारे होवे, इंद्रगोप अर्थात् तीज नामवाले कीड़ोंकी पंक्तियोंसे शोभित और पंक अर्थात् कीचडरूपी गहनोंसे विभूषित ऐसी पृथिवी हो जावे ॥३३॥ ऊपरको निकल आयेहुए आमके अंकुरोंवाले पर्वत हो जावे और वन प्रकाशित हो जावें और भौरै तथा मोर मधुर शब्दको करें और बादलोंका शब्द हो और सब जीव बलको प्राप्त हो जावें ॥ ३४ ॥ वनमें मोर बोलें और सरोवर पक्षियोंकरके रहित तथा पानीसे पूरित हो जावे और हंस मानस सरोवरमें आके प्राप्त होजावे और कमल म्लानपनेको प्राप्त होजावे गर्जता हुआ मेघ और महेन्द्र करके फटीहुई कंदरावाली और खेतीसे आवृत और श्यामरूपवाली ऐसी पृथिवी प्रकाशित होजावे ऐसी वर्षाऋतु श्रेष्ठ होती है यह वायुको कोपित करती है ॥३५॥ और खेतियोंके कछुक गाभा तथा दृढपना उपजे और बहुतसी खेतीसे संयुक्त और पानीसे पूर्ण ऐसी पृथिवी होवे और बारंबार शरदऋतुके भी कछुक लक्षण मिलें ॥३६॥ और नदीमें नहीं पूरित हुए पानीसे उखाड़े हुए और गिरेहुए पत्तोंवाले ऐसे तटके वृक्ष होवें और नाली झरनोंके द्वारा दिशा दिशामें पानीको झिरावे ॥ ३७ ॥ और बहुत पानीको धारनेवाले और बहुतसे शब्दको करनेवाले ऐसे मेघ होजावें और बहुतसे वृक्ष उपजें ऐसे

गुणोंसे संयुक्त वर्षाऋतु होती है ऐसा ऋतुओंको जाननेवालोंने कहा है ॥ ३८ ॥ इस ऋतुमें मनुष्योंको अतिशय वात, कफका कोप होता है ऐसे कुशल वैद्य जानके उस कोपकी चिकित्सा करें ॥ ३९ ॥ स्वेदन अर्थात् पसीनोंका लाना, मर्दन अर्थात् शरीरको दाबना और वातको नहीं सेवना, गौर वर्णकी स्त्रीसे रति करना, कसरत करना ये सब वात कफके कोपमें श्रेष्ठ पथ्य हैं ॥ ४० ॥ चर्चरा, खड़ा, खारा ये रस सेवनेसे वात कफको नाशते हैं निरुह और व्रतिकाकर्म, कफ और वातकी पीड़ाको नाशते हैं ॥ ४१ ॥

अथ शरदृतुका लक्षण ।

मेघाः सूर्यशिलासमानरुचयो हृत्पद्मवालपस्वना हंसालीजल-
जालिमण्डितजलं पद्माकरं शोभनम् ॥ तीव्रस्निग्धमयूखचन्द्रवि-
मला सानन्दिनी कौमुदी चित्रा घर्मविपक्तोयसुरसास्यान्निर्मलं
पुष्करम् ॥ ४२ ॥ तत्र शीतलगतं वयोगतं जातपित्तरुधिरस्थ
योग्यताम् ॥ पथ्यमत्र च नरस्य शीतलं दृश्यते कथमपि त्रयो-
द्धवम् ॥ ४३ ॥ शृतं क्षीरं सितापथ्यं चन्द्रिकासेवनं निशि ॥
श्यामारामारतं शस्तं प्रभाते निर्मलं दधि ॥ ४४ ॥ कामिन्यालि-
ङ्गनानन्दश्रान्तः शीतसरोरुहैः ॥ चंदनादीनि सेवेत दृष्टं शरदि
कोपनम् ॥ एवं प्रशमनं दृष्टं शरत्पित्तप्रकोपने ॥ ४५ ॥

अथ शरदृतुका लक्षण और उपचार-सूर्य और शिलाके समान रुचिवाले और अल्प झरनेवाले और अल्पशब्दको करनेवाले ऐसे मेघ हो जावें और हंसोंकी पंक्ति तथा कमलोंकी पंक्ति उसकरके मंडित जलवाला और शोभित कमलोंका स्थान हो जावे और तीव्र तथा स्निग्धरूपी किरणोंवाले चंद्रमासे स्वच्छ और आनंदवाली और चित्ररूपवाली और घामसे पके हुए पानीसे सुरसरूप ऐसी चांदनी हो और मलसे रहित पानी होवे ॥ ४२ ॥ ऐसी शरदऋतुमें आकाशका पानी और पित्तरक्तके योग्य पदार्थ और शीतल पदार्थ ये सब पथ्य हैं इस ऋतुमें सन्निपातका कोप कदाचित् होता है ॥ ४३ ॥ शृत, दूध, मिश्री, रात्रिमें चांदकी चांदनीको सेवना, श्यामरंगकी बाला स्त्रीसे भोग, प्रभातमें निर्मल दही ये सब शरदऋतुमें पथ्य हैं ॥ ४४ ॥ स्त्रीके आर्लगनसे प्राप्त हुए आनंदसे श्रांत हुए पुरुष कमलोंकरके अपने श्रम दूर करे, और शरदऋतुमें पित्तका प्रकोप होनेसे चंदनादिकोंका लेप करे यह कमलधारण और चंदनानुलेपन शरदऋतुमें पित्तके प्रकोपका शमनकारी है ऐसा देखा है ॥ ४५ ॥

अथ हेमन्तवर्णन ।

बहुशीतःसमीरोऽल्पश्चाल्पवासरता ऋतौ॥अल्पतेजा दिवानाथो
धूमाक्रांता च दिग्भवेत् ॥ ४६ ॥ विस्तीर्णशालिकेदारा नील-
धान्योज्ज्वला मही ॥ एवं गुणसमायुक्ता हेमन्ती स्म भवेदतुः
॥४७॥ तत्र वातकफा दोषा दृश्यन्ते कुपिता भृशम् ॥ अग्निसंसे-
वनंपथ्यंकटुक्षाराम्लसेवनम् ॥४८॥ गौरारामारतं शस्तं व्याया-
मश्च प्रशस्यते ॥ एवं संशाम्यन्ति दोषाः कफवातसमुद्भवाः ॥
॥४९॥ बालिनः शीतसंरोधा हेमन्ते प्रबलोऽनिलः ॥ भवत्यल्पे-
न्धनो धातून्स पचेद्वायुनेरितः ॥ ५० ॥ अतो हिमेऽस्मिन्सेवेत
स्वाद्वल्लवणान्नसान्॥दीर्घा निशा भवेत्तर्हि प्रातरेव पुभुक्षितः॥
॥ ५१ ॥ भवत्यकार्यं संभाव्य यथोक्तं शीलयेदनु ॥ ५२ ॥
अर्कन्यग्रोधखदिरकरञ्जककुभादिकम् ॥ प्रातर्भुक्त्वा च मधुरक-
षायकटुतिक्तकम् ॥ ५३ ॥

अथ हेमन्तऋतुका लक्षण और उपचार-बहुत शीत वायु अल्प चले और दिनका
समय थोड़ा हो जावे और अल्प तेजवाला सूर्य रहे और धूमसे आकुलित हुई दिशा होवे॥ ४६ ॥
और विस्तारको प्राप्त हुए चावलोंके खेत होवें और नील तथा अन्नसे प्रकाशित पृथिवी होवे
ऐसे गुणोंसे संयुक्त हेमन्तऋतु होता है ॥ ४७ ॥ इस ऋतुमें अतिशयसे कुपित हुए वात और
कफ दीखते हैं, इसमें अग्नि सेवना और चर्चरा, खारा, खट्टा, इन्होंको सेवना पथ्य है
॥ ४८ ॥ गौरवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और कसरत करना श्रेष्ठ है, इस तरहसे
कफ वातसे उपजा दोष शांत होता है ॥ ४९ ॥ बलवाले मनुष्यके शीतको रोकनेसे
हेमन्तऋतुमें वायु प्रबल हो जाता है, पीछे वायुसे प्रेरित किया यही वायु अल्प आहार आदिवाला
होके धातुओंको पकाता है ॥ ५० ॥ इसलिये शीतकालमें स्वादु, खट्टा, सलोना ऐसा रस
सेवे और हेमन्तऋतुमें बड़ी रात्रियोंके होनेसे प्रभातमें ही भोजन करनेकी इच्छावाला मनुष्य
हो जाता है ॥ ५१ ॥ इसवास्ते अकार्यकी संभावना करके यथोक्त द्रव्यका अभ्यास करे
॥ ५२ ॥ आक, वड़, खैर, करंजुआ, अर्जुनवृक्ष इन आदिको प्रभातमें साधन करके पीछे
मधुर, कसैला, चर्चरा, कडुआ इन रसोंको सेवे ॥ ५३ ॥

अथ शिशिरवर्णन ।

बहुलशिशिरवातः किञ्चिदुद्धृतसन्त्या भवति वसुमतीयं पक्ष-
स्यैस्तु पीता॥कथमपि तु हिमं स्याल्लिङ्गवैशेषिकं वा पवनक-
पाविकारो जायते शैशिरं च॥ ५४॥गौरारामास्तमतिशयेनाक-
णान्यम्बराणि सेव्यं तिक्तं कटुकलवणं प्रायशो ह्यम्लमेव॥स्वे-
दोन्मर्दं प्रतिदिनमिदंकारयेद्यत्र सम्यग् नाशं यातोऽनिलकफ-
गदो कास्ति तेषां प्रकोपः ॥ ५५ ॥

अथ शिशिरऋतुका लक्षण और उपचार-बहुत शीतल वायु चले, पृथ्वीपर कटुक धान्य उत्पन्न हो, और पकी हुई खेतीसे पीली पृथ्वी हो, और इनमें जाड़ा पड़े कभी अधिक चिह्नकी विशेषता हो उसको शिशिर ऋतु कहते हैं इसमें वात और कफके विकार उपजते हैं ॥ ५४ ॥ और इस ऋतुमें गौरवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना और अतिशय करके लाल रंगके वस्त्रोंको पहनना और कटुआ, चर्चरा, सलोना ये रस सेवने चाहिये और विशेष करके खट्टा रस सेवना चाहिये और इस ऋतुमें पसीनोंको लाना और मर्दन करना नित्यप्रति अच्छी-तरह करना चाहिये ऐसा करनेसे वात और कफके रोग नाशको प्राप्त हो जाते हैं और उनके प्रकोपकी कौन कथा है ? ॥ ५५ ॥

अथ वसंतऋतुका वर्णन ।

सुदितकोकिलकूजितकाननं मदनसूचितकिंशुकशोभितम् ॥
कुसुमसौरभरञ्जितभूधरं कणितमत्तमधुव्रतलालसम्॥५६॥मक-
रकेतनबाणसमाकुलं सुदितमेव समस्तमिदं जगत् ॥ मलय-
मारुत उष्णगुणान्वितः कफकरो हि वसन्तऋतुर्भवेत् ॥५७॥
कफजकोपविनाशनलालनं वमननावनरूक्षनिषेवणम्॥५८ ॥
विविधः सुरतानन्दः सम्भ्रमः कफवारणः॥व्यायामश्रमसंरोध-
खिन्नविश्रान्तमानसः ॥५९॥ कटुक्षाराम्लाः सेव्याश्च शोषणं
कफसम्भवम्॥एवं क्रियासमापन्नो नरः शीघ्रं सुखी भवेत् ॥६०॥

अथ वसंतऋतुका लक्षण और उपचार-जहां आनंदित हुए कोयल पक्षी वनमें वोलें कामदेवको सूचित करते हुए टेसूके फूलोंसे शोभा हो फूलोंके गंधसे रंजित पर्वत हो और जहां खेलते हुए और मदवाले भौरोंकी शोभा हो ॥ ५६ ॥ और कामदेवके बाणसे समाकुल और आनंदित जगत् होवे तिसको वसंतऋतु कहते हैं । यह सुन्दर वायुसे

और उष्ण गुणसे अन्वित हुआ वसंतऋतु होता है यह कफको उपजाता है ॥ ५७ ॥ इस ऋतुमें वमन, नस्य, रूखा पदार्थ इनका सेवन कफके कोपको नाशता है ॥ ५८ ॥ अनेक प्रकारसे कामदेवका आनन्द और अच्छी तरह चलना, फिरना कफको दूर करता है और इस ऋतुमें कसरतके परिश्रमको करनेसे स्वेदित और श्रांत मनवाला मनुष्य सुखी रहता है ॥ ५९ ॥ और चर्चरा, खारा, खश्न ये रस सेवने चाहिये ये कफको शोषते हैं ऐसी क्रियाको प्राप्त हुआ मनुष्य शीघ्र सुखी हो जाता है ॥ ६० ॥

अथ ग्रीष्मवर्णन ।

दीर्घवास रसंतीक्ष्णं ज्वालामालाकुलं जगत् ॥ दिशि दिशि मृग-
तृष्णाचोष्णं भृशं भवेद्रजः ॥ ६१ ॥ नैर्ऋतो मारुतो रूक्षः शीर्णपर्णा
महीरूहः ॥ दग्धतृणाकुलारण्यं दावाग्निसङ्कुला दिशः ॥ ६२ ॥
एवं तु लक्ष्म ग्रीष्मस्य पित्तरक्तमुदीर्यते ॥ तस्मात् क्रियाप्रती-
कारं कुर्यात् संशमनं भिषक् ॥ ६३ ॥ जलकीडा दिवा निद्रासे-
वनं सुखसाधनम् ॥ श्यामारामारतं शस्तं किञ्चलकं कुञ्जशीत-
लम् ॥ ६४ ॥ नीलनालदलोपेतः श्रमघ्नो व्यजनानिलः ॥ केत-
क्यामोदकुसुमं चन्दनोशीरशीतलैः ॥ ६५ ॥ लेपनं शीतलं
सम्यग्धारागाराशयः पुनः ॥ एवं क्रियासमापन्नो ग्रीष्मे च सुख-
सङ्गमः ॥ ६६ ॥ इति आत्रेयभाषिते ऋतुचर्यानाम चतुर्थो-
ऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ ग्रीष्मऋतुका लक्षण और उपचार—बड़े दिन हों और तीक्ष्ण हों और गरमीके समूहसे जगत् व्याकुल हो जावे और दिशा दिशामें मृगतृष्णा होवे और अतिगर्मी और धूली उड़े ॥ ६१ ॥ नैर्ऋतदिशाका रूखा वायु चले, वृक्षोंके पत्ते उड़जावें, दग्धहुए तृणोंके समूहसे व्याप्त वन होवे, और दावाग्निसंकुलित दिशा होजावें ॥ ६२ ॥ उसको ग्रीष्मऋतु कहते हैं, इसमें पित्त और रक्त बढ़ता है इसलिये वैद्य रक्तपित्तको शमन करनेवाली क्रियाको करे ॥ ६३ ॥ इस ऋतुमें जलकी क्रीडा, दिनमें शयन, श्यामवर्णवाली स्त्रीसे भोग करना, और कलुक शीतल वस्तुको सेवना ये पथ्य हैं ॥ ६४ ॥ नीले कमलके पत्तोंसे संयुक्त हुए पंखकी पवन ग्रीष्मके परिश्रमको हरता है और केतकीके खिले हुए फूल, सफेद चंदन, खस, शीतल चीजों करके ॥ ६५ ॥ अच्छी तरह लेप करना और फूहाराके स्थानमें बसना ऐसे क्रियाको प्राप्त हुआ मनुष्य ग्रीष्मऋतुमें सुखी रहता है ॥ ६६ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरवि-
त्तशास्त्रि-अनुवादित-हारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने ऋतुचर्यानाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

इसके बाद वयो ज्ञानका कथन ।

वयश्चतुर्विधं प्रोक्तमुत्तमाधममध्यमम् ॥ हीनं चातुर्थिकं प्रोक्तं
तानि वक्ष्यामि साम्प्रतम् ॥ १ ॥ बालं युवानं वृद्धं च मध्यमं
च तथैव च ॥ चतुर्विधं वयः सम्यक् तत्समासेन वक्ष्यते ॥ २ ॥

इसके अनंतर वय अर्थात् अवस्थाके ज्ञानको कहेंगे-अवस्था चार प्रकारकी
कही है । उत्तम, अधम, मध्यम, और हीन । अब उन्हे कहता हूँ ॥ १ ॥ बालक, जवान, वृद्ध और
मध्यम ऐसी चार प्रकारकी अवस्था हैं उसको विस्तारसे कहता हूँ ॥ २ ॥

मध्यमवयोलक्षण ।

पथि श्रान्तं श्रमक्षीणं बालस्त्रीसुकुमारकम् ॥
एतेषां मध्यमा संज्ञा प्रोच्यते वैद्यकागमे ॥ ३ ॥

रस्तेमें श्रान्त हुआ, श्रमसे क्षीण हुआ, बालक, स्त्री और सुकुमार अर्थात् कोमल मनुष्य
इनकी वैद्यकशास्त्रमें मध्यम संज्ञा कही है ॥ ३ ॥

आषोडशाद्बालः पञ्चविंशो युवा नरः ॥ मध्यमं सप्ततिर्य्या-
वत्परतो वृद्ध उच्यते ॥ ४ ॥ तथा च सुकुमाराश्चेत्येते मध्यमसं-
ज्ञकाः ॥ वयसः षोडशाधिक्यं समयश्च भवेत्तु यः ॥ ५ ॥ आवि-
शति समाः प्राप्नो यथा च कृशदेहवान् ॥ पूर्ण वयः स्त्रियः प्राप्ता
मध्यमे चाधमं वयः ॥ ६ ॥

सोलह वर्षतक बालक अवस्था, पचीस वर्षतक जवान अवस्था, सत्तर वर्षतक मध्य अवस्था
होती है, इससे परे वृद्ध अवस्था है ॥ ४ ॥ मध्यमसंज्ञकोंमें सुकुमार अर्थात् कोमल, सोल-
हवर्षसे ऊपर २० वर्षतक दुर्बल शरीरवाले, और पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हुई स्त्री ये मध्यम अव-
स्थामें भी अधम वय कहाते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

पञ्चविंशत्समादूर्द्धमापञ्चाशद्वतः पुमान् ॥ कर्मकठोरा वनिता
दृश्यते चोत्तमं वयः ॥ ७ ॥ सप्तविंशत्समादूर्द्धं पञ्चाशत्संयुताः
समाः ॥ बालवृद्धिस्तथा यस्य इत्येतदुत्तमं वयः ॥ ८ ॥

पचीस वर्षसे लेकर पचास वर्षतक पुरुषत्व बना रहता है और इतने ही में स्त्री भी क्रियामें कठोर रहती है इसलिये यह उत्तम आयु देखी जाती है । सत्ताईस वर्षसे लेकर पचास वर्ष तक जिसके लड़के हों यह उत्तम वय है ॥ ७ ॥ ८ ॥

स्थूलोऽतिदीर्घकठिनस्तथा स्त्री बृहदौदरा ॥

इत्युत्तमोऽवयववाञ्छातव्यश्चोत्तमोत्तमः ॥ ९ ॥

जो स्थूल, अतिलंबा और कठोर, ऐसा पुरुष हो और बड़े पेटवाली स्त्री हो तो समझना यह उत्तम शरीरवाला और उत्तमोत्तम मनुष्य है ॥ ९ ॥

षष्ठ्यूर्ध्वमशीतिसमाः प्रातं हीनबलं वयः ॥

तदूर्ध्वं हीनहीनश्च विज्ञेयो वयसः क्रमः ॥ १० ॥

साठ वर्षसे उपरांत अस्सी वर्षतक हीनबल अवस्था होती है और अस्सीवर्षसे उपरांत हीनसे भी हीन अवस्था होती है ऐसे अवस्थाका क्रम जानना चाहिये ॥ १० ॥

क्षीणोऽध्वश्रान्तसंखिन्नस्तथा रोगानुपीडितः ॥

रूक्षश्चातिकृशो ज्ञेयो बालसात्म्यमुदाहृतम् ॥ ११ ॥

क्षीण मार्गमें थकनेसे खेदको प्राप्त और रोगसे पीडित, रूखा अति कृश मनुष्य बालककी प्रकृतिके समान प्रकृतिवाले होते हैं ॥ ११ ॥

सुकुमारोऽतिभीरुश्च मध्यकायस्त्रियोऽपि वा ॥

मध्यसात्म्योऽपि विज्ञेयो मध्यमो वयसात्म्यकः ॥ १२ ॥

कोमल शरीरवाला, अति डरनेवाला, मध्यम शरीरवाला, स्त्री-मध्य प्रकृतिवाला ऐसा मनुष्य मध्य अवस्थाकी प्रकृतिवाला जानना ॥ १२ ॥

पञ्चवर्षा स्मृता बाला मुग्धा च षट्समावधिम् ॥ द्वादशाब्दं
स्मृता बाला मुग्धा स्यात्सप्तमावधिम् ॥ १३ ॥ प्रौढा च नव-
वर्षाणि प्रगल्भा च त्रयोदश ॥ चतुर्विंशद्वर्षादूर्ध्वं सप्तत्रिंशतिसम्य-
गाः ॥ पूर्णं वयः स्त्रियः प्राप्ता इत्येतदुत्तमं वयः ॥ १४ ॥

पांच वर्षकी स्त्री बालक कहाती है, पांचसे आगे छः वर्षतककी स्त्री मुग्धा कहाती है, बारह वर्षकी स्त्री बाला कहाती है और बारह वर्षके आगे सात वर्षतक स्त्री मुग्धा कहाती है ॥ १३ ॥ तिसके पीछे नव वर्षतक स्त्री प्रौढा कहाती है और तिसके पीछे तेरह वर्षतककी स्त्री प्रगल्भा कहाती है, और इतने वयके बीचमें ही चौबीस वर्षसे उपरांत सैंतीस वर्षतक मध्य अवस्थाकी स्त्री पूर्ण अवस्थाको प्राप्त होती है यह उन्हींकी उत्तम अवस्था है ॥ १४ ॥

अथ प्रकृतिका ज्ञान ।

मध्यसात्म्यश्च स्थूलः स्याद्बलवान्सत्त्ववान्नरः ॥

सचाऽप्युत्तमसात्म्यः स्याद्बलवत्समुपाचरेत् ॥ १५ ॥

मध्यप्रकृतिवाला नर स्थूल और बलवान होता है । उत्तमप्रकृतिवाला पुरुष सत्त्वगुणसे युक्त बलवान् होता है ॥ १५ ॥

अथ वातादिप्रकृतिका ज्ञान ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रकृतिज्ञानमुत्तमम् ॥

वातिकं पैत्तिकं चैव श्लेष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १६ ॥

इसके बाद वात, पित्त, कफ और सन्निपातकी प्रकृतिका ज्ञान कहूँगा ॥ १६ ॥

अथ वातप्रकृतिका लक्षण ।

यः कृष्णवर्णश्चपलोऽतिसूक्ष्मः केशाल्परूक्षो बलवान्क्षमः
स्यात् ॥ सूक्ष्मातिदन्तो नखवृद्धिमेति दीर्घस्वनश्चक्रमणक्षयो-
ऽसौ ॥ १७ ॥ दीर्घाक्रमो लोलुपहीनसत्त्वस्तथैव चाम्लीरसभो-
जनेच्छुः ॥ संस्वेदनेनातिविमर्दनेन सौख्यं समागच्छति
वातलो नरः ॥ १८ ॥

अथ वातकी प्रकृतिका लक्षण—जो मनुष्य कृष्णवर्ण, चपल व अतिकृश शरीर, अल्पबाल, रूखा, बलवाला, समर्थ, अतिसूक्ष्म दंतोंवाला, नखोंकी वृद्धिको प्राप्त होवे तथा बड़ा और लंबा बोलनेवाला, चलने फिरनेमें समर्थ ॥ १७ ॥ बहुत कूदनेवाला, लोभी, सत्त्वसे वर्जित, खट्टे रसको खानेकी इच्छावाला और अच्छी तरह पसीना देनेसे तथा मर्दन करनेसे सुखको प्राप्त होता हो वह वातकी प्रकृतिवाला हो ॥ १८ ॥

अथ पित्तप्रकृतिका लक्षण ।

गौरातिपिङ्गः सुकुमारमूर्तिः प्रीतः सुशीते मधुपिंगनेत्रः ॥
तीक्ष्णोऽपि कोऽपि क्षणभङ्गुरश्च त्रासी मृदुगार्त्रमलोमकं
स्यात् ॥ १९ ॥ लौल्यप्रियस्तिक्तरसानुभोजी द्वेषी च तीक्ष्णश्च
नवोष्णसेवी ॥ स्तुतिप्रियो दन्तविशुद्धवर्णो जातः स पित्त-
प्रकृतिर्मनुष्यः ॥ २० ॥

अथ पित्तकी प्रकृतिका लक्षण—जो गौरी वर्णके समान पीतवर्णवाला हो, सुकुमार मूर्तिवाला हो, शीतल पदार्थमें प्रीति रखता हो, मधुसरीखे तथा पिंगवर्णके नेत्रोंवाला हो, तेज स्वभाव वाला हो और कोई क्षण भर में ही स्वभावसे गिर जाने वाला हो, उद्वेगसे संयुक्त हो, कोमल हो, कम केशवाला हो ॥ १९ ॥ और चंचलपनेमें प्रियता करनेवाला हो, कडुआ रसको खानेवाला हो, वैर करनेवाला हो, तेजसे संयुक्त हो, नवीन और गरम वस्तुको सेवनेवाला हो, अपनी स्तुतिको चाहनेवाला हो, दांतोंसे विशेष करके शुद्धवर्णवाला हो, ऐसा मनुष्य पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ २० ॥

अथ कफप्रकृतिका लक्षण ।

सुस्निग्धवर्णः सितनेत्रतृप्तः श्यामः सुकेशो नखदीर्घरोमा ॥ गम्भीरशब्दः श्रुतिशास्त्रनिद्रातन्द्राप्रियस्तिक्तकटूष्णभोजी ॥ २१ ॥
स मांसलः स्निग्धरसप्रियश्च सगीतवाद्योऽतिसहिष्णुशीलः ॥ व्यायामशीलो रतिलालसोऽसौ भवेत्कफस्य प्रकृतिर्मनुष्यः ॥ २२ ॥

अथ कफकी प्रकृतिका लक्षण—सुन्दर चिकने वर्णवाला हो और सफेद नेत्रोंवाला हो, तृप्त हो, श्यामवर्णवाला हो, सुन्दर बालोंवाला हो, लंबे नख और रोमोंसे संयुक्त हो, गंभीर बोलनेवाला हो, और वेद, शास्त्र, नींद, तन्द्रा, इन्होंमें प्यार करनेवाला हो, कडुआ और गर्म भोजनकरनेवाला हो ॥ २१ ॥ मोटा हो स्निग्धरसको चाहनेवाला हो, गीत और वाजेको पसंद करनेवाला हो, अतिसहनेमें शीलस्वभाववाला हो, कसरतको करनेवाला हो, विषयभोगमें इच्छावाला हो, ऐसा मनुष्य कफकी प्रकृतिवाला होता है ॥ २२ ॥

अथ समप्रकृतिका लक्षण ।

संमिश्रवर्णोऽतिसुदीप्तगात्रो गम्भीरधीरोऽतिविदीर्णरोमा ॥ रामाप्रियो भारसहोऽतिमिश्रो भोगेन युक्तः समता प्रकृत्या ॥ २३ ॥

कई प्रकारसे मिले हुए वर्णवाला हो, अतिसुन्दर प्रकाशित अंगोंवाला, गंभीर पनेमें धीर, अति विदारित हुए रोमोंवाला, स्त्रीसे प्यार करनेवाला, भार अर्थात् बोझको सहनेवाला और सब लक्षणोंसे अति मिला हुआ, और भोगके भोगनेवाला ऐसा मनुष्य समप्रकृतिवाला होता है ॥ २३ ॥

अथ दिशाभेदसे वातके गुणदोष ।

(पूर्वादिशाका वायु)

अथागतं वच्मि मरुत्प्रवाहं पूर्वोत्तरादक्षिणपश्चिमाच्च ॥ तेषां गुणान्दोषविकोपनं च पृथक्पृथङ्मे गदतः शृणु त्वम् ॥ २४ ॥

शीतोऽतिमाधुर्यगुणः प्रयुक्तो वातप्रकोपी बलकृद्विशेषात् ॥
वाताधिकानां व्रणशोफिनाश्च प्राचीप्रवृत्तः पवनो न शस्तः ॥२५॥

अथ आठ दिशाओंमें प्रवृत्त हुए वायुके गुणदोषवर्णन—इसके अनन्तर पूर्व, उत्तर, दक्षिण और पश्चिमसे आनेवाले वायु और उसके गुण दोष और कोपोंको कहता हूँ तथा अलग अलग अर्थात् अन्यवायु के भी गुण दोष कोप कहते हुए मुझसे तुम सुनो ॥२४॥ शीतल स्वभाववाला अतिमधुरपनेके गुणोंसे युक्त वातको कोपनेवाला, विशेष करके बलको करनेवाला, ऐसा, पूर्वदिशाका वायु है । यह वातकी अधिकतावालोंको और घावपै शोजा-वालोंको श्रेष्ठ नहीं है ॥ २५ ॥

आग्नेयदिशाका वायु ।

किञ्चित्सत्तित्तो मधुरान्वितः स्यात्कफःसमीरोद्भवरोगकारी ॥
सुशीतलः शोफवतां व्रणानां शस्तो न चाग्नेयसमीरणश्च ॥२६॥

कछुक कडुआ है, मधुररससे अन्वित है, कफ और वातसे उपजे रोगोंको करता है, सुंदर शीतल है, शोजावाले घावोंको अच्छा नहीं है ऐसा आग्नेयदिशाका वायु है ॥ २६ ॥

दक्षिणादिशाका वायु ।

तिक्तः कषायो मधुरोऽतिमन्दः सुगन्धसंशीतगुणैः प्रकृष्टः ॥वद-
न्ति संज्ञां मलयानिलेति प्रकृष्टरामाजनचित्तहारी ॥२७॥मनो-
भवस्य प्रकरो मरुत्स्यात्कफोद्भवः सम्भवति प्रचारः ॥नचाति-
शीतो न तथोष्णको वा शुभश्च याम्यां प्रभवःसमीरः ॥२८॥

कडुआ है, कसेला है, मधुर है, अतिमंद है, और सुगंध तथा शीतल गुणोंकरके संयुक्त है और मलयानिलसंज्ञावाला है यह स्त्रियोंके चित्तको हरता है ॥ २७ ॥ और कामदेवको जगाता है, कफके रोगोंको करता है और अतिशीतल नहीं है और अतिगर्म नहीं है और शुभ है ऐसा दक्षिणादिशाका वायु है ॥ २८ ॥

नैऋत्यदिशाका वायु ।

रूक्षोष्णवातः प्रथमः समीरः कङ्कम्लपित्तासृजि दोषकारी ॥
प्रशोषणो देहबलस्य वायुःकफान्वितो नैऋतिकःसमीरः ॥२९॥

रूखाहै और गर्मवायुसे संयुक्त है और वायुको शांत करता है और कटु, अम्ल, पित्त और रक्तमें दोषको करता हो और देहके बलको शोषनेवाला है और कफसे अन्वित है ऐसा नैऋतदिशाका वायु होता है ॥ २९ ॥

पश्चिमदिशाका वायु ।

अथातिसूक्ष्मो मरुतः प्रशस्तो नूनं प्रतीच्यास्तु दिशः प्रवृत्तः ॥
वायुस्तथोदीरति रक्तपित्तं शस्तो व्रणानां कफशोफिनां वा ॥ ३० ॥

पश्चिमदिशाका अतिसूक्ष्म वायु श्रेष्ठ है और रक्तापत्तिको बढाता है । यह वायु घाववालोंको और कफसे उपजे शोजेवालेको श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥

वायव्यदिशाका वायु ।

वायव्यजातो मरुतः प्रशस्तः कषायसंशुष्कगुणप्रसन्नः ॥ करोति
वातस्य वशं नराणां शस्तो न निन्द्यो व्रणशोफिनाञ्च ॥ ३१ ॥

वायव्यदिशाका वायु श्रेष्ठ है, कसैला और सुखानेवाले गुणसे संपन्न है और मनुष्योंके हवाके वशमें करता है और घावपै शोजेवालोंको श्रेष्ठ है और निन्दित नहीं है ॥ ३१ ॥

उत्तरदिशाका वायु ।

स्वादुः कषायश्च कफप्रकोपी वायुः कुबेरस्य दिशः प्रवृत्तः ॥
करोति मेघागमनं जलस्य शीतो न चोष्णो न च निन्द्य एषः ३२

उत्तर दिशाका वायु सजल मेघको लाता है, शीतल है, गर्म नहीं है, कसैला है, स्वादु है, कफको कोपता है यह निंदाके योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥

ऐशानदिशाका वायु ।

शीतोऽतिलौल्यः कफवातकोपं करोति चैशानदिशः प्रवृत्तः ॥
शस्तश्च नासौ व्रणशोफकासिनां क्षयस्तथा श्वासविकारिणाञ्च ३३

ऐशान दिशाका वायु शीतल है, चंचल है, कफ और वातके कोपको करता है, और घाव, शोजा, खांसी, क्षय, श्वास, रोग इन विकारवालोंको अच्छा नहीं है ॥ ३३ ॥

अन्य-पञ्चाविध वायुके गुण ।

वस्त्रं नानाविधं चर्म वैणवं तालव्यञ्जनम् ॥

उशीरं शिखिपिच्छं तु प्रत्येकेन गुणोत्तमाः ॥ ३४ ॥

अथ वस्त्रआदिके वायुका गुणदोषकथन—अनेक प्रकारका वस्त्र, चाम बांसका पंखा, ताडका पंखा, खसकी टट्टी अथवा पंखा, मोरके पंखोंका पंखा, ये सब हवाके करनेमें एकसे दूसरे उत्तम गुणवाले हैं ॥ ३४ ॥

वस्त्रवायुके गुण ।

वस्त्रप्रवृत्तो मरुतो न शस्तो व्रणशोफिनाम् ॥ रक्तवासः समुत्पन्न

१ व्यजनार्थेऽत्र व्यजनमुक्तं छन्दोमङ्गलभयादृषिणा । न खल्वभिमतमिदं यंतोऽग्रेऽभिहितं “वैणवं व्यजनं तन्ना निद्राकरणमेव” इति तथा च “अपि माघं मघं कुर्याच्छन्दोमङ्गलं कारयेत्” ।

विशेषेण तु वर्जयेत् ॥३५॥ करोति कफरक्तस्य कोपनं बहुरो-
गकृत् ॥ अमृगानिपिपासासुतन्द्रानिद्राकरो भृशम् ॥ ३६ ॥

बल्लकी हवा बावपे शोजेवालेको अच्छी नहीं है और लाल बल्लसे उपजी हुई हवाको विशेष करके त्यागे ॥ ३५ ॥ क्योंकि लाल बल्लकी हवा कफ रक्तको कुपित करती है और बहुतसे रोगोंको उपजाती है और परिश्रम, ग्लानि, पिपासा, तन्द्रा और नींदको अति करती है ॥ ३६ ॥

वेणुवायुगुण ।

वैणवं व्यजनं तन्द्रानिद्राकरणमेव च ॥

रूक्षोऽतिकपायरसो न च वातप्रकोपनः ॥ ३७ ॥

वाँसका पंखा, तन्द्रा और नींदको करता है, रूखा है, अतिकसेला रसवाला है और वातको कोपित नहीं करता है ॥ ३७ ॥

कांस्यपात्रवायुके गुण ।

कांस्यपात्रसरुद्रक्षः सोष्णो वातस्य शान्तिकृत् ॥

दाहश्रमघ्नः स्वेदघ्नो निद्रासौख्यकरो नृणाम् ॥ ३८ ॥

कांस्यपात्रकी हवा सूखी है, गरम, वातको शांत करती है, दाह और श्रमको हरती है, पसीना मारती है, मनुष्योंके नींद और सुखको करती है ॥ ३८ ॥

रम्भातालपत्रवायुके गुणः ।

तालपत्रकरम्भाया दलस्य व्यजनो हिमः ॥ मधुरोऽतिश्रमघ्नः
स्यादार्द्रत्वात्कफकोपनः ॥ ३९ ॥ निद्राकरः प्रीतिकरः शोक-
रोगविकारहा ॥ दाहपित्तश्रमग्लानिनाशनो भ्रमशान्तिकृत् ४० ॥

ताड़के पत्ते और केलेके पत्तेका पंखा शीतल है, मधुर है, अतिश्रमको हरता है और गीले-पनेसे कफको कोपता है ॥ ३९ ॥ नींद करता है, प्रीतिकरता है, शोक, रोग और विकारको नाशता है और दाह, पित्त, परिश्रम, ग्लानिको नाशता है और भ्रमकी शांति करता है ॥ ४० ॥

खस, शिखिपुच्छ व्यजनवायुके गुण ।

उशीरमूलरचितं व्यजनं शिखिपिच्छकैः ॥ व्यजनेन सुगन्धः
स्यान्मन्दशीतगुणात्मकः ॥ ४१ ॥ ग्लानिसूच्छाभ्रमशोषविस-
र्पविषदर्पहा ॥ इति पञ्चविधो वायुरुपायेन कृतो नृणाम् ॥ ४२ ॥

खसकी जड़ और मयूरके पंखका पंखा डुलानेसे सुगन्ध और कुछ शीत गुणवाला होता है ॥ ४१ ॥ ग्लानि, मूर्च्छा, भ्रम, शोष, विसर्प, और विषको हटाता है; इस तरह पांच प्रकारका वायु उपायसे किया हुआ होता है ॥ ४२ ॥

षडृतुओंमें उत्तम दिग्वायु ।

शिशिरे पूर्वकृद्वायुराग्नेयो हेमन्ते मरुत् । वसन्ते दक्षिणो वायु-
ग्रीष्मे नैऋत्यकस्तथा ॥ ४३ ॥ वर्षासु पश्चिमो वायुर्वायव्यः
शरदि स्मृतः ॥ हेमन्ते शिशिरे चैव प्रशस्तश्चोत्तरोऽनिलः ॥ ४४ ॥

शिशिर अर्थात् माघ, फाल्गुनमें पूर्वका वायु अच्छा है, हेमन्त अर्थात् मृगशिर, पौषमें आग्नेय-
दिशाका वायु अच्छा है, वसन्त अर्थात् चैत्र, वैशाखमें दक्षिणका वायु अच्छा है, ग्रीष्म अर्थात् ज्येष्ठ,
आषाढमें नैऋतका वायु अच्छा है ॥ ४३ ॥ वर्षा अर्थात् श्रावण भादुआमें पश्चिमका वायु अच्छा है,
शरद् अर्थात् आश्विन, कार्तिकमें वायव्यदिशाका वायु अच्छा है, शिशिर और वसन्त ऋतुमें उत्तरका
वायु भी अच्छा है ॥ ४४ ॥ प्रतिदिन षडृतु ।

अपराह्णे वर्षा वदन्ति निपुणास्तस्मिन्निशीथे शरत्प्रोक्तः शैशि-
रिकस्ततो हिमऋतुः सूर्योदयादग्रतः ॥ मध्याह्ने च तथा वदन्ति
निपुणा ग्रीष्मस्त्वृतुः स्यात्ततो वासन्तो मुनिभिर्ऋतुस्तु कथितो
पूर्वापराह्णे सदा ॥ ४५ ॥

निपुण जन दिनके तृतीय प्रहरमें वर्षा कहते हैं अर्थात् वह समय वर्षाकालके जैसा सुहावन
होता है अर्द्धरात्रिमें शरत् कहा गया है यानी वह समय शरत्कासा समय समझ पड़ता है आधी
रातके अनन्तर शिशिर ऋतु होता है अर्थात् उस समय कुछ शीत सदा लगता है । सूर्योदयसे
कुछ पहिले हेमन्त ऋतु होता है तब भी कुछ शीत रहता ही है वहीं निपुण जन दुपहरके समय
ग्रीष्मकाल कहते हैं क्योंकि दुपहरमें सदा गर्मी जान पड़ती है । मुनियोंका कहना है कि दिनके पूर्व
और परभागमें वसन्त होता है वास्तवमें वह समय वसन्त ऋतुहीकी शोभा धारण करता है ॥ ४५ ॥

अथ सविष वायु ।

कार्तिके मार्गशीर्षे वा माघे चाषाढसंज्ञके ॥

ऋतुसन्धौ च हेमन्ते सविषः स्यात्तु मारुतः ॥ ४६ ॥

कार्तिक, मार्गशीर्ष, माघ और अषाढमें और छः ऋतुओंके सन्धिमें तथा हेमन्त ऋतुमें वायु
सविष होता है ॥ ४६ ॥

स यस्मिन्नगरे देशे ग्रामे वाऽनगरेऽपि वा ॥ संस्पृशेदुल्बणो
वायुर्गोमनुष्येभवाजिनाम् ॥ ४७ ॥ तिलकं गोष्ठु जानीयाद्यक्ष्माणं
मानुषेषु च ॥ गजेषु पावकं विद्याद्वयानां वेद्य उच्यते ॥ ४८ ॥

जिस नगरमें जिस देशमें अथवा जिस गाममें दारुणरूप बिगड़ा हुआ वायु जब गाय,
मनुष्य, हस्ती, घोडा इनको छूता है ॥ ४७ ॥ तब गायोंमें तिलक नाम रोग उपजता है,

१ अपराह्णे वर्षा इति छन्दोभंगो न चार्षत्वे न दोषः अन्यत्रापि यत्र यत्र छन्दोभंगो दृश्यते तत्र तत्र
सर्वत्रार्षो ज्ञेयः ।

और मनुष्योंमें राजरोग उपजता है और हस्तिवोंमें पावक अर्थात् अग्नि उपजता है और घोड़ोंमें वेद्य पीडा उपजती है ॥ ४८ ॥

रक्षणीयं गजे पित्तं श्लेष्मा वाजिषु सर्वदा ॥

पवनोऽयं मनुष्याणां प्रायो रक्षेत सर्वदा ॥ ४९-॥

कुशल बैद्यको हस्तीकी पित्तसे, घोड़ोंकी सबकाल कफसे, मनुष्योंकी वायुसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ४९ ॥

ऋतु भेदसे वातादिकोंका संचय, कोप, उपराम ।

वर्षे वायुः कुप्यतेऽन्तः शरत्सु लीनो वायुः कुप्यते पित्तरोगे ॥

लीयेत्पित्तं शैशिरै श्लेष्मकुञ्जे हेमन्ते वा चीयमानस्तथापि ५० ॥

कोपं याति श्लेष्मरोगो वसन्ते तस्याच्छान्तिः श्लेष्मरोगस्य

चोष्णे ॥ पित्तं यायात्कोपतां ग्रीष्मकाले दृष्ट्वा शान्तिः पैत्तिकी

वार्षिके च ॥ ५१ ॥

ग्रीष्ममें संचित वायु वर्षामें कुपित होता है । वर्षाका कुपित वही वायु शरद्में अन्तर्लीन होकर पित्तरोगका प्रकोप करता है । हेमन्त और वर्षामें लीन हुआ वही पित्त वसन्तमें श्लेष्माका प्रकोप करता है । इसलिये श्लेष्मरोग की शान्ति उष्ण कालमें होती है, ग्रीष्ममें पित्त कोपको प्राप्त होता है और उसी पित्तकी शान्ति वर्षामें देखी जाती है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

अथ वायुका कोप ।

अधोवातमूर्त्रपुरीषस्य रोधात् कषायातिशीतान्निशाजागरेषु ॥

व्यवायेऽथ वाहःश्रमाद्वातिभुक्तत्याऽध्वनि प्रायशो भाषणेनाति-

भीत्या ॥ ५२ ॥ विरूक्षैरतिक्षारतिकैः कटूभिस्तथा यानदोलाश्व-

कोष्ठे रथे वा ॥ खरे कुञ्जरे मन्दिरारोहणेनोपवासे भवेन्मारुतस्य

प्रकोपः ॥ ५३ ॥ सुशीते दिने दुर्दिने स्नानपीतेऽपराह्णे निशा

जागरे वासरे वा । प्रकोपं मरुद्याति वर्षास्ववश्यं तथा सेवितो

याति भुक्तस्य जीर्णम् ॥ ५४ ॥ मसूराः कलायाश्च निष्पावकाश्च

महामाषशुभ्रा यवाश्चामलाः स्युः ॥ महाचावलाः कृष्णधान्याः

प्रदिष्टा हिमाः कडुनीवाररक्ताश्च शाल्यः ॥ ५५ ॥

१ वर्षशब्दः अकारांतोऽपि वृष्टिवाचकः (श.स्तो,) २ ('भुजङ्गप्रयतं भवेद्यैश्चतुर्मिरिति वृत्तत्वाकरानु-
रोधात्' द्वितीययगणे प्रवर्णस्य दैर्घ्यमावश्यकं परमार्षत्वात् क्षन्तव्यमिति ।

तथा कोद्वेगश्चाग्नश्यामाक एतैः कृतं चौदनं वा यवागूर्शृतं वा ॥
कलिङ्गानि वास्तूकचिह्नीकपूती पलाण्डुस्तथा गृञ्जनं कन्दशा-
कम् ॥ ५६ ॥ इमान्सेवितात्यर्थमेति प्रकोपं समीरस्य चोक्तः
सुरासम्भवस्तु ॥ ततो यत्नतो रक्षणीयं मनुष्यैः शुभं चेहसे त्वं
सदा रोगशान्तिम् ॥ ५७ ॥

अधोवात--मूत्र--विष्टा--के रोकनेसे कसैले और शीतल पदार्थको सेवनेसे और रात्रिमें जागनेसे, मैथुनके करनेसे, नित्यप्रति श्रम करनेसे, अति भोजनको खानेसे और मार्गमें अति चलनेसे, ज्यादा बोलनेसे, अति भयसे ॥ ५२ ॥ रूखे पदार्थसे और अत्यंत नमकीन कडुआ, चर्चरा, खानेसे, डोला अर्थात् पीनस--घोडा, ऊंट, रथ, गधा, हस्ती और ऊंचे मकानमें चढ़नेसे उपवासे रहनेसे वायुका प्रकोप होता है ॥ ५३ ॥ बहुत शीतल दिनमें मेघआदिसे आच्छादित हुए दुर्दिनमें दुपहरके पीछे स्नान करनेसे तथा रात्रिमें जागकर जल पीनेसे और वर्षाकृतुमें दिनमें वायु कोपको प्राप्त होता है और सेवित किया वायु कियेहुए भोजनको जराता है ॥ ५४ ॥ मसूर, मटर, मोठ, चौला, जुवार, जव, मोटेचावल, कृष्णअन्न, शीतल अन्न, कांगनी, नीवार धान्य, लाल अन्न, तूरीअन्न ॥ ५५ ॥ कोदूअन्न, शामकका भात या मांड, इन्द्रजव, बथुवा, चाकवत अर्थात् बथुवा विशेष, प्याज, गाजर, कंद शाक ॥ ५६ ॥ इनके जादे सेवनेसे वायुका प्रकोप होता है । इसलिये यदि तुम शुभ और रोगकी शान्ति सदा चाहते हो तो मनुष्योंको इनसे सदा वचाना ॥ ५७ ॥

अथ पित्तप्रकोपकानिदान ।

तथात्युष्णकट्फलरूक्षैर्विदाहैः ससीधूसुरासेवनेनोपवासैः ॥
सुधर्मेण क्रोधेन वा स्वेदनेन व्यवायेन वा याति कोपश्च पित्तम् ॥ ५८ ॥ कुलित्थाढकीयूषमूलाकशिग्रुशठीसर्षपाराजिकाशा-
कमेव ॥ निशाजागरेणापि युद्धे श्रमे वा घनान्ते शरत्सु प्रकोपः
प्रदिष्टः ॥ ५९ ॥ सदम्लेन वाप्युष्णकाले शरत्सु भृशं वासरे मध्यमे
वा निशीथे ॥ सुजीर्णे रसे भुक्तमात्रे प्रकोपः प्रदिष्टो विदैः
कोविदैः पैत्तिकः स्यात् ॥ ६० ॥

अतिगर्म, चर्चरा, खट्टा, रूखा, और विदाही, सीधू तथा मदिराके, सेवनेसे, गर्मीसे, क्रोधसे पसीना निकालने और भोग करनेसे पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ५८ ॥ कुलथी

१ 'यवागूर्गुणिका श्राणा विलेपी तरला च सा' इत्यमरः । यवागूर् षड्गुणजले सिद्धा स्यात् कृष्णा घना ।
"तण्डुलेमुद्गमापैश्च तिलैर्वा साधिता हिता । यवागूर्ग्राहिणी वत्या तर्पणी वातनाशिनी ॥ शार्ङ्गधरो ।

अरहरका थूप, मूली, सहिजना, कचूर, सरसों और राईका शाक अथवा इन्होंसे संयुक्त शाक खानेसे और चर्पाकृतुमें रात्रिके जागने, युद्ध करने, परिश्रम करनेसे शरदःकृतुमें पित्त कोपको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥ अति खट्टे पदार्थसे, गरम समयमें, अतिशय करके दिनके मध्यभागमें, अर्ध रात्रिमें, भोजनका रस जीर्ण होते समय और खानेहीके समय विद्वान् वैद्योंने पित्तका प्रकोप बताया है ॥ ६० ॥

अथ कफप्रकोपकानिदान ।

निशाजागरे वासरे वातिनिद्रा सुशीतोदसंसेवने शीतले वा ॥
पयःपानपीयूषमिक्षुस्तिलैस्तु तथा गृजनैः कन्दशाकैरथापि
॥ ६१ ॥ सदा सेवितैर्वास्तुकैश्चाणुमत्स्यैर्दधि पिच्छिलैर्माषमद्यै-
र्गुह्यभिः ॥ अतिस्निग्धसंसेवनभोजनेषु प्रदिष्टः कफस्य प्रकोपो
वसन्ते ॥ ६२ ॥ दिनान्ते प्रभाते निशान्ते नरस्य प्रकोपः प्रदि-
ष्टोऽपि भुङ्क्ते न जीर्णे ॥ प्रदिष्टो बुधैः कोविदैरेव रोगः कफस्योपप-
त्तिं च जानीहि कष्टम् ॥ ६३ ॥ सुशीतेऽथवा शीतकाले
निशान्ते नरस्य प्रकोपः प्रदिष्टोऽपि भुङ्क्ते ॥ न जीर्णे प्रदिष्टो
बुधै रोगवेगो निदानं कफस्येति चोक्तं सुधीभिः ॥ ६४ ॥

रात्रिमें जागनेसे और दिनमें अति शयन करनेसे और सुन्दर शीतल पानीको तथा शीतल देशको सेवनेसे, नवीन व्याई गायका दूध, ईख, तिल, गाजर, कन्दशाकके सेवनेसे ॥ ६१ ॥ बकराके अण्डे तथा मछलीको सदा सेवनेसे और दही, लवसादार पदार्थ, उडद, मदिरा, भारी पदार्थ, अतिचिकने पदार्थ सेवनेसे वसन्तमें दुष्ट हुए कफका कोप होता है ॥ ६२ ॥ दिनके अन्तमें, प्रभातमें, रात्रिके अन्तमें, भोजनके न पकनेसे कफका कोप होता है इसे विद्वान् वैद्य रोग ही कहते हैं इस भांति कफकी उत्पत्ति कष्ट करनेवाली जानो ॥ ६३ ॥ शीतल देशमें, शीतल समयमें, रात्रिके अन्तमें, भोजनको नहीं जीर्ण होनेमें, मनुष्यके कफका प्रकोप बुद्धिमानोंने कहा है ॥ ६४ ॥

अथ दौ दोषोंके कोपकी उत्पत्ति ।

ऋतौ विपर्ययासगते यदा च प्रकोपनं यस्य यथा प्रदिष्टम् ॥
तत्सेवमानस्य नरस्य रोगः स्याद्वन्द्वजो नाम विकारकारी
॥ ६५ ॥ यस्मिन्नृतौ वातविकोप उक्तस्तस्मिन्यदि श्लेष्मवि-
कोपनानि ॥ संसेवते वा मनुजस्तदास्य भवेत्प्रकोपः कफवात-

योश्च ॥ ६६ ॥ यस्मिन्मरुत्कुप्यति सेवते यः पित्तस्य कोपप्र-
कराणि यानि ॥ विपर्ययो वा ऋतुधान्ययोश्च स पित्तवातप्रभ-
वस्तदा स्यात् ॥ ६७ ॥

जब विपरीतपनेको ऋतु प्राप्त हो जावे तब जिसका कोप जैसे कहा है उसको सेवने-
वाले मनुष्यके द्वंद्वज अर्थात् दो दोषोंसे उपजा रोग उत्पन्न होता है ॥ ६६ ॥ जिस ऋतुमें
वायुका कोप कहा है उस ही ऋतुमें जो कफको कुपितकरनेवाले पदार्थोंको मनुष्य सेवे तब उस
मनुष्यके कफका और पित्तका कोप होता है ॥ ६६ ॥ जिस ऋतुमें वायु कोपता है उस ऋतुमें
पित्तको कुपित करनेवाले पदार्थोंको सेवे अथवा ऋतुका और ऋतुके योग्य अन्नका विपरीतपना
होवे तब पित्त वातसे उपजा रोग होता है ॥ ६७ ॥

अथ सन्निपातकी उत्पत्ति ।

विपर्ययासगते काले रसे विपरिसेविते ॥ तदा स्यात्सन्निपातो
हि रोगोपद्रवकारकः ॥ ६८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे
दोषप्रकोपो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जब काल विपरीतपनेसे वर्ताव करे और रस भी विपरीतपनेसे सेवित किया जावे तब सन्नि-
पात उपजता है यह रोगमें उपद्रव करता है ॥ ६८ ॥ इति बुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रि-
अनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थानेः दोषप्रकोपो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ रसोंके गुणदोषका वर्णन ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि रसानां गुणान् ॥

येन विज्ञानमात्रेण रसानां गुणविद्भवेत् ॥ १ ॥

इसके अनन्तर रसोंके गुण और दोषको कहता हूं जिसके जाननेसे ही रसोंके गुणको
जाननेवाला होजाता है ॥ १ ॥

छः रस ।

तिक्तः कषायो मधुरोऽम्लकश्च क्षारः कटुः षड्रसनामधेयम् ॥

द्वयं द्वयं वातकफप्रकोपनं द्वयं तथा पित्तकरं वदन्ति ॥ २ ॥

मधुर, कसैला, कडुआ, खट्टा, खारा, चर्चरा ऐसे छः प्रकारके रस हैं इन्हेंमें दो दो रस
वात और कफको कोपते हैं और दो रस पित्तको करते हैं ॥ २ ॥

१ अस्मिन्तृतीयचरणे एकाक्षराधिक्यमस्ति ।

षट्सकै गुणदोषवर्णन ।

क्षारः कषायः पवनप्रकोपी कफप्रकोपी मधुरोऽथ तिक्तः ॥
कट्फलको पित्तविकारिणोच कट्फलको वातशमौ प्रदिष्टौ ॥ ३ ॥
पित्तस्य नाशी मधुरः सतिक्तः कटुकपायो शमनो कफस्य ॥
अन्योन्यमेतच्छयनं वदन्ति परस्परं दोषविवृद्धिमन्तः ॥ ४ ॥

खारा और कसैला रस वायुको कोपता है, मधुर और कडुआ रस कफको कोपता है, चर्चरा और खट्टा रस पित्तके विकारको करता है, और कटु तथा खट्टा रस वातको शांत करता है ॥ ३ ॥ मधुर और कडुआ रस पित्तको नाशता है, चर्चरा और कसैला रस कफको शांत करता है यही एक दूसरेके दोषको शमन करता है और परस्पर मिलकर दोषको बढ़ाते हैं ॥ ४ ॥

अथ रसगुणोंके गुणकर ।

मधुरकटुकावन्योन्यस्य प्रकर्षविधायिनौ लवणविद्युतोऽम्लीकः
प्रोक्तो विशेषरसानुगः ॥ अविकृतस्तथा तिक्तैर्युक्तः कषायरसो
लघुर्भवति सुतरां स्वादुः श्रेष्ठो गुणं प्रकरोति वै ॥ ५ ॥

मधुर और चर्चरा रस आपसके प्रकर्षको करते हैं । नमकसे विशेष करके युक्त हुआ खट्टा रस विशेष रसके पश्चात् गमन करता है, विकारको नहीं प्राप्त होता और कडुआ रससे युक्त हुआ ऐसा कसैला रस हलका होता है और अच्छीतरह स्वादु रस सेवित किया जावे तो गुणको करता है ॥ ५ ॥

वातादिविरुद्धरस ।

कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम् ॥

कट्फललवणाः पित्तं स्वाद्वल्ललवणाः कफम् ॥ ६ ॥

चर्चरा, कडुआ, कसैला ये रस वायुको कोपते हैं, चर्चरा, खट्टा, नमकीन रस पित्तको कोपते हैं, मधुर, खट्टा, सलोना ये रस कफको कोपते हैं ॥ ६ ॥

दोषोंके विरोधी रसोंका वर्णन ।

समीरणे तु नो देयाः कटुतिक्तकषायकाः ॥

पित्ते कट्फललवणाः स्वाद्वल्ललवणाः कफे ॥ ७ ॥

चर्चरा, कडुआ, कसैला रस वायुमें नहीं देने चाहिये । चर्चरा, खट्टा, सलोना रस पित्तमें नहीं देने चाहिये । मधुर, खट्टा, सलोना, रस कफमें नहीं देने चाहिये ॥ ७ ॥

वातादिकोंमें रसयोजना ।

स्वाद्वल्लवणान्वाते तिक्तस्वादुकषायकान् ॥

पित्ते कफे तिक्तकटुकषायान्योजयेद्भसान् ॥ ८ ॥

गंधुराम्लौ क्षारकटुकौ तिक्तकषायकौ चैत्येतावन्योन्यरसविरोधिनी न भवेताम् ।

वायुमें मधुर, खट्टा, सलोना रस युक्त करे, पित्तमें कटुआ, गीठा, कसैला रस युक्त करे, कफमें कटुआ, चरपरा, कसैला रस युक्त करे ॥ ८ ॥ मधुर रस और खट्टा रस अविरोधी हैं । खारा और चर्चरा रस अविरोधी हैं, कटुआ और कसैला रस अविरोधी हैं ॥

अथ मधुर रसका वर्णन ।

यः स्वादुर्भ्रमशोषहारिबलकृद्दीर्घ्यप्रदः पुष्टिदः प्रहादं रसने करोति तदनु श्लेष्मप्रवृद्धिं ततः ॥ पित्तानां दसनः श्रमोपशमनो वृष्यो नराणां हितः क्षीणानां क्षतपाण्डुनेत्ररुजसंहर्ता भवेन्माधुरः ॥ ९ ॥

जो स्वादु हो भ्रम और शोषका हरता हो, बलको करता हो, दीर्घ्यको देनेवाला हो, पुष्टिको देता हो, खानेके समय आनन्द देता हो, पीछे कफकी वृद्धिको करता हो, पित्तको हरता हो, परिश्रमको शांत करता हो, मनुष्योंको पुष्ट करता हो, क्षीण मनुष्योंका कल्याण करनेवाला हो, और घाव पांडुरोगनेत्ररोगोंको हरता हो वह मधुर रस है ॥ ९ ॥

अथ कटुआरसका वर्णन ।

यस्तिक्तः कफवायुसंहतिकरः कुष्ठादिदोषापहः शान्तः सर्वरुजापहो भ्रमहरो रुच्यो न संक्लेदनः ॥ जिह्वास्फोटकनाशनोऽथ भवति क्षीणक्षतानां हितो वक्रोल्लासकरः प्रकृष्टकथितो निम्बादिकास्वादकृत् ॥ १० ॥

कटुआ रस कफवायुका संहार करता है, कुष्ठआदि दोषको नाशता है, शांतस्वरूप है, सब रोगोंको हरता है, भ्रमको हरता है, रुचिकर है, गीलापन नहीं लाता, और जीभकी फुन्सियोंको नाशता है, क्षीण और घाववालोंको हित है, मुखमें आनन्दको करता है और नींद आदिके स्वादको करता है ॥ १० ॥

अथ चरपरे रसका वर्णन ।

नेत्रं स्रावयते मुखं विदहते कर्णस्य तापं वहन्वीभत्सं तनुते मुखं विकुरुते पित्तासृजः कोपनम् ॥ अग्नीनध्युषते क्षतं विदहते जीर्णं न शस्तो भवेद्वातान्नाशयते कफस्य कटुको रौद्रो महान्दाहकः

१ न जाने कुत्रत्योऽयं विचारः सत्योऽपि महर्षिकथनसरणिं नावहति प्रतीयते प्रक्षिप्तः ।

चर्चरा रस नेत्रसे आंसू गिराता है, मुखको विशेष करके दग्ध करता है, कानोंमें जलन पैदा करता है, भयानकरूप मुखको करता है, पित्तको और रक्तको कुपित करता है, जठराग्निको जगाता है, घावको जलाता है, और पुराना चर्चरा रस श्रेष्ठ नहीं होता है, वायुको नाशता है, कफको दग्ध करता है और अति दारुणरूप है ॥ ११ ॥

अथ खट्वे रसका वर्णन ।

जिह्वाक्लेदं जनयति तथा नेत्रनिस्सीलनं च वीभत्सं वा जनयति
सदा वातरोगापहारी ॥ कण्डूकुष्ठक्षतरुजकरो नो हितः शोफिनः
स्यादम्लः प्रोक्तो मरुतशमनोऽसृक्प्रकोपं तनोति ॥ १२ ॥

खट्वा रस जीभमें पानी लाता है, नेत्रोंको मीचता है, सब कालमें भयानकपनेको उपजाता है, वातके रोगको हारता है, खाज कुष्ठ, घाव रोग उपजाता है, शोजावालेको हित नहीं है, वायुको शांत करता है, रक्तके कोपको विस्मृत करता है, ऐसा तिक्त रस कहा गया है ॥ १२ ॥

अथ कसैले रसका वर्णन ।

जिह्वां कण्ठं ग्रसति नितरां ग्राहकश्चातिसारे श्लेष्मव्याधेरुप-
शमकरः श्वासकासापहर्ता ॥ हिक्कां शूलं हरति नितरां शोधनः
स्याद्गणानां प्रोक्तश्चायं समधिकमुणः श्रेष्ठकाषायनामा ॥ १३ ॥

कसैला रस जीभको और कंठको ग्रसता है, अतीसारको बंद करता है, कफकी व्याधिको शांत करता है, श्वास और खाँसीको नाशता है, हिचकीको और शूलको हरता है और घावोंको निरंतर शोधता है, यह रस अधिक गुणोंवाला कहा है ॥ १३ ॥

अथ खारारसके वीर्यका वर्णन ।

क्षारः क्लेदं जनयति मुखेऽस्वादुरुष्णो विदाही शूलश्लेष्मारुचि
हरतृषामूत्रकृच्छोषणश्च ॥ आमाहारं जनयति पुनर्वह्निसन्धुक्षणः
स्याच्छ्रेष्ठः प्रोक्तः स हि रसमहान्सर्वतो योग्यभूतः ॥ १४ ॥
इति षड्रसवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

खारा रस मुखमें ग्लानि उपजाता है, स्वादु नहीं है, गर्म है, विशेष करके दाहको करता है, और शूल, कफ, अरुचि, तृषा, मूत्र इन्हेंको करता है, शोषनेवाला है, बारंवार अफाराको उपजाता है, जठराग्निको जगाता है, सब जगह योग्य नहीं है कहीं कहीं अच्छा भी है ॥ १४ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

प्रथमस्थाने षड्रसवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥



सप्तमोऽध्यायः ७.

अथ पानीका वर्ग ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि पानीयानि पृथक्पृथक् ॥

शृणुध्वं च समासेन गुणान्गुणविपर्ययम् ॥ १ ॥

अब अलग अलग पानीके गुण और अगुण संक्षेपसे कहूँगा सुनो ॥ १ ॥

अथ जलके भेद ।

द्विविधं चोदकं प्रोक्तमन्तरिक्षं तथौद्भिदम् ॥ आन्तरिक्षं तु द्वि-
विधं गाङ्गं सामुद्रिकं पयः ॥ २ ॥ तद्वच्चतुर्विधं प्रोक्तमन्तरिक्ष-
समुद्भवम् ॥ भूमौ निपतितं तच्च जातं चाष्टविधं जलम् ॥ ३ ॥
गाङ्गसामुद्रविज्ञानं कथयिष्यामि सांप्रतम् ॥ धारितं येन पात्रेण
लक्ष्यते तेन तद्विधम् ॥ ४ ॥

पानी दो प्रकारका कहा है आन्तरिक्ष अर्थात् आकाशका, दूसरा औद्भिद अर्थात् पृथिवीका और आन्तरिक्ष पानी भी दो प्रकारका है एक गांग, दूसरा सामुद्रिक ॥ २ ॥ वैसे ही आकाशसे उगजा पानी चार प्रकारका कहा है और पृथिवीमें पतित हुआ वही पानी आठ प्रकारका है ॥ ३ ॥ गांग और सामुद्र पानीके विज्ञानको अब कहता हूँ । जिस पात्र करके धारण किया जावे उसीप्रकारसे दीखता है ॥ ४ ॥

अथ गांगपानीकी परीक्षा ।

धौतं शुद्धं सितं वस्त्रं चतुर्हस्तप्रमाणकम् ॥ दण्डास्त्रिहस्ताश्चत्वार-
श्चतुष्कोणेषु बन्धयेत् ॥ ५ ॥ तस्मात्परीक्ष्यं तत्तोयं शुद्धे रौप्य-
मयेऽथवा ॥ कांस्यपात्रे समुद्धृत्य परीक्षेत भिषग्वरः ॥ ६ ॥
शुद्धकार्पासतूलं वा श्वेतशाल्योदनस्य वा ॥ पिण्डिका तत्समा-
क्षिता श्वेततां याति सा पुनः ॥ ७ ॥ श्वेता तु निर्मला पिण्डी
शुद्धश्च निर्मलं पयः ॥ तद्गाङ्गं सर्वदोषघ्नं गृहीताङ्गं सुभाजने ॥ ८ ॥

धोया, शुद्ध, श्वेत चार हाथका कपड़ा तीन तीन हाथके चार दंडोंसे चारो कोनोंमें बांधे और उसमें जल छोड़के टपकावे, अथवा शुद्ध चांदीके बर्तन या काँसेके पात्रमें शुद्ध कपासकी रुई या सपेद चावलके भातकी पिण्डी छोड़े । यदि इन सब कामोंसे भी पानी साफ ही निकले तो समझ लेना चाहिये गंगाका जल है । भातकी पिण्डी भी सपेद ही चाहिये और वह जल सब दोषोंका नाश करने वाला है ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

गंगाजलके गुण ।

तद्धारयेच्च सतिसान्वलयं मेध्यं रसायनम् ॥ श्रमकृमपिपासांश्च
कण्डूदोषनिवारणम् ॥ ९ ॥ लघु मूर्च्छातृपाछर्दिमूत्रस्तम्भवि-
नाशनम् ॥ गङ्गोदकस्य वृष्टिः स्यादिवसे वा प्रदृश्यते ॥ १० ॥

बुद्धिमान् मनुष्य इसे धारण करे, वह बरमे हित है, पवित्र है, रसायन है, और ग्लानि, परि-
श्रम, प्यास इन्हींको हरता है, खाजके दोषको दूर करता है ॥ ९ ॥ हलका है और मूर्च्छा, तृपा,
छर्दि और मूत्रस्तम्भको नाशता है अथवा सूर्यके दीखते हुए जो वर्षता है वह गंगापानी है ॥ १० ॥

अथ सामुद्र पानीका लक्षण और गुण दोष वर्णन ।

आविलं समलं नीलं घनं पीतद्यथापि च ॥ सक्षारं पिच्छिलं चैव
सामुद्रं तन्निगद्यते ॥ ११ ॥ सघनं कफकृच्चैव कण्डूक्षीपदकार-
कम् ॥ सवातलं च विज्ञेयं रक्तदोषार्तिकारणम् ॥ १२ ॥

साफ न हो, मलसे सहित हो, नीला हो, भारी हो, पीला हो, खारसे संयुक्त हो, गाढा हो,
तो उसको सामुद्रपानी कहते हैं ॥ ११ ॥ यह घना होता है, कफको करता है, खाजको और
क्षीपद रोगको उपजाता है, वातल है, रक्तके रोगोंकी पीड़ाकी जड़ है ॥ १२ ॥

अथ चार प्रकारकी वृष्टि ।

द्विविधमुदकं श्रोतं तथा वक्ष्ये चतुर्विधम् ॥
रात्रिवृष्टिर्दिवावृष्टिर्दुर्दिनावाक्ष्णोद्भवा ॥ १३ ॥

इस तरह गंग और समुद्र भेदसे दो प्रकारका जल कहा, अब चार प्रकारका कहूँगा । रात्रिको
दिनकी, दुर्दिनकी और चलते वादलोंकी इस तरह चार प्रकारकी वृष्टिके चार ही भाँतिके जल
होते हैं ॥ १३ ॥

अथ रात्रिमें वर्षाहुए पानीके गुण दोष वर्णन ।

निशाजलं कफकरं घनशीतगुणात्मकम् ॥
सामुद्रतोयस्य समं विज्ञेयं वातकोपनम् ॥ १४ ॥

रात्रिमें वर्षा हुआ पानी कफको करता है, भारी है, शीतल गुणवाला है, सामुद्रसंज्ञक पानीके
समान है और वातको कोपता है ॥ १४ ॥

अथ दिनको बरसे पानीके गुण दोष वर्णन ।

दिवा सूर्याशुतप्ताश्च मेघा वर्षन्ति यत्पयः ॥
तत्कफं पिपासांश्च लघु वातप्रकोपनम् ॥ १५ ॥

दिनमें सूर्यके किरणोंसे तप्त हुए जो मेघ पानी वर्षाते हैं वह कफको नाशता है, प्यासको हरता है, हलका है, वातको कुपित करता है ॥ १५ ॥

अथ दुर्दिनमें बरसे पानीके गुण दोष वर्णन ।

दुर्दिने वृष्टिसम्पातं वातभूतं सवातलम् ॥

कफकृच्छोषहननं तर्पणं दोषकोपनम् ॥ १६ ॥

दुर्दिनमें वर्षा हुआ पानी वातल है, कफको करता है, शोषको हरता है, तृप्तिको, करता है। दोषोंको कुपित करता है ॥ १६ ॥

अथ क्षणवृष्टिके गुण ।

तथा वा क्षणवृष्टिश्च दोषरोगकरी नृणाम् ॥

कण्डूत्रिदोषजननं पानीयं न प्रशस्यते ॥ १७ ॥

जो क्षण क्षण में वृद्धि होती है वह वर्षा मनुष्योंके दोषको और रोगको करती है और इसका पानी खाजको और त्रिदोषको उपजाता है और अच्छा नहीं है ॥ १७ ॥

अथ श्रावणवृष्टिके गुण ।

मेघा वसन्ति यत्तोयं सशैलवनकानने ॥

श्रावणे निन्द्यते भूमौ कराम्बु वर्षते रविः ॥ १८ ॥

जो श्रावणके महीनेमें सूर्य अपनी किरणोंसे पर्वत, वन, उपवन और पृथ्वीमें वर्षा करता है, वह निन्दित जल होता है (कराम्बु वर्षते रविः) इसका अर्थ हस्तनक्षत्रपर सूर्य होता है और श्रावणमें मेघ वर्षता है वह निन्दित है ऐसा कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ भादोंके वृष्टिके गुण ।

सघनं नाभसं नीरं श्लेष्मकृद्वातकोपनम् ॥

शमनं पित्तरोगाणां मधुरं रक्तदोषकृत् ॥ १९ ॥

भादोंकी वर्षाका पानी गाढ़ा है, कफको करता है, वातको कोपता है, पित्तके रोगोंको शांत करता है, मधुर है और रक्तदोषको करता है ॥ १९ ॥

अथ आश्विनीकी वृष्टिके गुण ।

रूक्षं पित्तकरं चाम्लं गुल्मरक्तविकारकृत् ॥

चित्रानक्षत्रसम्भूतं खरं सस्यविदोषकृत् ॥ २० ॥

आश्विनमें हुई वर्षाका पानी रूखा है, पित्तको करता है, खट्टा है, गुल्मको और रक्तके विकारको करता है, चित्रा नक्षत्रमें वर्षा हुआ पानी तेज है और खेतीके दोषको करता है ॥ २० ॥

अथ कार्तिककी वृष्टिके गुण ।

कार्तिकीवृष्टिसम्भूतं स्वातिसन्तापशीतलम् ॥ नाशनं च
त्रिदोषाणां सर्वसस्यप्रवर्धनम् ॥ २१ ॥ शीतलं बलकृद्दृष्यं
विदाहज्वरनाशनम् ॥

कार्तिककी वर्षाका पानी स्वातिके संतापको शीतल करता है, त्रिदोषको नाशता है, सब प्रकारकी खेतीको बढ़ाता है ॥ २१ ॥ शीतल है, बलको करता है, पुष्टिमें हित है, पित्त-ज्वरको हटाता है ॥

अथ स्वातीजलके गुण ।

क्वचित्पुण्यतरे देशे शरद्वर्षति साधवम् ॥ २२ ॥ पित्तज्वर-
विनाशाय सस्यनिष्पत्तिहेतवे ॥ अम्बरस्थं सदा पथ्यममृतं
स्वातिसम्भवम् ॥ २३ ॥ गगनाम्बु त्रिदोषघ्नं गृहीतं यच्च भाजने ॥
बल्यं रसायनं मेध्यं यन्त्रापेक्ष्यं ततः परम् ॥ २४ ॥

कहीं कहीं अति पवित्रदेशमें शरद्वर्षति उत्तम पानीको वर्षाता है ॥ २२ ॥ यह पित्तज्वरको हरता है और खेतीकी सिद्धिका कारण है । स्वातीनक्षत्रमें आकाशसे गिरा जल पथ्य है, अमृत-रूप है ॥ २३ ॥ सुन्दरपानमें गृहीत किया आकाशका पानी त्रिदोषको नाशता है, बलमें हित है, रसायन है, पवित्र है । भभकेका खींचा हुआ जल इससे परे जानना ॥ २४ ॥

अथ अकालवृष्टिके लक्षण और गुण ।

अनार्तवं विमुञ्चन्ति जलं जलधरास्तु यत् ॥

पतितं तत्रिदोषाय सर्वेषां देहिनामपि ॥ २५ ॥

जो बादल समयके बिना पानीको वर्षाते हैं वह पानी सब मनुष्योंके त्रिदोषको करता है ॥ २५ ॥

अथ अकालमें वर्षे हुए पानीका लक्षण ।

अकाले वृष्टिसन्तापसम्भूतं तद्विकारकृत् ॥

विशेषाच्छ्लेष्मरोगाणां कारणं न प्रशस्यते ॥ २६ ॥

अकालमें वृष्टि और संतापसे उत्पन्न वह जल विकारी है । विशेष करके श्लेष्माके रोगोंका हेतु है उसकी प्रशंसा नहीं ॥ २६ ॥

अथ धारसंज्ञक आदि चार प्रकारके पानीका लक्षण ।

तथा धारं च कारं च तौषारं हैममेव च ॥

चतुर्विधं समुद्दिष्टं तेषां वच्मि गुणागुणान् ॥ २७ ॥

धार, कार, तौषार, हैम इन भेदोंसे पानी चार प्रकारके हैं उन्हींके गुण और दोषको कहता हूँ । (धार वृष्टिका जल, कार, ओलोंका जल, तुषार ओसका पानी और हैम वर्षका जल है) ॥ २७ ॥

अथ कारजलकी उत्पत्ति ।

धारं चतुर्विधं प्रोक्तं वक्ष्ये कारं महामते ॥ श्रीमतामतिप्रज्ञा-
नां हिताय रुजशान्तये ॥ २८ ॥ स्वर्णद्याः शीतवातेन मेघवि-
स्फूर्जसङ्कुलम् ॥ शीताम्बु कठिनं भूत्वा शिलं जातं हिमेन तु
॥ २९ ॥ पश्चात् सूर्यस्य सन्तापात्किञ्चिद्द्रवते जलम् ॥
वमन्ति मेघाः सलिलशकलं शीतलं मतम् ॥ ३० ॥

धारसंज्ञक पानीको गंगआदि चार प्रकारसे मैं कह चुका हूँ । अब हे महामते ! कारसं-
ज्ञक पानीको कहूँगा जो श्रीमान् और बड़े पंडितोंके कल्याणके लिये और रोगकी शांतिके
लिये है कहता हूँ ॥ २८ ॥ गंगाके शीतल वायुसे और मेघकी गर्जनासे मिला शीतल जल
ठंडकके मारे ओला बन जाता है ॥ २९ ॥ पीछे सूर्यके संतापसे कुछ जल द्रवित हो जाता है
तब मेघ पानीके किनके अर्थात् ओलोंको वर्षाते हैं उन्हींका पानी शीतल माना है ॥ ३० ॥

अथ कारजलके गुण ।

कारं शीतगुणैः श्रमोपशमनं शोषार्तिनिर्णाशनं मूर्छामोहशि-
रोऽर्तिनाशनकरं हिक्कावमेवार्णम् ॥ शोफानां व्रणिनां तु दोष-
शमनं पित्तात्मिकानां हितं शंसन्ति प्रवरं गुणैः प्रतिदिनं तस्मा-
न्न दूरे कृतम् ॥ ३१ ॥

यह कारसंज्ञक ओलोंका पानी शीतके गुणोंसे परिश्रमको शांत करता है और शोषरूपी
पीड़ाको नाशता है और मूर्छा, मोह और शिरकी पीड़ाको नाशता है, हिचकी और छर्दिको दूर
करता है, शोजावालोंके और घाववालोंके दोषको हरता है और पित्तकी प्रकृतिवालोंको हित है,
गुणोंसे श्रेष्ठ है, प्रति दिन इस लिये दूर नहीं किया जाता ऐसा लोग कहते हैं ॥ ३१ ॥

अथ तुषारपानीके गुण ।

तौषारं लघु शीतलं श्रमहरं पित्तार्तिशान्तिप्रदं दोषाणां शमनं
जलार्तिहननं सर्वामयघ्नं परम् ॥ कुष्ठक्षीपदचर्चिकाविषहरं पामा-
विसर्पापहं क्षीणानां क्षतशोषिणां हितकरं संसेव्यते मानवैः ॥ ३२ ॥

तौपारसंज्ञक ओसका पानी हलका है, शीतल है, श्रमको हरता है, पित्तके रोगको शांत करता है, दोषोंको शांत करता है, जलके रोगको हरता है, सब रोगोंको नाशता है और कुष्ठ, छीपद रोग और मकड़ीके बिपको नाशता है, पामाको और विसर्परोगको हरता है, क्षीणपुरुषोंको और क्षितशोषियोंको हितकारी है इसवास्ते मनुष्योंको सेवना चाहिये ॥ ३२ ॥

अथ हिमपानीके गुण ।

हैमं घनञ्च मधुरञ्च कफात्मकञ्च मूर्च्छाश्रमार्तिशमनं
भ्रमनाशनञ्च ॥ पित्तामृजः प्रशमनं रुधिरक्षमञ्च शान्तिं करोति
हिमसम्भववारि सद्यः ॥ ३३ ॥

हैमसंज्ञक बर्फका पानी भारी है, मधुर है, कफकारी है, मूर्च्छाको, श्रमको और भ्रमको हरता है, रक्तपित्तको शांत करता है, रक्तको बंद करता है और शान्तिको शीघ्र करनेवाला है ॥ ३३ ॥

अथ धार पानीके गुण ।

धारं पृथिव्यां पतितं पयस्तु तत्रैव जातं गुणभेदभिन्नम् ॥
नानाविधैर्भेदगुणैश्च सम्यग्जातं जलं चाष्टविधं वदन्ति ॥ ३४ ॥

धारसंज्ञकपानी पृथिवीमें पतित हुआ वहां ही गुणोंके भेदोंसे भिन्न हो जाता है, पीछे अनेक प्रकारके भेद गुणोंसे अच्छीतरह संयुक्त हुआ वही पानी आठ प्रकारसे कहा है ॥ ३४ ॥

अथ नदीआदिके आठ प्रकारका जल ।

नद्यौद्भिदं प्रस्रवणं च चौड्यं कौपं तडागं सरसोद्भवञ्च ॥
वाप्युद्भवं तत्प्रवदन्ति धीरा नीरं समासेन वदन्ति चात्र ॥ ३५ ॥

नदीका, पृथ्वीका, झरनेका, चौड्यका, कूपका, तडागका, सरसका और वावडीका जल धीरलोग बताते हैं अर्थात् इतनीभांतिका जल और भी होता है ॥ ३५ ॥

अथ नदीके पानीका गुण ।

यच्छ्रीमताञ्चैव महीपतीनां सेव्यं तथा योग्यतमं प्रदिष्टम् ॥
लघ्वम्बुनादेयमिदं प्रियं च रूक्षं तथोष्णं शमनञ्च वायोः ॥ ३६ ॥
सन्दीपनं सस्यविनाशनञ्च हिमागमे वा शिशिरे निषेव्यम् ॥
बलप्रदं पथ्यकरं नराणां प्रदिष्टमेतत्तु सदा मिषग्भिः ॥ ३७ ॥

नदीका पानी लक्ष्मीवालोंको और राजालोगोंको अतियोम्य कहा है और लघु है, मधुर है, रूखा है, गरम है, वायुको शांत करता है ॥ ३६ ॥ जठराग्निको जगाता है, खेतीको नाशता है, शीतके आगमनमें अथवा शिशिरशतुमें सेवने योग्य है और बलको देता है, मनुष्योंको पथ्य है ऐसे पंडितोंने सब कालमें कहा है ॥ ३७ ॥

अथ औद्भिद पानीका गुण दोष ।

औद्भिदमुष्णं लघु वातहारि सपैतिकं तृड्ज्वरनाशनञ्च ॥

कुष्ठव्रणानां श्रमशोषिणाञ्च शस्तं न च क्षारगुणोपपन्नम् ॥३८॥

पृथिवीको विदारित कर बड़ी धारासे निकलनेवाला पानी औद्भिद कहाता है, यह पानी गरम है, हलका है, वातको हरता है, पित्तसे संयुक्त है, तृषाको और ज्वरको नाशता है, कुष्ठ और घाव-वालोंको, श्रम और शोषवालोंको श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि नमकके गुणसे युक्त है ॥ ३८ ॥

अथ झरनेके पानीका गुण दोष ।

उष्णं कषायं स्रवणोद्भवञ्च श्लेष्मापहं गुल्महृदामयघ्नम् ॥

कण्डूविसर्पक्षयरोगकारि नानाविधं दोषचयं करोति ॥३९॥

पर्वतके झरनासे उपजा पानी गरम है, कसैला है, कफको हरता है, गुल्मरोगको और हृद्रोगको नाशता है, खाज, विसर्परोग और क्षयरोगको करता है, और अनेक प्रकारके दोषोंको संचित करता है ॥ ३९ ॥

अथ चौड्यसंज्ञक पानीका गुण दोष ।

वदन्ति चौड्यं लवणं तथा गुरु कफात्मकं वारि विकारकर्तृः

हिक्काज्वरं शूलमरोचनं तथा करोति नूनं त्वचि दोषसंग्रहम् ॥४०॥

आप ही शिलासे आकीर्ण हुआ छिद्रमें नीले अंजनके समान पानी हो और लता बेल आदिसे आच्छादित हो तिसको चौड्यसंज्ञक पानी कहते हैं यह पानी सलोना है भारी है, कफको करता है, विकारको उपजाता है हिचकी, शूल, अरोचकको उपजाता है और त्वचा अर्थात् खालमें दोषको और रोगको उपजाता है ॥ ४० ॥

अथ कुयेंके पानीके गुण दोष ।

रूक्षं कफघ्नं लवणात्मकञ्च सन्दीपनं पित्तकरं लघूष्णम् ॥

कौपं जलं वातहरं प्रदिष्टं शरदृतौ नैव हितं न शस्तम् ॥४१॥

कुयेंका पानी रूखा है, कफका नाश करता है, नमकसे संयुक्त है, अग्निको जगाता है, पित्तको करता है, हलका है, गर्म है, वातको हरता है ऐसा कहा गया है, किन्तु शरदृक्तुमें न तो हितकर है न प्रशंसनीय है ॥ ४१ ॥

अथ तलावके पानीके गुण दोष ।

घनं कषायञ्च तडागजं स्यात्स्वादु प्रपाके मधुरं तथैव ॥

सरस्तु शस्तं कफकृत्सवातं ग्रीष्मे हितं न प्रवदन्ति धीराः ॥४२॥

सुंदर पृथिवीके भागमें जहां बहुत वर्षाका पानी इकट्ठा हो उसको तलावका पानी कहते हैं । यह गाढा है, कसैला है, स्वादु है, पाकमें मधुर है, शरदृक्तुमें अर्थात् आश्विन, कार्तिकमें श्रेष्ठ है, कफको करता है, वायुसे सहित है, ग्रीष्मक्तु अर्थात् ज्येष्ठ आषाढमें हित नहीं है ॥ ४२ ॥

अथ सारसपानीके गुणदोष ।

क्षारं घनं वातकफानुकारि त्वग्दोषदं वा कटु दीपनं च ॥

प्रोक्तं विपाके भ्रमशोषकारि स्यात् सारसं नो सुखकारि वारि ४३

पर्वतकी शिला आदिसे रुकी हुई नदीका पानी जहां क्षिरके इकट्ठा होवे उसको सारसपानी कहते हैं । यह पानी खारा है, भारी है, वातको और कफको करता है और खालमें दोषको उपजाता है, कटुआ है, अग्निको जगता है, पाककालमें भ्रमको और शोषको करता है और सुखको देनेवाला नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ बावड़ीके जलके गुण ।

क्षारं कवोष्णं कफवातरोगविनाशनं पित्तकरं कटु स्यात् ॥

शस्तं सदा पित्तविकारिणाञ्च शस्तं न वाप्यं शरदि प्रदिष्टम् ॥ ४४

बावड़ीका पानी खारा, कुछ थोड़ा गरम, कफ वात रोगोंको नाश करनेवाला, पित्तकारक, तीखा और पित्तविकारी मनुष्योंको सदा हितकारी है, परन्तु शरद्वर्षमें हितकारी नहीं है ॥ ४४ ॥

अथ नदियोंकी प्रकृति ।

इति चाष्टविधं प्रोक्तं जलं भिषजसत्तमैः ॥

नादेयं संप्रवक्ष्यामि समुद्रंगामिस्रोतसाम् ॥ ४५ ॥

ऐसे उत्तम वैद्योंने पानी आठ प्रकारसे कहा है । अब नदियोंमें समुद्रको जानेवाली नदियोंका जल कहूंगा ॥ ४५ ॥

तथा प्राच्यां गमाश्चान्याः पश्चिमानुगमास्तथा ॥ तासां गुणानु-
णान्वक्ष्ये समासेन गुणोत्तम ! ॥ ४६ ॥ ससैकता सपाषाणा
द्विविधा चाम्बुवाहिनी ॥ एवं चतुर्विधानद्यो वातपित्त-
कफात्मिकाः ॥ ४७ ॥

पूर्वमें गमन करनेवाली और पश्चिममें गमन करनेवाली जो नदियां हैं उनके गुणदोषोंको हे गुणोत्तम ! विस्तार करके कहूंगा ॥ ४६ ॥ वालुरेतवाली और पत्थरोंवाली ऐसे नदी दो प्रकारसे हैं और पूर्वोक्त दोनोंके मिलनेसे चार प्रकारकी नदी हैं, ये वात पित्त कफसे संयुक्त हैं ॥ ४७ ॥

अथ सदा बहनेवाली नदीके गुण दोष ।

सदावहा वा घनवारिकोष्णा मरुत्कफानां शमनञ्च तस्याः ॥

नीरं वसन्ते हितकृद्विशेषान्नदीभवं नैव हिमागमे च ॥ ४८ ॥

सब कालमें बहनेवाली नदियां भारी पानीवाली होती हैं, कुछ गर्म होती हैं, वायुको और कफको शांत करती हैं; तिन्हेंका पानी चैत्र और वैशाख मासमें विशेष करके हितको करता है और जाड़ेके आगमनमें अच्छा नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ पत्थरोंवाली नदीके गुण दोष ।

घनविमलशिलानां स्फालनाज्जातफेनं बहलसजलवीचीच्छन्न-
संक्षोभद्वसम् ॥ ननु लघु सुखशीतं नाति चोष्णं घनञ्च हरति
पवनपित्तं श्लेष्मकृद्धारि सम्यक् ॥ ४९ ॥

भारी और विशेषकरके मलोंवाले ऐसे पत्थरोंके संयोगसे झागोंवाला और बहुतसे तरंगोंके क्षोभसे गर्मको प्राप्त हुआ और सुन्दर शीतल और अतिगर्म नहीं और भारी ऐसा पानी घातको और पित्तको अच्छीतरह हरता है और कफको पैदा करता है ॥ ४९ ॥

अथ वाल्दरेतवाली नदीके पानीके गुण दोष ।

सघनविमलतोयं सैकतायाः प्रवाहे न च भवति लघुत्वं श्लेष्म-
कृद्घ्नन्ति पित्तम् ॥ भवति मधुरमेवं किञ्चिदुष्णं कषायं भवति
पवनकारि शोषमूच्छां निहन्ति ॥ ५० ॥

वाल्दरेतके प्रवाहमें यह पानी भारी नहीं है, विशेष करके मलसे रहित नहीं है, हलका भी नहीं है, कफको करता है, पित्तको हरता है, मधुर है कुछ गर्म है, कसैला है, पवनको करता है, शोषको और मूच्छाको नाशता है ॥ ५० ॥

अथ उत्तरसे बहनेवाली नदियोंके और पानीके गुण दोष ।

हिमवत्प्रभवा नद्यः पुण्या देवर्षिसेविताः ॥ घनपाषाणसिकतावा-
हिन्यो विमलोदकाः ॥ ५१ ॥ हन्ति वातकफं तोयं श्रमशोषवि-
नाशनम् ॥ किञ्चित्करोति वा पित्तं त्रिदोषशमनं जलम् ॥ ५२ ॥
मलयप्रभवा नद्यः शीततोयामृतोपमाः ॥ ग्रन्ति वात्तञ्च पित्तञ्च
शोषभ्रमश्रमापहाः ॥ ५३ ॥ गङ्गा सरस्वती शोणो यमुना सरयू
शची ॥ वेणा शरावती नीला उत्तरापूर्ववाहिनी ॥ ५४ ॥ हिम-
वत्प्रभवा ह्येता हिमसम्भवशीतलाः ॥ समाः सर्वगुणैर्नद्यो वात-
श्लेष्महरा नृणाम् ॥ ५५ ॥ आसां नवशतैर्युक्ता गङ्गा प्रोक्ता
मनीषिभिः ॥ तथा चर्मण्वती वेत्रवती पारावती तथा ॥ ५६ ॥
क्षिप्रा महापद्मी पीता मुत्सकान्या मनस्विनी ॥ शेवती शैवलि-

न्यश्च सिन्धुयुक्ताः समुद्रगाः ॥५७॥ वातपित्तहरं नीरं त्रिदोषघ्नं
मतं परम् ॥ श्रमग्लानिहरं वृष्यमुत्तराशानुगायि च ॥ ५८ ॥

हिमालय पर्वतसे उत्पन्न हुई नदियां पवित्र हैं देवता और मुनियोंसे सेवित हैं मोटे पत्थर और बालूरेतको बहानेवाली हैं मलसे रहित पानीवाली हैं, ॥ ५१ ॥ इनका पानी वातको और कफको नाशता है, श्रमको और शोषको दूर करता है अथवा कुछ पित्तको करता है और त्रिदोषको शांत करता है ॥ ५२ ॥ मलय पर्वतसे उपजी नदियाँ शीतपानीवाली हैं अमृतके समानपानी बहती हैं और वात, पित्त, शोष, भ्रम, और श्रमको नाशती है ॥ ५३ ॥ गंगाजी, सरस्वती, शोण, यमुना, सरयू, राप्ती, वेणा, शरावती, नीला ये नदियां उत्तरको और पूर्वको बहती हैं ॥ ५४ ॥ हिमालय पर्वतसे उत्पन्न हुई और वर्षके सम्भवसे शीतल हुई ऐसी ये नदी सर्वगुणोंसे समान हैं और मनुष्योंके वातको और कफको हरती हैं ॥ ५५ ॥ इन्होंमेंसे नौसौ ९०० नदियोंसे युक्त हुई गंगाजी पंडितोंने कही है तैसेही चर्मण्वती, वेत्रवती, पारावती, ॥ ५६ ॥ क्षिप्र, महापदी, पीता, मुत्तका, मनस्विनी, शैवती, शैवलिनी, सिंधु ये सब नदी समुद्रमें गमन करती हैं ॥ ५७ ॥ इनका पानी वातको और पित्तको हरता है और त्रिदोषको हरनेवाला माना है परिश्रमको और ग्लानिको हरता है वीर्यमें हित है और उत्तर दिशासे आता है ॥ ५८ ॥

अथ तापीआदिनदियोंके गुण दोष ।

तापी तापा च गोलोमी गोमती सलिला मही ॥ सरस्वतीयुता
नद्यो नर्मदा पश्चिमानुगाः ॥ ५९ ॥ आसां जलं घनं पीतं
पित्तघ्नं कफकृत्तथा ॥ वातदोषहरं हृद्यं कण्डूकुष्ठविनाशनम् ॥ ६० ॥

तापी, तापा, गोलोमी, गोमती, सलिला, मही, सरस्वती, नर्मदा, ये पश्चिमसे बहती हैं ॥ ५९ ॥ इनका पानी मीठा है पीनेसे पित्तको नाशकरता है कफको करता है वातदोषको हरता है सुन्दर है खाजको और कुष्ठको नाशता है ॥ ६० ॥

पश्चिमाद्रिसमुद्रात्ता गौतमी पुण्यभावना ॥ अस्या शीतं जलं
वापि कफवातविकारकृत् ॥ पित्तदं शमनं बल्यं मूत्रदोषविकार-
कृत् ॥ ६१ ॥ पूर्णा पयस्विनी वेत्रा प्रणीता च वरानना ॥

द्रोणा गोवर्द्धनी यान्या गौतम्यानुगता इमाः ॥ ६२ ॥ आसां

जलं घनं नातिवातश्लेष्मविकारकृत् ॥ पूर्वसामुद्रगाश्चैव नद्यो

नवशतैर्युताः ॥ ६३ ॥ कावेरी वीरकांता च भीमा चैव पय-

स्विनी ॥ विभावरी विशाला च गोविन्दी मदनस्वसा ॥ पार्वती

चापरा नद्यो दक्षिणादिग्गमा इमाः ॥६४॥ प्रत्यकशो न सेवेत
युक्तायाश्च पृथक् पृथक् ॥ सर्वासां परिसंख्या च शतानां चैक-
विंशतिः ॥ ६५ ॥

पश्चिमके पर्वतसे उपजी गौतमी पवित्र है, इसका पानी शीतल है, कफ और वातके विकारको करता है, पित्तकारक है, दोषशामक है, बलकारक है, मूत्रदोषके विकारको करता है ॥ ६१ ॥ पूर्ण, प्रयस्विनी, वेत्ता, प्रणीता, वरानना, द्रोणा, गोवर्द्धनी इत्यादि नदी गौतमी नदीके अनुगमन करती हैं ॥ ६२ ॥ इनका पानी अति भारी नहीं है, वातके और कफके विकारको करता है और पूर्वके समुद्रमें गमन करनेवाली नौसौ ९०० नदियां हैं ॥ ६३ ॥ कावेरी, वीरकांता, भीमा, प्रयस्विनी, विभावरी, विशाला, गोविंदी, मदनस्वसा, पार्वती इत्यादि नदी दक्षिणदिशाको गमन करती हैं ॥ ६४ ॥ एक एक नदीको नहीं सेवे, मिली हुई नदीका सेवन करे क्योंकि सब नदियोंकी २१०० इक्कीससौ संख्या अर्थात् गिनती ॥ ६५ ॥

क्रोशे क्रोशे भवेत् कुल्या योजने योजने नदी ॥

द्वियोजना च विज्ञेया महानीरा बुधैर्नदी ॥ ६६ ॥

कोश कोश में विस्तारवाली कुल्या कहाती है और चार चार कोशमें विस्तार वाली नदी कहाती हैं और आठ आठ कोशमें विस्तारवाली महानदी कहाती हैं ॥ ६६ ॥

अथ पृथिवीके भागका पानी ।

भूमिः पञ्चविधा ज्ञेया कृष्णा रक्ता तथा सिता ॥ पीता नीला
भवेच्चान्या गुणास्तासां प्रकीर्तिताः ॥ ६७ ॥ कृष्णा च मधुरा
रूक्षा कषाया पीतवर्णिनी ॥ रक्ता सा च भवेत्तिक्ता मधुराम्ला
सिता स्मृता ॥ ६८ ॥ नीला सकटुका चैवं भूमिभागजलं
विदुः ॥ सघनं मधुरं नीरं कृष्णं भूमिपरिश्रितम् ॥ ६९ ॥ पी-
ताश्रितं कषायश्च रक्तायाः क्षारमाधुरम् ॥ सितायामम्लमधुरं
भूमिभागेन लक्षयेत् ॥ ७० ॥ तथा चतुर्विधं तोयं वक्ष्यामि शृणु
कोविद ॥ पापोदकं रोगोदकमंशूदकारोग्योदकौ ॥ ७१ ॥

काली, लाल, सफेद, पीली, नीली, इन भेदोंसे पृथ्वी पांचप्रकारकी है उनके गुण कहते हैं ॥ ६७ ॥ काली पृथ्वी मधुर है, रूखी है, पीली पृथ्वी कसली है, लाल पृथिवी कडुवी है सफेद पृथिवी मधुर और खट्टी है ॥ ६८ ॥ नीली पृथिवी चर्चरी जाननी ऐसेही पृथिवीके भागका पानी कहा है, काली भूमिका जल घना, मीठा, होता है ॥ ६९ ॥ पीली पृथिवीका कसैला पानी है, लाल पृथिवीका पानी खारा और मधुर है, सफेद पृथिवीका

पानी खड़ा है, मयुर है, ऐसे पृथिवीके भागसे पानीकोलक्षित करे ॥ ७० ॥ अब पापोदक, रोगोदक, अंशूदक, आरोग्योदक इन भेदोंसे पानीको चार प्रकारसे कहता हूं, हे कोविद ! सुन ॥ ७१ ॥

अथ पापोदकका गुण दोष ।

पापं पापोदकं चैव करोत्येवमरोचकम् ॥ विष्टायुक्तं ग्राहि नीरं
कृमिकीटसमाकुलम् ॥ ७२ ॥ समलं नीलशैवालं पापन्तु नर्दि-
तञ्च यत् ॥ स्नाने पाने न तच्छस्तं नराणां वा हयेषु च ॥ ७३ ॥
स्नानेन त्वग्मवात्रोगान्कण्डूकुष्ठविसर्पकृत् ॥ पानेन कफगु-
ल्मानां कृमीणां वरसम्भवान् ॥ करोति विविधात्रोगांस्तस्मा-
त्तत् परिवर्जयेत् ॥ ७४ ॥

पापोदकसंज्ञक पानी पापरूप है, और रुचिको विगाडता है, मलसे संयुक्त हुआ पानी कब्ज को करता है और कीड़े आदिसे संयुक्त ॥ ७२ ॥ मलसे सहित, नीले शिवालसे संयुक्त, उसका शब्द भी पापसे भरा है, यह मनुष्यों और घोड़ोंको स्नानमें और पानमें अच्छा नहीं है ॥ ७३ ॥ यह पानी स्नानके करनेसे खालके रोग, खाज, कुष्ठ, विसर्पको करता है और पीनेसे कफको, गुल्मरोगको कृमिरोगको और, त्वचाके रोगोंको उपजाता है इससे इसे त्यागना ही चाहिये ॥ ७४ ॥

अथ रोगोदकके गुणदोष ।

बहुवृक्षलताकुञ्जे छायाकूपोऽथ वा सरः ॥ अव्ययश्चेदपोऽप्येवं
कृमिशैवालसंयुतम् ॥ ७५ ॥ क्लिन्नं सपिच्छलं कृष्णं वृक्षमूलाश्रितं
भवेत् ॥ बहुवृक्षपर्णयुक्तञ्च दुर्गन्धं मूत्रगन्धवत् ॥ ७६ ॥ रोगो-
दकं विजानीयात्करोति विषमान्गदान् ॥ शूलं कुष्ठं च कण्डूञ्च
सेवितेन करोति हि ॥ ७७ ॥ विण्मूत्रतृणनीलिकाविषयुतं तप्तं
घनं फेनिलं दन्तग्राह्यमनार्त्तवं हि सजलं दुर्गन्धि शैवालजम् ॥
नानाजीवविमिश्रितं गुरुतरं पर्णौघपङ्काविलं चन्द्रार्काशुसुगो-
पितं न च पिबन्नीरं सदा दोषलम् ॥ ७८ ॥ गुल्मप्लीहाशः
पाण्डुञ्च जलं वापि जलोदरात् ॥ ७९ ॥

१ वरसंभवान् त्वक्संभवान् वेष्टनत्वात् वरशब्दः त्वचि वर्तते ।

व बहुतसे वृक्ष और वेलोंके समूहकी छायामें जो कूप अथवा तलाव हो और उसमें पानी सदा बना रहता हो, कीड़े और शिवालसे वह पानी संयुक्त हो ॥ ७५ ॥ और क्लेदपनेको प्राप्त हो और झागोंसे संयुक्त हो काला हो और वृक्षोंकी जड़में आश्रित हो और बहुतसे वृक्षोंके पत्तोंसे व्याप्त हो दुर्गन्धित हो और मूत्रके गंधके समान गंधवाला हो ॥ ७६ ॥ उसे रोगोदक जानना यह विषमरोगोंको करता है और सेवनेसे शूल, कुष्ठ, खाज इन्होंको करता है ॥ ७७ ॥ अथवा विष्टा, मूत्र, तृण, नीला शिवाल, विष इनसे संयुक्त हो और गर्म हो, गाढा हो, झागोंसे संयुक्त हो दंतोंको ग्रहण करता हो, अकालमें वर्षा हो दुर्गन्धसे युक्त हो, शिवालसे संयुक्त हो अनेकप्रकारके जीवोंसे मिश्रित हो, अत्यंत भारी हो, पत्तोंके समूह और कीचड़से मैला हो, चंद्रमा और सूर्यकी किरणोंसे रक्षित हो, ऐसा पानी भी रोगोदक कहाता है इसको भी नहीं पीना, यह सबकालमें दोषोंको उपजाता है ॥ ७८ ॥ और सेवनेसे गुल्मरोग, तिल्लीरोग, बवासीर, पांडु, जलोदर इनको उपजाता है ॥ ७९ ॥

अथ अंशूदकके गुणदोष ।

दिवा सूर्याशुसन्ततं रात्रौ चन्द्राशुशीतलम् ॥ अंशूदकमिति
ख्यातं सर्वरोगनिवारकम् ॥ ८० ॥ कफमेदोनिलग्रं च दीपनं
वास्तिशोधनम् ॥ श्वासकासहरं नीरं चक्षुष्यं नेत्ररोगहृत् ॥ ८१ ॥

दिनमें सूर्यके किरणोंसे तप्त हुआ और रात्रिमें चंद्रमाके किरणोंसे शीतल हुआ ऐसा पानी अंशूदक कहा है, यह सब रोगोंको दूर करता है ॥ ८० ॥ कफ, मेद, वात इन्होंको नाश करता है, जठराग्निको जगाता है, वास्तिको शोधता है, श्वासको और खाँसीको हरता है, नेत्रोंमें हित है और नेत्रके रोगोंको हरता है ॥ ८१ ॥

अथ आरोग्योदकके गुणदोष ।

पादशेषन्तु कथितं तच्चारोग्यजलं विदुः ॥ कासश्वासहरं पथ्यं
मारुतं चापकर्षति ॥ ८२ ॥ सद्यो ज्वरं हरत्याशु समेदं कफना-
शनम् ॥ प्रतिश्यायं पाचयति शूलगुल्मार्शनाशनम् ॥ ८३ ॥
दीपनञ्च हुताशस्य पाण्डुशोफोदरापहम् ॥ अजीर्णञ्च जरत्याशु
पीतमुष्णोदकं निशि ॥ ८४ ॥

अग्निके द्वारा पकानेसे जो चौथाई भाग शेष रहे वह आरोग्योदक कहाता है, यह खाँसीको और श्वासको हरता है, पथ्य है, वायुको नाशता है ॥ ८२ ॥ नये ज्वरको शीघ्र हरता है, मेदको और कफको नाशता है, जुकाम पकाता है और शूल, गुल्मरोग, बवासीरको नाशता है ॥ ८३ ॥ अग्निको जगाता है और पांडुरोग, शोजा, उदररोगको हरता है और रात्रिमें पियाहुआ गर्मपानी अजीर्णको जलाता है ॥ ८४ ॥

अथ शीतपानीके गुण ।

सद्यपानसमुद्धूते रोगे पित्तान्विते पुनः ॥

सन्निपातसमुत्थे च तत्र शीतोदकं हितम् ॥ ८५ ॥

सदिराके पीनेसे उपजे रोगमें और पित्तसे अन्वित हुए रोगों और सन्निपातसे उपजे रोगमें शीतल पानी हित है ॥ ८५ ॥

गर्मपानीके गुण ।

शरदृतौ तथा ग्रीष्म कथेत्पादावशेषितम् ॥ शिशिरे च वस-
न्ते च कुर्व्यादर्द्धावशेषितम् ॥ ८६ ॥ विपरीतसृतौ घृष्टा प्रावृषि
वार्द्धभागिकम् ॥ ८७ ॥ काथ्यमानं च निर्वेगं निष्फेनं निर्मलञ्च
यत् ॥ अर्द्धावशिष्टं भवति तदुष्णोदकमुच्यते ॥ ८८ ॥ तत्पाद-
हीनं वातघ्नं चार्द्धं पित्तविकारजित् ॥ कफघ्नं पादशेषन्तु पानीयं
लघुपाचनम् ॥ ८९ ॥ धारापाते हि विष्टम्भि दुर्जरं पवनापहम् ॥
शृतशीतं त्रिदोषघ्नं कफान्तभ्रामि शीतलम् ॥ ९० ॥ दिवसे क-
थितं तोयं रात्रौ तद्गुरु वर्जयेत् ॥ रात्रौ शृतं तु दिवसे गुरुत्वम-
धिगच्छति ॥ ९१ ॥

शरदृक्तुमें और ग्रीष्मक्तुमें पकानेमें चौथाई भाग शय रहा पानी हित है, शिशिरमें और वस-
न्तक्तुमें पकानेमें आधा शेष रहा पानी हित है ॥ ८६ ॥ हेमन्तक्तुमें पकानेसे तीनहिस्से शेषरहा
पानी हित है और वर्षाक्तुमें पकानेमें आधा भाग शेषरहा पानी हित है ॥ ८७ ॥ अग्निपे पका-
नेमें वेगसे रहितहो, झागोंसे वर्जितहो मलसे रहितहो, पकानेमें आधा भाग शेषहो तिसको उष्णोदक
कहते हैं ॥ ८८ ॥ पकानेमें चौथाई भाग जलाहुआ पानी वातको हरता है आधा भाग जलाहुआ
पानी पित्तको हरता है तीन भाग जलाहुआ पानी कफको हरता है, ऐसा पानी हल्का है पाचन
है ॥ ८९ ॥ धाराके पातसे लिया पानी विष्टम्भको करता है, मुश्किलसे जरता है, वायुको हरता
है, अग्निपे पकाके शीतल किया पानी त्रिदोषको नाशता है कफको हरता है, शीतल है, ॥ ९० ॥
दिनमें पकाये हुए पानीको रात्रिमें नहीं पीवे, यह भारी होजाता है और रात्रिमें पकाये हुए पानीको
दिनमें नहीं पीवे यह भी भारी हो जाता है ॥ ९१ ॥

अथ पानीविषयकविधि ।

मदात्यये सदाहे च रक्तपित्ते तथोर्ध्वगे ॥ रक्तमेहे विशेषेण नोष्णं
तोयं प्रशस्यते ॥ ९२ ॥ पार्श्वशूले प्रतिश्याय वातरोगे गलग्रहे ॥
आध्माने स्तिमिते कोष्ठे सद्यः शुद्धौ नवज्वरे ॥ ९३ ॥

अजीर्णे च तथा कासे न शीतमुदकं हितम् ॥ प्रतिश्याय प्रसेके
च ज्वरे कुष्ठे व्रणेषु च ॥ ९४ ॥ शोफे नेत्रामये चैव मन्दाग्नौ
च तथा क्षये ॥ सूतिजातासुतानारीरक्तस्रावेऽप्यरोचके ॥ ९५ ॥
एतेषां सिद्धिमिच्छद्भिः पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ जीर्णे च क्षुत्प्रप-
न्ने च पीतं हन्त्युदरानलम् ॥ ९६ ॥

मदात्यय रोग, दाह, शरीरके ऊपरले अंगोंमें प्राप्त हुआ रक्तपित्त, रक्तप्रमेह, इन्होंमें विशेष-
करके गर्मपानी श्रेष्ठ नहीं है ॥ ९२ ॥ पसली, शूल, जुकाम, वातरोग, गलग्रह, अफारा, स्तिमित,
श्वासरोग, कोष्ठरोग, तत्कालके जुलाब, चमनआदि, नवीनज्वर ॥ ९३ ॥ और अजीर्ण, खासीमें
शीतल पानी अच्छा नहीं है और पीनस रोग प्रसेक (मुहसे रालबहने), ज्वर, कुष्ठ, घाव
॥ ९४ ॥ शोजा, नेत्रके रोग, मंदाग्नि, क्षयरोग, सूतिका नारी, रक्तस्राव, अरोचक ॥ ९५ ॥
इनसे सिद्धिको चाहनेवाला मनुष्य अल्पपानीको पीवे भोजनको जीर्ण होनेमें क्षुधाके समय पिया
हुआ पानी पेटके अग्निको नाशता है ॥ ९६ ॥

करोति गुल्मं शूलं वा तथा श्रान्ते बहूदकम् ॥ तस्माज्जीणऽनलं
हन्ति अजीर्णे वारि भेषजम् ॥ ९७ ॥ भुक्तान्तः परतः शस्तं
पीतं वारि गुणात्मकम् ॥ अध्वश्रान्तक्षुधाक्रान्ते शोकक्रोधातु-
रेषु च ॥ ९८ ॥ विषमासनोपविष्ट च पीत वारि रुजाकरम् ॥
तस्मात् प्रसन्ने मनसि पानीयं मन्दमाचरेत् ॥ ९९ ॥ आदौ
पीत्वा दहत्यग्निर्मध्ये पीत्वा रसायनम् ॥ तदन्ते च जलं पीत्वा
तज्जलं दुर्जरं भवेत् ॥ १०० ॥ भोजनादौ जलं पीत्वा चाग्नि-
सादः कृशाङ्गता ॥ अन्त करोति स्थूलत्वमूर्ध्वमामाशयात्क-
फम् ॥ १०१ ॥ इति तोयपानविधिः ॥ इति जलवर्गो नाम
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

परिश्रमसे थका हुआ मनुष्य बहुत पानीको पीवेतों गुल्म और शूलरोगकी उत्पत्ति होती है
और भोजनको जीर्ण होनेमें पियाहुआ पानी जठराग्निको हरता है और अजीर्णमें पानी औषधरूप है
॥ ९७ ॥ भोजन करनेके मध्यमें और पीछेसे पियाहुआ पानी गुणोंको करता है और मार्गके
चलनेसे श्रान्त हुआ और भूखसे पीडित हुआ और शोक, क्रोध, रोगसे पीडित हुआ
॥ ९८ ॥ और विषम आसनपै स्थित हुआ ऐसा मनुष्य पानीको पीवे तो शीघ्र रोगकी
उत्पत्ति होती है इसलिये प्रसन्न हुए मनमें भी अल्प पानीको पीवे ॥ ९९ ॥

भोजनकी आदिमें पिया पानी अग्निको नाशता है, भोजनके मध्यमें पिया पानी रसायन अर्थात् अमृतके समान है, भोजनके अंतमें पिया पानी दुःखसे जरता है ॥ १०० ॥ भोजनकी आदिमें पानीको पीनेसे मंदाग्नि और अग्निको कृशपना होता है और भोजनके अंतमें पिया हुआ पानी मुदापेको करता है और अमाशयसे ऊपर कफको करता है ॥ १०१ ॥

इति वैरीनिवासिनुधशिवसहायसूनुवैद्यरदत्तशाह्यनवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
प्रथमस्थाने जलवर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अथ दुग्धवर्गवर्णन ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि क्षीरवर्गन्तु वत्सक ॥

दधिसर्पिर्वसातक्रं तेषां सर्वगुणागुणम् ॥ १ ॥

हे पुत्र ! अब क्षीरवर्गको कहता हूँ और दही, घृत, बसा, तक्र इनके सब गुण और दोष कहूँगा ॥ १ ॥

अथ दूधकी उत्पत्ति ।

यद्यदाहारजातन्तु रसं क्षीरशिरानुगम् ॥ रसो जलं च भुक्तं च
तथा पित्तेन संयुतम् ॥ २ ॥ पाचितं जाठरे वह्नौ पित्तेन सह सू-
र्च्छितम् ॥ पच्यमानं शिराप्राप्तं क्षीरतोयेन पुत्रक ॥ ३ ॥ तत्र
क्षीरमिति ख्यातमग्निसामात्मकं पयः ॥ अमृतं सर्वभूतानां
जीवनं बलकृन्मतम् ॥ ४ ॥

जो जो भोजनसे रस उपजता है वही दूधकी नाडीके अनुगत होता है रस पदार्थ, पानी, और भोजन पित्तसे संयुक्त होके ॥ २ ॥ जठराग्निके द्वारा पच्यमान होकर अन्नजल रस शिरामें दुग्धजलके साथ प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ इससे दूध ऐसा कहा जाता है। यह दूध जठराग्निके समान स्वभाववाला होता है और यही दूध अमृत है, सब जीवोंका जीवन है और बलको करने-वाला माना है ॥ ४ ॥

हारीतः संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥ कथं रसस्य सम्पत्तिः

कथं संचीयते विभो ॥ ५ ॥ कथं रक्तस्य संस्थाने क्षीरं पाण्डुं

समीरितम् ॥ कथं तत्र कुमारीणां वन्ध्यानां न कथं भवेत् ॥ ६ ॥

संशयको प्राप्त हुआ हारीत फिर पिताको पृच्छता भया हे विमो ! रसकी सिद्धि कैसे है ? और कैसे रस संचित होता है ? ॥ ५ ॥ कैसे रक्तके स्थानमें सफेद रंगका दूध हो जाता है कुमारी, कन्याके और वंध्या स्त्रियोंके कैसे नहीं होता ? ॥ ६ ॥

एवं पृष्टो महावीर्यः प्रोवाच मुनिपुगंवः ॥ शृणु पुत्र महाप्राज्ञ
यदुक्तं पूर्वसूरिभिः ॥ ७ ॥ क्षीरं स्निग्धं तथा रक्तं पित्तेन पाकतां
गतम् ॥ रक्तं श्वेतत्वमायाति तथा क्षीरं सितं भवेत् ॥ ८ ॥

ऐसे पूछे हुए महावीर्यवाले आत्रेयजी कहने लगे हे पुत्र ! हे महाप्राज्ञ ! जो पहले पंडितों-
ने कहा है वह सुनो ॥ ७ ॥ पहिले दूध गाढ़ा और लाल रहता है, फिर पित्तसे पककर वही रक्त
सफेद होजाता है और वही श्वेत दूध हो जाता है ॥ ८ ॥

क्षीरनाडी कुमारीणां वन्ध्यानां च कथं भवेत् ॥ अल्पधातुबलं
यस्मात्तस्मात्क्षीरं न जायते ॥ ९ ॥ वन्ध्यानां क्षीरनाड्यस्तु
वातेन परिपूरिताः ॥ क्षीरं च न भवेत्तस्मादार्तवं चाधिकं यतः ॥ १० ॥

कुमारी, कन्याओंके और वंध्याओंके दूधकी नाडी कहां होती है ? अल्पधातु और अल्पबल
होनेके कारण कुमारीके और वंध्याके दूध नहीं होता है ॥ ९ ॥ वन्ध्यस्त्रियोंकी दूधकी नाडी
वायुसे पूरित होती है इससे दूध नहीं उपजता है किंतु आर्तव अधिक होता है ॥ १० ॥

प्रसूतासु च नारीषु बलेन सह सूर्यते ॥ तेन स्रोतोविशुद्धिः स्यात्
क्षीरमाशु प्रवर्तते ॥ ११ ॥ तस्मात् सद्यः प्रसूतायां जायते
श्लेष्मिकं पयः ॥ तेन कठिनां याति तस्मात्तत् परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

और बालकको जन्मानेवाली नारियोंमें बल करके बालक जन्मता है इससे विशेष करके स्रोतोंकी
शुद्धि होती है तब दूध शीघ्र प्रवृत्त होता है ॥ ११ ॥ इसलिये तत्काल प्रसूतहुई नारीमें कफकी
प्रकृतिवाला दूध उपजता है इसलिये वह दूध गाढ़ा रहता है उसका त्यागकर देना चाहिये ॥ १२ ॥

स्रोतोविशुद्धिकरण बलकृदोषनाशनम् ॥

पयस्त्रिदोषशमनं वृष्यश्चाग्निप्रवर्द्धनम् ॥ १३ ॥

स्रोतोंके विशेष करके शुद्धिको करनेवाला, बलको करनेवाला और दोषको नाशनेवाला
दूध त्रिदोषको शांत करता है, पुष्ट है और जठराग्निको बढ़ाता है ॥ १३ ॥

पृथक् २ स्त्रियोंके दूधके गुण ।

कृष्णा वृष्या च वातघ्नी पयस्तस्या विशिष्यते ॥ श्वेतापयः श्ले
ष्मकृच्च वातलं रक्तिकापयः ॥ १४ ॥ पित्तसंशमना पीता तस्याः
क्षीरं विशिष्यते ॥

काली स्त्री पुष्टिको करती है, वातको नाशती है, उसका दूध अच्छा होता है, सफेद रंगकी स्त्रीका दूध कफको करता है, लाल रंगकी स्त्रीका दूध वातको करता है ॥ १४ ॥ पीलीका दूध पित्तको शांत करता है और यह अच्छा है ॥

पृथक् पृथक् रंगकी गायोंका दूध ।

कृष्णासृक्पित्तसंयुक्ता श्वेता श्लेष्मगुणान्विता ॥ १५ ॥ कफवा-
ताश्रिता पीता रक्ता वातगुणान्विता ॥ यद्यद्वर्ग्यगुणास्ते तु
ज्ञातव्याः सुमहात्मना ॥ १६ ॥

काली गाय रक्त और पित्तसे संयुक्त होती है, सफेद रंगवाली कफके गुणोंसे संयुक्त होती है ॥ १५ ॥ पीली कफ और वातसे संयुक्त होती है, लाल रंगवाली वातके गुणसे संयुक्त होती है, ऐसे जो जो उत्तम गुण हैं वे सब महात्मा वैद्यको जानने चाहिये ॥ १६ ॥

धारोष्णं शस्यते गव्यं धाराशीतन्तु माहिषम् ॥

शृतोष्णमाविकं पथ्यं शृतशीतमजापयः ॥ १७ ॥

गायका दूध धारोंसे गर्म हुआ ही हित है, भैंसका दूध धारोंसे पीछे शीतल हुआ हित है, भेडके दूधको गर्म करके पीछे गरम रूप ही पथ्य है, बकरीके दूधको गर्म कर पीछे शीतल करा पथ्य है ॥ १७ ॥

अथ गायके दूधके गुण ।

गव्यं पवित्रं च रसायनं च पथ्यं च हृद्यं बलपुष्टिदं स्यात् ॥

आयुष्प्रदं रक्तविकारपित्तत्रिदोषहृद्गोविषापहं स्यात् ॥ १८ ॥

गायका दूध पवित्र है, रसायन है, पथ्य है, मनोहर है, बलको और पुष्टिको देता है, आयुको देता है, और रक्तविकार, पित्तरोग, त्रिदोष, हृद्गो और विषको नाशता है ॥ १८ ॥

अथ बकरीके दूधके गुण ।

छागं कषायं मधुरञ्च शीतं पयो लघु ग्राहि क्षयापहारि ॥

कासज्वराणां रुधिरातिसारे पित्ते त्रिदोषे विहितं हितं वै ॥ १९ ॥

बकरीका दूध कसेला है, मधुर है, शीतल है, कब्ज करता है, हलका है, क्षयको नाशता है, खांसीसहित ज्वर, रक्तका अतीसार, पित्त और त्रिदोषमें हित कहा गया है ॥ १९ ॥

अथ भेडके दूधके गुण ।

औरभ्रं मधुरं रूक्षमुष्णवातकफापहम् ॥

न शस्तं रक्तपित्तानां वातिकानां हितं भवेत् ॥ २० ॥

भेडका दूध मधुर है, रूखा है, उष्ण है, वातको और कफको नाशता है, रक्तपित्तवालोंको भेडता नहीं है और वातवालोंको अच्छा है ॥ २० ॥

अथ भैंसके दूधके गुण ।

स्त्रिगुणं मरुच्छीतकरं च तन्द्रानिद्राकरं वृष्यतमं श्रमघ्नम् ॥

बलप्रदं पुष्टिकरं कफस्य सजीवनं चास्ति पयो महिष्याः ॥ २१ ॥

भैंसका दूध चिकना है, वायुको और शीतको उपजाता है, तन्द्राको और नींदको करता है, अति पुष्ट है, परिश्रमको नाशता है, बलको देता है, कफको करता है और कफको बढ़ाता है ॥ २१ ॥

अथ ऊँटनीके दूधके गुण ।

रूक्षं तथोष्णं लवणं कफस्य निवारण वातविकारहारि ॥

लघु प्रशस्तं कटुकं कृमीणां शोफार्शसामौषूपयोऽनुकूलम् ॥ २२ ॥

ऊँटनीका दूध गर्म है, सलौना है, रूखा है, कफको दूर करता है, वातके विकारको नाशता है, हलका है, अच्छा है, चर्चरा है, कीड़ोंको निकासता है, शोजाको और बवासीरको शांत करता है ॥ २२ ॥

स्त्रियोंके दूधका गुण ।

सजीवन बृंहणमेव सात्त्व्यं सन्तपण नेत्ररुजापहं च ॥

पित्तस्य रक्तस्य च नाशनं च नारीपयः स्नेहनमेव शस्तम् ॥ २३ ॥

स्त्रियोंका दूध सजीवन है, पुष्टिकारक है, स्वभावसे हित है, तृप्ति करता है, नेत्रोंकी पीड़ा दूर करता है, दुष्टपित्तका और रक्तका नाश करता है, चिकनाई देता है, ऐसा स्त्रियोंका दूध अच्छा है ॥ २३ ॥

अथ दूधके गुण ।

निशाशीतांशुसशीतं निद्रालस्यश्रमानुगम् ॥

सघनं शीतकफकृत्क्षीरं प्राभातिकं भवेत् ॥ २४ ॥

रात्रिके चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल हुआ नींद, आलस्य और परिश्रम करनेवाला है, गाढ़ा है, शीतको और कफको करनेवाला ऐसा प्रभातका दूध होता है ॥ २४ ॥

अथ दिनके दूधके गुण ।

वासरे सूर्यसन्तापात्सद्योष्णं कफवातजित् ॥

दिनमें सूर्यके सन्तापसे तत्काल गर्म हुआ दूध कफ और वातको जीतनेवाला है ।

अथ रात्रिके दूधके गुण ।

हितं तत्पित्तशमनं सुशीतं भोजने निशि ॥ २५ ॥

रात्रिमें भोजनके समय अच्छा शीतल किया दूध हित है और पित्तको शांत करता है ॥ २५ ॥

अथ दूधके पीनेकी विधि ।

अल्पाम्बुपानव्यायामात्कटुतिक्ताशने लघु ॥ पिण्याकाम्ला-
शिनीनां तु गुर्वभिष्यन्दि शीतलम् ॥ २६ ॥

थोडा पानी पीनेवाली, फिरनेवाली, कडवा तीखा खानेवाली, गौआदिका दूध हलका होता है और खली तथा खट्टे पदार्थ खानेवाली गौआदिका दुग्ध भारी, अभिष्यन्दी और शीत होता है ॥ २६ ॥

क्षीणानां दुर्बलानाञ्च तथा जीर्णज्वरादिते॥ दीप्ताग्नीनामतन्द्राणां
श्रमशोषविकारिणाम् ॥ २७ ॥ श्वासिनां विषमाग्नीनां रेतो-
ऽल्पानां व्यवायिनाम् ॥ तथा च राजरोगाणां क्षीरपानं विधीयते
॥ २८ ॥ न शस्तं लवणैर्युक्तं क्षीरं चाम्लेन वा पुनः ॥ करोति
कुष्ठं त्वग्दोषं तस्मान्नैव हितं मतम् ॥ २९ ॥

क्षीण, दुर्बल, जीर्णज्वरसे पीडित, दीप्त अग्निवाला, तन्द्रासे वर्जित, श्रम और शोषके विकार वाले ॥ २७ ॥ श्वासवाले, विषम अग्निवाले, अल्पवीर्यवाले मैथुन करनेवाले, और राजरोगवाले इन सबको दूधका पान कराना चाहिये ॥ २८ ॥ नमकसे संयुक्त अथवा खट्टे पदार्थसे संयुक्त किया दूध अच्छा नहीं है यह कुष्ठको और खालमें रोगको करता है इसलिये यह हित नहीं है ॥ २९ ॥

अथ गायके दहीके गुण ।

अम्लं स्वादुरसं ग्राहि गुरूष्णं वातरोगजित् ॥ मेदःशुक्रबलक्षे-
ष्मरक्तपित्ताग्निशोफकृत् ॥ ३० ॥ स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं
बलवर्द्धनम् ॥ वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुजापहम् ॥ ३१ ॥

गायका दही खट्टा है । स्वादु रसवाला है, कब्जको करता है, भारी है, गर्म है, वातरोगको जीतता है और मेद, बल, वीर्य, कफ, रक्त, पित्त, अग्नि शोजाको करता है ॥ ३० ॥ स्निग्ध है और विशेष करके पाककालमें मधुर है, अग्निको जगाता है, बलको बढ़ाता है, वायुको नाशता है, पवित्र है और रोगको हरता है ॥ ३१ ॥

अथ बकरके दहीके गुण ।

आजं दधि भवेच्चोष्णं क्षयवातविनाशनम् ॥ दुर्नामश्वासकासेषु
हितमाग्निप्रदीपनम् ॥ ३२ ॥ विपाके मधुरं वृष्यं रक्तपित्तप्रसाद-
नम् ॥ शस्तं प्राभातिकं प्रोक्तं वातपित्तनिर्बहणम् ॥ ३३ ॥

बकरीका दही गर्म है, क्षयको और वातको नाशता है और बचासीर, श्वास, खांसीमें हित है, अग्निको जगाता है ॥ ३२ ॥ पाककालमें मधुर है, वीर्यमें हित है, रक्तपित्तको साफ करता है उसमें भी प्रभातका दही अच्छा है वात और पित्तको दूर करता है ॥ ३३ ॥

अथ भैंसके दहीके गुण ।

घनं माहिषमुद्दिष्टं मधुरं रक्तदोषकृत् ॥

कफशोफहरं स्वस्थं पित्तकृद्वातकोपनम् ॥ ३४ ॥

भैंसका दही गाढ़ा है, मधुर है, रक्तदोषको करता है, कफको और शोफको हरता है, स्वस्थ है, पित्तको करता है, वातको कोपता है ॥ ३४ ॥

अथ ऊँटनीके दहीके गुण ।

विपाके कटु सक्षारं गुरु भेद्यौष्टिकं दधि ॥

वातमर्शासि कुष्ठानि क्रिमीन्हंत्युदरं परम् ॥ ३५ ॥

ऊँटनीका दही विपाकमें तीखा, खारा, भारी, मलका भेदनेवाला, वायु, अर्श, कोढ़, कृमि और उदररोगोंका नाश करता है ॥ ३५ ॥

अथ छाँके दहीके गुण ।

स्निग्धं विपाके मधुरं बल्यं संतर्पणं हितम् ॥

चक्षुष्यं ग्राहि दोषघ्नं दधि नार्या गुणोत्तमम् ॥ ३६ ॥

छायोंका दही चिकना, विपाकमें मधुर, बल देनेवाला, धातुओंको वृद्ध करनेवाला, ठंडा, नेत्रोंको हितकर, ग्राही वातादिदोषोंको नाशनेवाला और बड़ा गुणकारी है ॥ ३६ ॥

अथ भेड़के दहीके गुण ।

कोपनं कफवातानां दुर्नाम्नां चाविकं दधि ॥ दीपनीयं तु चक्षुष्यं

पांडुकृच्छापि वातुलम् ॥ ३७ ॥ रूक्षगुष्णं कषायं स्यादत्यभिष्यं-

दि दोषलम् ॥ रसे पाके च मधुरं कषायं कुष्ठवर्द्धनम् ॥ ३८ ॥

भेड़का दही कफ और वात तथा अर्शरोगको कोपनेवाला, जठराग्निको प्रदीप्त करनेवाला, नेत्रको हितकर, पांडुरोगको उपजानेवाला, और वायु उत्पन्न करनेवाला होता है ॥ ३७ ॥ रूखा, गरम, कसैला, श्लेष्माको पैदा करनेवाला, दोषोंको उपजानेवाला, रसमें और पाकमें मधुर और कसैला, कुष्ठरोगको बढ़ानेवाला होता है ॥ ३८ ॥

अथ वर्षाकालके दहीके गुण ।

वार्षिकं पित्तकृद्वातशमनं कफकोपनम् ॥

गुल्मार्शः कुष्ठरोगे च रक्तपित्ते न शस्यते ॥ ३९ ॥

चर्शकालका दही पित्तकारक है, वात शांत करता है और कफको कोपता है और गुल्मरोग, बलासीर, कुष्ठ, रक्तपित्तमें अच्छा नहीं है ॥ ३९ ॥

अथ शारदृक्कतुके दहीका गुण ।

शारदं दधि गुर्वम्लं रक्तपित्तविदर्शनम् ॥

शोफतृष्णाज्वरार्तानां करोति विषमज्वरम् ॥ ४० ॥

शारदृक्कतुका दही भारी है, खट्टा है, रक्तपित्तको बढ़ाता है और शोफा, तृषा, ज्वरसे पीड़ितोंके विषमज्वरको करता है ॥ ४० ॥

अथ हेमन्तकतुके दहीका गुण ।

गुरु स्निग्धं सुमधुरं कफकृद्बलवर्द्धनम् ॥

वृष्यं मेध्यं च हैमन्तं पुष्टिदं तुष्टिवृद्धिदम् ॥ ४१ ॥

हेमन्तकतुका दही भारी है, मधुर है, कफको करता है, बलको बढ़ाता है, वीर्यमें हित है, पवित्र है, पुष्टिको देता है और तुष्टिको बढ़ाता है ॥ ४१ ॥

अथ शिशिरकतुके दहीका गुण ।

वृष्यं बलकरं पैत्तं श्रमस्यापहरं परम् ॥

शैशिरं सघनं चाम्लं पिच्छलं गुरु चैव च ॥ ४२ ॥

शिशिरकतुका दही कडा है, खट्टा है, कफकारी है, भारी है, वीर्यमें हित है, बलको करता है, पित्तमें अच्छा है, श्रमको हरता है ॥ ४२ ॥

अथ वसन्तकतुके दहीका गुण ।

वातलं मधुरं स्निग्धं किञ्चिदम्लं कफात्मकम् ॥

बलकृद्बीर्यकृत्प्रोक्तं वसन्ते न प्रशस्यते ॥ ४३ ॥

वातल है, मीठा है, चिकना है, कुछ खट्टा है, कफकी प्रकृतिवाला है, बलको और वीर्यको करता है, कफकारक है, इसलिये वसन्तकतुमें दही अच्छा नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ ग्रीष्मकतुके दहीका गुण ।

लघु चाम्लं भवेद्ग्रीष्मे चात्युष्णं रक्तपित्तकृत् ॥

शोषभ्रमपिपासाकृद्दधि प्रोक्तं न ग्रीष्मिकम् ॥ ४४ ॥

ग्रीष्मकतुका दही हल्का है, खट्टा है, अतिगर्म है, रक्तपित्तको करता है और शोष, भ्रम, पिपासाको करता है इसलिये ग्रीष्ममें दधि अच्छा नहीं कहा गया ॥ ४४ ॥

अथ दहीका वर्जना ।

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु दोषकृन्न हितं भवेत् ॥ न नक्तं दधि भुञ्जीत

न चाऽप्यघृतशर्करम् ॥ ४५ ॥ लवणं दधि भुञ्जीत भुञ्जीताऽ-
प्युदकेन च ॥ तल्लवणाम्बुसंयुक्तं दधि शस्तं निशि ध्रुवम् ॥ ४६ ॥
ज्वरासृक्पित्तवीसर्पकुष्ठिनां पाण्डुरोगिणाम् ॥ संप्राप्तकामला-
नाञ्च शोफिनाञ्च विशेषतः ॥ ४७ ॥ तथा च राजयक्ष्मणामप-
स्मारं च पीनसे ॥ प्रतिश्यायार्दितानाञ्च भोजने न हितं दधि ॥ ४८ ॥

शरद, ग्रीष्म, वसंत, इन ऋतुओंमें दही दोषको करता है, हित नहीं है, रात्रिमें दहीको नहीं खाना, घृत और खांडसे रहित दहीको नहीं खाना ॥ ४५ ॥ नमकसे मिलाहुआ और पानीसे मिलाहुआ ऐसे दहीको खाना और रात्रिमें दहीको खावे तो नमक और पानीसे संयुक्त कर खाना ॥ ४६ ॥ ज्वर, रक्तपित्त, विसर्प, कुष्ठ, पाण्डुरोग, कामला, शोका ॥ ४७ ॥ राजरोग, शृगीरोग, पीनस, सखरमा रोगवालोंको भोजनमें दही हित नहीं है ॥ ४८ ॥

अथ दहीको खानेकी विधि ।

हिक्कार्शःश्वासःप्लीहानामतीसारं भगन्दरं ॥

शस्तं प्रोक्तं दधि चैषां लवणेन विमूर्च्छितम् ॥ ४९ ॥

हिचकी, श्वास, बवासीर, तिलीरोग, अतिसार, भगंदरमें नमकसे संयुक्त किया दही खाना अच्छा है ॥ ४९ ॥

अथ गायक तक्र अर्थात् छाँछके गुण ।

गव्यं त्रिदोषशमनं पथ्य श्रेष्ठं तदुच्यते ॥

दीपनं रुचिकृन्मेध्यमशोदरविकाराजित् ॥ ५० ॥

गायका तक्र त्रिदोषको शांत करता है, पथ्यमें श्रेष्ठ है, अग्निको जगाता है, रुचिको करता है, पवित्र है, बवासीर और उदरविकारोंको जीतता है ॥ ५० ॥

अथ भैंसके तक्रके गुण ।

माहिषं कफकृत्किञ्चिद्वनं शोफकरं नृणाम् ॥

शस्तं प्लीहाशोग्रहणीदोषेऽतीसारिणामपि ॥ ५१ ॥

भैंसका तक्र कफको करता है, कुछ घना है, मनुष्योंको शोकाको करता है, और तिलीरोग, बवासीर, संग्रहणी, अतीसार इन रोगवालोंको श्रेष्ठ है ॥ ५१ ॥

अथ बकरीके तक्रके गुण ।

छागलं लघु सस्निग्धं त्रिदोषशमनं परम् ॥

गुल्माशोग्रहणीशूलपाण्ड्वामयविनाशनम् ॥ ५२ ॥

वकरीका तक्र हलका चिकना, त्रिदोषको नाशनेमें उत्तम है और गुल्म, ववासीर, संप्रह-
णीरोग, झूल, पांडुरोग इन्होंको नाशता है ॥ ५२ ॥

अथ तक्रका वर्णन ।

तथा च त्रिविधं तक्रं कथ्यते शृणु पुत्रक ॥ यथा योगेन त-
त्सम्यक्शस्यते येषु रोगिषु ॥५३॥ समुद्धृतघृतं तक्रमर्द्धोद्धृत-
घृतं च यत् ॥ अनुद्धृतघृतं चान्यदित्येतत्रिविधं मतम् ॥५४॥
सर्व लघु च पथ्यं च त्रिदोषशमनं परम् ॥ ततः परं वृष्यतरं
क्रमेण समुदीरितम् ॥ ५५ ॥ अनुद्धृतघृतं सान्द्रं गुरु विद्या-
त्कफात्मकम् ॥ बलप्रदं तु क्षीणानामामशोफातिसारकृत् ॥५६॥

तक्र ३ प्रकारका है, हे पुत्र ! जिस उत्तमयोगसे जिन रोगियोंमें उचित है सो कहता हूँ,
सुनो ॥ ५३ ॥ बिना बीका, आधे बीका और पूर्ण इस तरह तीन प्रकारका तक्र कहा गया
है ॥ ५४ ॥ घृतसे वर्जित तक्र हलका है, पथ्य है, त्रिदोषको शांत करता है । घृतसहित तक्र
वीर्यमें हित कहा है ॥ ५५ ॥ अनुद्धृतघृतसंज्ञक तक्र कठिन है, भारी है, कफकी प्रकृतिवाला
है, क्षीणमनुष्योंको बल देता है और आमदोष, शोजा, अतीसार इनको करता है ॥ ५६ ॥

अथ साधारण तक्रके गुण ।

गरोदराशोग्रहणीपाण्डुरोगे ज्वरातुरे ॥ वचोसूत्रग्रहे वापि घृही-
व्यापदमेहिषु ॥ ५७ ॥ हितं संप्रीणनं बल्यं पित्तरक्तविरोध-
कृत् ॥ मधुरं पित्तरक्तघ्नमत्युष्णं रक्तपित्तकृत् ॥ ५८ ॥

कृत्रिमविष, उदररोग, ववासीर, ग्रहणीदोष, पांडुरोग, ज्वर, दिशपेशावकी रोकपर, तिल्लीरोग,
प्रमेह इन रोगवालोंको ॥ ५७ ॥ साधारण तक्र हित है, प्रीतिको करता है, बलमें हित है, पित्तरक्तका
विरोधी है, मधुर है, पित्तरक्तको नाशता है, अतिगरम है, रक्त और पित्तको करता है ॥ ५८ ॥

अथ बहुत पानीवाले तक्रका गुण ।

बहूदकं दीपनीयं रक्तपित्तप्रकोपनम् ॥

पीनसे श्वासकासे च न शस्तमिह कथ्यते ॥ ५९ ॥

बहुत पानीवाला तक्र अग्निको जगाता है, रक्तपित्तको कुपित करता है और पीनस खांसी,
श्वास इन रोगोंमें अच्छा नहीं है ॥ ५९ ॥

अथ विशेषवर्णन ।

आर्द्धोदकमुदश्चित्स्यात्तक्रं पादजलान्वितम् ॥

वातं कफं हरेद्धोरमुदश्चिच्छेष्टमलं भवेत् ॥ ६० ॥

आधे पानीसे संयुक्तको उदश्चित् कहते हैं और चौपाई पानीसे संयुक्तको तक्र कहते हैं चात कफनाशक है और उदश्चित् कफकारी है ॥ ६० ॥

अथ हाथसे मर्दित किये तक्रका गुण ।

करेण मर्दितं जन्तुतर्पणं बलकृन्मतम् ॥

श्रमापहरणं स्निग्धं ग्रहण्यशौऽतिसारनुत् ॥ ६१ ॥

हाथसे मर्दित किया तक्र जीवोंको तृप्त करता है, बलको करनेवाला है, परिश्रमको हरता है, चिकना है और ग्रहणीदोष, बवासीर, अतीसारको नाशता है ॥ ६१ ॥

अथ तक्रका निषेध ।

ऋते शोफे च क्षीणानां नोष्णकाले शरत्सु च ॥ न मूर्च्छाभ्रम-
तृष्णासु तथा रक्ते सपैतिके ॥ न शस्तं तक्रपानं च करोति विवि-
धान्गदान् ॥ ६२ ॥

शोजाके बिना क्षीणोंको और गरम कालमें, शरदऋतुमें और मूर्च्छा, भ्रम और तृष्णा इनमें और रक्तपित्तमें तक्रको पीना अच्छा नहीं है क्योंकि अनेक प्रकारके रोगोंको करता है ॥ ६२ ॥

तक्रपानविधि ।

शीतकालेऽग्निमान्द्ये च कफोच्छ्रायामयेषु च ॥ मार्गावरोधे दुष्टे-
ऽग्नौ गुल्मार्शसि तथामये ॥ ६३ ॥ शस्तं प्रोक्तं च तक्रं स्यादमीषां
सर्वदा हितम् ॥ सर्वकालेषु तच्छस्तमर्जाजिलवणान्वितम् ६४ ॥

शीतकालमें, मन्दाग्निमें, कफकी अधिकतासे उपजे रोगोंमें, स्रोतोंके रुकजानेमें दुष्ट हुए अग्निमें, गुल्मरोगमें, बवासीरमें ॥ ६३ ॥ मनुष्योंको तक्र हित कहा है, जीरा और नमकसे संयुक्त किया तक्र सब कालमें उत्तम है ॥ ६४ ॥

अथ नेनूकी विधि ।

नवनीतं नवं ग्राहि हृद्यं चोल्बणदीपकम् ॥ क्षयारुच्यर्दितप्लीहग्र-
हण्यशौविकारनुत् ॥ ६५ ॥ चक्षुष्यं शिशिरं स्निग्धं वृष्यं जी-
वनबृंहणम् ॥ क्षीणे द्रवं हिमं ग्राहि रक्तपित्ताक्षिरोगनुत् ॥ ६६ ॥
स्मृतिवाय्वग्निशुक्रौजः कफमेदोविवर्द्धनम् ॥ वातपित्तकफोन्मा-
दशोफालक्ष्मीज्वरापहम् ॥ सर्वदोषापहं शीतं मधुरं रसपाकयोः ६७

नधीन नेनू ग्राही है, सुन्दर है, उल्वण है, अग्निको जगाता है और क्षय, अरुचि, लङ्घनावात, तिष्ठिरोग, ग्रहणी, ववासीर इनको नाशता है ॥ ६५ ॥ नेत्रोंमें हित है, शीतल है चिकना है, वीर्यको करता है, जीवोंके जीवनको बढ़ानेवाला है, क्षीणमनुष्यके धातुओंको पुष्ट करता है, अर्थात् द्रवरूप है, शीतल स्वभाववाला है, कब्जको करता है, रक्त-पित्तको और नेत्ररोगको नाशता है ॥ ६६ ॥ और सृति, वायु, अग्नि, वीर्य, पराक्रम, कफ और मेद इनको बढ़ाता है और वात, पित्त, कफ, उन्माद, शोजा, कान्तिहीनता और ज्वर इनको नाशता है, सत्र दोषोंको हरता है, शीत है, रसमें और पाकमें मधुर है ॥ ६७ ॥

अथ फेनविधि ।

कृष्णगोऽश्वपयःफेनमजानां वेति शस्यते ॥ मन्दाग्नीनां कृशानां च विशेषादतिसारिणाम् ॥ ६८ ॥ उत्साहदीपनं बल्यं मधुरं वातनाशनम् ॥ सद्यो बलकरं चैव तस्य क्षीरविलोडितम् ॥ ६९ ॥ क्षीणज्वरातिसारे च सामे च विषमज्वरे ॥ मन्दाग्नी कफमाश्रित्य पयःफेनं प्रशस्यते ॥ ७० ॥ क्षीरं गवां क्षीरफेनं तक्रं वा हितमेव च ॥ पक्वाभ्रमक्षणाद्वापि ग्रहणी तस्य नश्यति ॥ ७१ ॥ ताम्बूलं नैव सेवेत क्षीरं पीत्वा तु मानवः ॥ यावत्तच्च द्रवेत्क्षीरं भुक्तान्ताद्वापि शस्यते ॥ ७२ ॥

काली गाय और घोड़ीके दूधका झाग अथवा बकरीके दूधका झाग मन्दाग्निवालोंको और कृशमनुष्योंको और विशेष करके अतिसारवालोंको अच्छा होता है ॥ ६८ ॥ दूधको मथनेसे उत्पन्नहुए झाग उत्साहको करते हैं, बलमें हित है, मधुर हैं, वातको नाशते हैं, शीघ्र बलको करते हैं ॥ ६९ ॥ क्षीणज्वर, अतिसार, आमज्वर, विषमज्वर, मन्दाग्नि, कफको आश्रित होके दूधका फेन श्रेष्ठ है ॥ ७० ॥ गायका दूध अथवा गायके दूधके झाग अथवा गायके दूधका तक्र हित होता है और गायके तक्रको पीनेवाला पके हुए आंबको खावे तो ग्रहणीदोषका नाश होता है ॥ ७१ ॥ दूधका पान करके नागरपानको सेवे नहीं, जबतक वह दूध द्रवभावको नहीं प्राप्त होवे और अन्यभोजनके अंतमें नागरपान अच्छा है अथवा भोजनके अंतमें दूधका पीना अच्छा है ॥ ७२ ॥

अथ गायके घृतका गुण ।

विपाके मधुरं वृष्यं वातपित्तकफापहम् ॥

चक्षुष्यं बलकृन्मेध्यं गव्यं सर्पिर्गुणोत्तमम् ॥ ७३ ॥

गायका घृत पाक कालमें मधुर है, वीर्यमें हित है और वात, पित्त, कफ इनको नाशता है, नेत्रोंमें हित है, बलको करता है, पवित्र है, गुणोंमें उत्तम है ॥ ७३ ॥

अथ बकरीके घृतका गुण ।

आज्यं सन्दीपनीयं च चक्षुष्यं बलवर्द्धनम् ॥

कासश्वासक्षयाणाञ्च हितं पाके कफापहम् ॥ ७४ ॥

बकरीका घृत जठराग्निको जगता है, नेत्रोंमें हित है, बलको बढ़ाता है और खांसी, श्वास, क्षय, इन रोगवालोंको हित है और पाक कालमें कफको नाशता है ॥ ७४ ॥

अथ भैंसके घृतका गुण ।

सवातपित्तशमनं सुशीतं माहिषं घृतम् ॥

मधुरं गुरु विष्टम्भि बल्यं श्रेष्ठगुणात्मकम् ॥ ७५ ॥

भैंसका घृत वातको और पित्तको शांत करता है, सुन्दर शीतल है, मधुर है, भारी है, विष्टम्भी है, बलमें हित है और श्रेष्ठगुणोंवाला है ॥ ७५ ॥

अथ ऊंटनीके घृतके गुण ।

औष्टं कटु घृतं पाके शोषकृमिविषापहम् ॥

दीपनं कफवातघ्नं कुष्ठगुल्मोदरापहम् ॥ ७६ ॥

ऊंटनीका घृत पाककालमें चर्चरा है और शोष, कृमि, विष इनको नाशता है, अग्निको जगता है, कफ और वातको नाशता है और कुष्ठ, गुल्म और उदररोग इनको हरता है ॥ ७६ ॥

अथ भेड़के घृतका गुण ।

पाके लघ्वाविक सर्पिः सर्वरोगविषापहम् ।

वृद्धिं करोति चास्त्रां वै वाश्मरीशर्करापहम् ॥ ७७ ॥

भेड़का घृत पाककालमें हलका है, सब तरहके रोगोंको और विषको हरता है, हथियोंको बढ़ाता है, पथरीको और शर्कराको नाशता है ॥ ७७ ॥

अथ घोड़ीके घृतका गुण ।

वृद्धिं करोति देहाग्नेः पय आश्वं विषापहम् ॥

चक्षुष्यमूषणं चाग्नेर्वातदोषनिवारणम् ॥ ७८ ॥

घोड़ीका घृत देह और जठराग्निको बढ़ाता है, विषको हरता है, नेत्रोंमें हित है, शरीरमें जलन पैदा करता है या वीर्याग्नि बढ़ाता है और वातदोष हटाता है ॥ ७८ ॥

अथ दूधसे ही निकाले घृतका गुण ।

दूधसे निकाला घृत तृप्तिको करता है, नेत्ररोगको नाशता है, हड्डियोंको बढ़ाता है, धियों को दूर करता है और दाहको हरता है ॥ ७९ ॥

वृद्धिं करोति चास्त्रां वै तत्प्रोक्तं च विपापहम् ॥

तर्पणं नेत्ररोगघ्नं दाहनुत्पयसो घृतम् ॥ ७९ ॥

अथ पुराने घृतका गुण ।

सर्पिर्जीर्णं तच्च सन्धुक्षणे च मूर्च्छाकुष्ठोन्मादकर्णाक्षिशूले ॥

शोफार्शसोयोनिदोषे व्रणेषु शस्तं सर्पिर्जीर्णमेवं नृणां स्यात् ८० ॥

पुराना घृत जठराग्निको जगता है और मनुष्योंके मूर्च्छा, कुष्ठ, उन्माद, कर्णशूल, नेत्रशूल, शोफा, वयासीर, योनिदोष और घाव इनमें हित है ॥ ८० ॥

अथ नारीके घृतका गुण ।

कफेऽनिले योनिदोषे रोगेष्वन्येषु तद्धितम् ॥

चक्षुष्यमार्तं स्त्रीणां च सर्पिः स्यादनुतोपमम् ॥ ८१ ॥

कफ, वात, योनिदोष, अन्य भी रोगोंमें उत्तम है, नेत्रोंमें हित है और अमृतके समान है ऐसा नारीका घृत कहा है ॥ ८१ ॥

अथ घृतका विशेष वर्णन ।

बलक्षये तर्पणभोजनेषु श्रमे च पित्तासृजि रेणुयुक्ते ॥ नेत्रामये

कामलपाण्डुरोगे सर्पिःक्षये योग्यतमं प्रदिष्टम् ॥ ८२ ॥ ज्वरे

विबन्धेषु विषूचिकायामरोचके वा शमिते तथाग्नौ ॥ पानात्यये

वापि मदात्यये वा शस्तं न सर्पिः सुधियो वदन्ति ॥ ८३ ॥

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरेक्षीरवर्गो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

बलक्षयमें, तर्पणमें, भोजनमें, परिश्रममें, पित्तरक्तमें, रेणुयुक्त नेत्रके रोगमें, कामलामें, पाण्डुरोगमें, क्षयमें वैद्य घृतको उत्तम कहते हैं ॥ ८२ ॥ ज्वरमें, विबन्धमें, विषूची संज्ञक हैजामें, अरोचकमें, मन्दाग्निमें, पानात्ययमें, मदात्ययमें वैद्य घृतको अच्छा नहीं मानते हैं ॥ ८३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

प्रथमस्थाने क्षीरवर्गो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

अथ मूत्रवर्गः ।

मूत्रं गोऽजाविमाहिष्यं गजाश्वोष्ट्रखरोद्भवम् ॥

मूत्रं मानुषजं चान्यत्समासेन गुणाञ्छृणु ॥ १ ॥

गाय, बकरी, भेड़, भैंस, हस्ती, घोड़ा, ऊँट, गधा और मनुष्य इनके मूत्रोंके गुणोंको विस्तारसे सुनो ॥ १ ॥

अथ गोमूत्रके गुण ।

तीक्ष्णं चोष्णं क्षारमेवं कषायं बल्यं मेध्यं श्लेष्मवाताग्निहन्ति ॥

भेदि रक्तपित्तशमं करोति गुल्मानाहोन्माददोषापहं च ॥ २ ॥

श्रूशङ्खहनुकण्ठकमुखानां च रोगान्गुल्मातिसारगुदमारुतनेत्र-
गदान् ॥ कासं सकुष्ठं जठरकृमिकोशजालं गोमूत्रमेकमपि पीत-

महानि हन्ति ॥ ३ ॥

गायका मूत्र तीक्ष्ण है, गरम है, खारा है, कसैला है, बलमें हित है, पवित्र है, कफको और वातको नाशता है, भेदित करनेवाला है, रक्तपित्तको शांत करता है और गुल्म, अफारा, उन्माद दोष इन्हेंको हरता है ॥ २ ॥ और श्रुकुटी, कनपटी, ठोड़ी, कंठ, मुख, इनके रोगोंको और गुल्म, अतीसार, बवासीर, वातरोग, नेत्ररोग, खांसी, कुष्ठ, पेटमें कीड़ोंका समूह इन्हेंको कई दिन पीनेसे नाशता है ॥ ३ ॥

अथ बकरीके मूत्रका गुण ।

आजं मूत्रं तीक्ष्णमुष्णं कषायं योज्यं पाने शूलगुल्मार्तिनाशम् ॥

कासे श्वासे कामलापाण्डुरोगे दुर्नाम्न्येतच्छ्रेष्ठमस्तीति वैद्याः ॥ ४ ॥

बकरीका मूत्र तीक्ष्ण है, गर्म है, कसैला है, गुल्मको और शूलको नाशता है और खांसी श्वास, कामला, पाण्डुरोग, बवासीर इनमें श्रेष्ठ है ऐसा वैद्य कहते हैं ॥ ४ ॥

अथ भेड़ाके मूत्रका गुण ।

सक्षारं कटुकं तीक्ष्णं मूत्रं वातघ्नमाविकम् ॥

दुर्नामोदरशूलघ्नं कुष्ठमेहविशोधनम् ॥ ५ ॥

भेड़ाका मूत्र क्षार है, कड़ुभा है, तीक्ष्ण है, वातको नाशता है और कुष्ठ, बवासीर, उदर-
रोग, शूल और प्रमेह इनको नाशता है ॥ ५ ॥

अथ भैंसाके मूत्रका गुण ।

सूरं सतिक्तं कटुकं कषायं प्रभेदि वातस्य शमं करोति ॥

पित्तकोपं कुरुते सदा च कुष्ठार्शपाण्डूदरशूलनाशम् ॥ ६ ॥

भैंसाका मूत्र घना है, कटुआ है, चर्चरा है, कसैला है, भेदन करता है, वातको शांत करता है, सब कालमें पित्तको कुपित करता है और पांडु, ववासीर, कुष्ठ, उदररोग और शूल इनको नाशता है ॥ ६ ॥

अथ हस्तीके मूत्रका गुण ।

सुतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं कफकोपनम् ॥

क्षारमण्डलकुष्ठानां नाशनं गजमूत्रकम् ॥ ७ ॥

हस्तीका मूत्र सुंदर, कटुआ है, सलोना है, भेदन करता है, वातको नाशता है, कफको कोपता है और धूर्त अर्थात् दुराचारियोंके मंडल और कुष्ठोंको नाशता है ॥ ७ ॥

अथ घोडेके मूत्रका गुण ।

कफकासहरं छर्दिक्मिकुष्ठविनाशनम् ॥

दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातश्लेष्मविकारनुत् ॥ ८ ॥

घोडेका मूत्र खांसीको और कफको हरता है, छर्दि, कृमि और कुष्ठ इनको नाशता है, अग्निको जगाता है, चर्चरा है, तीक्ष्ण है, गरम है, वात और कफके विकारको नाशता है ॥ ८ ॥

अथ ऊँटके मूत्रका गुण ।

औष्ठं कफहरं रुक्षं क्रिमिदद्रूविनाशनम् ॥

श्रेष्ठं कुष्ठोदरोन्मादशोषार्श क्रिमिवातनुत् ॥ ९ ॥

ऊँटका मूत्र कफको हरता है, रुखा है, कृमिरोगको और दद्रूको नाशता है, श्रेष्ठ है और कुष्ठ, उदररोग, उन्माद, शोष, ववासीर, कृमि और वात इनको नाशता है ॥ ९ ॥

अथ गधेके मूत्रका गुण ।

गार्दभं नामनं मूत्रं तैले योज्यं क्वचिद्भवेत् ॥

सक्षारं तिक्तकटुकमुन्मादकुष्ठरोगनुत् ॥ १० ॥

गधेका मूत्र टेढ़ा कर देता है और किसी तेलमें युक्त करनेके योग्य है, खारा है, तिक्त है, कटुआ है, चर्चरा है, उन्मादको और कुष्ठको नाशता है ॥ १० ॥

अथ नरके मूत्रका गुण ।

मानुषं क्षारकटुकं मधुरं लघु चोच्यते ॥

चक्षुरोगहरं बल्यं दीपनं कफनाशनम् ॥ ११ ॥

१ “सारो बले स्थिरांशे च मज्जि पुंसि जले घने । न्याय्ये क्लीबे त्रिषु वरे सांद्रं मृदि घने घने” इति । मेदिनी । २ ‘क्षारो रसान्तेर धूर्तं लवणे काचभस्मनोः’ इति मेदिनी ।

मनुष्यका मूत्र खारा है, चर्चरा, है, मधुर है, हलका है, नेत्रोंके रोगको रहता है, बलमें हित है, अग्निको जगाता है और कफको नाशता है ॥ ११ ॥

अथ प्रसूता और अप्रसूताके मूत्रका गुण ।

अप्रसूताया घनं मूत्रं प्रसूताया द्रवं लघु ॥

न किं गुणविशेषः स्यात्समता पाकवीर्ययोः ॥ १२ ॥

नहीं प्रसूत अर्थात् विना व्याई हुईका मूत्र कठिन होता है, व्याई हुईका मूत्र पतला होता है, हलका होता है और कुछ गुणमें विशेषता नहीं है, पाक कालमें और वीर्यमें भी समता है ॥ १२ ॥

अथ मूत्रविशेष ।

सौरभेयकमूत्रं तु घनं सान्द्रं प्रशस्यते ॥ तच्च वृषणहीनानां कि-

ञ्चिल्लघुतरं मतम् ॥ १३ ॥ वृषमूत्रं च शोफघ्नं कृमिदोषविनाश-

नम् ॥ कामलाग्रहणीपाण्डुनाशनं चाग्निदीपनम् ॥ १४ ॥ अजागवि-

गतं मूत्रं पाने शस्तं भिषग्वर ॥ आविकं माहिषं चाश्वं तैलपाके

विधीयते ॥ १५ ॥ गजमूत्रप्रलेपं च कण्डूदद्रूविसर्पनुत् ॥ का-

रभं खरमूत्रं वा तैले नस्ये विधायकम् ॥ १६ ॥ इति आत्रेयभा-

षिते हारीतोत्तरे मूत्रवर्गो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

वृषमका मूत्र कठिन और मोटा, श्रेष्ठ होता है । बधिया किये बैलका मूत्र कुछ हलका है ॥ १३ ॥ बैलका मूत्र शोजाको हरता है, कृमिदोषको नाशता है और कामला, ग्रहणी, पांडुरोगको नाशता है और अग्निको जगाता है ॥ १४ ॥ बकरीका और गायका मूत्र पीनेमें श्रेष्ठ है । हे वैद्यवर ! मेढाका मूत्र, भैंसाका मूत्र, घोड़ेका मूत्र ये तीनों तैलपाकमें हित हैं ॥ १५ ॥ हस्तीके मूत्रका लेप खाज, दद्रू, विसर्प इनको नाशता है । ऊटका मूत्र और गधेका मूत्र तेलमें और नस्यमें उत्तम है ॥ १६ ॥ इति बेरीनिवासि-
बुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मूत्रवर्गो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः १०.

अथ इक्षुवर्ग ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि इक्षुवर्ग गुणाधिकम् ॥

रसायनोत्तमं बल्यं रोगवारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

अब गुणोंसे अधिक संयुक्त हुए ईखके वर्गको कहता हूं, यह ईखवर्ग उत्तम रसायन है, बलप्रद है, रोगोंको दूर करता है ॥ १ ॥

स्वादु ईखके गुण ।

स्निग्धं च तर्पणं वापि बृंहणं च सजीवनम् ॥ २ ॥

स्वादु ईख चिकना है, तृप्तिको करता है, धातुओंको पुष्ट करता है और जीवनरूप है ॥ २ ॥

अथ सफेद ईखका गुण ।

तद्वातपित्तशमनश्च तथैव वृष्य अन्तर्विदाहकफकृत्प्रथितः
सितेशुः ॥ ३ ॥

सफेद ईख वातको और पित्तको शांत करता है, वीर्यको बढ़ाता है, और शरीरके भीतर दाह और कफकारक प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

अथ काले ईखके गुण ।

तद्वत् सुकृष्णो भवते गुणानां वृष्यो भवेत्तर्पणदाहहन्ता ॥

क्षारः स किञ्चिन्मधुरो रसेन शोषापहर्ता व्रणशोफकारी ॥ ४ ॥

काला ईख सफेद ईखके गुणोंसे संयुक्त होता है, वीर्यको बढ़ाता है, तृप्तिको और दाहको नाशता है, कुछ खारा है, रसकारके मधुर है, शोषको हरता है, घावको और शोकाको करता है ॥ ४ ॥

अथ यंत्रसे निकाले हुए रसका गुण ।

यन्त्रेण पीडितरसः कथितो गुरुश्च वृष्यः कफं च कुरुतेऽथ सुशी-
तलश्च ॥ पाके विदाहबलकृच्च सुशोभनश्च संसेवितो रुधिरपि-
त्तरुजं निहन्ति ॥ ५ ॥

यंत्रसे निकाला हुआ ईखका रस भारी है, वीर्यको करता है, कफको करता है, सुन्दर शीतल है, पाककालमें दाहको करता है, बलको उपजाता है, सुन्दर शोभित है और सेवित किया रक्त और पित्तके रोगको नाशता है ॥ ५ ॥

अथ दांतोंसे पीडित किये रसका गुण ।

दन्तैर्विपीडितरसो रुचिकृद्गुरुश्च सन्तर्पणो बलकरः कफकृ-
च्छ्रमघ्नः ॥ विष्टम्भकश्च रुधिरस्य तथैव पित्तदोषं निहन्ति
सकलं वमनं च शोषम् ॥ ६ ॥

दांतोंसे पीडित कर निकाला हुआ ईखका रस रुचिको करता है, भारी है, तृप्तिको करता है, बलको उपजाता है, कफको करता है, परिश्रमको नाशता है, विष्टम्भको करता है, रक्तको और पित्तको नाशता है, वमनको और शोषको हरता है ॥ ६ ॥

अथ बासी रसका गुण ।

रसपय्युषितो नेष्टस्तापहैकमते गुरुः ॥

कफपित्तकरः शोषी भेदनो वाऽथ मूत्रलः ॥ ७ ॥

बासी ईखका रस अच्छा नहीं है और किसीके मतमें तापको हरता है, मारी है, कफको और पित्तको करता है, शोषको करता है, भेदन करता है, वातको उपजाता और मूत्रल है ॥ ७ ॥

अथ पक्करसका गुण ।

पक्को गुरुतरः स्निग्धः सतीक्ष्णः कफवातहा ॥

पित्तघ्नोऽपि विशेषेण गुल्मातीसारकासहा ॥ ८ ॥

पकाया हुआ ईखका रस विशेष मारी है, चिकना है, तीक्ष्ण है, कफको और वातको नाशता है और विशेष करके पित्तको शांत करता हुआ भी गुल्म अतीसार और खांसी इनको नाशता है ८

अथ फाणित रसका गुण ।

फाणितं गुर्वभिष्यन्दि बृंहणं शुक्रलं च तत् ॥

पित्तघ्नं च श्रमहरं रक्तदोषनिषूदनम् ॥ ९ ॥

कुचल कर निकाला रस मारी है, कफको करता है, धातुओंको पुष्ट करता है, वीर्यको बढ़ाता है, पित्तको नाशता है, परिश्रमको हरता है और रक्तदोषको दूर करता है ॥ ९ ॥

अथ गुडका गुण ।

बल्यो वृष्यो गुरुः स्निग्धो वातघ्नो मूत्रशोधनः ॥ स पुराणोऽ-
धिकगुणो गुल्माशोऽरोचकापहः ॥ १० ॥ क्षये कासे क्षतक्षीणे
पाण्डुरोगेऽसृजः क्षये ॥ हितो योग्येन संयुक्तो गुडः पथ्यतमो
मृतः ॥ ११ ॥

गुड बलमें हित है, वीर्यको करता है, मारी है, चिकना है, वातको नाशता है, मूत्रको शोधता है और पुराना गुड़ अधिक गुणोंवाला है और गुल्म, बवासीर और अरोचक इनको नाशता है ॥ १० ॥ क्षय, खासी, क्षतक्षीण, पांडुरोग, रक्तक्षय, इन रोगोंमें हित पदार्थसे संयुक्त किया गुड़ अतिपथ्य माना है ॥ ११ ॥

अथ गुडकी खांडका गुण ।

गुडखण्डश्च मधुरः सितश्च वातपित्तहा ॥

किञ्चिच्छीतगुणोपेतो बल्यो वृष्यो रुचिप्रदः ॥ १२ ॥

गुड़की खांड मधुर है, सफेद है, वातको और पित्तको नाशती है, कुछ शीतगुणसे संयुक्त है बलमें हित है, वीर्यको देती है और रुचिको भी देती है ॥ १२ ॥

अथ साधारण खांडका गुण ।

वातपित्तहरं शीतं स्निग्धं बल्यं सुखप्रियम् ॥

चक्षुष्यं श्लेष्मकृच्चोक्तं खण्डं वृष्यतमं मतम् ॥ १३ ॥

खांड साधारण वातको और पित्तको हरती है, शीतल है, चिकनी है, बलमें हित है, मुखमें प्रिय है, नेत्रोंमें हित है, कफको करती है और वीर्यको अति बढ़ाती है ॥ १३ ॥

अथ मिश्रीका गुण ।

सिता सुमधुरा प्रोक्ता वृष्या शुक्रविवर्द्धनी ॥

पित्तघ्नी मधुरा बल्या शर्करा पायिनी नृणाम् ॥ १४ ॥

मिश्री सुंदर मधुर है, धातुओंको पुष्ट करती है, वीर्यको बढ़ाती है पित्तको नाशती है, मधुर है, बलमें हित है, मनुष्योंकी रक्षा करती है ॥ १४ ॥

अथ सुन्दरखांडका गुण ।

शर्करान्या सुशीता च कासशूलसमुद्भवा ॥

हिता पित्तासृजि शोषे मूर्च्छाभ्रममदापहा ॥ १५ ॥

सफेद खांड सुंदर शीतल है, खांसीको और शूलको उपजाती है, पित्त रक्तमें हित है, शोषमें हित है और मूर्च्छा, मद, भ्रम, इनको नाशती है ॥ १५ ॥

अथ गुडकी विशेषता ।

गुदामये कामलशोषमेहे गुल्मामय पाण्डुहलीमके च ॥ वाते

सपित्तासृजि राजरोगे रुचिप्रदो रोगहरो गुरुः स्यात् ॥ १६ ॥

कासे शोषे गुडो नेष्ट अन्यत्रापि हितो मतः ॥ योगयुक्तोहि सर्वत्र

हितो गुणगणालयः ॥ १७ ॥ क्षामक्षामक्षतगतरुजाश्वासमूर्च्छा-

गदीनामध्वश्रान्तिश्रममदविषमूत्रकृच्छ्राश्मरीणाम् ॥ जीर्णक्षाम-

ज्वरविषमगे रक्तपित्तप्रकोपे तृष्णादाहक्षयरुधिरगे सर्वरोगा-

न्निहन्ति ॥ १८ ॥ इति आत्रेयभाषितं हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने

इक्षुवर्गो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

गुदारोगमें, कामलामें, शोषमें, प्रमेहमें गुल्ममें, पाण्डु और हलीमकमें, वातमें, रक्तपित्तमें, राजरोगमें, गुड रुचिको देता है और रोगको हरता है, भारी है ॥ १६ ॥ परंतु खांसी और शोषमें अकेला गुड अच्छा नहीं है और अन्य जगह हित है और योगोंमें युक्त किया गुड सब रोगोंमें हित है और गुणोंके समूहका स्थान है ॥ १७ ॥ कृश, क्षयरोग, श्वास, मूर्च्छा,

इन रोगोंको और मार्गके चलनेसे थकना, परिश्रम, मद, विष, मूत्रकृच्छ्र, पथरी इन रोगोंको और बुद्धापा, विषमज्वर, रक्तपित्तका प्रकोप, तृषा, दाह, क्षय, रक्तरोग इनको गुड़ हरता है ॥ १८ ॥
इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारितसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने
इक्षुवर्गो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ११.

अथ कांजीके वर्ग ।

सन्धानं शीतलं स्वादु महातीसारनाशनम् ॥

काजी शीतल है, स्वादु है, महातीसारको नाशती है ।

अथ चावलोंके पानीका गुण ।

सुखादु शीतलं चैव बृंहणं तण्डुलोदकम् ॥ १ ॥

चावलोंका पानी सुंदर स्वादु है, शीतल है और धातुओंको पुष्ट करता है ॥ १ ॥

अथ तुषोदकका गुण ।

सवातपित्तस्य हरं तुषोदं सरक्तपित्तस्य प्रभेदकञ्च ॥

विपाचनं स्याज्जरणं कृमिघ्नमजीर्णनाशं कटुक विपाके ॥ २ ॥

तुषोदक वातपित्तको हरता है, रक्तपित्तको हरता है, भेदन करता है, विशेषकरके पाचन
करता है, कीड़ोंको हरता है, अजीर्णको हरता है और पाककालमें चर्चरा है ॥ २ ॥

अथ जव और गेहूंकी कांजीका गुण ।

जातं यवाम्लं कटुकं विपाके वातापहं श्लेष्महरं सरक्तम् ॥ पित्ता-

प्रकोपं कुरुते सभेदि विदूषणं पित्तगदासृजञ्च ॥ ३ ॥ संदीपनं

शूलहरं सुरुच्यं गोधूमजातं क्वथितं कषायम् ॥ सन्दीपनं स्या-

ज्जरणं कफघ्नं समीरदोषं हरते ततोऽपि ॥ ४ ॥

जवोंकी कांजी पाककालमें चर्चरी है, वातको और कफको हरती है, रक्तको और पित्तको
कोपती है, भेदन करती है और पित्त और रक्तको दूषित करती है ॥ ३ ॥ गेहूंकी कांजी दीपन
है, शूल हरती है, रुचिकर है, कषैली है, जठराग्निको तेजकरती है, कफघ्न है और वातदोषको
हरती है ॥ ४ ॥

अथ तेलयुक्त कांजीका गु

पीतं जरयते चामं बाह्यदाहश्रमापहम् ॥

स्याच्च तत्कुष्ठकण्डूघ्नं तैलयुक्तं समीरहत् ॥ ५ ॥

तेलसे युक्त हुई कांजी पीनेसे आमको जराती है, शरीरके बाहिरके दाहको और परिश्रमको-
हरती है, कुष्ठको और खाजको तथा वायुको नाशती है ॥ ५ ॥

अथ शुगंधरकांजीका गुण ।

शुगन्धराम्लं कफवातहन्तु शूलामयानां जरणप्रकर्तृ ॥

तीक्ष्णं तथा म्लं श्रमदोषहन्तु मेहार्शसो रक्तहितं मतं च ॥ ६ ॥

जयारकी कांजी कफको और वातको हरती है, शूल रोगोंको जलाती है, तीक्ष्ण है, खट्टी-
है, श्रम दोषको हरती है, प्रमेहमें बवासीरमें और रक्तमें हित कही गयी है ॥ ६ ॥

अथ कांजीका परिहार ।

शोषे मूर्च्छाज्वरात्तानां श्रमके दुर्विपादिते ॥ कुष्ठानां रक्तपित्तानां

काजिकं न प्रशस्यते ॥ ७ ॥ पाण्डुरोगे राजयक्ष्मे तथा शोफा-

तुरेषु च ॥ क्षतक्षीणे पथि श्रान्ते मन्दज्वरनिपीडिते ॥ नरे नैव

हितं प्रोक्तं काजिकं दोषकारकम् ॥ ८ ॥

शोषमें, मूर्छा और ज्वरसे पीडितको श्रममें, दुष्ट विषकी पीडामें, कुष्ठ और रक्तपित्तमें कांजी
अच्छी नहीं है ॥ ७ ॥ पाण्डुरोगमें, राजरोगमें और शोकासे पीडित रोगीको और क्षतसे क्षीण
हुएको और मार्गमें थके हुए और मंद ज्वरसे पीडितको कांजी अच्छी नहीं है किंतु दोषोंको
करती है ॥ ८ ॥

अथ कांजीकी प्रशंसा ।

शूलवातादितानां तु तथा जीर्णविवन्धिनाम् ॥ श्रेष्ठं प्रोक्तं तथा-

म्लं च गुणाधिक्यं नरेषु च ॥ ९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतो-

त्तरे काजिकवर्गो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

शूल और वातसे पीडितोंको, अजीर्ण और वद्वकोष्ठवालोंको कांजी श्रेष्ठ है और मनुष्योंमें-
गुणोंकी अधिकता करती है ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादित-
हारीतसंहिताभाषाटीकायां काजिकवर्गो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथ चावलोंके मंडका गुण ।

धान्यमण्डं पित्तहरं श्रमघ्नं चाश्मरीहरम् ॥

वातलं रक्तशमनं ग्राहि सन्दीपनं वरम् ॥ १ ॥

चावलोंका मांड पित्तको हरता है, परिश्रमको हरता है, पथरीको हरता है, वायुको उपजात है, रक्तको शांत करता है, कब्जको करता है और अग्निको अच्छी तरह जगाता है ॥ १ ॥

अथ लाल चावलके मांडका गुण ।

रक्तशाल्युद्भवं मण्डं मधुरं ग्राहि शीतलम् ॥

प्रमेहानश्मरीं हन्ति वातलं पित्तहृद्भरम् ॥ २ ॥

लाल चावलोंका मांड मधुर है, कब्जको करता है, शीतल है, प्रमेहोंको और पथरीको हरता है, वातल है, पित्तको हरता है, सुन्दर है ॥ २ ॥

अथ सफेद चावलोंके मांडका गुण ।

मधुरं शीतलं किञ्चिच्छेष्मलं शोषनाशनम् ॥

अश्मरीमेहसंच्छर्दिवातलं श्वेततण्डुलम् ॥ ३ ॥

सफेद चावलोंका मांड मधुर है, शीतल है, कुछ कफको करता है, शोषको नाशता है और पथरी, प्रमेह, छर्दि, वात इनको करता है ॥ ३ ॥

अथ जवोंके मांडका गुण ।

यवमण्डं कषायं स्याद्ग्राहि चोष्णे विपाकि च ॥

जवोंका मांड कषैला है, कब्जको करता है, गरम पाकवाला है ।

अथ गेहूँके मांडका गुण ।

तद्गद्गोधूमसम्भूतं मधुरं पित्तवारणम् ॥ ४ ॥

गेहूँओंका मांड जवोंके मांडके समान गुण देता है, परंतु मधुर है और पित्तको दूर करता है ॥ ४ ॥

अथ क्षुद्र-अन्नके मांडका गुण ।

अन्येषां क्षुद्रधान्यानां मण्डं वातहरं स्मृतम् ॥

अन्य क्षुद्रसंज्ञक अन्नोंका मांड वातको हरनेवाला कहा है ।

अथ कोदूं अन्नके मांडका गुण ।

ग्लानिमूर्च्छाकरं सद्यः कोद्वं न हितं मतम् ॥ ५ ॥

कोदूं अन्नका मांड ग्लानिको और मूर्च्छाको शीघ्र करता है और हित नहीं माना है ॥ ५ ॥

अथ क्षुद्र अन्नके कांजीका गुण ।

तद्वच्च क्षुद्रधान्याम्लं वातलं पित्तकारकम् ॥ करोति श्लिषदं

गुल्मं प्रतिश्यायादिकोपनम् ॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारी-

तोतरे मण्डवर्गो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

क्षुद्र अन्नकी कांजी ग्लानिको और मूच्छाको शीघ्र हरती है, वातल है, पित्तको भी करती है
स्त्रीपदको और गुल्मको करती है और जुकाम आदिको कोपती है ॥६॥ इति वेरीनिवासि-
हृदयसहायसूनुपैद्यदिदत्तशास्त्रनुयादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मंडवर्गो नाम
डादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.



अथ यूषवर्ग ।

प्रथम कुलथकि यूषका लक्षण ।

कुलथयूषो मधुरः कषायो भवेच्च रक्तस्य कफस्य हन्ता ॥

महाक्ष्मरीपायुजमेदहन्ता सन्दीपनो मेहविशोषणश्च ॥ १ ॥

कुलथीका यूष मधुर है, कसैला है, रक्तसहित कफको नाशता है और पथरी, बवासीर,
मेद इनको नाशता है, अग्निको जगाता है और प्रमेहको शोषता है ॥ १ ॥

अथ हरडके यूषका गुण ।

भवेत्तुर्वर्या मधुरं च यूषं विशोषणं वातनिवारणं च ॥

श्लेष्मापहं पित्तहरं ज्वराणां पृथक्पृथक् हृत्क्रिमिदारुणं च ॥२॥

अरहरका यूष मधुर है, शोषता है, वातको दूर करता है, कफको और पित्तको हरता है,
नापस्त ज्वरोंको शांत करता है, कृमिरोगको नाशता और दारुण अर्थात् गर्म है ॥ २ ॥

अथ मूंगके यूषका गुण ।

शीतलं मधुरं मौद्गयूषं पित्तविकारजित् ॥

तच्च वातहरं प्रोक्तं ज्वराणां शमनं परम् ॥३॥

मूंगका यूष शीतल है, मधुर है, पित्तके विकारको जीतता है, वातको हरता है और
ज्वरोंको निश्चय शांत करता है ॥ ३ ॥

अथ चनाके यूषका गुण ।

कषायं कटुकं चोष्णं वातघ्नं कफदोषकृत् ॥

रक्तपित्तं निहन्त्याशु चणानां यूषमुच्यते ॥ ४ ॥

चनाका यूष कसैला है, चर्चरा है, गरम है, वातको नाशता है, कफको करता है और रक्त-
पित्तको निश्चय नाशता है ॥ ४ ॥

अथ उडदके यूषका गुण ।

घनं सवातं कफकृन्माषयूषं च पित्तकृत् ॥

अम्लं पर्युषितं तच्च तैलपाके च शस्यते ॥ ५ ॥

उडदका यूष भारी है, वातको और कफको करता है, पित्तको करता है, खट्टा है और वासी हुआ यह खट्टा यूष तेलपाकमें श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥

अथ अन्ययूषोंके गुण ।

अन्यानि च प्रशस्तानि कुलथान्युषितानि च ॥ मसूरास्त्रिपुटा

बल्याः कलायाद्याश्च वर्जिताः ॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारी-

तौत्तरे यूषवर्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

और वासी हुए कुलथी आदिके भी यूष अच्छे हैं और मसूरके यूष बलमें हित हैं और मटर आदिके यूष वर्जित हैं ॥ ६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादित-
हारीतसंहिताभाषाटीकायां यूषवर्गो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.

अथ तेलवसावर्ग ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि तैलानां च गुणागुणान् ॥

तच्च ज्ञेयं समासेन यथायोग्यं यथाविधि ॥ १ ॥

अब तैलोंके गुणदोषको कहता हूं, वह तेल विस्तारसे यथायोग्य और यथाविधि जानना ॥ १ ॥

अथ तिलोंके तेलका गुण ।

कषायानुरसं स्वादु सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च ॥ पित्तकृद्वातशमनं

श्लेष्मरोगादिवर्द्धनम् ॥ २ ॥ अल्पं रुचिकरं मेध्यं कण्डूकुष्ठवि-

कारनुत् ॥ वृष्यं श्रमापहं ज्ञेयं तिलतैलं विदुर्बुधाः ॥ ३ ॥ छिन्न

भिन्ने च्युते घृष्टे भग्नाग्निदाहकेऽपि च ॥ वाताभिष्यन्दिस्फुटने

चाभ्यङ्गे तिलतैलकम् ॥ ४ ॥ विषे व्यालशुनः सर्पभेकाभ्यङ्गा-

वगाहने ॥ पाने वस्तौ बलाशे च तिलतैलं विधीयते ॥ ५ ॥

तिलतैलं विधेयं स्यात्सर्वरोगनिवारण ॥ ६ ॥

तिलोंका तेल कसैला है, स्वादु है, सूक्ष्म है, गरम है, फैलनेवाला है, पित्तको करता है, वातको शांत करता है और कफरोग आदिको बढ़ाता है ॥ २ ॥ अल्पखपी यह तेल रुचिको करता है, यवित्र है, खाजको और कुष्ठको नाशता है, धातुको पुष्ट करता है, परिश्रमको नाशता है ऐसे तिलोंके तेलको बुद्धिमान् कहते भये ॥ ३ ॥ और छिन्न अर्थात् तलवार आदिसे कटे, भिन्न अर्थात् बरछी आदिसे कटे, गिरं, विसे अर्थात् पत्थर आदिकी रगडसे छिले, हाड़ आदिके टूटने, अग्निसे जलने, वाताभिष्यंद, कूटने और मालिश करनेमें तिलोंका तेल उत्तम है ॥ ४ ॥ भेडिय, और कुत्ताके विषमें, सर्प, विरैले मीडक आदिके विषमें, मालिश, स्नान, पान और वस्तिकर्मा इनके द्वारा चिकित्सा में और कफके रोगमें तिलोंका तेल हित है ॥ ५ ॥ और सब रोगोंके दूर करनेके लिये तिलोंके तेलका विधान है ॥ ६ ॥

अथ सरसोंके तेलका गुण ।

कटु तिक्तं तथा ग्राहि उष्णं स्यात्कफवातनुत् ॥ कृमिकण्डूशो-
धनं स्यात्पित्तकृत्सार्पणं सुतम् ॥ ७ ॥ कर्णरोगे कृमिरोगे
तथा वातामयेषु च ॥ कण्डूकुष्ठामये चैव कफमेदोगणेषु च ॥ ८ ॥
प्रशस्यं सार्पणं चैव रोगाणां च विभावयेत् ॥ वस्तिकर्मणि नो
शस्तं पित्तदाहकरं महत् ॥ ९ ॥

सरसोंका तेल चर्चरा है, कडुआ है, कब्जकों करता है, गरम है, कफको और वातको नाशता है, कीड़ोंको और खाजको शोधता है और पित्तको करता है ॥ ७ ॥ और कानरोग, कृमिरोग, वातके रोग, खाज, कुष्ठ, कफका रोग, मेद ॥ ८ ॥ इनमें उत्तम है, वस्तिकर्ममें अच्छा नहीं है, पित्त और दाहको करता है ॥ ९ ॥

अथ अलसीके तेलका गुण ।

अतसीप्रभवं तैलं घनं मधुरपिच्छलम् ॥

विपाके चोष्णवीर्यं च वातश्लेष्मनिवारणम् ॥ १० ॥

अलसीका तेल भारी है, मधुर है, गाढ़ा है और पाककालमें गरम वीर्यवाला है, वातको और कफको दूर करता है ॥ १० ॥

अथ एरंडके तेलका गुण ।

एरण्डजं घनं चापि शीतमेव मृदु स्मृतम् ॥

हृद्वस्तिजङ्घाकट्यरूशूलानाहविवन्धनुत् ॥ ११ ॥

एरंडका तेल गाढ़ा है, शीतल है, कोमल है और हृदय, वस्तिस्थान, जांघ, कटि, ऊरु, इनमें उत्पन्न शूल, अफारा, कोष्ठबद्धताको दूर करता है ॥ ११ ॥

अथ तेलविशेषता ।

आनाहाष्ठीलवातासृक्प्लीहोदावर्तशूलिनाम् ॥ हन्ति वातवि-
काराणां विदध्याच्च प्रशान्तये ॥ १२ ॥ यावन्तः स्थावराः स्नेहाः
समासेन प्रकीर्तिताः ॥ सर्वे तैले गुणा ज्ञेयाः सर्वे चानिलनाश-
नाः ॥ १३ ॥ सर्वेभ्यस्त्वह तैलेभ्यस्ति तैलं प्रशस्यते ॥ १४ ॥

अफारा, अष्ठीला, वातरक्त, तिलीरोग उदावर्त, शूल, वातरोग, इनकी शांतिके लिये तेल
है ॥ १२ ॥ जो स्थावरसंज्ञक स्नेह विस्तारसे कहे हैं वे सब तेलके समान गुणोंको करनेवाले हैं
और वातको नाशते हैं ॥ १३ ॥ सब प्रकारके तेलोंसे तिलोंका तेल श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

अथ लाल एरंडके तेलका गुण ।

तैलमेरण्डजं बल्यं गुरुष्णं मधुरं तथा ॥

तीक्ष्णोष्णं पिच्छलं विस्रं रक्तमेरण्डसम्भवम् ॥ १५ ॥

लाल एरंडका तेल बलको करता है, भारी है, गरम है, मधुर है, तीक्ष्ण और गरम है, कफको
करता है, कच्चे गंधवाला है ॥ १५ ॥

अथ कुसुंभके तेलका गुण ।

कुसुम्भतैलमुष्णं तु विपाके कटुकं गुरु ॥

विदाहकं विशेषेण सर्वदोषप्रकोपनम् ॥ १६ ॥

कुसुंभका तेल गरम है, पाककालमें चर्चरा है, भारी है, विशेषकरके दाहको करता है और सब
दोषोंको कोपता है ॥ १६ ॥

कफोद्धातानि तैलानि यान्युक्तानि च कानिचित् ॥

गुणं कर्म च विज्ञाय कफवातानि निर्दिशेत् ॥ १७ ॥

कफको नाशनेवाले जो तेल कहे हैं उनके गुण और कर्मको जानकर कफ और वात रोगमें
प्रयुक्त करने ॥ १७ ॥

अथ कुरंटाके तेलका गुण ।

सहकारतैलमीषतिक्तमतिसुगन्धि वातकफहरं सूक्ष्मम् ॥

मधुरं कषायमेवं नातिरक्ते पित्तकरञ्च ॥ १८ ॥

कुरंटाका तेल कल्लुक कडुआ है, अतिसुगन्धित है, वातको और कफको हरता है, सूक्ष्म है, मधुर
है, कसैला है, रक्तको अति नहीं उपजाता है और पित्तको करता है ॥ १८ ॥

१ सम्यग्विचार्य दृष्टं पद्येऽस्मिन्नास्ति वृत्तयोगो वै । विद्वद्भिः क्षन्तव्यं ह्यार्षश्चायं महिषिभिः प्रोक्तः
सहकारपुष्पस्य कुरंटकपुष्पेण साम्यमतो लक्षणया सहकारस्यार्थः कुरंटक इति ।

अथ तेलकी विशेषता ।

सौवर्चलेडुदीपीलुशिशपासारसम्भवम् ॥ सरलागुरुदेवादिपाद-
पैः सम्भवं तु यत् ॥ १९ ॥ तुम्बुलूतथं करञ्जोत्थं ज्योतिष्मत्युद्भवं
तथा ॥ अर्शःकुष्ठकृमिश्लेष्मशुकप्रेदोऽनिलापहम् ॥ २० ॥
करञ्जारिष्टके तिक्ते नात्युष्णेन विनिर्दिशेत् ॥ २१ ॥

काला नमक, हिङ्गोट, पीलू, सीसमका सार इनका तेल और सरलवृक्ष, अगर, देवदार इनका तेल
॥ १९ ॥ धनियांका तेल, करंजुवाका तेल, मालकांगनीका तेल ये बवासीर, कुष्ठ, कृमिरोग,
कफ, वीर्य, मेद और वात इनको नाशते हैं ॥ २० ॥ करंजुवाका तेल और नींबूका तेल
क्षतिगरम नहीं कहा है ॥ २१ ॥

अथ स्वच्छ तिवसका तेल, आच्छोडका तेल, नारियलका
तेल तथा महुवाके तेलका गुण ।

कषायं मधुरं तिक्तं सारणं व्रणशोधनम् ॥

अच्छातिमुक्तकाच्छोडनालिकेरमधूकजम् ॥ २२ ॥

अतिशुद्ध तिवसका तेल, अच्छोडका तेल, नारियलका और महुवाका तेल कसैला है, मधुर
है, कडुआ है, दोषोंको दूर करता है, वायुको शोधता है ॥ २२ ॥

अथ काकड़ी, खीरा, कोहला, लहेंसवा, पीलू इनके तेलका गुण ।

त्रपुष्युर्वारुकूष्माण्डश्लेष्मातकपीलूद्भवम् ॥

वातपित्तहृदशोभ्रं श्लेष्मलं गुरु शीतलम् ॥ २३ ॥

काकड़ी, खीरा, कुम्हड़ा, लहेसुवा, पीलू इनका तेल वात, पित्त और बवासीर इनको
नाशता है, कफको करता है, भारी है, शीतल है ॥ २३ ॥

अथ सालपर्णी और टेण्डूके तेलका गुण ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनं श्रीपर्णीकिंशुकोद्भवम् ॥ २४ ॥

सालपर्णी और टेण्डूका तेल पित्तको और कफको नाशता है ॥ २४ ॥

अथ वसावर्ग ।

वसा मज्जा च वातघ्नी बलपित्तकफप्रदा ॥ सौकरी माहिषी वसा
वातला श्लेष्मवर्द्धनी ॥ २५ ॥ सर्पनकुलगौधेया व्रणकुष्ठघ्नी
विलेपनादेवा ॥ मत्स्यशिशुमारमकरग्राहादीनां वसाप्येवम् ॥ सा

विसर्पहरा हृद्या कुष्ठरोगविनाशिनी ॥ २६ ॥ इति आत्रेयभाषिते
हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने तैलवसावर्गो नाम चतुर्दशोऽध्यायः १४ ॥

वसा, चरवी, मज्जा अर्थात् हड्डियोंका स्नेह वातको नाशता है और बल, पित्त और कफ इनको देता है, सूकरकी और मैसकी वसा वातको करती है और कफको बढ़ाती है ॥ २५ ॥ सर्प, नोला, गोहकी वसा लेप करनेसे घावको और कुष्ठको नाशती है और मच्छ, शिशुमार, यकरमच्छ, ग्राह आदिकी भी वसा लेप करनेसे घावको और कुष्ठको नाशती है परंतु यह वसा विसर्परोगको हरती है, हृदयको हित है और कुष्ठको विशेषकरके हरती है ॥ २६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
प्रथमस्थाने तैलवसावर्गो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ धान्यवर्गः ।

प्रथम शालिचावलका वर्णन ।

रक्तशालिर्महाशालिः कलमा षष्टिकापरा ॥ खञ्जरीटा पसाही
च जीरकान्या कपिञ्जला ॥ १ ॥ सौगन्धी शूकला चान्या बि-
लवासी कचोरका ॥ गरुडा रुक्मवन्ती च कलमान्या तथापरा ॥
बिल्वजा मागधी पीता ता अष्टादश शालयः ॥ २ ॥

रक्तशाली, महाशालि, कलमा, साठी, खंजरीटा, पसाही जीरका, कपिञ्जला ॥ १ ॥ सौगन्धी शूकला, बिलवासी, कचोरका, गरुडा, रुक्मवन्ती, कलमा, बिल्वजा, मागधी, पीता ऐसे अठारह प्रकारके शालिचावल कहे हैं ॥ २ ॥

अथ शालियोंके गुण दोष ।

रक्तशालिस्त्रिदोषघ्नी चक्षुष्या मूत्ररोगहा ॥ महाशालिर्गुरुवृष्या
चक्षुष्या बलवर्द्धिनी ॥ ३ ॥ शीता गुरुस्त्रिदोषघ्नी मधुरापरषष्टिका
॥ ४ ॥ जीरका वातपित्तघ्नी कलमा श्लेष्मपित्तहा ॥ कपिञ्जला
श्लेष्मला स्यान्मागधी कफवातला ॥ ५ ॥ बिलवासी गुरुश्चापि
पित्तघ्नी शूकवार्द्धिनी ॥ शूकला पित्तवातघ्नी कचोरा पित्तनाशिनी
॥ ६ ॥ गरुडान्या च वातघ्नी पित्तमूत्रगदापहा ॥ रुक्मवन्ती लघु

रुचिवलपुष्टिकरा मता॥७॥ कलमान्या लघुः पथ्या वातश्ले-
ष्मविवर्द्धिनी ॥ विल्वजा मागधी पीता सामान्यास्ता गुणागुणैः
॥८॥ रुचिकृद्बलकृन्मूत्रदोषघ्नी च श्रमापहा ॥ दग्धग्रामाचले
जाताः शालयो लघुपाकिनः ॥९॥ सुपथ्या वद्वविण्मूत्रा रूक्षाः
श्लेष्मापकर्षिणः ॥ केदारप्रभवा वृक्षा वातपित्तविनाशिनः ॥१०॥
रक्तपित्तविकारघ्ना वातलाः कफकारकनाः ॥ देशे देशे विभिन्नानि
नामानि परिलक्षयेत् ॥११॥ समान्गुणैश्च सर्वास्तान्भूमिभागो-
द्भवान्विदुः ॥१२॥ शालयश्छिन्नरोहाश्च मूत्रला वातला हिमाः १३

रक्तशालिचावल त्रिदोषको नाशता है, नेत्रोंमें हित है, मूत्ररोगको नाशता है । महाशालि भारी है, धातुको पुष्ट करता है, नेत्रोंमें हित है, बलको बढ़ाता है ॥ ३ ॥ साठी शीतल है, भारी है, त्रिदोषको हरता है और नष्टुर है ॥ ४ ॥ जीरका वातको और पित्तको हरता है । कुलमा कफको और पित्तको नाशता है । कर्पिजला कफको करता है । मागधी कफको और वातको करता है ॥ ५ ॥ विलवासी भारी है, पित्तको नाशता है, वीर्यको बढ़ाता है । शूकला पित्तको और वातको नाशता है । कचोरा पित्तको नाशता है ॥ ६ ॥ गरुडा वातको नाशता है, पित्तको और मूत्ररोगको हरता है । क्मवन्ती हलकी है और रुचि, बल, पुष्टि इनको करता है ॥ ७ ॥ अन्यप्रकारका कलमा हलका है, पथ्य है, वातको और कफको बढ़ाता है और विल्वजा, मागधी, पीता ये तीनों गुण और दोषों करके समान हैं ॥ ८ ॥ खंजरीटा शालि रुचिको और बलको करता है, मूत्रदोषको नाशता है और परिश्रमको हरता है । दग्धग्राममें और पर्वतमें उपजे शालिचावल हलके पाकवाले हैं ॥ ९ ॥ खेतमें उपजे शालि चावल सुन्दर पथ्य हैं, विष्टाको और मूत्रको बांधते हैं, रखे हैं, कफको नाशते हैं, वातको और पित्तको नाशते हैं ॥ १० ॥ कोई शालि रक्तपित्तके विकारको नाशते हैं, वातल हैं और कफको करते हैं । इन शालियोंके नाम देशदेशमें भिन्न जानने ॥ ११ ॥ पृथिवीके भागोंसे उपजे सब प्रकारके शालि गुणोंसे समान जानने ॥ १२ ॥ रोया शालि मूत्रको उपजाते हैं, वातको उपजाते और शीतल हैं ॥ १३ ॥

अथ क्षुद्रधान्यवर्गः ।

श्यामाकः कोद्रवः कण्डूर्मर्कटी कपिकच्छुरा ॥

क्षुद्रधान्यमिदं प्रोक्तं शृणु पुत्र प्रवक्ष्यते ॥ १४ ॥

श्यामाक, कोद्रु, कण्डू, मर्कटी अर्थात् मकड़ा, कपिकच्छुरा इन नामोंसे क्षुद्रधान्य कहा है, अब मैं कहता हूँ हे पुत्र ! सुन ॥ १४ ॥

अथ श्यामक और कोदूके गुण दोष ।

श्यामाकः शोषणो रूक्षो वातलः कफवारणः ॥ कोदूवो रूक्षो
ग्राही स्याद्रक्तपित्तविशोषणः ॥ १५ ॥ नाधिककफकृत् प्रोक्तो
रुच्यः स्वादुः प्रकीर्तितः ॥ १६ ॥

श्यामक शोषनेवाला है, रूखा है, वातल है, कफको दूर करता है । कोदू रूखा है, कब्जको करता है और रक्तपित्तको शोषता है ॥ १५ ॥ और कफकी अधिकताको नहीं करता है, रुचिमें हित है और स्वादु है ॥ १६ ॥

अथ विदलान्नका गुण ।

विदलान्नानि वक्ष्यामि शृणु पुत्र यथाक्रमम् ॥ यवगोधूमचण-
का माषो मुद्गाढकी तथा ॥ १७ ॥ मकुष्टकः कुलत्थश्च मसूर-
स्त्रिपुटस्तथा ॥ निष्पावकः कलायश्च विदलान्नं प्रकीर्तितम् १८

हे पुत्र ! विदल संज्ञक अन्नोको कहता हूँ सुन । जव, गेहूं, चना, उड़द, मूग, दरीअन्न ॥ १७ ॥
मोठ, कुलथी, मसूर, चौला, रेवसारी, मठर इनको विदल अन्न कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ जवोंका गुण ।

रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः कषायो मधुरो यवः ॥

वृष्यो ग्राही कफघ्नश्च स्यात्पित्तश्वासकासनुत् ॥ १९ ॥

जव रूखा है, शीतल है, भारी है, स्वादु है, कसैला है, मधुर है, वीर्यमें हित है कब्जको करता है कफको नाशता है, पित्त, श्वास और खाँसीको हरता है ॥ १९ ॥

अथ गेहूंका गुण ।

मधुरो गुरुविष्टम्भी वृष्यो बल्योऽथ बृंहणः ॥

ईषत्कषायो मधुरो गोधूमः स्यात्त्रिदोषहा ॥ २० ॥

गेहूँ मधुर है, भारी है, विष्टम्भी है, वीर्यमें हित है, बलको करता है, धातुओंको बढ़ाता है, कुछ कसैला, मधुर है और त्रिदोषको नाशता है ॥ २० ॥

अथ तिलोंका गुण ।

तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपनपथ्य उक्तः ॥

बल्योऽग्निमेधाजननो वरेण्यो मूत्रस्य दोषापहरो गुरुश्च ॥ २१ ॥

तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथान्ये ॥ २२ ॥

तिल पाककालमें मधुर है, अतिबलवाला है, चिकना है, घावपे लेप करनेमें पथ्य है, बलमें हित है, अग्निको और बुद्धिको देता है, सुंदर है, मूत्रके दोषको हरता है और भारी है ॥ २१ ॥
सब प्रकारके तिलोंमें काला तिल प्रधान है और सपेद तिल मध्यम है और अन्य प्रकारके तिल हीन गुणवाले हैं ॥ २२ ॥

अथ चनाका गुण ।

रक्ते कफे पीनसके तु कण्ठे गलामये वातरुजे सपित्ते ॥ शीतः

प्रतिश्यायकृमीन्निहन्ति शुष्कस्तथार्द्रश्चणकः प्रशस्तः ॥ २३ ॥

रक्त, कफ, पीनस, कंठरोग, गलरोग, वातरोग और पित्त इनमें चना हित है, शीतल है, सखरमा और कीड़ोंको नाशता है, सूखे और गीले चने अच्छे कहे हैं ॥ २३ ॥

अथ उड़दका गुण ।

क्षिग्धोऽथ वृष्यो मधुरश्च बल्यो मरुत्कफानां परिवृंहणश्च ॥

पाकेऽस्लकोष्णो विदितो हिमश्च माषोऽथ हृद्यः कथितो नरैश्च ॥ २४ ॥

उड़द चिकना है, वीर्यमें हित है, मधुर है, बलमें हित है, वायुको और कफको बढ़ाता है, पाककालमें खट्टा है, कुछ गरम है, शीतल और सुंदर है ॥ २४ ॥

अथ मूंगका गुण ।

शीतः कषायो मधुरो लघुः स्यात्पित्तास्रदोषस्य हरः सरश्च ॥

विपाकतोऽसौ कटुकप्रधानो मुद्गस्तथान्यः कथितोऽभिरम्यः ॥ २५ ॥

मूंग शीतल है, मधुर है, हलका है, पित्त और रक्तके दोषको हरता है, सर है, पाककालमें चर्चरा है और रमणीक है ॥ २५ ॥

अथ तुवरका गुण ।

मृदुः कषाया च सरक्तपित्तं वातं कफं हन्ति मुखव्रणश्च ॥

गुल्मज्वरारोचककासछर्दिहृद्रोगदुर्नामहराढकी स्यात् ॥ २६ ॥

तुवर अर्थात् अरहर कसैला है, कोमल है और रक्तपित्त, वात, कफ, मुखका घाव, गुल्म, ज्वर, अरोचक, खाँसी, छर्दि, हृद्रोग और बवासीर इनको हरती है ॥ २६ ॥

अथ मोठके गुण ।

स रक्तपित्तं कफवातहन्ता चोष्णः कषायो मधुरः प्रदिष्टः ॥

ग्राही सुशीतो गुदकीलगुल्मं मकुष्टकः सर्वगदान्निहन्ति ॥ २७ ॥

मोठ रक्तपित्त, कफ, और वात इनको नाशती है, गरम है, कसैला है, मधुर है, कब्जको करती है, शीतल है और बवासीर, गुल्म और सब रोगोंको हरती है ॥ २७ ॥

अथ कुलथीका गुण ।

उष्णो जयेन्मारुतपीनसं तु कासप्रतिश्यायविवन्धगुल्मान् ॥

हिक्कांसरक्तं तु बलाशपित्तं निहन्ति मेदश्च कुलथकोऽयम् ॥२८॥

कुलथी गर्म है, वात, पीनस, खांसी, खेहर, बंधा, गुल्म, हिचकी इनको नाशती है और लाल कुलथी कफ, पित्त, मेद इनको हरती है ॥ २८ ॥

अथ चौलाका गुण ।

रूक्षो विशोषी मधुरः प्रदिष्टः स्नायुं करोत्यस्थिगतं बलिष्ठम् ॥

विवन्धशूलभ्रमशोफकर्ता दाहार्शहृद्रोगविकारकारी ॥२९॥

चौला रूखा है, विशेष करके शोषता है, मधुर है, हड्डीके नसको बलवाला बनाता है और शूल, बंधा, भ्रम और शोजा इनको करता है और दाह, हृद्रोग, बवासीर इनको करता है ॥ २९ ॥

अथ मटरका गुण ।

किञ्चित्कषाया मधुराः प्रदिष्टा रक्तप्रशान्तिं जनयन्ति बल्याः ॥

किञ्चित्सवातं विनिहन्ति पित्तं कलायका मुद्गसमानरूपाः ॥३०॥

मटर कछुक कसैला है, मधुर है, रक्तको शांत करता है, बलमें हित है, वातको और पित्तको कछुक नाशता है, यह मूंगके समान रूपवाला होता है ॥ ३० ॥

अथ मसूरका गुण ।

रूक्षो विशोषी मधुरः प्रदिष्टः शूलार्तिगुल्मग्रहणीविकारान् ॥

करोति वातामयवर्द्धनं च पित्तासृजं ग्राहहरो मसूरः ॥३१॥

मसूर रूखा है, शोषी है, मधुर है और शूल, गुल्म और ग्रहणीदोष इनको करता है, वातरोगको बढ़ाता है, पित्त रक्तको उपजाता है, कब्जको नाशता है ॥ ३१ ॥

अथ धान्यवर्गका उपसंहार ।

इति प्रदिष्टो बहुधान्यवर्गो ग्रन्थस्य विस्तारभयाच्च किञ्चित् ॥

ये ये प्रसिद्धाः सुतरां हि लोके तेषां गुणाः श्रेष्ठतमाः प्रदिष्टाः ॥३२॥

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने धान्यवर्गो नाम

पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इस तरह धान्यवर्ग बहुत है किन्तु विस्तारके भयसे जो जो प्रसिद्ध और श्रेष्ठ हैं उन्हींके गुण कहे हैं ॥ ३२ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथम-

स्थाने धान्यवर्गो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.

अथ शाकवर्ग ।

शाकं चतुर्विधं प्रोक्तं पत्रं पुष्पं फलं तथा ॥ कन्दं चापि समुद्दिष्टं
वक्ष्याम्येतत्पृथक्पृथक् ॥ १ ॥ द्विविधं शाकमुद्दिष्टं गुरु विद्यात्त-
थोत्तरम् ॥ प्रायः सर्वाणि शाकानि विष्टम्भीनि गुरुणि च ॥ २ ॥
रूक्षाणि बहुवर्चासि सृष्टविण्मारुतानि च ॥

पत्र, पुष्प, फल, कंद इन भेदोंसे शाक चार प्रकारका कहा है उसे पृथक् पृथक् कहता हूँ ॥ १ ॥ शाक २ प्रकारका कहा है इनमें उत्तरोत्तर भारी है अर्थात् कन्द सबसे भारी है और विशेष करके सब शाक विष्टम्भीको करती हैं, भारी हैं ॥ २ ॥ रूखी हैं बहुत मलवाली हैं विष्टा और अधोवातको करती हैं ।

अथ पृथक् पृथक् शाकोंके गुणदोष ।

जीवन्ती शाकके गुण ।

चक्षुष्या सर्वरोगघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा ॥ ३ ॥

जीवन्ती शाक नेत्रोंमें हित है, सब रोगोंको नाशती है, मधुर और शीतल है ॥ ३ ॥

अथ चौलाई शाकके गुण ।

स्वादुपाकमसृक्पित्तविषघ्नं तण्डुलीयकम् ॥

विविधवातविड्ढहन्ता मूत्रवातकफे हितः ॥ ४ ॥

चौलाई शाक पाककालमें स्वादु है और रक्तपित्त और विष इनको नाशती है, अनेक प्रकारके वात और विष्टाको हरती है और मूत्र, वात और कफ इनमें हित है ॥ ४ ॥

अथ कासविंदाके शाकके गुण ।

मधुरः कफवातघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः ॥

विशेषतः पित्तहर इत्युक्तः कासमर्दकः ॥ ५ ॥

कासविंदाशाक मधुर है, कफको और वातको नाशता है, पाचन है, कंठको शोधता है और विशेष करके पित्तको हरता है ॥ ५ ॥

अथ जयन्ती और मकोह शाकके गुण ।

जयन्ती वातकफकृत्पित्तसंशमनी तथा ॥

त्रिदोषशमनी वृष्या काकमाची रसायनी ॥ ६ ॥

जयंती शाक वातको और कफको करता है, पित्तको शांत करता है । मकोह विशेष शाक त्रिदोषको शांत करता है, वीर्यमें हित है और रसायन है ॥ ६ ॥

अथ बथुवा और चिल्ली शाकके गुण ।

वास्तुकं मधुरं हृद्यं वातपित्तार्शसांहितम् ॥

तद्वचिल्ली तु विज्ञेया वातपित्तविकारिणाम् ॥ ७ ॥

बथुवा शाक मधुर है, हृदयकी हित है, वात, पित्त और बवासीरवालोंको हित है । चिल्ली शाक भी बथुवाके समान गुणोंको देता है परंतु वात पित्तके विकारवालोंको अच्छा है ॥ ७ ॥

अथ केतकी आर मेथी शाकके गुण ।

केतकी वातला वृष्या तन्द्रानिद्राकरी मता ॥

मेथिका वातशमनी वेजिका वातला मता ॥ ८ ॥

केतकी शाक वातल है, वीर्यमें हित है, तन्द्राको और नींदको करता है । मेथी शाक वातको शांत करता है । वेजिका शाक वातको करता है ॥ ८ ॥

अथ सरसों और सापके शाकका गुण ।

सार्पपं च त्रिदोषघ्नं रुचिदं चाग्निवर्द्धनम् ॥

शतपुष्पा त्रिदोषघ्नी मेध्या पथ्या रुचिप्रदा ॥ ९ ॥

सरसोंका शाक त्रिदोषको नाशता है, रुचिको देता है, अग्निको बढ़ाता है, सौंपका शाक त्रिदोषको नाशता है, पवित्र है, पथ्य है, रुचिको देता है ॥ ९ ॥

अथ कटेली और कुसुंभा शाकके गुण ।

जरांत्री सिंहिका प्रोक्ता सातीसारे प्रशस्यते ॥ कुसुम्भं रुचिकृद्वा-

तं हन्ति बल्यं रुचिप्रदम् ॥ १० ॥ किञ्चिद्वातावहं स्वादु वि-

पाके च कफापहम् ॥ किञ्चिच्चाम्लं भवेत्क्षारं प्रशस्तमग्निमान्द्य-

के ॥ ११ ॥ भेदनं रूक्षमधुरं कषायमतिवातलम् ॥

कटेलीका शाक वृद्धतासे रक्षा करता है, अतिसारमें श्रेष्ठ है । कुसुंभाका शाक रुचिको करता है, वातको हरता है और बलमें हित है, प्रीति बढ़ाता है ॥ १० ॥ कुछ उदरमें वातको करता है, पाककालमें चूका स्वादु है, कफको हरता है, कुछ खट्टा है, खारा है और मंदाग्निमें श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ भेदन है, रूखा है, मधुर है, कसैला है, अति वातल है ।

अथ चांगेरी शाकके गुण ।

उष्णा कषायमधुरा चाङ्गेरीवह्निदीपनी ॥ १२ ॥

चांगेरी (लोणी) शाक गरम है, कसैला है, मधुर है और अग्निको जगाता है ॥ १२ ॥

अथ दूसरे शाकोंके गुण ।

कफादनी तथा फंजी तिलवर्णी तु सिंहिका ॥

चक्रमर्दन इत्यन्ये दुर्जरा वातकोपना ॥ १३ ॥

कफादनी, फंजी, तिलवन, सिंहिका, चक्रोड़ा ये शाक दुर्जर हैं और वातको कोपते हैं ॥ १३ ॥

अथ कफकारक और वातल शाक ।

पिण्डालुको बला मिण्डी चिञ्चुकान्या बलादनी ॥

एते श्लेष्मकराः शाका वातलाग्निप्रशान्तकाः ॥ १४ ॥

श्वेतरतालु, खरेंहटी, मिण्डी चिञ्चुका, बलादनी ये शाक कफको करते हैं, वातल हैं, अग्निको मंद करते हैं ॥ १४ ॥

अथ शाकोंके विशेष गुण ।

सर्वे शाका दृष्टिहरा वीर्यत्वात्तण्डुलीयकम् ॥ तथैव शतपुष्पं च
जयन्ती कासमर्दकम् ॥ १५ ॥ आलूषकं च वेताग्रं गुडूची चाप-
मर्दकम् ॥ किराततिक्तसहितास्तिलाः पित्तहरा मताः ॥ १६ ॥

सब शाक दृष्टिको हरते हैं और वीर्यपनेसे चौलाई, सौफ, जयन्ती, कासविंदा ॥ १५ ॥
आलू, वेतकी कोपल, गिलोय, चापमर्दक, चिरायता ये शाक कड़ुवे हैं और पित्तको हरने-
वाले माने हैं ॥ १६ ॥

अथ अन्यप्रकारके शाक ।

कूष्माण्डकालिङ्गकलिङ्गचिर्मटं पटोलपुष्पं च तथैव तुण्डी ॥

बीजं तु कर्कोटककारवेल्लं कोशातकीवेल्लिफलानि चैव ॥ १७ ॥

कुम्हड़ा, कलिङ्ग, इन्द्रजव, लाल तून्वी, परवल, मीठी तोरी, ककोड़ा, करेला, कड़ुई तोरी,
वेलिफल ये भी सब शाक कहे हैं ॥ १७ ॥

अथ कुम्हड़ाका गुण ।

कूष्माण्डं त्रिविधं ज्ञेयं बाल्यं मध्यं तथोत्तमम् ॥ वातघ्नं रोचकं
बाल्यं मध्यमं स्यात्त्रिदोषहृत् ॥ १८ ॥ शोफं वातकफौ हन्ति रक्त-
पित्तनिबर्हणम् ॥ १९ ॥

कुम्हड़ा ३ प्रकारका जानना एक बालक, दूसरा मध्य, तीसरा उत्तम । बालक कुम्हड़ा वातको
नाशता है, रुचिको उपजाता है मध्यम । कुम्हड़ा त्रिदोषको हरता है ॥ १८ ॥ उत्तम कुम्हड़ा
सोजा, वात और कफ इनको हरता है और रक्तपित्तको दूर करता है ॥ १९ ॥

अथ कुकडूके शाकका गुण ।

कलिङ्गं कफकृद्घातकरणं पित्तनाशनम् ॥ २० ॥

तरबूजका शाक कफको करता है, वातको हरता है और पित्तको नाशता है ॥ २० ॥

अथ करेलाका गुण ।

कारवेल्लश्च वातघ्नः कफघ्नः पित्तकारकः ॥

उष्णो रुचिकरः प्रोक्तो रक्तदोषकरो नृणाम् ॥ २१ ॥

करेला वातको नाशता है, कफको हरता है, पित्तको करता है, गरम है, रुचिको करता है और मनुष्योंके रक्तके दोषको करता है ॥ २१ ॥

अथ लालतूरीके पुष्पका गुण ।

पुष्पं तु चैर्मटं चैव दोषत्रयकरं स्मृतम् ॥

अपक्वं जीर्णकफकृत्पक्वं किञ्चिद्विशिष्यते ॥ २२ ॥

तूबाका फूल त्रिदोषको करता है, नहीं पका हुआ अजीर्णको और कफको करता है और पकाहुआ कुछ विशेष अच्छा होजाता है ॥ २२ ॥

अथ तोरी, ककोडा, कडुई तोरीका गुण ।

तुण्डीरमग्निरुचिकृद्घातपित्तनिवारणम् ॥ कर्कोटकं त्रिदोषघ्नं रु-

चिकृन्मधुरं तथा ॥ २३ ॥ कोशातकीफलं स्वादु मधुरं वातपि-

त्तनुत् ॥ विपाके च कफं हन्ति ज्वरे शस्तं प्रदिश्यते ॥ २४ ॥

तोरी शाक अग्निको और रुचिको करता है, वातको और पित्तको दूर करता है । ककोडा त्रिदोषको नाशता है, रुचिको उपजाता है और मधुर है ॥ २३ ॥ कडुई तोरी स्वादु है, पाकमें मधुर है, वातको और पित्तको नाशती है, कफको हरती है और ज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥

अथ परवलका गुण ।

पटोलपत्र विनिहन्ति पित्तं नालं कफघ्नं प्रवदन्ति धीराः ॥ फलं

च तस्यास्तु त्रिदोषशान्तिं करोति नूनं ज्वरिणो हितं स्यात् ॥ २५ ॥

परवलका पत्ता पित्तको हरता है और परवलका नाल कफको नाशता है और परवलका फल त्रिदोषको शांत करता है और ज्वरवालेको निश्चय हित है (ये सब बेलियोंके शाक कहे) ॥ २५ ॥

अथ बैंगनका गुण ।

निद्राकरं प्रीतिकरं गुरु स्यात्सवातलं वासविकारकार ॥

श्रेष्ठं सुदीर्घं कफवर्धनं च सश्वासकासारुचिवर्धनं च ॥ २६ ॥

बैंगन नींदको और प्रीतिको करता है, भारी है, वातल है, खांसीके विकारको करता है और सुंदर, लंबा बैंगन श्रेष्ठ है, कफको बढ़ाता है और श्वास, खांसी, रुचि इनको बढ़ाता है ॥ २६ ॥

अथ बड़ी कटेलीका गुण ।

तथा बृहत्याः फलमेव शस्तं सन्दीपनं स्यात्कफवातनाशनम् ॥

कण्डूविसर्पज्वरकामलानां तथारुचौ शस्तमिदं वदन्ति ॥ २७ ॥

बड़ी कटेलीका फल श्रेष्ठ है, अग्निको जगाता है, कफको और वातको नाशता है और खाज, विस्त्रि, ज्वर, कामला, अरुचि इनमें उत्तम है (ये फलशाकके गुण कहे) ॥ २७ ॥

अथ कंदशाक ।

कन्दशाकान्प्रवक्ष्यामि शृणु पुत्र पृथक्पृथक् ॥ सूरणः पिण्ड-

पिण्डालू पलाण्डुर्गुञ्जनस्तथा ॥ २८ ॥ ताम्बूलवर्णः कन्दः स्याद्वस्ति-

कन्दस्तथापरः ॥ वराहकन्दश्चाप्यन्यः कन्दशाकाइमे स्मृताः २९

कंदशाकोंको पृथक् पृथक् कहता हूं । हे पुत्र ! सुन । जिमीकंद, पिंडशाक, आलू, प्याज, गाजर ॥ २८ ॥ रातालु, हस्तिकंद, वराहकंद ये कंदशाक कहे हैं ॥ २९ ॥

अथ जमीकंदका गुण ।

दीपनः सूरणो रुच्यः कफघ्नो विशदो लघुः ॥

विशेषात्सर्वपथ्यः स्यात्प्लीहगुल्मविनाशनः ॥ ३० ॥

जमीकंद अग्निको जगाता है, कफको नाशता है, रुचिमें हित है, सुंदर है, हलका है, विशेष-कारके पथ्य है, तिल्लीरोगको और गुल्मको नाशता है ॥ ३० ॥

अथ आम्लिकाकंदका गुण ।

आम्लिकायाः स्मृतः कन्दो ग्रहण्यशोहितो लघुः ॥ ३१ ॥

आम्लिका कंद हलका है, ग्रहणीदोष और बवासीरमें हित है ॥ ३१ ॥

अथ पिंडशाकका गुण ।

पिण्डको वातलः श्लेष्मी ग्राही वृष्यो महागुरुः ॥

पिंडशाक वातको करता है, कफवाला है, ग्राही है, वीर्यमें हित है, बहुत भारी है ॥

अथ आलूका गुण ।

पिण्डालुकः श्लेष्मकरः शुक्रवृद्धिकरो मृदुः ॥ ३२ ॥

पिंडालू कफको करता है, वीर्यको बढ़ाता है और कोमल है ॥ ३२ ॥

अथ प्याजका गुण ।

पलाण्डुर्वातकफहा शुक्रलः शूलगुल्मनुत् ॥

प्याज वातको और कफको नाशता है, वीर्यको बढ़ाता है, शूलको और गुल्मको नाशता है ॥

अथ रतालूका गुण ।

ताम्बूलपर्णः कन्दः स्याच्छुक्रलो विशदो लघुः ॥ ३३ ॥

स्तालूकंद वीर्यको बढ़ाता है, सुंदर है और हलका है ॥ ३३ ॥

अथ हस्तिकंदका गुण ।

हस्तिकन्दो गुरुग्राही शुक्रवृद्धिप्रदो मतः ॥

हस्तिकंद भारी है, कब्जको करता है, वीर्यको बढ़ाता है ॥

अथ वाराहकंदका गुण ।

वराहकन्दश्चाशौघो वातगुल्मनिवारणः ॥ ३४ ॥

वराहकंद बवासीरको नाशता है, वातको और गुल्मको दूर करता है ॥ ३४ ॥

अन्ये तेऽज्ञातकन्दाश्च ते न प्रोक्ता मयाऽनघ ॥ सर्वेषां कन्द-
शाकानां सूरणः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३५ ॥ दीपनोऽर्शस्तथा गुल्म-
क्रिमिप्लीहविनाशनः ॥ दद्रूणां रक्तपित्तानां कुष्ठानां न प्रशस्यते
॥ ३६ ॥ एते कन्दाः समाख्याताः श्रीमन्तो हि भिषग्वरः ॥ ३७ ॥
इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथमस्थाने शाकवर्गो नाम षोड-
शोऽध्यायः ॥ १६ ॥

अन्य भी कंद हैं वे अप्रसिद्ध हैं इस वास्ते मैंने नहीं कहे हैं परंतु सब प्रकारके कंद शाकों-
में जमीकंद श्रेष्ठ है ॥ ३५ ॥ और अग्निको जगाता है बवासीर, गुल्म, कृमिरोग,
तिल्लीरोग इन्हेंको नाशता है परंतु दद्रू रक्तपित्त और कुष्ठको अच्छा नहीं है ॥ ३६ ॥
हे वैद्यवर ! शोभासे युक्त हुए कंद मैंने अच्छी तरह कहे हैं ॥ ३७ ॥ इति बेरीनिवासिबुध-
शिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने शाकवर्गो नाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथ फलवर्ग ।

आम्रं जम्बूश्च कोलश्च दाडिमामलकं तथा ॥ खर्जूरश्च परूषश्च
मातुलंगपियालजम् ॥ १ ॥ नारंगं वाल्मिका चैव द्राक्षा च करम-
र्दकम् ॥ क्षीरिका मधुराश्चैव फलवर्गे प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

आम, जामुन, बेर, अनार, आमला, छुहारा अथवा खजूरिया, फालसा, विजौरा, चिरौंजी ॥ १ ॥ नारंगी, अमली, दाख, करौंदा, खिरनी, सुन्दर खजूर फल ये सब फलवर्गमें कहे हैं ॥ २ ॥

अथ आमके फलका गुण ।

अपक्वमात्रं फलमेव शस्तं संग्राहि पित्तासृजि कोपनं च ॥

तथा विपकं मधुरं च चाम्लं भेद्यं सपित्तामयनाशनं च ॥ ३ ॥

कुछेक पका हुआ आमका फल श्रेष्ठ है, कब्जको करता है, पित्तको और रक्तको कोपता है और विशेष पका हुआ आमका फल मधुर है, खट्टा है, दस्तावर है और पित्तके रोगको नाशता है ॥ ३ ॥ अथ जामुन बेर अनार चिरौंजीके गुण ।

जम्बूर्वाही मधुरकफहा रोचनो वातहारी कोलं चाम्लं मधुरम-

थवा श्लेष्मलं ग्राहि शस्तम् ॥ श्रेष्ठं वातादिकरुजहरं दाडिमं चा-

मयघ्नं तत्प्रोक्तं च मधुरसुदितं स्वादु राजादनं च ॥ ४ ॥

जामुनका फल कब्जको करता है, मधुर है, कफको नाशता है, रक्तको करता है और वातको हरता है । बेर खट्टा है अथवा मधुर है, कफको करता है, कब्जको करता है, सुन्दर है । अनारका फल श्रेष्ठ है, वात आदिकी पीडाको हरता है और रोगको नाशता है । खिरना मधुर है और स्वादु कहा है ॥ ४ ॥

अथ विशेषवर्णन ।

पृष्ठैषककरहपीलुकानां पियालसिंहीकरमर्दकानाम् ॥

फलानि मेहं विनिहन्ति पित्तं हन्याच्च सर्वातुरसंधिवातम् ॥ ५ ॥

फालसा, करहा, पीलू, चिरौंजी, कटेली, करौंदा इनके फल प्रमेहको और पित्तको हरते हैं और रोगीके संपूर्ण शरीरके वातको हरते हैं ॥ ५ ॥

अथ विजौराका गुण ।

स्यान्मातुलुङ्गः कफवातहन्ता हन्ता क्रिमीणां जठरामयघ्नः ॥

संदुष्टरक्तस्य विकारपित्तसंदीपनः शूलविकारहारी ॥ ६ ॥ श्वास-

कासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥ दीपनं लघु रुच्यं च

मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥ ७ ॥ त्वक् तित्ता दुर्जरा तिष्या क्रिमिवात-

कफापहा ॥ स्वादु शीतं गुरुस्निग्धं करहं वातापित्तजित् ॥ ८ ॥

मध्यं श्लेष्मातकं छर्दिकफारोचकनाशनम् ॥ दीपनं लघु संग्राहि

गुल्माशौ हन्ति केशरम् ॥ ९ ॥ पित्तमारुतहृद्वातपित्तलं बद्धकेश-

रस ॥ हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम् ॥ १० ॥ शूलाजीण-
विरुद्धेषु मन्दाग्नीकफमारुते ॥ अरुचौ श्वासकासे च स्वरसोऽस्यो-
पदिश्यते ॥ ११ ॥ रसोऽतिमधुरो हृद्यो वीर्य्यं पित्तानिलापहम् ॥
कफकृदुर्जरः पाके मातुलुङ्गकटाहकः ॥ १२ ॥ चेतोहारी पृथ-
गति कटुत्वं च धत्तेऽभितोऽयं हृद्रोगानाहगुल्मश्वसनकफकरो
ग्रीष्मकालेऽपहन्ता ॥ १३ ॥ वीर्य्यकृच्चार्शहृत्काले स्यात्तथा
क्रिमिहृन्मृतम् ॥ तिक्तं पुष्पं च बीजं च गुल्मनुत्स्यात्तथापरम् १४

विजौरा कफको और वातको नाशता है और कृमिरोगको हरता है और पेटके रोगको दूर करता है, दूषित हुए रक्तविकारको और पित्तको दूर करता है अग्निको जगाता है, और शूल-विकारको नाशता है ॥ ६ ॥ और विजौराका फल श्वास, खांसी, अरुचि इनको नाशता है, तृषाको हरता है, कंठको शोधता है, अग्निको जगाता है, हलका है, रुचिमें हित है ॥ ७ ॥ विजौराकी छाल कडुई है, दुर्जर है, खट्टी है और कृमि, वात, कफ इनको नाशती है और विजौराकी कोंपल स्वादु है, शीतल है, भारी है, चिकनी है, वातको और पित्तको जीतती है ॥ ८ ॥ और विजौराका गूदा कफको नाशता है, छर्दिको और कफ और अरोचकको नाशता है और विजौराका केसर अग्निको जगाता है, हलका है, कब्जको करता है, गुल्मको और बवासीरको नाशता है ॥ ९ ॥ पित्तको और वातको हरता है और केंसरसे संयुक्त हुआ विजौराका फल पित्तको और वातको करता है, सुन्दर है, वर्णको करता है, रुचिमें हित है और रक्त, मांस, बल इनको देता है ॥ १० ॥ और विजौराका स्वरस शूल, अजीर्ण, मन्दाग्नि, कफ, वात, अरुचि, श्वास, खांसी इनमें उत्तम है ॥ ११ ॥ और विजौराका रस अति मधुर है, सुन्दर है, वीर्य्यको देता है, पित्तको और वातको नाशता है, कफको करता है और पाककालमें दुर्जर है ॥ १२ ॥ और चित्तको हरता है, तिससे पृथक् अति चर्चरापनाको धरता है और हृद्रोग, अफारा, गुल्म, श्वास इनको अन्य कालमें करता है और गरमकालमें नाशता है ॥ १३ ॥ विजौराके फूल और बीज सुन्दर कालमें वीर्य्यको करते हैं बवासीरको दूर करते हैं, कृमिको हरते हैं, कडुवे हैं और गुल्मको नाशते हैं ॥ १४ ॥

अथ निंबूका गुण ।

निम्बुकं क्रिमिसमूहनाशनं तीक्ष्णमुष्णमुदरग्रहापहम् ॥ वातपि-
त्तकफशूलिनां हितं नष्टधान्यरुचिशोधनं परम् ॥ १५ ॥ त्रिदो-
षसद्योज्वरपीडितानां दोषाश्रितानां च स्रवज्जलानाम् ॥ मल-
ग्रहे बद्धगुदे हितं च विषूचिकायां मुनयो वदन्ति ॥ १६ ॥

१ “आहतात्तत्क्षणाकृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात् समुद्धरेत् । वज्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते” ॥ २ चरणद्वयात्मकस्यास्य श्लोकस्य प्रथमे पादे मन्दाक्रान्ता द्वितीये स्रग्धरेति ।

निंबू कीड़ोंके समूहको नाशता है, तीक्ष्ण है, गरम है, पेटके कब्जको हरता है और वात, पित्त, कफ इनके शूलवालोंको हित है और नष्ट अन्नमें रुचिको शोधता है ॥ १५ ॥ त्रिदोष और तत्काल उपजे ज्वरसे पीड़ितको और दोषसे आश्रितोंको और पानी सरनेवालोंको और विष्टाके बन्धमें और वृद्ध गुदरोगमें और विपूचिका अर्थात् हैजाके भेदमें हित है ऐसे मुनिजन कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ नारंगीका गुण ।

नारङ्गजं स्वादु गुणोपपन्नं सन्दीपनं रोचकमर्शसां च ॥

त्रिदोषहृच्छूलक्रिमीन्निहन्ति मन्दाग्निकासश्वसनापहारि ॥ १७ ॥

नारंगी फल स्वादु है, गुणवाला है, अग्निको जगाता है, बवासीरमें रुचिको उपजाता है और त्रिदोष, शूल, कृमि, मन्दाग्निरोग, खाँसी, श्वास इनको नाशता है ॥ १७ ॥

अथ इमलीका गुण ।

अपक्वमल्लीफलमम्लमस्ति तदस्रपित्तामकरं विदाहि ॥

वातामये शूलगदे प्रशस्तं पक्वं तथा शीतगुणोपपन्नम् ॥ १८ ॥

कच्ची इमली खट्टी होती है, वह रक्तपित्त और आमके रोगोंको उत्पन्न करती है तथा विदाही होती है । पकी हुई इमलीका फल वातरोगमें और शूलमें श्रेष्ठ है और शीतल होता है ॥ १८ ॥

अथ दाखका गुण ।

द्राक्षाफलं मधुरमम्लकषाययुक्तं क्षारेण पित्तमरुतां कफहारि शीघ्रम् ॥ श्रेष्ठं निहन्ति रुधिरामयदाहशोषमूर्च्छाज्वरश्वसनकासविनाशकारि ॥ १९ ॥ कषायघ्ना विपाके च द्राक्षा चैव कफे हिता ॥ २० ॥

दाख मधुर है, खट्टा है, कसैला है, खारेपनेसे पित्त, वात, कफ इनको शीघ्र हरता है, श्रेष्ठ है और रक्तरोग, दाह, शोष, मूर्च्छा, ज्वर, श्वासरोग, खाँसी इनको नाशता है ॥ १९ ॥ और पाककालमें कसैलेपनेको नाशता है और कफमें हित है ॥ २० ॥

अथ नारियलका गुण ।

नालिकेरं सुमधुरं गुरु स्निग्धं च शीतलम् ॥ हृद्यं सबृंहणं वस्तिशोधनं रक्तपित्तनुत् ॥ २१ ॥ विष्टम्भि पक्वं मतिमन्नपक्वं कफवातलम् ॥ बृंहणं शीतलं वृष्यं नालिकेरफलं विदुः ॥ २२ ॥

नारियल मधुर है, भारी है, चिकना है, शीतल है, हृदयको हित है, धातुओंको पुष्ट करता है, वस्तिको शोधता है, रक्तपित्तको नाशता है ॥ २१ ॥ विष्टंभी है ये सब पके हुए के गुण हैं, हे बुद्धिमन् ! नहीं पका हुआ नारियल कफको और वातको करता है, धातुओंको बढ़ाता है, शीतल है और वीर्यमें हित है ॥ २२ ॥

अथ केलेके फलका गुण ।

हृद्यं मनोज्ञं कफवृद्धिकारि शान्तं च सन्तर्पणमेव बल्यम् ॥ रक्तं
सपित्तं श्वसनं च दाहं रम्भाफलं हन्ति सदा नराणाम् ॥ २३ ॥
संघ्राह्यपक्वं किल शीतलं च कषायकं वातकफं करोति ॥ विष्ट-
म्भि बल्यं गुरु दुर्जरं च आरण्यरम्भाफलमेव तद्वत् ॥ २४ ॥

पका हुआ केलेका फल हृदयको हित है, मनोहर है, कफको बढ़ाता है, शान्तिको करता है, तृप्तिको करता है, बलमें हित है और रक्तपित्त, श्वासरोग, दाह इनको सबकालमें नाशता है ॥ २३ ॥ नहीं पका हुआ केलेका फल कब्जको करता है, शीतल है, कसैला है, वातको और कफको करता है, विष्टम्भी है, बलमें हित है, भारी है, दुर्जर है और वनके केलेका फल भी इन्ही गुणोंवाला है ॥ २४ ॥

अथ कैथाका गुण ।

कपित्थकाम्लं मधुरं कषायं विषदं गुरु ॥ कासातिसारहृद्रो-
गच्छर्द्यामयकफापहम् ॥ २५ ॥ कपित्थं मधुरं शीतं कषायं ग्राहकं
लघु ॥ २६ ॥

कैथा फलका आमचूर खट्टा है, मधुर है, कसैला है, दस्त बन्द करता है, भारी है और खांसी, अतीसार, हृद्रोग, छर्दि, और कफरोग, इनको नाशता है ॥ २५ ॥ कैथा मधुर है, शीतल है, कसैला है, कब्जको करता है और हलका है ॥ २६ ॥

अथ खजूरिया अथवा छुहारेका गुण ।

अपक्वं खजूरफलं त्रिदोषशमनं मतम् ॥
पक्वमेव हितं श्रेष्ठं त्रिदोषशमनं परम् ॥ २७ ॥

नहीं पका हुआ खजूरिया अथवा छुहारा त्रिदोषको शांत करता है और पका हुआ हितकर श्रेष्ठ है और निश्चय त्रिदोषको शांत करता है ॥ २७ ॥

अथ सुपारीका गुण ।

कषायमधुरं भेदि पूगं पित्तकफापहम् ॥ २८ ॥

सुपारीका फल कसैला है, मधुर है, मलको पतला करता है, पित्तको और कफको नाशता है ॥ २८ ॥

अथ नागरपानका गुण ।

नागवल्लीदलं हृद्यं सुगन्धि कफवातजित् ॥ २९ ॥

नागरपान हृदयको हितकर है, सुगंधवाला है, कफको और वातको जीतता है ॥ २९ ॥

अथ कत्थाका गुण ।

खदिरः कफपित्तघ्नः कण्ठ्यः कुष्ठनिवर्हणः ॥ ३० ॥

कत्था कफको और पित्तको नाशता है, कंठमें हित है, कुष्ठको दूर करता है ॥ ३० ॥

अथ चूनेका गुण ।

चूर्णकं पित्तहृत्तीक्ष्णं ताम्बूलं कफवातजित् ॥ ३१ ॥ संयोगा-
त्सुरसं स्वादु मुखवैरस्यनाशनम् ॥ दन्तस्थैर्यकरं शोषपीनसा-
मयशान्तिकृत् ॥ ३२ ॥

चूना पित्तको हरता है, तीक्ष्ण है और नागरपान कफको और वातको जीतता है परंतु संयोगसे सुन्दर स्वादा है, स्वादु है और मुखके विरसपनेको हरता है ॥ ३१ ॥ और दांतोंको स्थिर करता है और शोष, पीनस इनको शान्त करता है ॥ ३२ ॥

अथ कत्था कपूरसे संयुक्त नागरपानका गुण ।

रोगपाटवसंशुद्धिस्वरकान्तिकरं मतम् ॥ कण्ठ्यं रुच्यसुरस्यं च
फलकपूरसंयुतम् ॥ ३३ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे प्रथम-
स्थाने फलवर्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

कत्था, कपूरसे संयुक्त किया नागरपान रोगको शोषता है, स्वरको और कान्तिको करता है, कंठमें हित है, रुचिको उपजाता है और छातीमें गुणको करता है ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासि-
चुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने फलवर्गो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अथ मधुवर्ग ।

अतो वक्ष्यामि माक्षीकं त्रिविधं शृणु पुत्रक ॥

भ्रामरं सारघं क्षौद्रं तेषां वच्मि गुणागुणम् ॥ १ ॥

अब शहदको कहूँगा । हे पुत्र ! वह शहद तीन प्रकारका है सुनो । भ्रामर १, सारघ २, क्षौद्र ३ इनके गुणोंको और दोषोंको कहता हूँ ॥ १ ॥

अथ सामान्यशहदका गुण ।

शीतं कषायं मधुरं लघु स्यात्सन्दीपनं लेहनमेव शस्तम् ॥ संशो-
धनं च व्रणशोधनं च संरोपणं हृद्यतमं च बल्यम् ॥ २ ॥ त्रिदोष-

नाशं कुरुते च पुष्टिं कासक्षये वा क्षतजे च छर्दौ ॥ हिकाभ्रमे
शोषणपीनसानां रक्तप्रमेहे सरलातिसारे ॥३॥ रक्तातिसारे च
सपित्तरक्ते तृष्णमोहहृत्पाश्वर्गदेऽपि शस्तः ॥ नेत्रामये वा ग्रहणी-
गदे वा विषे प्रशस्तं भ्रमरैश्चितं यत् ॥४॥ भ्रामरं सघनं जाड्यं
भूयिष्ठं मधुरं च यत् ॥

शहद शीतल है, कसैला है, मधुर है, हलका है, अग्निको जगाता है, स्वादु है, सुन्दर शोधता है, घावको शुद्ध करता है, घावपे अंकुरको लाता है, हृदयको परमहित है, बलमें हित है ॥ २ ॥ त्रिदोषको नाशता है, पुष्टिको करता है, खांसीमें, क्षयमें, छातीके फटनेमें, छर्दीमें और हिचकी, भ्रम, शोष, पीनस, रक्तप्रमेह, सीधे अतीसार इनमें हित है ॥ ३ ॥ और रक्तातिसार, पित्तरक्त, तृष्ण, मोह, हृद्रोग, और पसलीरोग इनमें श्रेष्ठ है, भ्रामर शहद नेत्ररोगमें अथवा संग्रहणीमें और विषमें हित है ॥४॥ यह भ्रामर शहद बहुत गाढ़ा और भारी होता है तथा अतिमधुर होता है ।

अथ शहदकी विशेषता ।

क्षौद्रं विशेषतो ज्ञेयं शीतलं लघु लेहनम् ॥ ५ ॥ तस्माच्छुतरं
रूक्षं सारघं नातिशीतलम् ॥ कासे क्षये प्रशस्तं स्यात्कामलाशो-
विनाशनम् ॥ ६ ॥ नातिशीतलं न च रूक्षं दीपनं बलकृन्मत्तम् ॥
अतीसारे नेत्ररोगे क्षते वा क्षतजे हितम् ॥ ७ ॥ भ्रामरं वृक्षसं-
स्थाने विटपे सारघं भवेत् ॥ रन्ध्रे तु कोटरे वापि क्षौद्रं तत्र प्रश-
स्यते ॥ ८ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मधुवर्गो नाम अ-
ष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

और क्षौद्रसंज्ञक शहद विशेषणसे शीतल है, हलका है, स्वादु है ॥ ५ ॥ इससे भी अति हलका सारव शहद है, यह रूखा है, अति शीतल नहीं है, खांसीमें और क्षयमें अतिश्रेष्ठ है, कामलाको और बवासीरको नाशता है ॥ ६ ॥ क्षौद्र शहद अतिशीतल नहीं है, रूखा भी नहीं है, अग्निको जगाता है, बलको करता है और अतीसार, नेत्ररोग, घाव, क्षतसे उपजारोग इनमें हित है ॥ ७ ॥ वृक्षपे भ्रामर शहद होता है, तृणके गुच्छेमें सारव शहद होता है, वृक्षके छिद्रमें अथवा कोटरमें क्षौद्र शहद होता है, सो अच्छा होता है ॥ ८ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहा-
रीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मधुवर्गो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः १९.



अथ मद्यवर्ग ।

गौडी माध्वी तथा पैष्टी निर्यासा कथिता परा ॥ इति चतुर्विधा
ज्ञेयाः सुरास्तासां प्रभेदकाः ॥ १ ॥ भेदेन द्वादश प्रोक्ताः सुराः
सौवीरकारसैः ॥ सीधुगौडी च मत्स्यण्डी गुडेन प्रभवास्त्रयः
॥ २ ॥ माध्वीकं मधुकं माध्वं मधुना संयुताः सुराः ॥ पैष्टीष्व-
रिष्टजातं तु तण्डुलप्रभवास्त्रयः ॥ ३ ॥ मृद्वीकारससम्भूता ताडमा-
डरसोद्भवा ॥ निर्यासा सा तु विज्ञेया तासां वच्मि गुणागुणमू॥ ४ ॥

गौडी, माध्वी, पैष्टी, निर्यासा, इन भेदोंसे मदिरा ४ प्रकारकी है उनके भेद ॥ १ ॥
चारह १२ कहे हैं । सीधु, गौडी, मत्स्यण्डी ये तीन मदिरा गुड़से बनती हैं ॥ २ ॥ माध्वीक,
मधुक, माध्व, ये तीन मदिरा शहदसे बनती हैं । पैष्टी, अरिष्ट, जात ये तीन मदिरा चाव-
लोंसे बनती हैं ॥ ३ ॥ और मृद्वीका ब्राक्षके रससे बनती है, ताड़ मदिरा ताड़के रससे
बनती है, और माड़ वृक्षके रससे भी मदिरा बनती है, वही निर्यास मदिरा जाननी । उनके
गुण और दोषोंको कहता हूँ ॥ ४ ॥

अथ सीधुमदिराका गुण ।

सीधुः कषायाम्लकमाधुरो वा सन्दीपनो मेदमलापमर्दः ॥

आमातिसारानिलपित्तशूलश्लेष्मामयाशोग्रहणीगदघ्नः ॥ ५ ॥

सीधु मदिरा कसैली है, खट्टी है, कोई कोई मीठी होती है । अग्निको जगाती है, मेदको
और मलको नाशती है और आमातिसार, वात, पित्त, शूल, कफका रोग, बवासीर, ग्रहणीदोष-
इनको नाशती है ॥ ५ ॥

अथ गौडी मदिराका गुण ।

गौडी कषाया मधुराम्लशीता सन्दीपनी शूलमलापहन्त्री ॥

हृद्या त्रिदोषं शमयत्यजीर्णं पाण्डूवामयार्शः श्वसनं निहन्ति ॥ ६ ॥

गौडी मदिरा कसैली है, मधुर है, खट्टी है, शीतल है, अग्निको जगाती है, शूलको और
अफाराको हरती है, सुंदर है और त्रिदोष, अजीर्ण, पांडुरोग, बवासीर, श्वास रोग इनको शांत,
करती है ॥ ६ ॥

१ (ताडमाडरसोद्भवा) - ताडनामक-वृक्षरससंभूता तथा माडनामक वृक्षरसतो जाता अपि मदिरा माड-
नामको वृक्षः कोंकणदेशे प्रसिद्धः । इति औषधकोशः ।

अथ मत्स्यंडी मदिराका गुण ।

हरति मलमियं संदीपनी पाण्डुमेहाँल्लघुमधुरसुशीता रोचना
पित्तहन्त्री॥जरयति सकलं वा पीतमम्लातिमात्रं श्वसनरुधि-
रकासान्हन्ति वा कामलां च ॥ ७ ॥

रावकी मदिरा मलको हटाती है, अग्निको जगाती है, पांडुरोग, प्रमेह इनको हरती है, हल्की है, मधुर है, सुंदर शीतल है, रुचिको करती है, पित्तको हरती है, सब चीजोंको जलाती है, पीनेमें अति खट्टी है और श्वासरोग, रक्त, खांसी, कामला, इनको नाशती है ॥ ७ ॥

अथ माध्वीक मदिराका गुण ।

माध्वीकं शीतलाम्लं मधुरमपि तथा सत्कषायोष्णकं च ह-
न्यात्पित्तामयार्शःश्वसनमपि तथा चातिसारं प्रमेहान् ॥ शूल-
नाहोपमर्दं जरयति सकलं दीपयत्यग्निसात्म्यं तस्माद्वातामवातं
वमनमपि तथा हन्ति सर्वांश्च रोगान् ॥ ८ ॥

माध्वीक मदिरा शीतल है, खट्टी है, मधुर है, पीनेमें उत्तम है, कसैली है, गरम है और पित्त-
रोग, बवासीर, श्वासरोग, अतीसार, प्रमेह, शूल, अफारा और हड़फूटन इनको नाशती है, सब
चीजोंको जराती है, अग्निको जगाती है इसलिये वात आमवात और वमन सब प्रकारके रोगोंको नाशती है ॥ ८ ॥

अथ मदिराका गुण ।

कषाया मधुरा चाम्ला सुरा सन्दीपनी मता ॥

कासाशोथ्रहणीस्तन्यमूत्ररोगविनाशिनी ॥ ९ ॥

मदिरा कसैली है, मीठी है, खट्टी है, अग्निको जगाती है और खांसी, बवासीर, ग्रहणीदोष, दूधरोग, मूत्ररोग इनको नाशती है ॥ ९ ॥

अथ पैष्टीमदिराका गुण ।

पैष्टी सन्दीपनी रुच्या कफकृद्वातनाशिनी ॥

पित्तला पाण्डुरोगाणां कारिणी बहुधामता ॥ १० ॥

पैष्टी मदिरा अग्निको जगाती है, रुचिमें हित है, कफको करती है, वातको नाशती है, पित्तको उपजाती है और बहुधा के पांडुरोगोंको करती है ऐसा माना गया है ॥ १० ॥

अथ महुआ वृक्षकी मदिराका गुण ।

वातपित्तकरो रूक्षः कषायो विशदो गुरुः ॥

श्लेष्मलो भेदनो ग्राही मूत्रकृच्छ्रशिरोऽर्त्तिनुत् ॥ ११ ॥

महुआकी मदिरा वातको और पित्तको करती है, रखी है, कसैली है, सुंदर है, भारी है, कफको करती है, मलको पतला करती है, कब्जको करती है, मूत्रकृच्छ्रको और शिरके रोगको नाशती है ॥ ११ ॥

अथ ताड़की मदिराका गुण ।

श्लेष्मदोषकरा वृष्या वातला श्लेष्मवर्द्धिनी ॥

कासहंछासविध्वंसकरणा ताडमण्डिका ॥ १२ ॥

ताड़की मदिरा कफको करती है, वीर्यमें हित है, वायुको उपजाती है, कफको बढ़ाती है और खाँसीको तथा जीकी मिचलाहट नाशती है ॥ १२ ॥

अथ मदिराकी विशेषता ।

पूर्णे कषायपित्ते च योगयुक्ता सुरा हिता ॥ बहुदोषहरा चैव श्लेष्म-
रोगे विशेषतः ॥ १३ ॥ श्रमज्वरातुरे शोषे शोफपाण्ड्वामये क्षये ॥
मतेः क्लमेऽपस्मारे च यक्ष्मिणां च भ्रमेषु च ॥ १४ ॥ श्रान्ते वा
विषपीते वा सर्पदष्टे जलोदरे ॥ रक्तपित्ते तथा श्वासे वारुणी न
हिता मता ॥ १५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे मद्यवर्गो
नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

कषायपनेसे युक्त हुआ पित्त जब पूर्ण हो तब योगसे युक्तकरी मदिरा हित है, यह बहुत दोषोंको हरती है और विशेष करके कफके रोगमें हित है ॥ १३ ॥ परिश्रम और ज्वरसे पीडित और शोष, शोजा, पांडुरोग, क्षय, बुद्धिकी ग्लानि, मृगीरोग, यक्ष्माआदिसे उपजा भ्रम इनसे पीडितको ॥ १४ ॥ थकेको और विष खानेवालेको और सर्पसे डसेको और जलोदर, रक्तपित्त और श्वासरोगसे पीडितको मदिरा हित नहीं है ॥ १५ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०

अथ चौपायोंका और दुपायोंका मांसवर्ग ।

शूलिनः शृङ्गिणश्चैव नखिनोऽन्ये प्रकीर्तिताः ॥ श्वापदाः पक्षि-
णश्चान्ये मत्स्याश्चान्याः सरीसृपाः ॥ १ ॥ जलेचरा जलाधारा

ग्रामारण्यनिवासिनः ॥ अनूपा जाङ्गला जीवास्तथा साधार-
णोऽपरः ॥ २ ॥ मृगरुरुचित्राङ्गास्तथा गण्डश्च वनगवयमहि-
षाः ॥ सूकराद्याश्च येऽपि भवन्ति विविधवर्णा ग्रामवासिनश्च ॥ ३ ॥
ये ये वनगजाद्याश्च ग्रामकाद्याश्च शृङ्गिणः ॥ शूकरच्छिक्कराद्याश्च
शूरिणो वा भवन्त्यमी ॥ ४ ॥

शूलवाले, शींगवाले, नखवाले, थापद, पक्षी, मच्छ, सर्प ये जो कहे हैं ॥ १ ॥ जलमें
विचरनेवाले, जलके आश्रित हुए, ग्राममें बसनेवाले, वनमें बसनेवाले, आनूपदेशमें रहनेवाले,
जांगलदेशमें रहनेवाले, साधारणदेशमें रहनेवाले ॥ २ ॥ मृग, लाल हरिण, बिलावभेद, मेंढा
नीलीगाय, भैंसा, शूकर आदि ये सब अनेक प्रकारके वर्णवाले ग्राममें बसनेवाले हैं ॥ ३ ॥ जो जो
वनमें रहनेवाले हस्ती आदि हैं और जो ग्राममें रहनेवाले शींगवाले हैं और शूकर, छिक्कर और
शूरी आदि भी ग्रामवासी हैं ॥ ४ ॥

अथ सरीसृपवर्णन ।

शशकः शहकी गोधा सार्जाराद्या नखायुधाः ॥

सर्पमत्स्यादिका ये च ते विज्ञेयाः सरीसृपाः ॥ ५ ॥

शशा, साही, गोह, बिलाव, आदि नखरूपी शस्त्रोंवाले हैं । सर्प और मत्स्य आदि सरी-
सृप संज्ञक जानने ॥ ५ ॥

अथ आनूपवर्णन ।

मत्स्यमङ्कुरकाद्या ये कच्छपा दुर्जरादयः ॥ हंससारसचक्राद्याः
कपिञ्जलकुम्भूदकाः ॥ ६ ॥ आनूपास्ते च विज्ञेयाः श्लेष्मला वात-
कोपनाः ॥ ७ ॥

मत्स्य, मङ्कुरक आदि कच्छप, दुर्जर आदि और हंस, सारस, चक्रवा आदि और
पपैया, पंडेरिआ पक्षी ॥ ६ ॥ ये सब आनूपदेशमें रहनेवाले हैं, कफको करते और
वातको कोपते हैं ॥ ७ ॥

अथ जांगलवर्णन ।

शशलावकवाताटा गोधाहरिणकूटकाः ॥ छिक्कराद्यास्तथान्येऽपि
तित्तिराद्याश्च कूर्चकाः ॥ ८ ॥ भारद्वाजास्तथा श्येना मूषका
वरवारणाः ॥ इत्येता जाङ्गला जीवा ये जलेन विना स्थिताः ॥ ९ ॥

शशा, लावा, वाताट, गोह, हरिण, कूटक, छिन्न आदि और तीतर आदि, जीवक पक्षी ॥ ८ ॥ काग अथवा मुर्गा विशेष, शिकरा, मूषा मापीविशेष ये सब जांगलसंज्ञक जीव हैं । ये पानीके बिना भी स्थित रह सकते हैं ॥ ९ ॥

अथ जलचरजीववर्णन ।

शूकरा मृगशलाघाः सलिलाशयमाश्रिताः ॥ मकराद्याश्च ग-
ण्डाका गवयाश्च तथापराः ॥ महिषाद्याश्च ये चैव ते च
साधारणा मताः ॥ १० ॥ कुरुरबकमकराः कङ्कचटकपिकभृङ्ग-
सारसाः ॥ आडिदात्यूहहंसा जलकरटिकपिङ्कटिहिभाद्याश्च ११
जलेचरा विहङ्गास्त खञ्जरीटाश्च भासकाः ॥ १२ ॥ इत्येते
जलजा जीवाः स्थलजाः स्थलचारिणः ॥ १३ ॥

शूकर, हरण, शल्ल अर्थात् साही आदि जीव पानीके आशयके आश्रित रहते हैं और मकर, मच्छ आदि गेंडा, नीलगाय भैंसा आदि जीव साधारण माने हैं ॥ १० ॥ पपैया, वगला, मकरा, कंक, वत्तक, कोयल, भौरा, सारस, आड़ीपक्षी, ढौंकरपक्षी, हंस, शंखका जीव, रटिक, पिंगापक्षी, टिटिहरी आदि जलमें विचरनेवाले हैं, खंजरीट और भास-पक्षी भी जलचारी हैं और स्थलमें विचरनेवाले स्थलचारी जीव कहाते हैं ॥ ११-१३ ॥

अथ ग्रामचारी पशुवर्ग ।

गजवाजिनस्तथोष्ट्रा माहिषा सौरभाजकाः ॥ खरशूकरमषाश्च
श्वानो मार्जारमूषकाः ॥ १४ ॥ इत्येते पशवो ज्ञेया ग्रामवास-
निवासिनः ॥

हस्ती, घोड़ा, ऊँट, भैंसा, बैल, बकरा, गवा, सुवर, मेढा, कुत्ता, बिलाव, मूषा ॥ १४ ॥ ये सब जीव ग्राममें बसनेवाले हैं ॥

ग्रामचारी पक्षी ।

कुक्कुटकलविङ्कपारावतकपोतकाः ॥ १५ ॥

पक्षिणो ग्रामचाराश्च वच्मि चैषां गुणागुणम् ॥ १६ ॥

और मुर्गा, गौरैया, परेवा, कबूतर, ॥ १५ ॥ ये पक्षी ग्राममें विचरते हैं इनके गुण और दोषको कहता हूँ ॥ १६ ॥

हरिणोंके मांसका गुण ।

शृङ्गिणां हरिणः श्रेष्ठो बल्यो रोचनदीपनः ॥

त्रिदोषघ्नो लघुः पाके मधुरो ज्वरिणां हितः ॥ १७ ॥

शींगवालोंमें हरिण श्रेष्ठ है, बलमें हित है, रुचिको देता है, अग्निको जगाता है, त्रिदोषको हरता है, हलका है, पाककालमें मधुर है, ज्वरवालोंको हित है ॥ १७ ॥

अथ कृष्णमृगके मांसका गुण ।

क्षते क्षयार्शसोः पाण्ड्वावरोचकनिपीडिते ॥

कासश्वासातुराणां च एणमांसं सुखावहम् ॥ १८ ॥

छातीका फटजाना, क्षय, बवासीर, पांडु, अरुची, खाँसी और श्वास इनसे पीडित रोगियोंको कृष्णमृगका मांस हित है ॥ १८ ॥

अथ चित्रांगके मांसका गुण ।

चित्राङ्गो वातशमनो बृंहणो बलकृन्मतः ॥

श्लेष्मलः कथितो वापि दुर्जरो मेदवर्द्धनः ॥ १९ ॥

चित्तलका मांस वातको शांत करता है, धातुओंको पुष्ट करता है, बलको बढ़ाता है, कफको करता है, दुर्जर है और मेदको बढ़ाता है ॥ १९ ॥

अथ छिक्करके मांसका गुण ।

छिक्करो लघु बृही च मधुरो दोषनाशनः ॥

तुल्यो हरिणमांसस्य ज्वरेष्वपि प्रशस्यते ॥ २० ॥

छिक्करका मांस हलका है, धातुओंको पुष्ट करता है, मधुर है, दोषको नाशता है, मृगके मांसके समान है और ज्वरमें भी श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ रक्तमृगके मांसका गुण ।

रोहितो बृंहणश्चैव विबन्धी दुर्जरो घनः ॥

ज्वरिणां विषमाग्नीनामतीसारैर्नास्यते ॥ २१ ॥

रक्त मृगका मांस धातुओंको बढ़ाता है, विशेष करके कब्ज करता है, दुर्जर है, कठिन है और ज्वर, विषमज्वर, अग्नि, इन रोगवालोंको अतीसार करके वासित करता है ॥ २१ ॥

अथ गेंडा, रोझ, भैंसा, ऊँट, घोड़ा इनके मांसोंके गुण ।

तथैव गण्डगवयमहिषोष्टुरङ्गमाः ॥

विबन्धिगुरवः स्निग्धा वातालस्ये प्रकीर्तिताः ॥ २२ ॥

गेंडा, नीलीगाय, भैंसा, ऊँट, घोड़ा इन पाँचोंके मांस विशेष करके कब्ज करते हैं, भारी हैं चिकने हैं, वातमें और आलस्यमें हित हैं ॥ २२ ॥

अथ शूकरके मांसका गुण ।

वातघ्नं रोचनं वृष्यं दुर्जरं श्रमनाशनम् ॥

सौकरं पित्तशमनं रुचिदं धातुवर्द्धनम् ॥ २३ ॥

सुअरका मांस वातको नाशता है, रुचिमें हित है, वीर्यमें हित है, दुर्जर है, परिश्रमको नाश-
ता है, पित्तको शांत करता है, कांतिको देता है, धातुओंको बढ़ाता है, ॥ २३ ॥

अथ शशाके मांसका गुण ।

शशको जाङ्गलश्रेष्ठो लघुर्वृष्यश्च दीपनः ॥ रुचिकृत्तपणो बल्य-

स्त्रिदोषशमनो मतः ॥ २४ ॥ ज्वरे च पाण्डुरोगे च क्षये कासे

गुदामये ॥ राजयक्ष्मणि पाण्डौ च तथातीसारिणां हितः ॥ २५ ॥

शशाका मांस जांगलजीवोंके मांसोंमें श्रेष्ठ है, हलका है, वीर्यमें हित है, अग्निको जगाता है,
रुचिको करता है, तृप्तिको करता है, बलमें हित है और त्रिदोषको शांत करता है ॥ २४ ॥
और ज्वर, पांडुरोग, क्षय, खांसी बवासीर, राजभोग, पांडुरोग, अतीसार, इन रोगवालोंको
हित है ॥ २५ ॥

अथ साहीके मांसका गुण ।

शल्लकी बृंहणो बल्यः स्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ॥

वातश्लेष्महरो हृद्यो मधुरो धातुवर्द्धनः ॥ २६ ॥

साहीका मांस धातुओंको पुष्ट करता है, वीर्यमें हित है, बलको करता है, चिकना है, रुचिको
देता है, वातको और कफको हरता है, सुन्दर है, मधुर है और धातुओंको बढ़ाता है ॥ २६ ॥

अथ गोह सरीखे शल्यकनामवाले जीवके मांसका गुण

शल्यको बृंहणो बल्यः स्निग्धो वृष्यो रुचिप्रदः ॥

वातलः किञ्चिद्धातूनां वर्द्धनो मधुरो घनः ॥ २७ ॥

गोह सरीखे जीवका मांस धातुओंको पुष्ट करता है, बलमें हित है, चिकना है, वीर्यमें-
हित है, रुचिको देता है, वातको करता है, धातुओंको कुछ बढ़ाता है, मधुर है और
कठिन है ॥ २७ ॥

अथ गोहके मांसका गुण ।

रक्तपित्तहरा वृष्या स्निग्धा मधुरशीतला ॥

श्वासकासहरा प्रोक्ता गोधा चाशौहिता बला ॥ २८ ॥

गोहका मांस रक्तपित्तको हरता है, वीर्यमें हित है, चिकना है, मधुर है, शीतल है, श्वासको
और खांसीको हरता है और बवासीरमें हित है बलप्रद है ॥ २८ ॥

अथ मूषाके मांसका गुण ।

स्निग्धो बलकरः शुक्रवर्द्धनो मधुरो लघुः ॥ दुर्नामकृमिदोषघ्नो
वातहारी च मूषकः ॥ २९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे
चतुष्पदानां मांसवर्गो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

मूसेका मांस चिकना है, बलको करता है, वीर्यको बढ़ाता है, मधुर है, हल्का है और
बवासीरको और कृमिदोषको हरता है और वातको भी नाशता है ॥ २९ ॥

इति बेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

प्रथमस्थाने मांसवर्गो नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.



अथ स्थलमें विचरनेवाले जीवोंका मांसवर्ग ।

(प्रथम लावापक्षीके मांसका गुण)

पक्षिणां च महाश्रेष्ठो लावको जाङ्गलात्मजः ॥ संग्राही दीपनः
श्रोतः कषायो मधुरो लघुः ॥ १ ॥ तथा विपाके मधुरः सन्नि-
पातेऽतिपूजितः ॥ २ ॥

जांगलदेशमें विचरनेवाले लावापक्षीका मांस अन्य पक्षियोंके मांससे श्रेष्ठ है । यह कब्जको
करता है, अग्निको जगाता है, कसैला है, मधुर है और हल्का है ॥ १ ॥ और पाककालमें
मधुर है और सन्निपातमें अतिपूजित है ॥ २ ॥

अथ तीतरके मांसका गुण ।

तथैव तित्तिरो वृष्यो मेधाग्निबलवर्द्धनः ॥ सर्वदोषहरो बल्यो ब-
लाका समता गुणैः ॥ ३ ॥ वार्त्ताको विशदो वृष्यो यथा लावस्त-
थैव च ॥ कृष्णगौरप्रभेदाश्च श्रेष्ठो गौरश्च तित्तिरः ॥ ४ ॥ तृती-
यतित्तिरोऽन्योऽपि सामान्यो गुणलक्षणैः ॥ सवातलोऽतिबलकृ-
द्धनः किञ्चिद्रसायनः ॥ ५ ॥

तीतरका मांस वीर्यमें हित है और बुद्धि, अग्नि, और बल, इनको बढ़ाता है, सब दोषोंको
हरता है, बलमें हित है और बगलके मांसके समान गुणोंवाला है ॥ ३ ॥ वार्त्ताकसंज्ञक
तीतरका मांस सुन्दर है, वीर्यमें हित है और लावाके मांसके समान गुणोंवाला है, कृष्ण और

गौर तीतरोंमें गौर वर्णका तीतर श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ इन्हींके गुण और लक्षणोंके समान तीसरे, रंगका तीतर अन्य भी होता है परंतु वह वातल है, अतिबलको करता है, उसका मांस कठिन है और कुछ रसायन हैं ॥ ५ ॥

अथ नीले मोरके मांसका गुण ।

मेधावृद्धिं स्रोतसां च करोत्युत्पादनं शिखी ॥

सवातलोऽतिबलकृद्घनः किञ्चिद्रसायनः ॥ ६ ॥

नीले मोरका मांस बुद्धिको बढ़ाता है और नाड़ियोंको शुद्ध करता है, वातल है, अतिबलको करता है, कठिन है और कुछ रसायन है ॥ ६ ॥

अथ साधारण मोरके मांसका गुण ।

सुस्निग्धो श्लेष्मलो वृष्यो घनः शुक्रविवर्द्धनः ॥

मांसवृद्धिकरो बल्यो द्वितीयश्च मयूरकः ॥ ७ ॥

साधारण मोरका मांस सुन्दर चिकना है, कफको करता है, वीर्यमें हित है, कठिन है, वीर्यको बढ़ाता है, मांसको बढ़ाता है, बलमें हित है ॥ ७ ॥

अथ मुर्गाके मांसका गुण ।

तथैव कौक्कुटो ज्ञेयो मधुरश्च गुणात्मकः ॥ ८ ॥

वैसे ही मुर्गाका मांस भी मोरके मांसके समान गुणोंवाला है और मधुर है ॥ ८ ॥

अथ कपोतके मांसका गुण ।

कापोतो बृंहणो बल्यो वातपित्तविनाशनः ॥

तर्पणः शुक्रजननो हितो नणां रुचिप्रदः ॥ ९ ॥

कपोतका मांस धातुओंको पुष्ट करता है, बलमें हित है, वातको और पित्तको नाशता है, तृप्तिको करता है, वीर्यको बढ़ाता है और मनुष्योंको हित है, रुचिको देता है ॥ ९ ॥

अथ परेवाक मांसका गुण ।

तथा पारावतो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ॥ बल्यो वृष्यो रुचिकृच्च

तथा हारीतको मतः ॥ १० ॥ पोतकी भङ्गिका क्षुद्रा तथा च

कुनटी तथा ॥ एते तुल्यगुणा ज्ञेया लघुवातापहारिणः ॥ ११ ॥

परेवाका मांस वातको और कफको करता है, भारी है, बलमें हित है, वीर्यमें हित है, रुचिको करता है और ऐसे ही गुणोंवाला तिलजिरूपक्षीका मांस है ॥ १० ॥ और पोतक, इन्द्रगोप, मधुमाखी, कुनटी इन चारोंका मांस समान गुणोंवाला है, हलका है और वातको हरता है ॥ ११ ॥

अथ ककेराके मांसका गुण ।

लघुश्च कृकरो ज्ञेयः कायाग्निवर्द्धनो भृशम् ॥ १२ ॥

ककेराका मांस हलका है, शरीरकी अग्निको बढ़ाता है ॥ १२ ॥

अथ खाती चिड़ाके मांसका गुण ।

तथा लघुर्वातहरः काष्ठकूटोऽग्निवर्द्धनः ॥ वातश्लेष्माधिको ज्ञेयः
शीतलः शुक्रवर्द्धनः ॥ १३ ॥ अश्मरीं हन्ति विशदो बलकृन्मां-
सतक्षणः ॥ १४ ॥

खातीचिड़ाका मांस हलका है, वातको हरता है और जठराग्निको बढ़ाता है, वात और
कफकी अधिकतासे संयुक्त है, शीतल है और वीर्यको बढ़ाता है ॥ १३ ॥ पथरीको हरता है
सुन्दर है, बलको करता है, मांसको काटता है ॥ १४ ॥

अथ चकोर, तोता, मैना इनके मांसका गुण ।

चकोरोऽथ तथा शारी समदोषौ गुणागुणैः ॥ १५ ॥

चकोर, तोता, मैना इन्होंका भी मांस गुण और दोषोंसे समान है ॥ १५ ॥

अथ कुंजके मांसका गुण ।

क्रौंचो वृष्योऽतिरुचिकृदश्मरीं हन्ति नित्यशः ॥

शोषमूर्च्छाहरो वृष्यो हन्ति कासमरोचकम् ॥ १६ ॥

क्रौंचका मांस वीर्यमें हित है, अधिक रुचिको करता है, निश्चय पथरीको हरता है और शोष-
मूर्च्छा, खांसी, अरुचि इनको नाशता है वीर्यमें हित है ॥ १६ ॥

अथ कोयलके मांसका गुण ।

कोकिलः श्लेष्मलो ज्ञेयः पित्तसंशमनो मतः ॥ १७ ॥

कोयलका मांस कफको करता है, पित्त शांत करता है ॥ १७ ॥

अथ विवृताक्षके मांसका गुण ।

वैवृताक्षस्त्रिदोषघ्नो बल्यः शुक्रविवर्द्धनः ॥ १८ ॥

विवृताक्षका मांस त्रिदोषको नाशता है, बलमें हित है और वीर्यको बढ़ाता है ॥ १८ ॥

अथ घरके चिड़ेके मांसका गुण ।

गृहस्य चटको वृष्यो बलशुक्रविवर्द्धनः ॥ सर्वदोषहरश्चापि दीपनो

मांसवर्द्धनः ॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे स्थलच-

राणां मांसवर्गो नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

घरकी चिड़ियाका मांस वीर्यमें हित है, बल और वीर्यको बढ़ाता है, सब दोषोंको हरता है,
अग्निको जगाता है और मांसको बढ़ाता है ॥ १९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसू-
नुवैद्यरविदत्तशास्त्रियनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने स्थलचराणां मांसवर्गो नाम
एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.

अथ जलचरोका मांसवर्ग ।

प्रथम हंस आदि जलके पक्षियोंके मांसका गुण ।

हंसः श्लेष्मकरो बलातिरुचिदो वृष्योगुरुः शीतलस्त द्रुतकण्ठ सु-
जाड्यशुक्रजननो वृष्योऽतिरुच्यो मृदुः ॥ ज्ञेयः सारसकः कफा-
निलहरो वृष्यो गुरुश्चोच्यते वृष्यो वीर्यविवर्द्धनः कफहरः कङ्क-
स्तथा भासकः ॥ १ ॥

हंसका मांस कफको करता है, बलको और अति रुचिको देता है, वीर्यमें हित है, भारी है
और शीतल है । और सारसका मांस हंसके मांसके समान गुणोंवाला है, कंठमें जड़पनेको और
मांसको करता है, वीर्यमें हित है, रुचिमें हित है और कोमल है, और कंक पक्षीका मांस कफ-
इन्को और वातको हरता है, वीर्यमें हित है और भारी है और भासपक्षीका मांस वीर्यमें हित है
और वीर्यको बढ़ाता है, कफको नाशता है ॥ १ ॥

आडी आदि पक्षाक मांसका गुण ।

आडी वातविकारकासहननी बल्या वृषा दीपनी क्रौञ्ची चासुरि-
शुक्रदोषहननी तुल्यस्तथा कर्कटः ॥ दात्यूहो मरुतस्यनाश-
नकरो वृष्यो बलः शुक्रदश्चैष श्रेष्ठगुणः श्रमोपशमनः शुक्रप्रदो
वातहा ॥ २ ॥

आडीका मांस, वातका विकार और खाँसीको हरता है, बलमें और वीर्यमें हित है और
अग्निको जगाता है । क्रौञ्चका मांस और आसुरीका मांस वीर्यके दोषको हरता है, और इसीके
समान गुणोंवाला कांकडपक्षीका मांस है और कर्कटोंक पक्षीका मांस वातको नाशता है, वीर्यमें
हित है, बलको और वीर्यको देता है और यह श्रेष्ठ गुणोंवाला है, परिश्रमको शांत करता है ॥ २ ॥

अथ मकर मच्छके मांसका गुण ।

मत्स्यानां मकरः श्रेष्ठो दीपनो वातनाशनः ॥

रुचिप्रदः शुक्रकरश्चाशमरीदोषनाशनः ॥ ३ ॥

सब प्रकारके मच्छोंके मांसोंमें मकरमच्छका मांस श्रेष्ठ है, अग्निको जगाता है, वातको नाशता-
है, रुचि तो देता है, वीर्यको करता है और पथरीदोषको नाशता है ॥ ३ ॥

अथ मच्छके मांसका गुण ।

शृङ्गी वातविनाशनो रुचिकरो वृष्यः कफघ्नो मतस्तस्माद्रोहित-
को हितो बलकरो वातात्मकः श्लेष्मकः ॥ ४ ॥ श्लेष्माकरी तु
शफरी नलमीनः कफात्मकः ॥ शकुली च विशाला च ज्ञेयौ
वातकफात्मकौ ॥ बिलं विमत्स्यं ज्ञेयं च वातपित्तकफाकरम् ॥ ५ ॥

शृङ्गी मछलीका मांस वातको नाश करता है, रुचिकर है, वीर्यमें हित है और कफको नाश करनेवाला माना गया है । रेड् मछलीका मांस शृङ्गीसे अधिकहित करनेवाला है, बल करता है, वात प्रकृतिवाला है और कफको बढ़ाता है ॥ ४ ॥ शफरी मछली कफ करती है, नल मछली कफ प्रकृतिवाली है, शकुली मछली वातप्रकृतिवाली है, विशाला मछलीका मांस कफस्वभाव वाला है, बिल और विमत्स्य नामक मछलीका मांस वात, पित्त, कफ इन तीनोंको करता है ॥ ५ ॥

अथ कछुवाके मांसका गुण ।

कच्छपो मधुरः स्वादुः शुक्रवृद्धिकरो मतः ॥

वातश्लेष्मप्रजननो बृंहणो रूक्ष एव च ॥ ६ ॥

कछुवेका मांस मधुर है, स्वादु है, वीर्यको बढ़ाता है, वात और कफको उपजाता है, धातुओंको पुष्ट करता है और रूखा है ॥ ६ ॥

अथ खेकड़ाके मांसका गुण ।

कुलीरोऽतिबलो वृष्यः पाण्डुक्षयविनाशनः ॥

शोफातिसारग्रहणीस्थविराणां स्त्रियां हितः ॥ ७ ॥

खेकड़ाका मांस अधिक बलको करता है वीर्यमें हित है, पाण्डु और क्षय रोगको नाश करता है और शोजा, अतीसार, संग्रहणी दोष, इनसे पीडित और बूढ़े और स्त्रियोंको हित है ॥ ७ ॥

अथ मांसविशेषता ।

मकरो दीपनो हृद्यो ग्राही चोष्णविकारहा ॥

मूत्राशमरीणां शमनो गुल्मातीसारनाशनः ॥ ८ ॥

मकर मच्छका मांस अग्निको जगाता है, सुन्दर है, कब्जको करता है, गरम विकारको नाशता है, मूत्ररोग और पथरीको शांत करता है, गुल्म और अतीसारको नाशता है ॥ ८ ॥

अथ वर्जनय मांसका गुण ।

काकश्येनखगारिसारसशुकायूकाः कलिङ्गा वकाः ।

भल्लूकोष्ट्वराहधेनुतनयव्यालास्तथा गर्दभाः ॥

१ अस्मिन् श्लोके शार्दूलविक्रीडितस्य चरणद्वयमेवास्ति ।

मण्डूकादिसरीसृपादिकगणा येऽन्ये सता ईदृशस्ते भक्ष्या न
 शुभावहा ननु नृणां वर्ज्या भिषग्भिर्बुधैः ॥ ९ ॥ गृहचटकच-
 कोराः काकजात्याः खगाश्च पिकशुकमघशारीभृङ्गदात्यूहमा-
 ज्जाः ॥ जलकरटकपोताः पोटकीखञ्जरीटाः कुरुरमघमलिङ्गा
 यूकपिङ्गादयश्च ॥ १० ॥ एते भक्ष्या नैव भक्ष्या नचेष्टा ये
 चान्येऽप्यज्ञातनामाण्डजाश्च ॥ अन्ये चापि श्वापदा ये च
 निद्यास्ते स्वाद्ये वै वर्जिताश्चात्र सर्वे ॥ ११ ॥ इति आत्रेयभाषिते
 हारीतोत्तरे मांसवर्गो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

काक, बाज, शिकरा, सारस, तोता, यूक, कलिङ्ग और वक पक्षी तथा रीछ, ऊँट, सूकर,
 बैल, भेड़िया और गर्दभ तथा मण्डूक आदि सरीसृप जीवोंका समूह तथा और भी जो इन्हींकी
 मांति माने गये हैं वे सब भक्ष्य मनुष्योंका कल्याण करनेवाले नहीं इसी लिये पंडित वैद्योंको अवश्य
 इनका त्याग करना चाहिये ॥ ९ ॥ घरमें रहनेवाली चिड़िया, चकोर, काककी जातिके पक्षी,
 शिकराकी जातिके पक्षी, कोयल, तोताकी जातिके पक्षी, मवा, शारी, भोरा, करढौकपक्षी,
 भांग, शंखका जीव, कबूतर, पोटकी, खंजना कुत्ता, मव, मलिंग, जूस, पिंगापक्षी ॥ १० ॥ इनके
 मांस खानेके योग्य नहीं हैं और श्रेष्ठ भी नहीं हैं तथा जो जो हिंसक तथा निंदित जीव हैं
 उनके भी मांस वर्जने चाहिये ॥ ११ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवा-
 दितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने मांसवर्गो नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथ अन्नपानवर्गः ।

प्रथमं भंडका गुणः ।

मण्डः परिस्रवो भक्तस्तर्पणो वातनाशनः ॥ मूत्रमेहसमीरणो
 रुचिकृन्मूत्रलो मतः ॥ १ ॥ आशुमण्डो भवेद्वाही मधुरो वा
 कफात्मकः ॥ तर्पणः क्षयदोषघ्नः शुक्रवृद्धिकरः परः ॥ २ ॥

मण्ड झरनेवाला है, खानेयोग्य है तृप्तिको करता है, वातको नाशता है, मूत्र, मेह और वातको
 नाशता है, रुचिको करता है और मूत्रको उपजाता है ॥ १ ॥ शीघ्र किया मण्ड कब्जको करता है,
 मधुर है, कफकी प्रकृतिवाला है, तृप्तिको करता है, क्षय दोषको नाशता है और वीर्यको बढ़ाता है ॥ २ ॥

अथ भातका गुण ।

अप्रसाधितभक्तो युगन्धराणां भक्तश्च घनो विशदमधुरश्च ॥

कफे त्रिदोषशमनश्च कथ्यते कासश्च श्वासात्मक एव स स्मृतः ॥ ३ ॥

नहीं साधित किया ऐसा युगन्धर चावलोंका भात कठिन है, सुन्दर है, मधुर है, कफमें हित है, त्रिदोषको नाशता है, खांसीको और श्वासरोगको हरता है ॥ ३ ॥

अथ यवागूका गुण ।

सन्दीपनी स्वेदकरा यवागूः सम्पाचनी दोषमलामयानाम् ॥

सन्तर्पणी धातुबलेन्द्रियाणां शस्ता भवेत्स्याज्ज्वररोगिणां च ॥ ४ ॥

यवागू पसीनाको लाती है, अग्निको जगती है, दोष, मल और रोग इनको पकाती है और धातु, बल और इन्द्रियोंको तृप्त करती है और ज्वररोगियोंको श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ यवागूका लक्षण ।

भागैकश्च भवेद्द्रव्यं द्विभागन जलं क्षिपेत् ॥ चित्रकं पिप्पली-

मूलं पिप्पलीचव्यनागरम् ॥ ५ ॥ धान्यकस्य समांशानि पिष्ट्वा

श्वेतांश्च तण्डुलान् ॥ संशुद्धा शिथिला किञ्चित् सा यवागूर्निग-

द्यते ॥ ६ ॥ यवागूसुपभुञ्जानो जनो नारुचिमाचरेत् ॥ शाक-

माषफलैर्युक्ता यवागूः स्याच्च दुर्जरा ॥ ७ ॥

एक भाग द्रव्य और दो भाग पानी मिलावे और चीता, पीपलामूल, पीपल, चव्य, सोंठ ॥ ५ ॥ धनियां ये सब समभाग लेने, सफेद और दूसरे रंगके चावल इन सबोंको पीस मिलाके पकावे कुछ पतली रहे तिसको यवागू कहते हैं ॥ ६ ॥ यवागूका भोजन करता हुआ मनुष्य अरुचिको नहीं प्राप्त होता और शाक, उड़द, फलसे युक्त यवागू दुर्जर होती है ॥ ७ ॥

अथ मंडका गुण ।

पञ्चकोलकधान्याकैर्युक्तो रास्नान्वितः पुनः ॥

मण्डस्त्रिदोषशमनो ज्वराणां पाचनः परः ॥ ८ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, धनिया, रायसनसे युक्त किया मंड त्रिदोषको नाशता है और ज्वरोंको पकाता है ॥ ८ ॥

अथ खीरका गुण ।

पायसं गुरु विष्टम्भजननं श्लेष्मवातलम् ॥

पित्तसंशमनं बल्यं वृष्यं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ९ ॥

खीर भारी है, विष्टम्भको करती है, कफ और वातको करती है, पित्तको शांत करती है, बलमें और वीर्यमें हित है, श्रेष्ठ है और रसायन है ॥ ९ ॥

१ “पिप्पली चव्य विश्वाहा पिप्पलीमूलचित्रकैः। पञ्चकोलमिति ख्यातं सद्यो दीपनपाचनम्” ॥ शार्ङ्गधरे ।

अथ खीचडीका गुण ।

गुरुर्विष्टम्भजननो वातश्लेष्मकरः स्मृतः ॥ पित्तसंशमनो बल्यो
वृष्यश्चैव बलप्रदः ॥ १० ॥ मुहुस्तण्डुलसंयुक्तो माषतण्डुल-
वान् पुनः ॥ अन्यथा धान्यगुणवांलक्ष्यते च भिषग्वर ॥ ११ ॥
तिलानां संयुतो हृद्यो धातुपुष्टिविवर्द्धनः ॥ गुरुर्विष्टम्भमलकृद्
दुर्जरः श्लेष्मकोपनः ॥ १२ ॥

खीचडी भारी है, विष्टम्भको करती है, वातको और कफको करती है, पित्तको शांत करती है, बलमें और वीर्यमें हित है और बलको देती है ॥ १० ॥ फिर चावलोंसे युक्त हुई अथवा चावल और उड़दोंसे युक्त हुई खीचडीके भी वही गुण है। अन्य तरहकी खीचडी अपने गुणको देती है ॥ ११ ॥ तिलोंकी खीचडी सुंदर है, धातुओंकी पुष्टिको बढ़ाती है, भारी है, विष्टम्भको और मलको करती है, दुर्जर है, कफको कोपती है ॥ १२ ॥

अथ दालका गुण ।

सूपश्चोक्तस्त्रिदोषघ्नो व्यञ्जितश्चैव सर्पिषा ॥
धातुपुष्टिकरः श्रेष्ठो बृंहणो बलवर्द्धनः ॥ १३ ॥

दाल त्रिदोषको नाशती है और घृतमें भूनी अथवा छोंकी हुई दाल धातुओंकी पुष्टिको करती है, श्रेष्ठ है, धातुओंको और बलको बढ़ाती है ॥ १३ ॥

अथ खलका गुण ।

कफवातकरो हृद्यः खलको बलकारकः ॥ १४ ॥

दिलोंका खल वातको और कफको करता है, सुन्दर है और बलको करता है ॥ १४ ॥

अथ अनारका पना ।

कफानिलहरो हृद्यो दीपनो दाडिमाम्लकः ॥ १५ ॥

अनारका पना कफको और वातको हरता है, सुन्दर है और अग्निको जगाता है ॥ १५ ॥

अथ पापड़का गुण ।

पर्पटस्तैलसंभृष्टो दोषाणां च ज्वरापहः ॥

रुचिकृद्बलकृच्चैव दाहशोषतृषापहः ॥ १६ ॥

तेलमें भुना हुआ पापड़ दोषोंसे उपजे ज्वरको नाशता है, रुचिको और बलको करता है, दाह, शोष, तृषाको नाशता है ॥ १६ ॥

अथ सण्डाकीका गुण ।

सण्डाकी च गुरुः स्निग्धा दुर्जरा अतिशीतला ॥

पित्तश्लेष्मकरा बल्या धातूनां च बलप्रदा ॥ १७ ॥

संवाकी भारी है, चिकनी है, दुर्जर है, अति शीतल है, पित्तको और कफको काती है, बलमें हित है और धातुओंके बलको देती है ॥ १७ ॥

अथ उड़द आदिके बड़ोंका गुण ।

दुर्जरा मधुरा रुच्या वटिका माषकादिभिः ॥ १८ ॥

उड़द आदिके बड़े दुर्जर हैं, मधुर हैं, रुचिमें हित हैं ॥ १८ ॥

अथ शिखरनका गुण ।

गुडदधिप्रमुदिता हिता शिखरिणी नृणाम् ॥

धातुवृद्धिकरा वृष्या वातपित्तविनाशिनी ॥ १९ ॥

गुड़ और दहीसे बनी हुई शिखरण मनुष्योंको हित है, धातुओंको बढ़ाती है, वीर्यमें हित है, वातको और पित्तको नाशती है ॥ १९ ॥

अथ घृतयुक्त दहीके पतले शिखरनके गुण ।

शीतलः पित्तशमनो भ्रममूर्च्छातृषापहः ॥

खण्डेन संयुतः श्रेष्ठो घृतयुक्तो जलाधिकः ॥ २० ॥

यह शीतल है, पित्तको शांत करता है और भ्रम, मूर्च्छा, तृषाको नाशता है, खांड तथा घृतसे संयुक्त और पानीकी अधिकतासे संयुक्त ऐसा शिखरन श्रेष्ठ है ॥ २० ॥

अथ मन्थका लक्षण और गुण ।

सक्तवः सर्पिषाम्यक्ताः शीतवारिपरिप्लुताः ॥ नातिद्रवा नाति-

सान्द्रा मन्थ इत्यभिधीयते ॥ २१ ॥ मन्थः सद्यो बलच्छर्दिपि-

पासादाहनाशनः ॥ साम्लस्रोहश्च सगुडो मूत्रकृच्छ्रस्य साधनः ॥ २२

घृतमें भुने हुए सत्तुओंमें पानी मिलाके ऐसा बनावे जो न अति पतला और न अति कठिन हो तिसको मन्थ कहते हैं ॥ २१ ॥ तत्कालका बनाया मन्थ बल, छर्दि, पिपासा और दाहको नाशता है, तेल, खटाई और गुडयुक्त मन्थ मूत्रकृच्छ्रको साधता है ॥ २२ ॥

अथ सिद्धमांसका गुण ।

सिद्धं मांसं वेसवारण युक्तं बाल्यं श्रेष्ठं स्वादु संदीपनं च ॥

त्रिदोषशमनं गुरु लवणस्रोहयुक्तं दुर्जरं दीपनं स्मृतम् ॥ २३ ॥

सिद्ध किया और वेसवारसंज्ञक मसालासे संयुक्त किया मांस बलमें हित है, श्रेष्ठ है, स्वादु है, अग्निको जगाता है, त्रि दोषको शांत करता है, भारी है, नमक और स्रोहसे संयुक्त किया मांस दुर्जर है और अग्निको जगाता है ॥ २३ ॥

अथ मांसकी श्रेष्ठता ।

नहि मांससमं किञ्चिदन्यदेहमहत्त्वकृत् ॥

मांसादमांसं मांसेन संभृतत्वाद्विशिष्यते ॥ २४ ॥

शरीरके बढानेके वास्ते मांससरीखा दूसरा कोई पदार्थ नहीं है, उस मांसमें भी जो प्राणी मांस खाते हैं उन प्राणियोंका मांस मांससे भरा रहता है, इसलिये वह बहुत अच्छा होता है ॥ २४ ॥

अथ भूजेंहुए मांसका गुण ।

अङ्गारैः परिपक्वं च दीपनं श्लेष्मनाशनम् ॥

बल्यं च स्नेहसंयुक्तं घनं घनगुणात्मकम् ॥ २५ ॥

शूल आदिके द्वारा अंगारोंसे पकाया मांस दीपन है, कफनाशक है, बलमें हित है, स्नेह-युक्त रहता है कड़ा है, और कड़े गुणवाला है ॥ २५ ॥

अथ मंडका गुण ।

अत्युष्णं मण्डकं पथ्यं लघु चैव यथोत्तरम् ॥ त्रिकशूलपार्श्वशू-

लपरिणामापहं तथा ॥ तृष्णामारुतछर्दिघ्नमामाशयकरं तथारदं ॥

मंड अति गर्म है, पथ्य है और हलका है, यह त्रिकशूल, पसलीशूल, परिणामशूलको नाशता है, तृष्णा, पायु, छर्दि इनको नाशता है, आमको बढ़ाता है ॥ २६ ॥

अथ मांडका गुण ।

तप्तकर्परपक्वा या रोचनी मधुरा घना ॥

कफवृद्धिकरी बल्या पित्तरक्तप्रदायिनी ॥ २७ ॥

तप्त किये तबेपर पकाया मांडा रुचिको करता है, मधुर है, कठिन है, कफको बढ़ाता है, बलमें हित है, पित्त और रक्तको देता है ॥ २७ ॥

अथ पूरी और घेवरका गुण ।

पूरिका घृतपूरन्तु त्रिदोषशमनं परम् ॥

वृष्यं संबृंहणं स्वादु क्षतक्षयनिवारणम् ॥ २८ ॥

पूरी और घेवर त्रिदोषको शांत करता है, वीर्यमें हित है, धातुओंको पुष्ट करता है, स्वादु है, क्षत और क्षयको नाशता है ॥ २८ ॥

अथ मालपुवाका गुण ।

गुरूष्णो दुर्जरो ज्ञेयो वातश्लेष्मकरो गुरुः ॥

पूपकः श्लेष्मको हृद्यो वृष्यो वातानुलोमकः ॥ २९ ॥

१ मांसमत्ति भक्षयति असौ मांसादः तस्य मांसमिति मांसभक्षकस्य मांसम् ।

मालपुआ भारी है, दुर्जर है, वातकफको करता है और कफको करता है, सुंदर है, वीर्यमें हित है, वातको अनुलोम करता है ॥ २९ ॥

अथ सोमालिकाका गुण ।

सोमालिका घना स्वादू रोचनी बलवर्द्धनी ॥

दुर्जरा दोषशमनी वृष्यानुकरणी मता ॥ ३० ॥

सोमालिका (पक्वान्न) कठिन है, स्वादु है, रुचिको उपजाती है, बलको बढ़ाती है, दुर्जर है, दोषको शांत करती है और वीर्यमें हित है ॥ ३० ॥

अथ फेनीका गुण ।

बृंहणी वातपित्तघ्नी पथ्या लघुतरा मता ॥

फेनिका रोचनी बल्या सर्वधातुबलप्रदा ॥ ३१ ॥

फेनी बल बढ़ाती है, वात पित्तको शांत करती है, पथ्य है, बहुत हलकी है, रुचिको उपजाती है, बलमें हित है और सब धातुओंमें बलको देती है ॥ ३१ ॥

अथ भिन्न बड़ाका गुण ।

विष्टम्भी मधुरो हृद्यो घनो वातकफात्मकः ॥

ससित्तो वा त्रिदोषघ्नो दुर्जरो जायते पुनः ॥ ३२ ॥

भिन्न किया बड़ा विष्टम्भको करता है, मधुर है, सुंदर है, कठिन है, वातकी और कफकी प्रकृतिवाला है, सेचित्त किया बड़ा त्रिदोषको नाशता है, फिर दुर्जर हो जाता है ॥ ३२ ॥

अथ अभिन्न बड़ाका गुण ।

अभिन्नो दुर्जरो बल्यो घनतृष्णाप्रदः स्मृतः ॥

तीक्ष्णो विपाके विष्टम्भी दुर्जरो जायते पुनः ॥ ३३ ॥

नहीं भिन्न किया बड़ा दुर्जर है, बलमें हित है, अधिक तृष्णाको देता है, तेज है, पाककालमें विष्टम्भी है, फिर दुर्जर हो जाता है ॥ ३३ ॥

अथ लड्डूका गुण ।

कटुकास्तर्पणा बल्या दुर्जराः शोषकारकाः ॥ मन्दाग्रौ न प्रश-

स्यन्ते मोदका बहुवर्णकाः ॥ द्रव्यं गुणविशेषेण सारस्वादेन

वा पुनः ॥ ३४ ॥

लड्डू चर्चरे हैं, तृप्तिको करते हैं, बलमें हित है, दुर्जर हैं, शोषको करते हैं और मन्दाग्रिमें हित नहीं हैं, बहुत वर्णवाले हैं, अथवा द्रव्यका गुणविशेष करके व सारस्वाद करके लड्डू कहे हैं ॥ ३४ ॥

अथ यवपोलिकाका गुण ।

पोलिका कथिता बह्या कफदोषकरी मता ॥

वृष्या वीर्यप्रदा ज्ञेया दोषला वीर्यवर्द्धिनी ॥ ३५ ॥

विदलान्नस्य या पर्णा सिद्धा कर्परकेण तु ॥

रूच्या वात्रविशेषेण दोषान् सर्वान् विभावयेत् ॥ ३६ ॥

जवोंकी पोली बलमें हित है, कफदोषको करती है, वीर्यमें हित है, वीर्यको देती है, दोषोंको उपजाती है और वीर्यको बढ़ाती है ॥ ३५ ॥ और तंदूरपर पकायी हुई रोटी रुचिमें हित है, ऐसे ही अन्नके दोषके अनुसार सब पदार्थोंको विचारे ॥ ३६ ॥

अथ अन्नके गुणोंका उपसंहार ।

अन्यानि चात्रपानानि नैवोक्तानि महामते ॥

ग्रन्थविस्तारभीरुश्च लोको वक्तुं न च क्षमः ॥ ३७ ॥

हे महामते ! अन्य अन्न और पान नहीं कहे हैं, क्योंकि ग्रन्थके बढ़ जानेसे संसारके लोक विचारनेको समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥ ३७ ॥

अथ थके हुए मनुष्यका भोजननिषेध ।

श्रमात्तु भोजनं यस्तु पान वा कुरुते नरः ॥

ज्वरः संजायते तस्य छर्दिर्वा तत्क्षणाद्भवत् ॥ ३८ ॥

जो मनुष्य परिश्रम करके शीघ्र भोजनको अथवा पानको करता है, उसके शीघ्र ही ज्वर अथवा छर्दि उपजती है ॥ ३८ ॥

अथ भोजनके उपरांत मेहनत और सुरतका निषेध ।

कृत्वा तु भोजनं सद्यो व्यायामं सुरतं तथा ॥

यः करोति विपत्तिः स्यात्तस्य गात्रस्य निश्चितम् ॥ ३९ ॥

जो मनुष्य भोजनको करके तत्काल कसरतको अथवा मैथुनको करता है उसके शरीरमें निश्चय दुःख हो जाता है ॥ ३९ ॥

अथ ठंडा और गरम भोजनका निषेध ।

न चातिशीतं भुञ्जीत नात्युष्णं भोजने हितम् ॥

कुर्व्याद्वातकफौ शीतमुष्णं भवति सारकम् ॥ ४० ॥

अतिशीतल पदार्थको खावे नहीं और अति गरम भोजन भी हित नहीं है, क्योंकि शीतल भोजन वातको और कफको करता है, गरम भोजन दस्तावर है ॥ ४० ॥

श्रमित आदिकोंके भोजनका निषेध ।

न श्रान्तो भोजनं कुर्व्यान्न व्यायामसमाकुलः ॥

विषमासने न भोक्तव्यं करोति विविधान्गदान ॥ ४१ ॥

परिश्रमसे थका हुआ और कसरतसे थका हुआ मनुष्य भोजनको करे नहीं और विपण्य आसनपर बैठके भोजनको करे नहीं ये अनेक प्रकारके रोगोंको करते हैं ॥ ४१ ॥

भोजनमें फलादिकोंका नियम ।

आदौ फलानि भुञ्जीत वर्जयित्वा तु कर्कटीम् ॥

न नक्तं दधि भुञ्जीत भोजनाद्धं न धावनम् ॥ ४२ ॥

काकडीके बिना सब फलोंको आदिमें खावे रात्रिमें दहीको नहीं खावे और भोजनके बीचमें उठकर नहीं भागे (अर्थात् आधा भोजन करके उठना फिरना फिर भोजन करना उचित नहीं) ॥ ४२ ॥

भोजनके पीछे बैठनेका नियम ।

भोक्तोपविशति स्थौल्यं बलमुत्तानशायिनः ॥

आयुर्वामकटिस्थस्य मृत्युर्धावति धावतः ॥ ४३ ॥

जो भोजनको करके बैठता है वह स्थूलपनेको प्राप्त हो जाता है और भोजन करके सीधा शयन करनेवालेका बल बढ़ता है, भोजन करके बायें करवट शयन करनेसे आयु बढ़ता है और भोजन करके दौड़नेसे मृत्यु दौड़ती है ॥ ४३ ॥

भोजनमें पानीका नियम ।

नचादौ सलिलं पेयं भोजने पानमाचरेत् ॥ अर्द्धाहारेण भुञ्जीत तृतीयं व्यञ्जनेन तु ॥ ४४ ॥ चतुर्थं तोयपानेन पूर्णाहारः सुजायते ॥ ४५ ॥

भोजनके आदिमें पानीको नहीं पीवे भोजन करते हुए पानीको पीवे दो भागके कोष्ठको भोजनसे पूरित करे और तीसरे भागको व्यञ्जनसे पूरित करे ॥ ४४ ॥ और चौथे भागको पानीसे पूरित करे ऐसे पूर्ण भोजन होता है ॥ ४५ ॥

भोजनके ऊपर व्यायाम ।

भोजनोर्ध्वं चक्रमेत शतपादं शनैः शनैः ॥

पश्चादुत्तानशयनं ततो वामे क्षणं स्वपेत् ॥ ४६ ॥

और भोजन करके सौ १०० पैर हौले हौले चले, पीछे सीधा शयन कर पीछे बायें करवट दो घड़ी शयन करे ॥ ४६ ॥

अथ भोजनके उपरांत नेत्रादिकोंका मार्जन ।

भुक्त्वोपरि समाचम्य मार्जयेद्दक्षिणाकरैः ॥

पुनर्दक्षिणहस्तेन मार्जयेदुदरं सुधीः ॥ ४७ ॥

भोजन करके पीछे आचमन ले, दाहिने हाथसे मुखको शुद्ध कर पीछे दाहिने हाथ करके बुद्धिमान् पेटको शोधित करे ॥ ४७ ॥

अथ अङ्कारका नियम ।

उद्गीरयेत्समुद्धारं न चोद्धारस्य धारणा ॥ ४८ ॥

अङ्कारको अच्छी तरह लेवे, क्योंकि अङ्कारको धारित करना अच्छा नहीं ॥ ४८ ॥

अथ व्यायामादिकोंका नियम ।

व्यायामं च व्यवयं च धावनं पानमेव च ॥ युद्धं गीतं च पाठं च
क्षणभुक्तो विवर्जयेत् ॥ ४९ ॥ न सद्यः पीते पठनं गमनं च न
कारयेत् ॥ न वा वाहनमारोहं विवादं न च कारयेत् ॥ ५० ॥

और भोजन करके दो घडीतक कसरत, मैथुन, दौडना अदि शुद्धि, जलआदिका पान और कुस्ती आदि युद्ध, गाना, पढ़ाना, इनको बर्जे ॥ ४९ ॥ और तत्काल पानीको पीके पठन और गमनको न करे । बोझाको उठावे नहीं, सवारी आदिपर चढ़े नहीं, विवादको करे नहीं ॥ ५० ॥

अथ दिनमें शयन करनेका निषेध ।

दिवास्वापं न कुर्यात्तु भुक्तवोपरि च विश्रमेत् ॥ अकालशय-
नाच्छ्लेष्मा प्रतिश्यायः प्रपीनसः ॥ ५१ ॥ क्षयशोफशिरोऽर्त्तिश्च
जायते चाग्निमन्दता ॥ ५२ ॥

और दिनमें शयनको करे नहीं किंतु भोजनकरके विश्राम करे, अकालमें शयन करनेसे कफ, श्लेष्मा, पीनसरोग ॥ ५१ ॥ क्षय, शोजा, शिरमें पीड़ा, मंदाग्नि ये उपजते हैं ॥ ५२ ॥

अथ दिनमें शयन कराने लायक मनुष्य ।

मद्यपीते परिश्रान्ते हिक्काश्वासातुरेषु च ॥ भयशोकक्षुधात्तानां
पठनान्मैथुनेन च ॥ ५३ ॥ तथैव वृद्धबाले च भाराक्रान्ते
तथातुरे ॥ अतीसारे च शोफे च तृष्णापानात्ययेऽपि च ॥ ५४ ॥
ग्रीष्मे बाल्ये निशाह्ने दिवा स्वप्नं हितं भवेत् ॥ ५५ ॥ इति आ-
त्रेयभाषिते हारीतोत्तरे अन्नपानवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः
॥ २३ ॥ प्रथमस्थानं समाप्तम् ॥ १ ॥

मद्यपान करनेमें, परिश्रमसे थकनेमें, हिचकी और श्वासकी पीड़ामें, भय, शोक और भूख इनमें, पठन और मैथुनमें ॥ ५३ ॥ वृद्धपना, बालकपना इनमें, बोझसे थकनेपर, रोगमें, अतीसार और शोजामें, तृष्णा और पानात्यय रोगमें ॥ ५४ ॥ ग्रीष्मऋतुमें, बाल्यावस्थामें, रात्रि-के जागनेमें दिनको शयन करना हित है ॥ ५५ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरवि-दत्तशास्त्रनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रथमस्थाने अन्नपानवर्गो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः २३

यहां प्रथमस्थान समाप्त हुआ ।

अथ द्वितीयस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि द्वितीयस्थानमुत्तमम् ॥
शुभाशुभानि स्वप्नानि स्वास्थ्यारिष्टानि मानुषे ॥ १ ॥ शृणु
पुत्र समासेन यथा वत्स प्रकाश्यते ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अब उत्तम द्वितीयस्थानको कहता हूँ । मनुष्योंके शुभ-
अशुभ, स्वप्न, स्वस्थपना, अरिष्ट ॥ १ ॥ इनको हे पुत्र ! विस्तारसे सुनो । जैसे हे वत्स !
प्रकाशित किया जाता है ॥ २ ॥

हारीत उवाच ॥ ज्ञात मया महाप्राज्ञ अन्नपानं तथोत्तमम् ॥
इदानीं ज्ञातुमिच्छामि रोगाणां रोगविज्ञताम् ॥ ३ ॥ कर्मजा
व्याधयो य च तान्वद त्वं महामते ॥ ४ ॥

हारीत बोले—हे महाप्राज्ञ ! अन्नपानकी विधि मैंने जानी । अब रोगवालोंके
रोगोंको जाननेकी इच्छा करता हूँ ॥ ३ ॥ हे महामते ! कर्मसे जो व्याधियां उपजती हैं
उन्हें आप कहें ॥ ४ ॥

आत्रेय उवाच ॥ कर्मजा व्याधयः सर्वे भवन्ति हि शरीरिणाम् ॥
सर्वे नरकरूपाः स्युः साध्यासाध्या भवन्त्यमी ॥ ५ ॥ अज्ञातं
यत्कृतं पाप पश्चात्कृच्छ्रं समाचरेत् ॥ प्रायश्चित्तबलेनापि साध्य-
रूपो भवेद्भूदः ॥ ६ ॥ क्रियते ज्ञातरूपेण यत्पश्चात्कृच्छ्रमाचरेत् ॥
प्रायश्चित्तेन प्रान्ते तु कष्टसाध्यो भवेद्भूदः ॥ ७ ॥ ब्रह्मघ्नगोघ्न-
धरणीपतिघातकश्च आरामतोयधरनाशकपारदाराः ॥ स्वाम्य-
ङ्गनागुरुवधूकुलजाभिगामी एते त्रयोदशविधाः प्रबला गदाश्च
॥ ८ ॥ पाण्डुः कुष्ठं राजयक्ष्मातिसारो मेहो मूत्रं चाश्मरी मूत्र-
कृच्छ्रम् ॥ शूलः श्वासः कासशोफव्रणाश्च दोषाश्चैते पापरूपा

नृणां स्युः॥९॥ ज्वरो जीर्णं तथा छर्दिभ्रममोहाग्निमान्द्यताः॥
यकृत्प्लीहाशःशोषाश्च एते चैवोपदूषकाः ॥ १० ॥ व्रणं शूलं
शिरःशूलं रक्तपित्तं तथोर्ध्वगम्॥एते रोगा महाप्राज्ञ अभिशा-
पाद्भवन्ति हि ॥११॥अन्येऽपि बहुधा रोगा जायन्ते दोषस-
म्भवाः ॥ अतो वक्ष्य समासेन शृणु त्वं च महामते ॥१२ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—शरीरधारियोंके कर्मसे उपजनेवाली सब व्याधियां हैं और सब दुःखरूप हैं साध्य और असाध्य होती हैं ॥९॥ विना जाने जो किये हुए पापके पीछे कृच्छ्र चांद्रायण करे, क्योंकि प्रायश्चित्तके बलसे वह पाप साध्य हो जाता है ॥६॥ जानके पाप करनेके पीछे कृच्छ्रचांद्रायण करनेसे कष्टसाध्य रोग हो जाता है ॥ ७ ॥ ब्राह्मणको मारनेवाला, गायको मारनेवाला, राजाको मारनेवाला और वाग तथा जलके स्थानको नाशनेवाला और पराई स्त्रीको अपनी स्त्री बनानेवाला और स्वामीकी भार्या, गुरुकी भार्या, अपने कुलमें उपजी ऐसी स्त्रियोंसे भोग करनेवाला ऐसे मनुष्योंके तरह प्रकारके रोग होते हैं ॥ ८ ॥ पांडु, कुष्ठ, राजरोग, अतीसार, प्रमेह, मूत्ररोग, पथरीरोग, मूत्रकृच्छ्र, शूल, श्वास, खांसी, शोभा, घाव ये पापरूपरोग उन मनुष्योंके उपजते हैं ॥ ९ ॥ और ज्वर, अजीर्ण छर्दि, भ्रम, मोह, मंदगति, यकृत्तुरोग, तिल्लीरोग, बवासीर, शोष ये उपरोग कहाते हैं ॥ १० ॥ घाव, शूल, शिरका शूल, शरीरके ऊपरले अंगोंमें प्राप्त हुआ रक्तपित्त ये रोग हे महाप्राज्ञ ! अभिशापसे होते हैं ॥ ११ ॥ अन्य भी बहुतसे रोग दोषोंसे उपजते हैं इसवास्ते विस्तारसे मैं कहूंगा । हे महामते तुम सुनो ॥ १२ ॥

अथ कर्मविपाक ।

ब्रह्मघ्नो जायते पाण्डुः कुष्टी गोवधकारकः॥राजघ्नो राजयक्ष्मी
स्यादतिसाय्योपघातकः ॥ १३ ॥ स्वाम्यङ्गनाभिगमने मेहा
रोगा भवन्ति हि॥गुरुजायाप्रसङ्गेन मूत्ररोगोऽश्मरीगदः ॥१४॥
स्वकुलजाप्रसङ्गाच्च जायते च भगंदरः॥शूली परोपतापी च पैशू-
न्याच्छ्वासकासिनः॥१५॥मार्गे विघ्नकरा ये तु जायन्ते पादरो-
गिणः ॥ अभिशापाद्व्रणोत्पत्तिर्यकृद्वापि प्रजायते ॥ १६ ॥
सुरालये जले चापि शकृद्दृष्टिं करोति यः॥गुदरोगा भवन्त्यस्य
पापरूपातिदारुणाः ॥१७॥ परतापिद्विजानां च जायन्ते हि

महाज्वराः॥परान्नविघ्नजननादजीर्णमपि जायते ॥१८॥ गरद-
 श्छर्दिरोगी स्यात्पादाष्टविभ्रमी तथा॥धूर्तोऽपस्माररोगी स्या-
 त्कदन्नदेऽग्निमान्द्यकम्॥१९॥यकृत्प्लीहो भवेद्रोगो ध्रूणपातकपा-
 तकात्॥व्रणं शूलं शिरःशूलं परतापोपकारणात्॥२०॥अपेयपा-
 नरतको रक्तपित्ती प्रजायते ॥ दावाग्निदायको यस्तु जायते च
 विसर्पवान्॥२१॥बहुवृक्षोपच्छेदी च जायते च बहुव्रणः ॥ पर-
 द्रव्यापहाराच्च जायतेग्रहणीगदः ॥२२॥ कुनखी स्वर्णस्तेयाच्च
 प्रसूतिस्तस्य जायते ।। रौप्यस्तेयाच्चित्रकुष्ठं ताम्रचौराद्विपा-
 दिका ॥२३॥ त्रिषुश्चौरः सिध्मलश्च मुखरोगी च सीसहत्॥वर्वरो
 लोहचौरः स्यात्क्षारचौरोऽतिमूत्रलः ॥२४॥ धृतचौरोऽन्त्ररोगी
 च तैलचौरोऽतिकण्डुकः॥एतैश्छिद्रैस्तु काणाक्षो वक्रोक्तो वक्र-
 लोचनः ॥२५॥ दोषवान्स्याच्छयावदन्तो दुष्टवाक्कुष्ठदूषणः ॥
 रसनाशाजिह्वारोगी गोत्रहा लूतिकाव्रणी॥२६॥एते चैव महा-
 दोषा अतो वक्ष्यामि निष्कृतिम् ॥कृच्छ्रेण येन सिध्यन्ति पाप-
 रूपा इमे गदाः ॥ २७ ॥

ब्राह्मणको मारनेवाला पांडुरोगी होता है, गायको मारनेवाला कुष्टी होता है, राजाको मारने-
 वाला राजरोगी होता है, मनुष्यको मारनेमें सलाह देनेवाला अतीसाररोगी होता है ॥१३॥
 स्वामीकी स्त्रीसे भोग करनेसे प्रमेहरोग उपजता है और गुरुकी स्त्रीसे भोग करनेमें मूत्ररोग और
 पथरी रोग उपजता है॥१४॥ अपने कुलसे उपजी स्त्रीके संग भोग करनेसे भगंदर रोग उपजता
 है, पराये सुखको देख दुःख पानेवालेको शूलरोग होता है, चुगली करनेसे श्वासरोग और खांसी
 उपजती है ॥१५॥ मार्गमें विघ्न करनेवालोंके पैरोंमें रोग उपजता है, अभिशापसे घावकी उत्पत्ति
 अथवा यकृत् रोग उपजता है ॥ १६ ॥ देवताओंके स्थानमें और पानीमें जो विष्टाको गेरता है
 उसके पापरूपी और दारुण ऐसे गुदाके रोग उपजते हैं ॥१७॥ ब्राह्मणको दुःख देनेसे महा-
 ज्वर उपजता है और पराये भोजनमें विघ्नको करनेसे अजीर्ण रोग उपजता है ॥ १८॥ विषको
 देनेवालेके छर्दिरोग उपजता है अथवा वह रोगी घुटनोंसे आठ दिशातक भ्रमनेवाला होता है,
 धूर्त मनुष्यके मृगीरोग उपजता है और कुत्सित अन्नको देनेवाला मन्दाग्निसे
 पीडित होता है ॥ १९ ॥ गर्भको गिरानेवाला यकृत् रोगसे और तिल्लीरोगसे
 पीडित होता है, ॥ दूसरेको देख दुःख पानेसे घाव, शूल, शिरका शूल ये उपजते हैं ॥२०॥
 नहीं पीनेके योग्य चीजको पीनेवाला रक्तपित्तसे पीडित होता है और वनमें अग्निको

लगानेवाला विसर्प रोगी हो जाता है ॥ २१ ॥ बहुतसे वृक्षोंको छेदनेवाला बहुत धावोंसे पी-
डित होता है और पराये द्रव्यको हरनेसे ग्रहणी रोग उपजता है ॥ २२ ॥ सोनेकी चोरी कर-
नेसे कुत्सित नखोंवाला हो जाता है, चांदीको चोरनेसे चित्रकुष्ठ उपजता है, तांबेको चुरानेसे वि-
पादिका कुष्ठ उपजता है ॥ २३ ॥ रांगको चुरानेसे संपरोग होता है, सीसाके चुरानेसे मुखरोग
उपजता है, लोहाको चुरानेसे वर्वर संज्ञक रोगको प्राप्त होता है, क्षारको चोरनेवालेको अति-
मूत्ररोग उपजता है ॥ २४ ॥ घृतको चोरनेसे आंतरोग होता है, तेलको चोरनेसे खाजरोग उप-
जता है, दूसरोंमें छिद्रको काढ़नेवाला नेत्रोंसे काणा होता है और टेढ़ा बोलनेवाला ठेढ़े नेत्रों-
वाला होता है ॥ २५ ॥ दोषवालेके काले दंत होते हैं, दुष्टकर्मको करनेवाला कुष्ठरोगी होता है,
रसको नाशनेवाला जीमरोगी होता है, गोत्रके मनुष्योंको नाशनेवाला भूत और धावसे पीडित
होता है ॥ २६ ॥ ये सब महादोष हैं इसलिये इनको निष्कृतिको कहता हूँ जिस कृच्छ्रसे ये
पापरूपी रोग सिद्ध होते हैं ॥ २७ ॥

अथ पाप दोषोंका प्रतिकार ।

गोदानं भूमिदानं च स्वर्णदानं सुरार्चनम् ॥ कृत्वा पश्चात्प्रती-
कारं कुर्व्यात्पाण्डूपशान्तये ॥ २८ ॥ महापापेषु सर्वस्वं तदर्द्ध-
मुपदोषजे ॥ आत्रेयादशषष्ठांशात्कल्प्यं व्याधिवलाबलम् ॥ २९ ॥
नवषष्टिकृतं कर्म कुष्ठरोगोपशान्तये ॥ गोभूहिरण्यदानं च तथा
मिष्टान्नभोजनम् ॥ ३० ॥ चतुर्विधं दानमिदं दत्त्वा कुर्व्यात्प्र-
तिक्रियाम् ॥ कदाचिदपि सिध्येत आयुषश्च बलक्रियाम् ॥ ३१ ॥
मेहे सुवर्णदानं च शूले श्वासे भगन्दरे ॥ आश्वानडुहदानेन श्वास-
कांसाद्विमुच्यते ॥ ३२ ॥ ज्वरे चेश्वरपूजा च रुद्रजाप्यं समाचरेत् ॥
अतिपानान्नदानं च शस्त्रदानं भ्रमातुरे ॥ ३३ ॥ अग्निहोमं
चाग्निमान्द्ये कन्यादानं च गुल्मके ॥ मेहाश्मरीविनाशाय
लवणं च प्रदीयते ॥ ३४ ॥ बहुभोजनदानेन शूलरोगाद्विमु-
च्यते ॥ महाज्वरे शान्तिकं च सहस्रं गण्डुकं शिवम् ॥ ३५ ॥
स्नापयेत्तेन सिद्धिः स्याज्ज्वररोगाद्विमुच्यते ॥ घृतमधुप्रदानेन
रक्तपित्तं प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥ वनस्पतिसिञ्चनेन विसर्पात्परि-
मुच्यते ॥ विटपिसिञ्चनेनाथ नात्र याति बहुव्रणः ॥ ३७ ॥
चतुर्विधेन दानेन साध्यः स्याद्ब्रह्मणीगदः ॥ सुवर्णदानात्कुन्खी

श्यावदन्तः सुखी भवेत् ॥ ३८ ॥ रौप्यदानाच्चित्रकुष्ठं साध्यं
वापि प्रदिश्यते ॥ सिध्मले त्रपुदानं च बर्बरे लोहदानकम् ॥ ३९ ॥
सुखव्रणे नागदानं गोदानं बहुपुन्नके ॥ नत्ररोगे घृतं दद्यात्सुगन्धं
नासिकागदे ॥ ४० ॥ तैलदानं च कण्डूके रसदानं च जिह्वके ॥
श्यावदन्तेन देवानां सत्कृतिः प्रविधीयते ॥ ओष्ठरोगेऽपि तद्वच्च
लूतारोगे ददेत गाः ॥ ४१ ॥

गोदान, पृथिवीदान, सोनादान, देवताओंकी पूजा इनको करके पीछे पांडुरोगकी शांतिके लिये
चिकित्साको करे ॥ २८ ॥ महापापोंमें सर्वस्वका दान करे और उपदोषमें घरके धनसे आधा
दान करे । आत्रेयके मतसे व्याधिके बल और अबलको देख घरके धनसे सोलहवां हिस्सा दानको
करे ॥ २९ ॥ कुष्ठरोगकी शान्तिके लिये उनहत्तर ६९ प्रकारका कर्म करना लिखा है परंतु
गाय भूमि सोनेका दान और मिष्टान्नका भोजन ॥ ३० ॥ इन चार प्रकारके दानोंको देकर
पीछे कुष्ठकी चिकित्सा करनी, क्योंकि आयुकी शेषतासे कदाचित् चिकित्सा सिद्ध भी हो जाती है
॥ ३१ ॥ प्रमेह, श्वासरोग, खांसी, भगंदर इन रोगोंमें सोनेका दान करना, घोड़ा और बैलके दानको
करनेसे मनुष्य श्वासरोग और खांसीसे छुट जाता है ॥ ३२ ॥ ज्वररोगमें महादेवकी पूजा और महा-
देवके स्तोत्रका पाठ करावे और भ्रमररोगमें पानीका और अन्नका दान श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ मंदाग्नि
में अग्निमें होम करे, गुल्मरोगमें कन्याका दान करे और प्रमेह तथा पथरीरोगको
दूर करनेके लिये नमकका दान करना ॥ ३४ ॥ बहुतसे भोजनका दान कर-
नेसे मनुष्य शूलरोगसे मुक्त होता है, महाज्वरमें शान्तिकर्म करावे और हजारधारावाले कलशसे
शिवको स्नान करावे ॥ ३५ ॥ इससे सिद्धि होती है और मंहाज्वर दूर होता है, घृत और
शहदके दानसे रक्तपित्त दूर होता है ॥ ३६ ॥ वनस्पतिको सींचनेसे विसर्परोग दूर होता है,
वृक्षको सींचनेसे घावरोग दूर होता है ॥ ३७ ॥ चार प्रकारके दानसे ग्रहणी रोग साध्य हो जा-
ता है, सोनेके दानसे कुनखी और काले दांतोंवाला सुखी होता है ॥ ३८ ॥ चांदीके दानसे
चित्रकुष्ठ साध्य कहा है, सर्पिरोगमें रंगका दान और बर्बररोगमें लोहेका दान श्रेष्ठ है
॥ ३९ ॥ मुखके घावमें हस्तीका दान हित है और पापडीरोगमें गौका दान हित है, नेत्ररोगमें
घृतको देवे, नासिकाके रोगमें सुगंधका दान करना ॥ ४० ॥ खाजमें तैलका दान और जीभके
रोगमें रसका दान करना, काले दांतोंके रोगमें देवताओंका सत्कार करना और ओष्ठरोगमें भी
यही विधि है और लूतारोगमें गौका दान देना ॥ ४१ ॥

अथ अन्यान्य रोगोंका कारण ।

अन्यांश्च कथयिष्यामि मनुष्याणां शरीरान् ॥ लजितः परनि-
न्दायां परतर्केण काणगः ॥ ४२ ॥ खरहा स्याद्वक्रनासः पक्षा-

घातेन पक्षहा ॥ वामनः स्वप्रशंसायां परद्वेष्टातिपिङ्गलः ४३ ॥
 परस्य कृत्यकर्त्ता च जायते विकृतात्मकः ॥ एते महागदाश्चान्ये
 जायन्ते पापसम्भवाः ॥ ४४ ॥ यदि वात्र न सिध्येत्तु परभावो
 भवेन्न च ॥ अतो हि प्रायश्चित्तं तु कारयेद्भिषजां वरः ॥ ४५ ॥
 भूयो जन्मान्तरे यावत्पापं रोग्यथ भुञ्जति ॥ प्रायश्चित्ते कृते
 वापि न पुनर्जायते भवे ॥ ४६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतो-
 त्तरे द्वितीयस्थाने पापदोषप्रतीकारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

मनुष्योंके शरीरमें प्राप्त हुए अन्य रोगोंको भी कहूँगा । परायी निंदा करनेवाला मनुष्य लाज-
 वाला होता है, दूसरेको तर्क करनेवाला मनुष्य काणा होता है ॥ ४२ ॥ गधाको मारनेवाला टेढ़ी
 नासिकासे संयुक्त होता है, दूसरेके पक्षको काटनेवाला मनुष्य अर्धांगरोगसे पीड़ित होता है,
 अपनी प्रशंसा करनेमें मनुष्य वामनाकी योनिको प्राप्त होता है, दूसरोंसे वैर करनेवाला मनुष्य
 अतिविंग शरीरवाला होता है ॥ ४३ ॥ दूसरेके कृत्यको करनेवाला मनुष्य विकृत शरीरवाला
 होता है ये सब और भी अन्य महारोग पापसे उपजनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ यदि रोग सिद्ध न होवें
 तो वैद्यवर रोगीको प्रायश्चित्त करावे ॥ ४५ ॥ किये हुए पापको दूसरे जन्ममें भी रोगी भोगता
 है परन्तु प्रायश्चित्तके करनेमें फिर वह पापरूपी रोग नहीं उपजता है ॥ ४६ ॥

इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशाह्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
 द्वितीयस्थाने पापदोषप्रतीकारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ स्वप्नाध्यायका वर्णन ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र समासेन यथा वत्स प्रकाशयते ॥

तथारिष्टपरिज्ञानं भेषजं संप्रवक्ष्यते ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! विस्तारसे जैसे प्रकाशित किया जाता है वैसे ही आरि-
 ष्टके परिज्ञानको और औषधको सुनो ॥ १ ॥

अथ वर्ज्यं स्वप्न ।

वातिकः पैत्तिकश्च भयाद्धीनबलादपि ॥

मूत्रान्विष्टे सपित्ते च षट्स्वप्नानि च वर्जयेत् ॥ २ ॥

वात, पित्त, भय, हीनबल, मूत्रकी शंका, पित्तका संयोग इनके संयोगसे उपजे ये छः स्वप्न वर्जित हैं ॥ २ ॥

अथ कालसे स्वप्नफल ।

संवत्सरेण फलदो हि भवेन्निशायां स्वप्नोऽशुभस्य प्रहरे च शुभस्य वाद्ये ॥ स्याद्रत्सराद्धिमतियाममथ द्वितीये मासत्रयेण फलदो भवति तृतीये ॥ ३ ॥ निशावसाने प्रवदन्ति किञ्चिद्-शाहकः स्यात्फलदो मनुष्ये ॥ वर्षादिने स्यात्तमुशन्ति शान्ताः षाण्मासिको मध्यदिने प्रदिष्टः ॥ ४ ॥

रात्रिके प्रथम पहरमें आया स्वप्न एक वर्षमें शुभ फलको देता है और दूसरे पहरमें आया स्वप्न छः महीनोंमें फलको देता है और तीसरे पहरमें आया स्वप्न तीन महीनोंमें फलको देता है ॥ ३ ॥ रात्रिके अन्तमें आया स्वप्न दश दिनमें फलको देता है और वर्षा में दुपहरिके समय आया स्वप्न छः महीनोंमें फलको देता है ॥ ४ ॥

अथ स्वप्नमें शुभ द्रव्य ।

स्वप्नेषु शुभ्राणि शुभानि धीराः सर्वाणि चेमानि विवर्जयित्वा ॥ कार्पासभस्मास्थिकपालशूलं कुर्यान्नराणां विषदं रुजं वा ॥ ५ ॥

सब श्वेत पदार्थ स्वप्नमें दीखे शुभ कहे हैं, कपास, भस्म, हड्डी, खोपरी छोड़कर इनका दर्शन स्वप्नमें होवे तो मनुष्योंको दुःख अथवा रोग उपजता है ॥ ५ ॥

अथ अशुभद्रव्य ।

सर्वाणि कृष्णानि विनिन्दितानि स्वप्ने नराणां विषदं रुजं वा ॥ कुर्वन्ति चैतानि हि वर्जयित्वा गोवाजिराजद्विजहस्तिमत्स्यान् ॥ ६ ॥

और स्वप्नमें सब प्रकारकी काली चीज निन्दित है, जो स्वप्नमें काली चीज दीख जावे तो सिवाय इनके काली गौ, बौडा, राजा ब्राह्मण, हाथी और मत्स्य मनुष्योंको दुःख अथवा रोग उपजता है ॥ ६ ॥

अथ शुभ स्वप्नोंका वर्णन ।

सुकुरकुसुमशृङ्गारातपत्रं ध्वजं वा दधि फलमथ वस्त्रं चान्नताम्बूलवस्त्रम् । कमलकलशशंखं भूषणं काञ्चनस्य भवति सकलसंप-च्छेयसे रोगिणां च ॥ ७ ॥

शीशा, फूल, शृंगार, छत्र, ध्वजा, दही, फल, वस्त्र, अन्न, नागरपान, कमल, कलश, शंख, सोनेका गहना इनको स्वप्नमें देखना सब प्रकारका सुख और रोगियोंको कल्याण देता है ॥ ७ ॥

अथ शुभ स्वप्न ।

दिनकरनिशिनाथं मण्डलं तारकस्य विकचकमलकुञ्जैः पूर्णप-
द्माकरं वा ॥ तरति सलिलराशिप्रौढनद्याश्च पारं धनसुखविभ-
वातिर्व्याधिनां रोगमुक्तिः ॥ ८ ॥ देवो द्विजो वा पितरो नृपो
वा स्वप्नेषु वाक्यं वदते यथैव ॥ तथैव नान्यच्च भवेन्मनुष्ये
यद्यस्य सौख्यं विपदो रुजो वा ॥ ९ ॥ गोवाजिकुञ्जरनृपाः
सुमनः प्रशस्तं स्वप्नेषु पश्यति नरः सरुजः सुखाय ॥ रोगान्वि-
तश्च रुजनाशनसम्भवाय बद्धोऽपि वै सपदि बन्धविमोचनाय ॥
॥ १० ॥ यो भूषणं पश्यति मन्दिरं वा कन्यां दधि मीनकु-
मारकं वा ॥ सपुष्पवल्लीफलितं द्रुमं वा स्वस्थे धनातिं रुजना-
शनाय ॥ ११ ॥ स्वप्ने पयःपानमतिप्रशस्तं पानं सुराया अज-
भोजनं वा ॥ घृतं यवागूः कृसरोदनं वा क्षैरेयिकं भोजनकं सुखाय
॥ १२ ॥ सितो भुजङ्गो दर्शति कराग्रे नरस्य सुप्तस्य शरीरके-
षु ॥ पुत्रस्य लाभं वदते धनं वा नाशं विदध्यादचिराद्गुजां वा
॥ १३ ॥ सश्वेतवस्त्रां रमणीं सुरम्यां स्वप्ने समालिङ्गति यो
मनुष्यः ॥ तस्य प्रकर्षेण सुखं श्रियः स्यात्सुपुत्रलाभश्च रुजां
विनाशः ॥ १४ ॥ यो धान्यपुञ्जं तिलतण्डुलानां गोधूमसिद्धा-
थयवादिकानाम् ॥ धान्यातिरस्यामयनाशहेतुः स्वप्नेषु शीघ्रं
मनुजे सुखाय ॥ १५ ॥ सफले धनसम्पत्तिर्दीप्ते रोगविनाशनम् ॥
सुखं च पुष्पिते ज्ञेयं सम्पूर्णे वाञ्छितं फलम् ॥ १६ ॥

सूर्य, चंद्रमा, तारागण इनके मंडलको देखे और खिले हुए कमलोंके समूहसे
पूरित हुए तालावको देखे और पानीके समूहसे भरी हुई नदीको तरे और नदीसे पार
हो तो धन तथा सुखकी प्राप्ति हो और रोगको गया जानना ॥ ८ ॥ देवता, पंडित, पितर,
राजा, ये सब जैसे स्वप्नमें वाक्यको कहदेवें तैसे ही मनुष्यको होता है चाहे सुख हो, चाहे
दुःख हो या रोग हो ॥ ९ ॥ गौ, घोड़ा, हस्ती, राजा, फूल, इनके जो मनुष्य स्वप्नमें
देखता है उस रोगीको सुख होता है और इस स्वप्नको देखनेसे बंधमें प्राप्त हुआ मनुष्य
शीघ्र छूट जाता है ॥ १० ॥ जो मनुष्य स्वप्नमें गहनाको और मंदिरको देखता है अथवा

कन्या, दही, मछली, बालक इनको देखता है अथवा फूल और बेलसे फलित हुए वृक्ष-
को देखे ये स्वप्न स्वस्थ मनुष्यको आवें तो धनकी प्राप्ति होगी और रोगीमनुष्यके रोगका नाश
होवे ॥ ११ ॥ स्वप्नमें दूधका पीना अतिश्रेष्ठ है, मदिराका पीना अथवा बकराके मांसका
भोजन, घृत, गुडयाणी, खीचड़ी, चावल, दूधका भोजन इनको स्वप्नमें देखे तो सुखकी
प्राप्ति होवे ॥ १२ ॥ मनुष्यके दाहिने हाथके अग्रभागको अथवा शरीरको सपेद सर्प सोते-
हुए डसता है ऐसे स्वप्नसे पुत्रका और धनका लाभ होता है अथवा शीघ्र ही रोगका नाश
होता है ॥ १३ ॥ सपेद चट्टीवाली और रमणीक और सुन्दर ऐसी स्त्रीसे जो मनुष्य
मिलाप करता है उसको अत्यंत स्त्रीसुख और धनकी प्राप्ति होती है और पुत्रका लाभ
और रोगोंका नाश होता है ॥ १४ ॥ जो मनुष्य तिल, चावल, गेहूं, सरसों, जव, अन्न-
का समूह स्वप्नमें देखता है, उसको अन्नकी प्राप्ति और रोगका नाश होता है और
सुख भी मिलता है ॥ १५ ॥ जो मनुष्य स्वप्नमें फल सहित वृक्षको देखे, तो उसको
धनसंपत्ति प्राप्त होती है और जलता हुआ देखे तो रोगका नाश होता है, पुष्पकारिके युक्त
वृक्षको देखे तो सुख होता है और पत्र, पुष्प, फल और शाखा आदिकोंकारिके युक्त
वृक्षको देखे तो मनवांछित फल मिलता है ॥ १६ ॥

अथःअशुभ स्वप्नोंका वर्णन ।

काकैः कंकैः करभभुजगैः सूकरोलूकगृध्रैर्जम्बूकैर्वा वृकस्वरमहि-
ष्यातिरक्षैः श्वमिश्र ॥ व्याघ्रैर्गर्हैर्मकरकपिभिर्भक्ष्यमाणं स्व-
कायं पश्येद्योऽसौ भजति नितरां हानिमापद्रुजं वा ॥ १७ ॥
योऽभ्यञ्जितं स्वं मनुजः प्रपश्येत्सर्पिर्वसातैलविशषणेन ॥ शीघ्रं
रुजाप्तिर्भवतीह तस्य वदन्ति धीरा निपुणं विधेयम् ॥ १८ ॥
व्याघ्रोष्ट्रस्वरसंयुक्ते रथे सौरभसंयुते ॥ उह्यमानो दिशं याम्यां
गच्छेच्च स मूर्तिं भजेत् ॥ १९ ॥ रक्तवस्त्रां कृष्णवस्त्रां मुक्तकेशां
विसर्पिणीम् ॥ याम्यां स्थितां रुदन्तीं वा गायन्तीमथ पश्यति
॥ २० ॥ अथाह्वयति संक्रुद्धां समालिङ्गति चर्वति ॥ यः पश्य-
ति सुखी स स्याद्वाधितो मृत्युमृच्छति ॥ २१ ॥ यस्य स्वप्ने च
निष्कुण्ठदन्तपातः प्रदृश्यते ॥ शीय्यन्ते केशरोमाणि स सुखी
चापदं व्रजेत् ॥ २२ ॥ यस्य खट्वा प्रभज्येत तोमरादिप्रहारतः ॥
रक्तं च दृश्यते देहे स स्वस्थो व्याधिमृच्छति ॥ २३ ॥ शून्यागारं

यो मनुष्यः प्रपश्येत्प्रासादं वा देवहीनं च पश्येत् ॥ तापश्चान्द्रे
 शुष्पितानां द्रुमाणां तस्यानिष्टं मृत्युमाशु प्रपद्येत् ॥ २४ ॥ विप-
 श्येन्नरो भिन्नदेवं घटं वाथवा भग्नशाखं तरुं मन्दिरं वा ॥ विशीर्णं
 विपश्येत्सुखी व्याधिपुञ्जं प्रपद्येद्भुजाग्रस्त आशु म्रियेत ॥ २५ ॥
 यस्याह्वयन्ति पितरो दिशि दक्षिणस्यामाश्रित्य चाशु तनुते
 मनुजस्य मृत्युम् ॥ यश्चैव शूललकुटोद्यतबाणपाणीनाहूयते
 स मृतिमाशु लभेन्मनुष्यः ॥ २६ ॥ कार्पासमस्मास्थिकपालशूलं
 चक्रं सपाशं च विलोकयेद्यः ॥ तस्यापदो रोगघनक्षयौ
 वा रोगी मृतिं वा तनुतेऽतिकष्टम् ॥ २७ ॥ इति प्रदिष्टानि
 शुभानि तानि निशासु सुप्ते मनुजे विशेषात् ॥ तथाशु विज्ञाय
 महामते त्वं गदस्य नाशाय विधेहि मन्त्रम् ॥ २८ ॥ स्नानं
 च दानं च सुरार्चनं च होमं तथा भाग्यविधानतश्च ॥ दुःस्वप्न-
 मेषु विनाशमेति शुभं च सौख्यं च तनोति शीघ्रम् ॥ २९ ॥
 इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने स्वप्नाध्यायो नाम
 द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

काक, कंक, ऊट, सर्प, सूकर, उल्लू, गीध, गीदड़, भेडिया, गधा, भैंसा, तिरखू, कुत्ता,
 व्याघ्र, ग्राह, मच्छ, वानर इनसे भक्षित हुए अपने शरीरको देखे उसको हानि, दुःख, रोग
 इनकी प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य अपने शरीरको घृत, वसा, तेल आदिसे भीजा-
 हुआ देखे उसको रोगकी प्राप्ति शीघ्र होती है, ऐसा वैद्योंने कहा है । वहां अरिष्टनाशकशांतिवर्ग-
 रह करे ॥ १८ ॥ सिंह, ऊट, गन्ना बैल, इनसे जुड़े हुए स्थानों में बैठके जो मनुष्य दक्षिणदिशाको
 गमन करे उसकी मृत्यु जानना ॥ १९ ॥ रक्तवस्त्रोंको पहननेवाली और कृष्णवस्त्रोंको पहनने-
 वाली और छूटे हुए बालोंवाली और दौड़ती हुई और दक्षिणदिशामें स्थित हुई और रोती हुई
 ऐसी स्त्रीको जो देखता है ॥ २० ॥ और क्रोधको प्राप्त हुई उस स्त्रीको बुलाता है अथवा
 उससे मिलता है ऐसा स्वप्न सुखीको आवे तो रोगकी उत्पत्ति होती है और रोगीको आवे
 तो वह रोगी मरजाता है ॥ २१ ॥ स्वप्नमें जिस सुखी मनुष्यके दांत, बाल, रोम ये गिर
 पड़ें उसके रोगकी उत्पत्ति होती है ॥ २२ ॥ जिस सुखी मनुष्यकी स्वप्नमें शय्या टूट जावे
 और भालाआदि शस्त्रके प्रहारसे देहमें रक्त दीखे वह मनुष्य व्याधिको प्राप्त होता है ॥ २३ ॥
 अन्य हुए स्थानको और देवतासे रहित मंदिरको जो स्वप्नमें देखे और जो स्वप्नमें चंद्रमामें
 तापको और झूले हुए वृक्षोंमें तापको देखे उस मनुष्यकी शीघ्र मृत्यु कही है ॥ २४ ॥ जो

मनुष्य स्वप्नमें देवतासे रहित मंदिरको और पानीसे रहित कलशको और टूटी हुई शाखाओं-
वाले वृक्षको देखे अथवा स्थानके नाशको देखे उस रोगी मनुष्यकी मृत्यु हो जाय और सुखी
मनुष्य रोगको प्राप्त होवे ॥ २५ ॥ स्वप्नमें जिसको दक्षिणदिशामें आश्रितहुए पितर बुलाते हों
तब उस मनुष्यकी मृत्यु जानो और जिसको स्वप्नमें शूल, लाठी, फांसी इनको हाथमें
धारनेवाला मनुष्य बुलाता है उसकी शीघ्र मृत्यु जाननी ॥ २६ ॥ जो स्वप्नमें कपास,
हड्डी, भस्म, खोपरी, शूल, चक्र, फांसी, इनको देखे उस मनुष्यके रोग, दुःख, धनका
नाश ये उपजते हैं और ऐसा स्वप्न रोगीको आवे तो मृत्यु अथवा अत्यंत कष्ट होता है ॥ २७ ॥
रात्रिमें सोते हुए मनुष्यको विशेषकरके ऐसे अशुभ स्वप्न भी कहे हैं. हे महामते ! तैसे ही जानके
रोगके नाशके लिये मंत्रविधिको करना उचित है ॥ २८ ॥ स्नान, दान, देवताकी पूजा,
होम इनसे भाग्यके विधान करके दुःस्वप्न नाशको प्राप्त होता है शुभ और सुख शीघ्र प्राप्त
होता है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रनुवादितहारितसंहिता-
भाषाटीकायां द्वितीयस्थाने स्वप्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ स्वास्थ्यारिष्टम् ।

आत्रेय उवाच ।

शृणु पुत्र महाप्राज्ञ सर्वदेहार्थसाधकम् ॥

वैद्यशास्त्रस्य सारं यत्स्वास्थ्यारिष्टं च मानवे ॥ १ ॥

स्वस्थमनुष्यको अरिष्टवर्णन-आत्रेयजी कहते हैं-हे महाप्राज्ञ ! हे
पुत्र ! संपूर्ण देहके प्रयोजनको साधनेवाला और वैद्यकशास्त्रका सार ऐसे स्वस्थ मनुष्यके
अरिष्टको सुनो ॥ १ ॥

अथ ध्रुवादिके न देखनेका अरिष्ट ।

यो न पश्येद् ध्रुवं सम्यक्स्वर्णं वा मनुजो बुधः ॥

तस्य षण्मासमध्ये तु मृतिश्चैवोपपद्यते ॥ २ ॥

जो मनुष्य ध्रुवताराको अथवा ध्रुव अर्थात् नासिकाके अग्रभागको और सोनाको अच्छी-
तरह नहीं देखता है, उसका छः महीनोंके मध्यमें मृत्यु होता है ॥ २ ॥

अथ द्वितीयाचंद्रके अदर्शनका अरिष्ट ।

यो वै द्वितीयां हिमधामलेखां नरो न पश्येद्विजहानिरस्य ॥

मासत्रयं प्राप्य शरीरमाशु जीवो व्रजेत्तस्य यमस्य लोकम् ॥ ३ ॥

जो मनुष्य किरणोंसे व्याप्त हुआ द्वितीयाका चंद्र नहीं देखे और जिसके दंत गिर पड़े उस मनुष्यकी तीन महीनोंमें मृत्यु जानना ॥ ३ ॥

अथ कर्णघोष न सुननेका अरिष्ट ।

यः कर्णघोषं न शृणोति दत्ता मृताश्च यूकाः प्रपतन्ति लाभात् ॥

यो वैपरीत्यं विशृणोति शब्दं मासद्वयं प्राप्य जहाति जीवम् ॥ ४ ॥

जो मनुष्य कानमें शब्दको न सुने और गर्वित हुई और मृत हुई जूस और लीख शरीरमें पड़ जावे और जो विपरीतपनेसे शब्दको विशेष करके सुने वह दो महीनोंमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

अथ मुखश्वासादिकका अरिष्ट ।

यः स्वस्थदेहः श्वसते सुखेन नेत्रेऽरुणे श्यावमथैव वक्रम् ॥

जिह्वा विशीर्णा दशनाश्च कृष्णाः स्वस्थोऽपि शीघ्रं यमलोकगन्ता ॥ ५ ॥

जो स्वस्थ शरीरवाला मनुष्य मुख करके श्वासको लेवे और लाल नेत्र हो जावे और काला-मुख हो जावे और फटी हुई जीभ हो जावे और काले दंत हो जावे ऐसा स्वस्थ भी मनुष्य मृत्युको शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ प्रभातमें मस्तकशूलका अरिष्ट ।

यस्य प्रभाते च शिरोव्यथा स्याद्दीपे परीवेषमवेक्षमाणः ॥

विपश्यते यः पटलं च रेणोः स वै मृतिं याति न दीर्घमायुः ॥ ६ ॥

प्रभातमें जिसके शिरमें पीड़ा हो और जो दीपककी ज्योतिमें मंडलको देखे और जो आकाशमें धूलीके समूहको विशेष करके देखे वह शीघ्र मरजाता है, दीर्घायु नहीं पाता ॥ ६ ॥

अथ सूर्यविंबादिकके दर्शनका अरिष्ट ।

यः सूर्यविम्बे शशिनं प्रपश्येद्विना परीवेषमवेक्षमाणः ॥

धूमावृतं वा रविमण्डलं च प्रपश्यते शीघ्रमृतिं स गन्ता ॥ ७ ॥

जो सूर्यके विंबमें चंद्रमाको देखे और विना चंद्र हुए ही मंडलको देखे और धूमोंसे आच्छादित हुआ सूर्यका मंडल दीखे उसकी शीघ्र मृत्यु जानना ॥ ७ ॥

अथ इंद्रधनुष देखनेका अरिष्ट ।

स्वच्छे निरभ्रे गगने च पश्येद्यः शक्रचापं विदिशादिशासु ॥

तथैव विद्यान्नयनाग्रतो यः स शीघ्रमेव यमलोकगन्ता ॥ ८ ॥

जो स्वस्थ और बादलोंसे रहित हुए आकाशमें और दिशा तथा दक्षिणमें इंद्रके धनुषको देखे अथवा नेत्रोंके आगे इंद्रके धनुषको देखे वह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

१-विदिशाया उज्जयिन्या दिशास्वर्यादक्षिणदिशासु । २-अत्राव्यानकीवृत्तम्, परंतु तुर्यपादे तगणस्याभा-
वोऽस्ति वर्णस्यादीर्घत्वादतो वृत्तच्छेदः ।

अथ विपरीतदेखने सुनेनका अरिष्ट ।

यो नेत्रे मीलितेऽपि द्युतिमथ चपलां पश्यते यः पुरस्तात्कर्णे
रन्ध्रं निरुध्याद्ध्वनिमथ मनुजो न शृणोति कथञ्चित् ॥ तित्ता-
दीनां रसानां कथमपि रसनास्वादमात्रं न वेत्ति रौद्रं वैवस्व-
तस्य प्रतिगमनमथो पश्यते मानुषश्च ॥ ९ ॥

जो नेत्रोंके मूंदनेपर भी चपल ज्योतिको आगे देखता है, कानके छेद भूँदकर जो अनहद
नाद नहीं सुनता, कड़ुवा आदि रस जिसे नहीं समझ पड़ते वह मनुष्य भयंकर यमराजकी ओर
अपनेको जाता हुआ समझे ॥ ९ ॥

अथ शरीरके स्पर्शसे अरिष्टकथन ।

यस्यात्पुष्पं शरीरं शिशिरमथ मनुजस्य यस्याविलं च शीतं
नो चेति यस्य हिमजलसिकते रोमहर्षो न यस्य ॥ दण्डाघातेन
राजी न भवति स पुनः श्राद्धदेवस्य लोके लोकानां दर्शनाय
हुतमतिरुचिरां स्वस्थतां न प्रयाति ॥ १० ॥

जिस मनुष्यका शरीर अतिशय गरम हो और तुरंत ही ठंडा और धूमिल हो जाय, जो
पुरुष ठंडीको और गर्मीको जान सकता नहीं, जिस मनुष्यके शरीरको शीतल जलके बिन्दु-
ओंका या ठंढेबाछरेतके स्पर्श होनेसे रोमांच नहीं होता और दंड (वेत) मारनेसे रेखा न
हो तो वह मनुष्य यमराजके लोकको देखनेके लिये जल्दी करता है. और स्वस्थताको वह
पुरुष प्राप्त नहीं होता है ॥ १० ॥

अथ प्रतिबिंब न देखनेसे अरिष्ट ।

तैले जले दर्पणके धृते वा परस्य नेत्रे प्रतिबिम्बमात्मनः ॥
पश्येन्न योऽसौ यमलोकगन्ता जानीहि तं जीवविहीनमेव ॥ ११ ॥

इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने स्वास्थ्यारिष्टं
नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य तेल, पानी, शीशा, दूसरोंके नेत्र, इनमें अपने प्रतिबिंबको नहीं देखता है
उसकी मृत्यु जाननी ॥ ११ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रयनुवादितहा-
रीतसंहिताभाषाटीकायां स्वास्थ्यारिष्टं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुथाऽध्यायः



अथ व्याध्यरिष्टका लक्षण ।

आत्रेय उवाच॥उपद्रवैश्च ये पुष्टा व्याधयो यान्ति वाय्यताम्॥

रसायनादिना वत्स तान्मदेकमनाः शृणु ॥ १ ॥

उपद्रवोंसे युक्त हुए रोग रसायन आदिसे निवारण किये जाते हैं । हे पुत्र ! उन रोगोंको एकमन होके सुनो ॥ १ ॥

अथ अष्ट महाव्याधियोंका नाम ।

वातव्याधिः प्रमेहश्च कुष्ठमशौं भगन्दरम्॥अश्मरी मूढगर्भश्च
तथा चोदरमष्टमम् ॥ २ ॥ अष्टावेते प्रकृत्यैव दुश्चिकित्स्या
महागदाः ॥ ३ ॥

वातव्याधि, प्रमेह, कुष्ठ, वचासीर, भगंदर, पथरी, मूढगर्भ, आठवाँ उदररोग ॥ २ ॥
ये आठों प्रकृति करके महारोग दुश्चिकित्स्य हैं ॥ ३ ॥

अथ आठ महारोगोंके उपद्रव ।

प्राणमांसक्षयश्वासतृष्णाशोषमिज्वरैः॥मूर्च्छातिसारहिक्काभिः
पुनरेतैरुपद्रुताः ॥ ४ ॥ वर्जनीया विशेषेण भिषजा सिद्धि-
मिच्छता ॥ ५ ॥

बलक्षय, मांसक्षय, श्वासरोग, तृष्णा, शोष, छर्दि, ज्वर, मूर्छा, अतिसार, हिक्का इन
उपद्रवोंसे युक्त हुए पूर्वोक्त महारोग ॥ ४ ॥ सिद्धिकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको वर्जने
चाहिये ॥ ५ ॥

अथ ज्वररोगीके अरिष्ट ।

यस्य जिह्वा भवतीव्रा पीता वा नीलसम्भवा॥श्वासो भवत्य-
तीवोष्णः शरीरं पुलकांकितम् ॥ ६ ॥ नीलनेत्रेऽरुणे पीते
कण्ठो घुरघुरायते॥न जीवति ज्वरार्तस्तु लक्षणं यस्य चेदृशम्
॥७॥ मुखे श्वासो भवेद्यस्य श्वावा दन्तावली पुनः॥स्तब्ध-
नेत्रो बलाघः स्याज्ज्वरातीं नैव जीवति ॥ ८॥ बहुमूत्री बहु-
श्वासी क्षामोऽरोचकपीडितः ॥ हतप्रभेन्द्रियो यश्च ज्वरी

शीघ्रं विनश्यति ॥ ९ ॥ यस्यास्ये श्रयते रक्तं शिरोर्तिर्यस्य
 दृश्यते ॥ अन्तर्दाहो बहिःशीतो ज्वरस्तु मृत्युमृच्छति ॥ १० ॥
 यस्ताम्यति विसंज्ञस्तु शेत विपतितोऽपि वा ॥ शीतादितोऽन्त-
 रुष्णश्च ज्वरेण श्रियते नरः ॥ ११ ॥ यो हृष्टरोमा रक्ताक्षो हृदि
 संघातशूलवान् ॥ नित्यं च वक्त्रेणोच्छ्वासः स ज्वरो हन्ति मान-
 वम् ॥ १२ ॥ हिक्काश्वासपिपासार्तं मूढं विभ्रान्तलोचनम् ॥
 सन्ततोच्छ्वासिनं क्षीणं नरं क्षपयति ज्वरः ॥ १३ ॥ आविलाक्षं
 प्रताम्यं च तन्द्रायुक्तमतीव च ॥ क्षीणक्षोणितमांसं च नरं नाश-
 यति ज्वरः ॥ १४ ॥ घनं निष्ठीवनं नेत्रं प्लावारोचकपीडितम् ॥
 अन्तर्दाहोऽसिता जिह्वा शीघ्रं नाशयति ज्वरः ॥ १५ ॥

जिसकी खरखरी, पीली और नीली ऐसी जीभ हो जाय और अत्यंत गरम श्वास आवे और हर्षित हुए रोमोंकरके युक्त शरीर हो ॥ ६ ॥ नीले, लाल और पीले नेत्र हो जावें और कंठ घुर्घुर करे ऐसे लक्षण जिस ज्वररोगीके होवें उसका जीवना नहीं है ॥ ७ ॥ जिसके मुखमें शीघ्र श्वास आवे और दंतोंकी पक्ति काली हो जावें और बरबस स्तंभित नेत्र हो जावें ऐसा ज्वरसे पीडित रोगी नहीं जीता है ॥ ८ ॥ बहुत मूत्रको करनेवाला और बहुत श्वासको लेनेवाला और कृश और अरुचिसे पीडित और नष्ट हुई इन्द्रियोंकी कांतिवाला ऐसा ज्वररोगी शीघ्र मर जाता है ॥ ९ ॥ जिसके मुखसे रक्त गिरे और जिसके शिरमें पीड़ा होवे और भीतर दाह और बाहर शीत लगे ऐसे ज्वरवाला मर जाता है ॥ १० ॥ जो मोहको प्राप्त होवे और संज्ञासे रहित हुआ सोवे अथवा निरंतर पतित हुआ करे और बाहर शीतसे और भीतर गर्मीसे पीडित होवे ऐसा मनुष्य ज्वरसे मर जाता है ॥ ११ ॥ जो हर्षित हुए रोमोंवाला हो और लालनेत्रोंवाला हो और हृदयमें दारुण शूलवाला हो और निरंतर मुखसे ऊंचे श्वासको लेता हो ऐसा ज्वररोगी मर जाता है ॥ १२ ॥ हिचकी और श्वाससे पीडित और मूढ़ और विशेष करके भ्रमते हुए नेत्रोंवाला और निरंतर ऊंचे श्वासको लेनेवाला और क्षीण ऐसे रोगीको ज्वर मार देता है ॥ १३ ॥ धूम्रवर्णवाले नेत्रोंवाला और मोहको प्राप्त हुआ और तंद्रासे अत्यंत युक्त हुआ, क्षीण हुए रक्त और मांसवाला ऐसे मनुष्यको ज्वर मार देता है ॥ १४ ॥ बहुत छर्दिवाला और नेत्रोंसे पानीको गिरानेवाला और अरोचकसे पीडित और भीतर दाह तथा काली जीभसे युक्त ऐसे मनुष्यको ज्वर शीघ्र मार देता है ॥ १५ ॥

अथ दारुण उपद्रवका अरिष्ट ।

यस्यैकोपद्रवस्यापि शाम्यता नोपदृश्यते ॥ दारुणोपद्रवा-
श्चान्ये भूयिष्ठं बहुरूपवान् ॥ १६ ॥ तेन मृत्योर्विशं याति
सिद्धिं नेच्छति दारुणः ॥ १७ ॥

जिसके एक उपद्रव भी शांत नहीं होवे किंतु अन्य भी बहुतसे उपद्रव उपजते रहें और बहुतसे रूपोंको धारण करे ॥ १६ ॥ ऐसा मनुष्य मृत्युके वशको प्राप्त हो जाता है, अच्छा नहीं होता ॥ १७ ॥

अथ अतीसारका अरिष्ट ।

यस्यादौ दृश्यते चैवाप्यतीसारस्तथापरः ॥ श्वासः शोषश्च
यस्य स्यात्सोऽपि शीघ्रं मृतिं व्रजेत् ॥ १८ ॥ श्वासशूलपिपासार्त्त
क्षीणं ज्वरनिपीडितम् ॥ विशेषेण नरं वृद्धमतीसारो विनाशयेत्
॥ १९ ॥ यस्यातिसारशोफाः स्युस्तथारोचकशूलवान् ॥ सोऽपि
शीघ्रं मृतिं याति बहुभिः प्रतिकर्मभिः ॥ २० ॥

जिसके आदिमें अतीसार उपजे, पीछे श्वास और शोष उपजे वह मनुष्य शीघ्र मर जाता है ॥ १८ ॥ श्वास, शूल, तृष्णा इन करके पीडित, क्षीण और ज्वरसे त्रास पाया हुआ विशेष करके वृद्ध अतीसारसे नष्ट हो जाता है ॥ १९ ॥ जिसके अतीसार, शोफा, अरुचि, शूल ये उपजें उस मनुष्यकी बहुतसी चिकित्सा करनेसे भी मृत्यु हो जाती है ॥ २० ॥

अथ सूजनका अरिष्ट ।

बालस्य चातिवृद्धस्य विकलस्य नरस्य च ॥

सर्वाङ्गे जायते शोफः शोफी स म्रियते ध्रुवम् ॥ २१ ॥

बालक, अतिवृद्ध, विकल ऐसे मनुष्योंके संपूर्ण अंगमें शोफा उपजे तो वह निश्चय मर जाता है ॥ २१ ॥

अथ शूलका अरिष्ट ।

यस्याध्मानं च शूलं च श्वासस्तृष्णा विमूछना ॥

शिरोऽर्त्तिर्यस्य दृश्येत शूली मृत्युमवाप्नुयात् ॥ २२ ॥

जिसके अफारा, शूल, श्वासरोग, तृष्णा, मूर्च्छा, शिरमें पीड़ा ये उपजें उसकी मृत्यु हो जाती है ॥ २२ ॥

पाण्डुरोगीका अरिष्ट ।

पाण्डुदन्तनखो यश्च पाण्डुनेत्रश्च मानवः ॥ पाण्डुसङ्घातवां-
श्चैव पाण्डुरोगी विनश्यति ॥२३॥ पाण्डुत्वक्पाण्डुनेत्रे च मूत्रं
वा पाण्डुरं भवेत्॥पाण्डुसङ्घातवांश्चैव पाण्डुरोगी विनश्यति॥२४॥

पीले दंत और नखोंवाला और पीले नेत्रोंवाला और पीलेपनको सब जगह देखे ऐसा पाण्डु-
रोगी नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥ पीली खाल होवे, पीले नेत्र होवें और मूत्र भी पीला हो होवे
और पीलेपनको सब जगह देखे ऐसा पाण्डुरोगी मर जाता है ॥ २४ ॥

अथ क्षयरोगका अरिष्ट ।

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ॥ कृच्छ्रेण बहुमेहंत
यक्ष्मा हन्तीह मानवम् ॥२५॥ धातुहीनो भवेद्यस्तु शोफश्वा-
सौर्नपीडितः॥बहुभोज्यो घृणावांश्च राजयक्ष्मी विनश्यति॥२६॥

सफेद नेत्रोंवाला और अन्नसे वैर करनेवाला और ऊंचे श्वाससे निरंतर पीडित हुआ और
कष्टसे बहुतवार मूत्रको करता हुआ ऐसा राजरोगी मर जाता है ॥ २५ ॥ धातुओंसे हीन
हुआ, शोजा और श्वाससे पीडित हुआ और बहुतसे भोजनको करता हुआ और दयावाला ऐसे
राजरोगी मर जाता है ॥ २६ ॥

अथ श्वासरोगका अरिष्ट ।

हुंकारः शीतलो यस्य फूत्कारस्योष्णता भवेत्॥शीघ्रनाडी न
निर्वाहः शीघ्रं याति यमालयम् ॥ २७ ॥ अंगकम्पो गतेर्भगो
मुखं वा कुङ्कुमप्रभम् ॥ उच्चारं च भवेद्वायुः स च याति यमा-
लयम् ॥ २८ ॥

जिसके मुखसे हुंकारी निकलनेमें शीतलता होवे और फूत्कारमें गरमाईपना होवे और नाडी
शीघ्र चले, चलनेकी सामर्थ्य नहीं होवे ऐसा रोगी शीघ्र मरजाता है ॥ २७ ॥ जिसके अंग
कांपे और चला जावे नहीं और केसरके समान मुख हो जावे और दस्त जानेके समय वायु
निसरे वह मर जाता है ॥ २८ ॥

अथ बहुत दिनतकके रोगका अरिष्ट ।

चिरं प्रवृद्धरोगस्तु भोजनेऽप्यसमर्थकम् ॥ भग्नगात्रमुपेक्षेत
भेषजोऽप्यरहस्यकम् ॥ एतादृशं नरं ज्ञात्वोपचारः क्रियते
बुधैः ॥ २९ ॥

बहुत दिनोंसे बड़े हुए रोगवाला और भोजनको नहीं करनेवाला और भग्न हुए अंगोंको देखनेवाला और औषधको नहीं लेनेवाला ऐसे रोगीको जानकर उपचार करना ॥ २९ ॥

अथ उदररोगका अरिष्ट ।

विध्वंसश्वासशोफाच्च तथा ज्वरनिपीडनात् ॥

गम्भीरं सघनं तस्य तदुरः क्षयते नरम् ॥ ३० ॥

विष्टाके क्षयसे, श्वास और शोजासे तथा ज्वरकी पीड़ासे गम्भीर और कठिन हुई छाती उसको मार देती है ॥ ३० ॥

अथ गुल्मरोगका अरिष्ट ।

श्वासशूलपिपासार्तिर्विद्वेषो ग्रन्थिमूढता ॥

दुर्बलत्वं च भवति गुल्मिनो मृत्युमेष्यतः ॥ ३१ ॥

श्वास, शूल, अत्यन्त तृषा ये उपजें और अन्नमें वैर रहे और गाढ़ तथा मूढ़पना हो और दुर्बलपना हो ऐसा गुल्मरोगी मर जाता है ॥ ३१ ॥

अथ रक्तपित्तका अरिष्ट ।

नेत्रे जिह्वाधरौ यस्य रक्तौ वा रुधिरं वसेत् ॥ रक्तमूत्री रक्तसारी
रक्तपित्ती विनश्यति ॥ ३२ ॥ लोहितं छर्दयेद्यस्तु बहुशो लो-
हितेक्षणः ॥ रक्तानां च दिशां द्रष्टा रक्तपित्ती विनश्यति ॥ ३३ ॥

जिसके जीभ, दोनों ओष्ठ, नेत्र ये लाल हो जावें अथवा रक्तको गिरावे ऐसा रक्तमूत्रवाला और रक्तातीसारवाला और रक्तपित्तवाला मनुष्य मरजाता है ॥ ३२ ॥ जो लोहूकी छर्दि करे और बहुत करके लाल नेत्रोंवाला हो और लाल दिशाओंको देखे ऐसा रक्तपित्तरोगी मरजाता है ॥ ३३ ॥

अथ बवासीररोगका अरिष्ट ।

मुखशोफो भवेद्यस्य भ्रमारोचकपीडितः ॥

विबन्धोदरशूली च उदयाच्च विनश्यति ॥ ३४ ॥

जिसके मुखपर शोजा हो, भ्रम और अरुचिसे जो पीडित हो, बंधा और उदरशूलसे संयुक्त हो ऐसा रोगी मर जाता है ॥ ३४ ॥

अथ विद्राधिरोगका अरिष्ट ।

आध्मानबद्धनिष्पन्दं छर्दिहिकारुगन्वितम् ॥

रूजाश्वाससमाविष्टं विद्राधिर्नाशयेन्नरम् ॥ ३५ ॥

जो अफारा हो, साव रुक जावे और छर्दि, हिचकी, शूल, इनसे समन्वित हो और श्वास-
रोगसे संयुक्त हो ऐसे मनुष्यको विद्रधिरोग नाशता है ॥ ३५ ॥

अथ भ्रमरोगका अरिष्ट ।

यस्य तृष्णा भवेद्धोरा दाहो वापि वमिर्भवेत् ॥

भ्रमोपपन्नो भवति न स जीवति मानवः ॥ ३६ ॥

जिसके दारुण तृषा और दाह तथा छर्दि उपजे और भ्रमसे संपन्न हो वह रोगी जीवता
नहीं है ॥ ३६ ॥

अथ आर्तवका अरिष्ट ।

अपूर्णे दिवसे नारी ज्वरार्ता पुष्पमाप्नुयात् ॥

सा न जीवेन्महाप्राज्ञ यस्या हि सारणो भवेत् ॥ ३७ ॥

जो ज्वरसे पीडित हुई नारी नहीं पूर्ण हुए दिनमें पुष्प अर्थात् योनिसे रक्तके वहनेको प्राप्त
होवे हे महाप्राज्ञ ! जो वह रक्त गिरता ही रहे तो वह नारी जीवे नहीं ॥ ३७ ॥

अथ कामला और पांडुरोगका अरिष्ट ।

यः शोफश्वाससंयुक्तस्तृष्णायुक्तोऽथ शूलवान् ॥

कामलापाण्डुरोगात्तो नरश्च स विपद्यते ॥ ३८ ॥

जो शोजा और श्वाससे पीडित हो, तृषा और शूलसे संयुक्त हो, कामला और पांडुरोगसे
संयुक्त हो वह मनुष्य जीवता नहीं है ॥ ३८ ॥

अथ भगंदरका अरिष्ट ।

वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च ॥

भगन्दरात्प्रसवन्ति यस्य तं परिवर्जयेत् ॥ ३९ ॥

जिसके भगंदरके घावसे अधोवात, मूत्र, विष्टा, कीड़े वीर्य ये गिरते हों उस रोगीको
असाध्य जानो ॥ ३९ ॥

अथ अश्मरीरोगका अरिष्ट ।

प्रसूननाभिवृषणं रुद्धमूत्रं रुगन्वितम् ॥

अश्मरी क्षपयत्याशु सिकताशर्करान्विता ॥ ४० ॥

नाभि और पोतोंपर शोजासे संयुक्त हो, मूत्र रुक जावे, शूल चले ऐसे मनुष्यको पथरी,
सिकता, शर्करा ये रोग मार देते हैं ॥ ४० ॥

अथ मूढगर्भका अरिष्ट ।

गर्भकोशसमापन्नो मकुष्ठो योनिसंगतः ॥

हन्ति स्त्रियं मूढगर्भे यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ४१ ॥

गर्भकोशमें समापन्न हुआ बालक योनिके छिद्रको बंधकरे और यथोक्त सब उपद्रव भी उपजे तब मूढगर्भ स्त्रीको मार देता है ॥ ४१ ॥

अथ अपस्माररोगका अरिष्ट ।

पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम् ॥ बहुशोऽपस्मरं तं तु
क्षीणं च वलितभ्रुवम् ॥ ४२ ॥ नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो
विनाशयेत् ॥ ४३ ॥

पसलीका भंग, अन्नसे वैर, शोजा, अतीसार इनसे पीडित हुआ और बहुतवार विस्मरणको प्राप्त हुआ और क्षीण और टेढ़ी भ्रुकुटियोंवाला ॥ ४२ ॥ और नेत्रोंको फाड़कर देखनेवाले मनुष्योंको मृगीरोग मार देता है ॥ ४३ ॥

अथ वातव्याधिका अरिष्ट ।

शूलं सुप्तत्वचं भग्नमाध्मानेन निपीडितम् ॥

रुजार्तिमन्तं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ४४ ॥

शूल और सोती हुई खालसे संयुक्त हो और भग्न हो और अफारासे निरंतर पीडित हो और जोड़ासे संयुक्त हो ऐसे मनुष्यको वातव्याधि नाशती है ॥ ४४ ॥

अथ प्रमेहका अरिष्ट ।

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रसृतमेव च ॥

पिडकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ ४५ ॥

यथोक्त उपद्रवोंसे व्याप्त हो और अत्यंत गिरता हो और फुन्सियोंसे अत्यंत पीडित हो ऐसे मनुष्यको प्रमेहरोग नाशता है ॥ ४५ ॥

अथ कुष्ठरोगका अरिष्ट ।

प्रभिन्नं प्रसृतांगं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥

पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥ ४६ ॥

प्रभिन्न हुआ और बहते अंगोंवाला और लाल नेत्रोंवाला और नष्ट हुए स्वरवाला और वमन, विरेचन, नस्य, निरुहबस्ति, अनुवासनबस्ति इन पंचकर्मोंके गुणोंसे वर्जित ऐसे कुष्ठीको कुष्ठरोग मार देता है ॥ ४६ ॥

अथ उन्मादरोगका अरिष्ट ।

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलोत्तरः ॥ जागरूकस्त्वसंदे-
हमुन्मादेन विनश्यति ॥४७॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे
द्वितीयस्थाने व्याध्यरिष्टं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

नीचेको मुख रखनेवाला अथवा ऊपरको मुख रखनेवाला और क्षीण हुए मांसवाला और बलसे युक्त हुआ अथवा उत्तरोत्तर जिसका मांस और बल क्षीण होता जावे और दिन रात जागनेवाला ऐसा उन्मादरोगी निश्चय मर जाता है ॥ ४७ ॥

इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
द्वितीयस्थाने व्याध्यरिष्टं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ५.

अथ पञ्चेंद्रियविकार वर्णन ।

आत्रेय उवाच ॥ यः शीलवान्क्रोधनतामुपैति यः क्रोधवाञ्छी-
लगुणं च धत्ते ॥ द्वावेव मृत्युं तनुतो विधिज्ञ स्थूलो नरः शीघ्र-
तरं कृशाङ्गः ॥१॥

आत्रेयजी कहते हैं—जो शीलवान मनुष्य क्रोधपनेको प्राप्त होवे और जो क्रोधी मनुष्य शीलपनेको धारण करे हे विधिज्ञ ! ये दोनों मनुष्य मृत्युको शीघ्र प्राप्त होते हैं और जो मोटा मनुष्य शीघ्र कृशाङ्ग हो जावे और कृशाङ्ग मनुष्य शीघ्र मोटा हो जावे ये भी दोनों मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

यो धर्मशीलो भवतीह पापी पापात्मको धर्मरतो यदि स्यात् ॥
स मृत्युभाजी भवतीह शीघ्रं यश्च प्रकृत्या विकृतिं प्रयाति ॥२॥

जो धर्मशील मनुष्य पापी हो जावे और जो पापी धर्मको करने लगजावे और जो प्रकृति करके विकारको प्राप्त हो जावे ये मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

यो गौरवर्णो विदधाति काष्ण्यं कृष्णोऽतिगौरत्वमुपैति यश्च ॥
तथा मृतिं याति नरः प्रकृत्या शीघ्रं विकृत्या भजते वियोगम् ॥

जो गौरवर्णवाला मनुष्य काले वर्णको प्राप्त हो जावे और जो काले वर्णका मनुष्य गौर-पनेको प्राप्त हो जावे और जो अपनी प्रकृतिको शीघ्र त्याग देवे ऐसे मनुष्य शीघ्र मृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ ३ ॥

यो वैपरीतं श्रवणेऽपि शब्दं गृह्णाति वा न शृणुते स शीघ्रम् ॥ स
वै मृतिं पश्यति यो न पश्येच्छायां स्वकीयां धरणीप्रपन्नम् ॥ ४ ॥

जो शब्दको विपरीतपनेसे ग्रहण करे अथवा शब्दको नहीं सुने और जो पृथिवीमें प्राप्त हुई
अपनी छायाको नहीं देखे वे मनुष्य मृत्युको शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

यो वेन्द्रियैः प्रतिहतः कृशतां प्रयाति स्थूलोऽतिनिष्प्रभवपुष्परणं
विपश्येत् ॥ यः कापि वेत्ति न कुगन्धिरसौ नरस्तु स वै मृतिं प्रिय-
तमां भजते मनुष्यः ॥ ५ ॥

जो इन्द्रियोंसे प्रतिहत हुआ कृशपनेको प्राप्त होजावे और जो कृश मनुष्य अत्यंत मोटेपनको
प्राप्त होवे व जिसका शरीर कृशपनेको प्राप्त होवे, जो दुर्गन्धको और रसको कहीं भी नहीं जाने
बह मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

यस्यास्यगन्धसाग्राय भजन्ते नीलमक्षिकाः ॥ नासिकायां शरीरे
वा स चैव यमलोकगः ॥ ६ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे
द्वितीयस्थाने पञ्चेन्द्रियविकारो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जिसके मुखके गन्धको सूँघके नीलमक्षिका अर्थात् भौरे नासिकामें अथवा शरीरमें वास करने
लग जावे उसकी मृत्यु होती है ॥ ६ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवा-
दितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने पञ्चेन्द्रियविकारो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.



अथ नक्षत्रज्ञानवर्णन ।

आत्रेय उवाच ॥ अथ नक्षत्रयोगेन व्याधिर्यस्य प्रजायते ॥

साध्यासाध्यञ्च याप्यं च वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जिसके नक्षत्रके योगसे व्याधि उपजे उसको साध्य, असाध्य और
याप्य इन भेदोंसे कहता हूँ । हे पुत्र ! सुनो ॥ १ ॥

अथ मृत्युयोगोंका वर्णन ।

आदित्ययोगेन मघा विशाखा चन्द्रेण युक्ता कुज आर्द्रया तु ॥

मूलं प्रबुद्धे गुरुकृत्तिका च शुक्रेण रोहिण्यसितेन हस्तः ॥ २ ॥

एतान्वदन्ति निपुणा यमघंटयोगान्व्याधिप्रपन्नमनुजो यदि

पुण्ययोगात् ॥ जीवेद्यदा कथमसौ घनदत्तयन्त्रघोरान्तरेण तप-
नेन कथं सुखं स्यात् ॥ ३ ॥ आदित्येनानुराधा वसति हिम-
रुचिश्चोत्तरासंप्रयुक्तो भौमः पित्रीशयुक्तो बुध इति तुरगीयुक्त
एतत्सुखं नास्माजीवेन युक्तो मृगशिरसहितोऽश्लेषया भार्ग-
वसूनुयुक्तोऽर्किर्हस्तसंज्ञैर्न तु वदति शुभं शास्त्रविद्योगयुक्तः ॥ ४ ॥

रविवारसे युक्त मवानक्षत्र और सोमवारसे युक्त विशाखा नक्षत्र और मंगलवारसे युक्त
आर्द्रानक्षत्र और बुधवारसे युक्त मूलनक्षत्र और बृहस्पतिवारसे संयुक्त कृत्तिकानक्षत्र और शुक्र-
वारसे युक्त रोहिणी और शनिवारसे युक्त हस्तनक्षत्र ॥ २ ॥ इन्होंको पंडित यमघंटयोग कहते हैं,
इसमें रोगको प्राप्त हुआ मनुष्य पुण्यके योगसे कदाचित् जीता है अन्यथा सुखकी प्राप्ति नहीं है,
क्योंकि भयंकर वह यन्त्र जिसमें आग भी लगी हो उससे कैसे कोई बच सकता है ? ॥ ३ ॥
रविवारसे संयुक्त अनुराधा और चंद्रवारसे संयुक्त उत्तरानक्षत्र और मंगलवारसे युक्त मवा और
बुधवारसे युक्त अश्विनी और बृहस्पतिवारसे युक्त मृगशिर और शुक्रवारसे युक्त आश्लेषा और
शनिवारसे संयुक्त हस्तनक्षत्र ये मृत्युयोग हैं । इनमें रोगोंकी उत्पत्ति होवै तो शुभ नहीं होता है ॥ ४ ॥

अथ अमृतयोगकथन ।

दिनकरकरयुक्तः सोमसौम्येन वापि तुरगसहितभौमः सोमपुत्रोऽ-
नुराधा ॥ सुरगुरुरपि पुण्ये रेवती शुक्रवारे दिनकरसुतयुक्ता
रोहिणी सौख्यहेतुः ॥ ५ ॥

रविवारसे युक्त हस्त और सोमवारसे युक्त मृगशिर और मंगलवारसे संयुक्त अश्विनी और बुधवारसे
संयुक्त अनुराधा और बृहस्पतिवारसे युक्त पुष्य और शुक्रवारसे युक्त रेवती और शनिवारसे संयुक्त
रोहिणी ये शुभयोग हैं इनमें रोग उपजे तो सुख होता है ॥ ५ ॥

अथ क्रूरयोगवर्णन ।

शूले वज्रेऽतिगण्डे वा व्याघाते व्यतिपातके ॥ विष्कम्भयोगयुक्ते
च नक्षत्रे क्रूरदैवते ॥ ६ ॥ एतैरसाध्या ज्वरिणस्तस्माद्योगान्
परीक्षयेत् ॥ योगे ऋक्षे तथा वारै क्रूरे प्राप्ते न जीवति ॥ ७ ॥

शूल, वज्र, अतिगंड, व्याघात, व्यतीपात, निष्कम्भ इन योगोंमें जब क्रूरदेवताओंवाले अर्थात्
आश्लेषा मघाआदिनक्षत्र होवें उन्हें क्रूरयोग कहते हैं ॥ ६ ॥ इनमें ज्वर उपजे तो रोगी असाध्य
होजाते हैं इस वास्ते योगोंकी परीक्षा करनी और यह क्रूरयोग भी हो और उसमें क्रूरवार हो तब
रोग उपजे तो रोगी जीता नहीं ॥ ७ ॥

अथ योगविज्ञान ।

सिद्धिः शुद्धः शुभः प्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यश्च वै ॥

वृत्तिर्वृद्धिर्ध्रुवो हर्षः सुखसाध्या इमे स्मृताः ॥ ८ ॥

सिद्धि, शुद्ध, शुभ, प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, वृत्ति, वृद्धि, ध्रुव, हर्ष ये योग सुख-
साध्य कहे हैं ॥ ८ ॥

अथ विशेष वर्णन ।

मवा विशाखा भरणी तथार्द्रा मूलं तथा कृत्तिकहस्तपुण्याः ॥

एते न शस्ता मुनयो वदन्ति वारक्रमेणैव विचिन्तनीयाः ॥ ९ ॥

मवा, विशाखा, भरणी, आर्द्रा, मूल, कृत्तिका, हस्त, पुण्य ये रोगकी उत्पत्तिमें श्रेष्ठ नहीं हैं।
ये सब वारके क्रमसे चिंतन करने चाहिये ॥ ९ ॥

अथ असाध्य नक्षत्र ।

मघाभरणिहस्तेषु मूले वा ज्वरितोऽपि वा ॥

मृत्युमापद्यते सोऽपि नात्र कार्य्या विचारणा ॥ १० ॥

मघा, भरणी, हस्त, मूल इन नक्षत्रोंमें ज्वरित हुआ मनुष्य मर जाता है इसमें विचार करने
की कोई आवश्यकता नहीं ॥ १० ॥

अथ साध्य नक्षत्र ।

अश्विनीरोहिणीपुष्यमृगश्र्येष्ठाः पुनर्वसुः ॥

एते साध्याश्च विज्ञेया ज्वरिणां च विशेषतः ॥ ११ ॥

अश्विनी, रोहिणी, पुष्य, मृगशिर, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, इन नक्षत्रोंमें हुआ रोग साध्य कहा है और
इनमें उपजा ज्वर विशेष करके साध्य है ॥ ११ ॥

अथ कष्टसाध्य नक्षत्र ।

पूर्वात्रयं स्वातिरथापि चित्रा तथा त्रयार्द्राश्रवणाधनिष्ठाः ॥ मूलं

विशाखा सह कृत्तिकाभिः साप्योऽनुराधा सह ज्येष्ठया च

॥ १२ ॥ एते सकष्टा रुजपीडितानां पुष्ये सुयाप्यः कुरुते

नरस्य ॥ तस्मात्तु विज्ञाय बुधाश्च सम्यगुजां विनाशं प्रति-

कर्मणा च ॥ १३ ॥

तीनों पूर्वा, स्वाती, चित्रा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, श्रवण, धनिष्ठा, मूल, विशाखा, कृत्तिका

आश्लेषा, अनुराधा, ज्येष्ठा ॥ १२ ॥ इनमें उपजा रोग कष्टको देता है और इनमेंसे पुष्य नक्षत्रमें उपजा रोग कष्टसाध्य कहा है इसकारणसे जानकर चिकित्सासे रोगको दूर करना ॥ १३ ॥

अथ नक्षत्रोंके पीडाकी मर्यादा ।

अश्विन्याश्चैकरात्रन्तु भरण्यां मृत्युमीक्षते ॥ नवरात्रं कृत्तिकायां रोहिण्यांतु दिनत्रयम् ॥ १४ ॥ मृगेण बहुपीडा स्यादार्द्रायां मृत्युरेव च ॥ पुनर्वसौ च पुष्ये च सप्तरात्रं तु पीड्यते ॥ १५ ॥ नवरात्रं तथाश्लेषा मघा चेति यमालयम् ॥ पूर्वा मासत्रयं ज्ञेयमुत्तरा पञ्चकत्रयम् ॥ १६ ॥ पूर्वात्रये त्रयोऽंशाश्च शुभा ज्ञेया मनीषिभिः ॥ एतेषां तुय्यगे चान्ते यदि रोगस्तदा मृतिः ॥ १७ ॥ हस्तेन प्राप्यते सौख्यं चित्रा पञ्चदशाहकम् ॥ स्वातिः षोडशरात्रन्तु विशाखा विंशरात्रकम् ॥ १८ ॥ अनुराधा पक्षमेकं ज्येष्ठा दशदिनानि तु ॥ मूलेन मृत्युमाप्नोति आषाढासु त्रिपञ्चकम् ॥ १९ ॥ उत्तरा विंशरात्रेण श्रवणे मासकद्वयम् ॥ मासद्वयं धनिष्ठा स्याच्छतर्क्षे दिनविंशतिः ॥ २० ॥ नवरात्रं भवेत्पूर्वा उत्तरा पञ्चकत्रयम् ॥ दशाहं रेवती पीडा मुच्यते व्याधिभिस्ततः ॥ २१ ॥

अश्विनीमें रोग उपजे तो एकरात्रमें आराम हो, भरणीमें रोग उपजे तो रोगी मर जाता है कृत्तिकामें रोग उपजे तो नवरात्रोंमें आराम होता है, रोहिणीमें रोग उपजे तो तीन दिनोंमें आराम होता है ॥ १४ ॥ मृगशिरमें रोग उपजे तो बहुतसी पीडा रहती है, आर्द्रामें रोग उपजे तो रोगी मर जाता है, पुनर्वसु और पुष्यमें रोग उपजे तो सातरात्रितक पीडा रहती है ॥ १५ ॥ आश्लेषामें रोग उपजे तो नवरात्रितक पीडा रहती है, मघामें रोग हो तो रोगी मर जाता है, पूर्वाफाल्गुनीमें रोग हो तो तीन महीनोंतक पीडा रहती है, उत्तराफाल्गुनीमें रोग हो तो पंद्रह दिनोंतक पीडा रहती है ॥ १६ ॥ और तीनों पूर्वा अर्थात् पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ, पूर्वाभाद्रपद इनके पहले तीन भाग शुभ हैं और अंतका एक भाग बुरा है उसमें रोग हो तो रोगी मर जाता है ॥ १७ ॥ हस्तमें रोग हो तो शीघ्र आराम होजाता है, चित्रामें रोग हो तो पन्द्रह दिनोंमें आराम हो जाता है, स्वातीमें रोग हो तो सोलहरात्रमें सुख होजाता है, विशाखामें रोग हो तो बीसरात्रमें आराम होजाता है ॥ १८ ॥ अनुराधामें रोग हो तो पन्द्रह दिनमें आराम होता है, ज्येष्ठामें रोग हो तो दशदिनमें आराम होजाता है, मूलमें रोग हो तो रोगी मरजाता है, पूर्वाषाढमें रोग हो तो पन्द्रह दिनमें आराम होता है ॥ १९ ॥ उत्तराषाढमें रोग उपजे तो बीस रात्रिमें आराम होता है, श्रवणमें रोग उपजे तो दो महीनोंमें आराम होता है

घनिष्ठमें रोग उपजे तो दो महीनोंमें आराम होता है, शतभिषामें रोग उपजे तो बीस दिनोंमें आराम होता है ॥ २० ॥ पूर्वाभाद्रपदमें रोग उपजे तो नव रात्रिमें आराम होता है, उत्तरा भाद्रपदमें रोग उपजे तो पन्द्रह दिनोंमें आराम होता है, रेवतीमें रोग उपजे तो दश दिनोंमें आराम होता है । ऐसे रोगकी निवृत्ति कही है ॥ २१ ॥

अथ नक्षत्रोंके भागानुसार रोगोंकी मर्यादा ।

कृत्तिका नक्षत्र ।

कृत्तिकामु ज्वरस्तीव्रो व्याधिर्भवति पैत्तिकः ॥ दिनानि दश
प्रथमे चरणे च विनिर्दिशेत् ॥ २२ ॥ दशैव द्वितीये भागे
तृतीये दिनपञ्चकम् ॥

कृत्तिका नक्षत्रमें दारुण ज्वर और पित्तकी व्याधि उपजती है और कृत्तिकाके प्रथम भागमें रोग उपजे तो दशदिन पीड़ा रहती है ॥ २२ ॥ और दूसरे भागमें रोग उपजे तो भी दश दिन पीड़ा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो पांच दिन पीड़ा रहती है ॥

अथ रोहिणी नक्षत्र ।

रोहिण्यां नवरात्रन्तु प्रथमेश्च प्रकीर्तितम् ॥ २३ ॥ द्वितीये
द्विगुणं प्रोक्तं तृतीये दशरात्रकम् ॥

रोहिणीके प्रथम भागमें रोग उपजे तो नव रात्रि पीड़ा रहती है ॥ २३ ॥ और दूसरे भागमें अठारह दिन और तीसरे भागमें दशदिन पीड़ा रहती है ॥

अथ मृग नक्षत्र ।

नक्षत्रे चन्द्रदैवत्ये पीडा वै जायते ध्रुवम् ॥ २४ ॥ प्रथमांशे
पञ्चरात्रमध्ये द्वादशवासरान् ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्यु-
र्मासादनन्तरम् ॥ २५ ॥

मृगशिरके प्रथमभागमें रोग उपजे तो पांच रात्रि पीड़ा रहती है ॥ २४ ॥ और दूसरे भागमें बारह दिन और तीसरे भागमें १ महीना तक पीड़ा रहके पीछे मृत्यु हो जाती है ॥ २५ ॥

अथ आर्द्रा नक्षत्र ।

नक्षत्रे रुद्रदैवत्ये पक्षं स्यात्प्रथमेश्चके ॥

द्वादशाहं द्वितीये च तृतीयांशे न जीवति ॥ २६ ॥

आर्द्रानक्षत्रके प्रथम अंशमें रोग उपजे तो वह रोग एक पखवाडे तक रहता है, दूसरे अंशमें हुई व्याधि बारह दिन तक रहती है, तीसरे अंशमें रोग उत्पन्न हुआ हो तो वह संतुष्ट जीता नहीं ॥ २६ ॥

अथ पुनर्वसु नक्षत्र ।

पुनर्वसौ ज्वरं विद्यात्प्रथमांशे त्रिपक्षकम् ॥

मध्यमे दिवसान्सप्त तृतीये पंचविंशतिम् ॥ २७ ॥

पुनर्वसु नक्षत्रके प्रथम अंशमें आया हुआ ज्वर तीन पखवाडेतक रहता है, दूसरे अंशमें सात दिन रहता है और तीसरे अंशमें आया हुआ ज्वर पच्चीस दिनतक रहता है ॥ २७ ॥

अथ पुष्य नक्षत्र ।

पुष्ये स्यात्प्रथमे सप्त द्विके विंशतिवासरात् ॥

तृतीयांशे तथा विद्यादिवसानेकविंशतिम् ॥ २८ ॥

पुष्य नक्षत्रके प्रथम अंशमें आया हुआ रोग सातदिनतक रहता है, दूसरे अंशमें बीस दिनतक रहता है और तीसरे अंशमें इक्कीस दिनतक रहता है ॥ २८ ॥

अथ आश्लेषा नक्षत्र ।

आश्लेषायां च नक्षत्रे यस्य संभवति ज्वरः ॥ मासत्रयेण प्रागंशे
कष्टाज्जीवति मानवः ॥ २९ ॥ द्वितीये च तृतीये च मृत्युरेव
न संशयः ॥

जिस मनुष्यके आश्लेषानक्षत्रमें ज्वर उत्पन्न होता है उसको प्रथम अंशमें ज्वर उत्पन्न होनेसे वह मनुष्य बड़े कष्टसे जीता है ॥ २९ ॥ और दूसरे तथा तीसरे अंशमें ज्वर उत्पन्न होनेसे उस मनुष्यको मृत्यु ही प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं ॥

अथ मघा नक्षत्र ।

नक्षत्रे पितृदैवत्ये रोगो यस्य प्रवर्तते ॥ ३० ॥ प्रथमेऽश सप्तरात्रं
द्वितीये धिष्ण्यतुल्यताम् ॥ विंशतृतीये दिवसान्पीड्यते कर्मणो
बलात् ॥ ३१ ॥

मघा नक्षत्रमें जिस मनुष्यको रोग उत्पन्न होता है ॥ ३० ॥ उसका रोग प्रथम अंशमें सातरात्रितक रहता है, दूसरे अंशमें उत्पन्न होवे तो दश दिन रोग बना ही रहता है और तीसरे अंशमें होवे तो वह मनुष्य अपने कर्मके बलसे बीस दिन तक बहुत पीड़ाको प्राप्त होता है ॥ ३१ ॥

अथ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र ।

नक्षत्रे भगदैवत्ये यस्य संजायते ज्वरः ॥ ३२ ॥ प्रथमेऽशे पंच-
रात्रं मध्ये द्वादश वासरात् ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं मृत्युर्मा-
सादनंतरम् ॥ ३३ ॥

पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रमें जिसको ज्वर उत्पन्न होवे ॥ ३२ ॥ उस मनुष्यका ज्वर प्रथम अंशमें पांच रात्रितक रहता है, दूसरे अंशमें बारह दिनतक रहता है और तीसरे अंशमें ज्वर उत्पन्न होवे, उस मनुष्यका एक महीनेके पीछे मृत्यु होगा ऐसा जानना ॥ ३३ ॥

अथ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र ।

उत्तराया आद्यभागे वासराणि चतुर्दश ॥

द्वितीये सतरात्रन्तु तृतीये दिवसा नव ॥ ३४ ॥

उत्तराके प्रथमभागमें रोग उपजे तो चौदह दिन पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें सात रात्रि और तीसरे भागमें नव दिन पीड़ा रहती है ॥ ३४ ॥

अथ हस्त नक्षत्र ।

यदि हस्ते भवेद्रोगः प्रथमे सतरात्रकम् ॥

चत्वार्यहानि द्वितीये तृतीये दिनपञ्चकम् ॥ ३५ ॥

हस्तके प्रथमभागमें रोग उपजे तो सात रात्री पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें चार दिन और तीसरे भागमें पांच दिन पीड़ा रहती है ॥ ३५ ॥

अथ चित्रा नक्षत्र ।

मृत्युं विद्यात्तथा पूर्वे त्वाष्ट्रो यस्य भवेज्ज्वरः॥त्रिभिर्मासैर्द्विती-
यांशे रोगो भवति दारुणः ॥ ३६ ॥ तृतीयांशे तथा ज्ञेयं
वासराणि त्रयोदश ॥

चित्राके प्रथम भागमें जिसके ज्वर उपजे उसका मृत्यु होजाता है और दूसरे भागमें रोग दारुणरूपी होके तीन महीनोंमें दूर होता है ॥ ३६ ॥ और तीसरे भागमें तेरह दिन पीड़ा रहती है ॥

अथ स्वाती नक्षत्र ।

वायव्ये प्राक् सप्तदश द्वितीये चैकविंशतिः॥ ३७ ॥अस्यैव तु

तृतीयांशे मृत्युमेव विनिर्दिशेत् ॥ ३८ ॥

स्वातीके प्रथम भागमें रोग उपजे तो सत्रह दिन पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो इक्कीस दिन पीड़ा रहती है ॥ ३७ ॥ और तीसरे भागमें रोग उपजे तो मृत्युही जानना ॥ ३८ ॥

अथ विशाखा नक्षत्र ।

प्रथमांशे विशाखायां त्रिगुणाः षोडश स्मृताः ॥

द्वितीये द्वादश प्रोक्तास्तृतीयेऽपि तथैव च ॥ ३९ ॥

विशाखाके प्रथम भागमें रोग उपजे तो अडतालीस ४८ दिन पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो बारह दिन पीड़ा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो भी बारह दिन पीड़ा रहती है ॥ ३९ ॥

अथ अनुराधा नक्षत्र ।

मैत्रांशे प्रथमे सप्त द्वितीये पक्षमादिशेत् ॥

तृतीयांशे चतुःपष्टिर्वासराणां महामुने ॥ ४० ॥

अनुराधाके प्रथम भागमें रोग उपजे तो सात दिन पीड़ा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो पंद्रह दिन पीड़ा रहती है और तीसरे भागमें पीड़ा उपजे तो हे महामुने ! चौंसठ ६४ दिन पीड़ा रहती है ॥ ४० ॥

अथ ज्येष्ठा नक्षत्र ।

त्रिपक्षमैन्द्रे प्रथमे द्वित्रिभागे च षोडश ॥ ४१ ॥

ज्येष्ठाके प्रथम भागमें रोग उपजे तो ४९ दिन पीड़ा रहती है, द्वितीय और तृतीय इन भागोंमें रोग उपजे तो सोलह दिन पीड़ा रहती है ॥ ४१ ॥

अथ मूल नक्षत्र ।

मूलेंऽशे तृतीये ज्ञेयः पक्ष एव मनीषिभिः ॥

आद्ये पूर्वत्रयो मासा मध्यमेऽहानि षोडश ॥ ४२ ॥

और मूलके तीसरे भागमें रोग उपजे तो पंद्रह दिन पीड़ा रहती है और मूलके प्रथम भागमें रोग उपजे तो तीन महीने पीड़ा रहती है और मूलके दूसरे भागमें रोग उपजे तो सोलह दिन पीड़ा रहती है ॥ ४२ ॥

अथ पूर्वा नक्षत्र ।

पूर्वांशे द्वितये ज्ञेयः पक्ष एव मनीषिभिः ॥

तृतीयांशे पुनर्मृत्युरतीरात्रात्प्रजायते ॥ ४३ ॥

पूर्वाषाढाके प्रथम और द्वितीयभागमें रोग उपजे तो पंद्रह दिन पीड़ा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो रोगी मर जाता है ॥ ४३ ॥

अथ उत्तराषाढा नक्षत्र ।

विश्वेशे प्रथमे पक्षे मध्ये द्वादशरात्रिकम् ॥

दिनानां विंशतिः प्रोक्ता तृतीयांशे महामुने ॥ ४४ ॥

उत्तराषाढाके प्रथम और द्वितीयभागमें रोग उपजे तो बारह रात्रि पीड़ा रहती है, हे महामुने ! उत्तराषाढाके तीसरे भागमें रोग उपजे तो २० दिन पीड़ा रहती है ॥ ४४ ॥

अथ श्रवण नक्षत्र ।

सप्ताहमादौ श्रवणे विंशतिर्मध्यमे मता ॥

षोडशाहं तृतीयांशे सत्यमेतद्वीम्यहम् ॥ ४५ ॥

श्रवणके प्रथमभागमें रोग उपजे तो सात दिन पीडा रहती है और द्वितीयभागमें रोग उपजे तो बीसदिन पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो सोलह दिन पीडा रहती है यह मैं सत्य कहता हूँ ॥ ४५ ॥

अथ धनिष्ठा नक्षत्र ।

विंशतिर्वासरे पूर्व मध्यमे मासयुग्मकम् ॥

मासस्तृतीये विज्ञेयो दैवज्ञैश्च निवेदितम् ॥ ४६ ॥

धनिष्ठाके प्रथमभागमें रोग उपजे तो बीस दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो दो महीने पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो एक महीना पीडा रहती है ऐसा ज्योतिषियोंने कहा है ॥ ४६ ॥

अथ पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र ।

वारुणे दारुणो रोगस्त्रिपक्षं प्रथमांशके ॥

द्वितीये मासषट्कं तु षोडशाहं तृतीयके ॥ ४७ ॥

पूर्वाभाद्रपदाके प्रथमभागमें दारुण रोग उपजे तो पैंतालिस दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो छःमहीने और तीसरे भागमें रोग उपजे तो सोलह दिन पीडा रहती है ॥ ४७ ॥

अथ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र ।

अहिर्बुध्न्ये पक्षमादौ मध्ये मासं विनिर्दिशेत् ॥

अन्तेऽष्टाविंशतिर्ज्ञेया पीडा स्यात्पापकर्मणि ॥ ४८ ॥

उत्तराभाद्रपदाके प्रथमभागमें रोग उपजे तो पंद्रह दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें रोग उपजे तो एक महीना पीडा रहती है और तीसरे भागमें रोग उपजे तो अठ्ठाईस दिन पीडा रहती है ॥ ४८ ॥

अथ रेवती नक्षत्र ।

रेवत्याः प्रथमे चाष्टौ द्विभागे तु च षोडश ॥

अन्ते त्रिंशद्दिनान्येवं प्रोक्तानि पूर्वसूरिभिः ॥ ४९ ॥

रेवतीके प्रथमभागमें रोग उपजे तो आठ दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें सोलह दिन पीडा रहती है और तीसरे भागमें तीस दिन पीडा रहती है ॥ ४९ ॥

अथ अश्विनी नक्षत्र ।

अश्विन्याः प्रथमे भागे दिनमेकं प्रकीर्तितम् ॥

द्वितीये पञ्चरात्रन्तु तृतीये सप्तकं तथा ॥ ५० ॥

अश्विनीके प्रथम भागमें एक दिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें पांचरात्रि और तीसरे भागमें सात रात्रि पीडा रहती है ॥ ५० ॥

अथ भरणी नक्षत्र ।

भरण्याः प्रथमे चांशे सप्तवासरमेव च ॥

मध्ये मृत्युस्तथा चान्त रोगो मासत्रयावधि ॥ ५१ ॥

भरणीके प्रथमभागमें सातदिन पीडा रहती है और दूसरे भागमें मृत्यु और तीसरे भागमें तीन महीने पीडा रहती है ॥ ५१ ॥

अथ नक्षत्रारिष्टोंका उपसंहार ।

एवं ज्ञात्वा सुधीःसम्यक्कुर्व्यात्प्रशमनक्रियाम् ॥ नक्षत्रस्य त्रयो
भागा आत्रेयेण प्रकाशिताः ॥ ५२ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारी-
तोत्तरे द्वितीयस्थाने नक्षत्रज्ञानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

ऐसे जानके कुशल वैद्य रोगको शांत करनेकी क्रियाको करे, नक्षत्रोंके तीन भाग आत्रेयजीने प्रकाशित किये हैं ॥ ५२ ॥ इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारी-
तसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने नक्षत्रज्ञानं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७.

अथ होमकी विधि ।

आत्रेय उवाच ॥ अर्कः खदिरपालाशबदर्यः पारिभद्रकः ॥

दूर्वा शमीकुशःकाशःपिप्पलो वटभूरुहः ॥ १ ॥ जम्बवाग्नौ कर-

हाटश्च सोमवृक्षः कलिद्रुमः ॥ रक्तसारश्चन्दनश्च जयन्ती गुरु-

वृक्षकम् ॥ २ ॥ सहचरी सितावर्षा सर्वौषधिनिशायुगम् ॥

समिद्धर्गः समस्तोऽपि समिद्धोमः प्रकाशितः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—आक, खैर, पलाश, बेरी, पारिभद्र, दूब, छीकुर, कुशा, कास,
पीपलवृक्ष, यड़वृक्ष, ॥ १ ॥ जामुनवृक्ष, आंबवृक्ष, पेद्रकंद, श्वेतखैर, बहेडा, लाल खैर, चन्दन,

अरुन्ती, सीसमृक्ष ॥ २ ॥ पीला कुंठा, सफेद सांठी, सर्वोपधी, अर्धात् कूट, छलीरा, हलदी, वच, लोबान, मुरामांसी, चन्दन, कपूर, नागरमोथा और हलदी, दाहलदी यह समिद्धर्ग है, इससे समिद्धोम होता है ॥ ३ ॥

अथ शान्तिप्रकार ।

चन्दनं रक्तचन्दनं गोरोचना हरिद्रा गैरिकनिम्बविल्वं कदम्बं
कुंकुमसिथितकस्तूरिका घनसारं श्रीपर्णं सुरदारु हरिचन्दनं
पञ्चकं हरिद्राद्रयं कालीयकागुरुशिशपा रक्तगोरोचना पलाश
इति गन्धानि, पञ्चविल्वसुरसादूर्वाकुशजयन्तीशमीपत्रार्क-
किंशुककर्णिकारगिरिकर्णिकासहचरालूपपुष्पाणि, जम्बाम्रपल्ल-
वानि काञ्चनारपाटलवर्वरी अगस्तिः काककाह्वारी अशोकपु-
ष्पमिति धूपदीपादिभिरलङ्कारैरलङ्कृतं वास्तुमण्डलं कृत्वा ईशा-
नदिवक्रमेण नक्षत्रमण्डलं चार्चयेत् ॥ तन्मण्डलकमध्ये आदि-
त्यादीन् ग्रहान् समभ्यर्च्य क्रमेण समिद्धिर्होमं कुर्यात् ॥ तस्मा-
त्पुनर्दधिमधुघृताक्ताभिः समिद्धिरश्विन्यादिक्रमेण जुहुयात् ॥
आकृष्णेति अर्कसमिद्धिरिदम् अश्विन्यै विष्णोरराटमसीति पला-
शेन इदं भरण्यै मधुमाध्वीति बदरीसमिद्धिरिदं कृत्तिकायै काण्डा-
त्काण्डेति पारिभद्रकपूर्वकुशसमिद्धिः रोहिणीमृगशिरःपुनर्व-
स्वादीन् काण्डेति होमयेत् ॥ इदं देव इति पिप्पलसमिद्धिरिदं
पुष्याय सप्तत्यग्निमन्त्रेण चूतसमिद्धिरिदं सार्ण्यै अग्निर्मूर्द्धादि-
व इति जम्बूसमिद्धिर्मघां होमयेत् ॥ सद्योजाताभिः करहाटकस-
मित्पूर्वसमिद्धिर्होमयेत् ॥ तत्पुरुषाय विद्महे इति सोमवल्ली-
समिद्धिरुत्तरात्रयं, नमो धोराय विभीतकसमिद्धिर्हस्तं होमयेत् ॥
नमो ज्योतिष्पतये रक्तसारसमिद्धिशित्रां होमयेत् ॥ नमो
देवाय नमो ज्येष्ठाय इति चन्दनसमिद्धिः स्वात्यै होमं कुर्यात् ॥
उदुम्बरजयन्तीसमिद्धिर्विशाखां होमयेत् ॥ बृहते इति
यदुपतये गुरुवृक्षकसमिद्धिरनुराधां होमयेत् ॥ एतज्ज्योतिः

सहचरीसमिद्भिर्ज्यैष्ठां काण्डात्काण्डेति शतावरीसमिद्भिर्मूलमिष्टं
स्तौति ॥ निशाथुगसमिद्भिः पूर्वाषाढामुत्तराषाढां मधुवातेति
उदुम्बरसमिद्भिः श्रवणं त्र्यम्बकमिति बिल्वसमिद्भिर्वासवप्रभृती-
नि होमयेत् घृतेन पूर्णाहुतिं दद्यात् ॥ नवग्रहस्थापनं चतुरस्रेण
होमकुण्डे होमयेत् ॥ तस्मादभिषेकज्ञानमाचरेत् ॥ शुक्लव-
स्त्रोपवीतं यज्ञोपवीतसहितं रोगिणं कृत्वा वेदादिभिराशिष्य
गोभूवस्त्रहिरण्यादिदानं कुर्यात् ॥ इति विधाने कृते सम्यक्
शान्तिर्भवति ॥४॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने
होमविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

चंदन, लालचंदन, गोरोचन, हलदी, गेरू, नीमकी छाल, वेलगिरी, कदंब, केशर, कस्तूरी,
कपूर, कमल, देवदार, हरिचंदन, पद्माख, हलदी, दारुहलदी, कालाभगर, अगर, शीसम,
गोरोचन, पलाश अर्थात् ढाका ये सब गंध हैं । श्वेतकमल, वेलगिरी, तुलसी, दूब, कुशा, अरनी,
जांटीके पत्ते, आक, टेसू, कनेर, विष्णुक्रांता, नीलाकरसैला, शतावरी इनके फूल, जामन और
आंवके पत्ते और कचनार, पाडल, रानतुलसी, अगस्तिवृक्ष, काकजंवा, अशोक इनके फूल,
धूपदीपआदिसे अलंकृतकिये वास्तुमण्डलको कर ईशानआदिके क्रमसे नक्षत्रमण्डलकी पूजा करनी
तिस मण्डलके मध्यमें सूर्यआदिग्रहोंकी अच्छीतरह पूजाकर क्रमसे पूर्वोक्त समिधोंसे होमको करे
उससे पीछे फिर दही, शहद, घृत इनसे भिगोई हुई पूर्वोक्त समिध अर्थात् लकड़ियोंसे अश्विनी
आदिनक्षत्रोंके क्रमकरके होम करे 'आकृष्णेन रजसा' इसमंत्रसे और आककी लकड़ीसे अश्विनीके
लिये होम करे, पीछे 'इदं अश्विन्यै' ऐसे कहे । 'विष्णोराट' इसमन्त्रसे ढाककी लकड़ियों करके
भरणीका होम करे अंतमें 'इदं भरण्यै' ऐसे कहे । 'मधुमाध्वी' इसमन्त्रसे और बडवेरीकी लकड़ियोंसे
कृत्तिकाका होम करे । 'कांडात्कांडे' इस मन्त्रसे और पारिभद्र कुशा इन्होंकरके रोहिणी, मृगशिर,
पुनर्वसु, आदिका होम करे । 'इदं देव' इस मंत्रसे और पीपलकी लकड़ियोंकरके पुष्यका होम करे ।
'सप्तत्यग्नि' इसमंत्रसे और आंवकी लकड़ियोंकरके आश्लषाका होम करे । 'अग्निर्मूर्द्धा' इस मंत्रसे और
जामुनकी लकड़ियोंकरके मघाका होम करे । 'सद्योजातामि०' इसमन्त्रसे और श्वेतखैरकी लकड़ियोंसे
पूर्वाका होम करे । 'तत्पुरुषाय विद्महे' इसमन्त्रसे और लालखैरकी लकड़ियोंकरके तीनों उत्तराओंका
होम करे । 'नमो घोराय' इस मंत्रसे और बहेड़ाकी लकड़ीकरके हस्तका होम करे
'नमो ज्योतिष्पतये' इसमन्त्रसे और लालशीसमकी लकड़ियोंकरके चित्राका होम करे । 'नमो
देवाय नमो ज्येष्ठाय' इसमन्त्रसे और चंदनकी लकड़ियों करके स्वातीका होम करे और इसीमंत्रसे
तथा गूलर और अरनीकी लकड़ियों ९ करके विशाखाका होम करे, 'बृहते

‘इति यदुपतये ०’ इसमन्त्रसे और शीतमकी लकड़ियोंकरके अनुराधाका होम करे, ‘एतज्ज्योति ०’ इस मन्त्रसे और पीला कुरंटाकी लकड़ियोंकरके ज्येष्ठाका होम करे, ‘कांडात्काण्डे’ इस मन्त्रसे और शतावरीकी लकड़ियोंकरके मूलका होम करे, नामरूपमन्त्रसे और हलदी तथा दारुहल-दीकी लकड़ियोंसे पूर्वाषाढ और उत्तराषाढका होम करे, ‘मधुवाता’ इस मन्त्रसे और गूलरकी लकड़ियोंसे श्रवणका होम करे, व्यंजकमन्त्रसे और बेलपत्रकी लकड़ियोंसे धनिष्ठाआदि और रेवती तकके नक्षत्रोंका होम करे, घृतकरके पूर्णाहुतिको देवे, नवग्रहोंको चौकुंडोंवेदीयै स्थापन कर पीछे होमके कुंडमें होमको करे, तिससे पीछे अभिषेकज्ञानको करे, सकेद वस्त्रोंको पहने हुए और यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊको धारण किये ऐसे रोगीको बना और वेदआदिके मन्त्रोंसे आशीर्वाद दे पीछे रोगी गौ, पृथिवी, सोना, आदिको दान करे ऐसे विधान करनेसे अच्छीतरह शांति होती है ४॥

इति वैरीनियासिन्धुवशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता-

भाषाटीकायां द्वितीयस्थाने होमविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.



अथ दूतकी परीक्षाका लक्षण ।

आत्रेय उवाच॥अथातो गदग्रस्तानां दूतारिष्टं भिषग्वर ॥ शुभं वाशुभमेवान्यत्समासेन प्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ आतुरस्योपकारार्थं दूतो याति भिषगृहे॥तस्य परीक्षणं कार्यं येन संलक्ष्यते नदः॥ २॥

आत्रेयजी कहते हैं--हे वैद्यवर ! अब रोगोंसे ग्रस्तहुए मनुष्योंके दूतारिष्टको विस्तार-से कहता हूँ जो शुभ और अशुभ होता है ॥ १ ॥ रोगीके उपकारके लिये जो दूत वैद्यके घर-को जाता है उसकी परीक्षा करनी चाहिये जिससे रोगका शुभाशुभ माद्यम होवे ॥ २ ॥

अथ वर्ज्यदूतके लक्षण ।

खञ्जान्धमूकबधिरं रुजपीडितं वा बालं स्त्रियञ्च विकलं तृपितं विजीर्णम् ॥ श्रान्तं क्षुधातुरमपि भ्रमितञ्च दीनं दूतं न शस्त-मिह वेदविदो वदन्ति॥ ३ ॥ कषायकृष्णार्द्रकवाससा च तथैव वस्त्रावृतमस्तकेन ॥ अश्रुप्लुतैर्वा नयनैश्च युक्ताः केशैस्तथा मुण्डितमस्तकश्च ॥ ४ ॥ समर्कटाक्षोर्ध्वशिरोरुहश्च खर्वस्तथा

वासनकृत्तनासः॥एतान्न शसन्ति विदो मुनीन्द्रा दूतान्नराणां
 रुजनाशनाय ॥५॥ यः कर्कशः क्रोधनपाशपाणिभिर्षग्विदूषी
 तमसावृतश्च॥एते न शस्ताः प्रवदन्ति धीरा दूता विकारञ्च
 प्रवर्द्धयन्ति ॥६॥ यः काष्ठहस्तोद्धतपाशपाणिस्तथातुरो दीन-
 वचो हिरोदिति ॥प्रक्लिन्ननेत्रो गमनोत्सुकोऽपि वज्र्यो रूगात्तो-
 ऽशुभकारिदूतः॥७॥यो रज्जुहस्तोद्धतपाशपाणिर्याम्यां दिशं च
 परिभूय तूणम् ॥यो वावदीति प्रबलं सरोषस्तथा समागम्य
 वदेच्च दूतः ॥ ८ ॥ हस्तेऽवष्टभ्य लगुडं वक्रपादेन तिष्ठति ॥
 तस्मादाकुलवादी यो न शस्तो वैद्यकर्मसु ॥९॥ पथा गच्छति
 शीघ्रण आविश्योत्थाय मुह्यति॥पादौ प्रसार्य विशति मस्तके
 विन्यसेत्करम् ॥१०॥ भिनत्ति लोहकाष्ठञ्च तृणं वा स्फोटते
 क्वचित् ॥ एतानि स्पृशते नासां स्तनं वा स्पृशति पुनः॥११॥
 भूमिं लिखति पादेन रेखां वापि करोति यः॥निद्रां वा कुरुते यस्तु
 स दूतोऽनिष्टकारकः ॥ १२ ॥

लंगड़ा, अंधा, रूंगा, बहिरा, रोगसे पीडित, बालक, स्त्री, विकल, तृषावाला, अतिवृद्ध,
 परिश्रमको प्राप्त हुआ, भूखसे पीडित और भ्रमवाला और दीन ऐसे दूतको वैद्य श्रेष्ठ नहीं
 कहते हैं ॥ ३ ॥ रंगा हुआ और काला और गीला ऐसे वस्त्रसे युक्त और वस्त्रसे आवृत हुए
 मस्तकवाला और आँसुओंसे भीजे हुए नेत्रोंवाला और जटाजूट हुआ और मुंडाये हुए शिरके
 बालोंवाला ॥ ४ ॥ और वानरकेसे नेत्रोंवाला और ऊपरको खुले हुए बालोंवाला और ठींगना
 तथा कटी हुई नासिकावाला ऐसे दूतोंको मुनीन्द्र रोगका नाशके लिये श्रेष्ठ नहीं कहते हैं॥५॥
 जो कठोर हो, क्रोधी हो और फांसीको हाथमें लेनेवाला और वैद्यको दोष लगानेवाला और
 तमोगुणसे संयुक्त ऐसे दूत अच्छे नहीं हैं, किंतु ये दूत विकारको बढ़ाते हैं ॥ ६ ॥ जो
 काष्ठको हाथमें लिये हो और ऊपरको हाथ किये फांसीको ग्रहण करनेवाला हो, रोगी हो और
 दीनवचनको बोलके रोता हुआ है और भीजेहुए नेत्रोंवाला हो और गमन करनेकी इच्छावाला
 हो ऐसा अशुभको करनेवाला दूत वर्जना चाहिये ॥ ७ ॥ जो रज्जुको हाथमें लेके ऊपरको
 लिये हुए हो और फांसीको हाथमें लिये हुए हो और जो दक्षिण दिशामें प्राप्त होके क्रोधसे
 चारोंद्वार बोले और वैद्यसे भी दक्षिणदिशामें स्थित होके बोले ऐसा दूत श्रेष्ठ नहीं है ॥ ८ ॥
 जो लकड़ीको हाथमें लेके टेढ़ेपैरसे स्थित होवे और बुरे वचनको बोले ऐसा दूत वैद्यकर्ममें

श्रेष्ठ नहीं है ॥ ९ ॥ जो मार्गमें शीघ्र गमन करे, बैठता और उठता हुआ मोहको प्राप्त और पैरोंको पसारकै प्रवेश करे और मस्तकपै हाथको स्थापित करे ॥ १० ॥ लोहा, काठ, तृण, इनमेंसे किसी चीजको भेदित करे अथवा इन्हींको छुवै नासिका और चूचीको छुवै ॥ ११ ॥ पृथिवीको पैरसे खोदे अथवा पृथिवीमें रेखाको करे अथवा नींदको प्राप्त हुआ हो वह दूत दुरा कहा है ॥ १२ ॥

शुभदूतके लक्षण ।

यः श्वेतवस्त्रावृतपूर्णपाणिः सम्पूर्णताम्बूलमुखः प्रशस्तः ॥
 द्विजस्तथा माणवकः सुशीलः प्रज्ञाधिकश्चाह्वयते सुखाय १३ ॥
 कुसुममुकुरवक्रं यस्य स्यात्सर्वदापि श्रमविकचसरोजं पद्मकिञ्च-
 लकपुष्पम् ॥ करतलवरवत्तं पुष्पपूगाङ्गरागं करतलधृतमेतत्सौ-
 ख्यकर्ता हि दूतः ॥ १४ ॥ आगत्योदीच्य पूर्वामथवरुणदिशमैश्री-
 माश्रित्य शान्तो दृष्ट्वा वैद्यं प्रहस्य प्रवदति निपुणं नातिनीचं
 न चोच्चम् ॥ उत्तिष्ठ त्वं प्रसादं कुरु पवन इदं सौख्यवाक्यं तनोति
 प्राज्ञैः स्वार्थं प्रकृष्टं सुखमगदकरं रोगिणां वैद्यलाभः ॥ १५ ॥
 पूर्वा दिशं समासाद्य प्रशान्तः शान्तया गिरा ॥ वैद्यं वदति
 लाभाय रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥ १६ ॥ यश्चागत्योपविष्टोऽपि
 श्लोकं वाथ सुभाषितम् ॥ वदते शान्तया वाचा सोऽपि लाभाय
 शान्तये ॥ १७ ॥ अभिवाद्यस्य वैद्यस्य क्षेमं पृच्छति यः पुनः ॥
 फलं ददाति पुष्पं वा रोगिणाञ्च सुखावहम् ॥ १८ ॥

जो सफेद वस्त्रोंको पहने हुये और किसी चीजको हाथमें लियेहुए और नागरपानको मुखमें धारण किये उत्तम देहवाला और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इन वर्णोंमें उपजा हुआ और बालक तथा शीलस्वभाववाला और बुद्धिमान् ऐसा दूत वैद्यको बुलानेमें सुखको देता है ॥ १३ ॥ जिसका मुख फूल तथा शीसाके समान स्वच्छ सब कालमें रहे और श्रमसे खिलेहुए कमलोंकी केसर और पुष्पोंवाला हो और हस्तोंके तलुओंपर भी वस्त्रको धारणकिये हो, अनेक प्रकारके फूल और सुपारीको हाथमें धारणकिये हो ऐसा दूत सुखको देनेवाला है ॥ १४ ॥ जो आके उत्तरको व पूर्वको, पश्चिम व ईशान दिशामें बैठ और वैद्यको देख हँसता हुआ न ज्यादा ऊँचेप्रकारसे और न ज्यादा नीचेप्रकारसे बोले कि, हे वैद्यराज ! उठकर प्रसन्नता करो ऐसे शुभवचनको कहे ऐसा

दूतरोगियोंके रोगको नाशनेके लिये शुभ कहा है ॥ १५ ॥ जो पूर्वदिशामें आश्रित होके प्रशांत हुआ दूत शांतवाणीसे वैद्यको बोलता है वह दूत वैद्यको सुखका देनेवाला कहा है ॥ १६ ॥ जो आँकै श्लोकको अथवा सुन्दर वचनको शांतवाणीसे बोले वह भी दूत शुभ कहा है ॥ १७ ॥ जो दूत वैद्यको प्रणामकर फिर कुशलको पूँछ फलको अथवा फूलको देता है वह रोगियोंके सुखका देनेवाला है ॥ १८ ॥

अथ दूतलक्षणोंका उपसंहार ।

यस्य सौख्यं सुखं सिद्धिस्तस्य दूता इदं विदुः॥किमत्र बहुनो-
क्तेन दूतो नरसुखावहः ॥ १९ ॥ न हितमस्त्रीपुरुषं तस्मात्तु
परिवर्जयेत् ॥ एवं जानाति यो वैद्यस्तस्य सिद्धिः सुखं श्रियः
॥ २० ॥ इति आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने दूतपरी-
क्षणलक्षणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

जिस रोगीको सुख और सिद्धिकी प्राप्ति होनेवाली है उसके दूत इस पूर्वोक्त वचनको बोलते हैं ज्यादा कहनेसे क्या है दूतही मनुष्योंको सुखका देनेवाला है ॥ १९ ॥ हीजडा दूत कर्ममें हित नहीं है इससे इसको वर्ज्य ऐसा जो वैद्य जानता है उसको सिद्धि, सुख, लक्ष्मी इनकी प्राप्ति होती है ॥ २० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता-भाषाटीकायां द्वितीयस्थाने दूतपरीक्षालक्षणं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.



अथ शकुनवर्णन ।

आत्रेय उवाच ॥ इदानीं निर्गमे पुत्र प्रवेशे वा गृहस्य च ॥

शुभाशुभानि सर्वाणि वक्ष्यामि शकुनानि च ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! अब वैद्यके चलनेमें और रोगीके घरमें प्रवेश करनेमें शुभ और अशुभ जो शकुन हैं उनको कहता हूँ ॥ १ ॥

अथ शुभ शकुन ।

राजा गजो द्विजमयूरकखञ्जरीटाश्रापः शकुन्तरजकःसितवस्त्र-
युक्तः ॥ पुत्रान्विता च युवती गणिका च कन्या श्रेयः सुखाय
यशसे प्रतिदर्शयन्ति ॥ २ ॥ लङ्का श्येनो भासहारीतचक्रो भार-

द्राजच्छिक्करच्छागसंज्ञः ॥ एते श्रेष्ठा दक्षिणे सव्यवामे वैद्या-
वेशे निर्गमे श्रेयसे च ॥ ३ ॥

राजा, हस्ती, ब्राह्मण, मोर, खंजना, पपैया, सफेद बत्तोंवाला, घोड़ी, पुत्रसे युक्त हुई स्त्री, चेश्या, कन्या प्रथम देखे हुये ये शकुन यशको और सुखको देते हैं ॥ २ ॥ ग्राममें रहनेवाली चिडिया, शिकरा, भासपक्षी, हरीचां या हरदिहा, चक्रवा, मुर्गाविशेष, छिक्कर, बकरा ये सब वैद्यके चलने और प्रवेश करनेमें दाहिने और बायें श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥

अथ दुष्ट शकुन ।

सर्पोलूको वानरःसूकरश्च गोधा ऋक्षो गिरगिटो वै शशश्च॥एते-
ऽरिष्ठा निर्गमे वा प्रवेशे कार्य्ये निर्घातोपकारेषु शस्ताः ॥४॥

सर्प, उल्लू, वानर, शूकर, गोह, रीछ, गिरगिट, शशा ये सब वैद्यके गमन और प्रवेशमें अच्छे नहीं हैं और घात करनेके कार्य्यमें ये भी शकुन अच्छे हैं ॥ ४ ॥

अथ मृगादिकोंका शकुन ।

मृगो वा पिङ्गलो वापि प्रशस्तो दक्षिणे सदा ॥

निर्गमे वा प्रवेशे च दक्षिणे शुभदायकः ॥ ५ ॥

मृग अथवा उल्लू सबकालमें दाहिने श्रेष्ठ है और वैद्यके गमनमें तथा प्रवेशमें भी दाहिने ही शुभको देते हैं ॥ ५ ॥

अथ मृगोंके संख्याका शकुन ।

संख्ययैकस्रयः पञ्चनवसप्तसमाख्यया ॥

भाग्यकाले नराणां तु मृगा यान्ति प्रदक्षिणाः ॥ ६ ॥

एक अथवा तीन अथवा पांच अथवा सात अथवा नव ऐसी संख्याके मृग मनुष्योंके भाग्यकालमें दाहिने गमन करनेवाले होते हैं ॥ ६ ॥

अथ मोरआदिकोंका शकुन ।

शिखी च भवनगोधा रासभो भृङ्गराजः पिकभषणकपोताः

पोतकी सूकरी वा ॥ तदनु विहगराजो दीर्घकण्ठादयः स्युर्वदति

शकुनवेत्ता वामतो निर्गमे वा ॥ ७ ॥ तित्तिरः क्रकरः क्रौञ्चसा-

रसाभाससूकराः ॥ खगः किरीटी वामे तु सदा शुभतरा मताः

॥ ८ ॥ भवन्ति निर्गमे चैते सर्वकार्य्यसुसिद्धये ॥ ९ ॥

मोर, घरमें रहनेवाली गोह, गधा, धूम्याटपक्षी, कोयल, कृत्ता, कबूतर, काली चिडी,

सुअरी, नीलटांच अथवा गीव, बगला इत्यादि वैद्यके गमनमें बायें श्रेष्ठ हैं ऐसे शकुनको जाननेवाले कहते हैं ॥ ७ ॥ तीतर, करढौकपक्षी, कुंज, सारस, भास, शूकर, चील, किराटी ये पक्षी सब कालमें बायें श्रेष्ठ हैं ॥ ८ ॥ ये सब वैद्यके गमनमें सर्वकार्यसिद्धिके वास्ते श्रेष्ठ हैं ॥ ९ ॥

अथ काकशकुन ।

काको दक्षिणतः श्रेष्ठो निर्गमे शुभदायकः ॥

प्रवेशे गदितः श्रेष्ठो वामतः कृष्णवायसः ॥ १० ॥

वैद्यके गमन करनेमें काक दाहिने श्रेष्ठ और शुभदायक है और वैद्यके प्रवेशमें काला काग बायें श्रेष्ठ कहा है ॥ १० ॥

अथ जाहशशाआदिकोंका शकुन ।

जाहकोऽपि शशकोऽपि मर्कटः कीर्तनश्च गदितं न सुखाय ॥

नाम चैव न च दर्शनमेषां सर्पगोधकृकलासबिडालाः ॥ ११ ॥

दर्शनं हितकरं प्रवदन्ति खञ्जरीटकमरालच्छिक्काः ॥ नामतः

शुभकराः प्रवदन्ति दार्वघाटवरटौ च शुकश्च ॥ १२ ॥

जहा, शशा, वानर और इनका कीर्तन करना, बोलना और सर्प, गोह, किरलिया, बिलाव इनका नाम और देखना भी हित नहीं है ॥ ११ ॥ खंजना, राजहंस, खातीचिडा, गांधीलमाखी, तोता इन्होंके नाम और दर्शन वैद्यको श्रेष्ठ हैं ॥ १२ ॥

अथ गमनसमयके विविधपदार्थदर्शनशकुन ।

निर्गमे विविधकार्यसिद्धये भृङ्गराजरजतं पयो जलम् ॥ मत्स्य-

मांसरुधिरं मृतकं वा धौतवासमुकुरं पिधानकम् ॥ १३ ॥ मार्गं

छिन्दन्ति मार्जाराः सर्पा वा कृकलासकाः ॥ गोधा वापि प्रवेशे

च पदमेकन्तु न ब्रजेत् ॥ १४ ॥ प्रस्खलन्ति पादशिरसो

वसनानि स्खलन्ति वा ॥ विक्रुष्टं वचनं श्रुत्वा पदमेकन्तु न

ब्रजेत् ॥ १५ ॥ गृहाणां ज्वलनं दृष्ट्वा भिद्यते सजलं घटम् ॥

पतनं भूरुहाणां च दृष्ट्वा कुर्यान्न चङ्क्रमम् ॥ १६ ॥ आक्रो-

शवचनं श्रुत्वा मार्जाराणां रुतं तथा ॥ कलहं गृहलोकस्य

दृष्ट्वा चङ्क्रमणं न च ॥ १७ ॥ कनककङ्कणमेव विभूषणं सफ-

लपुष्पमथासववारुणी ॥ फलमशोककरं ज्वरिणां तदा शुभकरा

भिषजां च शुभावहाः ॥ १८ ॥

वैद्यके गमनमें अनेक कार्योंकी सिद्धिके लिये मोरा, चांदी, दूध, पानी, मछली, मांस, रक्त, मुरदा, धोयाहुआ वस्त्र, आच्छादितहुआ शीशा इन्हेंको देखना हित है ॥ १३ ॥ वैद्यके प्रवेश करनेमें त्रिलाव, सर्प, किरलिया, गोह ये मार्गको छेदित करें तब एक पैर भी नहीं चलना ॥ १४ ॥ पैर शिथिल होजावे अथवा कपडे ढीले होजावे और घुमावचन, सुनाजावे तब एक पद भी गमन नहीं करना ॥ १५ ॥ गमनकरनेमें जलताहुआ घर दीखे और पानीसे भराहुआ कलशा फूटजावे और वृक्ष गिरपड़े इन्हेंको देखकर गमन नहीं करना ॥ १६ ॥ क्रोधके वचनको और त्रिलावके रोदनको और मनुष्योंके कलह अर्थात् लड़ाईको देखकर गमन नहीं करना ॥ १७ ॥ सोनाका कंकणआदि गहना, फल, फूल, आसव, मदिरा, सुखको देनेवाला फल इनको जो वैद्य गमनमें देखे तो ज्वरोगियोंको सुख होता है ॥ १८ ॥

अथ शकुनाध्यायका उपसंहार ।

एवं ज्ञात्वा परमनिपुणं पानमन्नादिकानां वीर्यं चैषां गुणमपि तथा कोपनं कोपवेगम् ॥ आदानं वा पुनरपि चयं कोपनस्योपचारं वैद्यो विद्वान्भवति भवने पूजितो राजलोकैः ॥ १९ ॥ इति आत्रेयभाषित हारीतोत्तरे द्वितीयस्थाने शकुनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ द्वितीयं स्थानं समाप्तम् ॥ २ ॥

ऐसे परमनिपुण पानको और अन्नआदिके वीर्य तथा गुणको और कोपको और कोपके वेगको और आदान और चयको और कोपनके उपचारको जानके वैद्य अपने स्थानमें हो राजा-लोंसे पूजाके योग्य होता है ॥ १९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशाह्यनुवा-दितहारीतसंहिताभाषाटीकायां द्वितीयस्थाने शकुनकथनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

यहां द्वितीयस्थान समाप्त हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयस्थानम् ।

अथ प्रथमोऽध्यायः १.

अथ औषधपरिज्ञानविधान ।

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि रोगसंकरकारणम् ॥ श्रमाद्व्यायामरोधाद्वा चिन्ताशोकभयादपि ॥ १ ॥ क्रोधादौषध-गन्धेन क्षयाद्वातोर्विशेषतः ॥ उदीर्य कोष्ठादग्निश्च रक्तपित्तं तथा बहिः ॥ त्वचाश्रितश्च सम्भूय ज्वरं तस्मात्करोति हि ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अब रोगोंके मिलापके कारणको कहता हूँ, परिश्रमसे और कस-
रतको नहीं करनेसे और चिंता, शोक, भयसे ॥ १ ॥ क्रोधसे, ओषधीके गन्धसे और विशेष
करके धातुके क्षयसे कोष्ठके अग्निको बढ़ाके और खालके बाहिर आश्रित हुए रक्तपित्त ज्वरको
करते हैं ॥ २ ॥

अथ ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले रोग ।

उक्तहेतुर्ज्वरो वापि ज्वरान्मन्दज्वरो भवेत् ॥३॥ मन्दान्मन्द-
तमो ज्ञेयस्तस्मादम्लातिसेवनात् ॥ जायत कामलस्तस्मात्प्ररूढे
स्याहलीमकम् ॥४॥ हलीमकाद्भवेत्पाण्डुस्तस्माद्यक्ष्मा प्रकी-
र्तितः ॥ यक्ष्मणो जायते शोफः शोफादुदरमेव च ॥५॥ तस्मा-
द्गुल्मश्च वाताद्यं गुल्माच्छ्वासोऽथ शूलिता ॥ मन्दाग्नित्वं भवेत्तस्मा-
त्स्वरभेदोऽथ रोधनः ॥६॥ एतेषां सवरोगाणामुत्पत्तिः स्याज्ज्व-
रेण तु ॥ ज्वरेण मृत्युर्विज्ञेयो न मृत्युः स्याज्ज्वरं विना ॥ ७ ॥

ऐसे कहे हुए कारणवाला ज्वर है उस ज्वरसे मन्दज्वर भी होता है ॥ ३ ॥ और मन्दज्वरसे
अतिमन्दज्वर होता है तब खड़े पदार्थको अत्यंत सेवनेसे कामलारोग उपजता है और उससे
हलीमकरोग उपजता है ॥ ४ ॥ और हलीमकसे पांडुरोग उपजता है और पांडुरोगसे यक्ष्मारोग उप-
जता है यक्ष्मारोगसे शोजारोग उपजता है और शोजारोगसे उदररोग उपजता है ॥ ५ ॥ उस उदररो-
गसे वातका गुल्मरोग उपजता है और गुल्मसे श्वासरोग और शूल उपजता है, उस शूलसे मन्दा-
ग्निरोग और मन्दाग्निसे स्वरभेदरोग उपजता है ॥ ६ ॥ ज्वरसे सब रोगोंकी उत्पत्ति होती है
ज्वरसे मृत्यु होता है, विशेष करके ज्वरके बिना मरण नहीं होता ॥ ७ ॥

अथ ज्वरसे उत्पन्न होनेवाले अन्यप्रकारके रोग ।

शृणु भेषजरोगज्ञ द्वितीयं रोगसंकरम् ॥ मन्दज्वरो भवेन्नृणा-
मतीसारस्ततो ज्वरः ॥ ८ ॥ तेन चापि भवेद्विक्का शोषो मोहो
भ्रमोऽरुचिः ॥ एतेषां शोफतो मृत्युस्तृतीयः कथ्यतेऽधुना ॥ ९ ॥

हे औषध और रोगको जाननेवाले! दूसरे रोगसंकरको सुनो, मनुष्योंके मन्दज्वर होता है उससे
अतीसार उपजता है और अतीसारके पीछे ज्वर उपजता है ॥ ८ ॥ और उससे हिचकी, शोष,
मोह, भ्रम, अरुचि ये रोग उपजते हैं इन सबोंकी शोजासे मृत्यु होती है । अब तीसरा रोगसंकर
कहाजाता है ॥ ९ ॥

अथ दिनमें शयनकरनेसे होनेवाले रोग ।

दिवास्वप्नादिदोषैर्वा प्रतिश्यायश्च जायते ॥ तस्मात्कासः समु-

द्विष्टः कासात्पीनस एव च ॥ १० ॥ तस्मात्क्षयः क्षयाच्छोफो
शोफेनाऽपि मृतिं व्रजेत् ॥

दिनमें शयन करने आदिसे जुखाम उपजता है उस जुखामसे खाँसी और खाँसीसे पीनस उप-
जता है ॥ १० ॥ और पीनससे क्षय और क्षयसे शोफा उपजता है और शोफासे मरजाता है ॥

अथ महाभयंकर रोग ।

ज्वरः क्षयश्च यक्ष्मा च कुष्ठगुल्मार्शसंग्रहाः ॥ ११ ॥ शर्करा प्रमेह
उन्मादोऽपस्मारस्तु भगन्दरः ॥ एते महाघोरतरा आप्यं कुर्वन्ति
मानवम् ॥ १२ ॥

और ज्वर, क्षय, राजरोग, कुष्ठ, गुल्म, द्रव्यासीर ॥ ११ ॥ शर्करा, प्रमेह, उन्माद, मृगीरोग,
भगन्दर ये अत्यन्त महा घोर रोग हैं, ये मनुष्यको कष्टसाध्य कर देते हैं ॥ १२ ॥

अथ सर्वव्याधियोंका हेतु ।

वातपित्तादयो दोषास्तथा श्लेष्मसमुद्भवाः ॥

जायन्ते व्याधयः सर्वे तेषां वक्ष्याम्युपक्रमम् ॥ १३ ॥

वात और पित्तसे तथा कफसे उपजे सब रोग होते हैं उनके उपचारको कहता हूँ ॥ १३ ॥

अथ वातादिदोषोंका पाचनकाल ।

वातः पचति सप्ताहात्रिरात्रात्पित्तमेव च ॥ श्लेष्मा सार्द्धदिनेनापि
विपचेद्भिषजां वर ॥ १४ ॥ द्वन्द्वजं वातपित्तञ्च नवरात्रेण
पच्यते ॥ श्लेष्मवातौ दशाहेन पञ्चाहात्पित्तश्लेष्मिकम् ॥ १५ ॥
शमनाय च द्वन्द्वानां तुय्याहात्पाचनं तथा ॥ त्रिदोषस्य च
घोरस्य पाचनं द्वादशे दिने ॥ १६ ॥ सन्निपातश्च पचति
चतुर्दशदिनैरपि ॥

वातदोष सात दिनमें पकता है, पित्तदोष तीन दिनमें पकता है, हे वैद्यवर ! कफदोष डेढ़दिनमें
पकजाता है ॥ १४ ॥ मिलेहुए वात पित्त ९ नव दिनोंमें पकते हैं, मिलेहुए कफ और वात
दशदिनमें पकते हैं, मिलेहुए पित्त और कफ पांच दिनमें पकते हैं ॥ १५ ॥ मिलेहुए दो
दोषोंकी शांतिके लिये चार दिनमें पाचन हित है और घोररूपत्रिदोषमें बारहवें दिन पाचन हित
है ॥ १६ ॥ चौदहदिनोंकरके भी सन्निपात पकता है ॥

अथ पाचनादिक्रियाका समय ।

ज्ञात्वा दोषबलं पक्वं तस्माद्देयन्तु पाचनम् ॥ १७ ॥

युक्तं निदानलक्षैस्तु तस्मात्संशमनक्रिया ॥

सो दोषको पाकके बलको जान पीछे पाचन देना चाहिये ॥ १७ ॥ निदानके लक्षणोंसे युक्तहुएको जान पीछे संशमनक्रिया करनी ॥

अथ धातुगतदोषोंका पाचनकाल ।

सप्ताहेनापि पच्यन्ते सप्तधातुगता मलाः ॥१८॥ विरादपि हि पच्यन्ते सन्निपातज्वरे मलाः ॥ विरामश्चाप्यतः प्रोक्तो ज्वरः प्रायोऽष्टमेऽहनि ॥ भवेत्सप्तमेऽहनि विरामज्वरकारणम् ॥ १९ ॥

और सात धातुओंमें प्राप्त हुए दोष सात दिनोंमें पकजाते हैं ॥१८॥ किन्तु सन्निपात ज्वरम मल देरसे भी पकते हैं । इसी लिये ज्वरका विराम आठवें दिन कहा गया है । सातमें दिन ज्वरकी शांतिका कारण नहीं होता है ॥ १९ ॥

अथ अपक्वदोषमें औषधका निषेध ।

विचार्य भेषजं दद्यादजीर्णे मतिमान्भिषक् ॥

मन्दो हि सुतरामग्निर्भेषजं न विपाचयेत् ॥ २० ॥

तब विचार कर बुद्धिमान् वैद्य औषधको नवीनज्वरमें देवे क्योंकि, अतिमंदहुआ अग्नि औषधको नहीं पकाता है अर्थात् नवीनज्वरमें औषध विना विचारे नहीं देना ॥ २० ॥

अथ लंघनका उपचार ।

सर्वेषु दोषसामेषु पाचनं लङ्घनं स्मृतम् ॥

सम्पूर्ण कच्चे दोषोंके पचानेवाला लंघन ही कहा गया है ॥

अथ लंघनप्रकरण ।

लङ्घितं मध्यलंघितं स्यादतिलङ्घितमेव च ॥ २१ ॥

लक्षणं वक्ष्यते चैषां मनुष्याणां शृणुष्व हि ॥ २२ ॥

मनुष्योंके लंघन, मध्यलंघन, अतिलंघन इन भेदोंसे लंघन, तीन प्रकारका है ॥ २१ ॥ इन्होंके लक्षण कहेजाते हैं वे मुझसे सुनो ॥ २२ ॥

अथ शुद्धलंघितका लक्षण ।

गतक्लमोऽरुचिग्लानिरिन्द्रियाणां प्रसन्नता ॥

लङ्घने दोषपाकस्तु शुद्धलङ्घितलक्षणम् ॥ २३ ॥

ग्लानि जातीरही है, रुचि उपजे और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता रहे और लंघनमें दोष पकजावे ये शुद्धलंघनके लक्षण हैं ॥ २३ ॥

अथ मध्यमलंघितका लक्षण ।

किञ्चित्क्लमोऽरुचिग्लानिरिन्द्रियाणां विवर्णता ॥ बहुतृष्णाल्प-

क्षुचापि श्रमश्चैव निषग्वर ॥ २४ ॥ किञ्चित्संस्निग्धता
गात्रे रुचिवाधातिबन्धता॥मध्यपाकी च दोषः स्यान्मध्य-
लंघितलक्षणम् ॥ २५ ॥

कुछ ग्लानि रहे, रुचि भी अल्प हो, इन्द्रियोंका वर्ण बदल जावे, बहुत तृषा लगे और भूख भी थोड़ी लगे और परिश्रम उपजे ॥ २४ ॥ और शरीरमें कुछ चिकनाईपना उपजे, रुचिकी पीड़ा हो और बंधा पड़ जावे और दोष भी कुछ पके और कुछ नहीं पके ये मध्यलंघितके लक्षण हैं ॥ २५ ॥ अथ अतिलंघितका लक्षण ।

वैकल्यं जायते तन्द्राविड्मेदश्च विनिद्रता॥वेपथुश्च शिरोऽर्तिश्च
क्षुत्क्षामं शूलमेव च ॥ २६ ॥ श्यामास्यं प्लावनं नेत्रे मूच्छासोह-
श्रमातुरम् ॥ अतिलंघितमेतैस्तु लक्षणं संविभावयेत् ॥ २७ ॥

विकलपना, तन्द्रा, विष्टाका पतलापन, ये उपजे और नींद आवे नहीं, शरीरमें कंपन और शिरमें दर्द हो, अल्प भूख लगे और शूल उपजे ॥ २६ ॥ कालामुख हो जावे और नेत्रोंसे पानी क्षिरे और नृक्ष, मोह, परिश्रम इन्होंसे पीडित हो ये सब लक्षण अतिलंघनके हैं ॥ २७ ॥

अथ लंघित करनेमें अयोग्य रोगी ।

वेलाज्वरे भूतज्वरे तथा पित्तज्वरेऽपि च॥आयासे क्रोधज वापि
भयकामज्वरेऽपि च ॥ २८ ॥ एतेषां लंघनं नैव कारयेद्विषगु-
त्तमः ॥ २९ ॥ बालं वृद्धं कृशं क्षीणमतीसारव्रणातुरम्॥गुर्विणीं
सुकुमारश्च लंघयेन्न कदाचन ॥ ३० ॥

वेलाज्वर (समय बांधकर आनेवाला), भूतज्वर, पित्तज्वर, परिश्रमका ज्वर, क्रोधज्वर, भयज्वर और कामज्वर ॥ २८ ॥ इनमें वैद्य लंघन नहीं करावे ॥ २९ ॥ बालक, वृद्ध, कृप, क्षीण, अती-साररोगी, वायरोगी, गर्भवाली स्त्री, कोमल मनुष्य इनको कभी लंघन नहीं कराना ॥ ३० ॥

अथ लंघन करनेयोग्य रोगी ।

सामे मन्दज्वरे तीव्रे रुचिविड्बन्धकेऽपि च ॥

अजीर्णे तु प्रशस्तश्च लंघनं मात्रयान्वितम् ॥ ३१ ॥

आमसहित मंदज्वर, तीक्ष्णज्वर, अरुचि, विष्टाका बंधा, अजीर्ण इनमें भी मात्रासे लंघन कराना श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ अथ आमज्वरके लक्षण ।

स्निग्धत्वञ्चातिगात्राणामुदरं गर्जयेद्भृशम् ॥ शिरोऽर्तिर्जठरा-
ध्मानः प्रतप्तं कण्ठकूजनम् ॥ ३२ ॥ अरुचिः पीतता मूत्रे
निद्रातन्द्रातुरं नरम् ॥ आमज्वरं च विज्ञाय लंघयेद्विष-
गुत्तमः ॥ ३३ ॥

शरीरके अंग अत्यंत चिकने हो जावे और पेट अत्यन्त बोले, शिरमें पीड़ा हो और पेटमें अपारा उपजे और निरंतर कंठ जलता और बोलता रहे ॥ ३२ ॥ और अरुचि हो, नेत्रोंमें पीलापन उपजे, नींद और तंद्रासे रोगी पीडित होवे ये आमज्वरके लक्षण हैं । इस रोगवालेको कुशल वैद्य लंघन करावे ॥ ३३ ॥

अथ छःप्रकारके लंघन ।

अनशनवमनविरेचनरक्तस्रुतितप्ततोयपानैः ॥

स्वेदनकर्मसहितैः षड्विधं लंघनं गदितम् ॥ ३४ ॥

नहीं खाना, वमन, जुलाब, रक्तका निकालना, गरम पानीको पीना, स्वेद अर्थात् पसीनाका देना इन भेदोंसे लंघन छः प्रकारका कहा है ॥ ३४ ॥

अथ विरतज्वरलक्षण ।

क्षुत्क्षामं श्रमशैथिल्यं भ्रमवेगज्वरातुरम् ॥

अन्तर्दाहं रक्तमूत्रं विरामज्वरलक्षणम् ॥ ३५ ॥

भूख थोड़ी लगे हलकापन हो, श्रमसे शिथिलपना हो और भ्रम, वेग, ज्वर इनसे रोगी पीडित होवे और शरीरके भीतर दाह रहे और लाल मूत्र उतरे ये विरामज्वरके लक्षण हैं अर्थात् ये लक्षण उपजें तब जानना कि, ज्वर उतरनेवाला है ॥ ३५ ॥

अथ दोषपरत्वसे लंघनकी मर्यादा ।

वातिको लंघनैः षड्भिः पैत्तिकस्तु दिनत्रयम् ॥ सप्तभिः पचते

श्लेष्मा दृष्ट्वा लंघनमाचरेत् ॥ ३६ ॥ त्रिदोषो दशरात्राणि पचते

लंघनैस्तु सः ॥ दिने पञ्चदशे प्राप्ते पचते सान्निपातिकः ॥ ३७ ॥

मुश्नेद्वा आतुरं हन्ति भवेद्वा विषमज्वरः ॥

वातदोष छः लंघनोंसे पकता है, पित्तदोष तीन दिनमें पकता है, कफदोष सात लंघनोंसे पकता है ऐसे देखके लंघनका आचरण करे ॥ ३६ ॥ त्रिदोष लंघनोंसे दशदिनकरके पकता है और पंद्रहदिनोंकरके सान्निपातदोष पकता है ॥ ३७ ॥ इनकालोंमें ये दोष रोगीको छोड़ देते हैं अथवा मारते हैं, किंवा विषमज्वरको उपजाते हैं ॥

अथ वयपरत्वसे दोषोंके कोपका प्रकार ।

बाल्य रक्तमया दोषाः कफपित्तादनंतरम् ॥ ३८ ॥ षोडशे तु

समे प्राप्ते त्रिदोषप्रभवा गदाः ॥ पञ्चविंशतिमे प्राप्ते ज्वरो वै

सान्निपातिकः ॥ ३९ ॥

मनुष्यकी बालकअवस्थामें रक्तकी प्रधानतावाले दोय रहते हैं, पीछे कफ और पित्तकी अधिकतावाले दोय हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ सोलहवां वर्ष प्राप्त होते ही त्रिदोषसे रोग उपजते हैं और विशेषकरके पचास वर्षतक सन्निपातसे ज्वररोग उपजता है ॥ ३९ ॥

अथ ज्वरवालि को काथ देनेका समय ।

वातपित्तकफैरेव रसरक्तसमुच्चयात् ॥

जायते यो ज्वरः सम्यक् पक्वे क्वाथं तु दापयेत् ॥ ४० ॥

वात, पित्त, कफ, रक्त, रक्त इनके संचयसे जो ज्वर उपजे वह ज्वर अच्छीतरह पका जावे तब काथको देवे ॥ ४० ॥

अथ काथका प्रकार ।

क्वाथः षष्टविधः प्रोक्तः पाचनः शमनस्तथा ॥

दीपनः क्लेदनः शोषी सन्तर्पणो विशेषतः ॥ ४१ ॥

पाचन, शमन, दीपन, क्लेदन, शोषण, संतर्पण इनभेदोंसे काथ छः प्रकारका कहा है ॥ ४१ ॥

अथ छः प्रकारसे काथ देनेका समय ।

पाचनश्च नरे देयं निशासु प्रविजानता ॥ पूर्वाह्णे शमनो देयोऽ-

पराह्णे दीपनः स्मृतः ॥ ४२ ॥ सन्तर्पणो भेदनश्च कलये पानाय

दापयेत् ॥ शोषणोऽपि प्रभाते च क्वाथः पाने प्रकीर्तितः ॥ ४३ ॥

वैद्यको पाचनकाथ रात्रिमें देना और शमनकाथ दिनके प्रथमकालमें देना और दुपहरीके पश्चात् दीपनकाथ देना ॥ ४२ ॥ संतर्पण और भेदनकाथ प्रभातमें देना और शोषणकाथ भी प्रभातमें ही देना ॥ ४३ ॥

अथ औषधादिक देनेके समयकी संज्ञा ।

रात्रौ यः प्रथमो यामो भूतवेला प्रकीर्तिता ॥ द्वितीयं निशि

इत्याहुर्निशीथश्च ततः परम् ॥ ४४ ॥ गणरात्रं ततो ज्ञेयं काल-

मप्रातराशिनम् ॥ पूर्वापराह्णमध्याह्नाः परार्द्धदिनशेषकाः ॥ ४५ ॥

पूर्वं दिनावसाने च भेषजानामुपक्रमः ॥ ४६ ॥

रात्रिके प्रथम यामको भूतवेला कहते हैं और दूसरे यामको निशि कहते हैं और उससे परे निशीथ कहाता है ॥ ४४ ॥ उससे परे गणरात्र कहाता है और पूर्वाह्ण, मध्याह्ण, अपराह्ण, परार्द्ध, दिनशेष ऐसी संज्ञा है ॥ ४५ ॥ प्रभातमें और सायंकालमें औषधियोंका उपचार है ॥ ४६ ॥

अथ सात प्रकारके काथ ।

पाचनो दीपनीयश्च शोधनः शमनस्तथा ॥

तर्पणः क्लेदनः शोषी काथः सप्तविधः स्मृतः ॥ ४७ ॥

पाचन, दीपन, शोधन, शमन, तर्पण, क्लेदन, शोषण ऐसे सातप्रकारके काथ कहे हैं ॥ ४७ ॥

अथ सातप्रकारके काथोंका लक्षण ।

पाचनोऽर्द्धावशेषी स्याच्छोधनो द्वादशांशकः॥क्लेदनश्चतुरङ्गश्च
शमनोऽष्टावशेषितः ॥ ४८ ॥ दीपनीयो दशांशस्तु तर्पणश्च
समांशकः॥विशोषी षोडशांशश्च क्वाथमेदाः प्रकीर्त्तिताः॥४९॥

अग्निसे उबालनेमें आधा शेष रहा पानी पाचनकाथ कहाता है और जिसमें बारहवाँ हिस्सा पानी शेष रहे वह शोधन कहाता है, जिसमें चौथा हिस्सा पानी शेष रहे वह क्लेदन कहाता है, जिसमें आठवाँ हिस्सा पानी शेष रहे, वह शमन कहाता है ॥ ४८ ॥ जिसमें दशवाँ हिस्सा पानी शेष रहे वह दीपन कहाता है, जो उवाला मात्र जावे वह तर्पण कहाता है जिसमें सोलहवाँ हिस्सा पानी शेष रहे वह शोषण कहाता है, ऐसे काथके भेद कहे हैं ॥ ४९ ॥

अथ सात प्रकारके काथोंका कार्य ।

पाचनः पचते दोषान्दीपनो दीप्यतेऽनलम्॥शोधनो मलशोधी
स्याच्छमनः शमते गदान् ॥ ५० ॥ तर्पणस्तपत धातून्क्लेदी
हृत्क्लेदकारकः॥विशोषी शोषमाधत्ते तस्मात्क्वाथं परीक्षयेत्॥
॥ ५१ ॥ क्लेदी विशोषी विज्ञाय वामनं कारयेन्नरम् ॥

पाचनकाथ दोषोंको पकाता है, दीपनकाथ जठराग्निको प्रज्वलित करता है, शोधनकाथ मलको शोधता है, शमनकाथ रोगोंको शांत करता है ॥ ५० ॥ तर्पणकाथ धातुओंको तृप्त करता है, क्लेदनकाथ हृदयमें क्लेदको करता है, शोषणकाथ शोषको करता है, इसवास्ते काथकी परीक्षा करनी ॥ ५१ ॥ मनुष्यको क्लेदवाला और विशेषकरके शोषवाला जानके वमन कराना चाहिये ।

अथ काथरक्षणका उपदेश ।

न लङ्घयेत्क्वाथकृतं नान्तराणि च चालयेत्॥५२॥न शोषये-
त्पुनः स्थाप्यो नाशुचौ न चकासते॥स च क्वाथो न शस्तः
स्याद्रोगसङ्करकारणम् ॥ ५३ ॥ न शोषयेत्पुनः क्वाथं न च
भूमिगतं पुनः ॥ दोषसंशमनेनैते प्रशस्ता गदकर्मणि ॥५४ ॥

और बनते हुए काथको लावे नहीं और बीचमें चलावे किंतु यथायोग्य पकावे ॥ ९२ ॥
स्थापित किये काथको फिर शोषित करे नहीं और अशुद्ध जगहमें काथको बनावे नहीं और
अंधेरेमें भी काथ न बनावे क्योंकि ऐसा काथ अच्छा नहीं होता किंतु रोगोंके मिलापका कारण
होता है ॥ ९३ ॥ काथको फिर शोषित नहीं करे और पृथिवीमें प्राप्तहुए काथको फिर नहीं
ग्रहण करे क्योंकि रोगके नाशमें दोषको शांत करनेमें काथ श्रेष्ठ है इस लिये ओपधिके काममें
काथ अच्छा है ॥ ९४ ॥

अथ कायसंबन्धी अनिष्ट लक्षण ।

विदीर्यत पततेऽपि स्फुटते काथतो जनः ॥

एतेऽनिष्टकराः काथा न दोषशमनाय च ॥ ९५ ॥

चुरे काथसे रोगी विदीर्ण हो जाता है, गिरजाता है और फटजाता है । ये चुरे काथ दुःखको
देते हैं और दोषको शांत नहीं करते ॥ ९५ ॥

अथ हीनकाथके लक्षण ।

एतेर्हीनलक्षणैर्हीनैस्त्वाथं दृष्ट्वा परीक्षयेत् ॥ ९६ ॥ कृष्णं नीलं

वर्णं रक्तं पिच्छिलं शिथिलञ्च यत् ॥ दग्धं कुणपगन्धञ्च विस्रग-

न्धं विवर्जयेत् ॥ ९७ ॥ एतैरसाध्यं जानीयाद्भोगिणं नात्र संशयः ॥

इन वर्णोक्तलक्षणोंसे हीनहुए काथकी परीक्षा करनी ॥ ९६ ॥ काला, नीला, कठिन, लाल
झागोंवाला, शिथिल, दग्ध हुआ, मुर्दाकेसी गन्धवाला, कच्चा गन्धवाला, ऐसे काथको वर्ज
देवे ॥ ९७ ॥ इस तरहके काथसे रोगी असाध्य होजाता है इसमें संशय नहीं ॥

अथ उत्तम काथका लक्षण ।

द्रव्यगुणानुवर्णेन द्रव्यगन्धं विनिर्दिशेत् ॥ ९८ ॥

तद्द्रविशुद्धं सच्छायं कषायममृतोपमम् ॥

द्रव्यके गुणके अनुवन्धसे द्रव्यके गन्धको कहे ॥ ९८ ॥ विशेषकरके शुद्ध और सुन्दर
कांतिवाला काथ अमृतके समान होता है ॥

अथ वातज्वरमें पाचनका विधि ।

वातज्वरे लङ्घनान्ते दत्त्वा चान्नं तथोपरि ॥

निशासु पाचनं देयं ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ ९९ ॥

वातज्वर^{में} लघनके अन्तमें अन्नको देकर रातको पाचन काथ देवे परन्तु दोषके बल और
अबलको देखे ॥ ९९ ॥

अथ पित्तज्वर और कफज्वरमें पाचनका विधि ।

त्रिरात्रे पित्तिके देयं श्लेष्मिके प्रथमेऽहनि ॥

पित्तिके ज्वरमें तीसरे दिन और कफज्वरमें प्रथम दिन पाचन देना ॥

अथ पाचनका निषेध ।

अविज्ञाते च दोषे च पाचनं न प्रदापयेत् ॥ ६० ॥

और विना जाने दोषमें पाचन नहीं देना ॥ ६० ॥

अथ ज्वरकी मर्यादा ।

सप्तरात्राद्धि मर्यादा ज्वरेणैवोपलक्ष्यत ॥

तस्मान्नवज्वरे पीतं दोषकृन्न च दोषहृत् ॥ ६१ ॥

ज्वरकी मर्यादा सातदिनकी प्रसिद्ध है इस वास्ते नवीन ज्वरमें पानकिया पाचनरूपी औषध दोषको करता है किंतु दोषको हरता नहीं है ॥ ६१ ॥

अथ ज्वरमें पाचनादि देनेकी मर्यादा ।

तस्मादादौ प्रदेयन्तु पाचनञ्च दिनत्रयम् ॥ शमनीयं प्रदेयन्तु
पञ्चरात्रं ततः परम् ॥ ६२ ॥ शोधनं दीपनीयन्तु एकरात्रं प्रदा-
पयेत् ॥ ६३ ॥

इसलिये आदिमें तीनदिन पाचनको देवे उसके पीछे पांचरात शमनकाथको देवे ॥ ६२ ॥
शोधन और दीपनकाथको एकदिन देवे ॥ ६३ ॥

अथ काथके विपत्तिका प्रकार ।

क्वाथपाने कृमो मूर्छा वैकल्यञ्च प्रदृश्यते ॥

वमनञ्च तदा प्रोक्तं शमनं पथ्यकेऽपि वा ॥ ६४ ॥

जब काथके पीनेमें ग्लानि, मूर्छा, विकलपना ये उपजें तब वमनसंज्ञक औषध देना और पथ्यमें शमनकाथ देना ॥ ६४ ॥

अथ पथ्यकी आवश्यकता ।

सदा पथ्यं प्रयोक्तव्यं नापथ्येन स सिध्यति ॥ औषधेन विना
पथ्यैः सिद्ध्यते भिषगुत्तमैः ॥ ६५ ॥ विना पथ्यं न साध्यः
स्यादौषधानां शतैरपि ॥

सब कालमें पथ्य देना चाहिये क्योंकि, अपथ्यसे कोई भी रोग सिद्ध नहीं होता किंतु औष-
धिके बिना भी पथ्योंकरके रोग शांत हो जाता है ॥ ६५ ॥ सैकड़ों औषधियोंको सेवतेहुए भी
पथ्यके बिना रोग शांत नहीं होता ॥

अथ ज्वरितको पथ्यभोजनका उपदेश ।

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यस्यारुचिर्भवेत् ॥ ६६ ॥ अन्नकाले-
ष्वभुञ्जानो हीयत प्रियतेऽपि वा ॥ स क्षीणः कृच्छ्रतां याति

यात्यसाध्यत्वमेव च ॥ ६७ ॥ तस्माद्रक्षेद्रुलं पुंसां बलशान्तिर्हि जीवितम् ॥

और ज्वरवाला रोगी पथ्यको सेवे चाहे रोगीको अरुचि भी हो तब भी ॥ ६६ ॥ अन्नकालमें नहीं भोजन करता हुआ ज्वररोगी क्षीण हो जाता है अथवा मर जाता है और क्षीण हुआ वह कष्टपनेको प्राप्त होके पीछे असाध्यपनेको प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ इसकारणसे मनुष्योंके बलकी रक्षा करनी । क्योंकि, बलकी शान्ति ही जीवन कहा है ॥

लंघिते चैव दोषे च यवागूपाणमाचरेत् ॥ ६८ ॥

शालिपट्टिकमुद्रं च यूपं शस्तं वदन्ति हि ॥ ६९ ॥

लेवनके करनेमें और दोषमें यवागूको पीता रहे ॥ ६८ ॥ सांठी चावल और मूंगका यूप ही लेवनमें श्रेष्ठ कहते हैं ॥ ६९ ॥

अथ मध्यलंघितको अन्नविधि ।

पञ्चकोलकसंसिद्धा यवागूर्मध्यलंघिते ॥

भवेत्प्रशस्ता सततं तस्य सन्तर्पणं हितम् ॥ ७० ॥

पीपल, पीपलामूल, चीता, चव्य और सोंठ इन पांचों मूलको कूटकर काथ बनावे इस काथमें तंदुलकी या मूंगकी यवागू बनावे और पकावे, फिर सिद्ध हुई यह यवागू मध्यलंघितको प्रशस्त है और रोगीको तृप्त रखती है ॥ ७० ॥

अथ क्लमशान्तिकी विधि ।

आजं दुग्धं गुडोपेतं पानाय ज्वरशान्तये ॥

तेन क्लमविनाशः स्यात्सुखमाशु प्रपद्यते ॥ ७१ ॥

बकरीके दूधमें गुड मिला पीवे इसे ज्वरकी शान्ति होती है तब ग्लानिका नाश और तत्काल सुख उपजता है ॥ ७१ ॥

अथ काथपीनेकी विधि ।

उदीच्यां वा पूर्वस्यां वाऽभिमुखंचोपवेशयेत् ॥ पाययेत्काथपानं

च कृत्वा ब्राह्मणवाचनम् ॥ ७२ ॥ पानपात्रमधः कृत्वा शयीत

ज्ञानमेव च ॥ पीत्वा चैव तृषात्तोऽपि न जलं पाययेत्क्षणम्

॥ ७३ ॥ गतक्लमं नरं दृष्ट्वा तदा संपद्यते सुखम् ॥ ७४ ॥ इति

आत्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भेषजपरिज्ञानविधिर्नाम

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

उत्तरको अथवा पूर्वको या अपनी और मुख कराकर रोगीको बैठावे पीछे ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराके काथका पान करावे ॥ ७२ ॥ पीछे पीनेके पात्रको अधोमुख स्थापित कर जागता हुआ शयन करे और काथका पान करके तृषावाला भी दो बडीतक पानीको नहीं पीवे ॥ ७३ ॥ जब रोगीकी ग्लानि दूर होजावे तब रोगी मुखको प्राप्त होता है ॥ ७४ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशाह्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने औषधपरिज्ञानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ ज्वराचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥अनभिज्ञश्चिकित्सायां शास्त्राणां पठनेन किम् ॥

यथा पलालं बीजस्तु रहितं निष्प्रयोजकम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जो वैद्य चिकित्साकर्ममें कुशल नहीं हो और वैद्यशास्त्रके पठनमें कुशल हो तिसको क्या फल होता है अर्थात् कुछ नहीं अन्नसे रहित निष्प्रयोजन तुषसे क्या तत्त्व निकलता है? ॥ १ ॥

अथ कुवैद्यनिन्दा ।

वरमाशीविषविषं कथितं ताम्रमेव च॥ पीतमत्यग्निसन्तता भक्षिता वाप्ययोगुडाः ॥२॥ न तु श्रुतवतां वेशं विभ्रतां शरणागतात् ॥ ब्रहीतुमन्नपानं वा पित्तं वा रोगपीडितात् ॥ ३ ॥

सर्पआदिका विष, उवाला हुआ तांबा, अत्यंत अग्निमें तप्त किये लोहाके गोले इन सर्वोंको सेवना भी हित है ॥ २ ॥ परंतु वैद्योंके वेशको धारण करनेवाले और रोगियोंसे अन्न, पान, धन इनको हरनेवाले ऐसे वद्योंकी औषधको नहीं खावे ॥ ३ ॥

अथ वैद्यका लक्षण ।

तदेव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय जायते ॥

स चैव भिषजां श्रेष्ठो रोगेभ्यो यो विमोक्षयेत् ॥ ४ ॥

जो आरोग्यको करता है वही योग्य औषध है और जो रोगोंसे छुड़ावे वह ही उत्तम वैद्य कहाता है ॥ ४ ॥

अथ वैद्यकशास्त्रपठनकी आवश्यकता ।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोगवारणहेतुना॥युक्ता निदानलक्षैस्तु संहि-

तोपायसंयुता ॥ ५ ॥ पठितव्या समासेन संहिताज्ञानहेतवे ॥

ज्ञात्वा रोगप्रतीकारं ततः कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ६ ॥

इसलिये रोगके निवारण करनेवाले कारणसे संयुक्त सब उपाय करके निदानके लक्षण और रोगोंसे तथा रोगप्रतीकारकी चिकित्सासे अन्वित हुई वैद्यकसंहिता ॥ ५ ॥ विस्तार करके पठितकरनी योग्य है, संहिताके ज्ञानके लिये और रोगको दूर करनेके उपायको जानकर पीछे चिकित्साको करे ॥ ६ ॥

रोग नहीं जाननेसे हानि ।

अविज्ञाय रुजं सम्यङ्मोहादारभते क्रियाः ॥

विधानज्ञोऽथ शास्त्रज्ञो न तत्सिद्धिः प्रजायते ॥ ७ ॥

जो वैद्य रोगको नहीं जानके क्रियाका आरंभ करना है वह विधानको और शास्त्रको जानने-वाला भी सिद्धि को प्राप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

अथ वैद्यशास्त्रज्ञाताको फल ।

निदानं रोगविज्ञानं भेषजानां गुणागुणम् ॥

विज्ञाय कुरुते यस्तु तस्य सिद्धिर्न दूरतः ॥ ८ ॥

निदान और रोगको जानना, औषधियोंके गुण और दोष इनको जानके जो वैद्य क्रियाको दूर नहीं करता है उसको शीघ्र सिद्धि होती है ॥ ८ ॥

रोगादिक जाननेकी आवश्यकता ।

आदावेव रुजां ज्ञानं साध्यासाध्यं विचक्षणः ॥

याप्यं सर्वरुजाश्चैव ततः कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ९ ॥

आदिमें वैद्य रोगके ज्ञानको और साध्य और असाध्यरूपको तथा कष्टसाध्यपनेको जाते पीछे क्रियाको करे ॥ ९ ॥

अथ देशकालआदिक जाननेकी आवश्यकता ।

देशं कालं वयो वह्निःसात्म्यं प्रकृतिभेषजम् ॥

एवं विज्ञाय सदैवस्ततः कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १० ॥

देश, काल, अवस्था, अग्नि, स्वभाव, प्रकृति इनको जानके कुशल वैद्य चिकित्साको करे ॥ १० ॥

अथ रोगहेतुवातादिदोष ।

नास्ति रोगो विना दोषैर्दोषा वातादयः स्मृताः ॥

ज्वरादयः स्मृता रोगास्तान्सम्यक्परिलक्षयेत् ॥ ११ ॥

दोषोंके बिना राग नहीं होता और वे दोष वातआदि कहाते हैं और ज्वरआदि रोग हैं उन सबोंकी अच्छीतरह परीक्षा करे ॥ ११ ॥

अथ रोगपरीक्षाके प्रकार ।

आत्मानाञ्चोपदेशेन प्रत्यक्षीकरणेन च॥आतुरादिदृशः स्पर्शा-
च्छीतादिप्रश्नतः परम्॥१२॥दर्शनस्पर्शनप्रश्नै रोगज्ञानं त्रिधा
मतम्॥सुखाक्षिदर्शनात्स्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतः परम् ॥ १३ ॥

वैद्योंके उपदेशसे और प्रत्यक्षीकरणसे और वैद्य आदिकी दृष्टिसे और स्पर्शसे और शीतआदिके पूछनेसे रोगका ज्ञान करे ॥ १२ ॥ दर्शन, स्पर्श और प्रश्न इन भेदोंसे रोगोंका तीन प्रकारका ज्ञान होता है, तहां मुख और नेत्र इन्होंके दर्शनसे, अंगके शीत उष्ण आदिक स्पर्शसे और कैसा है क्या क्या होता है इत्यादिक प्रश्नसे तीन प्रकारका रोग ज्ञान होता है ॥ १३ ॥

अथ साध्यासाध्यका लक्षण ।

कृच्छ्रयाप्यसुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते ॥

असाध्यो द्विविधो ज्ञेयः कृच्छ्रः कृच्छ्रतमोऽपरः ॥१४॥

कष्टसाध्य और सुखसाध्य इन भेदोंसे साध्य दो प्रकारका है और कष्टसाध्य और अतिकष्ट-साध्य इन भेदोंसे असाध्यभी दो प्रकारका है ॥ १४ ॥

अथ साध्यादिकहोनेका कारण ।

याप्याःकेचित्प्रकृत्यैव याप्याःसाध्या उपेक्षया॥स्वभावाद्वा-
धयः साध्याः केचित्साध्या उपेक्षिताः॥१५॥ साध्या याप्य-
त्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा॥घ्नन्ति प्राणांश्च साध्या-
स्तुनराणामक्रियावताम् ॥ १६ ॥

कोई रोग स्वभावसे ही कष्टसाध्य होते हैं और कोई साध्यरोग चिकित्सासे अभावसे कष्टसाध्य होते हैं और कितनेक रोग स्वभावसे साध्य होते हैं और कितनेक नहीं चिकित्सित किये रोग साध्य होते हैं ॥ १५ ॥ साध्यरोग कष्टसाध्यपनेको प्राप्त होते हैं और कष्टसाध्यरोग असाध्यपनेको प्राप्त होते हैं, इससे क्रियाको नहीं करनेवाले मनुष्योंको साध्यरोगभी मार देते हैं ॥ १६ ॥

उपद्रवका लक्षण ।

व्याधेरुपरि यो व्याधिःसोपद्रव उदाहृतः॥सोपद्रवा न जीवन्ति

१ 'प्रत्यक्षीकरणेन च' इत्यत्र प्रत्यक्षादनुमानतः इति वा पाठान्तरम् । २ आतुरे आदिर्येषां तेषां मिषर्जा दशा विचारेणार्थात् पूर्ववच्चैः किमाचरितमित्यपि विचारणीयम् । अथवा तुरस्य रोगिण आदिदृशः प्रथमदृष्टेः दर्शनादितिभावात्तत्र पाठान्तरम् आतुरादिदृशः ।

जीवन्ति निरुपद्रवाः ॥१७॥ ज्ञात्वाल्पकोऽपि भिषजा परि-
चिन्तनीयो नोपेक्षणीय इति रोगगणो ह्यसाध्यः ॥ स्वल्पोऽप्य-
रिर्गल्लवहिसमानरूप आतोबलो न शमतामुपयाति काले १८
शत्रुः स्थानबलं प्राप्य विक्रमं कुरुते वली ॥ तथा धात्वन्तरं प्राप्य
विक्रमं कुरुते गदः ॥ १९ ॥

रोगके ऊपर जो रोग उपजे वह उपद्रवसहित रोग कहाता है उपद्रवसहित रोगवाले नहीं
जीवते हैं और उपद्रवसे रहित रोगवाले जीवते हैं ॥ १७ ॥ अल्परोग भी वैद्योंको चिंतन
करना चाहिये किंतु असाध्य रोग छोड़ना नहीं चाहिये छोटासा भी वैरी विष और अग्निके समान
है बलको पाकर फिर वह तत्काल ठंडा नहीं होता ॥ १८ ॥ जैसे वली शत्रुं स्थान और
बलको प्राप्तहोकर पराक्रमको करता है तैसे ही धातुओंके अंतरमें प्राप्तहुआ रोग पराक्रमको करता है १९

रोग निर्मूल करनेकी आज्ञा ।

बहुविधपरिकार्येणापि नीतं शमं यत्कृशमपि हि न धार्य्य रोग-
मूलं विविज्ञ ॥ कथमपि बहुपथ्यैर्व्यावृत्तो वा वलिष्ठो न शमय-
ति हि रोगं बाल्यमात्रेण सम्यक् ॥ २० ॥

हे विविज्ञ ! बहुतसे मांतिके कर्मोंसे शान्त किया अलग भी रोग नहीं रहने देना चाहिये ।
क्योंकि, बहुतसे अपथ्योंकरके व्यावृत्त हुआ अत्यंत बलवान् रोग शान्तिको प्राप्त नहीं होता ॥ २० ॥

सूक्ष्म भी रोग शत्रुसमान है ।

यथा स्वल्पं विषं तीव्रं यथा स्वल्पो भुजङ्गमः ॥

यथा स्वल्पतरश्चाग्निस्तथा सूक्ष्मोऽपि रुग्निषुः ॥ २१ ॥

जैसे स्वल्प विष तीक्ष्ण होता है, जैसे छोटासा सर्प बुरा होता है, जैसे अत्यंत स्वल्प भी अग्नि
बढ़ती है तैसे सूक्ष्म रोग भी वैरी होता है ॥ २१ ॥

रोगके फैलनके प्रथम ही प्रतीकार करना ।

यावत्स्थानं समाश्रित्य विकारं कुरुते गदः ॥

तावत्तस्य प्रतीकारः स्थानत्यागाद्वलीयसः ॥ २२ ॥

जबतक स्थानमें आश्रित होके रोग विकारको करता है, जबतक वह उस स्थानको नहीं त्यागे
तबतक उस बलवाले रोगकी क्रिया करता रहे ॥ २२ ॥

व्याधियोंका प्रकार ।

कर्मजा व्याधयः केचिदोषजाः सन्ति चापरे ॥

सहजाः कथिताश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधा मताः ॥ २३ ॥

कितनेक रोग कर्मसे उपजते हैं और कितनेक रोग दोषसे उपजते हैं और कितनेक रोग शरीरके साथ उपजते हैं ऐसे तीन प्रकारके रोग कहे हैं ॥ २३ ॥

तीन प्रकारके व्याधियोंका लक्षण ।

बहुभिरुपचारैस्तु ये न यान्ति शमं ततः॥ते कर्मजाः समुद्दिष्टा
व्याधयो दारुणाः पुनः ॥२४॥दोषजा वातपित्ताद्याः सहजाः
क्षुत्तृषादयः ॥ २५ ॥

जो बहुतसी चिकित्साके करनेसे शांतिको प्राप्त नहीं होते उनको कर्मसे उपजे रोग जानना, ये दारुण हैं ॥ २४ ॥ वातपित्तादिसे उपजे रोग दोषज कहाते हैं, भूख और तृषाआदिके साथ उपजनेवाले सहज कहलाते हैं ॥ २५ ॥

ज्वरकी व्यापकता ।

तस्माद्दक्ष्यामि चादौ ज्वरमतुल्यदं वाजिनां कुञ्जराणां मानुष्या-
णां पशूनामृगमहिषखरोष्ट्रादिवानस्पतीनाम् ॥ वल्लीनामोषधी-
नां क्षितिधरफणिनां पत्रिणां मूषिकाणामेषः प्राणापहारी ज्वर
इति गदितो दुर्निवारो हि लोके ॥ २६ ॥

इस लिये आदिमें घोड़ा, हस्ती, मनुष्य, गाय आदि, पशु मृग, भैंसा, ऊँट आदि, जीव, वन-
स्पति, बेल, ओषधी, सर्प, पक्षी, मूषा इनके ज्वरको मैं कहता हूँ, यह ज्वर प्राणोंको हरता है
और संसारमें दुःखसे दूर होता है ॥ २६ ॥

अथ जातिपरत्वमें ज्वरकी असाध्यता ।

असाध्योऽयं ज्वरो व्याधिर्गोमहिष्यश्वकुञ्जरे ॥

किञ्चित्कृच्छ्रतमो नृणामन्येषां जीवघातकः ॥ २७ ॥

गाय, भैंसा, हस्ती, इनमें ज्वर असाध्य कहा है और मनुष्योंका ज्वर कुछ कष्टसाध्य कहा है
और शेष रहे जीवोंको ज्वर मारता है ॥ २७ ॥

अथ ज्वरकी बलिष्ठता ।

यथा मृगाणां मृगयुर्बलिष्ठस्तथा गदानां प्रबलो ज्वरोऽयम् ॥

नान्योऽपिशक्तो मनुजं विहाय सोढुं भुवि प्राणभृतं सुराद्यम् ॥ २८ ॥

जैसे मृगोंमें सिंह बलवान् है वैसे ही रोगोंमें यह ज्वर प्रबल है । कोई भी अन्यजीव संसारमें
प्राणको धारण करनेवाले पृथिवीमें देव मनुष्यके बिना ज्वरको सह नहीं सकता है ॥ २८ ॥

अथ मनुष्य ज्वर सहसकता है इसका कारण ।

कमणालभते यस्माद्देवत्वं मानुषो दिवि॥ततश्चैवच्युतःस्वर्गा-
न्मानुष्यमपि वर्तते ॥२९॥ तस्मात्स देवभावात् सहते मानुषो
ज्वरम् ॥ शेषाः सव विपद्यन्ते पशुवर्गा ज्वरार्दिताः ॥ ३० ॥

कनसे मनुष्य त्थर्ममें जाके देवताके शरीरको प्राप्त होता है, पीछे स्वर्गसे अष्ट हुआ मनुष्य
शरीरको प्राप्त होता है ॥ २९ ॥ इस कारणसे देवभावकरके मनुष्य ज्वरको सहते हैं शेष रहे
पशुओंके समूह ज्वरसे मर जाते हैं ३० ॥

अथ सर्वरोगाम ज्वरकी श्रेष्ठता ।

रोगाणां रोगराजोऽयं यथा मृगपतिर्मृगे ॥ दाहात्मसु यथा वह्नि-
स्तथा रोगे ज्वरोऽधिकः॥रुद्रक्रोधाग्निसम्भूतःसर्वभूतप्रतापनः३१॥

जैसे वनमें पशुओंका राजा सिंह है तसे शरीरमें रोगोंका राजा ज्वर है, जैसे दाह करनेवालोंमें
अग्नि अधिक है तैसे ही ज्वर भी अधिक है, महादेवके क्रोधरूपी अग्निसे उपजनेवाला और सब
जीवोंको तपानेवाला ऐसा ज्वर है ॥ ३१ ॥

अथ पृथक् प्राणिभेदसे ज्वरके नामांतर ।

पातकः स तु नागानामभितापस्तु वाजिनाम् ॥ गवामीश्वरसं-
ज्ञस्तु मानवानां ज्वरो मतः ॥ ३२ ॥ दारिद्रो महिषीणां तु
मृगरोगो मृगेषु च ॥ अजावीनां प्रलापाख्यः करभेष्वलसो
भवेत् ॥ ३३ ॥ शुनोऽलर्कः समाख्यातो मत्स्येष्विन्द्रमतो यतः
पक्षिणामभिघातस्तु व्यालेष्वैक्षितसंज्ञितः ॥ ३४ ॥ जलस्य
नीलिका प्रायो भूमिषूषरनामतः ॥ वृक्षस्य कोटराक्षस्तु ज्वरः
सर्वत्र दृश्यते ॥ ३५ ॥

हस्तिर्योके पातकनामसे ज्वर होता है, घोड़ोंके अभितापनामसे ज्वर होता है, गायोंके ईश्वरनाम
वाला ज्वर होता है, मनुष्योंके ज्वरनामसे ही प्रसिद्ध है ॥ ३२ ॥ भैंसोंके दारिद्र नामसे ज्वर होता है
मृगोंमें ज्वर मृगरोगनामसे प्रसिद्ध है, बकरी और भेड़ोंके ज्वर प्रलापाख्यनामसे होता है, ऊंटोंमें
ज्वर अलसनामसे होता है ॥ ३३ ॥ कुत्ताके ज्वर अलर्क नामसे और मछलियोंमें ज्वर इन्द्रमतनामसे
उपजता है, पक्षियोंके ज्वर अभिघातनामसे, सर्पोंमें केंचलीनामसे ज्वर उपजता है ॥ ३४ ॥ और

जलमें ज्वर सिवालनामसे उपजता है पृथिवीमें ऊपरनामसे ज्वर उपजता है, वृक्षमें कोटराक्ष-
नामसे ज्वर उपजता है ऐसे सब जगह ज्वर दीखता है ॥ ३५ ॥

अथ ज्वरका स्वरूप ।

त्रिपाद्भस्मप्रहरणस्त्रिशिराः सुमहोदरः॥वैयात्रचर्मवसनः कपि-
लोज्ज्वलविग्रहः ॥ ३६ ॥ पिङ्गक्षणोद्वस्वजङ्घो विमत्स्थो बल-
वानयम्॥पुरुषो लोकनाशाय चासौ ज्वर इति स्मृतः ॥३७॥
दग्धेन्धनो यथावह्निर्धातून्हत्वा यथा विषम्॥कृतकृत्यो ब्रजे-
च्छान्तिं देहं हत्वा तथा ज्वरः ॥ ३८ ॥

तीन पैरोंवाला, भस्मको धारण करनेवाला, तीन शिरोंवाला, सुंदर बड़ा पेटवाला, सिंहके चामके
घट्टोंको पहननेवाला, पीलेवर्णवाला और प्रकाशित शरीरवाला ॥ ३६ ॥ पीले नेत्रोंवाला, ठीगनी
जांघोंवाला, विशेषकर पुरुषोंमें रहनेवाला, बलवान् और पुरुष संज्ञक लोकका नाश करनेवाला,
वह ज्वर कहाता है ॥ ३७ ॥ जैसे इंधनको दग्ध करके अग्नि और धातुओंको दग्ध करके विष
कृतकृत्य होके शान्त हो जाता है तैसे देहका नाश कर ज्वर शान्त हो जाता है ॥ ३८ ॥

अथ ज्वरकी उत्पत्ति ।

तस्मात्तस्य सप्तुत्पत्तिं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ चतुर्विधो महा-
घोरो जातो येन तु चाष्टधा ॥ दक्षाद्धरप्रशमनः कुपितो हि
महेश्वरः ॥ ३९ ॥ श्वासं मुमोच दयिताविधुरश्च तीव्रं तेन ज्वरोऽष्ट-
विधसम्भवतोऽष्टधा स्यात् ॥ ४० ॥

इस कारणसे हे पुत्र ! उसकी उत्पत्तिको कहता हूं सुनो । चारप्रकारका महाघोररूपी ज्वर है
फिर उससे आठ प्रकारका हुआ है सो दक्षप्रजापतिसे कुपित हुए महेश्वर ॥ ३९ ॥ सतीजीके
चास्ते आठ बार श्वासको छोडते मये उससे ज्वर आठ प्रकारका हुआ है ॥ ४० ॥

अथ ज्वरकी निदानसहित संप्राप्ति ।

वातादिपित्तकफशोणितसन्निधानात्स्वेच्छान्नपाननिरतादृतुवैप-
रीत्यात्॥दोषा मलाशयगता जठराग्निबाह्याः संप्रेरयन्ति रुधिरा-
श्रितववह्निपातम् ॥ तेषां ततो हि दधते ज्वरनाम सिद्धम् ॥ ४१ ॥

वात, पित्त, कफ, रक्त, इनके सन्निधानसे और अपनी इच्छापूर्वक अन्न और पानके सेवनसे
और ऋतुके विपरीतपनेसे मलाशयमें प्राप्त हुए पेटके अग्निको बाहर हुए दोष रक्तसे
आश्रित हुए अग्निके पातको प्रेरते हैं उसको ज्वर कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ ज्वरके हेतु ।

व्यायामक्रोधधृत्त्यादिजनननाच्छीतसम्भवात् ॥ ४२ ॥ विरुद्धा-
न्निशेषेण पाननिर्झरवारिणा ॥ कूपोदकेन सन्तुष्टस्तिग्मतीव्रां-
शुरश्मिभिः ॥ ४३ ॥ गन्धवातेन दोषाणामभिघाताभिशापतः ॥
ज्वरोनास महाघोरो जायते मनुजे भृशम् ॥ ४४ ॥

और कसरत, भोजनके ऊपर भोजन, क्रोध, इनके उपजनेसे और शीतके सम्भवसे भी
ज्वर उपजता है ॥ ४२ ॥ विरुद्ध अन्नआदिके खानेसे, झरने अथवा कुवाके पानीसे और
तेज नृष्यकी किरणोंकी गरमाईसे ॥ ४३ ॥ दुरे गन्धसे, वात आदि दोषोंसे, चोटके लगनेसे
और द्वात्मणके शापसे मनुष्यके देहमें महाघोररूपी ज्वरनाम उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥

अथ प्रकटहुए ज्वरका लक्षण ।

श्रमा जडत्वं नयनप्लवः स्याद्रोमोद्गमो धुर्धुरकञ्च जृम्भा ॥
वैवर्णना द्वेषसशोषतास्ये ज्वरस्य च व्यक्तकलक्षणानि ॥ ४५ ॥

शरीरमें श्रमावट और जड़पना, नेत्रोंसे पानी गिरे, रोमावली खड़ी होवे, कंठमें धुर्धुरापना
और जँभाई आवे, वर्ण बदलजावे, अन्नसे वैर होवे, मुखमें शोष उपजे ये प्रकट हुए ज्वरके
लक्षण हैं ॥ ४५ ॥

अथ ज्वरकी विशेषता ।

समीरणे च वै जृम्भाकफादैन्यं निषीदति ॥ पित्तान्नयनसन्तापः
सर्वं वै सान्निपातिके ॥ तस्माद्वक्ष्ये प्रतीकारं येन सम्पद्यते
सुखम् ॥ ४६ ॥

वातकी अधिकतासे जँभाई आवे, कफसे दीनपना उपजे और शिथिल हो जावे, पित्तसे नेत्रोंमें
सन्ताप हो, सन्निपातमें सब लक्षण मिले इस वास्ते जिस करिके सुख उत्पन्न हो, ऐसा उपाय
करना सो कहूंगा ॥ ४६ ॥

अथ वातज्वरमें पाचन ।

वचा यवानी धनिका सविश्वा पिबेत्कषायं निशि सोष्णमेवम् ॥
स वातिके वातरुजे ज्वराणां सम्पाचके स्यान्मनुजे सुखाय ४७

वच, अजवायन, धनियाँ, सोंठ इनके गरम क्वाथको रात्रिमें पीवे यह पाचन वातज्वरमें और
वातकी पीडामें मनुष्यको सुख देता है ॥ ४७ ॥

अथ पित्तज्वरका पाचन ।

निशा सनिम्बा मृतवल्लिका च धान्यं च विश्वा सगुडः कषायः ॥

निशासु क्षीरेण सकोलमिश्रं पानं सपित्तज्वरपाचनाय ॥४८॥

हलदी, नीमकी छाल, गिलोय, धनियां, सोंठ इनका क्वाथ बनाकर उसमें गुड मिलाकर पीवे अथवा दूधमें गजपीपलके चूर्णको मिलाकर रातको पीवे यह पाचनः पित्तज्वरमें मनुष्यको सुख देता है ॥ ४८ ॥

अथ कफज्वरमें पाचन ।

वचा यवानी त्रिफला सविश्वा क्वाथो निशायां कफजे ज्वरे वा ॥

सपाचनं स्यान्मनुजस्य दोषे शूले प्रतिश्यायकपीनसेषु ॥४९॥

वच, अजवायन, हरडे, बहेडा, आंवला, सोंठ इनका क्वाथ कफसे उपजे ज्वरमें और शूल, जुकाम, पीनस, इनमें रातको देना ॥ ४९ ॥

अथ सन्निपातज्वरमें पाचन ।

शटीवचानागरकाफलानां वत्सादनीधन्वयवासकानाम् ॥

क्वाथो हितः सर्वभवे ज्वरे च ससपाचनं स्यान्मनुजत्रिदोषे ॥५०॥

कचूर, वच, सोंठ, हरडे, बहेडा, आंवला, गिलोय, जवासा इनका क्वाथ सब प्रकारके ज्वरमें और मनुष्योंके त्रिदोषज ज्वरमें पाचन है ॥ ५० ॥

अथ ज्वरमें पथ्य ।

रात्रौ सुखोष्णतोयेन प्रचुरेण च धीमताम् ॥

अङ्गसंमर्दनं पथ्यं निद्रान्यायामवार्जितम् ॥ ५१ ॥

रात्रिमें सुखपूर्वक गरम पानी करके अतिशयसे मनुष्योंके अगोंका मर्दन पथ्य है परंतु नींद और कसरतको वर्जना ॥ ५१ ॥

अथ वातज्वरका निदान और चिकित्सा ।

वेपथुर्विषमवेगशोषणं कण्ठतालुवदने विरस्यता ॥ रूक्षता वपुषि

बन्धकुक्षयोर्जृम्भणं शिरसि रुग्निनिद्रता ॥ ५२ ॥ कृष्णता

करुहां प्रलापको गात्रभङ्गबलवान् बिभत्स्यति ॥ भीतवत्स्व-

पिति जाग्रतो नरो लक्षणैर्भवति वातकृज्ज्वरः ॥ ५३ ॥

शरीर कापे, ज्वरका विषमवेग हो, कंठ, तालु, मुख इनमें शोष उपजे, मुखमें विरस-पना हो, शरीरमें रूखापन हो, कुक्षिबन्ध हो जावे, जँभाई आवे और शिरमें शूल उपजे और नींद आवे नहीं ॥ ५२ ॥ नख काले हो जावे, बकवाद करे, शरीरका भंगहोवे और बल-

ज्ञान रहे और भयकी इच्छा करे और भयभीतकी तरह सोये परन्तु जागता ही रहे ये लक्षण वातज्वरके हैं ॥ ५३ ॥

अथ वातज्वरका पाचन ।

नागरं सुरतरुश्च धान्यकं कुण्डली बृहतिकायुग निशम् ॥

सतसे निशि प्रक्षस्यते ज्वरे चाष्टमांशगतको हि अष्टवान् ॥ ५४ ॥

सोंठ, देवदारु, धनियां, गिलोय, दोनों कटेली, हलदी, दारुहलदी इन आठ औषधोंकी अष्टमांशका पाचन सैज्ञिक काथ बना ज्वरमें सातवीं रात्रीको देना ॥ ५४ ॥ यह शुंठ्यादि पाचन नव प्रकारके ज्वरोंमें देना चाहिये ॥

अथ अन्नहीन औषधका गुण ।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तदामयमसंशयमाशु
चैव ॥ तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतंग्लानि परां नयति चाशु
वलक्ष्य च ॥ ५५ ॥

अन्नहीन हुआ औषध अधिक वीर्यवाला हो जाता है और रोगको निश्चय शीघ्र नाशता है ॥ परन्तु बालक, वृद्ध, युवतीस्त्री, कोमल, इनकरके पिया हुआ वह अन्नरहित औषध परम-
ग्लानिको और वलक्ष्यको करता है ॥ ५५ ॥

अथ पाचन हुए औषधका लक्षण ।

इन्द्रियाणां लघुत्वञ्च नेत्रास्यस्य प्रसादता ॥

सोद्गारमुष्णता कोष्ठे जीर्णभेषजलक्षणम् ॥ ५६ ॥

इन्द्रियोंका हलकापन हो नेत्र और मुखकी प्रसन्नता रहे, डकार आवे, कोष्ठमें गर्माई रहे ये पके हुए औषधके लक्षण हैं ॥ ५६ ॥

अथ अपक्व औषधका गुण ।

क्लमहृल्लाससदनं शिरोरुग्भ्रंशमेव च

उत्क्लेदो जायते यस्य विद्यादुत्क्राममौषधम् ॥ ५७ ॥

ग्लानि और थकथकी हो, शरीर शिथिल हो जावे, शिरमें झूल और फूटन उपजे और चम-
नसा आनेकी तरह होवे ये नहीं जीर्ण हुए औषधके लक्षण हैं ॥ ५७ ॥

अथ पाचन होनेमें कुछ शेषरहे औषधका लक्षण ।

दाहाङ्गसदनं मूर्छा शिरोरुक्क्लमदीनता ॥ भ्रमोऽरतिविशेषेण

सविशेषौषधाकृतिः ॥ ५८ ॥ तस्मादौषधशेषे तु न दोषशमनं

क्वचित् ॥ कुप्यन्त्यनेकधा दोषान देयं पाचनं विना ॥ ५९ ॥

दाह हो, अंग शिथिल हो जावे, मूर्छा, शिरमें शूल, ग्लानि, दीनपना ये उपजे, भ्रम हो और विशेष करके अरति हो ये लक्षण कुछ कमपकी औषधके हैं ॥ ५८ ॥ इसकारणसे औषधके शेषमें कहीं भी दोषका शमन नहीं है क्योंकि पाचनके बिना दोष अनेक प्रकारसे कुपित होते हैं ॥ ५९ ॥

अथ भोजनके उपरांत देनेके औषधके गुण ।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हन्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनाग्निरे-
ति ॥ प्राग्भुक्तसेवितमहौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्ग-
नाभ्यः ॥ ६० ॥

अन्नसे आवृत हुआ औषध शीघ्र पकजाता है और बलको नाशता नहीं है और बारंवार मुखसे नहीं निकलता है इसलिये प्रभातके भोजनके साथ सेवित किया औषध-वृद्ध, बालक, डर-पोंक और स्त्री इनको सुख देता है ॥ ६० ॥

अथ वातज्वरमें पंचमूलका काथ ।

बिल्वाग्निसन्थशुकनासकपाटलीनां कुम्भारिकाप्रयुतकं क्वथितं
कषायम् ॥ दन्तान्विशोधयति वारयते समीरं नाशं करोति
मरुतज्वरमाशु पुंसाम् ॥ ६१ ॥ मुस्ताकिरातसुरवल्लिकणास-
वित्र्यो गोकण्टको बृहतिगुग्ममुदीच्यतित्ताः ॥ स्याच्छालिपर्णि-
कलशीक्वथितः समन्तात्क्वाथः समीरणभवं ज्वरमाशु हन्ति
॥ ६२ ॥ गुडूची शतपुष्पा च प्लुक्षी रास्ना पुनर्नवा ॥ त्राय-
माणकक्वथश्च गुडैर्वातज्वरापहः ॥ ६३ ॥

बेलगिरी, अरनी, सोनापाठा, पाडल, कोहला, कुंभेरन इनका काथ बना पीवे यह दन्तोंको शोधता है और वातको दूर करता है मनुष्योंके वातज्वरको शीघ्र नाशता है ॥ ६१ ॥ चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, पीपल, लालआक, गोखरू, दोनोंकटेली, नेत्रवाला, कुटकी, पिठवन, चौलाई, इन्होंका काथ वातज्वरको अच्छीतरह नाशता है ॥ ६२ ॥ गिलोय, सौफ, पिठवन, रायसन, सांठी, त्रायमाण इनके काथमें गुड़मिलाकर पीवे यह वातज्वरको हरता है ॥ ६३ ॥

अथ पित्तज्वरके निदान और चिकित्सा ।

मूर्च्छादाहो भ्रममदतृषावेगतीक्ष्णोऽतिसारस्तन्द्रालस्यं प्रलपन-
वमीपाकतापश्च वक्त्रे ॥ स्वेदः श्वासो भवति कटुकं विह्वलत्वं
क्षुधा वा एतैर्लिङ्गैर्भवति मनुजे पैत्तिको वै ज्वरस्तु ॥ ६४ ॥

मूर्च्छा और दाह उपजे, अम, मद, तृषा ये भी होवें और ज्वरका तीक्ष्ण वेग हो अतीसार हो तेज और आलस्य हो और बकवाद करे और छर्दि आवे और मुखमें पाक और दाह हो, पसीना और श्वास उपजे लुब्ध कहुआ हो जाये विहलपना और भूख भी होवे, ये सब लक्षण होवें तब पित्तज्वर जानना ॥ ६४ ॥

अथ रोध्रादि काथ ।

रोध्रोत्पलावृत्तलताकमलं सिताढ्यं तत्सारिवासहितमेव हि पाच-
नेषु॥ निष्काथ्य काथयति चाशु निहन्ति पित्तं पित्तज्वरप्रश-
सनं प्रकरोति पुंसाम् ॥ ६५ ॥

लोध्र, नीलाकमल, गिलोय, श्वेतकमल, सपेद भटकटैया, सारिवा इन्हींका पाचन काथ बना तिसमें मिश्री डाल पीवे यह पित्तको शीघ्र शांत करता है और मनुष्योंके पित्तज्वरको भी नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ शक्राह्वादि काथ ।

कथितं तण्डुलपयसा शक्राह्वं कटुरोहिणीसहितम् ॥

काथं यष्टीमधुना विनाशनं पित्तज्वराणान्तु ॥ ६६ ॥

इन्द्रियच, कुटकी, मुलहटी इनका काथ चावलोंके पानीमें बनाकर मधुके साथ पीवे यह पित्त-
ज्वरको नाशता है ॥ ६६ ॥

दुरालभादि काथ ।

दुरालभावासकपर्पटानां प्रियङ्गुनिम्बकटुरोहिणीनाम्॥ किरात-

तित्तं कथितं कषायं सशर्कराढ्यं कथितञ्च पाचनम् ॥ ६७ ॥

सदाहपित्तज्वरमाशु हन्ति तृष्णाभ्रमं शोषविकारयुक्तम् ॥ ६८ ॥

जवासा, वासा, पित्तपापडा, प्रियंगु, नींबकी छाल, कटुकी, चिरायता, इन्हींका काथ बना खांडसे संयुक्तकर पीवे पाचन है ॥ ६७ ॥ यह दाह, पित्तज्वर, तृषा, अम, शोषरोग, इनको नाशता है ॥ ६८ ॥

अथ पित्तपापडाका काथ ।

एकोऽपि वै पर्पटको वरिष्ठः पित्तज्वराणां शमनाय योग्यः ॥

तस्मात्पुनर्नागरवालकाढ्यः सिंहो यथा कङ्कटकप्रवृत्तः॥ ६९ ॥

१-प्रियंगु गोदीके समान फल है जिसे मालवेमें गेहुला कहते हैं इसमें सुगंधी भी होती है, यह गंध-
प्रियंगु है और प्रियंगु गोदी फल ही समझिये ।

अकेला पित्तपापडाका काथ भी पित्तज्वरको शांत करनेके लिये योग्य और अति उत्तम है फिर सोंठ और नेत्रवालासे युक्तकिये पित्तपापडाका काथ पित्तज्वरको ऐसे नाशता है जैसे हींसके बिडेमें प्राप्तहुआ सिंह वनके पशुको नाशता है ॥ ६९ ॥

अथ शुठ्यादि काथ ।

नागरोशीरमुस्ता च चन्दनं कटुरोहिणी ॥

धान्यकानां तु काथश्च पित्तज्वरविनाशनः ॥ ७० ॥

सोंठ, खस, नागरमोथा, रक्तचंदन, कुंठकी, धनियां इनका काथ पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७० ॥

अथ गुडूच्यादि काथ ।

अमृतं पर्पटो धात्री काथः पित्तज्वरं हरेत् ॥ ७१ ॥

गिलोय, पित्तपापडा, आंवला, इनका काथ पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७१ ॥

अथ द्राक्षादि काथ ।

द्राक्षापर्पटिकातिक्तापथ्यारग्वधमुस्तकैः ॥

काथो भ्रमस्तृषादाहयुक्तपित्तज्वरापहः ॥ ७२ ॥

दाख, पित्तपापडा, कुंठकी, हरड़, अमलतास, नागरमोथा, इनका काथ तृषा, भ्रम, दाह इनसे युक्तहुए पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७२ ॥

अथ दाहतृषामूर्च्छाके ऊपर विदार्यादिकोंका उपचार ।

विदारिकारोध्रकपित्थकानां स्यान्मातुलुः य च दाडिमानाम् ॥

यथानुलाभेन च तालुलेपो दाहं तृषामूर्च्छनमाशु हन्ति ॥ ७३ ॥

विदारीकद, लोध, कैथ, विजौरा, अनार, इनमेंसे जितने मिलें उनका लेप बनाकर तालुके ऊपर लगावे यह दाह, तृषा, मूर्च्छा, इनको नाशता है ॥ ७३ ॥

अथ दाहज्वरका उपाय ।

उत्तानस्य प्रसुप्तस्य कांस्ये वा ताम्रभाजने ॥

नाभौ निधाय धारां तु शीतां दाहं निवारयेत् ॥ ७४ ॥

रोगीको सीधा शयन कराके तिसकी नाभीपर कांसीके अथवा तांबाके पात्रमें पानीकी धारा देने की यह दाहको नाशती है ॥ ७४ ॥

रम्यारामाकुचभरनतालिङ्गनं चेष्टसङ्गाद्राक्षापानं निगदितमथो
शीतलं सेवनं स्यात् ॥ अभ्राम्भोजं मलयजजलासिक्तसंशीत-

वासो सुत्ताहारो विशदतुहिनं कौस्तुबीवा सुखाय ॥७५॥ एत
व्रन्ति द्रुततरनिभं मानुषाणां तु पित्तं दाहं शोषं क्लममपि तथा
तृड्भयं सूच्येनाञ्च ॥ एतयोर्गभवति नितरां पित्तदाहस्य शान्ति-
योग्या च वं भवति सततं तत्क्रिया श्रीमताञ्च ॥ ७६ ॥

सुंदर और रमणीक चूचियोंके भारसे नम्रहर्ष स्त्रीका आलिंगन करे परंतु मथुनको नहीं करे
और दाहके रक्त सेवन करे, शीतलपदार्थको सेवता रहे सफेद कमल और मलयागिरि चंदनके
पानीसे भिगोयाहुआ शीतलवस्त्रको धारे और मोतियोंकी मालाको पहने और सुंदर शीतल हवा
और चांदनी ये सब पित्तज्वरको सुख देते हैं ॥ ७५ ॥ यह सब मनुष्योंके पित्त, दाह,
शोष, ग्लानि, तृण, भ्रम और मृच्छाको शांत करते हैं और इन योगोंसे पित्तका दाह दूर
होजाता है, धनवान् मनुष्योंके वास्ते यह क्रिया निरंतर योग्य है ॥ ७६ ॥

अथ ज्वरशोषका उपाय ।

यदि जिह्वागलतालुशोपथ्वेन्मनुजस्य च ॥ केसरं मातुलुङ्गस्य
सधुसैन्यवसंयुतम् ॥ पेज्यमाणं तालुलेपे सद्यः पित्तज्व-
रापहम् ॥ ७७ ॥

और जो मनुष्यके जीभ, गल, तालु इनमें शोष उपजे तो विजौराका केसर ले उसमें
शहद और सेवानमक मिला पीसकर तालुपे लेप करे यह शीघ्र पित्तज्वरको नाशता है ॥ ७७ ॥

अथ कफज्वरका निदान और चिकित्सा ।

स्तैमित्यं सधुरास्यता च जडता तन्द्वाभृशं स्यात्तथा गात्राणां
गुरुतारुचिर्विरमता रोमोद्गमः शीतता ॥ प्रस्वेदाः श्रुतिरोधनञ्च
भवते नेत्रे च पाण्डुच्छवी विष्टब्धं मलवृत्तिकासवमनं श्लेष्म-
ज्वरे ज्ञायताम् ॥ ७८ ॥

शरीरका गीलापन हो, मुख मीठा रहे, जडपना, अत्यंत तंद्रा हो, शरीरका भारीपन, अरुचि,
ग्लानि, रोमोंका खडा होना, शीतलपना ये उपजे और पसीना आवे और कानोंका छिद्र रुक
जावे और आधा पीला और आधा सफेद ऐसे वर्णकी कांतिसे संयुक्त नेत्र होजावे मलकी
प्रवृत्ति वैधी हो, खांसी और छर्दी आवे ये सब लक्षण हों तब कफज्वर जानना ॥ ७८ ॥

अथ कफज्वरका पाचन पिप्पल्यादिकलक ।

पिप्पलादिककलकं तु कफजे पाचनं हितम् ॥ ७९ ॥

१ “पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । वचासातिविषाजाजीपाठावत्सकरेणुकैः १ किराततित्तकंमूवा
सर्पपा मरिचानि च । कटुकं पुष्करं भाङ्गीं चिडङ्गं कर्कटाह्वयम् २ अर्कमूलं बृहत्सिंहं श्रेयसी सुदुरालभादीपकं
चाजमोदाच शुक्रनासादिहिङ्गुभिः ३ एतानि समभागानि गणोऽष्टाविंशको मतः । कषायमुपभुञ्जीत वातश्लेष्मज्व-
रापहम् ४ हन्ति वातं तथा शीतं स्वेदजं प्रवले कफम् । प्रलापंचातिनिद्रां च रोमहर्षाचीतथा ५ महावातेऽपत-
मन्त्रे च सर्वगात्रे च शून्यताम् । अयं सर्वज्वरान् हन्ति सन्निपातांश्चयोदशति ॥ ६ ॥” इति शाङ्गधरे ।

पिप्पलादि गुणके औषधोंका कल्क कफके ज्वरमें सुंदर पाचन है ॥ ७९ ॥

अथ व्याघ्रयादिकल्क ।

तद्द्वयाग्री च सिंही च रोध्रं कुष्ठपटोलकम् ॥

ज्वरे कफात्मजे चैतत्पाचनं स्यात्तदुत्तमम् ॥ ८० ॥

छोटी कटेली, बड़ी भटकटैया, लोव, कूट, परवल, इनका पाचन कफज्वरमें हित है ॥ ८० ॥

अथ वासादिकाथ ।

वासा गुडूची त्रिफला पटोली शटी च तित्ता मधुनीकषायम् ॥

श्लेष्मप्रभूतेषु रुजेषु सम्यग् ज्वरं निहन्यात्कफजश्च शीघ्रम् ॥ ८१ ॥

वांसा, गिलोय, हरड़, बहेड़ा, आंवला, परवल, कचूर, कुटकी, इनके काथमें शहद मिला-
कर श्लेष्मासे उत्पन्न होनेवाले रोगोंमें पीवे यह कफके ज्वरको शीघ्र नाशता है ॥ ८१ ॥

अथ आमलक्यादिकाथ ।

आमलक्यभया कृष्णा षड्ग्रन्था त्रित्रिकन्तथा ॥

मलभेदी कफान्तको ज्वरनाशनदीपनः ॥ ८२ ॥

आमला, हरड़, पीपल, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरड़े, बहेड़ा, आंवला और दालचिनी,
इलायची, तेजपात, इनका काथ मलको पतला करता है कफको हरता है ज्वरको नाशता है
और अग्निको जगाता है ॥ ८२ ॥

अथ पिप्पल्यादिकाथ ।

पिप्पली शृङ्गवेरश्च षड्ग्रन्था वत्सकं फलम् ॥

काथो मधुप्रगाढः स्याच्छ्लेष्मज्वरविनाशनः ॥ ८३ ॥

पीपल, अदरक, वच, इंद्रयव, इन्होंका काथ बना तिसमें शहद मिला पीनेसे कफज्वरका
नाश होता है ॥ ८३ ॥

अथ पिप्पलीका अवलेह ।

क्षौद्रेण पिप्पलीचूर्णं लिह्येच्छ्लेष्मज्वरापहम् ॥

प्लीहानाहविषं हन्ति कासश्वासाममर्दनम् ॥ ८४ ॥

पीपलके चूर्णको शहदमें मिला चाटनेसे कफज्वर, तिल्लीरोग, अफारा, विष, खांसी,
श्वासरोग, आम, इनका नाश होता है ॥ ८४ ॥

अथ वातपित्तज्वरका निदान और चिकित्सा ।

तृष्णा मूर्च्छा वमन कटुता चानने रूक्षता स्यादन्तर्दाहो वपुषि

नयने रक्तता कण्ठशोषः॥निद्रानाशः श्वसनशिरसो रुक्प्रभे-
लोऽङ्गभङ्गो रोमोद्धर्पस्तमकमिति चेद्वातपित्तज्वरः स्यात् ॥८५॥

तृष्ण, मूर्च्छा, छर्दि, ये उपजें और मुखमें कड़ुआपन हो और शरीर सूखा होजावे, शरीर-
के भीतर दाह हो और लालनेत्र होजावें और कंठमें शोष होवे और नींदका नाश हो, श्वास और
शिरसे बल और झटनहो और अँगड़ाइ टूटे रोमावली खड़ी हो, और अँधेरी आवे ये सब लक्षण
हैं तब वातपित्तज्वर जानता ॥ ८५ ॥

अथ वातपित्तज्वरका पाचन त्रिफलाद काय ।

संसृष्टोपैर्विहितञ्च सम्यग्विपाचनं पित्तमरुज्ज्वरे च ॥

फलत्रिकं शालमलिसंयुक्तं रास्नाकिरातस्य पित्तेकपायम् ॥८६॥

मिर्चहु, दोंगेंसे युक्त ज्वरमें योग्य पाचनको वातपित्तज्वरमें देवे और हरडे, बहेडा, आंवला,
शनलकी आल, रायसन, चिरायता, इनके क्वाथको पीवे ॥ ८६ ॥

अथ शालिपर्णादिकल्क ।

द्विपञ्चसूली सह नागरेण गुडूचिभृनिम्बवनैः समेतः ॥

कल्कः प्रशस्तः सगुडो मरुत्सु स पित्तवातज्वरनाशहेतुः ॥८७॥

दशमूल, सोंठ, गिलोय, चिरायता, नागरमोथा इनके कल्कमें गुड़ मिला खावे, यह वात-
पित्तज्वरको नाशता है और वातसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंमें हित है ॥ ८७ ॥

अथ किरातादि काय ।

किराततित्तामलकीशटीनां द्राक्षोपणानागरकामृतानाम् ॥

काथः सुशीतो गुडसंयुतः स्यात्स पित्तवातज्वरनाशहेतुः ॥८८॥

चिरायता, कुठकी, आंवला, कचूर, मुनक्का, दाख, मिर्च, सोंठ, गिलोय, इनका क्वाथ गुड़
मिलाकर ठंडा पीवे यह वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८८ ॥

अथ पंचभद्रकाय ।

अमृतमुस्तकवासापर्पटविश्वाजलेन क्वाथः ॥

पानं पित्तमरुत्सु ज्वरं निहन्याच्च भद्रपुञ्जः ॥८९॥

गिलोय, नागरमोथा, वांसा, पित्तपापडा, सोंठ इनका पानीमें क्वाथ बनावे, यह पंचभद्र-
क्वाथ वातपित्तज्वरको नाशता है ॥ ८९ ॥

अथ पित्तकफज्वरका निदान और चिकित्सा ।

निद्रागौरवकात्ससन्धिशिररुक्चार्तिस्तथा पर्वणां भेदो मध्य-

मवेगमत्र नयनेवातान्विते श्लेष्मणि॥सन्तापः श्वसनं रुचिःश्रु-

तिपथे कण्ठे च शुष्कावृतिस्तन्द्रामोहमरोचकभ्रममथ श्लेष्मज्वरे
पित्तले ॥ ९० ॥

नींद बहुत आवे, शरीर गुरु रहे, संधि और शिरमें झूल और संधि टूटे और वेग मध्य होवे
नेत्रोंमें संताप हो, श्वास हो, सुननेमें रुचि हो और कंठमें सूखापन हो और तंद्रा, मोह, अरोचक,
भ्रम, ये भी उपजें, ये सब लक्षण होव तब पित्तकफज्वर जानना ॥ ९० ॥

अथ पित्तकफज्वरका पाचन श्लुठ्यादि काथ ।

नागरं भद्रमुस्ता वा गुडूच्यामलकाह्वयम् ॥ पाठामृणालोदी-
च्याश्च क्वाथः पित्तज्वरे कफे ॥ ९१ ॥ पाचनो दीपनीयः
स्याद्रक्तशोषनिवारणः ॥ ९२ ॥

सोंठ, नागरमोथा, गिलोय, आंवला, पाठा, कमलकी डंडी, नेत्रवाला, इनका क्वाथ पित्त-
कफज्वरमें हित है ॥ ९१ ॥ और पाचन है, अग्निको जगाता है, रक्तको और शोषको दूर
करता है ॥ ९२ ॥

अथ द्राक्षादि काथ ।

द्राक्षामृतावासकरिष्टकाश्च भूनिम्बतित्तेन्द्रयवाः पटोलम् ॥
मुस्तासभार्गा क्वथितः कषायः श्लेष्मपित्तज्वरनाशनाय ९३ ॥

सुनका, दाख, गिलोय, वांसा, नींबकी छाल, चिरायता, कुटकी, इंद्रयव, परचल, नागर-
मोथा, भारंगी इनका क्वाथ पित्तकफज्वरको नाशता है ॥ ९३ ॥

गुडूच्यादि काथ ।

गुडूचिका निम्बदलानि शुण्ठी मुस्तश्च कुस्तुम्बुरुचन्दनानि ॥
क्वाथं विदध्यात्कफपित्तवातज्वरं निहन्याच्च गुडूचिकाद्यः ॥ ९४ ॥
एष सर्वज्वरान्हन्ति हृल्लासाद्यानरोचकान् ॥ प्रतिश्यायपिपा-
साम्नः शोषदाहनिवारणः ॥ ९५ ॥

गिलोय, नींबके कोंपल, सोंठ, नागरमोथा, धनियां, रक्तचदन, यह गुडूच्यादि क्वाथ पित्त-
कफज्वरको हरता है ॥ ९४ ॥ और यही क्वाथ सब प्रकारके ज्वर, थुकथुकी, अरोचक,
जुकाम, पिपासा, शोष, दाहको नाशता है ॥ ९५ ॥

अथ अन्यगुडूच्यादि काथ ।

गुडूचिकानिम्बकचक्रवासकं शटी किरातं मगधाष्टहल्यौ ॥
दावर्पिटोलं क्वथितं कषायं पिबेन्नरः पित्तकफे ज्वरे च ॥ ९६ ॥

गिलोय, नींबकी छाल, तगर, वांसा, कचूर, चिरायता, पीपल, अष्टहली, दारुहलदी,
परचल, इनके क्वाथको पीवे यह पित्तकफज्वरमें हित है ॥ ९६ ॥

अथ पटोलादि काथ ।

पटोली चन्दनं तिक्ता सूर्वा पाठासृतागणः ॥

पित्तक्षेपस्रज्वरच्छर्दिदाहकण्डूनिवारणः ॥ ९७ ॥

परवल, रक्तचंदन, कुटकी, मरोडफली, पाठा, गिलोय आदि गणके औषध, इन्होंका काथ पित्तकफज्वर, छर्दि, दाह, खाज इनको दूर करता है ॥ ९७ ॥

अथ अन्यपटोलादि काथ ।

पटोलवासापिचुसन्दकस्य मूल्यानि यष्टीमधुकं धना च ॥ कपा-

यसेतत्प्रतिसाधितन्तु ज्वरे कफे पित्तभवे प्रशस्तः ॥ ९८ ॥

सन्दीपनो पित्तकफात्मके च तथैव पित्तासृजसंभवे च ॥ ज्वरे

मलानां प्रतिसेदनः स्यात्पटोलधान्याश्रितकः प्रशस्तः ॥ ९९ ॥

परवल, बांसा, नींबकी छाल, मुलहठी, धनियां इनका काथ पित्तकफज्वरमें श्रेष्ठ है ॥ ९८ ॥ यह काथ अग्निको जगाता है, पित्त कफज्वरमें हित है, पित्तरक्तके ज्वरमें हित है और मलोंको पतला करता है तथा परवल और धनियांका भी काथ इन रोगोंमें ठीक है ॥ ९९ ॥

अथ वातकफज्वरका निदान और चिकित्सा ।

शीतं वेपथुपर्वभङ्गवमथुर्गात्रे जडत्वं चरुङ्मन्दोष्मारुचिवन्धनं

परुपता कासस्तमःशूलवान् ॥ तन्द्रा कूजनमात्मलौल्यमथवा

स्तैमित्यजृम्भारुचिःप्रस्वेदोमलमूत्ररोधसहितः स्याच्छेष्मवात-

ज्वरः ॥ १०० ॥

शीत लगे और शरीर कांपे और संधियों टूटें, वमन हो और शरीरमें जडपना, शूल, मंदाग्नि, अरुचि, बंधना, कठोरपना, खाँसी, अन्धकारमें जैसे प्रवेश करनेका कष्ट ये उपजें, तन्द्रा हो, शब्दको करे और शरीरमें चंचलपना हो और शरीरका गीलापन, जंभाई, अरुचि, ये उपजें और पसीना आवे मल और मूत्र रुकजावे ये सब लक्षण होवें तब वातकफज्वर जानना ॥ १०० ॥

अथ आरग्वधपंचक ।

आरग्वधस्तित्तकरोहिणी च हरीतकी पिप्पलिमूलमुस्ता ॥

निष्काथ्य कल्कः कफवातयुक्ते ज्वरे सशूले हितपाचनोऽयम् १०१

आरग्वध, कुटकी, हरडा, पीपलामूल, नागरमोथा, इनका काथ करके कल्क करे, यह कल्क कफवातमें उत्पन्न शूलकारिके युक्त ज्वरमें हितकारक और पाचन है ॥ १०१ ॥

१. हर्द, गिलोय, नागरमोथा, चित्रा, चिरायता, हल्दी, इन्द्रजौ, सोंठ ।

अअ क्षुद्रादिपाचन ।

क्षुद्रा गुडूची सह नागरेण वासाजलं पर्पटकञ्च पथ्याः॥मुस्ता
च दुःस्पर्शयुतः कषायः पीतो हितो वातकफज्वरस्य॥१०२॥

कटैली, गिलोय, सोंठ, वांसा, नेत्रवाला, पित्तपापड़ा, हरडे, नागरमोथा, जवासा इनका काथ
वातकफज्वरको नाशता है ॥ १०२ ॥

अथ पर्पटादि काथ ।

पर्पटनागाख्यवचातन्तुककट्फलैलाभयाविश्वभूतिका ॥ काथो
हिङ्गुमधुयुतः कफवाते सहिष्कारोगे सगलग्रहे च ॥ १०३ ॥

पित्तपापड़ा, नागकेशर, वच, रोहिप्रतृण, कायफल, इलायची, हरड, सोंठ, करंजुवा, इनके
काथमें हींग और शहद मिला पीवे यह कफवातज्वर, हिचकी रोग, गलग्रह इनमें हित है ॥ १०३ ॥

अथ दशमूल काथ ।

द्विपञ्चमूलकः काथः कणाचूर्णेन भावितः ॥

देयो वातकफे शूले ज्वरे श्वासे च पीनसे ॥ १०४ ॥

दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवे यह वातकफज्वर, शूल, श्वास, पीनस, इनमें
हित है ॥ १०४ ॥

अथ त्रिदोषजज्वरका निदान और चिकित्सा ।

तन्द्रालस्यं मुखमधुरता शीवनं कण्ठशोषो निद्रानाशः श्वसन-
विकलो मूर्च्छना शोचना च ॥ जिह्वाजाड्यं परुषमथवा पृष्ठशी-
र्षेण्यथा स्यादन्तर्दाहो भवति यदि वा विद्धि दोषं त्रिदोषम् १०५ ॥

तन्द्रा और आलस्य आवे, मुखमें मधुरपना रहे और बारंवार थूके, कंठमें शोष उपजे, नींदका
नाशहो, श्वाससे विकल होजावे, मूर्च्छा और शोच हो, जीभमें जडपनाहो अथवा करड़ी जीभ होजावे
पृष्ठभागमें और शिरमें पीडा हो और शरीरके भीतर दाह हो ये सब लक्षण हों तब त्रिदोषजज्वर
जानना ॥ १०५ ॥

त्रिदोषजज्वरकी यशःप्रापक चिकित्सा ।

दृष्ट्वा त्रिदोषजं घोरं स्वरं प्राणापहारकम् ॥ तस्मादादौ कफस्या-
स्य शोषणं परिकीर्तितम् ॥ १०६ ॥ न कुर्व्यात्पित्तशमनं यदी-
च्छेदात्मनो यशः ॥ कफवातैर्बलवतः सद्यो हन्ति रुजातुरम् ॥
१०७ ॥ लङ्घनं वमनं वापि शीवनं स्यात्त्रिदोषजे ॥ त्रिरात्रं

द्विपञ्चकगणैर्युक्तः कषायो हितः ॥ पीतः सर्वरुजां विनाशन-
करः स्यात्सन्निपातज्वरं हन्ति श्वासविशोषवक्षसिरुजं तन्द्रां
जघान द्रुतम् ॥ १२५ ॥

चिरायता, देवदारु, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रयव, गजपीपल, दशमूल इन सात चीजोंके
क्वाथ बना पीना । यह सब प्रकारके रोगोंको और सन्निपातज्वरको नाशता है और श्वासरोग,
क्षोषरोग, छातीकी पीड़ा, तन्द्रा इनको शीघ्र नाशता है ॥ १२५ ॥

अथ बृहद्रास्त्रादि काथ ।

रास्त्रा गुडूचिघनपर्पटकं पटोली भूनिम्बवत्सकशटीयुतनागराणा-
म् ॥ तिक्तासुराह्वगजमागधिकायवासावासाबलागजबलाक्थितः
समांशः ॥ १२६ ॥ काथो निहन्ति मरुतप्रभवामयानां सश्वास-
कासजठरातिविषूचिकानाम् ॥ श्रेष्ठो नृणां भुवि च पाचनसन्नि-
पाते रोगेऽथवा कफसमीरणके प्रदेयः ॥ १२७ ॥

रायसन, गिलोय, नागरमोथा, पित्तपापडा, परवल, चिरायता, इन्द्रयव, कचूर, सोंठ,
कुटकी, देवदारु, गजपीपल, जवासा, वांसा, खरैहटी, बड़ी खरैहटी ये सब समानभाग ले क्वाथ
बनावे ॥ १२६ ॥ यह क्वाथ वातसे उपजे रोग, श्वासरोग, खांसी, पेटरोग, विषूचिका,
इनको नाशता है । यह पाचन मनुष्योंको संसारमें श्रेष्ठ है अथवा कफवातके रोगमें देना
चाहिये ॥ १२७ ॥

अथ लघुरास्त्रादि ।

रास्त्रात्रिकण्टकघनाशतमोषधीनां भाङ्गी सपुष्करयुता सुर-
दारुधान्याः ॥ काथो हितः सकलमारुतजिज्वरेषु स्यात्स-
न्निपातप्रभवेष्वातिदारुणेषु ॥ १२८ ॥

रायसन, गोखरू, नागरमोथा, शतावरी, भारंगी, पोहकरमूल, देवदारु, धनियां इनका
क्वाथ दारुण सन्निपातज्वरोंमें हित है और वायुसे उत्पन्न रोगोंको जीतता है ॥ १२८ ॥

अथ त्रिवृतादि मलभेदन ।

त्रिवृद्विशाला च तथा सुराह्वमारग्वधस्तिक्तकरोहिणी च ॥
क्वाथो भवेद्भेदनको मलानां स्याद्वातशूले नयतो भयघ्नः ॥ १२९ ॥

निसोथ, इन्द्रायणकी जड़, देवदारु, अमलतास, कुटकी इनका क्वाथ मलको पतला करता
है और वातशूलको करता है ॥ १२९ ॥

अथ सन्निपातस्वेदहर ।

वचा यवानी च महौषधश्च शुष्कश्च चूर्णं तनुलेपनाय ॥ शस्तं
वदन्ति ज्वरघ्नं शान्तिं करोति वूनं परिमर्दनश्च ॥ १३० ॥
मागधी च सुरदारु तथा च विश्वकं तिक्ता च दीप्यकयुतं
तनुलेपनाय ॥ चूर्णं प्रशस्तमपि वारयते शरीरे स्वेदश्च
शीतलतनुर्भवेदाशु वूनम् ॥ १३१ ॥

वच, अजमान, सोंठ इनका सूखा चूर्ण बना शरीरपै मालिस करे । यह ज्वरको और पसी-
नाको शांत करता है ॥ १३० ॥ पीपल, देवदारु, सोंठ, कुटकी, अजमान इनका चूर्ण
बना शरीरपै मालिस करनेसे पसीने दूर होते हैं और शरीर शीतल होजाता है ॥ १३१ ॥

अथ नस्यविधान ।

मधूकसारं समहौषधेन वचोषणा सैन्धवसंयुता च ॥ मूत्रेण वा
चोष्णजलेन पिष्टं प्रनष्टज्ञानप्रतिबोधनाय ॥ १३२ ॥
शोभाञ्जनकमूलस्य रसं समरिचान्वितम् ॥ विसंगितानां नस्यं
स्याद्रोधनं चाशु रोगिणाम् ॥ १३३ ॥

महुआका सार, सोंठ, वच, मिर्च, सैन्धानमक इनको गोमूत्रमें अथवा गरमपानीमें पीस
नाकमें चढ़ावे, यह नस्य मूर्च्छाको प्राप्तहुएको जगाता है ॥ १३२ ॥ सहिजनाकी जड़के
रसमें मिरचोका चूर्ण मिला नासिकामें चढ़ानेसे संज्ञासे रहित मनुष्योंको शीघ्र ज्ञान
होजाता है ॥ १३३ ॥

अथ प्रथमनविधि ।

एकं बृहत्याः फलपिप्पलीकं शुण्ठीयुतं चूर्णमिदं प्रशस्तम् ॥
प्रधामयेद्ग्राणपुटे तु संज्ञाचेष्टां करोति क्षवथुप्रबोधः ॥ १३४ ॥

बड़ी कटेलीका एक फल, पीपल, सोंठ इनका चूर्ण बना पुटलीके द्वारा नासिकामें चढ़ानेसे
छींक आती है और चेष्टा होजाती है ॥ १३४ ॥

अथ अंजनविधि ।

शिरीषबीजं मरिचोपकुल्यामूत्रेण घृष्टं सह सैन्धवेन ॥ नेत्राञ्जनं
स्यान्नयने नराणां प्रनष्टसंज्ञां प्रकरोति बोधः ॥ १३५ ॥
त्रिकटु तथा च करञ्जबीजं त्रिफला सुरदारु सैन्धवम् ॥ तुलसी
वर्तिनयनाञ्जनकं तन्द्रानाशं करोति नयनानाम् ॥ १३६ ॥

शिरसके बीज, मिर्च, पीपल, सैंधानमक इनको गोमूत्रमें पीस नेत्रोंमें आंजे । यह अंजन नष्टहुई संज्ञाको फिर उपजाता है ॥ १३९ ॥ सोंठ, मिर्च, पीपल, करंजुवाके बीज, हरडै, वहेड़ा, आँवला, देवदार, सैंधानमक, तुलसी, इनको पीस वत्ती बना नेत्रोंमें आंजे । यह आंजन तंद्राको नाशता है ॥ १३९ ॥

अथ निष्ठीवनविधि ।

केसरं मातुलुङ्गस्य शृङ्गवेरं ससैन्धवम् ॥ त्रिकटुसंयुतं कृत्वा
आकण्ठाद्वारयेन्मुखे ॥ १३७ ॥ दन्तजिह्वामुखं तालुघर्षणं
कारयेद्बुधः ॥ कुर्यान्निष्ठीवनं सर्वं वारंवारं विधानतः ॥ १३८ ॥
तेन कण्ठविशुद्धिः स्याच्छ्लेष्माणं चापकर्षति ॥ जिह्वापटुत्वरु-
चिकृत्कासः श्वासश्च शाम्यति ॥ १३९ ॥ त्रिकटुचव्यकापथ्या-
चूर्णं सैन्धवसंयुतम् । तेन दन्तांस्तथा जिह्वां घर्षयेत्तालुकाम-
लम् ॥ १४० ॥ निष्ठीवनं गलशुद्धिरुचिकृत्कफसूदनम् ॥
हृल्लासो नाशमाप्नोति पटुत्वं कुरुते भृशम् ॥ १४१ ॥

वेजौराकी केसर, अदरख, सैंधानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल इनको मिलां मुखमें धारे
॥ १३७ ॥ पीछे दंत, जीभ, मुख, तालु इन्हेंको वैसे पीछे विधानसे बारंवार थूकता जावे
॥ १३८ ॥ इससे कंठकी शुद्धि होती है और कफ दूर होजाता है और जीभ साफ होजाती
है और रुचि उपजती है, खांसी और श्वास शांत होजाता है ॥ १३९ ॥ सोंठ, मिर्च,
पीपल, चव्य, हरडै, सैंधानमक इन्हेंके चूर्णसे दंत, जीभ, तालु, इन्हेंको वैसे ॥ १४० ॥
यह निष्ठीवनकर्म गलकी शुद्धि और रुचिको करता है, कफको दूर करता है, थुकथुकीको
नाशता है और अत्यन्त स्वादको उपजाता है ॥ १४१ ॥

अथ सन्निपातमें विशेषता ।

यदि वा शीतगात्रे च तदा स्वेदो विधीयते ॥ स्वेदास्त्रयोदश
ज्ञेयाः स्वेदवारणकारणाः ॥ १४२ ॥ सङ्करः प्रस्तुतो नाडीप-
रिषेकोऽपगाहनः ॥ आतङ्कोऽस्मयनः कर्षः कूटी भूकुम्भिरैव
च ॥ १४३ ॥ कूपो होलाक इत्येते स्वेदयन्ति त्रयोदश ॥ १४४ ॥
कालस्वेदं घटीस्वेदं वालुकास्वेदमेव च ॥ कारयेद्दस्तपादाभ्यां

तथा शिरसि चातुरे॥ एवं नो शान्तिर्यदि वा दहेल्लोहशलाक-
या ॥१४५॥ पादौ दग्धे न चेच्छैत्यं दहेद्वाङ्गुष्ठमूलके ॥ तथा
च मणिवन्धे च हृदि सूर्णि तथापि वा ॥१४६॥ स्वेदो ललाटे
सुहिमो नरस्य शीतार्दितस्यापि सपिच्छलस्य ॥ कण्ठस्थितो
यस्य न याति वक्षो नूनं समभ्येति गृहं हि मृत्योः ॥१४७॥
सप्ताहे वा दशाहे वा द्वादशाहेऽथवा पुनः ॥ त्रयोदशे पञ्चदशे
प्रशमं याति हन्ति वा ॥ १४८ ॥ अथ पञ्चादशाहे वा हन्ति
रक्षति मानवम् ॥ सन्निपातो महाघोरो ज्वरः कालाग्निसन्निभः
॥१४९॥ एषा त्रिदोषमय्यादा मोक्षाय च वधाय च॥ सन्नि-
पातस्य दोषस्य नरस्यास्य भिषग्वरः ॥१५०॥ सन्निपातेऽन्तर्दाहे
मनुजं यः शीतवारिणा सिञ्चेत् ॥ आतुरः कथमपि जीवेद्वैद्य-
श्चासौ कथं पूज्यः ॥१५१॥ यः सन्निपातजलधौ पतितं मनुष्यं
वैद्यः समुद्धरति किञ्च कृतं तु तेन ॥ धर्मेण वाथ यशसा
विनयेन युक्तः पूजां च कां भुवितले न लभेत्तु वैद्यः ॥१५२॥

जो शीतल शरीर हो तब पसीना देना चाहिये, अग्नि दूर करनेके कारणरूपी स्वेद अर्थात् पसीने तेरह जानने ॥ १४२ ॥ संकर, नाड़ीपरिपेक, अपगाहन, आतंक, अस्मयन, कर्ष, कूटी, भूकुंभि ॥ १४३ ॥ कूप होलाक, कालस्वेद, घटीस्वेद, वालुकास्वेद ये तरह प्रकारके स्वेद मनुष्यके पसीनाको लाते हैं ॥ १४४ ॥ इनसे रोगीके हाथ, पैर, शिर इन्होंपै पसीनाको देवे । जो ऐसे शांति नहीं हों तब लोहाकी सलाईसे दाग देवे ॥ १४५ ॥ जो पैरपै दाग दियेसे भी शीतलता नहीं उपजे तब अँगूठाके मूलमें दग्ध करे अथवा मणिवन्ध अर्थात् पहुँचा, हृदय, मस्तक, इन्होंमें दग्ध करे ॥ १४६ ॥ जिसके मस्तकपै ठण्डा पसीना आवे और सब शरीर शीतल होवे, शीतसे पीड़ित और कफकी अविकृतावाला ऐसे मनुष्यके कण्ठ-
तक पसीना आवे, छातीमें नहीं प्राप्त होवे वह मनुष्य निश्चय मृत्युको प्राप्त होता है ॥ १४७ ॥ सातमा अथवा दशमां अथवा बारमां, तेरमां पन्द्रमां इन दिनोंमें सन्निपात ज्वर शांत हो जाता है अथवा रोगीको मार देता है ॥ १४८ ॥ और पन्द्रहवें दिन निश्चय सन्निपातज्वर शांत होता है अथवा रोगीको मारता है । यह सन्निपातज्वर महाघोररूप है, काल और अग्निके समान कांतिवाला है ॥ १४९ ॥ सन्निपातकी शांत होनेकी अथवा मारनेकी यह मर्यादा है ॥ १५० ॥ सन्निपातमें जो शरीरमें दाह उपजे तब वैद्य शीतलपानीके छिड़के दिवाता है तब रोगी नहीं

जीवता और वह वैद्य पूजाको प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १९१ ॥ सन्निपातरूपी समुद्रमें पड़े हुए रोगी मनुष्यको जो वैद्य उद्धार करता है उस मनुष्यने क्या नहीं किया और धर्म, यश, तथा विनय करके युक्त वह वैद्य इस भूतलमें कौनसी पूजाको नहीं पाता है ? अर्थात् सर्वत्र य होता है ॥ १९२ ॥

अथ कर्णमूल (शोजा) का निदान और चिकित्सा ।

वातपित्तकफैस्त्रिभिर्युक्तस्तथा त्रिदोषजः ॥ स च रक्तेन संयुक्तो
ज्वरः स्यात्सन्निपातिकः ॥ १९३ ॥ न रक्तेन विना विद्धि ज्वरं
वै सान्निपातिकम् ॥ क्वाथैः पाचनकैर्दोषाः प्रशमं यान्ति मानवे
॥ १९४ ॥ तस्मात्प्रशमिते दोषे रक्तं नैव विलीयते ॥ तेनैव
जायते शोफः कर्णमूले तु दारुणः ॥ १९५ ॥ तस्मात्तस्य प्रती-
कारं कुर्याद्रक्तविरेचनम् ॥ जलौकालाबुभृगैस्तु ततश्च लेपनं
हितम् ॥ १९६ ॥

वात, पित्त, कफ इन तीनोंसे युक्त त्रिदोषज्वर होता है और रक्तसे संयुक्त हुआ यही ज्वर सन्निपात कहा जाता है ॥ १९३ ॥ रक्तके विना सन्निपात ज्वरको नहीं जानना । काथ और पाचनसंज्ञक काथोंसे मनुष्यके तीनों दोष शान्त हो जाते हैं ॥ १९४ ॥ इस कारणसे दोष शान्त भी हो जाते हैं परन्तु रक्त नहीं शान्त होता उसकरके कानके जड़में भयंकर शोजा उप-जता है ॥ १९५ ॥ इससे उसकी चिकित्सा रक्तका निकासना है जोक, तुंवी, शींगी, इनसे रक्तको निकासे पीछे लेप कराना ॥ १९६ ॥

अथ कर्णशोथके ऊपर लेप ।

बीजपूरकमूलानि अग्निमन्थस्तथैव च ॥

आलेपनमिदं चास्य कर्णमूलस्य नाशनम् ॥ १९७ ॥

विजौराकी जड़, अरनी इनको पानीमें पीस लेप करना, यह लेप कर्णमूलको नाशता है ॥

अथ दूसरा लेप ।

आगारधूपरजनीसुमहौषधेन सिद्धार्थसैन्धववचापयसा विमर्द्या ॥

लेपोहितोरक्तविनाशकारी शोफव्रणस्य शमनो मनुजस्य कर्णे ॥

घरका धुआं (श्रीवेष्टधूप) हलदी, सोंठ, सरसों, सेंधानसक, वच, इनको दूधसे

१ "सन्निपातज्वरस्थान्ते कर्णमूले सुदारुणः शोथः सजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते" । इति साधवः ।

२ आर्सेनश्चरणे छन्दोभंगः ।

पीस कर्णमूलपर लेप करना । यह लेप रक्तके विकारको नाशता है, शोजा और वावको शान्त करता है ॥ १९८ ॥

अथ व्रणरोपण औषध ।

यदा पाको भवेत्तस्य कार्या तत्र प्रतिक्रिया ॥ धवार्जुनकदम्ब-
त्वग्लेपनं व्रणरोहणम् ॥ १९९ ॥ निम्बारग्वधमूलानां निशायुक्तं
प्रलेपनम् ॥ स्त्रावणं पूयगन्धानां रोहणं स्याद्व्रणेषु च ॥ १६० ॥

जो कानकी जड़में शोजा पक जावे वहां जो क्रिया करनी चाहिये वहकही जाती है, धवकी छाल, अर्जुनवृक्षकी छाल, कदंबकी छाल इनको पीस लेप करनेसे घावपै अंकुर आ जाता है ॥ १९९ ॥ नींबूकी छाल, अमलतासकी छाल, हलदी इनका लेप राध और दुर्गंधको हटाता है और वावोंपर अंकुरको लाता है ॥ १६० ॥

अथ कर्णशोधवालेको पथ्य ।

वर्जयेच्च दिवास्वप्नं योषित्सङ्गं बहूदकम् ॥ शीतांबु जागृतिं रात्रौ
व्यायामं शोचनं तथा ॥ १६१ ॥ माषांश्च यवगोधूमतिलपर्णीकमेव
च ॥ मसूरत्रिपुंटांश्चैतांस्तैलञ्च दूरतस्त्यजेत् ॥ १६२ ॥ मास-
मेकं व्यवायं च पक्षैकं चातिभोजनम् ॥ वर्जयेत्कर्णमूलञ्च सुखं
तेनोपपद्यते ॥ १६३ ॥ षष्टिकान्नं पुराणं वा बाल्यं सूपस्तथा-
ढकी ॥ कुलत्थमुद्गयूषं वा भोजने च प्रशस्यते ॥ १६४ ॥
वार्ताकञ्च पलाण्डुं च कन्दशाकान्परित्यजेत् ॥ एतेन सुखमा-
प्नोति शीघ्रं रोगाद्विमुच्यते ॥ १६५ ॥

इस कर्णमूलमें दिनका सोना, स्त्रीसंग, पानीका बहुत पीना, शीतल पानी, रात्रिका जागना, कसरत, शोच ॥ १६१ ॥ उड़द, यव, गेहूं, तिलका पदार्थ, मसूर, त्रिपुंटा, तेल इनको दूरसे वर्ज्य ॥ १६२ ॥ और एक महीनातक मैथुनको और पंद्रह दिनोंतक अत्यन्त भोजनको वर्ज्यतव सुख होता है ॥ १६३ ॥ साठीचावल, पुरानाअन्न, अरहरकी दाल, कुलथी और मूंगोंकायूष ये सब भोजनमें श्रेष्ठ हैं ॥ १६४ ॥ वार्ताकु (बैंगन), प्याज, कंदशाक इनको त्यागे ऐसे करनेसे सुखको प्राप्त होता है और शीघ्र रोगसे छुटता है ॥ १६५ ॥

१ मल्लिका, सूक्ष्मैला, त्रिवृत, कर्णस्फोटा, स्थूलैला, कलायू, चमेली, छोटी इलायची, निशोध, तिरवी कनफोडी, बडी इलायची, खेसारी, मटर । आयुर्वेदशब्दार्णव ।

अथ अंतर्दाहका कारण ।

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्वाह्ये श्लेष्मसमीरणौ ॥

तदान्तर्दाहशोषः स्याद्वाह्ये सस्वेदशीतता ॥ १६६ ॥

जब शरीरके भीतर पित्त स्थित होजाता है और शरीरके बाहर कफ और वात स्थित होता है तब शरीरके भीतर दाह और शोष उपजता है और शरीरके बाहर पसीना और शीतलता होती है ॥ १६६ ॥

अथ अंतर्दाहकी चिकित्सा ।

तस्यामृतापयः काथं मधुपिप्पलिसंयुतम् ॥ पायथेदाशु मुच्येत
ज्वराद्धै सान्निपातिकात् ॥ १६७ ॥ अथवातिविषा वालं नागरं
घनपर्पटम् ॥ काथो वा शर्करायुक्तश्चान्तर्दाहोपशान्तये ॥ १६८ ॥

उसको गिलोयके काथमें शहद और पीपलका चूर्ण मिला पान करावे तब शीघ्र ही सन्निपात ज्वरसे छुट जाता है ॥ १६७ ॥ अथवा अतीश, नेत्रवाला, सूँठ, नागरमोथा, पित्तपापडा इनका काथ बना उसमें खांड मिला पीवे तब शरीरके भीतरकी दाह शांत होती है ॥ १६८ ॥

अथ बाह्यदाहका कारण और चिकित्सा ।

बाह्ये पित्तं यदा तिष्ठेदन्ते वा कफमारुतौ ॥ तेनोष्णत्वं शरी-
रस्य अन्ते शैत्यं च जायते ॥ १६९ ॥ तस्य शट्यादिकं काथं
प्रयुजीयात्कफापहम् ॥ १७० ॥

जब शरीरके बाहिर पित्त स्थित हो और शरीरके भीतर कफ और वात स्थित होवे तब शरीर गरम होता है, हाथ और पैरोंमें शीतलता होती है ॥ १६९ ॥ तिसको कचूरआदि पूर्वोक्त काथका पान कराना, यह कफको शांत करता है ॥ १७० ॥

अथ शरीर शीतल और अर्ध गर्म होनेका कारण और चिकित्सा ।

यस्योर्ध्वाङ्गे वातकफावधोगं पित्तमेव च ॥ तेनार्द्धं शीतलं
गात्रमर्द्धं चोष्णं च जायते ॥ १७१ ॥ तस्य रास्नादिकं
काथं प्रयुजीयात्तथोष्णकम् ॥ १७२ ॥ यस्योर्ध्वं रक्तपित्तञ्च
मध्ये वातकफावुभौ ॥ तेनोर्ध्वं जायते चोष्णमधः शीतं प्रजायते
॥ १७३ ॥ तस्य नागरादिकाथं युजीयाद्विषगुत्तमः ॥ १७४ ॥

१ कचूर, चिरायता, कुटकी, इन्द्रायण, गिलोय, अतीस, दोनों कटेली, सोंठ, पुष्करमूल, जवासा, रायसन, देवदारु, गजपीपल ।

जिसके ऊपरके अंगोंमें वात और कफकी स्थिति हो और नीचेके अंगमें पित्तकी स्थिति हो तिसकरकं आधा शरीर गरम रहता है और आधा शरीर शीतल रहता है ॥ १७१ ॥ तिसको पूर्वोक्त गर्मगर्म रास्नादि काथका पान कराना ॥ १७२ ॥ जिसके ऊपरले अंगोंमें रक्त और पित्तहो और मध्यमें वात और कफ हो तिससे ऊपरका शरीर गर्म रहता है और नीचेका शरीर शीतल रहता है ॥ १७३ ॥ उसको पूर्वोक्त शुंठ्यादि काथका पान कराना ॥ १७४ ॥

यस्योष्मा दृश्यत चापि मन्दस्त्रष्टा च जायते॥ वाह्यवेगं विजा-
नीयाज्वरः साध्यो विजानता ॥ १७५ ॥ यस्यान्ते जायते
चोष्मा तृष्णा दाहः शिरोव्यथा॥ गम्भीरवेगं जानीयात्कृच्छ्र-
साध्यो नृणामपि ॥ १७६ ॥ तस्य कुर्यात्प्रतीकारं योगो-
ऽष्टादशको नृणाम् ॥ १७७ ॥

जिसके गरमाई हो और ज्वरका मन्दवेग हो उसको वाह्यवेगज्वर कहते हैं । यह ज्वर साध्य होता है ॥ १७५ ॥ जिसके हाथ और पैरमें गरमाई हो और तृष्णा, दाह, शिरमें पीड़ा ये उपजें तिसको गम्भीरवेगज्वर कहते हैं यह मनुष्योंके कष्टसाध्य होता है ॥ १७६ ॥ उसके लिये अष्टा-
दशांग काथ काफी है ॥ १७७ ॥

अथ शीतल अंगमें गरम करनेकी चिकित्सा ।

अन्ते पित्तं यदा तिष्ठेद्देहे वातकफाबुधौ ॥ तेन शैत्यं शरीरस्य
उष्णत्वं करपादयोः ॥ १७८ ॥ तस्य रास्नादिकः क्वाथः प्रदेयः
पिप्पलीयुतः ॥ १७९ ॥

जब हाथ और पैरमें पित्तकी स्थिति हो, शरीरमें वात और कफकी स्थिति हो उस करके शरीर शीतल रहता है, हाथ और पैरोंमें गरमाई जाननी ॥ १७८ ॥ उसको रास्नादि काथमें पीपलका चूर्ण मिला पान कराना ॥ १७९ ॥

अथ गर्मीका उपचार ।

देहे पित्तं यदा तिष्ठेदन्ते वातकफाबुधौ ॥ तस्योष्मा जायते देहे
शीतत्वं करपादयोः ॥ १८० ॥ तस्य द्राक्षादिकः क्वाथः प्रदेयो
गुडकान्वितः ॥ १८१ ॥

जिसके देहमें पित्त स्थित हो, हाथ और पैरोंमें वायु कफ स्थित होवे तिसका देह गर्म रहता है हाथ और पैर शीतल रहते हैं ॥ १८० ॥ उसको द्राक्षादिकाथमें गुड़मिला पान कराना ॥ १८१ ॥

अथ शीतत्वका उपचार ।

यत्र यत्र भवेच्छैत्यं तत्र स्वेदो विधीयते ॥

नात्युष्णे स्वेदनं कार्यं ज्वरस्यास्य विजानता ॥ १८२ ॥

और जहां जहां शीतलता होवे वहां२ पसीना देना चाहिये। इस सन्निपात ज्वरको जाननेवाले वैद्यको अत्यन्त गर्माग्निमें पसीना नहीं देना चाहिये ॥ १८२ ॥

ज्वरादिकोंका कारण वायु है ।

कफपित्तेन निश्चेष्टो भवत्येवानिलः सदा ॥

तस्मादेवानिलाद्रोगाः सम्भवन्ति ज्वरादयः ॥ १८३ ॥

कफ और पित्तसे चेष्टा करके रहित हुआ वात सब कालमें रहता है उस कारण करके वात-से ही ज्वरआदि सब रोग उपजते हैं ॥ १८३ ॥

अथ ज्वरमुक्तिका लक्षण ।

भ्रमः शैत्यं विह्वलता कम्पो विद्भद्वनं क्लमः ॥

भ्रमः स्वेदो जल्पनश्च ज्वरमोक्षे भवन्ति च ॥ १८४ ॥

भ्रम, शीतलता, विह्वलपना, कंप, विष्टाका पतलापन, थकानसी, परिश्रम, पसीना, बोलना ये सब ज्वरके दूर होनेके समय होते हैं ॥ १८४ ॥

अथ ज्वर उतरनेका लक्षण ।

प्रस्वेदकण्डू च शिरा च पुष्टा तथा मुखेषु क्षवथुर्लघुत्वम् ॥

अन्नाभिलाषो विपुलेन्द्रियश्च गतक्लमो गतरुजो मनुष्यः ॥ १८५ ॥

पसीना आवे, खाज-चले और नाड़ी पुष्ट हो जावे और मुखमें छींक आवे और शरीरका हलकापन हो और अन्नकी इच्छा हो और इन्द्रियें प्रसन्न हो जावें, ग्लानि और पीड़ा जाती रहे तब जानो ज्वर उतरा ॥ १८५ ॥

अथ ज्वर नहीं उतरनेका और लौटानेका लक्षण ।

विमुक्तस्यापि हि शिरोगुरुत्वं नव मुञ्चति ॥

अविमुक्तं विजानीयाज्वरः पुनरुपैति तम् ॥ १८६ ॥

ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य शिरके भारीपनको नहीं छोड़े तब जानो कि अभी ज्वर नहीं छूटा और उस मनुष्यको फिर ज्वर उपजेगा ऐसा जान ले ॥ १८६ ॥

अथ विषमज्वरका लक्षण और चिकित्सा ।

यदि धातुगतश्चैव ज्वरो देहे प्रपद्यते ॥ विषमज्वरं विजानीयात्स

च ज्ञेयश्चतुर्विधः ॥ १८७ ॥ एकाहिको व्याहिकश्च त्र्याहिकश्च
तथापरः ॥ वेलाज्वरश्चतुर्थोऽपि विजानीयाद्विचक्षणः ॥ १८८ ॥

जो देहके धातुओंमें ज्वर प्राप्त हो उसको विषमज्वर जानना वह चार प्रकारका है ॥ १८७ ॥
एकाहिक अर्थात् दिनमें एक बार आनेवाला, द्वाहिक अर्थात् दूसरे दिन आनेवाला त्र्याहिकः
अर्थात् तीसरे दिन आनेवाला और समयपै चौथे दिन आनेवाला चातुर्थिक वैद्योंको जानना
चाहिये ॥ १८८ ॥

अथ एकाहिकज्वरका लक्षण ।

शीतश्च पूर्व भवति पश्चादुष्णश्च जायते ॥ स साध्यो मनुजे
श्रोतः शीघ्रं सिध्यति भेषजः ॥ १८९ ॥ पश्चाच्च दाहमाप्नोति
ज्वरो भवति दारुणः ॥ सोऽपि न मुच्यते शीघ्रं ज्वरो धातु-
क्षयद्वारः ॥ १९० ॥

जिसमें प्रथम शीत उपजे और पीछे गरमाई उपजे वह साध्यज्वर जानना । यह औषधोंसे
शीघ्र जाता रहता है ॥ १८९ ॥ भयंकर ज्वर होके पीछे दाहसे संयुक्त हो वह शीघ्र नहीं
जाता है । यह ज्वर धातुओंका क्षय करता है ॥ १९० ॥

अथ तृतीय ज्वर लक्षण ।

त्रिकोरुकट्यां रुजवातपित्तं स्याच्च पित्तं मस्तके रुग्ध्रमश्च ॥
पृष्ठे तनुश्लेष्मरुजाकरं स्यात्त्रिधा तृतीयज्वरलक्षणं तत् ॥ १९१ ॥
कफपित्तात्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः ॥ वातपित्ताशिरोग्राही
त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ १९२ ॥

कटिप्रांत, जांव, कटि इन्हींसे वात और पित्तसे पीडा हो और मस्तकमें पित्तसे पीडा हो
और भ्रम उपजे और पृष्ठभागमें सूक्ष्म कफ पीडाको करता हो ऐसे तृतीय ज्वरका लक्षण तीन
प्रकारका है ॥ १९१ ॥ वात और कफसे उपजा तृतीयज्वर प्रथम कटिप्रांतमें पीडाको
उपजा पीछे आप उपजता है, वात और कफसे उपजा तृतीयज्वर प्रथम पृष्ठ नितंब स्थानमें
पीडाको उपजा पीछे आप उपजता है । वात और पित्तसे प्रथम शिरमें पीडाको उपजा पीछे
आप उपजता है, ऐसे तृतीयज्वर तीन प्रकारका है ॥ १९२ ॥

अथ चातुर्थिक ज्वरलक्षण ।

चतुर्थो द्विविधो ज्ञेयो वातश्लेष्मात्मको ज्वरः ॥ जङ्घाभ्यां

श्लेष्मको ज्ञेयः शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ १९३ ॥ एवं विज्ञाय
सद्वैद्यः कुर्यात्तत्र प्रतिक्रियाम् ॥ १९४ ॥

वात और कफसे उपजा चातुर्थिकज्वर दो प्रकारका है । कफका चातुर्थिकज्वर प्रथम जंघा-
ओंसे उपजता है और वातका चातुर्थिकज्वर प्रथम शिरसे उपजता है ॥ १९३ ॥ ऐसे जानके
कुशल वैद्य वहां क्रियाको करे ॥ १९४ ॥

अथ वेलाज्वरादिकका लक्षण ।

वेलाज्वरो रसगते रक्ते चकाहिकस्तथा ॥ मांसगोऽपि तृतीयः
स्याच्चतुर्थोऽस्थिसमाश्रितः ॥ सर्वधातुगतो ज्ञेयो जीर्णो धातु-
क्षयंकरः ॥ १९५ ॥

वेलाज्वरका स्थान रसमें होता है, एकाहिकज्वरका स्थान रक्तमें होता है, तृतीयकज्वरका
स्थान मांसमें होता है और हड्डियोंमें चातुर्थिक ज्वरका स्थान होता है, सब धातुओंमें गमन
करनेवाला जीर्णज्वर धातुओंको नष्ट करता है ॥ १९५ ॥

अथ भूतादिकसे उपजे रोग ।

भूतजे भूतविद्या स्याद्दधाति शमताडनम् ॥ अभिशपाज्वरो
यस्य तस्य शान्तिः प्रतिक्रिया ॥ १९६ ॥ कामजे कामला
पित्तैर्नयेच्च श्वसनं हितम् ॥ १९७ ॥ क्रोधजे पित्तजे वापि
सद्वाक्मैरुपशामयत् ॥ ओषधीगन्धजैर्मूर्छा कारयेत्सेवनं
हितम् ॥ १९८ ॥

भूतजज्वरमें भूतविद्यासे शांत करना, ताडना देनी ये हित हैं और ब्राह्मणके शापसे उपजे
ज्वरमें शांति करानी हित है ॥ १९६ ॥ कामजज्वरमें कामला और पित्तकी चिकित्साकरके
आश्वासन करना हित है ॥ १९७ ॥ क्रोधसे और पित्तसे उपजे ज्वरमें श्रेष्ठ वाक्योंसे शांति
करना हित है । औषधीके गंधसे उपजे ज्वरमें मूर्छा होती है इसको दूर करनेके लिये
हित पदार्थको सेवे ॥ १९८ ॥

अथ निदिग्धिकादि काथ ।

निदिग्धिकानागरिकामृतानां काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ॥
जीर्णज्वरारोचनकासशूलश्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ १९९ ॥

कटेली, सोठ, गिलोय इन्होंके काथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवे । यह जीर्णज्वर, अरोचक,
खांसी, शूल, श्वासरोग, मंदाग्नि, अर्दितरोग, पीनस इन्होंको नाशता है ॥ १९९ ॥

अथ गुडपिप्पली ।

कासाजीण श्वासहृत्पाण्डुरोगे मन्दे वाग्रौ कामलारोचके च॥
तेषां शस्ता पिप्पली स्याद्गुडेन हन्ति वृणां जीर्णमाशु ज्वरंच २००
गुडमें संयुक्त करी पीपली खांसी, अजीर्ण, श्वासरोग, पांडुरोग, मंदाग्नि, कामला, अरोचक, जीर्णज्वर इन्हेंको शीघ्र हरती है ॥ २०० ॥

अथ लघुपंचमूलकाथ ।

लघुपञ्चमूलकाथितः कफ, यश्छिन्नोद्वायाः सह पिप्पलीभिः॥
जीर्णज्वरे श्वासकफामयग्रौ मन्दाग्निशूलारुचिपीनसानाम्॥२०१
शालपर्णी, पिठवन, छोटी कटेली, बड़ी कटेली, गोखरु इन्हेंके काथको अथवा गिलोयके काथमें पीपलका चूर्ण मिला पीवे तो जीर्णज्वर, श्वास, कफका रोग, मंदाग्नि, शूल, अरुचि, पीनस इन्हेंका नाश होता है ॥ २०१ ॥

अथ जीर्णज्वरपर पटोलादि काथ ।

पटोलपाठाकटुरोहिणीनां फलत्रय वत्सकनिम्बमोक्षाः ॥
द्राक्षामृताचन्दननागराणां काथः पुराणज्वरनाशनाय ॥२०२॥
परवल, श्योनापाठा, कुटकी, हरडै, बहेड़ा, आंवला, इंद्रजव, नींबको छाल, मोखावृक्ष, दाख, गिलोय, चंदन और सोंठ, इनका काथ पुराने ज्वरको नाशता है ॥ २०२ ॥

अथ विषमज्वरका औषध ।

सजीरकं गुडं भक्षेत्सगुडां वा हरीतकीम्॥सगुडान्वा तिलान्भ-
क्षेज्ज्वरे च विषमानुगे ॥२०३॥ सगुडं त्रिफलाकाथं संभक्षेद्वा
गुडार्द्रकम्॥काथोऽपि विषामाणान्तु ज्वराणां नाशकारकः॥२०४
गुडसहित जीराको अथवा गुडसहित हरडैको अथवा गुडहित तिलोंको खावे यह विषम ज्वरको नाशता है ॥ २०३ ॥ गुडसहित अदरक अथवा गुडसहित त्रिफलाके काथको पीवे यह विषमज्वरोंको नाशता है ॥ २०४ ॥

अथ चातुर्थिकज्वरका उपाय ।

वासाधात्रीफलं दारुपथ्यानागरसाधितः ॥
मधुना संयुतः काथश्चातुर्थिकनिवारणः ॥ २०५ ॥
वांसा, आंवला, देवदार, हरडै, सूठके काथमें शहद डाल पीवे । यह चातुर्थिकज्वरको नाशता है ॥ २०५ ॥

अथ चातुर्थिकपर नस्य ।

अगस्तिपत्रं स्वरसैर्निहन्ति नस्ये च चातुर्थिकरोगमुग्रम् ॥

कासं भ्रमं चापि शिरोरुजाश्च नाशश्च नस्ये च हितं नराणाम् २०६

अगस्तिवृक्षके स्वरसको नाकमें चढ़ानेसे भयंकर भी चातुर्थिकज्वर नाशको प्राप्त होता है और खांसी, भ्रम, शिरकी पीडा इनका भी नाश होता है ॥ २०६ ॥

अथ विषमज्वरपर लशुनकलक ।

रसोनकलकं तिलतैलमिश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्तः ॥

विमुच्यतेऽसौ विषमज्वरेभ्यो वातामयैश्चाप्यतिघोररूपैः २०७ ॥

जो विषमज्वरसे पीडितहुआ मनुष्य तिलोंके तेलसे युक्त किये लहसुनके कलकको नित्य खाता रहता है वह विषमज्वर और अत्यंत भयंकर वातके रोगोंसे मुक्त होता है ॥ २०७ ॥

अथ विषमज्वरपर अष्टांगधूप ।

पलञ्च निम्बस्य दलानि कुष्ठं वचा गुडं गुग्गुलुसर्पपाणाम् ॥

हरीतकी सर्पिर्गुतं च धूपं विनाशनं वै विषमज्वराणाम् ॥ २०८ ॥

नींबके पत्ते ४ तोले और कूट, वच, गुड, सरसों, हरडै, गुग्गुलु ये सब उक्त मानसे मिला समहीन पीस घृतसे युक्तकर धूप देनेसे विषमज्वरोंका नाश होता है ॥ २०८ ॥

अथ वेलाज्वरआदिकोंका उपाय ।

सुरसामूलमावृत्य हस्ते बद्धः शुभ दिने ॥ वेलाज्वरादिकान्

हन्ति भूतज्वरनिवारणः ॥ २०९ ॥ मुस्तामृतामलक्यश्च नागरं

कण्टकारिका ॥ कणाचूर्णान्वितः काथस्तथा मधुसमन्वितः ॥

॥ २१० ॥ एकाहिकं वा वेलाद्यं ज्वरं जातं व्यपोहति ॥ २११ ॥

रसोनबीजं विहाय खण्डं कृत्वा निशासु चातक्रमध्ये विनि-

क्षिप्य प्रभाते घृतसंयुतम् ॥ २१२ ॥ सेवितश्च ज्वरान्हन्ति

वेलाद्यान्देहधातुगान् ॥ २१३ ॥ पिप्पलीवर्द्धमानश्च पिबेत्क्षीरं

रसायनम् ॥ महौषधं नागरश्च धान्यं चन्दनवालुकम् ॥ २१४ ॥

गुडूचिकापयः पिबेत्तृतीयकज्वरापहम् ॥ अपामार्गस्य मूलश्च

नीलीमूलमथापि वा ॥ २१५ ॥ लोहितेन तु सूत्रेण आमस्त-

कप्रमाणतः ॥ वामकर्णे कटीं बद्ध्वा ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ २१६ ॥

वानरेन्द्रमुखं दिव्यं तरुणादित्यतेजसम् ॥ ज्वरमेकाहिकं घोरं
तत्क्षणादेव नश्यति ॥ २१७ ॥

तुलसीकी जड़को शुभदिनमें लाके हाथपर बांधे तब वेलाज्वर और भूतज्वरआदि नाशको प्राप्त होते हैं ॥ २०९ ॥ नागरमोथा, गिलोय, आंवला, मूँट, कटेली इनका काथ पीपलका चूर्ण और शहद मिला पीवे ॥ २१० ॥ इससे एकाहिकज्वर, वेलाआदिज्वर दूर होता है ॥ २११ ॥ लहसनके बीजोंको निकास और रात्रिमें टुकड़े बना तक्रके बीचमें स्थापित कर पीछे प्रभातमें घृतसे संयुक्त कर ॥ २१२ ॥ सेवे । यह वेलाआदि और देहके धातुगत आदि ज्वरोंको नाशता है ॥ २१३ ॥ वर्द्धमान पीपल, दूध, रसायन औषध, इनको पीवे और सूट, सफेद लहसन, धनियां, चदन, नेत्रवाला इनको अलग अलग सेवे ये विषमज्वरको नाशते हैं ॥ २१४ ॥ गिलोयका रस तृतीयकज्वरको नाशता है, ऊंगाकी जड़को अथवा नीलकी जड़को ॥ २१५ ॥ शिरके प्रमाण लालसूत्रमें बांध पीछे वामे कानमें और कर्टीपर बांधनेसे तृतीयकज्वरका नाश होता है ॥ २१६ ॥ तरुणसूर्यके तेजके समान तेजवाला सुग्रीव नामक वानरोंका राजा उसके दिव्यमुखको देख घोररूपी एकाहिकज्वर शीघ्र नष्ट होजाता है ॥ २१७ ॥

अथ ज्वरनाशक हनुमान्का पूजन ।

वानराकृतिमालिख्य खटिकायाः पुनः शृणु ॥

गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैरर्चयन्ति भिषग्वराः ॥ २१८ ॥

खड़ियासे वानरकी आकृतिको लिख गंध, पुष्प, चावलोंके अक्षत इनसे ज्वर हटानेके लिये वैद्यवर पूजा करते हैं ॥ २१८ ॥

अथ ज्वरनाशक मन्त्र ।

ओं ह्रां ह्रीं क्लीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्यपुत्रायामितत-
जसे ऐकाहिकद्वयाहिकत्रयाहिकचातुर्थिकमहाज्वरभूतज्वरभय-
ज्वरक्रोधज्वरवेलाज्वरप्रभृतिज्वराणां दह दह पच पच अवत
अवत वानरराज ज्वराणां बन्ध बन्ध ह्रां ह्रीं क्लीं फट् स्वाहा ।
नास्ति ज्वरः । ज्वरापगमनसमर्थज्वरस्त्रास्यते ॥ २१९ ॥

(मंत्र) “ओं ह्रां ह्रीं क्लीं सुग्रीवाय महाबलपराक्रमाय सूर्यपुत्रायामिततेजसे ऐकाहिकद्वयाहिक-
त्रयाहिक चातुर्थिक महाज्वर भूतज्वर भयज्वर क्रोधज्वरवेलाप्रभृतिज्वराणां दहदह पचपच अवत
अवत वानरराज ज्वराणां बन्धबन्ध ह्रां ह्रीं क्लीं फट् स्वाहा । नास्ति ज्वरः । ज्वरापगमनसमर्थज्वर-
स्त्रास्यते” इसमंत्रसे विषमज्वर दूर होजाता है ॥ २१९ ॥

अथ चार वर्णवाले ज्वरोंके चिह्न ।

पुनश्चात्र प्रवक्ष्यामि ज्वराणां रूपलक्षणम् ॥ २२० ॥

ज्वरोंके रूप और लक्षणको फिर कहता हूँ ॥ २२० ॥

अथ ब्राह्मणज्वर ।

संतप्तकाञ्चनाभासो हुताशनसमप्रभः ॥

उड्डीनयज्ञोपवीती च रौद्रो ब्राह्मणरूपकः ॥ २२१ ॥

अच्छी तरह तपाये हुए सोनाके समान कांतिवाला, अग्निके समान प्रकाशित और भयंकर यज्ञोपवीत अर्थात् जनेऊवाला ऐसा रौद्रसंज्ञक ब्राह्मणवर्णवाला ज्वर होता है ॥ २२१ ॥

अथ क्षत्रियज्वर ।

जपाकुसुमसङ्काशो रौद्रदंष्ट्रान्वितस्तथा ॥

खड्गहस्तो महारौद्रो माहेन्द्रः क्षत्रियो मतः ॥ २२२ ॥

जपाके फूलके समान प्रकाशवाला, भयंकर दाढ़ोंसे अन्वित और तलवारको हाथमें लिये हुए और महादारुण ऐसा माहेन्द्रसंज्ञक ज्वर क्षत्रियवर्णवाला होता है ॥ २२२ ॥

अथ वैश्य ज्वर ।

पञ्चकप्रसवाभासतप्तकाञ्चनभूषितः ॥

दण्डहस्तो मध्यवेगी वैश्यो ज्वरेश्वरो मतः ॥ २२३ ॥

पांच प्रकारके फूलोंके समान आकृतिवाला और तपायेहुये सोनासे भूषित हुआ, दंडको हाथमें लेनेवाला और मध्यमवेगवाला ऐसा ज्वरेश्वरसंज्ञक ज्वर वैश्यवर्णवाला कहाता है ॥ २२३ ॥

अथ शूद्र ज्वर ।

कृष्णमेघाज्जनाकारस्तीक्ष्णदंष्ट्रोज्ज्वलाननः ॥

त्रिनेत्रो ज्वलनप्रभः कालः शूद्रो मतस्तथा ॥ २२४ ॥

काले मेघ और पर्वतके समान आकृतिवाला, तीक्ष्ण दाढ़ोंसे प्रकाशित मुखवाला, तीन नेत्रोंवाला, अग्निके समान कांतिवाला और कालरूप ऐसा ज्वर शूद्रवर्णवाला होता है ॥ २२४ ॥

अथ ब्राह्मणज्वरका लक्षण और शांति ।

तीक्ष्णवेगः क्षुधायुक्तः शुचिर्दंष्ट्रा व्रतप्रियः ॥ मूत्रञ्च किंशुका-
भासं पाठशीलोऽतिजल्पकः ॥ २२५ ॥ बहुश्वासी तृपाक्रान्तो

रौद्रब्राह्मणपीडितः ॥ तस्य स्नानं जपं होमं कृत्वा शान्तिः
प्रपद्यते ॥ २२६ ॥

तीक्ष्ण वेगवाला, भूखसे युक्त, पवित्र, वैरको करनेवाला, व्रतमें प्यार करनेवाला, केशके रंगके समान मूत्रको उतरनेवाला, पाठमें अभ्यासवाला और अत्यंत योलनेवाला ॥ २२६ ॥ बहुत श्वासोंको लेनेवाला, तृषासे आक्रांत हुआ ऐसा मनुष्य रौद्रसंज्ञक ब्राह्मणवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना । उसकी शान्ति स्नान, जप, होमादिसे करे ॥ २२६ ॥

अथ क्षत्रियज्वरका लक्षण और शान्ति ।

तीक्ष्णज्वरोऽतितृष्णश्च रक्तमूत्रश्च मूत्र्यते ॥ कुरुते युद्धवार्त्ताञ्च
उत्तिष्ठति बलातुरः ॥ २२७ ॥ तप्तनेत्रो महाश्वासः क्षुधया पीडि-
तस्तथा ॥ मधुगन्धो मुखे स्वेदो माहेन्द्रक्षत्रियार्दितः ॥ २२८ ॥
तस्यादौ ग्रहहोमं तु देवतास्तवनं शुचिः ॥ दानैर्जपादिभिः
कार्ग्यैः प्राप्यते सिद्धिसङ्गमः ॥ २२९ ॥

तीक्ष्णज्वर हो, अत्यंत तृषा लगे, लालमूत्र उतरे, युद्धकी बातको करे, बलसे पीडितहुआ भी उठ खड़ा हो ॥ २२७ ॥ गर्वितनेत्रोंवाला हो, महाश्वाससे संयुक्त हो, सक्का-
लमें क्षुधासे पीडित हो, मधुसरीखे गंधसे युक्त हो और मुखपर पसीनेसे संयुक्त हो ऐसा मनुष्य माहेन्द्रसंज्ञक क्षत्रियवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना ॥ २२८ ॥ इसकी शान्तिके लिये आदिमें ग्रहोंका होम, देवताकी स्तुति, दान, जप इन्होंका होना जरूरी है ॥ २२९ ॥

अथ वैश्यज्वरका लक्षण और शान्ति ।

मध्यवेगः पीतगात्रः स्वप्नशीलोऽरुचिस्तथा ॥ शीतपवनहृदुष्णः
कण्ठस्वेदोऽतिविह्वलः ॥ २३० ॥ बहुमूत्री भक्तियुक्तो मौनी
पीतान्तलोचनः ॥ नातितृष्णातुरः स्निग्धः स विज्ञेयो ज्वरेश्वरः
॥ २३१ ॥ तत्र स्वस्त्ययनातिथ्यं द्विजदेवतपूजनम् ॥ जपहो-
मादिकं सर्वं कर्त्तव्यं शान्तिहेतुना ॥ २३२ ॥

मध्यमवेगवाला, पीले शरीरवाला, शयनको करनेवाला और अरुचिसे युत हुआ, शीतलपवनको वर्जनेवाला, गरमस्वभाववाला, कंठमें पसीनासे संयुक्तहुआ और अत्यंत विह्वल हुआ ॥ २३० ॥ बहुतसे मूत्रको उतारनेवाला, भक्तिसे युक्त और मौनी और नेत्रोंके अंतमें पीलेपनसे संयुक्त और अत्यंत तृषासे नहीं पीडित हुआ, चिकना शरीरवाला ऐसा

मनुष्य ज्वरेश्वरसंज्ञक वैश्यवर्णवाले ज्वरसे पीडित जानना ॥ २३१ ॥ इसमें शांतिके लिये कल्याणके कर्म, अतिथिकी सेवा, ब्राह्मण और देवतोंकी पूजा, जप, होम, इन सबोंका करना जरूरी है ॥ २३२ ॥

अथ शूद्रज्वरका लक्षण और शांति ।

हृच्छूलश्चातिसारी वा मत्स्यगन्धाङ्गलेपनः ॥ उन्मादी चाति-
तृप्ताक्षो रतेषु विकलेन्द्रियः ॥ २३३ ॥ प्रणयी त्वध्वनौ
भीरुर्यासं नैवाभिकाङ्क्षया ॥ कालभृङ्गारकेणापि शूद्रे सिद्धिर्न
जायते ॥ २३४ ॥

हृदयमें शूलवाला, अतीसारसे संयुक्त हुआ, मछलीके गंधके समान गंधवाला और अँगोपर लेप करनेवाला, उन्मादसे संयुक्त और अतितृप्तहुए नेत्रोंवाला और भोगमें विकलहुई इंद्रियोंवाला ॥ २३३ ॥ नम्रतासे युक्त हुआ और रस्तेमें चलनेसे डरनेवाला और इच्छासे ग्रासको नहीं लेनेवाला और भंगरा सरीखे रूपवाला ऐसा मनुष्य शूद्रज्वरसे पीडित होता है इसमें सिद्धि होती नहीं ॥ २३४ ॥

अथ सर्वरोगोंपर उपचार ।

स्नानं दानजपं सुरार्चनविधिर्होमादयः प्रीतता भूतानाञ्च विशेष-
णेन बहुधा तृप्तिं च कुर्यात्ततः ॥ गोभूमिं कनकान्नपानवि-
धिना दानेन शान्तिर्भवेत्सर्वेषां च रुजां विनाशनमिदं शंसन्ति
सत्यव्रताः ॥ २३५ ॥

इस ज्वरकी शांतिके लिये स्नान, दान, जप, देवतोंकी पूजा, होम आदिको करना और मनु-
ष्योंको प्रसन्नता और भोजनसे तृप्त करना, गाय, पृथिवी, सोना, अन्न, पानी इनका दान करना,
ऐसे करनेसे सब रोगोंकी शांति होती है ऐसे सत्यव्रतवाले मुनि कहते हैं ॥ २३५ ॥

अथ ज्वरवालेको पथ्यआहारादि ।

वैगं कृत्वा विषं यद्वदाशये लीयते बलम् ॥ कुप्यते प्रबलं भूयः
काले दोषो विषं तथा ॥ २३६ ॥ शालिषष्टिकभक्तानां यूषं मुद्गा-
ढकीषु च ॥ पूर्वोक्तानि च शाकानि वातघ्नानि भवन्ति हि ॥
॥ २३७ ॥ शतपुष्पा च जीवन्ती तण्डुलीयकवास्तुकम् ॥
घृतेन भाजिका सिद्धा शाकपत्राण्यमूनि च ॥ २३८ ॥ लाव-
तिसिरमांसादिवार्त्ताकानां तथातुरे ॥ मृगच्छिकरिकाद्यानि जाङ्ग-

लानि प्रयोजयेत् ॥२३९॥ कोशातकी पटोलं च शुण्ठीकं च
हितं भवेत् ॥

जैसे विषयेगको करके आशयमें लीन होके फिर समयपर अत्यंत रुपित होता है तैसे ही दोष भी समयपर फिर रुपित होता है ॥ २३६ ॥ शालिचावल, नांठीचावल, मूंग और अरहरका दूध और पूर्वोक्त शाक ये सब दातको नाशते हैं ॥२३७॥ सौंफ, जीवंती, चौलाई, बथुवा, इन्होंकी भाजीको घृतमें सिद्धकर प्रयुक्त करें ॥ २३८ ॥ लावा, तीतर, वत्तक, मृग, छिन्नर इन आदि जांगलदेशके जीवोंके मांसोंको भी रोगीको देवे ॥ २३९ ॥ तोरी, परवल, मूठ ये भी हित हैं ॥

अथ ज्वरवालेकूं अपथ्य ।

वर्जयेद्भिदलान्नानि विदाहीनि गुरूणि च ॥ २४०॥ न पिच्छ-
लानि तैलानि तथाम्लानि च वर्जयेत् ॥ दधिमस्तुविशालानि
क्षुद्रान्नानि भिषग्वरः ॥ २४१ ॥ बहूदकश्च ताम्बूलं घृतं वापि
सुरामपि ॥ २४२ ॥ क्रोधं शोकश्च त्यक्त्वा वै सदा सौख्यं
विभुञ्जते ॥ न कुर्याज्जागरं रात्रौ दिवास्वप्नश्च वर्जयेत् ॥ २४३ ॥
शकटवाजिकरिद्विपिवाहनं प्रबलं परिवर्जयेत्तु सततम् ॥ ज्वरि-
णमांशु सुखं बुभुजे सुधीः शुभविधाननिधान उपस्थितः ॥ २४४ ॥

विदलसंज्ञक और दाहको करनेवाले और भारी ऐसे अन्नोंको त्यागे ॥ २४० ॥ कफकारी तेल सेवने हुए और खट्टे ऐसे शाकोंको भी वर्ज्य, दही, दहीका पानी, रसाला, क्षुद्रअन्न ॥ २४१ ॥ बहुत पानी, नागरपान, घृत, मदिरा ॥ २४२ ॥ क्रोध, शोक इन्होंको त्यागके रोगी सबकालमें सुखको प्राप्त होता है, रात्रिमें जागे नहीं और दिनमें सोवे नहीं ॥ २४३ ॥ गाड़ी, घोड़ा, हस्ती, गेंडा इन्होंकी सवारीको रोगी निरंतर त्यागे ऐसे त्यागनेसे ज्वरवालेको सुख उपजता है ॥ २४४ ॥

अथ ज्वरमुक्तोंका वर्तना ।

व्यायामं च व्यवायं च अशनं रात्रिजागरम् ॥ ज्वरमुक्तो न
सेवेत तदा सम्पद्यते सुखम् ॥ २४५ ॥ इति आत्रेयभाषिते हारी-
तोत्तरे तृतीयस्थाने ज्वरचिकित्सानाम् द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

ज्वरसे मुक्त हुआ मनुष्य कसरत, खीसंग, अति भोजन, रात्रिको जागना इन्होंको नहीं सेवे

तव सुखको प्राप्त होता है ॥ २४९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यविदत्तशाह्यनु-
वादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने ज्वरचिकित्सानाम् द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथातीसारचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अथातीसारविज्ञानं भेषजं शृणु पुत्रक ॥
ज्वरजो वातिसारश्च भेषजं चोपदिश्यते ॥ १ ॥ दोषसंशमनं कि-
ञ्चित् किञ्चित् धातुदूषणम् ॥ स्वस्थवृत्तौ मतं किञ्चिद्रव्यं त्रिविध-
मुच्यते ॥ २ ॥ तच्च दैवपथाश्रयं युक्तिपथाश्रयं सत्त्वावजयञ्च ॥
मन्त्रौषधमणिमंगलबल्युपहारहोमनियमप्रायश्चित्तोपवासस्व-
स्त्ययनप्राणिधानादीति दैवपथाश्रयम् ॥ आहारव्यवहारौषधद्र-
व्याणां योजनेति युक्तिपथाश्रयम् ॥ अहितेभ्योऽर्थेभ्यो मनो-
निग्रह इति सत्त्वावजयञ्च ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--हे पुत्र! अतीसारविज्ञान और औषधको सुन--ज्वरातिसार हो अथवा
अतीसार हो तहां औषधका उपदेश कियाजाता है ॥ १ ॥ दोषको शमन करनेवाला कोई औषध
है और धातुको दूषित करनेवाला कोई औषध है और स्वस्थवृत्तिमें कोई औषध माना है ऐसे
औषध तीन प्रकारके हैं ॥ २ ॥ दैवपथाश्रय, युक्तिपथाश्रय, सत्त्वावजय ऐसे औषध तीन
प्रकारके हैं । मन्त्र, औषध, मणि, मंगल, बलि, भेट, होम, नियम, प्रायश्चित्त, व्रत, स्वस्त्ययन,
प्राणिधान आदि दैवपथाश्रय अर्थात् देवके मार्गसे आश्रित हुआ औषध कहाता है. आहार,
व्यवहार, औषध इन्होंकी योजना की जावे वह युक्तिपथाश्रय अर्थात् युक्तिके मार्गसे आश्रित
हुआ औषध कहाता है. अहित अर्थोंसे मनका निग्रह होना यह सत्त्वावजय औषध कहाता
है ॥ ३ ॥

अथ अतिसारका लक्षण ।

स्निग्धातिशीतगुरुशीतलपिच्छलान्नं दुष्टाशनातिविषमाशनपा-
नभक्ष्यम् । अद्यादजीर्णमथ शोकविषैर्भयैर्वा शोकार्त्तिदुष्टपयसा
तु विपर्ययेषु ॥ ४ ॥ दौर्बल्यतां विषमभोजनकेन चाप्सु संभि-
द्यते मलमजीर्णं निहन्ति चाग्निः ॥ सञ्जायते हि मनुजस्य तदा-
तिसारो हत्वोदराग्निं मनुजस्य तदातिसारः ॥ ५ ॥ सञ्जायते

स तु पुनर्बहलो मलेन स्यात्पञ्चधा निगदितो मुनिभिर्विधिज्ञैः॥
रक्ष्ये समासत उदीर्णरुजस्य नाशः काथादिकैर्भवति पाचनकैश्च
पूर्वम् ॥ ६ ॥

चिकना, अत्यन्त शीतल, भारी, शीतल, कफकारी, दुष्ट ऐसे भोजन और अत्यन्त भोजन, विषम भोजन और विषमपान और धर्जीर्णमें भोजन इन्होंसे और शोक, विष, भय इन्होंसे और शोककारके दुष्ट दुष्ट दूधसे अथवा शयनादिके विपरीतपनेसे ॥ ४ ॥ दुर्बल मनुष्यका विषम भोजनसे अपक्व मल जलमें फैलकर अग्निको शांत कर देता है उसी समय मनुष्यके अतीसार होता है ॥ वह मलसे अत्यंत बड़ा होता है और विधिको जाननेवाले मुनियोंने वह पांच प्रकारका कहा है । बड़े हुए रोगके नाशको प्रथम काथ आदि और पाचनकरके रक्षित करना ॥ ६ ॥

अथ ज्वरातिसार ।

द्युरपजायते यस्य ज्वरश्चैवातिसारकैः॥ज्वरातिसारो घोरोऽसौ
कष्टसाध्यो मनीषिणाम् ॥ ७॥ न पित्तेन विना सोऽपि जायते
शृणु पुत्रक ॥ तस्य नो लंघनं प्रोक्तं ज्वरे चैवातिसारके ॥ ८ ॥

जिस रोगीके एककालमें ज्वर और अतीसार उपजे वह घोररूप ज्वरातिसार कहाता है। यह बुद्धिमानोंको भी कष्टसाध्य है ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! मुन पित्तके बिना ज्वरातीसार नहीं होता है इसवा-
त ज्वरातीसारमें लंघन नहीं कहा है ॥ ८ ॥

अथ अतीसारकी चिकित्सा ।

सुवर्चलमतिविषाहिंशुपथ्याकलिङ्गकैः॥ शुण्ठी वामातिसारघ्नी
शूलघ्नी ग्राहिपाचनी ॥ ९॥ पथ्यादारुवचामुस्तानागरातिविषा-
युतैः॥ आमातिसारनाशाय क्वाथमेभिः पिबेन्नरः ॥ १० ॥

काला नमक, अतीस, हींग, हरड़ै, इंद्रजव, सोंठ इन्होंकी गोली आमातीसार, शूल, इनको नाशती है पाचन है और कब्जको करती है ॥ ९ ॥ हरड़ै, देवदार, वच, नागरमोथा, सोंठ, अतीस इन्होंका काथ आमातीसारको नाशता है ॥ १० ॥

अथ ज्वरातिसारके ऊपर उत्पलषट्क ।

उत्पलं धान्यकं शुण्ठी पृश्निपर्णी बलायुतम्॥बालबिल्वं गवां
तक्रेणात्युष्णेन च पेषयेत् ॥ ११ ॥ तेन लाजाकृतं मण्डं देय-
मानीय शीतलम्॥ ज्वरातिसारशमनं हुताशनबलप्रदम् ॥ १२ ॥

नीला कमल, धनियां, सोंठ, पिठवन, खरैहटी, घेलगिरीका गूदा इनको गायके तकसे पीसे

॥ ११ ॥ पीछे उसमें धानकी खीलोंका मंड बना शीतल कर पीवे । यह ज्वरातीसारको शांत करता है और जठराग्निको बल देता है ॥ १२ ॥

अथ शुण्ठ्यादि काथ ।

शुण्ठीविषातलधरामृतवत्सकानां तिक्ताह्वयं कनकशीतलकः
कषायः ॥ पाने विधेयमधुना प्रतिसाधितस्तु ज्वरातिसारशम-
नाय सदा प्रदेयः ॥ १३ ॥

सोंठ, अतीस, कलौजी, जीरा, गिलोय, इन्द्रजव, कुटकी, पीला कमल, चन्दन इन्हींका काथ पीना । यह सब कालमें ज्वरातीसारको नाशता है ॥ १३ ॥

अथ पाठादि काथ ।

पाठेन्द्रभूनिम्बघनामृतानां सपर्पटः काथ इह प्रशस्तः ॥
आमातिसारं च जयेद्भुतं वा ज्वरेण युक्तं सहजं च तीव्रम् ॥ १४ ॥

श्योनापाठा, इन्द्रजव, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, पित्तपापडा, इन्हींका काथ आमाती-
सारको और ज्वरातीसारको जीतता है इसवास्ते श्रेष्ठ है ॥ १४ ॥

अथ शुण्ठ्यादि पाचन ।

शुण्ठी बालकमुस्ता बिल्वं पाठा विषा च धान्यानि ॥
पाचनमरुचौ छर्दिज्वरातिसारं विनाशयति ॥ १५ ॥

सोंठ, नेत्रवाला, नागरमोथा, बेलगिरी, श्योनापाठा, अतीस, धनियां इन्हींका काथ पाचन है ।
अरुचि, छर्दि और ज्वरातीसारको नाशता है ॥ १५ ॥

अथ वत्सकादि काथ ।

वत्सकश्च सुरदारुरोहिणीधान्यबिल्वमगधात्रिकण्टकम् ॥
निम्बबीजगजपिप्पलीवृकीक्वाथ एवमतिसारभेषजम् ॥ १६ ॥

इन्द्रजव, देवदार, हरडे, धनियां, बेलगिरी, पीपल, गोखुरु, गहड़ा, गजपीपल, काश्मीरी पाठा
इन्हींका काथ अतिसारमें अति उत्तम औषध है ॥ १६ ॥

अथ पञ्चमूली काथ ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ॥ पाठाभूनिम्बह्रीबेरकुट-
जत्वक्फलैर्भृतः ॥ १७ ॥ इति सर्वानतीसारान्वमिश्रासज्वरादि-
तान् ॥ सशूलोपद्रवांश्चासौ हन्याच्चासुरदारुणम् ॥ १८ ॥ पञ्च-

मूल्यतिसामान्या योज्या पित्ते कनीयसी ॥ महती पञ्चमूली तु
वातहेष्मज्वरे हिता ॥ १९ ॥

पञ्चमूलः खरहंटी, वेलगिरी, गिलोय, नागरमोथा, सोंठ, श्योनापाठा, चिरायता, नेत्रवाला, कूडे-
की छाल, इन्द्रजव इन्होंका काथ ॥ १७ ॥ सबप्रकारके अतीसार, छर्दि, श्वासरोग, ज्वर
शूल, इन्होंको नाशता है ॥ १८ ॥ पित्तदोषमें लघुपञ्चमूल वर्तना वात और कफदोषमें बृहत्प-
ञ्चमूल वर्तना ॥ १९ ॥

अथ उत्पलादिपाचन ।

उत्पलं दाडिमत्वक्च केशरं तथा मधु पद्मकम् ॥

धात्री पिष्टा तण्डुलतोयैः पाचनं ज्वरातिसारघ्नम् ॥ २० ॥

नीला कमल, अनारकी छाल, केशर, कमल, मौरेठी आंवला इन्होंको चावलोके पानीसे पीस
शहद मिला पीवे । यह पाचन ज्वरातीसारको नाशता है ॥ २० ॥

अथ उशीरादि काथ ।

उशीरं धान्यकं मुस्तं सबिल्वं बालकं बला ॥ तथा च धातकी-
पुष्पं कपायस्य प्रशस्यते ॥ २१ ॥ ज्वरातिसारशमनं सहशो-
णितपैत्तिकम् ॥ निहन्ति शोफं सकलं रुचिप्रदविपाचनम् ॥ २२ ॥

खश, धनियां, नागरमोथा, वेलगिरी, नेत्रवाला, खरहंटी, धवके फूल इन्होंका काथ श्रेष्ठ है
॥ २१ ॥ ज्वरातिसार, रक्तातिसार, पित्तातिसार, सब प्रकारका शोजा इन्होंको शांत करता है
और रुचिको देता है और पाचन है ॥ २२ ॥

विगतामातिसारं चिरोत्थितं रक्तसहितमतिवृद्धम् ॥

मधुना सहितः शमयत्यरलुः पुटपाकनिर्यासितः ॥ २३ ॥

श्योनापाठाको पुटपाककी विधिसे पकाके रसको निचोड़ उसमें शहद मिला पीवे यह
पक्कातिसार और पुराना अतीसार और बड़े हुए रक्तातिसारको भी नाशता है ॥ २३ ॥

जम्बूवादिस्वरस ।

जम्बूवटोदुम्बरप्लक्षको हि नागश्च प्रपौण्डरिकं शमी च ॥ गुन्द्रः
सच्चतोऽम्बुदजीविकाया आसां हि पुञ्जश्च सदा विदध्यात् ॥ २४ ॥
प्रस्थद्वयेन प्रपिबेद्धि तावद्यावद्विशेषांशमिदं प्रजायते ॥ पुनः
कटाहे विपचेच्च सम्यग्दार्वीप्रलेपः स्वरसश्च यावत् ॥ २५ ॥
उत्तार्य नूनं भिषगुत्तमेन क्षौद्रेण मिश्रं हरतेऽतिसारम् ॥ २६ ॥

जामुन, वड़, गूलर, पकारिया, नागकेशर, कमल, जाठी, मोथा, तृण, आंव, नागरमोथा, जीवंती इन्होंके फूलोंको सबकालमें लेवे ॥ २४ ॥ पीछे १२८ तोले पानीमें पकावे । जब चौथाईभाग शेष रहे तब छानके फिर कढ़ाईमें घालि फिर पकावे जब कड़छीपर चपनेलगे ॥ २५ ॥ तब उतार उत्तमवैद्यको निश्चय शहद मिला रोगीको देना चाहिये यह अतिसारको हरता है ॥ २६ ॥

काकमाचीका प्रयोग ।

हारीतेन तथा प्रोक्ता काकमाची सुपूजिता ॥

आलोक्यानेकशास्त्राणि आत्रेयेणापि पूजिता ॥ २७ ॥

जैसे अनेक शास्त्रोंको देख आत्रेयजीने काकमाची अर्थात् भोलणीनामसे प्रसिद्ध मकोह-विशेष ओषधी पूजित की है तैसे ही हारीतने भी यही ओषधी पूजी है अर्थात् अतिसारमें श्रेष्ठ समझी है ॥ २७ ॥

जंबूत्वगादिका अवलेह ।

जम्बूत्वचं वत्सकवल्कलं च निष्कवाथ्य नूनं सलिले समीरणम् ॥

चतुर्विभागेष्वपि शेषितेषु उत्तार्य वस्त्रेष्वथ गालयेच्च ॥ २८ ॥

पुनः कटाहे विपचेच्च सम्यग्दावीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥

उत्तार्य शीते मधुना विमिश्रं लीढं हरेदप्यतिसारमुग्रम् ॥ २९ ॥

जामनकी छल, कुड़ाकी छल, इनका पानीमें क्याथ बना जब चौथाई भाग शेष रहे तब उतारि वस्त्रसे ॥ २८ ॥ छान फिर कड़ाहीमें घाल अच्छीतरह पकावे । जब कड़छीपर चपकने लगे और स्वरसरूप रहे तब अग्निसे उतार शीतलकर शहद मिला चाटे । यह दारुण अतिसारको हरता है ॥ २९ ॥

अतिसारका पूर्वरूप ।

कुक्षौ दरे वक्षसि नाभिदेशे पायुप्रदेशे सततं निरुद्धे ॥

वातस्य रोधश्च शकृद्विभङ्गो भवन्ति सर्वेष्वतिसारकेषु ॥ ३० ॥

सर्व अतिसाररोगमें कुक्षि, उदर, छाति, नाभिदेश, गुदामण्डल, ये सब स्थान रुककर अधोवायुका रोध और विष्टाका भंग होता है ॥ ३० ॥

अथ वातातिसारका लक्षण और चिकित्सा ।

सफेनिलं पिच्छलमेव रूक्षमल्पं शकृदामसशब्दशूलम् ॥ कृष्णं

भवेद्वात्रविचेष्टनञ्च वातातिसारे प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३१ ॥

तस्यादौ लङ्घनं चैकमल्पे वा नैव लङ्घनम् ॥ तस्माद्वयं कषायं
तु पानभोजनमेव च ॥ ३२ ॥

झागोंसे मिलाहुआ गाढा और रूखा मल उतरे और थोड़ा बारबार आमसहित आवे और दिशाजानेके समय शब्द और शूलको उपजावे और शरीर आदि कृष्णवर्ण होजावे उसको चातातीनार कहते हैं ॥ ३१ ॥ उसके आदिमें एक लङ्घन करना और अल्परूप वाताति-
सारमें लङ्घन नहीं करना उससे काथ, पान, भोजन ये देने चाहिये ॥ ३२ ॥

अतिसारका पाचक कल्क ।

उदीच्यवान्यस्य जलेन कल्कं पाने हितं पाचयतेऽतिसारम् ॥

तृष्णापहं दाहविनाशनञ्च सशूलहिक्कासु विनाशनं स्यात् ३३ ॥

नेत्रवाला, धनियां इनको पानीमें पीस कल्क बना खानेसे अतिसारको पकाता है और तृषा, दाह, शूल, हिचकी इनको नाशता है ॥ ३३ ॥

बालकादि कल्क ।

बालकद्वयमोचहरीतकीर्पट्टेन सहितं जलेन च ॥ काथपान-

मिदमेवातिसारे नाशमाशु कुरुते च विद्विष्यन्ति ॥ ३४ ॥

नेत्रवाला, खश, मोचरस, हरैडै, पित्तपापड़ा, इनका पानीमें काथ बना अतिसार रोगी पीवे । यह त्रिष्टाको शांत करता है ॥ ३४ ॥

शालिपर्ण्यादिपानक ।

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ॥ बालाश्वदंष्ट्रा बिल्वा-
नि पाठा नागरधान्यकम् ॥ ३५ ॥ एतदाहारसंयोगे हितं सर्वा-
तिसारिणाम् ॥

शालवन, पिठवन, बड़ी कटेहली, छोटी कटेहली, नेत्रवाला, गोखरू, बेलगिरी, श्योनापाठा, सौंठ, धनियां ॥ ३५ ॥ यह द्रव्य भोजनके संयोगमें अतिसार रोगियोंको हित हैं ॥

तिन्दुकादिरसपानक ।

तिन्दुकत्वचमाहृत्य काश्मरीपत्रवेष्टिताम् ॥ ३६ ॥ मृदा विलिप्य
विधिवदहेन्मृद्वग्निना भिषक् ॥ रसं गृहीत्वा मधुसंयुतं पानं
सर्वातिसारघ्नञ्च ॥ ३७ ॥

और तेंदुआवृक्षकी छालको ले कंमारीके पत्तोंसे वेष्टित करे ॥ ३६ ॥ पीछे माटीसे विधिपूर्-
वक लीपा कोमल अग्निसे दग्ध कर पीछे रस निकाल शहदसे संयुक्त कर पीवे यह सबप्रकारके
अतिसारोंको नाशता है ॥ ३७ ॥

कुटजपुटपाक ।

तुलामथार्द्रागिरिमल्लिकायाःसंकुटच कर्षञ्च समादधीत॥तस्मि-
न्सपूते पलसंसितञ्च देयञ्च पिष्ट्वा सह शाल्मलेन॥३८॥ पाठा
समज्ञातिविषा समुस्ता बिल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम् ॥
प्रक्षिप्प भूयो विपचेच्च तावद्दार्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत्॥३९॥
पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन मण्डेन वाजापयासाऽथवापि ॥
निहन्ति सर्वमतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकञ्च ॥४०॥
दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तपित्तं तथाशंसि सशोणितानि ॥
असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम्॥४१॥

कूड़ाकी गीली छालको ४०० तोलेभर ले और कूट पानीमें अग्निपै पकावे जब चौथाई-
भाग शेष रहे तब वस्त्रमें छान फिर अग्निपै धर मोचरस ॥ ३८ ॥ श्योनापाठा, मँजीठ,
अतीश, नागरमोथा, वेलगिरी, धवके फूल, ये सब चारचार तोले भर ले पूर्वोक्तमें मिलाके
पकावे जब कड़्छीपै चिपने लगे और स्वरस ही हो तब उतारे ॥ ३९ ॥ पीछे कालको
जाननेवाले रोगीने मंड, बकरीका दूध, इनके संग पीनी । यह-कृष्ण, सफेद, लाल,
पीला, ऐसे वर्णके सब अतिसारोंको नाशता है ॥ ४० ॥ और ग्रहणी दोष, अनेक प्रकारकी
रक्तकी बवासीर और असाध्यरूप प्रदर रोग इनको निश्चय हरता है । इसको 'कुटजाष्टक'
कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ पित्तातिसारका लक्षण और चिकित्सा ।

घर्मेण चोष्णान्नविभोजनेन घर्मेण तप्तोदकसेवनेन ॥ शोकेन
तापेन रुषा कटुत्वे क्षारेण पित्तासृक्सारकःस्यात्॥४२॥तेनारुणं
पीतमथातिनीलं दुर्गन्धशोषज्वरपाण्डुयुक्तम् ॥ भ्रमातिमूर्च्छा
च तृषाङ्गदाहः पित्तातिसारस्य च लक्षणानि ॥ ४३ ॥

घामसे और गरम अन्नके भोजनसे और घामसे तप्तहुए जलके सेवनेसे शोक और तापसे
क्रोधसे कड़ुआ और खारारस सेवनेसे पित्तातिसार उपजता है ॥ ४२ ॥ लाल, पीला,
अत्यंतनीला, ऐसा मल उतरे और दुर्गन्ध, शोष, ज्वर, पांडुरोग, भ्रम, मूर्च्छा, तृषा, ये उपजे
और अंगोंमें दाह^(१) हो उसको पित्तातिसार जानिये ॥ ४३ ॥

१ यही हा० सं० पृ० २२२ में कुटजाष्टकके नामसे है । वहां "संकुटच पक्त्वा रसमादधीत" का पाठभेद है ।

अथ शालिपर्ण्यादिपान ।

शालिपर्णीप्रशिनपर्णीवलाविल्वैस्तु साधितः ॥

दाडिमाम्लो हितः पेयः पित्तातीसारशान्तये ॥ ४४ ॥

शालवन, पिठवन, खरेंहटी, बेलगिरी, इनसे बनायी अनारकी कांजीको पीना यह पित्तातीसारकी शान्तिमें हित है ॥ ४४ ॥

अथ तृणमूलका काथ ।

कुशकाशेषुमूलानां शालीनलभवैर्जलैः ॥

मूलानां काथमाहृत्य शस्तं पित्तातिसारिणाम् ॥ ४५ ॥

कुश, काश, ईख, इनकी जड़ोंका चावल और कमलके पानीमें काथ बना पीवे यह पित्तातीसारियोंको श्रेष्ठ है ॥ ४५ ॥

अथ धान्यपञ्चकादिकाथ ।

धान्यपञ्चकमूलानां काथः पित्तातिसारिणाम् ॥ ४६ ॥

धानियां और पंचमूलका काथ पित्तातिसारियोंको हित है ॥ ४६ ॥

अथ शाल्मलीमूलकल्क ।

शाल्मलीमूलत्वग्गुडदुग्धपेषितं च ॥

पानं पित्तातिशमनं सरक्तदाहशोषहरम् ॥ ४७ ॥

समलकी जड़ और छाल, गुड़ इनको दूधमें पीस पीवे । यह पित्तातिसार, रक्त, दाह, शोष इनको हरता है ॥ ४७ ॥

अथ कफातिसारलक्षण ।

दुःस्वप्नादिश्रमाद्वै सहजजडतया शीतसंसेवनेन स्निग्धाहाराति-

भोज्यात्सतिलपलगुडैश्चैशुखण्डैर्गुरूणाम् ॥ शीतातिस्नानलौ-

ल्यात्पयसि दधियुताहारसंसेवनाच्च जातः श्लेष्मातिसारो जठर-

हुतभुजं हन्ति पुंसामपाकः ॥ ४८ ॥ तेन श्लेष्मा शुष्कभेदारुचिः

स्यात्सान्द्रं विस्त्रं जाड्यता रोमहर्षः ॥ मन्दाग्नित्वं मन्दवेगो

विशिष्टः सालस्योऽपि विद्धि सारः कफोत्थः ॥ ४९ ॥

दुःस्वप्न अर्थात् बुरीतरह शयन आदिसे, परिश्रमसे, स्वाभाविक जड़पनेसे, शीतलपदार्थके सेवनेसे चिकने भोजनको और अत्यन्तभोजनके करनेसे और तिल, गुड़, मांस, ईखका गांड़ा, भारीपदार्थ इनके सेवनेसे और शीतलपानीमें अत्यन्त स्नान और चंचलता करनेसे और

दहीसे युक्तहुये भोजनके सेवनेसे कफातीसार उपजता है और जो आप नहीं पक्ता है पेटकी अग्निको नाशता है ॥ ४८ ॥ जिसका मल चिकना और सफेद गाढ़ा दुर्गंधिलिये शीतल, थोड़ी पीड़ासहित उतरे और शरीर भारी रहे और भोजनमें अरुचि हो उसको कफातिसार कहते हैं ॥ ४९ ॥

अथ कफातिसारकी चिकित्सा ।

तस्यादौ लघनं प्रोक्तं ज्ञात्वा देहबलाबलम् ॥

पाचनं च विधातव्यं त्र्यूषणाद्यं भिषग्वर ॥ ५० ॥

तिसकी आदिमें देहके बल और अवलको जानके वक्ष्यमाण पाचनको देवे ॥ ५० ॥

अथ त्र्यूषणादिक पाचन ।

त्र्यूषणमभया हिडु चातिविषा रुचकं वचायुक्तम् ॥

सधुसहितं लेहनं नृणां गङ्गामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ॥ ५१ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरडै, हींग, अतीश, कालानमक, वच इन्होंके चूर्णमें शहद मिला चाटे यह मनुष्योंके गंगाके समान बहतेहुये अतीसारको रोकता है ॥ ५१ ॥

अथ कालिंगादि कल्क ।

कालिङ्गपाठातिविषा बला च सोदीच्यमुस्तामरिचानि शुण्ठी ॥

गुडेन क्षौद्रेण प्रशस्तकल्को रक्तातिसारे कफजे शमाय ॥ ५२ ॥

इन्द्रयव, श्योनापाठा, अतीश, खरैहटी, नेत्रवाला, नागरमोथा, मिर्च, सोंठ इन्होंके कल्कमें गुड़ और शहद मिला खावे, यह रक्तानिसारमें और कफातिसारमें हित है ॥ ५२ ॥

अथ वत्सकादि क्वाथ ।

वत्सकातिविषबिल्वमुस्तकं बालकेन सहितं जले न तु ॥

क्वाथपानमतिशूलरक्तपूयनाशं ज्वरयुतेऽतिसारके ॥ ५३ ॥

कूड़ा, अतीश, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रवाला, इन्होंका पानीमें क्वाथ बना पीवे यह अत्यंतशूल, राद, ज्वर, कफ, इनसे युक्त हुए अतिसारमें हित है ॥ ५३ ॥

अथ रक्तातिसारका लक्षण ।

यस्तु रक्तं च शुद्धं विरेचने शोषदाहमतिरिञ्चेत् ॥

रक्तातिसार इति ज्ञेयो वैधैर्महामतिभिः ॥ ५४ ॥

जो रोगी मल उतरनेके समय शुद्ध रक्त शोष और दाहसे युक्त छोड़े वह रक्तातिसारी है ऐसे समझदार वैद्योंको जानना चाहिये ॥ ५४ ॥

अथ धान्यादि काथ ।

धान्यनागरमुस्ता च वालकं वालविल्वकम् ॥

बला नागबला चेति काथो रक्तातिसारिणाम् ॥ ५५ ॥

धनियां, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, कच्ची बेलगिरी, खैरहटी, बड़ी खैरहटी इनका काथ रक्तातिसारवालोंको हित है ॥ ५५ ॥

अथ दाडिमादिकाथ ।

दाडिमं च कपित्थं च पथ्याजं वाम्रपल्लवान् ॥

पिप्पला देया मस्तुयुक्ता रक्तातीसारवारणाः ॥ ५६ ॥

अनार, कैथ, हरड़ें, जामुन और आंवके पत्तोंको पीसकर दहीके पानीमें देवे । यह काथ रक्तातिसारको नाशता है ॥ ५६ ॥

अथ गुडबिल्वादियोग ।

गुडेन पक्कं दातव्यं बिल्वं रक्तातिसारिणे ॥

दध्ना वा मधुना पथ्या रक्तातीसारनाशिनी ॥ ५७ ॥

पकाहुआ बेलगिरीका फल गुड़के साथ रक्तातिसारवालेको देना अथवा हर् शहदके अथवा दहीके साथ देना इससे रक्तातिसारका नाश होता है ॥ ५७ ॥

अथ वत्सकावलेह ।

वत्सकातिविषानागराभयामस्तुसंयुतः ॥

लेहः शस्तोऽस्ति मधुना रक्तातीसारनाशनः ॥ ५८ ॥

कूडा, अतिश, सोंठ, हरड़ें इन्होंको पीस शहद और दहीके पानीमें मिला पीवे यह रक्तातिसारको दूर करता है ॥ ५८ ॥

अथ कुटजादिचूर्ण ।

कुटजत्वक् च पाठा च विश्वं बिल्वं च धातकी ॥

मधुना सहितं चूर्णं देयं रक्तातिसारनुत् ॥ ५९ ॥

कूडाकी छाल, पाठा, सूठ, बेलगिरी, धवके फूल, इनके चूर्णको शहदमें मिला देवे । यह रक्तातिसारको हरता है ॥ ५९ ॥

अथ सन्निपातके अतिसारका लक्षण और चिकित्सा ।

वराहवासासदृशं तिलाभं मांसधावनाभासम् ॥

पक्कजम्बूफलसदृशं सन्निपातः प्रवहताम् ॥ ६० ॥

रूकरकी बसाके समान और तिलोंके समान कांतिवाला और मांसके धोवनके समान प्रकाशित और पके हुए जामनके फलके समान ऐसा मल उतरे तिसको सन्निपातका अती-
सार जानिये ॥ ६० ॥

अथ कुटजाष्टक ।

तुलामथार्द्रागिरिमल्लिकायाः संकुट्य पक्वा रसमाददीत ॥
तस्मिन्सुपूते पलसंमिते च देयं च पिप्पला सह शाल्मलेन ॥ ६१ ॥
पाठा समंगातिविषा समुस्ता बिल्वं च पुष्पाणि च धातकी-
नाम् ॥ प्रक्षिप्य भूयो विपचेच्च तावद्दार्वीप्रलेपः सरसस्तु यावत्
॥ ६२ ॥ पीतस्ततः कालविदा जलेन मण्डेन च क्षौद्रयुतेन
वापि ॥ निहन्ति सर्वमतिसारमुग्रं कृष्णं सितं लोहितपीतकं च
॥ ६३ ॥ दोषं ग्रहण्यां विविधं च रक्तं पित्तस्य चार्शांसि स-
शोणितानि ॥ असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं निहन्त्यवश्यं कुटजा-
ष्टकोऽयम् ॥ ६४ ॥

सपेद कूड़ाका गीला फूल अथवा छाल, एक तुलाभर ले कूटकर उसका रस निकाल कर छान ले फिर उसमें मोचरस ॥ ६१ ॥ सोनापाठा, मँजीठ, अतीश, नागरमोथा, बेलगिरी, धायका फूल, इन औषधोंको डारके चुल्हेपर पकावे, जब कड़छाको लेप होनेलगे, तब उतार रखे ॥ ६२ ॥ जब पीनेका समय आवे, तब पानीके साथ अथवा मंडके साथ किंवा शह-
दके साथ पिलावे यह कुटजात्रलेह भयंकर काला, सपेद, लाल, पीला ऐसे अतिसारको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥ तथा ग्रहणीके अनेक दोष, रक्त, पित्त, रक्तके बवासीर और असाध्य असृग्दर इन रोगोंको अवश्य नष्ट करदेता है ॥ ६४ ॥

अथ अमृतवटक ।

पथ्यापञ्चमूलकाथश्चतुर्भागावशेषतः ॥ तत्र काथे पुनश्चूर्णमि-
मानि वौषधानि तु ॥ ६५ ॥ शृङ्गवेरं तथा लाक्षा पिप्पली कटु-
रोहिणी ॥ दाडिमफलत्वक्चूर्णं दार्वीं सवत्सकं विषम् ॥ ६६ ॥
आटरूषकचूर्णानि संक्षिप्यात्र निघट्टयेत् ॥ आजं दुग्धं तदद्धेन
घृतं चाष्टांशकं क्षिपेत् ॥ ६७ ॥ दार्व्या विलेपितं ज्ञात्वा गुडस्य
षोडशानि तु ॥ पलानि मिश्रितं तत्र देयमप्रातराशने ॥ ६८ ॥

त्रिदोषसन्निपातोत्थश्चातिसारश्च दारुणः ॥ शूलमूर्च्छाभ्रमाना-
हकामलानां विपाचनः ॥ ६९ ॥ क्षतक्षीणक्षयाणां तु हितोऽयम-
मृतो वटः ॥ ७० ॥

हरद, शालयन, पिठयन, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, गोखरू इनको पानीमें उवाल
चौथा हिस्सा रोप रहे ऐसा क्वाथ बनावे ॥ ६९ ॥ पीछे अदरक, लाख, पीपल, कुटकी,
जन्तारदाना, अनारकी छाल, दारुहलदी, कूडाकी छाल, अतीश ॥ ६६ ॥ वांसा, इन सबोंका
चूर्ण बना पूर्वोक्तमें मिलावे और क्वाथसे आधा हिस्सा बकरीका दूध और आठवां हिस्सा
घृतको मिला पकावे ॥ ६७ ॥ जब कड़छीपै चिपकने लगे तब जान १६ तोले गुड़ मिलाय
सायंकालका भोजनमें देवे ॥ ६८ ॥ इससे सन्निपातका दारुण अतिसार, शूल, मूर्च्छा, भ्रम
ज्वर, कामला, ये शांत होते हैं ॥ ६९ ॥ क्षतक्षीण और क्षयरोगी इनको यह अमृतवटक
हित है ॥ ७० ॥

अथ विल्वादिचूर्ण ।

एकविल्वागुरुरोश्चूर्णं मध्वादियोजितम् ॥

रक्तातिसारशमनं बालानां क्षीणधातुकम् ॥ ७१ ॥

एक १ बेलगिरी, अगर, लोव, इनके चूर्णमें शहद मिला बालकको चटावे यह धातुओंको
क्षीण करनेवाले रक्तातिसारको नाशता है ॥ ७१ ॥

अथ गुदाके निकसनेको (काँच) बन्द करनेकी चिकित्सा ।

यदा गुह्यं निरस्येत्तु तदा कुर्यात्क्रियामिमाम् ॥ सहचर्या-
बलानां च रसोऽग्राह्यो घृतं पुनः ॥ ७२ ॥ पक्वघृतेन लेपः स्या-
त्तस्य चेदं प्रशस्यते ॥ अरणीपल्लवकाथो वाप्यं लोष्टं सचन्द-
नम् ॥ ७३ ॥ प्रतप्तमथवाग्निनिभं तथा नरस्य निर्वाप्य काञ्चि-
कमथ विदधीत तद्वत् ॥ सौख्यं च सम्यगुदसेचनकं प्रशस्तं
संवेश्य मध्यतो गुदं दृढबन्धनं स्यात् ॥ ७४ ॥

जब गुदाकी काँच निकसे तब यह क्रिया करनी, पीला कुरंटा और खरैहटीके रसमें घृतको
पका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ७२ ॥ अरनीके पत्तोंके काथमें चुल्हाकी माटी और चन्दनको गर-
मकर बुझावे अथवा इसीरीतिसे कांजीको बनावे इनसे अच्छीतरह गुदाको सेचे ॥ ७३ ॥ और
काँचको गुदाके बीचमें प्रवेश कर दृढबन्धन करना ॥ ७४ ॥

अथ अतिसारविशेषता ।

लघुनकुणपगन्धं पूयगन्धं घनं वा पललजलसमानं पक्वजम्बू-
निभं वा ॥ घृतमधुपयसामं तैलशैवालनीलं सघनदधिसवर्णं
वर्जयेच्चातिसारसम् ॥ ७५ ॥ भ्रममदनमथार्शः शूलमूर्च्छाविदाहं
श्वसनमतिविवर्णं छर्दिमूर्च्छातृडार्तम् ॥ विकलमतिशयेन सौ-
ख्यशोफज्वरार्तिः स परिहरतु दूरं सद्विधाता न दृष्टः ॥ ७६ ॥
शोफं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ॥ छर्दिं मूर्च्छां च
हिकां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ॥ ७७ ॥ दृष्ट्वा शोफं तथाध्मानं
हिकां छर्दिमरोचकम् ॥ तथा च पाण्डुरोगार्तमतिसारयुतं
त्यजेत् ॥ ७८ ॥

लहसनकी गन्धके समान गन्धवाला और मुरदाके समान गन्धवाला और रादके गन्धके
समान गंधवाला, कठिन और मांसके पानीके समान तेल और शिवालके समान नीला और करड़ी
दहीके समान वर्णवाला ऐसे अतिसारको वर्जे ॥ ७५ ॥ भ्रम, उन्माद, बवासीर, शूल,
मूर्च्छा, दाह, श्वास, इनसे संयुक्त छर्दि और तृषासे पीड़ित अतिशय करके विकल शोजा
और ज्वरसे पीड़ित ऐसा अतिसार वर्ज देना ॥ ७६ ॥ शोजा, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास,
खांसी, अरुचि, छर्दि, मूर्च्छा, हिचकी इनसे संयुक्त हुए अतिसाररोगीको त्यागे ॥ ७७ ॥
और शोजा, अफारा, हिचकी, छर्दि, अरुचि, पांडुरोग इनसे पीड़ित हुए अतिसाररोगीको
त्यागे ॥ ७८ ॥

अथ अतिसारके भेद संग्रहणीरोगका निदान और चिकित्सा ।

यदल्पमल्पं क्रमशो निषेवितं मलं भगाधारगतं च नित्यम् ॥
हत्वान्तराग्निं कुरुते नरस्य विकारमाहुर्ग्रहणीति संज्ञायाम् ॥ ७९ ॥
निवृत्ते चातिसारे शमयति दहनं भूयसा दोषितोऽपि भुक्त्वा
नाशय मलांशं बहुदिनमनिशं सञ्चयित्वा निसर्त्ति ॥ वारं वारं
विगृह्य सहजमसरलं पक्वमानं घनं वा दुर्व्याधिघोररूपो मनुज-
रुजकरः स्यात्तथा ग्रहणीति ॥ ८० ॥

जो अल्प अल्प मल नीचेकी अंत्रोंमें प्राप्त हो नित्यप्रति उतरे और दोष शरीरकी अग्निको
नष्टकर विकारको उपजावे उसको ग्रहणीरोग कहते हैं ॥ ७९ ॥ अतिसारके निवृत्त होनेके

पश्चात् दोषोंसे युक्त हुई ग्रहणी पेटकी अग्निको शांत करे और भोजन करके संचित हुआ मलका अंश बहुत दिनोंतक नित्यप्रति निसरे और बारंवार कब्ज करके पका हुआ और कठिन मल उतरे तिसको ग्रहणीदोष कहते हैं । यह घोररूप दुष्ट रोग मनुष्योंको पीड़ा देता है ॥ ८० ॥

अथ ग्रहणीके प्रकार ।

लक्षयेच्चातिसारे च विज्ञेयं ग्रहणीगदम् ॥ वातिकं पैतिकं चैव
छैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ८१ ॥ नैव चैकेन दोषेण जायते ग्रह-
णीगदः ॥ तेन संक्षीयते देहमन्तर्दाहो विपाकता ॥ ८२ ॥

अतिसारमें ग्रहणीरोगको जानना, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज ऐसे ग्रहणीरोग होता है ॥ ८१ ॥ एक दोष करके ग्रहणीरोग नहीं उपजता । उसकरके मनुष्यका शरीर छीजता है और शरीरके भीतर दाह होती है और अन्न नहीं पचता ॥ ८२ ॥

अथ ग्रहणीका उपद्रव तथा गुल्मादिकोंकी संप्राप्ति ।

तिक्तः कषायकटुकाम्लविदाहिरूक्षः शीतारूपभोजनपरैः श्रम-
मैथुनैश्च ॥ भाराध्वहस्तिरथवाहनधावनेन संक्रुद्धवायुहननेऽनल-
वेगमेनम् ॥ ८३ ॥

कडुआ, कसैला, चर्चरा, खड़ा, दाह करनेवाला, रूखा, शीतल, थोडा, ऐसे भोजनोंको नित्यप्रति सेवनेसे, परिश्रम और मैथुनके अत्यंत सेवनेसे और वोझ, मार्गमें ज्यादा चलनेसे, हस्ती, रथ, घोडा इनमें बैठके भागनेसे क्रुद्ध हुआ वायु अधोवातके वेगको नाशता है ॥ ८३ ॥

तस्मात्तदग्रमनिलेन च छिद्यमानं रक्तेन युक्तमनिले परिपाक-
मेति ॥ संजायतेऽपि मनुजस्य तथा तृतीयं गुल्मेति नाम स च
पञ्चविधो बभूव ॥ ८४ ॥ ग्रीहा यकृज्जठरकण्डुमलस्य बन्धो-
ऽष्टीला किमिर्जठररोगभवोऽथ षष्ठः ॥ एते भवंति ग्रहणीपरि-
वर्तमाना घोरास्तथा दुःखदाश्च मनुजस्य चित्ते ॥ ८५ ॥

उससे रुके हुए वायु करके छिद्यमान हुआ रक्त परिपाकको प्राप्त होता है तब मनुष्यके एक गोला उपजता है, ऐसे पांच प्रकारका ग्रहणी दोष जानना ॥ ८४ ॥ तिल्लीरोग, यकृद्रोग, उदररोग, खाज, मलबन्ध, कृमिरोग इनसे संयुक्त ग्रहणीरोग छठा भी होता है । ये सब घोररूप रोग मनुष्यको दुःखके देनेवाले ग्रहणीके ही विकारसे होते हैं ॥ ८५ ॥

अथ गुल्मसंज्ञक ग्रहणीरोगका लक्षण ।

शोषो गलस्य तिमिरं किल पार्श्वशूलं नाभौ तथातिकृशताति-
विषूचिका च॥कर्णे स्वनोऽतिवमनं क्लृप्तशूलमोहःश्वासेन गुल्म-
मिति लक्षणमेव विद्धि॥८६॥यस्यैतानि च लिङ्गानि गुल्मिनं
तं विदुर्बुधाः॥ग्रहणी नाम साध्यो यस्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम्८७

कण्ठका शोष हो, अंधेरी आवे, पसली और नाभिमें शूल हो, शरीर अत्यन्त कृश हो जावे और अत्यन्त विषूचिका रोग उपजे, कानमें शब्द हो, अत्यन्त छर्दि आवे और ग्लानि, शूल, मोह, श्वास, गुल्मरोग ये उपजें ॥ ८६ ॥ ये जिसके लक्षण हों उसके गुल्मसंज्ञक ग्रहणीरोग जानना, ग्रहणीरोग साध्य है उसके लक्षण कहता हूँ ॥ ८७ ॥

अथ वातकी संग्रहणीका लक्षण ।

चित्रं सशब्दं सृजतेऽत्र वर्चःशोफोऽनिलो वर्चमतीव सूक्ष्मम् ॥
श्वासात्तियुक्तं तनुशैथिलं च स्त्रावो ग्रहण्यानिलकोपतःस्यात्८८

चित्र और शब्दसहित मल उतरे, वह मल अत्यन्त सूखा हो, वातसे शोजा उपजे, श्वासरोग और शरीरमें शिथिलपना और स्त्राव हो ये लक्षण हों तब वातकी संग्रहणी जानिये ॥ ८८ ॥

अथ पित्तकी संग्रहणीका लक्षण ।

विदाहि शीर्णं सरुजं तृषार्तं दुर्गन्धपीतारुणनीलकालम् ॥
संसृज्यते यस्य मलो विमिश्रः पित्तोद्भवा सा ग्रहणीति संज्ञा८९

दाह, शूल, तृषा, दुःख इन्होंसे युक्त रोगी होवे, दुर्गन्धसे मिला हुआ और पीला, लाल, नीला, काला इन रंगोंसे मिला हुआ मल उतरे ये लक्षण होवें तब पित्तकी संग्रहणी जाननी ८९

अथ कफकी संग्रहणीका लक्षण ।

हृल्लासछर्दी श्वसनं च शोफः कासो जडत्वं च सशीतता च ॥
वैरस्यमास्ये गुरुगात्रता स्यादरोचकं शंखशकृद्ग्रहस्तु ॥९०॥

थुकथुकी हो, छर्दि आवे और श्वास, शोजा, खांसी, जडपना, शीतलता ये उपजें और मुखमें विरसपना हो, शरीरका भारीपना हो, अरुचि हो और गुदाकी आंठीमें मलकी कब्ज हो उसको कफकी संग्रहणी जानना ॥ ९० ॥

अथ सन्निपातकी संग्रहणीका लक्षण ।

त्रिभिः समेतं गदितं च चिह्नमेतस्य कोपो मधुरास्यता वा ॥
दाहोऽथ मूर्च्छा श्वसनं जडत्वं स सन्निपातग्रहणीगदः स्यात्९१

ये पूर्वोक्त तीनों प्रकारकी संग्रहणियोंके लक्षण मिलें और मुखमें मधुर स्वाद आवे और दाह, मूर्छा, श्वास, जड़पना ये उपजें उसको सन्निपातकी ग्रहणी जानिये ॥ ९१ ॥

अथ वातग्रहणीका पाचन ।

दारुनागरनिशा सवासका कुण्डली मगधजा शटी घनम् ॥

रास्त्रा सभाङ्गी सरलाह्वपुष्करं पाचनं भवति वातिकग्रहे ॥९२॥

देवदारु, सोंठ, हलदी, वांसा, गिलोय, पीपल, कचूर, नागरमोथा, रास्त्रा, भारंगी, सालवृक्ष, पोहकरमूल इन्होंका पाचन वातकी संग्रहणीमें हित है ॥ ९२ ॥

अथ पित्तग्रहणीका पाचन ।

नलवेणुकुशानां च काशेशूणां च मूलकम् ॥

काथपानं हितं वास्य पाचनं पैत्तिके ग्रहे ॥ ९३ ॥

नरशाल, वांस, डाम, कांस, ईख इन्होंकी जड़को पानीमें औटावे । यह पाचन पित्तकी संग्रहणीमें हित है ॥ ९३ ॥

अथ कफग्रहणीकी औषध ।

व्याघ्रीग्रन्थिकचव्यसुरसा शुण्ठी दाडिमम् ॥

रजनी घनचित्रकमेवं हिक्कामथ कफग्रहणीं हन्ति ॥९४॥

कटेहली, पीपलामूल, चव्य, तुलसी, सोंठ, अनारकी छाल, हलदी, नागरमोथा, चीता इन्होंका काथ हिचकी और कफकी संग्रहणीको हरता है ॥ ९४ ॥

अथ शुण्ठचाद्यमृतप्राशन ।

शुण्ठी कणा द्विरजनी च घनं तथा च योज्यः पुनः प्रतिविषं

त्रिफला विडङ्गः ॥ सिन्धूतथवह्नित्रिकटुं त्रिसुगन्धियुक्तं चूर्णं

पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितं च ॥ ९५ ॥ कृत्वा बिडालपदमात्रक-

मोदकांश्च भक्षयथा जलमपि ग्रहणीगदे च ॥ अशौभगन्दरसरो-

चकगुल्ममेहाञ्छूलाश्मरीकृमिजरोरहरं च पाण्डुम् ॥९६॥ श्रेष्ठं

रसायनमिदं बलिनाशनं स्याद्दृष्यं बलं विदधतेऽतिकृशत्वदोषम्

वर्णेन्द्रियसकलदीप्तिकरं रुजोघ्नं कुष्ठभ्रमापहरणं कुरुते सदैव ॥९७॥

सूँठ, पीपल, हलदी, दारुहलदी, नागरमोथा, अतीश, हरडै, वहेडा, आवला, वायविडंग, सेंधानमक, चीता, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात इनके चूर्णमें घृत और गुड़ मिला ॥९५॥ एक एक तोलेभरकी गोलियां बनाके पानीके साथ खावे ये गोलियां

ग्रहणीरोग, ववासीर, भगंदर, अरोचक, गुल्मरोग, प्रमेह, शूल, पथरी, कृमिरोग, पांडुरोग, इनको हरती हैं ॥ ९६ ॥ श्रेष्ठ रसायन हैं, वलियोंको नाशती हैं, वीर्य और बलको देती हैं, वर्ण और इंद्रियोंको प्रकाशित करती हैं, दुःखको नाशती हैं, और सबकालमें कुष्ठको और अमको नाशती हैं ॥ ९७ ॥

अथ अभयाद्यवलेह ।

हरीतकीपञ्चशतानि धीमान् द्रोणेन गोमूत्रशतेन पाच्यम् ॥ मृद्व-
ग्निना यावदशेषमेव मूत्रं विजीर्णे विधिवद्विधिज्ञः ॥ ९८ ॥ नि-
र्वाप्य चूर्णे प्रतिशोष्यशीतं छायाविशुष्कान् प्रविदार्य चाष्टीः ॥
चूर्णचशुण्ठीमगधाविषाश्च सुगन्धिमूर्वाचविकान्विताश्च ॥ ९९ ॥
निष्काथ्य कल्कः कुटजस्य तावद्व्योपलेपी भवतीति यावत् ॥
तस्यार्द्धभागेन गुडं विमथ्यात्क्षीरं तदूर्ध्वेन गवाजकं वा ॥ १०० ॥
निर्वापितं तं घृतभाजने च संस्थापितं प्राङ्मुदितेन तेन ॥ सिन्धू-
त्थवह्नित्रिकटुं त्रिसुगन्धियुक्तं चूर्णं पुनर्गुडयुतं घृतमिश्रितं
च ॥ १०१ ॥ चूर्णेन तेन सकलग्रहणीयपाण्डुशोषाश्मरीं कृमि-
जगुल्ममथातिसारान् ॥ प्लीहायकृच्छ्रासिषु मानवेषु विषूचिका
पीनसमस्तकार्तिम् ॥ १०२ ॥ विनाशनः सद्यस्तथा ज्वराणा-
मध्वश्रमक्षीणबलोदराणाम् ॥ ऐकाहिकादिज्वरनाशनः स्याल्ल-
होऽभयाद्योऽमृतवन्नराणाम् ॥ १०३ ॥ इत्यभयाद्योऽवलेहः ॥

९०० बड़ी हरड़ोंको १०० द्रोण गोमूत्रमें पकावे, कोमल अग्निसे पकनेमें जब चौथाई भाग शेष रहे ॥ ९८ ॥ तब अग्निसे उतार उन हरड़ोंको छायामें सुखाके चौर गुठलियोंको दूर करे, पीछे सूठ, पीपल, अतीश, सफेद चंदन, मरोडफली, चव्य इनके चूर्णको यथायोग्य मिला ॥ ९९ ॥ फिर अग्निपै पकावे और कड़लीसे चलावे, जब कड़लीपे चिपने लगे तब उस संपूर्ण औषधके समान गायका अथवा बकरीका दूध मिला ॥ १०० ॥ अग्निसे उतार घीके चिकने वर्तनमें स्थापन करे, फिर सेंधानमक, चीता सूठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, गुड़, घृत इन्हेंको मिलाके खावे ॥ १०१ ॥ यह सब प्रकारकी संग्रहणी, पांडु-रोग, शोषरोग, पथरीरोग, कृमिरोग, पेटका गोला, सबप्रकारके अतिसार, तिल्लीरोग, जिगर-रोग, श्वास, हैजा, जुखाम, पीनस, मस्तकरोग इनको नाशता है ॥ १०२ ॥ और सबप्रकारके ज्वरवाले मार्गमें गमन करनेसे क्षीणबलवाले और उदररोगियोंको हित है और ऐका-हिकादि ज्वरोंको नाशता है । यह अभयाद्यवलेह मनुष्योंको अमृतके समान है ॥ १०३ ॥

अथ द्राक्षादिपिंडी ।

द्राक्षाक्षीरेण पक्त्वा यावद्धनं दव्युपलेपि च ॥ दृष्ट्वा पश्चात्तैः
समालोडय चेमान्यौषधानि सतिमान् ॥ १०४ ॥ पर्पटातिविषा
मूर्वा पटोल घनवालकम् ॥ तथाभयानां चूर्णं तु समशर्करया
युतम् ॥ १०५ ॥ तेन क्षीरेण संयोज्य विदार्याः कन्दमेव च ॥
घृतेन नवनीतेन पिण्डं कृत्वाऽथ भक्षयेत् ॥ १०६ ॥ सपित्तग्रह-
णीपाण्डुकामलार्तिवृषापहम् ॥ भ्रमं मूर्छां तथा हिक्कां तमको-
न्मादमश्मरीम् ॥ १०७ ॥ मेहपित्तासृजं कुष्ठं नाशयत्याशु
निश्चितम् ॥ १०८ ॥ इति द्राक्षादिक्षीरम् ॥ इति आत्रेयभा-
षिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अतिसारचिकित्सानाम् तृतीयो-
ऽध्यायः ॥ ३ ॥

दाखोंको दूधमें मिला पकावे जब कड़ा होके कडछीपै चिपकने लगे तब बुद्धिमान् वैद्य
इन औषधोंको डाले ॥ १०४ ॥ पित्तपापड़ा, अतीश, मरोडफली, परवल, नागरमोथा,
नेत्रवाला, हरडे इनके चूर्णको और वरावरकी खांडको मिलावे ॥ १०५ ॥ पीछे उस
दूधमें विदारीकंद और नौनीघृत मिला गोली बनाके खावे ॥ १०६ ॥ यह पित्तकी संग्रहणी
पांडुरोग, कामला, तृषारोग, भ्रम, मूर्छा, हिचकी, तमक, श्वास, उन्माद, पथरी ॥ १०७ ॥
ग्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ इनको शीघ्र नाशता है ॥ १०८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहाय-
सूनुवैद्यरविदत्तशाह्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने अतिसारचिकित्सानाम् तृती-
योऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ गुल्मचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि गुल्मानां
चैव लक्षणम् ॥ तस्मात्तेषां प्रतीकारमौषधानि विशेषतः ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! सुन, गुल्मोंके लक्षणको कहता हूं और उनकी चिकित्सा
और औषधको भी विशेषकर कहता हूं ॥ १ ॥

अथ गुल्मके भेद ।

पञ्चधा संभवन्त्येते गुल्मा जठरसंसृताः ॥ हृत्कुक्षौ नाभिवस्तौ च
मध्ये च पञ्चमः स्मृतः ॥ २ ॥ हृदयस्थो यकृन्नाम कुक्षौ साष्ठी-
लकोच्यते ॥ मध्ये ग्रीहा समाख्यातो वस्तौ चण्डविवृद्धकः ॥ ३ ॥
नाभौ संलक्ष्यते ग्रन्थी नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥

उदरमें फैले हुए गुल्म पांच प्रकारके हैं । हृदयमें एक, कुक्षिमें दूसरा, नाभिमें तीसरा, वस्ति-
स्थानमें चौथा, मध्यभागमें पांचवाँ ऐसे, गुल्म होते हैं ॥ २ ॥ हृदयमें उपजनेवाले गुल्मका
यकृत् नाम है, कुक्षिमें होनेवाले गुल्मका अष्ठीला नाम है, मध्यभागमें ग्रीहानामसे विख्यात
है, वस्तिस्थानमें चण्डविवृद्धकनामवाला होता है ॥ ३ ॥ नाभिमें ग्रंथिनामसे लक्षित है ।
इनके नाम अलग अलग हैं ॥

अथ गुल्मके निदान ।

अतः प्रकोपं वक्ष्यामि येन कुर्वन्ति बाधकम् ॥ ४ ॥ स्वभावा-
त्पित्तरक्तोत्थे सेविताम्लविदाहिनम् ॥ उष्णं च क्षारमघं वा
चोष्णपानातिसेवनात् ॥ ५ ॥ तथा शोकः श्रमोऽध्वानां शोषा-
त्सक्षोभनादपि ॥ उच्चभाषणगानेन धनुर्ज्याकरणेन च ॥ ६ ॥
पृष्ठे मुष्ट्यभिघातेन हृदयात्ताडनेन वा ॥ भारणोद्धाराणाद्वापि
रक्तं शोषयते हृदि ॥ ७ ॥ तेन गुल्मेति नाम तु जायते
रक्तपित्तकम् ॥ कदाचिन्निष्ठु दोषेषु सम्भवश्चास्य दृश्यते ॥ ८ ॥
वातेनोदीरितं चैव कफेन च घनीकृतम् ॥ पित्तेन पाकतां प्राप्तं
त्रिदोषसंसृतं यकृत् ॥ ९ ॥

अब इनके प्रकोपको कहता हूँ, जिसकरके पीड़ाको करते हैं ॥ ४ ॥ स्वभावसे रक्तपित्तके
विगड़ने पर अम्ल और विदाही पदार्थको सेवनेसे और गरम पदार्थ खार, मदिरा इनको
सेवनेसे और गर्मपानके अतिसेवनेसे ॥ ५ ॥ शोक, श्रम, मार्गमें अत्यंत चलना, शोष, क्षोभ,
ऊँचा बोलना, ऊँचे प्रकारसे गाना और धनुषकी टंकोरके करनेसे ॥ ६ ॥ पृष्ठभागमें मुक्केके लगनेसे
और हृदयमें चोट आदिके लगनेसे, बोझके उठानेसे मनुष्यके हृदयमें रक्त सूख जाता है ॥ ७ ॥
इससे रक्तपित्त करके गुल्मरोग उपजता है और कभी तीनों दोषोंसे भी गुल्म उपजता है ॥ ८ ॥
वातसे बड़ा हुआ और कफसे कठिन हुआ और पित्तसे पाकभावको प्राप्त हुआ यकृत् त्रिदोषसे
फैलता है ॥ ९ ॥

अथ यकृद्गुल्मका लक्षण ।

लक्षणं तस्य वक्ष्यामि येन तच्चापि लक्ष्यते॥क्षीयते यन मनुजो
मृत्युमाशु प्रपद्यते॥१०॥वसिः क्लमस्तथोद्गारो ह्रस्वासः श्वसनं
भ्रमः॥दाहोऽरुचिस्तृषा मूर्च्छा कण्ठे दाहः शिरोव्यथा॥११॥
हृच्छूलं च प्रतिश्यायःपीवनं कटुकैः सह ॥ सशल्यं हृदि शूलं
च निद्रानाशः प्रलापतः ॥ १२ ॥ हृदये मन्यते दाढर्यमुदरं
गर्जति भृशम्॥एतैर्लिङ्गैर्विजानीयाद्यकृत्कोष्ठान्तवक्षसि ॥१३॥

उस गुल्मके लक्षणको कहेंगा, जिस करके वह भी लक्षित हो सकता है । इस रोगसे मनुष्य
सूख जाता है और शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जाता है ॥ १० ॥ छर्दि आवे, ग्लानि उपजे,
डकार आवे, थुकथुकी हो, श्वास और भ्रम उपजे और दाह, अरुचि, तृषा, मूर्च्छा, ये भी
उपजें, कंठमें दाह हो और शिरमें पीड़ा हो ॥ ११ ॥ हृदयमें शूल हो, जुखाम कटुआईके साथ
थूके, शल्यसहित शूल हृदयमें होवे नींदका नाश होवे, वक्ताद करनेसे ॥ १२ ॥ और हृदयमें
दड़ता माने और उदर अत्यंत गर्जे इन लक्षणोंसे कोष्ठके समीप छातीमें यकृतसंज्ञक गुल्म
जानना ॥ १३ ॥

अथ शुण्ठ्यादि चूर्ण ।

शुण्ठ्यादिचूर्णं कटुकत्रयं च कुष्ठं तथा पञ्चमकं यवानीम् ॥ पष्टं
च सिन्धूतथविमिश्रितं च सूक्ष्मं च चूर्णं सह रामठेन ॥ भक्षेच्च
तस्योपरि तक्रपानं निष्क्वाथ्य तोयं च पिबेच्च वाम्लम् ॥१४॥
सौवीरकं वा विनिहन्ति शीघ्रं यकृत्समानोदरशूलकासान् ॥
विषूचिकाजीर्णकफामयघ्नं पांड्वामयार्तिग्रहणीं सगुल्माम् ॥१५॥
शुण्ठ्यादिचूर्णं त्वरितं निहन्ति ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, कूठ, अजवायन, सेंधानमक, हींग, इनका महीन चूर्ण बना खावे
ऊपर तक्र पीवे अथवा खट्टा जल क्वाथ बनाकर पीवे ॥ १४ ॥ अथवा
कांजीका अनुपान करे । यह शुंठ्यादि चूर्ण यकृतरोग, उदरशूल, खांसी, विषूचिका (हैजा),
अजीर्ण, कफरोग, पांडु, संग्रहणी, गुल्मरोग इनकी शीघ्र नाशता है ॥ १५ ॥

अथ क्षारामृत ।

क्षारं मुष्कककिंशुकार्जुनधवापामार्गरम्भातिला जीवन्तीकन-
काह्वयश्चरजनी कूष्माण्डवल्ली तथा ॥ वासासूरणमेव तीव्रदहने

प्रज्वाल्य भस्मीकृतं तोयेन प्रतिसेव्यं संभृतपयःपानं विधेयं
यकृतम् ॥ १६ ॥ शूलानाहविबन्धनांश्च कफजान् रोगाञ्जयेत्
कामलां शूलं पाण्डुसुविप्रधींश्च ग्रहणीशोफार्शसां पीनसान् ॥
अग्नेर्माद्यमजीर्णकृम्यलसता मोहो गुदभ्रंशता कासोद्वार-
वमिक्षतोद्गतगदावृद्धिस्तथा नश्यति ॥ १७ ॥ पूयाभः पतते
श्लेष्मा पूतिगन्धोऽतिविस्रक्तः ॥ रक्ताभस्तत्र सङ्काशः छीवते स
सुहृसुहृः ॥ तथातिसाय्यते रक्तं श्रमः संक्षीयते वपुः ॥ १८ ॥
क्षतजाः संसृता गात्रे यकृद्वक्षसि संसृतः ॥ १९ ॥

“असाध्ययकृद्रोगलक्षणम्”

श्वासस्तृषा वमिर्मोहः शोफः स्यात्करपादयोः ॥ रुचिबन्धोऽति-
सारश्च यकृद्दूरं परित्यजेत् ॥ २० ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं
येन संपद्यते सुखम् ॥

यकृद्रोगपर पाचन ।

तस्यादौ लङ्घनं चैकं पाचनं तदनन्तरम् ॥ २१ ॥ शुण्ठयोपकुल्या
तिमिरं शठीनां यवानिकाभीरुहरीतकीनाम् ॥ काथोथकल्क-
पाचनके प्रशस्त आनाहगुल्फार्तिविषूचिकानाम् ॥ २२ ॥
भद्रोपकुल्याभयशृङ्गवेरं पथ्या त्रिभागा च कणाचतुर्था ॥ २३ ॥

मोखावृक्ष, अण्डकोष या कठपाढारिबूटी, टेसू, अर्जुनवृक्ष, धव, लट्जिरा, केला, तिल, महुआ,
धतूरा, हलदी, लालतुबी, बांसा, जमीकंद, इनको तेजअग्निसे जला, भस्म बना; पानीमें मिला
खार बनावे, इसको लेनेसे यकृतरोग ॥ १६ ॥ शूल, अफारा, बंधा, कफका रोग, कामला,
विद्रधि, हृदयशूल, पांडु, संग्रहणी, शोजा, बवासीर, पीनस, मन्दाग्नि, अजीर्ण, कृमि, आलस्य,
गुदभ्रंश, मोह, क्षतज रोग, वृद्धिरोग, दाह, शूल, खांसी, डकार, छर्दि इनका नाश होता है
॥ १७ ॥ राधके समान कफ पड़े दुर्गंधसे और कच्चे गन्धसे संयुक्त और रक्तके समान वारंवार
थूके और रक्तका ही अतिसार जावे शरीरमें परिश्रम होवे शरीर सूखता जावे ॥ १८ ॥ और क्षतसे
उपजे रोग होवे ये लक्षण होवे तब छातीमें फैला हुआ यकृतरोग जानना ॥ १९ ॥ श्वास, तृषा,
छर्दि, मोह, ये उपजें हाथ और पौरौमें शोजा होवे, रुचिबन्ध होवे और अतिसार होवे,

ऐसे यकृतरोगको दूरसे त्यागे ॥ २० ॥ अत्र औषधको कहता हूँ-जिसकरके सुख-
की प्राप्ति हो इस रोगकी आदिमें एक लंघन कर पीछे पाचन देना हित है ॥ २१ ॥ सोंठ,
पीपल, लोहाका मैल, कचूर, अजवायन, शतावरी, हरडा इन्होंका काथ अथवा कल्करूपी
पाचन हित है । यह अफारा, गुल्म, विषूचिका (हैजा) इन्होंको नाशता है ॥ २२ ॥ नागरमोथा,
पीपल, हरडै, अदरक ये ले परंतु इनमें तीन भाग हरडैके ले और पीपल इनका पाचनइस रोग-
को नाशता है ॥ २३ ॥

अथ यकृद्गुल्मपथ्य ।

क्षतक्षये यकृत्पूर्वे तूपवासं च पाचनम् ॥

न देयं हिडुसंयुक्तं चूर्णं नैव हितं यतः ॥ २४ ॥

क्षतक्षय रोगसे संयुक्त हुए यकृत् रोगमें लंघन और पाचन हित नहीं है और इस रोगवा-
लेको हींगसे संयुक्त किया चूरन नहीं देना, क्योंकि वह हित नहीं है ॥ २४ ॥

अथ निंबादि काथ ।

निम्बनीपधरवेतसं निशा काश्मरी च तुलसी च सिंहिका ॥

काथ एष हृदयामयापहः शूलमाशु यकृतश्च नाशकृत् ॥ २५ ॥

नींबकी छाल, कदम्बकी छाल, बिनोलाकी गिरी, मन नामक वनकी ओषधि विशेष,
हलदी, कंभारी, तुलसी, कटेहली इनका काथ हृदयरोग, कफ, शूल, मुखका रोग और यकृत्-
को नाशता है ॥ २५ ॥

अथ सौराष्ट्रिकादि काथ ।

सौराष्ट्रिकासीसमहौषधानि दुरालभाजातिप्रवालकं च ॥

दावी यवानी ककुभं समङ्गा काथः ससर्पिर्यकृदाशु हन्ति ॥ २६ ॥

फिटकरी, कसीस, सोंठ, जवासा, चमेलीकी कोंपल, दारुहलदी, अजवायन, अर्जुनवृक्षकी
छाल, मंजीठ इनका काथ घृत मिलाकर पीनेसे यकृतरोगका नाश होता है ॥ २६ ॥

अथ धवादि काथ ।

धवार्जुनकदम्बानां शिरीषवदरीषु च ॥

निष्काथ्य पानमामघ्नं विषूच्या शूलवारणम् ॥ २७ ॥

धवके फूल, अर्जुन और कदंबवृक्षकी छाल, मौलशिरी और बेरकी छाल, इनका काथ बना
पीये । यह आमदोष, विषूचिका (हैजा) शूल इनको दूर करता है ॥ २७ ॥

अथ कदलीजलपानक ।

कदलीक्षारमादाय शंखक्षारमथापि वा ॥ प्रस्राव्य जलपानं तु

हिडुसौवर्चलान्वितम् ॥ २८ ॥ आमं हरति विसृष्टं शूलं चाशु
नियच्छति ॥ विषूचिकानां शमनमजीर्णं जरयत्यपि ॥ २९ ॥

केलाका खार, शखका खार, हींग, कालानमक इनको पानीमें मिलाकर पीवे ॥ २८ ॥
यह आमको हरता है और शूलको हरता है और विषूचिका (हैजा)को शांत करता है और
अजीर्णको जराता है ॥ २९ ॥

अथ विजौरा आदिक पान ।

मातुलुङ्गरसं ग्राह्यं द्विगुणं तत्र काञ्जिकम् ॥
हिडुसौवर्चलयुतं पानं हन्ति विषूचिकाम् ॥ ३० ॥

विजौराके रसमें दूनी कांजी मिलावे, हींग और कालानमकसे संयुक्त कर पीवे । यह विषूचि-
काको हरता है ॥ ३० ॥

अथ खारका सेवन ।

क्षारं तोयं च पानाय दाहस्योपरि पाचयेत् ॥
शूलाध्मानं निहन्त्याशु कुरुते चाग्निदीपनम् ॥ ३१ ॥

खारके पानीको अग्निपै पकाके पीवे । यह शूल और अफाराको हरता है और अग्निको शीघ्र
जगाता है ॥ ३१ ॥

अथ आमाजीर्णिका उपाय ।

आमेषु वमनं कुर्याद्विपक्वे चैव लंघनम् ॥
विशिष्टस्वेदनं निद्रा रसशोषे विरेचनम् ॥ ३२ ॥

आमसंज्ञक अजीर्णमें वमन कराना और पके हुए अजीर्णमें लंघन, पसीना, नींद इनको
सेवे । रस शेष अजीर्णमें विरेचन हित है ॥ ३२ ॥

अथ दिवास्वापविधान ।

उन्मत्ते चातिसारे च वमिक्रोधातुरेषु च ॥ अजीर्णे तु वि-
षूच्यां च दिवास्वप्नं हितं भवेत् ॥ ३३ ॥ न हितं श्लेष्मणि
चैव हृद्रोगे तु शिरोरुजि ॥ हृह्लासे च प्रतिश्याये दिवास्वप्नं
च वजयत् ॥ ३४ ॥

उन्माद, अतीसार, छर्दि, क्रोध, अजीर्ण, विषूचिका (हैजा) इनमें दिनका सोना हित है
॥ ३३ ॥ कफरोग, हृद्रोग, शिरकी पीड़ा थुक्थुकी, जुखाम इन रोगोंमें दिनके शय-
नको वर्ज्य ॥ ३४ ॥

अथ विषूचिकापर हरीतक्यादि अञ्जन ।

फलत्रयं त्र्यूषकरञ्जबीजं रसं तथा दाडिममातुलुङ्ग्यः ॥

निशाद्युतं पेण्यकृता च वर्तिस्तदञ्जने हन्ति विषूचिकां च ॥ ३५ ॥

हरडा, बहेडा, आंवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, करंजुआके बीज, अनार, विजौराका रस और हलदी, इनको पीस बत्ती बना नेत्रोंमें आंजे । यह विषूचिका (हैजा) को हरता है ॥ ३५ ॥

अथ रास्नादि भक्षण ।

रास्ना विशाला च सुराब्दशिथुकुष्ठं वचा नागरकं शताह्वम् ॥

आग्नेयपिष्टाहपुषाविदार्यः खल्लीं विषूचीं च निवारयन्ति ॥ ३६ ॥

रास्ना, इन्द्रायण, देवदारु, नागरमोथा, सहिजना, कूट, वच, सोंठ, शतावरी, हाडवेर, विदारीकन्द इन सबोंको चीताके रसमें पीस खानेसे खल्लीरोग और विषूचिका (हैजा) दूर होती है ॥ ३६ ॥

अथ स्वेदका उपयोग ।

स्वेदो विधेयो घटकस्य बाष्पमेकैर्घटाभिर्वसनेन चोष्णः ॥

तथोष्णपाणिं प्रतिसेक एवं जयेद्विषूचीं जठरामयानाम् ॥ ३७ ॥

कलशमें अग्निको छोड़कर उसकी भापोंसे अथवा गरम किये बख्त्रसे अथवा गरम किये हाथसे पसीना देवे तो विषूचिका (हैजा) और पेटका रोग दूर होता है ॥ ३७ ॥

अथ गन्धकादिभक्षण ।

गन्धकं सैन्धवं त्र्यूषं निम्बूरसविमर्दितम् ॥ आतुरो भक्षयेच्छीघ्रं

विषूचीनां निवारणम् ॥ ३८ ॥ इति आग्नेयभाषिते हारीतोत्तरे

तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गन्धक, सैन्धानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल इनको निंबूके रसमें खरलकर प्रमाणसे रोगी खावे यह विषूचिका (हैजा) को जल्दी दूर करता है ॥ ३८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसुनूवैद्यरविदत्तशास्त्रनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ कृमिरोगके प्रकार और उन्होंके भेद ।

आग्नेय उवाच ॥ क्रिमयो द्विविधाः प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरसम्भवाः ॥

बाह्ययूकाः प्रसिद्धाः स्युराभ्यन्तराश्च किञ्चकाः ॥ १ ॥ सप्त-
विधो भवेद्बाह्यः षड्विधोऽन्तःसमुद्भवः ॥ तेषां वक्ष्यामि सम्भू-
तिं बाह्याभ्यन्तरे नृणाम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—बाह्य और आभ्यन्तरमेदसे कृमि दो प्रकारके कहे हैं । जूमआदि बाह्यकृमि कहाते हैं, चुन्नाआदि आभ्यन्तर कृमि कहाते हैं ॥ १ ॥ बाह्यकृमि सात प्रकारके हैं, आभ्यन्तर कृमि छःप्रकारके हैं, अब उनकी उत्पत्तिको कहता हूँ ॥ २ ॥

अथ जूमकी उत्पत्ति ।

रौक्ष्यादतिमलात्स्वेदाच्चिन्तया शोचनादपि ॥ कफधातुसमुद्भू-
तास्तीक्ष्णा यूका भवन्ति हि ॥ ३ ॥ यूकाः कृष्णाः पश्चा-
त्श्वेतास्तृतीया चर्मणि स्थिता ॥ सूक्ष्मातिविकटा रूक्षा
चर्मभा चर्मयूकिका ॥ ४ ॥ चतुर्थी बिन्दुकी नाम वर्तुला
मूत्रसम्भवा ॥ पञ्चमी मत्कुणा स्याच्च बाह्योपद्रवकारिणी ॥ ५ ॥
यूकामस्तकसंस्थाने श्वेता शिरोनिवासिनी ॥ चर्मयूका नेत्रचर्म
सूक्ष्मे रोमणि यष्टिका ॥ ६ ॥

रौक्ष्यसे, अत्यंत मलसे, पसीनासे, चिन्ता और शोचसे, कफ और धातु करके उपजी हुई तीक्ष्ण जूम होती हैं ॥ ३ ॥ पहली कृष्णा, दूसरी श्वेता और तीसरी चर्ममें स्थित, सूक्ष्म, अतिविकट, रूखी, चर्मसरीखी कांतिवाली होती है ॥ ४ ॥ चर्मयूकिकानामवाली चौथी और बिन्दुकी नामवाली पांचमी है और मूत्रसे उपजी वर्तुलानामवाली छठी है और शरीरके बाहर उपद्रव करनेवाली मत्कुणा सातमी है ॥ ५ ॥ मस्तकके स्थानमें यूका जूम होती है और सूक्ष्मरोमोंमें भी जूम होती है और नेत्रके चाममें चर्मयूका जूम होती है (इसे कुटकी कहते हैं) और सूक्ष्मरोमोंमें चर्ममें भी जूम होती है । उसे यष्टिका कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ कृमि उत्पन्न होनेका कारण ।

रूक्षान्नगोधूमयवान्नपिष्टैर्गुडेन वा क्षीरविपर्ययेण ॥ दिवाशया-
नेन सपिच्छलेन घर्मेण तापोदकसेवनेन ॥ ७ ॥ संजायते तेन
मलाशयेषु क्रिमिव्रजं कोष्ठविकारकारि ॥ ८ ॥

रूखा अन्न, गेहूँ, जव, पीठी, गुड़, दूधका पदार्थ, दिनका सोना, कफकारी पदार्थ, घाम और गरमपानीके सेवनेसे ॥ ७ ॥ मलाशयमें कृमियोंका समूह उपजता है । यह कोष्ठमें विकारको करता है ॥ ८ ॥

अथ छः प्रकारके अंतर्गत कृमि ।

षड्विधास्ते ससुहिदास्तेषां वक्ष्यामि लक्षणम्॥कफकोष्ठे मला-
धाराः विसर्पन्ति सुसर्पवत्॥९॥पृथुमुण्डा भवन्त्येके केचित्कि-
ञ्चुकसन्निभाः॥धान्याङ्कुरनिभाःकेचित्केचित्सूक्ष्मास्तथाणवः
॥१०॥ सूचीमुखःपरिज्ञेयाश्चान्त्राणि सीदयन्ति ते॥वक्ष्यामि
लक्षणं तेषां चिकित्साञ्च शृणुष्व मे ॥ ११ ॥

जो छः प्रकारके वाय्वकृमि कहे हैं उनके लक्षणोंको कहता हूं, मलके आधारवाले कफके कोष्ठमें कृमि सर्पकी तरह चलते हैं ॥ ९ ॥ कितनेक पृथुमुंडनामसे विख्यात हैं और कितनेक केचुवोंके समान कांतिवाले होते हैं, कितनेक अन्नके अंकुरके समान कांतिवाले होते हैं, कितनेक सूक्ष्म होते हैं, कितनेक अत्यंत सूक्ष्म होते हैं ॥ १० ॥ कितनेक सूचीमुख नामसे विख्यात हैं ये आंत्रोंको शिथिल करते हैं, उनके लक्षण और चिकित्साको कहता हूं सुनो ॥ ११ ॥

अथ कृमिरोगका लक्षण ।

ज्वरो हृद्दोगशूलं वा वमिहत्क्लेदनं भ्रमः ॥ रुचिवन्धो विवर्णत्व-
मतीसारः सफेनिलः॥१२॥ गर्जनं जठरे चैव मन्दाग्नित्वं च
जायते॥ पिपासा पीतता नेत्रे किञ्चुकैः पीडितस्य च ॥१३॥

ज्वर हो, हृदयरोग, शूल, छर्दि, हृदयमें ग्लानि, भ्रम ये उपजें और रुचिवन्ध हो जावे, वर्ण बदल जावे, झागोंवाले मलसे सहित अतिसार उपजे ॥ १२ ॥ पेटमें शब्द होवे, मंदाग्नि उपजे और अत्यंत तृषा होवे और नेत्रोंमें पीलपन हो ये सब लक्षण हों तब समझना कि पेटमें केचुवे हो गये ॥ १३ ॥

अथ सूचीमुखकृमिका लक्षण ।

सूचीवत्तुद्यतेऽन्त्राणि रक्तं चैवातिसार्यते ॥ यकृद्भा भक्षण-
न्त्यन्ये रक्तं वा वमते भृशम् ॥१४॥ क्लेदो मुखेऽरुचिर्जाड्यं
मन्दाग्नित्वं च वेपथुः ॥ क्षुत्तृष्णा च ज्वरो ज्ञेयाः सूचीमुख-
क्रिमिरुजः ॥ १५ ॥

सूईकी तरह आंत्रोंको पीडित करे और रक्तको अत्यंत गुदाके द्वारा निकासे और यकृत स्थानको भक्षण करे और रक्तकी अत्यंत छर्दि आवे ॥ १४ ॥ मुखमें ग्लानि हो, अरुचि और जड़पना उपजे । मंदाग्नि और कंप उपजे और भूख, तृष्णा, ज्वर ये भी उपजें ये सब लक्षण हों तब सूचीमुखकृमिरोगके लक्षण जानिये ॥ १५ ॥

अथ धान्यांकुरकृमिका लक्षण ।

ये च धान्याङ्कुरास्तेषां वक्ष्याम्यथ च लक्षणम् ॥ मलाशयस्थाः
क्रिमयो मलं जग्धन्ति ते भृशम् ॥ १६ ॥ तैस्तु संजायते देहे
विद्रधिर्भेदनं तथा ॥ पारुष्यं कार्श्यमङ्गानां रुजत्वं हृत्कु-
मोद्भवः ॥ १७ ॥

धान्यके अंकुरके समान कृमिके लक्षणकों कहता हूँ । मलाशयमें स्थित हुए ये कृमि मलको खाते हैं ॥ १६ ॥ उनसे देहमें कृशपना, विद्रधि, हड्ढोड़, कठोरपना, शूल ये उपजते हैं ॥ १७ ॥

हारीतका प्रश्न ।

हारीतः संशयापन्नः पादौ संगृह्य पृच्छति ॥ कथं देहे मनुष्यस्य
मलमूत्ररसाशये ॥ १८ ॥ संभवन्ति कथं चादौ वर्द्धयन्ति कथं
पुनः ॥ कथं च शीर्णेऽन्नरसे नानाहारविभक्षणे ॥ १९ ॥ जायन्ते
केन क्रिमयः सूक्ष्मावाप्ययोगामिनः ॥ नानामपक्वभक्ष्यान्नं दहते
वा हुताशनः ॥ २० ॥ कथं ते क्रिमयश्चान्ते न दह्यन्तेऽन्तरा-
ग्निना ॥ एवं पृष्टो महाचार्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥ २१ ॥

संशयको प्राप्त हुआ हारीतमुनि आत्रेयजीके पैरोंको ग्रहण कर पूछता है, हे भगवन् ! मनुष्यके मल मूत्र और रस आशयमें किस भाँति पहिले कृमि उपजते हैं और फिर कैसे बढ़जाते हैं तथा अनेक विधिके आहारोंके खाने और अन्नके रसके पकनेपर सूक्ष्म और अवोगामी कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं ? अनेक अन्नोको अग्नि जला देता है ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ परंतु वे कृमि समीपमें स्थित हुए भी उसी अग्निसे क्यों नहीं दग्ध होते ? ऐसे पूछे हुए महा आचार्य और मुनियोंमें श्रेष्ठ आत्रेयजी कहने लगे ॥ २१ ॥

अथ आत्रेयजीका उत्तर ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र महाबाहो क्रिमिसम्भवकारणम् ॥
विरुद्धान्नरसैः पुत्र रक्तं चैवास्य कुप्यति ॥ २२ ॥ कफेनैक-
दिनं याति शुक्रेण कारणं व्रजेत् ॥ पञ्चभूतात्मके काये ते तु जाताः
सचेतनाः ॥ २३ ॥ कोष्ठाग्निना न दह्यन्ते न जीर्यन्ते रसैस्तथा ॥
विषे जातो यथा कीटो न विषेण मृतिं व्रजेत् ॥ २४ ॥ तथा
हुताशनोद्भूतं न हुताशेन जीर्यते ॥ २५ ॥ भेषजं संप्रवक्ष्यामि

येन तेऽपि तरन्ति वै ॥ पतन्ति वा शमं यान्ति भेषजानि
शृणुष्व मे ॥ २६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! हे महाबाहो ! कृमिकी उत्पत्तिके कारणको सुनो, हे पुत्र ! विरुद्ध अन्न और रसोंकरके मनुष्यका रक्त कुपित होता है ॥ २२ ॥ कफ और शुक्रके कारणसे एक ही दिनमें उत्पन्न होकर फिर पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इनसे संयुक्त हुए शरीरमें चैतन्यरूप होके उपजते हैं ॥ २३ ॥ कोष्ठकी अग्निसे नहीं दग्ध होते हैं और रसोंके साथ जीर्ण नहीं होते । जैसे विषसे उगजा कीड़ा विषकरके मृत्युको प्राप्त नहीं होता ॥ २४ ॥ वैसे अग्नि-करके उपजे कृमि अग्निसे दग्ध नहीं होते हैं ॥ २५ ॥ अब औषधको मैं कहता हूँ जिस करके वे कीड़े नहीं उपजते हैं अथवा गिर पड़ते हैं अथवा शांत होजाते हैं मुझसे सो सुनो ॥ २६ ॥

अथ कृमिपातनका औषध ।

वचाजमोदा क्रिमिजित्पलाशबीजं शटी रामठकं त्रिविश्याः ॥
उष्णोदके तत्परिपेष्य पेयं पतन्ति शीघ्रं शतधामलौकाः ॥ २७ ॥

वच, अजमोद, वायविडंग, टेसूके बीज, कचूर, होंग ये सब एक एक भाग और सोंठ ३ भाग इनको गर्मपानीसे पीस पीवे । यह सौ १०० प्रकारसे कृमियोंको निकालता है ॥ २७ ॥

अथ कृमि नष्ट करनेकी औषध ।

शटीयवानीपिचुमन्दपुत्रान् विडङ्गकृष्णातिविषारसानाम् ॥ स-
पेष्य मूत्रेण त्रिवृत्प्रयुक्तं विनाशनं सर्वकृमीरुजानाम् ॥ २८ ॥
मरिचं पिप्पलिमूलं विडङ्गशिशुजवानिकात्रिवृतः ॥ गोमूत्रेण
तु पेष्यं पानं शीघ्रं क्रिमीन् हन्ति ॥ २९ ॥ सुस्ताविशालात्रि-
फलासुपर्णाशिशूसुराह्वं सलिलेन कल्कः ॥ पानं सकृष्णाक्रिमि-
शत्रुचूर्णं विनाशनं सर्वकृमीरुजां च ॥ ३० ॥ सुदेवकाष्ठं सुरसा
च मागधी विडङ्गकं पिप्पलिका च दन्तिनी । त्रिवृद्रसोनं
सलिलेन सेवितं जयेच्च कम्पिल्लकताडकैः कृमीन् ॥ ३१ ॥
मातुलुङ्गस्य मूलानि रसोनः क्रिमिजित्रिवृतः ॥ अजमोदानिम्ब-
पत्रं गोमूत्रेण तु पेषयेत् ॥ ३२ ॥ पानमेतत्प्रशंसन्ति क्रिमिदोष-

निवारणम् ॥ ज्वरप्रोक्तानि पथ्यानि क्रिमिदोषे प्रदापयेत् ३३
इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने क्रिमिचिकित्सा नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

कचूर, अजवायन, नींबूकी कोंप, वायविडंग, पीपल, अतीश, शोधा पारा, निशोत, इनको गोमूत्रमें पीसकर सेवनेसे, सबप्रकारके कृमिरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २८ ॥ मिर्च, पीपलामूल, वायविडंग, सहीजना, अजवायन, निशोत, इनको गोमूत्रमें पीस पीवे यह कृमिरोगको शीघ्र नाशता है ॥ २९ ॥ नागरमोथा, इंद्रायन, हरड़ें, बहेड़ा, आंवला, सांतविण, सहीजना, देवदार इनका कल्क अथवा पीपल और वायविडंगका चूर्ण खानेसे उसप्रकारके कृमिरोगको नाशता है ॥ ३० ॥ वनतुलसी, देवदार, पीपल, वायविडंग, कपिला ओषध, जमालगोटेकी जड़, निशोत, ताड़, लहसुन इनके चूर्णको पानीके साथ सेवे यह कृमिरोगको नाशता है ॥ ३१ ॥ विजोराकी जड़, लहसुन, निशोत, अजमोद, नींबूके पत्ते इनको गोमूत्रसे पीसे ॥ ३२ ॥ कृमिदोषको दूर करनेवाले इस पानको वैद्य सराहते हैं । ज्वरमें कहे हुए पथ्योंको कृमिदोषमें प्रयुक्त करे ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिव-सहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने कृमिचिकित्सानामः पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.

अथ मंदाग्निआदि अग्नियोंके निदान और चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अग्निश्चतुर्विधः प्रोक्तः समो विषमतीक्ष्णकः ॥
मन्दस्तदपरः प्रोक्तः शृणु चिह्नानि साम्प्रतम् ॥ १ ॥ वातपित्त-
कफसाम्यात्समः संजायतेऽनलः ॥ तैरेवं विषमं प्राप्ते विषमो जा-
यतेऽनलः ॥ २ ॥ तीक्ष्णः पित्ताधिकत्वेन जायते जठराग्निकः ॥

आत्रेयजी कहते हैं—सम, विषम, तीक्ष्ण, मंद इन भेदोंसे अग्नि चार प्रकारका कहा है अब उनके लक्षणोंको सुन ॥ १ ॥ वात, पित्त, कफ, ये समान होवें तब सम अग्नि होता है और ये ही वातआदिक दोष विषम हो जावें तब विषम अग्नि होता है ॥ २ ॥ पित्त अधिक होवे तब तीक्ष्ण अग्नि होता है ॥

अथ चार प्रकारके अग्निका लक्षण ।

वातश्लेष्माधिकत्वेन जायते मन्दसंज्ञकः ॥ ३ ॥ यद्भुक्तं प्रकृति-
स्थं तु पाचयत्यन्नसंचयम् ॥ स समो नाम निर्दोषः सर्वधातु-

विवर्द्धनः ॥ ४ ॥ किञ्चित्पाचयते भक्ष्यं कदाचिद्विपक्वकः ॥
वातेन वा न विषमं करोत्यपि विषूचिकाम् ॥ ५ ॥ अश्नात्य-
धिकं प्रकृत्यापि तृप्तिं न लभतेऽपि च ॥ सदाहपीतता नेत्रे
तीक्ष्णो वै क्षयकृद्बले ॥ ६ ॥ यद्भोक्तुं नैव शक्नोति यत्तु श्लेष्मबला-
धिकात् ॥ सोऽपि मन्दानलो नाम गुल्मोदरपरो मतः ॥ ७ ॥

वात कफ ये अधिक हो जायें तब मंदाग्नि होता है ॥ ३ ॥ और जो स्वभावके योग्य
अन्नका भोजन किये हुएको पका देता है वह सम अग्नि कहाता है, सब दोषोंसे रहित है और
सब धातुओंको बढ़ाता है ॥ ४ ॥ विषम अग्नि भोजन किये हुएको कछुक पकाता है और
कभी नहीं पकाता है और वातसे विषम हुआ अग्नि विषूचिका अर्थात् हैजाविशेषको करता है
॥ ५ ॥ अपनी प्रकृतिसे अधिक भोजन करे तब भी तृप्ति नहीं होवे और सदा पीले नेत्र रहें,
दाह हो, बलका नाश हो वह तीक्ष्ण अग्नि कहाता है ॥ ६ ॥ कफके अधिक बली होनेसे जो
भोजन करनेको समर्थ न रहे वह मंदाग्नि कहाता है और गुल्मोदररोगको करता है ॥ ७ ॥

अथ चार प्रकारके अग्निका परिणामविशेष ।

समेन समता देहे देहधातुबलेन्द्रियैः ॥ हृष्टः संपूर्णगात्रस्तु सचे-
ष्टो वर्तते नरः ॥ ८ ॥ विषम वानिलाद्याश्च ग्रहणी चाति-
सारकाः ॥ ग्रीहा गुल्मो विषूची च शूलोदावर्तसंज्ञकः ॥ ९ ॥
आनाहो मन्दचेष्टत्वं जायते विषमाग्निना ॥ वातकफाबुभौ क्षीणौ
तीव्रो भवति पित्तकः ॥ १० ॥ भोजने लभते प्रीतिं भुक्त्वा चैव
च जीर्यते ॥ तेन भस्मकसंज्ञस्तु जायते जठरानलः ॥ ११ ॥
पाण्डुः पित्तातिसारस्तु राजयक्ष्मा हलीमकः ॥ भ्रमः कृमोऽति-
वैकल्यं यकृद्वापि प्रमेहकाः ॥ १२ ॥ शूलमूर्च्छा रक्तपित्तं
पित्ताम्लं मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ तेन संक्षीयते गात्रं जायतेऽन्नस्य
लौल्यता ॥ १३ ॥ भक्षिताः काष्ठपाषाणा जीर्यन्ते तस्य
देहिनः ॥ इति श्रुतं निदानं च नरस्याग्निप्रकोपनम् ॥ १४ ॥
बहुधापि न वक्तुं तु ग्रन्थविस्तारशङ्कया ॥ १५ ॥

समान अग्नि होवे तब शरीरमें धातु, बल, इंद्रिय इनकी समानता रहे और सदा प्रसन्न
रहे और शरीर दृष्टपुष्ट हो ऐसा मनुष्य श्रेष्ठ होता है और कान्तियुक्त होता है ॥

॥ ८ ॥ विषम अग्नि होवे तो वातआदिकरोग और ग्रहणीरोग, अतिसार, ग्रीहा, गुल्मरोग, विषूचिका, शूल, उदावर्त ॥ ९ ॥ अफारा और मन्द चेष्टा रहती है और वात कफ ये दोनों क्षीण और पित्त तीक्ष्ण होता है ॥ १० ॥ भोजनमें प्रीति रहे, भोजन किया हुआ जर जावे वह जठरानल भस्मक रोग कहाता है ॥ ११ ॥ उस भस्मक रोगसे, पांडुरोग, पित्तका अतिसार, राजयक्ष्मा, हलीमक, भ्रम, ग्लानि, अतिविकल्पना, यकृत रोग, प्रमेह ॥ १२ ॥ शूल, मूर्च्छा, रक्तपित्त, अम्लपित्त, मूत्रकृच्छ्र ये उपद्रव और शरीर क्षीण हो जाता है, अन्नमें अत्यन्त इच्छा रहती है ॥ १३ ॥ और उस भस्मरोगवाले मनुष्यके भक्षण किये हुए काष्ठ, पत्थर भी जल जाते हैं । इस प्रकार मनुष्यके अग्निकोप होनेके लक्षण कहे हैं ॥ १४ ॥ ग्रन्थके विस्तार होनेकी शंकासे यहां बहुतसा विस्तार नहीं कहा है ॥ १५ ॥

अथ जठराग्निकी चिकित्सा ।

अतो वक्ष्ये समासेन भेषजानि पृथक्पृथक् ॥

पाचनं शमनं चैव दीपनञ्च तथोपरि ॥ १६ ॥

अब विस्तारसे जुदी २ औषधोंको कहते हैं । पाचन अर्थात् पकानेवाली, शमन और दीपन अर्थात् अग्निको दीप्त करनेवाली ऐसी औषधोंको कहते हैं ॥ १६ ॥

अथ विषमाग्निकी चिकित्सा ।

रास्ना शटी प्रतिविषा सुरसा च शुण्ठी सिन्धूतथहिडु मगधा च सुवर्चलं च ॥ चूर्णं कृतं सगुडमोदकभक्ष्यमाणं वातात्मकन्तु विषमाग्निसमीकरञ्च ॥ १७ ॥ शूलानजीर्णविषमाग्निविषूचिकासु वातादयः सकलगुल्मविनाशनं स्यात् ॥ भुक्तोपरि कथितमेव पिबेत्सुखोष्णं श्रेष्ठं तथोपरि समस्तरसानुभोज्यम् ॥ १८ ॥

रास्ना, कचूर, काला अतीश, सौंफ, सौंठ, सेंधानमक, कालानमक, हींग, पीपल इनका चूर्ण बना उसमें गुड़ मिला गोली बना खानेसे वातसे उपजा हुआ विषमाग्निरोग दूर होता है ॥ १७ ॥ शूल, अजीर्ण, विषमाग्नि, विषूचिका इन रोगोंको तथा वातसे उपजे हुए रोगोंको और गुल्म रोगको नाशती है और इसके खानेके ऊपर औठाया हुआ सुखसे सुहाता हुआ गरम जलको पीवे और इसके ऊपर सब प्रकारके रस खाने श्रेष्ठ हैं ॥ १८ ॥

अथ तीक्ष्णाग्निकी चिकित्सा ।

द्राक्षाभया तिक्तकरोहिणी च विदारिका चन्दनवासकं च ॥ मुस्ता पटोलं च किरातकानां कृष्णा बला च विकचावि-

षाणा ॥ १९ ॥ पल्लवङ्गालसपत्रकं च योज्या च भृंगी
धनिका समांशा ॥ चूर्णं सखर्जूरसितासमेतं घृतेन तद्वार्द्धबल-
प्रमाणम् ॥ २० ॥ भक्षेत्प्रभाते पयसा मनुष्यो निष्कवाथ्य पानं
सघृतं विधेयम् ॥ करोति तीव्राग्निसं प्रकृष्टं कृशस्य पुष्टिं तनुते-
ऽपि नूनम् ॥ २१ ॥ कुमभ्रमशोषविनाशनं स्यात्तृष्णातिलौ-
ह्यप्रशमं करोति ॥ सरक्तपित्तं क्षयपाण्डुरोगं हलीमकं कामल-
माशु नश्येत् ॥ २२ ॥

दाख, हरडे, कुटकी, विदारीकंद, चन्दन, वासा, नागरमोथा, परवल, चिरायता, पीपल, खरेहटी, गोरखमुंडी, अतीस ॥ १९ ॥ वालछड़, लौंग, पन्नाख, भंगरा, धनियां, खजूरिया इनको समान भागसे चूर्ण बना उसमें मिश्री मिला पीछे घृतके संग इस चूर्णको आधी मात्रा प्रमाण ॥ २० ॥ प्रातःकालमें खावे और इसके ऊपर औटाया हुआ दुधको घृतके संग पीवे. यह तीक्ष्ण अग्निको समान करता है और कृश शरीरको अत्यंत पुष्ट करता है ॥ २१ ॥ ग्लानि, भ्रम, शोष इनको दूर करता है और अत्यंत दाहको शांत करता है । रक्तपित्त, क्षयरोग, पांडुरोग, हलीमक, कामला इनको शीघ्र ही नाशता है ॥ २२ ॥

तण्डुलारक्तशालीनां भागद्वयेन धीमताम् ॥ भृङ्गा तिलांश्च संकु-
ट्य तद्वर्द्धेन विमिश्रितान् ॥ २३ ॥ भृङ्गा तत्सममुद्गांश्च चकीकृत्य
तु साधयेत् ॥ सिद्धां च कृशरां सम्यग्घृतेन सह भोजयेत् ॥ २४ ॥
एकाहान्तरितो यस्तु तीव्राग्निस्तस्य नश्यति ॥ २५ ॥

लाल चावल २ भाग, भूने हुए तिल १ भाग इनको कूटके फिर इनके बराबर भूने हुए सूंय मिला ॥ २३ ॥ इनको पकाके खिचड़ी बनावे पीछे इसको घृतके संग भोजन करे ॥ २४ ॥ इसको एकदिन खावे और एक दिन नहीं खावे इस क्रमसे खानेसे तीक्ष्ण अग्नि शांत होती है ॥ २५ ॥

अथ हरीतक्यादिवटी ।

हरीतकी हरिहरतुल्यषड्गुणा चतुर्गुणा चतुर्विंशालपिप्पली ॥
हुताशनं संयुतहिङ्गुसैन्धवं रसायनं कुरुनृप वह्निदीपनम् ॥ २६ ॥

हरडे ६ भाग, चार भाग पीपल, चार भाग गजपीपल, चीता, हींग, सेंधानमक इनको एक जगह पानीमें खरलकर गोली बांध लेवे यह अग्निको दीप्त करनेमें रसायन कहाता है ॥ २६ ॥

अथ यवानीखांडवचूर्ण ।

जवानिकाभिश्च हरीतकी तथा यथोत्तरं वृद्धिमवाप्य चूणयत् ॥
सतिंतिडीकं च सकोलदाडिमं तथा म्लवेतं रुचिरं च मेलयेत्
॥ २७ ॥ समानि चेमानि च कर्षमात्रं कर्षाद्विभागेष्वितरे
बलानि ॥ जाजी वराङ्गं च सुवर्चलं च कणाशतैकं मरिचं
तद्वर्द्धे ॥ २८ ॥ पलानि चत्वार्यपि शर्करायाः समं विचूर्ण्योदरगा-
न् प्रमार्ष्टि ॥ भक्षेद्यदेदं रुचिकृद्द्विबन्धं ह्रीहं सशूलं जयते सका-
सम् ॥ २९ ॥ श्वासं विनश्येद्धृदयामयघ्नं जिह्वागदं कण्ठगदं
निहन्ति ॥ ग्राहग्रहण्यार्शविकारमन्दानलस्य सन्दीपनमेव चूर्णम्
॥ ३० ॥ यवानिकाखांडविकाभिधानमरोचकानां शमने प्रश-
स्तम् ॥ ३१ ॥

अजवायन १ भाग, चीता २ भाग, हरड ३ भाग ऐसे इनके यथोत्तर वृद्धि भाग लेके चूर्ण बनावे और अम्लवेत, बेर, अनारदाना, अमली ॥ २७ ॥ इन सब औषधोंको समान भाग एक एक तोला प्रमाण लेवे और जीरा, दालचीनी, कालानमक ये सब दो तोला प्रमाण लेवे और पीपल १०० सौ, काली मिर्च ५० ले ॥ २८ ॥ मिश्री १६ तोले ऐसे इन सब औषधोंको ले एक जगह चूर्ण बनावे इस चूर्णके खानेसे उदररोगोंका नाश होता है और यह रुचिको करनेवाला है, मलका बंधन, तिल्ली, शूल, खांसी ॥ २९ ॥ श्वासरोग, हृदयरोग, जिह्वारोग, कंठरोग इनको दूर करता है और संप्रहणी, बवासीर इनको दूर करता है, मंदाग्निको दीप्त करता है ॥ ३० ॥ यह यवानीखांडवनामवाला चूर्ण अरोचकरोगको दूर करनेमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ३१ ॥

अथ अरोचक चिकित्सा ।

यवागूः पञ्चकोलस्य कुलत्थाढक्ययूषकम् ॥ मुद्गयूषेण वा सम्य-
ग्भक्तानां भोजनं हितम् ॥ ३२ ॥ सहिङ्गुः त्र्यूषणाढ्यं च व्यञ्जनं
संप्रशस्यते ॥ अगस्तिवृतवच्छेष्टं भोजनारोचकेष्वपि ॥ ३३ ॥
कारवेहं पटोलश्च पलाण्डुः सूरणं शटी ॥ लवणं धान्यकं श्रेष्ठं
प्रलेहश्च कटुत्रिकम् ॥ ३४ ॥ शटी सर्षपवास्तूकं शतपुष्पा च
माचिका ॥ तुण्डीरकस्य मूलानां शाकं श्रेष्ठं प्रशस्यते ॥

॥ ३५ ॥ गोधूमपोलिकाः श्रेष्ठा भृष्टाङ्गारैररोचके ॥ जाङ्गलानि
च मांसानि भोजयेद्विपशुत्तमः ॥ ३६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारी-
तोत्तरे तृतीयस्थाने मन्दाग्निचिकित्सा नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

पंचकोल अर्थात् पीपली, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ इनकी यथागूको तथा कुलथी, अरहरकी दाल इनके दूधको भोजन करे, अथवा मूंगोंके दूधके संग चावलोंका भोजन करना हित है ॥ ३२ ॥ होंग, सोंठ, मिर्च, पीपल इनसे संयुक्त किया हुआ शाक भोजनकी अरु-
चिमें अग्निसंज्ञक वृत्तकी तरह श्रेष्ठ कहा है ॥ ३३ ॥ करेला, परवल, प्याज, जमी-
कंद, कच्कर, इनका शाक श्रेष्ठ कहा है और नमक, धनियां, सोंठ, मिर्च, पीपल इनकी चटनी
श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ कच्कर, सिरसम, बथुवा, नाँफ, मकोह, मीठीतोरी मूली, इनका
शाक अरोचक रोगमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ३५ ॥ अंगारोंपै सेकी हुई गेहूँकी रोटी जांगल-
देशके जीवोंका मांस इनको वैद्यजन अरोचकरोगवालोंको भोजन करवावे ॥ ३६ ॥ इति
वेरीनियानीयुवशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादिनहारीतनंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने
मन्दाग्निचिकित्सानाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ७

अथ शूलनिदान ।

आत्रेय उवाच ॥ व्यायामपाननिशिजागरणव्यवायशोकातिभा-
रगतिधावनकश्रमेण ॥ वैषम्यपानशयनेन च भोजनेन शीतेन
वायुकुपितः प्रकरोति शूलम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—कसरत, पान, रात्रिमें जागना, मैथुन, शोक, अतिबोझ,
गमन, भागने और श्रमसे तथा विषम पान, विपरीत शयन, विपरीत भोजन और
शीतल वस्तुके सेवनेसे कुपित हुआ वायु शूलको करता है ॥ १ ॥

अथ वातशूलकी उत्पत्ति ।

विष्टम्भिरूक्षयवमाषकलायमुद्गनिष्पावकाग्निपुटकोद्रवको मसूरः
गोधूमक्षुद्रकफरूक्षविभोजनेन चैतच्च पानमलरोधनमूत्ररोधैः ॥ २ ॥
वायुस्त्वधोगतपथं प्रविरुह्य शूलं वातात्मको भवति चान्तरव-

हिमांश्च ॥ तस्मादिति प्रबलताकुपितः प्रकोष्ठे शूलं करोति गुद-
मार्गनिरोधितेऽपि ॥ ३ ॥ गात्रेऽपि तोदविरतिर्मलिनातिदीना
वातार्तिपीडितनरस्य महामते स्यात् ॥ ४ ॥

विघ्रंभी अर्थात् मलकों बंद करनेवाला, सूखा भोजन, ज्व, उड्ड, मोठ, मूंग,
मटर, कोदूवान्य, चौला, मसूर, गेहूं, कफको पैदा करनेवाला और सूखा अन्नके भोजनोंसे और
जलपान, मल, मूत्र, इनके रोकनेसे ॥ २ ॥ वायु अधोमार्गके मूलमार्गको रोक देता है ।
यह वातसे उत्पन्न हुआ शूल कहाता है और उदरके भीतर अग्नि दाह कर देता है । कोष्ठ-
स्थानमें प्रबल होके कुपित हुआ शूलको उपजाता है और गुदाके मार्गको रोक देता है ॥ ३ ॥
शरीरमें भी पीड़ा, ग्लानि, मलीनता, दीनपना ये उपद्रव वातसे पीडित हुए मनुष्यके उत्पन्न
होते हैं ॥ ४ ॥

अथ पित्तशूलनिदान ।

क्रोधातपादनलसेवनहेतुना च शोकाद्भयार्तिगतिधावनधर्मयो-
गात् ॥ क्षाराम्लमद्यकटुकोष्णविदाहिरूक्षसौवीरशुष्कपललेख-
नराजिकाभिः ॥ ५ ॥ वातः प्रकोपमयते किल तत्तु पित्तं
शूलं करोति जठरेमनुजस्य तीव्रम् ॥ तेनाङ्गदाहारतिधर्मतृषार्ति-
मूर्च्छा नाभ्यन्तरे दहति शोषणतास्य पैत्यम् ॥ ६ ॥

क्रोधसे, घाम और अग्निके सेवनेसे, शोक, भय, पीड़ा, गमन करना, भागना और पसीना-
के योगसे, खारा, खहा, मदिरा, चर्चरा, कुछ गरम, विदाही, रूक्ष पदार्थ, वेर, कांजी, सूखा
पदार्थ, मांस, लेखन पदार्थ, राई ॥ ५ ॥ इनके खानेसे वायु कुपित होके पित्तको कुपित करता
है, फिर वह पित्त मनुष्यके उदरमें दारुणशूल उत्पन्न करता है उससे अंगमें दाह, ग्लानि,
पसीना, तृषा और मूर्च्छा ये उपद्रव होते हैं और नाभिके समीपमें दाह, शरीरमें शोष होता है
और मुख पीला रहता है ॥ ६ ॥

अथ कफशूलकी उत्पत्ति ।

अव्यायामेऽस्निग्धसंसेवनेन लौल्याहारे चक्षुतैलैः पयोभिः ॥
अल्पाहारे निद्रया सेवनैस्तु योगैरैतैः कुप्यते श्लेष्मकस्तु ॥ ७ ॥
माषातिशीतलपयोदधिभिः सुशीतैर्मत्स्यैस्त्वनूपपल्लैरतिसे-
वितैस्तु ॥ श्लेष्मा भृशं शमयतेऽनलमाशु शूलं कोष्ठे करोति मनु-

जस्य विकारमुग्रम् ॥ ८ ॥ हृत्कासकासवमिजाव्यशिरोगुरुत्वं
स्तैमित्यशीतलतनूरुचिवन्धनं च ॥ भुक्तप्रसेकमधुरास्यमथा-
भिरासं सिग्धं मुखं भवति यस्य कफात्मकोऽसौ ॥ ९ ॥
चिह्नानि चैतानि भवन्ति यस्य कफात्मकं शूलमवेहि-
तस्य ॥ सपैत्तिकानीव भवन्ति यस्य वदन्त्यजीर्णेन च शूल-
मस्य ॥ १० ॥

कसरत नहीं करना, चिकना नहीं खाना, पिच्छल भोजन करना, ईखका रस, तेल, दूध
इन्होंका भोजन करना, अल्प भोजन करना, निद्राका सेवन करना इन योगों करके कफ कुपित
होता है ॥७॥ उड़द, अत्यंत शीतल पदार्थ, शीतल दूध, दही, मच्छी और अनूपदेशके जीवोंका
मांस इनके सेवन करनेसे कफ जठराग्निको शांत कर देता है और शीघ्रही शूलको उत्पन्न कर देता
है, मनुष्यके कोष्ठस्थानमें अति उग्र विकार करता है ॥ ८ ॥ हृत्कास अर्थात् थुकथुकी, खाँसी,
वमन, जड़ता, शिर भारी, गीलापन, शीतल शरीर होना, रुचिवंध होनी, भोजन करे पीछे थूक
आना, मीठा मुख रहे, आलस्य रहे, चिकना मुख रहे जिसके ये उपद्रव हों वह कफसे उपजा
शूल जानना ॥९॥ जिसके ये लक्षण हों वह कफका शूल होता है और जिसके पित्तके लक्षण
मिलते हों उसको वैद्यजन अजीर्णसे उपजा हुआ भी शूल कहते हैं ॥ १० ॥

अथ द्विदोषजशूलकी उत्पत्ति ।

हृत्कण्ठपार्श्वे सकफः सपित्तः हृन्नाभिमध्ये कफपित्तशूलः ॥

वस्तौ च नाभौ प्रकरोति पीडां देहेऽखिले यः स तु वातपित्तात् ११

कफसे उपजा शूल, हृदय, कंठ, पसली, इनमें पीड़ा करता है और पित्तसे उपजा शूल
हृदय, नाभि इनमें पीड़ा करता है और कफपित्तसे उपजा शूल वस्तिस्थान और नाभिमें पीड़ा
करता है और जो सब शरीरमें पीड़ा हो वह वातपित्तसे उपजा शूल जानना ॥ ११ ॥

अथ दशप्रकारके शूल ।

अथ शूलोंकी साध्यासाध्य परीक्षा ।

एकोऽपि सुखसाध्योऽसौ द्वन्द्वः कष्टेन सिध्यति ॥

त्रिदोषजस्त्वसाध्यस्तु बहूपद्रवसंयुतः ॥ १२ ॥

एक दोषसे उत्पन्न हुआ शूल सुखसाध्य होता है, दो दोषोंसे उपजा हुआ शूल कष्टसाध्य
कहाता है, त्रिदोषसे उपजा और बहुत उपद्रवोंसे संयुक्त शूल असाध्य होता है ॥ १२ ॥

अथ शूलोंकी संख्या और पृथक्करण ।

निदानैः कुपितो वायुर्वर्तते जठरान्तरे ॥ तेन शूला हि दशधा
भिषग्भिः परिगीयते ॥ १३ ॥ त्रयो वातादिका ज्ञेया द्वन्द्वजास्तु

पुनस्त्रयः॥सामनिरामकौ द्वौ च शूलाश्चाष्टाविमे स्मृताः॥१४॥
अजीर्णान्नवमः प्रोक्तो दशमः परिणामजः ॥ एवं दशप्रकारेण
शूलं संभवते नृणाम् ॥१५॥ भुक्तोपरि भवेद्यस्तु सोऽपि ज्ञेयः
कफात्मकः॥ जीर्णेऽन्ने च भवेद्यस्तु स ज्ञेयःपरिणामजः॥१६॥

कारणोंसे कुपित हुआ वायु उदरके भीतर वर्तता है फिर उसके किये हुए दश प्रकारके शूल उत्पन्न होजाते हैं ॥१३॥ तीन शूल वात आदिक दोषोंके और तीन दोषोंसे मिले हुए शूल और १ साम अर्थात् आमसहित शूल और १ निरामशूल ऐसे आठ प्रकारके तो ये हैं ॥ १४ ॥ और नवमा९ अजीर्णसे उपजा शूल और दशमा परिणामजशूल ऐसे मनुष्योंके दश प्रकारके शूल कहे हैं ॥ १५ ॥ जो भोजन करनेसे पीछे शूल होता है वह कफका शूल कहाता है और भोजन किया हुआ अन्न जर जावे तब शूल उपजे यह परिणाम-शूल कहाता है ॥ १६ ॥

अथ वातशूलका लक्षण ।

आध्मानमूर्ध्व च विबन्धनं च जृम्भा तथा वेपथुमार्जनं च ॥
उद्वीरणं स्निग्धमुखातिजिह्वा वातेन शूलं भजते विविज्ञः॥१७॥

ऊपरले अंगोंमें अफारा हो और मलका बंधा हो, जंभाई आवे, अत्यंत कापै, वमन और डकार आवें, मुख और जिह्वा चिकनी हो, ये लक्षण वातकी शूलके हैं ॥ १७ ॥

अथ पित्तशूलका लक्षण ।

तृष्णा विदाहोऽतिरतिर्विमोहः कृच्छ्रेण मूत्रं कटुकास्यता च ॥
स्वेदातिशोषो वदनं च पीतं पित्तात्मकं तं प्रवदन्ति धीराः॥१८॥

दाह हो, ग्लानि हो, मोह हो, तृषा हो, कष्टसे मूत्र उतरे, मुख कटुआ रहे, पसीना आवे, अत्यन्त शोष हो, मुख पीला रहे ये लक्षण हों उसको वैद्यजन पित्तका शूल कहते हैं ॥ १८ ॥

अथ कफशूलका लक्षण ।

छर्दिस्तथा कासबलासमोह आलस्यतन्द्रा जडतातिशैत्यम् ॥

छर्दि हो, खांसी, जुखाम, मोह, आलस्य, तन्द्रा, जडपना और अत्यन्त शीतलता ये कफसे उपजे शूलमें कहते हैं ॥

अथ द्वन्द्वजशूलका लक्षण ।

कफात्मकं तद्विषजां वरिष्ठ शूलं भवेद्वन्द्वजरोगसंज्ञम् ॥ १९ ॥
त्रिभिस्तु दोषैस्तु त्रिदोषजः स्याद्रक्तेन चैकादश एवमुक्तः॥पित्ता-

तमकानि प्रभवन्ति यस्य चिह्नानि रक्तस्य च छर्दिनं स्यात् ॥२०॥

शोषस्तृषाश्वासविदाहकासा भवन्ति रक्तप्रभवेऽतिशूलः ॥२१॥

विना वातेन नो शूलं विना पित्तेन नो भ्रमः ॥ न कफेन विना छर्दिनं रक्तेन विना तमः ॥ २२ ॥

जो दो दोपोंसे उपजा हो, कफप्रधान वह द्वन्द्वज शूल कहाता है ॥ १९ ॥ तीन दोपोंसे उपजा हुआ त्रिदोषज शूल कहाता है और रक्तसे उत्पन्न हुआ ग्यारहवां शूल होता है, जिसके पित्तके लक्षण हों और नधिरक्री छर्दि करे ॥ २० ॥ शोष हो, तृषा हो, दाह हो, खांसी हो, श्वास हो, वह रक्तसे उपजा हुआ शूल कहाता है ॥ २१ ॥ वातके बिना शूल नहीं होता है और पित्तके बिना भ्रम नहीं होता है, कफके बिना छर्दि नहीं होती है और रक्तके बिना अन्वेरी नहीं होती है ॥ २२ ॥

अथ सब प्रकारके शूलोंकी चिकित्सा ।

इति शूलपरिज्ञानमतो वक्ष्यामि भेषजम् ॥ येन शूलार्तिशमनं शूली संपद्यते सुखम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा शूलं लङ्घनं पाचनं च वान्ति चैव स्वेदनं रेचनं वा ॥ क्षारं चूर्णं चार्पयेच्छूलशान्त्यै पानाभ्यङ्गान्कासमाने मनुष्ये ॥ २४ ॥

इस प्रकार शूलका निदान तो कह दिया है । अब इनकी औषधोंको कहेंगे जिससे शूलकी पीडा शांत होती है और शूलरोगवाला पुरुष सुखी होता है ॥ २३ ॥ वैद्यजन शूलको देखि लंघन, पाचन, विरेचन, वमन, संस्वेदन इन कर्मोंको करवावे और शूलकी शांतिके लिये क्षारचूर्णको देवे और जो मनुष्यके खांसीसहित शूल हो तो पान, अभ्यंग अर्थात् मालिस करवावे ॥ २४ ॥

अथ शूल तथा गुल्मपर हिंग्वादि क्वाथ ।

हिङ्गु नागरशटीसुवर्चलं दारुपौष्करघनापुनर्नवाः ॥

क्वाथपानमिति शूलिनां हितं पाचनं जठरगुल्मिनामपि ॥२५॥

हींग, सोंठ, कचूर, कालानमक, देवदार, पोहकरमूल, नागरमोथा, सांठी, इनके क्वाथका पान शूलरोगवालोंको हित है और उदरगुल्मरोगवालोंको यह क्वाथ पाचन है ॥ २५ ॥

अथ वातशूलपर हिंग्वादिक्वाथ ।

हिङ्गु पौष्करशटीसुवर्चलं क्वाथमेवमपि शूलिनां हितम् ॥

वातशूलशमनाय शस्यते पाचनं निगदितं च वर्त्तते ॥ २६ ॥

हींग, पोहकरमूल, कचूर, कालानमक, इनका काथ भी शूलरोगवालोंको हित है । यहकाथ वातशूलको शांत करनेके लिये श्रेष्ठ कहा है और यही काथ पाचन भी कहा है ॥ २६ ॥

अथ सैंधवादि चूर्ण ।

सिन्धूत्थहिंगू रुचकं यवानी पथ्यायवक्षारशटीविचूर्णम् ॥
देयं सुखोष्णेन निहन्ति शूलं वातात्मकं वाप्यचिरेण
शूलम् ॥ २७ ॥

सैंधानमक, हींग, कालानमक, अजवायन, हरड़ें, जवाखार और कचूरको समान भाग ले चूर्ण बना सुखसे सुहाते हुए गरम २ जलके संग देनेसे वातसे उपजा हुआ शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ २७ ॥

अथ हिंवादिचूर्ण ।

हिङ्गु सौवर्चलं पथ्या यवानी सपुनर्नवा ॥ बालैरण्डो बृहत्यौ
द्वे तुवरं त्र्यूषणान्वितम् ॥ २८ ॥ क्षारसौवर्चलोपेतं काथो वा
चूर्णितस्तथा ॥ सद्यो वातात्मकं शूलं हन्ति सद्यो विषूचिकाम् ॥ २९ ॥

हींग, कालानमक, हरड़ें, अजवायन, सांठी, नेत्रवाला, अरंड, दोनों कटेहली, सफेद शिरस, सोंठ, मिर्च पीपल, ॥ २८ ॥ जवाखार, कालानमक, इनका काथ अथवा चूर्ण वातसे उपजे शूलको और विषूचिकाको शीघ्र ही नाश देता है ॥ २९ ॥

अथ तुम्बुरुआदि चूर्ण ।

तुम्बुरुपौष्करहिङ्गु यवानी त्र्यूषश्च वा त्रिवृहतीलवणेन ॥
युक्तमिदं लवणाष्टकचूर्णं भवति शूलनिवारणक्षमम् ॥ ३० ॥

धनियां, पोहकरमूल, हींग, अजवायन, सोंठ, मिर्च, पीपल, तीनों प्रकारकी कटेहली, नमक इन सबोंको युक्तकर चूर्ण बनावे यह लवणाष्टकचूर्ण कहाता है, शूलको शीघ्र ही निवारण कर देता है ॥ ३० ॥

अथ एरंडादिकाथ ।

काथो निहन्ति मरुतोद्भवशूलसंघानेरण्डनागरसुवर्चलरामठेन ॥
पथ्यावचेन्द्रयवनागरतोययुक्तं हिङ्गु सुवर्चलयुतं च निहन्ति
शूलम् ॥ ३१ ॥

अरंड, सोंठ, कालानमक, हींग अथवा हरड़ें, बच, इंद्रजव, सोंठ, हींग, कालानमक इनका काथ बना देनेसे वातसे उपजे शूलोंके समूहोंका नाश होता है ॥ ३१ ॥

अथ बृहद्धिगुचूर्ण ।

हिड्डु नागरषड्ग्रन्था यवानी अभया त्रिवृत् ॥ विडङ्गं दारु
चव्यश्च तुम्बुरुकुष्ठमुस्तकाः ॥ ३२ ॥ हपुषा कलशी रास्त्रा वत्स-
का सदुरालभा ॥ सितारवी बृहत्यौ च लांगली पञ्चजीरकम्
॥ ३३ ॥ पुष्करं तित्तिडीकं च वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥ द्वौ
क्षारौ पञ्चलवणं समं चैकत्र मिश्रयेत् ॥ ३४ ॥ मूत्रेण भावनाञ्चै-
कां दत्त्वा छायाविशोषिताम् ॥ बीजपूरकतोयेन भावयेच्च दिन-
त्रयम् ॥ ३५ ॥ विडालपदिकां मात्रां युञ्जीत शूलशान्तये ॥
वातनोष्णोदकेनापि सितशर्करयान्वितः ॥ ३६ ॥ त्रिफला-
काथो मद्येन श्लेष्मरोगे प्रशस्यते ॥ शूलानाहविबन्धानां मन्दा-
ग्नौ गुल्मविद्रधीन् ॥ ३७ ॥ एहीदराणाञ्च पाण्डुज्वरिणां च
विशेषतः ॥ निहन्ति देहसंघातं मेघवृन्दं मरुद्यथा ॥ ३८ ॥

हींग, सोंठ, वच, अजवायन, हरडै, निशोत, वायविडंग, देवदार, चव्य, धनियाँ, कूट,
नागरमोथा ॥ ३२ ॥ हाउवेर, पिठवण, रास्त्रा, कूडा, जवासा, सफेद गोकर्णी, दोनों कटेहली,
कलहारी, पांचों जीरे ॥ ३३ ॥ पोहकरमूल, इमली, विजौरा, अम्लवेत, जवाखार, सजीखार,
पांचौनमक इन सबोंको समानभाग ले एक जगह चूर्ण बना ॥ ३४ ॥ गोमूत्रमें भावना दे छा-
यामें सुखालेवे पीछे विजौराके रसमें तीन दिनतक भावना देवे ॥ ३५ ॥ पीछे एक तोला प्रमाण
इस चूर्णको देनेसे शूलरोग शांत होता है, वातसे उपजे शूलमें गरमजलके सङ्ग देवे ॥ ३६ ॥
और कफसे उपजे शूलमें सफेद खांडमें अथवा त्रिफलाके काथके सङ्ग अथवा मदिराके
संग देना हित है और शूल, अफारा, मलका बन्धा, मन्दाग्नि, गुल्मरोग, विद्रधि ॥ ३७ ॥
तिछी, उदररोग, पांडुरोग, ज्वर, देहका मुटावा इन सब रोगोंको यह चूर्ण नाशता है जैसे
मेघोंके समूहको वायु ॥ ३८ ॥

अथ पित्तशूलचिकित्सा ।

धात्रीफलं लोहरजश्च पथ्या ज्यूषं समांशेन विभाव्य त तु ॥

रसेन वा दाडिममातुलुङ्गयाश्चूर्णं सिताढ्यं च सपित्तशूले ३९ ॥

धात्रीफलादि चूर्ण, आंवला, लोहका चूर्ण, हरडै, सोंठ, मिर्च, पीपली इन सबोंको समान
भाग ले अनारके रसमें अथवा विजौराके रसमें भावना देवे पीछे इस मिसरी मिला देनेसे पित्त-
शूल शांत होता है ॥ ३९ ॥

अथ दाडिमादिचूर्ण ।

विडालकं दाडिमपूतनां च धात्रीसमेतं विदधीत चूर्णम् ॥

तन्मातुलुंगस्य रसेन भावितं सपित्तशूलप्रशमाय भक्षेत् ॥४०॥

अनारदाना, हरडै, आवला, इन सबोंका एक २ तोला प्रमाण ले चूर्ण बना फिर विजौसके रसमें भावना देवे । यह चूर्ण पित्तशूलको शांत करता है ॥ ४० ॥

अथ जीवन्त्यादि घृत ।

जीवन्त्याद्यं घृतं पाने क्षीरं वापि सितान्वितम् ॥

कर्तव्यं रेचनं नित्यं पित्तशूलनिवारणम् ॥ ४१ ॥

जीवन्तीआदि औषधगणमें सिद्ध किया हुआ घृत अथवा मिश्रीसे युक्त दूध इनके जुलावसे निश्चय पित्तशूलका निवारण होता है ॥ ४१ ॥

अथ पित्तशूलका दूसरा उपचार ।

शिशिरसरसतोयागाहन चन्दनानि विशदपुटितमध्ये स्वापनं
वै निशासु ॥ कनकरजतकांस्याम्भोजहैमं तुषारं कृतमिति
विधिना वै पैत्तिके शूलहेतोः ॥ ४२ ॥

सरोवरके ठंढे जलसे स्नान करना, चंदन लगाना, उत्तम चौगरदे बरवाले मकानमें रात्रिमें शयन करना और सुवर्ण, चांदी, कांशी, कमल, इनकी ठंढकसे शीतलता करनी ये विधि पित्तशूलमें करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

अथ पित्तशूलमें भोजन ।

सितशाल्योद्भवा लाजाः सितामधुयुतं पयः ॥ दाहं पित्तज्वरं
छर्दिं सद्यः शूलं निहन्ति च ॥४३॥ जाङ्गलानि च मांसानि
भोजनाय प्रशस्यते॥घृतं क्षीरं समधुरं प्रशस्तं पित्तशूलिनाम्॥४४

सपेद सांठी चावलोंकी खील, मिश्री, शहद इनसे युक्त दूध ये दाहको, पित्तज्वरको, छर्दिको और पित्तशूलको नाशती हैं ॥ ४३ ॥ और जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनके वास्ते श्रेष्ठ कहा है और घृत, दूध, शहद ये पित्तशूलवालोंको हित हैं ॥ ४४ ॥

अथ कफशूलचिकित्सा ।

लङ्घनं वमनं चैव पाचनं श्लेष्मशूलिनाम् ॥

न वनातिमधुराणि शयनं च विधेयकम् ॥ ४५ ॥

कफशूलवालोंको लंघन कराना, यमन कराना, पाचन और ख देना हित है, और कड़े पदार्थ, अत्यंत मीठा पदार्थ नहीं देवे और शयन नहीं करावे ॥ ४५ ॥

अथ बिल्वादिकाथ ।

बिल्वाग्रिमन्थवृषचित्रकनागराश्च एरण्डहिङ्ग सहसैन्धवकं
समाशम् ॥ क्वाथः सदैव कफजं विनिहन्ति शूलं सद्यःकरोति
जठरानलवर्द्धनं च ॥ ४६ ॥

बेलगिरी, अरणी, बांसा, चीता, सोंठ, अरंड, हींग, सैधानमक इनको समान भाग ले क्वाथ बना देनेसे शीघ्र ही कफसे उपजे शूलको दूर करता है और जठराग्निको बढ़ाता है ॥ ४६ ॥

अथ मातुलंगादिरस ।

मातुलुङ्गरसं धात्रीरसं सैन्धवसंयुतम् ॥ शोभाञ्जनकमूलस्थ रसं
च मरिचान्वितम् ॥ ४७ ॥ सक्षारमधुनोपेतं श्लेष्मशूलनिवार-
णम् ॥ कृतक्षयोद्भवं कासं नाशयत्याश्वसंशयम् ॥ ४८ ॥

विजौरैका रस, आंवलेका रस इनमें सैधानमक मिला और सहीजनेकी जड़के रसमें काली मिर्च मिला ॥ ४७ ॥ फिर जवाखार, शहद, इनसे युक्त कर इनके देनेसे कफका शूल दूर होता है और क्षयरोगसे उपजाहुई खांसीको शीघ्रही नाशता है ॥ ४८ ॥

अथ तुवरादिचूर्ण ।

तुवरं ग्रन्थिकैरण्डा व्योषं पथ्याजमोदकम् ॥
सक्षारलवणोपेतं चूर्णं शूले कफात्मके ॥ ४९ ॥

सफेद शिरस, पीपलमूल, अरंड, सोंठ, मिर्च, पीपल, हरडै, अजमोद, जवाखार, नमक इनका चूर्ण कफसे उपजे शूलको दूर करता है ॥ ४९ ॥

अथ एरंडादि काथ ।

एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गपाषाणभित्रिकटुमूलकृते कषाये ॥
सक्षारहिङ्गुलवणाश्च सुतैलमिश्राः श्रोण्यसमेद्रहृदयस्तनकु-
क्षिदेयम् ॥ ५० ॥

अरंड, बेलगिरी, दोनोंकटेहली, विजौरा, पाषाणमेद, त्रिकुटु, सोंठ, मिर्च, पीपल, इनसे कियेहुए क्वाथमें जवाखार, हींग, नमक, तेल इनको मिला फिर, कटि, कंधे, लिंग, हृदय, कुक्षी, चूची, इन स्थानोंमें इसकी मालिस करनी चाहिये ॥ ५० ॥

अथ वातपित्तशूलचिकित्सा ।

पटोलारिष्टपत्राणि त्रिफलासंयुतानि च ॥ क्वाथं मधुयुतं पानं
शूले पित्ते समीरणे ॥ ५१ ॥ पित्तज्वरतृषादाहरक्तपित्तनि-
वारणम् ॥ ५२ ॥

(पटोलादि क्वाथ) परवल, नींब इनके पत्ते, त्रिफला इनका क्वाथ बना तिसमें शहद-
मिला पान कराना वातपित्तशूलको शांत करता है ॥ ५१ ॥ पित्तज्वर, तृषा, दाह और
रक्तपित्त इनको निवारण करता है ॥ ५२ ॥

अथ दुरालभादिकल्क ।

दुरालभा पर्पटकं च विश्वा पटोलनिम्बाम्बुदतिन्तिडीकम् ॥
सशर्करं कल्कमिदं प्रयोज्यं सपित्तवातोद्भवशूलशान्त्यै ॥ ५३ ॥

जवासा, पित्तपापडा, सोंठ, परवल, नींब, नागरमोथा, अमली इनका कल्क बना खांड मिला
देनेसे पित्तवातसे उपजा शूल शांत होता है ॥ ५३ ॥

अथ वातकफशूलचिकित्सा ।

सौवर्चलं समशटी सहनागरा च शुण्ठीयुतेन कथितेन जलेन
चूर्णम् ॥ पीतं निहन्ति मरुतायुतलैष्मिकाणां पार्श्वतिशूलज-
ठरानलहृत्प्रशस्तम् ॥ ५४ ॥

“सौवर्चलादि चूर्ण” कालानमक, कचूर, नागरमोथा, सोंठ इनका चूर्ण बना औटाया हुआ
जलके संग लेनेसे वात कफसे उपजा हुआ शूल शांत होता है और पसली, शूल, मन्दाग्नि इन
रोगोंके हरनेमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ५४ ॥

अथ दारुवादि क्वाथ ।

दारु नागरकं वासा हिड्डु सौवर्चलान्वितम् ॥

क्वाथो वातकफे शूले आमोऽजीर्णे विबन्धके ॥ ५५ ॥

देवदार, सोंठ, वांसा, हींग, कालानमक, इनका क्वाथ वातकफसे उपजे शूल, आमरोग,
अजीर्ण और मलके बन्धमें देना श्रेष्ठ है ॥ ५५ ॥

अथ त्रिदोषशूल चिकित्सा ।

पलाशकदलीवासापामार्गकोकिलाह्वयम् ॥ गोमूत्रेण श्रितं तनु
हिड्डुनागरसंयुतम् ॥ ५६ ॥ हितं त्रिदोषजे शूले कामलाविड्वि-
बन्धके ॥ गुल्मोदराणां शमनं मन्दाग्नीनां नियच्छति ॥ ५७ ॥

“पलाशादिवृत” टेसू, केला, बांसा, लटजीरा, तालमखाना, हींग, सोंठ, इनको गोमूत्रमें पका काथ बना देनेसे ॥ ५६ ॥ त्रिदोषसे उपजा शूल, कामला, मलका ब्रंदा, गुल्मरोग, उदररोग, मन्दाग्नि दूर होता है ॥ ५७ ॥

अथ सर्वशूलपर उपाय ।

एक एव कुबेराक्षः सर्वशूलापहारकः ॥

किं पुनः स त्रिभिर्युक्तः पथ्यारुचकरामटैः ॥ ५८ ॥

अकेली पादरि ही सर्वशूलोंको दूर करती है, फिर उसके साथ हरडै, सोंचर और हींग होवे तो क्या कहना अर्थात् अग्रइयही शूलको दूर करती है ॥ ५८ ॥

अथ शखक्षार ।

शङ्खक्षारं च लवणं हिङ्गुव्योषसमन्वितम् ॥

उष्णोदकेन तत्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ ५९ ॥

शंखका खार, नमक, हींग, व्योष, (सुंठ, मिर्च, पीपल,) इनका चूर्ण गरमजलके संग पीनेसे त्रिदोषसे उपजा शूल नाश होता है ॥ ५९ ॥

अथ सामान्यसे सब शूलोंकी चिकित्सा ।

लङ्घनं वमनं चैव विरेकश्चानुवासनम् ॥

निरुहो बस्तिकर्माणि परिणामे त्रिदोषजे ॥ ६० ॥

त्रिदोषसे उपजे परिणामशूलमें लंघन, वमन, जुलाव, अनुवासनवस्ति, इन कर्मोंको करवावे ॥ ६० ॥

अथ चित्रकादिमोदक ।

चित्रकं त्रिवृता दन्ती विडङ्गं कटुकत्रयम् ॥ समं चूर्ण गुडेनाथ

कारयेन्मोदकान्सुधीः ॥ ६१ ॥ भक्षयेत्प्रातरुत्थाय पश्चादुष्णो-

दकं पिबेत् ॥ परिणामोद्भवं शूलं हन्ति शूलं नरस्य च ॥ ६२ ॥

चीत्तू, निशोत, जमालगोटेकी जड़, वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पीपल इनको समान भाग ले चूर्ण बना फिर वैद्यजन उसको गुड़में गोली बांधलेवे ॥ ६१ ॥ प्रातःकाल उठके इसका भक्षण करे और ऊपरसे गरमजल पीवे । यह परिणामशूलको नाशता है ॥ ६२ ॥

१ कुष्णवृन्ता कुबेराक्षोत्थमरः । कुष्णवृन्ता कुबेराक्षी सप्तगटलायाः “पाडली” इति ख्यातया इत्यमरविवेके ।

अथ यवान्यादिचूर्ण ।

यवानीहिङ्गुसिन्धूत्थं क्षारं सौवर्चलाभया ॥

सुरामाण्डेन पातव्या परिणामे त्रिदोषजे ॥ ६३ ॥

अजवायन, हींग, सधानमक, जवाखार, कालानमक, हरडे, इनको मदिराके संग पीनेसे त्रिदोषसे उपजा परिणामशूल शांत होता है ॥ ६३ ॥

अथ हिंम्वादिगुटी ।

हिङ्गुव्योषवचाजमोदहृष्या पथ्या यवानी शटी जाजीपिप्पलि-

मूलदाडिमवृकीचव्याम्बिकं तिन्तिडी ॥ तस्माच्चांम्लसुवर्चलोऽपि

च यवक्षारं तथा सर्जिका सिन्धूत्थं विडचूर्णकं समकृतं स्याद्वी-

जपूरे रसे ॥ ६४ ॥ कुर्याच्चूर्णगुटीं समक्षफलदाम क्षप्रमाणा-

मिमां कल्को वातविकारिणां प्रददतः शूलार्शसत्प्लीहकान् ॥

कासानाहविबन्धमेहहृदयशूलं निहन्त्याशु वै कर्तव्यं किल

संशयं न भिषजां वृन्दैः सदा धार्यते ॥ ६५ ॥ एष हिंम्वादिको

नाम सर्वशूलार्तिनाशनः ॥ सर्ववातविकारघ्नः सर्वक्षय-

निवारणः ॥ ६६ ॥

हींग, सूठ मिर्च, पीपल, वच, अजमोद, हाउवेर हरडे, अजवायन, कचूर, जीरा, पीपला मूल, अनारदाना, कदमीरीपाठा, चव्य, चीता, आमलकी, निंबू, जवाखार, कालानमक, साजी, सेंधामनक, मनियारीनमक इनको समान भाग ले चूर्ण बना विजौराके रसमें ॥ ६४ ॥ इसचूर्णकी दोला प्रमाण गोली बनावे अथवा इन्होंका कल्क बना देनेसे वातके विकार, शूल, बवासीर, तिल्ली, खाँसी, अफारा, मलका बंधा, प्रमेह और हृदयशूल शीघ्र ही नाशता है इसमें संशय न करे श्रेष्ठ वैद्य इसे धारण करते हैं ॥ ६५ ॥ यह हिंम्वादिनामवाला औषध सम्पूर्ण शूलकी पीड़ाओंको नाश करता है और सब प्रकारके वातविकारोंको नाशता है, सब प्रकारके क्षयरोगोंको निवारण करता है ॥ ६६ ॥

अथ शूलरोगके उपद्रव ।

अतीसारतृषा मूर्च्छा अनाहो गौरवोऽरुचिः ॥ श्वासकासो

वमिर्हिक्का शूलस्योपद्रवा दश ॥ ६७ ॥ शूलं सोपद्रवं तृष्णां

भिषग्दूरे परित्यजेत् ॥ अनुपद्रवे क्रिया प्रोक्ता भिषजां सिद्धि-

मिच्छता ॥ ६८ ॥

अतिसार, तृषा, मूर्च्छा, अफारा, भारीपन, अरुचि, श्वास, खांसी, वमन, हिचकी, ये दश शूलके उपद्रव हैं ॥ ६७ ॥ उपद्रवोंसे युक्त और तृषासे संयुक्त शूलको वैद्य-जन दूरसे त्यागे और उपद्रव रहित शूलमें सिद्धिकी इच्छा करनेवाले वैद्यको चिकित्सा करनी कही है ॥ ६८ ॥

शूलमें पथ्यापथ्य ।

वर्जयेद्विदलं शूली तथा सघनशीतलम् ॥ पिच्छलं च दधि
चैव दिवानिद्रां च वर्जयेत् ॥ ६९ ॥ शालिषष्टिकसिन्धूत्थहि-
डुसौवीरकं तथा ॥ सुरा वा गुडशुण्ठी वा पाने श्रेष्ठा भिष-
ग्वर ॥ ७० ॥ शतपुष्पावास्तुकं च हितं प्रोक्तं प्रशस्यते ॥ ७१ ॥
एणतित्तिरिलावाश्च क्रौञ्चाः शशकसारसाः ॥ एषां मांसानि
शस्तानि कथितानिभिषग्वर ॥ ७२ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारी-
तोत्तरे तृतीयस्थाने शूलचिकित्सानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

शूलरोगवाला पुरुष दालको वर्ज देवे और घना, शीतल और झागोंवाला ऐसा दहीत्याग देवे और दिनमें सोना वर्ज देवे ॥ ६९ ॥ शालीसंज्ञक चावल, सांठी चावल, सैंधानमक, हींग, कांजी इनका सेवना हित है और मदिरा अथवा गुड़, सोंठ इनका पान करना वैद्यजनोंने हित कहा है ॥ ७० ॥ सौंफ और बथुवेका शाक शूलरोगमें हित कहे हैं ॥ ७१ ॥ मृग, तीतर, लावापक्षी, कूंजीपक्षी, चौगड़ा, सारसपक्षी इनका मांस श्रेष्ठ कहा है ॥ ७२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहाय-सूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने शूलचिकित्सानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ८.

अथ पांडुरोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु पुत्र प्रवक्ष्यामि पांडुरोगं महागदम् ॥
पञ्चैव पाण्डुरोगास्ते सम्भवन्तीह मानुषे ॥ १ ॥ वातिकः पित्ति-
कश्चैव श्लेष्मिकः सान्निपातिकः ॥ पञ्चमो रूक्षणः प्रोक्तो वक्ष्ये
चैषां तु सम्भवम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! सुनो पांडुरोगकी चिकित्साको कहते हैं, मनुष्यके पांच प्रकारके पांडुरोग होते हैं ॥ १ ॥ वातसे उपजा १, पित्तसे उपजा २, कफसे उपजा ३, सन्निपातसे उपजा ४, रूक्षणसंज्ञक ५ पांचवा ऐसे ५ हैं इनके उत्पत्तिको कहते हैं ॥ २ ॥

अथ पांडुरोगका निदान ।

दीर्घाध्वन्ये पीडितो वा ज्वरेण रक्तस्रावे पीडितो वा व्रणेन ॥
 चिन्तायासाद्रोधनाद्वा मनुष्यस्यायं पाण्डुर्जायते सेवते यः ॥
 ॥३॥ क्षारं चाम्लं कल्यमैरेयसेवा अव्यायामान्मैथुनातिश्रमेण ॥
 निद्रानाशेनातिनिद्रा दिवापि योगैश्चैतैर्मृत्तिकाभक्षणेन ॥ ४ ॥
 पथि शिथिलशरीरे रोगसंपीडिते वा लवणकटुकषायासेवना-
 म्लेन मृद्धिः ॥ अतिसुरसमजस्रं सेवनातिक्रमेण नयति रुधिरशोषं
 तेन वै पाण्डुरोगम् ॥ ५ ॥

अत्यंत मार्गके चलनेसे अथवा ज्वरसे पीडित होनेसे, रक्तस्रावसे और व्रणसे पीडित होनेसे, चिन्ता होनेसे और परिश्रम होनेसे, मलआदिकके रोकनेसे मनुष्यके यह पांडुरोग हो जाता है ॥ ३ ॥ क्षार, अम्ल अर्थात् खट्टा पदार्थ और प्रभातमें मैरेयसंज्ञक मदिराके सेवन करनेसे, कसरत नहीं करनेसे, मैथुन करनेसे और अत्यंत परिश्रम करनेसे और निद्राके नाश होनेसे, दिनमें अत्यंत सोनेसे इन योगोंकरके और मृत्तिकाके भक्षण करनेसे ॥ ४ ॥ रोग-पीडित शिथिल शरीर होनेपर, मार्ग चलनेसे, नमक, चर्चरा, कसैला, खट्टा, मृत्तिका इनके सेवनेसे और निरंतर मैथुनके सेवनेका अतिक्रम होनेसे रुधिरका शोष हो जाता है उससे पांडुरोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ५ ॥

अथ पांडुरोगका पूर्वरूप ।

तेनाक्षकूटे श्वयथुः शरीरे पाण्डुत्वमायाति च पीतमूत्रः ॥
 निष्ठीवते त्वक् प्रविदीर्यते च संजायते तस्य पुरःसराणि ॥ ६ ॥

उस पांडुरोगसे आंखोंके कोणमें सोजा हो, शरीर पीला हो, मूत्र पीला हो थुकथुकी हो त्वचा फट जावे ये पांडुरोगके पूर्व होने लगते हैं ॥ ६ ॥

अथ वातपांडुका लक्षण ।

तोदः परुषत्वशिरोगुरुत्वं त्वङ् मूत्रनेत्रे च नखे च पैत्यम् ॥
 वातात्मकं तं मनुजस्य विद्धि लिङ्गैरुपेतोऽनिलपाण्डुरोगः ॥ ७ ॥

व्यथा हो, कठोरपना हो, शिर भारी हो, त्वचा, मूत्र, नेत्र, नख ये पीले रहें ये लक्षण हों जिसके उसके वातसे उपजा हुआ पांडुरोग जानना ॥ ७ ॥

अथ पित्तपांडुका लक्षण ।

आमत्वपीतत्वकरो हि लोके विभर्ति शोषं कटुतास्यतां च ॥
 शोफस्तृषा मन्दज्वरश्च मोहः पीतच्छविः पित्तभवो हि पाण्डुः ८

आमपना और शरीरका पीलापन, शोथ, कडुआ मुख रहना, मँदज्वर, तृषा, मोह, शोफ, पीलीछवि रहे ये लक्षण हों वह पित्तसे उपजा पांडुरोग जानना ॥ ८ ॥

अथ कफपांडुका लक्षण ।

तन्द्रालुशोफं कफकासयुक्तमालस्यप्रस्वेदगुरुत्वमेवम् ॥

संजायते तस्य कफात्मकोऽसौ नरस्य पाण्डुत्वभवो विकारः ॥९॥

तंद्रा हो, कफ, खांसी, शोजा ये हों, आलस्य हो, पसीना हो, भारीपन हो उस मनुष्यके कफसे उपजा पांडुरोग जानना ॥ ९ ॥

अथ त्रिदोषजपांडुका लक्षण ।

तन्द्रालस्यं श्वयथुवमथू कासहृष्टासशोषा विष्टाभेदः परुष-

नयने सज्वरो वै क्षुधार्तः॥मोहस्तृष्णाक्लममथ नरस्याशु पश्ये-

त्सुदूरं त्याज्यो वैधैर्निपुणमतिभिः सन्निपातोत्थपाण्डुः ॥१०॥

तंद्रा, आलस्य, शोजा, वमन, खांसी, थुकथुकी, शोथ और मल पतला हो, कठोर नेत्र हों, ज्वर हो, क्षुधाकी पीडा हो, मोह हो, तृषा हो, ग्लानि हो, जिस मनुष्यके ये लक्षण हों वह सन्निपातसे उपजा पांडुरोगवाला मनुष्य उत्तम बुद्धिवाले मनुष्योंको दूरसे ही त्याग देना चाहिये ॥ १० ॥

अथ मट्टी खानेसे हुआ पांडुका लक्षण ।

मृत्तिकाभक्षणेनाथ शृणु पुत्र गदो महान्॥पाण्डुरोगो गरिष्ठो-

ऽपि भवेद्घातुक्षयङ्करः॥११॥ मृद्रक्षणाच्चैव मलं प्रकीर्य्य स्त्रो-

तांसि पूर्य्यन्ति तु मृत्तिकाभिः॥तेनैव नासृक् परिवर्तयन्ति न

तर्पयन्ति वपुषं रसेन॥१२॥ क्षारात्कषायान्मधुरस्य पानात्स

कोपयत्याशु नरस्य मृत्सा॥श्लेष्मप्रकोपान्मधुरान्करोति मृत्सा

न जग्धा हितकारिणी स्यात् ॥ १३ ॥ विकृतिमुपगतास्ते

मारुताद्यास्त्रयस्तु, द्युतिबलमभिहत्वा जीवनाशां निहन्ति

भवति विकलमेवं पाण्डुरोगे शरीरं हरति जठरवह्निर्मृत्तिकाभ-

क्षणेन ॥ १४ ॥

हे पुत्र ! मृत्तिकाके मक्षण करनेसे महान् पांडुरोग होता है उसको सुनो, यह बड़ा क्लिष्टरोग है और धातुओंका क्षय करनेवाला है ॥ ११ ॥ मृत्तिकाके मक्षण करनेसे मल बिखर जाता है और उस मृत्तिकासे सोत भर जाते हैं फिर इसी कारणसे रुधिर नहीं प्रवृत्त होता है

और रससे शरीर पुष्ट नहीं होता है ॥ १२ ॥ खारा, कसैला, मीठा इनका पान करनेसे मनुष्यके भक्षण की हुई मृत्तिका शीघ्र ही कुपित हो जाती है, मधुर पदार्थ सेवनेसे वह मृत्तिका कफको कोप करती है इसवास्ते भक्षण की हुई मृत्तिका हितको करनेवाली नहीं है ॥ १३ ॥ वात आदिक दोष विकारको प्राप्त हुए कांति, वल, जीवनेकी आशा इनको शीघ्र ही नाश देते हैं और मट्टी खानेसे हुआ पांडुरोग जठराग्निका नाश करता है ॥ १४ ॥

अथ लोहचूर्णवटी ।

गोमूत्रे लोहं मतिमान्स्थापयेत्सप्तरात्रकम् ॥

तस्माच्चूर्णं तु सधुना देयं पाण्ड्यामयापहम् ॥ १५ ॥

बुद्धिमान् वैद्य लोहाको सात दिनतक गोमूत्रमें स्थापित करावे फिर उसका चूर्ण बना शह-
दके संग देनेसे पांडुरोगका नाश होता है ॥ १५ ॥

शुठ्यादिमिश्रितलोहचूर्ण ।

त्र्यूषणं त्रिफला सुस्ता विडङ्गं चित्रकं समयम् ॥ १६ ॥ भागमेकं
लोहचूर्णं रसेनेक्षोर्विभावयेत् ॥ सप्ताहं खल्वितं लौहमलमस्मिन्पु-
नर्वरम् ॥ १७ ॥ शीलितं तु सधुना घृतेन वा पाण्डुरोगहृदयामया-
पहम् ॥ अर्शसामपहरं हलीमकं कामलां च किल नाशयत्यहो ॥ १८ ॥

सूठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चीता इनको समान भाग ले
॥ १६ ॥ एकभाग लोहाका चूर्ण इनको ईखके रसमें भावना देवे अथवा इसमें लोहेके
मैलको सात दिनतक खरल कर मिलावे तो अतिश्रेष्ठ है ॥ १७ ॥ इस चूर्णको शहदमें अथवा
घृतमें मिला खानेसे पांडुरोग, हृदयरोग, कामला, बवासीर, हलीमक रोगोंका नाश होता
है ॥ १८ ॥

अथ मंडूकवटी ।

त्र्यूषणं च त्रिफलं सचित्रकं मेघचव्यसुरदारुमाक्षिकम् ॥

अन्धिकं च शिखिभृङ्गराजकं योजयेत्पलिकभागिकानिमान्

॥ १९ ॥ चूर्णिताद्विगुणमेव योजयेद्लोहचूर्णमपि कज्जलप्रभम् ॥

अष्टभागसममूत्रकल्पितं पाचितं पुनरहो बलप्रदम् ॥ २० ॥

सेवयेद्बलमुपक्रमं तथा तत्र संयुतमिहास्ति शोभनम् ॥ नाशयेच्च

कफकामलान्कृमीन्पाण्डुकुष्ठगुदजान्हलीमकम् ॥ २१ ॥

सूठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, चीता, नागरमोथा, चव्य, देवदारु, सोनामाखी, पीपलामूल,

मेथी और भंगरा इनको चार चार तोला प्रमाण लेवे ॥ १९ ॥ और इस चूर्णसे दूना २ भाग कज्जलके समान दारीक लोहेका चूर्ण मिलावे इस सब चूर्णसे आठ ८ भाग गोमूत्रमें इस चूर्णको पकावे फिर पकाया हुआ यह चूर्ण बलको देनेवाला है ॥ २० ॥ पांडुरोगमें बलके अनुसार सेवन किया हुआ यह चूर्ण उत्तम है और कफरोग, कामला, क्रिमिरोग, पांडु, कुष्ठ, गुदाके रोग, हलीमक इनको नाशता है ॥ २१ ॥

अथ वज्रमंडूकवटक ।

धुनर्नवाव्योपत्रिवृत्सुराह्वयं निशाह्वयं चव्यफलत्रयं तथा॥घनां
यवां तिक्तकरोहिणीं समां द्विभागिकं लोहरजो विमिश्रयेत्
॥ २२ ॥ गवां पयो वा द्विगुणं वियोज्यं दाव्या प्रलेपं प्रणि-
धाय धीमान्॥ छायाविशुष्का गुटिका विधेया क्षौद्रेण सूत्रेण
गवां च भक्षयेत् ॥ २३ ॥ ज्ञात्वा बलं रोगबलं नरस्य पाण्डु-
मये कामलसर्वमेहे ॥ गुल्मोदराजीर्णविषूचिकानां शोफाति-
सारग्रहणीविबन्धान् ॥ शूलक्रिमीनर्शविकारहेतोर्वज्रोऽय-
मस्तीति विचिन्तनीयम् ॥ २४ ॥

सांठी, सूठ, मिर्च, पीपल, निशोथ, देवदार, हलदी, चव्य, त्रिफला, नागरमोथा, इन्द्रजव, कुटकी, हरीतकी इनको समान भाग ले और दो भाग लोहेका चूर्ण मिला ॥ २२ ॥ फिर इस सब चूर्णसे दूने गौके दूधमें इस चूर्णको पकावे जत्र चलानेकी कडछीमें चपकने लग जावे तब उतार छायामें सुखा गोली बना लेवे फिर शहदेके संग अथवा गोमूत्रके संग भक्षण करे ॥ २३ ॥ मनुष्यके बलको और रोगके बलको जानके पांडुरोगमें, कामलामें, सम्पूर्ण प्रमेहरोगोंमें इसको भक्षण करे और गुल्मोदर, अजीर्ण, विषूचिका, शोजा, अतीसार, ग्रहणी, मलका बन्ध, शूल, क्रिमिरोग और बवासीरके विकारके लिये यह वज्र है इसमें चिन्ता न करनी चाहिये ॥ २४ ॥

अथ दूसरा वज्रमंडूकवटक ।

पञ्चकोलककटुत्रिकं घना देवदारुकृमिशत्रुकोलकम्॥एष भाग-
सहितो वियोजितो मिश्रयेत्तदनु चायसं रजः ॥ २५ ॥ तत्र
चाष्टगुणमूत्रमध्यतः पाचयेद्भवति येनलेपिका॥कारयेद्दरमा-
त्रया पुनश्छाययापि पिषितञ्च शोषणम् ॥ २६ ॥ कारयेत्सु-
रभिमंथितेन च पानकञ्च शमयेत्सकामलम् ॥ पाण्डुमर्शम-
तिसारमन्दभुक् शोषमेहगुदजान् क्रिमीनपि ॥ २७ ॥

(पंचकोल) पीपल १ पीपलामूल २ चव्य ३ चीता ४ सूठ ५, कटुत्रिक अर्थात् सूठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, देवदार, वायविडंग, कंकोल इनको समानभाग ले मिलावे, पीछे इनके समान लोहेका चूर्ण मिलावे ॥ २५ ॥ फिर सब चूर्णसे आठगुने गोमूत्रमें इस चूर्णको पकावे जब पकजावे कड़छीमें चपके तब उतार बेरके समान गुटी बना छायामें सुखा फिर पीस लेवे ॥ २६ ॥ पीछे गायके मथे तक्रमें इसका पना बना सेवन करनेसे कामला, पांडुरोग, जवासीर, अतीसार, मन्दाग्नि, शोष, प्रमेह, गुदाके रोग, कृमि इनका नाश होता है ॥ २७ ॥

अथ अमृतवटक ।

धात्रीफलानां रसप्रस्थमेकं प्रस्थं तथा चेशुरसं विदध्यात् ॥
प्रस्थं तु कूष्माण्डरसप्रदिष्टमार्करसं प्रस्थविमिश्रमेकम् ॥ २८ ॥
एकीकृतं मन्दहुताशनेन पाच्यं भवेद्व्यापदशेषमेति ॥ विमि-
श्रयेदौषधसंघमेतत्पलैकमात्रं विपचेच्च पश्चात् ॥ २९ ॥ भृङ्गी
सुराह्णं शतपुष्पधान्यं सुगन्धशुण्ठी मधुकं विशाला ॥ सपिप्पली-
कं सकटुत्रयं च विडङ्गमुस्ताहपुषादलानि ॥ ३० ॥ दीर्घाहरिद्राक-
टुरोहिणीनां दुरालभापौष्करवत्सकानाम् ॥ कुष्ठाजमोदासुरसा-
दलानि चूर्णं त्वमीषां विनियोजनीयम् ॥ ३१ ॥ गुडं पुराणं
द्विगुणं तथा गो-घृतेन रम्यं वटकं विदध्यात् ॥ तद्वक्षणं
कामलमर्शसं च पाण्डुं ज्वरं घोरतरं निहन्ति ॥ ३२ ॥ तच्छो-
फशोषग्रहणीविकारान्वातातिसारक्षयकासगुल्मान् ॥ ३३ ॥

आंवलोंका रस ६४ तोले और ईखका रस ६४ तोले, कोहलाका रस ६४ तोले, आकका रस ६४ तोले ॥ २८ ॥ इनको एक जगह मिला मंद २ अग्निसे पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब इन आगे कहीहुई औषधोंको चार २ तोले प्रमाण मिलाके फिर पकावे ॥ २९ ॥ भंगरा, देवदार, सौंफ, धनियां, रास्ना, सूठ, मुलहठी, इंद्रायण, पीपली, कटुत्रय अर्थात् सूठ, मिर्च, पीपल, वायविडंग, नागरमोथा, हाऊवेर ॥ ३० ॥ दारुहलदी, कुटकी, हरीतकी, जवासा, पोहकरमूल, कूडा इनके पत्ते इन सबोंको पहले कहे हुए प्रमाणके अनुसार ले चूर्ण बना मिला देवे ॥ ३१ ॥ इस चूर्णसे दूना पुराणा गुड मिलावे, फिर घृतमें गोली बांधलेवे

१ “सुगन्धा गन्धनाकुली” इत्यमरः । गन्धनाकुली रास्नाभेदा नाई । कन्द विशेष अथवा “इष्टगन्धः सुगन्धिः स्यादित्यमरः” । सुगन्धवर्ग-स्याहजीरा, कुंदुरु, गन्धतृण, नीलोत्पल, खश, चन्दन, गठिवन, सुख, सहिजन, गंधक, चना, भूतृण, कचूर, रुद्रजटा, वन्वककौटिकी, खेखसा, मालती, दूब, वच कुलीजन, रास्ना, कुष्ठाशारिवा ।

इसके भक्षण करनेसे कामला, ववासीर पांडुरोग, अतिदारुणज्वर ॥ ३२ ॥ शोक, शोष, संग्रहणी इन रोगोंका नाश होता है और चातुरोग, अतीसार, क्षयी, खांसी, गुल्मरोग इनको नाशता है ॥ ३३ ॥

अथ पांडुरोगका पथ्यापथ्य ।

गोधूमशालियवपष्टिकमुद्गकानां श्यामाढकीघृतयुतं पयसा सत-
क्रम् ॥ गाण्डीववास्तुकमथो शतपुष्पवर्त्तापथ्यं हितं निगदितं
मनुजस्य पाण्डौ ॥ ३४ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोजने च
प्रशस्यते ॥ ३५ ॥ तिलं च रूक्षं कटुकं च तीव्रं दाहात्मकं
काञ्जिकभेदकं च ॥ सुराम्लसौवीरकबीजपूरास्तैलानि वर्ज्यानि
च पाण्डुरोगे ॥ ३६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने
पाण्डुरोगचिकित्सा नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

गेहूं, शालीसंज्ञक चावल, जव, सांठी चावल, मूंग, शामक, अरहर इन अन्नोको घृतके संग अथवा दूधके संग अथवा तक्रके संग भोजन करना हित है और अर्जुनवृक्षके पत्ते, वथुवा, शोफा, वार्त्ताकु इनका शाक पांडुरोगवाले मनुष्यको हित है, पथ्य है ॥ ३४ ॥ जांग-लदेशके जीवोंका मांस भोजनमें हित है ॥ ३५ ॥ पांडुरोगमें कडुए, रुखे, चर्चरे दाह करनेवाले ऐसे कांजीके भेद, मदिरा, खटाई, कांजी, विजौरा, तेल इन पदार्थोंको वर्ज देवे ॥ ३६ ॥ इति वेरीनिवासिविषयसहायसूनुवैद्यविदत्तशास्त्रयनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने पांडुरोगचिकित्सानामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ९.

अथ क्षयरोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ शृणु वरभिषजां त्वं व्याधिभीमं नराणां
भवति विहतचेष्टो वातलप्राणिनां वै ॥ चिरनिचयकरोऽयं
प्राकृतैः कर्मपाकैरिह परिभवकारी मानुषस्य क्षयोऽयम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे वैद्योंमें उत्तम! जो मनुष्योंको घोर व्याधि होता है उसको सुनो, वातके स्वभाववाले प्राणियोंके यह रोग होता है, चेष्टाको हत कर देता है और पूर्वजन्मके कर्मविपाकसे नरकको करनेवाला है और इस संसारमें दुःखको करनेवाला यह क्षयरोग होता है ॥ १ ॥

अथ क्षयरोगमें पापरूपी कारण ।

देवानां प्रकरोति भङ्गमथवा भ्रूणस्य सन्तापनं गोपृथ्वीधर-
विप्रबालहननं चा रामविध्वंसनम् ॥ सोऽयं स्थानविनाशनं च
कुरुते स्त्रीणां वधं यो नरस्तस्यैतैर्गुरुकर्मभिः क्षयगदो देहार्थहारी
महान् ॥ २ ॥ देवानां दहतो धनं च दहतो भ्रणप्रपातेऽपि च
देवत्वं हरतो विषं च ददतश्चरामकं निघ्नतः ॥ तेनासौ नियमेन
सम्भवति वै नृणां च तीव्रा रुजा धातूनां क्षयकारिणी च मनुज-
स्यात्मापहा दारुणा ॥ ३ ॥ क्षयो दशविधश्चैव विज्ञातव्यो
भिषग्वरैः ॥ ४ ॥

जो पुरुष देवताओंकी मूर्तिको तोड़देता है और गर्भगत जीवको सन्ताप देता है, गौ, राजा, ब्राह्मण, बालक इनकी हत्या करता है और बगीचाका विध्वंस करता है, किसीके स्थानका विनाश करता है और जो स्त्रियोंका वध करता है उसके इन कर्मोंसे देहको नाश करनेवाला महान् क्षयीरोग होता है ॥ २ ॥ जो पुरुष देवताओंको दग्ध करे, किसीके धनको दग्ध करे और गर्भको गिरावे, देवताके द्रव्यको हरे, विष देवे, बाग बगीचेका नाश करे इन विपरीतकर्मोंसे मनुष्यके अतितीव्र पीडा होती है, धातुओंको क्षय करनेवाली और आत्माको नाश करनेवाली दारुण क्षयव्याधि होजाती है ॥ ३ ॥ वैद्यजनोंको दशप्रकारका क्षयरोग जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अथ क्षयरोगके हेतु ।

श्रमाद्वा भारद्वा विषमशयनैर्दीर्घचलनैरजीण भोज्याद्वा सुरत-
रतिसेवापरतया ॥ ज्वरेणातिक्रान्ताद्विषमशयनाच्छीतलतरैः
क्षयं याति श्लेष्मा पवनमथ पित्तञ्च तनुषु ॥ ५ ॥ रोगाक्रान्ता-
द्विषमशयनात्तस्य मन्दज्वराद्वा श्लेष्मापित्तञ्च मरुदथवा याति
देहक्षयं वा ॥

श्रम, भार, विषमशयन, दीर्घमार्गमें गमन, अजीर्णमें भोजन, मैथुनमें अतिरमण करनेसे और ज्वरसे आक्रान्त होनेसे, विषमशयन, अतिशीतल पदार्थका सेवन करनेसे कफ-कोपको प्राप्त होता है, फिर शरीरमें वायुको और पित्तको भी कुपित कर देता

१ विषमशयन दोवार है इससे एक जगह कालपरत्व विषमशयन अर्थात् दिनकी सोना रातकी जागना समझे और दूसरी जगह क्रमपरत्वसे अर्थात् औंधासोना आदि समझे ।

हैं ॥ ५ ॥ रोगसे आक्रांत होनेसे अथवा विप्रमशयन करनेमें अथवा मन्द ज्वरसे यह क्षयरोग होजाता है और कफसे, पित्तसे अथवा वायुसे इन तीन प्रकारोंसे देहमें क्षयरोग होता है ॥

अथ क्षयरोगके प्रकार ।

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्रगतस्तथा ॥ एवं दशविधा
नृणां क्षया देहे भवन्ति वै ॥६॥ पुनश्चैषां लक्षणानि सावधान-
तया शृणु ॥ ७ ॥

और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शीर्य इन सात धातुओंमें होता है, ऐसे मनुष्यके शरीरमें दश प्रकारके क्षयरोग कहे हैं ॥ ६ ॥ अब फिर भी इनके लक्षणोंको कहते हैं सुनो ॥ ७ ॥

अथ वातक्षयका निदान ।

अतिस्वेदातिघर्सेण चिन्ताशोषभयादिना ॥

वाताद्यः सेवितैश्चापि जायते मारुतक्षयः ॥ ८ ॥

अत्यंत पसीना, अति घाम, चिन्ता, शोष, भय इत्यादिकोंसे और वायुको करनेवाले पदार्थोंके सेवनेसे वायुका क्षय होजाता है ॥ ८ ॥

अथ वातक्षयका लक्षण ।

तेन तन्द्राङ्गदाहश्च पिपासारुचिवपथ्यः ॥

तमः क्लमो भ्रमश्चैव भवेच्च मारुतक्षये ॥ ९ ॥

उससे तन्द्रा, अंगमें दाह, तृष्णा, अरुचि, कंपना, अंधरी, ग्लानि, भ्रम ये उपद्रव वातके क्षयरोगमें होते हैं ॥ ९ ॥

वातक्षयमें सेव्यपदार्थ ।

तस्मादनूपानि सेव्यानि रसानि पललानि च ॥

रसोनादिककल्कश्च सेवयेद्वातनाशने ॥ १० ॥

इसलिये वातको नाश करनेवाले रस और अनूपदेशके मांसोंका सेवन करे और लहसुनआदिक औषधोंके कल्कके सेवनेसे भी वातका नाश होता है ॥ १० ॥

अथ पित्तक्षयके हेतु ।

पित्तक्षयेऽग्निमान्द्यं च जायतेऽरुचिजाड्यता ॥

कासहृल्लासशोफश्च जायते मन्दचेष्टता ॥ ११ ॥

पित्तके क्षयरोगमें मंदग्न, अरुचि, जड़ता ये रोग होते हैं और खांसी, श्वास, थुकथुकी, शोफ, मन्दचेष्टा ये उपद्रव होते हैं ॥ ११ ॥

अथ पित्तक्षयकी चिकित्सा ।

स्वेदाभ्यङ्गान्नपानानि दीपनानि प्रयोजयेत् ॥

जाङ्गलानि रसान्नानि सेवयेत्पित्तकृत्क्षये ॥ १२ ॥

स्वेद, मालिस, दीपन अर्थात् जठराग्निको दीप्त करनेवाले अन्नपान, इनको प्रयुक्त करे और पित्तसे उपजे क्षयरोगमें जांगल देशके जीवोंके मांसका रस हित है ॥ १२ ॥

अथ कफक्षयका कारण ।

व्यायामे च व्यवाये च रुक्षान्नाहारसेवनैः ॥

सन्तापक्रोधनश्चव जायते कफसम्भवः ॥ १३ ॥

कसरत करनेसे, मैथुन, रुखा अन्नका भोजन, क्रोध, इनके सेवनसे कफका क्षयरोग बढ़ता है ॥ १३ ॥

अथ कफक्षयका लक्षण ।

तन दाहोऽथवा पाण्डुः शोफो निःश्वसन भ्रमः ॥

विनिद्रता क्षुत्तषा च स्त्रीसङ्गेनापि नन्दति ॥ १४ ॥

उससे दाह अथवा पाण्डुरोग, शोजा, श्वासरोग, भ्रम, निद्राका नाश, क्षुधा, स्त्रीसंगसे प्रसन्नता ये लक्षण होते हैं ॥ १४ ॥

अथ कफक्षयकी चिकित्सा ।

तस्य शीतान्नपानानि कन्दशाकादिकै रसैः ॥

अनूपदधिदुग्धैर्वा सेवनं च समीहितम् ॥ १५ ॥

उसके शीतल अन्नपान, कंदशाकआदिकोंके रस, अनूपदेशके जीवोंका मांस, दही, दूध, इनका सेवन हित है ॥ १५ ॥

अथ त्रिदोषजक्षयकी चिकित्सा ।

त्रिभिर्दोषैः क्षयं प्राप्तैस्तदा हि मरणं ध्रुवम् ॥

साधारणा क्रिया तस्य प्रयोक्तव्या महामते ॥ १६ ॥

जब त्रिदोषसे उपजा हुआ क्षयरोग होता है तब निश्चय मरण होजाता है । हे हारीत महामते ! उसकी साधारण चिकित्सा कही है ॥ १६ ॥

अथ धातु-रस-आदि सात ७ प्रकारके क्षयरोगके लक्षण ।

अथ धातुक्षयं वक्ष्ये हारीत शृणु साम्प्रतम् ॥

रसरक्तमेदमांसानां प्रत्येकं क्षयलक्षणम् ॥ १७ ॥

हे हारीत ! अब धातुके क्षयरोगको कहते हैं सुन । रस, रक्त, मांस, मेद, इन सबके एक २ के लक्षणको कहते हैं ॥ १७ ॥

अथ रसक्षयका लक्षण ।

रसक्षयेऽतिशोषश्च मन्दाग्नित्वं च वेपथुः ॥ शिरोरुग्मन्दचेष्टत्वं
जायते च क्लमभ्रमौ ॥ १८ ॥ रक्तक्षये क्षयः पाण्डुर्मन्दचेष्टो
भवेन्नरः ॥ श्वासो निष्ठीवनं शोषो मन्दाग्नित्वं च जायते ॥ १९ ॥

रसके क्षय होनेमें अत्यंत शोष हो, मंद अग्नि हो, कंपना हो, शिरमें पीडा हो, मंदचेष्टा हो, ग्लानि हो, भ्रम हो ॥ १८ ॥ रक्तक्षय होनेमें क्षयरोग होवे तो पाण्डुरोग हो जावे, मंद-चेष्टा हो जावे, श्वास हो, थुकथुकी हो, शोष हो, मन्दाग्नि हो ॥ १९ ॥

मांसक्षयका लक्षण ।

मांसक्षयेऽतिकृशता चेष्टनं चाङ्गभङ्गता ॥

निद्रानाशोऽतिनिद्रास्य विसंज्ञो लघुविक्रमः ॥ २० ॥

मांसके क्षय होनेमें दुबलापन हो, देह चमकने लगे, देहमें दर्द हो, निद्राका नाश हो अथवा इसको अत्यंत निद्रा आवे और संज्ञा नहीं रहे, अल्पबल रहे ॥ २० ॥

अथ मेदःक्षयका लक्षण ।

मेदःक्षये मन्दबलो विसंज्ञता पारुष्यमङ्गस्य च भङ्गता स्यात् ॥

श्वासातिकासारुचिताग्निमान्द्यंगतिर्विशोषश्च तथैव जायते ॥ २१ ॥

मेदके क्षय होनेमें मंदबल रहे, संज्ञा नहीं रहे, अंगभंग हो, कठोरता रहे और श्वास, अत्यन्त खांसी, अरुचि, मन्दाग्नि, गमन और शरीरमें शोष हो ये उपद्रव होते हैं ॥ २१ ॥

अथ अस्थिक्षयका लक्षण ।

अस्थिक्षये स्यादतिमन्दचेष्टा वीर्यस्य मान्द्यं किल मेदसः

क्षयः ॥ विसंज्ञता कम्पनता च कार्श्यता तथाङ्गभङ्गो वमनं

कठोरता ॥ २२ ॥ दोषस्य शैथिल्यमथापि शोफिता विकम्पनं

शोषरुजश्च जायते ॥ लिङ्गैरथैभिः परिवेदमजाक्षयोऽधिका

कम्पनतैव चात्र ॥ २३ ॥

अस्थिक्षयमें अतिमन्द चेष्टा हो,वीर्यमन्द हो जावे,मुटापा नाश हो जावे,संज्ञा नहीं रहे,माडा-
पन हो, कंपना रहे, अंगभंग हो, वमन हो, कठोरता हो ॥ २२ ॥ और शोष हो वातआदिक
दोषोंकी शिथिलता हो,शोजा हो,कंपना हो,रूक्षता हो और मज्जाके क्षयमें भी यही अस्थिक्ष-
यके लक्षण होते हैं, केवल इसमें कंपनता अधिक होती है ॥ २३ ॥

अथ वीर्यक्षयका लक्षण ।

भ्रमः कुमः स्यादतिमन्दचेष्टः शोफो निशाजागरणं च तन्द्रा ॥
मन्दज्वरः शोषसमो मनुष्ये शुक्रक्षये चाङ्गविचेष्टितानि ॥ २४ ॥
रौक्ष्यं रमणीद्वेषः रोषः शोफो भ्रमिश्च कम्पनता ॥ विरूपता
वैकल्यं सन्धिषु शोषस्तथा याति ॥ २५ ॥

भ्रम हो,ग्लानि हो, मन्दचेष्टा हो,शोजा हो, रात्रिमें निद्रा नहीं आवे,तन्द्रा रहे, मन्दज्वर हो,
शोष हो ये लक्षण हैं,और मनुष्यके वीर्यक्षय होनेमें अंग वेचैनीसे हिला करें ॥ २४ ॥
रूखापन, स्त्रियोंसे द्वेष, क्रोध, सूजन, भ्रम और कंपकपी, कुरूपता, विकलता और सन्धियोंमें
सूजन वीर्यके क्षयमें होती है ॥ २५ ॥

अथ रसरक्तवृद्धिकारक औषध ।

इदानीं संप्रवक्ष्यामि भेषजानि यथाक्रमम् ॥ स्नेहनं रूक्षणं चैव
तथा विम्लापनं हितम् ॥ २६ ॥ जाङ्गलानि च मांसानि भोज-
नानि च सेवयेत् ॥ गुडूची शृङ्गवेरञ्च यवानीकथितं जलम्
॥ २७ ॥ मरिचः कथितं दुग्धं पाने रात्रौ प्रशस्यते ॥ तेन
रसानां वृद्धिः स्याच्छीघ्रं तस्माद्विमुच्यते ॥ २८ ॥ रसानां
वृद्धिकरणं गोधूमयवशालिनाम् ॥ कथितानि भिषक्छेष्टैर्जाङ्ग-
लानि विशेषतः ॥ २९ ॥

अब यथाक्रमसे औषधोंको कहते हैं कि स्नेहन, रूक्षण, विम्लापन ये कर्म करनेहित हैं ॥ २६ ॥
और जांगलदेशके जीवोंका मांस भोजनमें हित है और गिलोय,अदरक,अजवायन इनके काथका
जल हित है ॥ २७ ॥ मिरचोंमें पकाया हुआ दूध रात्रिमें पीना हित है इससे रसोंकी वृद्धि होती है
और शीघ्रही क्षयरोगसे छूट जाते हैं ॥ २८ ॥ गेहूँ, जव, शालिसंज्ञक चावल, जांगलदेशके
जीवोंका मांस ये रसके बढ़ानेवाले और वैद्योंकरके श्रेष्ठ कहे गये हैं ॥ २९ ॥

अथ रक्तवृद्धिकारक औषध ।

घृतदुग्धसिताक्षौद्रमरीचानि च पिप्पली ॥

पानं शस्तं मनुष्याणां रक्तवृद्धिकरं परम् ॥ ३० ॥

घृत, दूध, मिश्री, राहद, मिर्च और पीपल इनका पीना हित है । मनुष्योंके रक्तकी वृद्धि करनेवाला है ॥ ३० ॥

अथ मेदोवृद्धिकारक औषध ।

अनूपानि च धान्यानि लघुनामानि कल्पयेत् ॥ कल्यांश्च घृत-
दुग्धादीन्सेवयेन्मधुराणि च ॥ ३१ ॥ रसाश्च जाङ्गलानि स्युः
सेवनार्थे भिषग्वर ॥ ३२ ॥ सितोपलादिकं चूर्णमजाक्षीरं सको-
लकम् ॥ हितं पानं क्षये चैव कल्यमप्रातराशनम् ॥ ३३ ॥

अनूपदेशके जीवोंका मांस, हलके अन्न, घृत, दूध, कल्यसंज्ञक मदिरा, मधुरपदार्थ इनका सेवन हित है ॥ ३१ ॥ और हे वेद्योंमें श्रेष्ठ ! जांगलदेशके जीवोंका रस सेवना हित है ॥ ३२ ॥ और सितोपला आदि चूर्ण और पीपलीसे संयुक्त किया हुआ बकरीका दूध पीना हित है । सायंकालमें भोजनके समय और कल्य कहिये प्रभातकालमें करे ॥ ३३ ॥

अथ अस्थिवृद्धिकारक औषध ।

पक्वानि घृतशस्तानि क्षीराणि विविधानि च ॥ चन्दनानि च
द्राक्षादिचूर्णानि च भिषग्वर ॥ ३४ ॥ जांगलानि च सर्वाणि
सेवनीयानि पुत्रक ॥ अन्नानि च मधुराणि सर्वाणि च प्रयो-
जयेत् ॥ ३५ ॥

पके हुए घृत और अनेकप्रकारके दूध ये श्रेष्ठ हैं और हे उत्तम वैद्य ! चन्दन और द्राक्षादिक चूर्ण हित है ॥ ३४ ॥ और हे पुत्र ! सब प्रकारके जांगलदेशके जीवोंके मांस सेवनेमें हित हैं । सब प्रकारके मीठे अन्न सेवनेमें हित हैं ॥ ३५ ॥

अथ शुक्रवृद्धिकारक औषध ।

शुक्रक्षये प्रपाकानि रसानि च विशेषतः ॥ नवनीतं तथा क्षीरं
मधुराणि च सेवयेत् ॥ ३६ ॥ कर्कटीमूलपयसा विदारीकन्द-
शाल्मली ॥ सिताढ्यपानं च हितं शस्यन्ते मधुराणि च ॥ ३७ ॥
अग्रे चूर्णानि वक्ष्यन्ते शुक्रवृद्धिकराण्यथ ॥ ३८ ॥

१ कल्यमप्रातराशनं कल्यं मधु अप्रातराशने प्राःकालातिरिक्तसमये अशनं भोजनमित्यर्थः । आङ्पूर्वकमशनम् आशनम् ।

शुक्रके क्षयमें अच्छीतरह पकाये हुए रस देने हित हैं और नौनीवृत, दूध, मधुर पदार्थ, इनका सेवन करे ॥ ३६ ॥ काकडीकी जड़ विदारीकंद, शालवन, इनको दूधके संग मिश्री मिला पान करना हित है और मीठे पदार्थ हित हैं ॥ ३७ ॥ अब आगे दीर्घकी वृद्धि करनेवाले चूर्णोंको कहेंगे ॥ ३८ ॥

अथ बलादि चूर्ण ।

बला विदारी लघुपञ्चमूली पञ्चव क्षीरद्रुमत्वक् प्रयोज्या ॥
 पुनर्नवामेघतुगायुतं स्यात्सजीवनीयैर्मधुकैः समांशैः ॥ ३९ ॥
 अक्षप्रमाणानि समानि तानि सर्वाणि चैतानि विचूर्णयित्वा ॥
 विमिश्रयेत्तत्र कणाशतानि यवान्नगोधूमयवांश्च पिष्ट्वा ॥ ४० ॥
 तुगासमांशं सिततण्डुलानां सेयं सुभृङ्गारकमिश्रितं तु ॥ प्राकर्ण-
 काद्धेन वियोजनीयं सर्वांशकेनापि सिता प्रयोज्या ॥ ४१ ॥
 विभावयेच्चांमलकीरसेन वारत्रयं गोपयसा विभाव्य ॥ ततोऽस्य
 सर्वैश्च सशर्करैर्वा घृतेन चैवं पुनरेव भाव्यम् ॥ ४२ ॥ तं भक्षये-
 त्क्षौद्रयुतं पलाद्धं जीर्णं च भोज्यं कटुकाम्लवर्जम् ॥ क्षीरं घृतं
 वा सितशर्करां वा यवान्नगोधूमकशालिभक्ष्यान् ॥ ४३ ॥
 ज्ञात्वाग्निपाकं जठरे नरस्य देयो विधिज्ञैः क्षयरोगशान्त्यै ॥
 पथ्यक्षये श्रान्तचिरामितापसंपीडितानां च तथा शिरोऽर्तौ ॥ ४४ ॥
 पित्तातुराणां रुधिरक्षयाणां श्रमाध्वसंपीडितकामला-
 नाम् ॥ श्वासातुराणां मधुमेहिनां च क्षीणेन्द्रियाणां बलकारि
 शस्तम् ॥ ४५ ॥ गर्भो गृहीतश्च ययास्त्रिया च तस्याः प्रशस्तं
 तु बलादिचूर्णम् ॥ ४६ ॥ इति बलादिचूर्णम् ॥

खैरंहटी, विदारीकंद, लघुपंचमूल अर्थात् शालवन, पिठवन, कटेहली, बडी कटेहली, गोखरू पीपल, वड, गूलर, पिलखन, आंव इन पांच वृक्षोंकी छाल प्रयुक्त करनी चाहिये और सूठ, नागरमोथा, वंशलोचन और जीवनीआदिक गण औषध मुलहटी इन सबोंको समान भाग ॥ ३९ ॥ एक २ तोला प्रमाण ले फिर इन सबोंका चूर्ण बना उसमें सौ १०० पीपली मिला और जव, गेहूं ॥ ४० ॥ उत्तम सफेद चावल इनको वंशलोचनके समान

भाग ले पीसके मिलादेवे और पीछे कहींहुई प्रकरणकी सब औषधोंसे आधाभाग भंगरा और इन सबोंके समान मिश्री मिला ॥ ४१ ॥ फिर इस चूर्णको आंवलेके रसमें भावना दे पीछे तीनचार गौंके दूधमें भावना दे फिर इस सबचूर्णके समान खांड मिला फिर घृतमें भावना दे ॥ ४२ ॥ २ तोला प्रमाण उस चूर्णको शहदके संग खावे और यह चूर्ण जरजावे तब भोजन करे और चर्चरा तथा खट्टा भोजन नहीं करे और दूध, घृत, सफेद खांड, जव, गेहूँ, शालिसंज्ञकचावल इनका भोजन करे ॥ ४३ ॥ मनुष्यके जठराग्निपाकको जानके विधिके जाननेवाले वैद्योंको क्षयरोगकी शांतिके वास्ते देना कहा है और मार्गमें क्षीणहुआ, हाराहुआ, ब्रह्मकालसे संतापवाला इनोंसे पीड़ित हुए पुरुषोंको और शिरकी पीड़ामें ॥ ४४ ॥ और पित्तसे आतुर, रुधिरक्षयवाले, श्रम, मार्ग इनसे पीड़ित, कामलारोगवाले, श्वासरोगवाले, मधुमेहवाले, क्षीणइंद्रियवाले इन पुरुषोंको यह चूर्ण श्रेष्ठ कहा है ॥ ४५ ॥ और जिस स्त्रीके गर्भ ठहर रहा हो उसको यह बलादिचूर्ण श्रेष्ठ कहा है ॥ ४६ ॥

अथ च्यवनप्राशननामक अवलेह ।

बिल्वाग्निमन्थस्योनाकाः काश्मरी पाटली तथा ॥ शालिपर्णी
पृश्निपर्णी श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥४७॥ भृङ्गी शीता चामलकी
जयन्ती पुष्कराह्वयम् ॥ द्राक्षाभयामृता मेदा चन्दनागुरुपद्म-
कम् ॥ ४८ ॥ बलाह्वयास्तु कर्णे द्वे जीवकर्पभकाबुभौ ॥
काकोली क्षीरकाकोली विदार्याः कन्दमांसकम् ॥ ४९ ॥
सर्वेषां पलिका मात्रा योजयेद्विषजां वरः ॥ धात्रीफलं पञ्चशतं
सुपुष्करसंयुतम् ॥ ५० ॥ जलद्रोणे विपक्षव्यं चतुर्भागे च
शोषितम् ॥ तथा निर्वाप्य मतिमान्कलकानि समुद्धरेत् ॥ ५१ ॥
तत्काथं कल्कयेत्तावद्यावद्वीप्रलेपकः ॥ पुनस्तैलेन वाज्येन
घृत्वा चामलकीफलान् ॥ ५२ ॥ पाचिताञ्जूर्णितान्सर्वान्समश-
कुर्या युतान् ॥ चतुष्पलातुगाक्षीरैर्योजयेद्विषजां वरः ॥ ५३ ॥
पिप्पलीनां सहस्रैकं त्वगेलापत्रकं तथा ॥ एषां द्विपलिकां मात्रां
विदध्यात्तत्रसत्तमः ॥ ५४ ॥ सव प्राक्कथिते लेहे योजयेच्च विचू-
र्णितम् ॥ आदरेण समं लिह्यान्नराणां च रसायनम् ॥ ५५ ॥
श्वासकासक्षयपाण्डुकामलानां विशोषणम् ॥ क्षीणक्षतानां
चालानां वृद्धानां देहलक्षणम् ॥ ५६ ॥ स्वरभङ्गपिपासानां हृद्रोगे

पित्तशोणितम्॥शुक्रदोषं शिरोरोगं पीनसं चापकर्षति ॥६७॥
 जीर्णज्वरश्च मन्दाग्निं कुष्ठं दुष्टं भगन्दरम्॥मेहं कृच्छ्राश्मरीं
 हन्ति तथा रोचनवारणम्॥६८॥हृद्रोगशूलमानाहं नाशयत्य-
 विसंशयम्॥वन्ध्यानां पुत्रजननं वृद्धानामल्परेतसाम् ॥६९॥
 षण्ढोऽपि जायते चैव सदा ऋतुकरः परः॥मेधा स्मृती तथा
 तेजो वर्द्धयत्याशु निश्चितम् ॥६०॥ सौख्यसौभाग्यदर्शी च
 वृद्धोऽपि तरुणायते॥क्षयरोगविनाशाय कथितं चात्रिणा महत्
 ॥६१॥ च्यवनप्राशनं नाम कृष्णात्रेयविभाषितम् ॥६२॥इति
 च्यवनप्राशननामावलेहः ॥

बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, खंबारी, शालवन, पिठवन, गोखरू, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली ॥ ४७ ॥ भांग, गंगेरन, भूमि आंवला, जयंती अर्थात् अरणीभेद, बड़ीअरणी, पोहकरमूल, दाख, हरडै, गिलोय, मेदा, चंदन, अगर, पद्माक ॥ ४८ ॥ खरैंटी, दोभाग दालचीनी, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षोरकाकोली, विदारीकंद ॥ ४९ ॥ इन सबोंको वैद्यजन चार २ तोला प्रमाण लेवे और पकेहुए रसके आंवले पांचसौ लेके ॥ ५० ॥ पीछे इन सब औषधोंको एकहजार चौसठ १०६४ तोले जलमें पकावे फिर चतुर्थांश बाकी रहे तब बुद्धिमान् पुरुष उन औषधोंको निकाल आँवलोंकी गुठली निकालके उनकी कली करलेवे और पीसके पीठीसी करले ॥ ५१ ॥ फिर पूर्वोक्त काथ डालके पकावे फिर कडली चपकने लगे तब उतारे और तेलमें अथवा घृतमें तिन आंवलोंकी पीठीको सेंकले ॥ ५२ ॥ पीछे पकाये हुए तिस चूर्णमें बराबरकी खांड मिलावे और १६ सोलह तोले वंशलोचन मिलावे ॥ ५३ ॥ उत्तम वैद्य इसी कहेहुए अवलेहमें हजार पीपली, दालचीनी ८ तोले, तेजपात ८ तोले, इनका चूर्ण मिलादेवे ॥ ५४ ॥ पीछे यह लेह मनुष्योंको आदरसे चाटना चाहिये । यह मनुष्योंको रसायन कहा है ॥ ५५ ॥ और श्वास, खांसी, पांडुरोग, कामला, इन रोगोंको नाशता है और क्षीणरोगसे क्षत हुए बालक, वृद्धजन, इनके देहकी रक्षा करनेवाला है ॥ ५६ ॥ स्वरभंग, पिपासा, हृदयरोग, पित्तरक्त, शुक्रदोष, शिरोरोग, पीनस इन रोगोंको दूर करता है ॥ ५७ ॥ जीर्णज्वर, मन्दाग्नि, दुष्ट कुष्ठ, भगंदर, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, अरुचि इन रोगोंको दूर करता है ॥ ५८ ॥ हृदयरोग, शूल, अपारा इनको नाशता है इसमें सन्देह नहीं । यह चूर्ण वंध्यास्त्रियोंको पुत्रको देनेवाला और अल्पवीर्यवाले वृद्ध ॥ ५९ ॥ नपुंसक इनके वीर्यको बढ़ानेवाला है और बुद्धि, स्मृति, तेज इनको शीघ्र ही निश्चय बढ़ाता है ॥ ६० ॥

इसके खानेसे बृद्धपुरुष भी सुख सौभाग्यको देखता है और जवानको तरह आचरण करता है । यह महान् चूर्ण क्षयरोगोंके विनाशके वास्ते कृष्णात्रेयजी महाराजने कहा है ॥ ६१ ॥ यह कृष्णात्रेयमुनिने च्यवनप्राशननामक अवलेह कहा है ॥ ६२ ॥

अथ अगस्तिहरतिकीपाक ।

भाङ्गीपुष्करमूलचित्रककणामूलं गजाह्वा शटी शङ्खाह्वादशमूल-
चित्रकवलायासात्मगुप्तास्तथा ॥ एतेषां द्विपलांशकी वरभिषेक्
प्रोक्ता च पञ्चाढके पथ्यानां शतकं विपाच्य बहुधा मन्दाग्निना
संततम् ॥ ६३ ॥ निर्वाप्य पुनरेव पूतसरसं चोद्धृत्य पथ्याशतं
संशुष्यामतिशीतले सुभवनकाथः प्रशस्तः पुनः ॥ दत्त्वा जीर्ण-
गुडस्य चैकतुल्या कुडवञ्च क्षौद्रं घृतं स्नेहस्यार्द्धमथाक्षकेण
मगधा योज्यं शतं पञ्चकम् ॥ ६४ ॥ चूर्णं तत्र निधापयेत्पुनरपि
संघट्टयेदुच्चकं पथ्ये द्वे मधुना सहातिहितकृत्सर्वामयच्छेदनः ॥
पाण्डुंकासहलीमकं गुडरुजो हृद्रोगहिकाभ्रमान् हन्यात्पीनसमे-
हपित्तमसृजं कुष्ठं ग्रहण्यामयम् ॥ ६५ ॥ पुष्पं चैव तनोति शोफ-
मरुचिगुल्मार्तिराजक्षयमेहानाहविवंधरोगशमनं क्षीणेन्द्रियाणां
हितम् ॥ मन्दाग्नेः प्रशमं करोति वडवातुल्योऽरुचिवन्धकं नाशं
वा विदधाति देहसुखदागस्तिग्रणीताभया ॥ ६६ ॥

भाङ्गी, पोहकरमूल, चीता, पीपलामूल, गजपीपली, कचूर, शंखपुष्पी, दशमूल, चीता, खरैहटी, जवासा, कौंच इनको आठ आठ तोला प्रमाण लेवे और सौ १०० हरडें लेवे पीछे इनको १२८० तोले जलमें मंद २ अग्निसे अच्छे प्रकारसे पकावे ॥ ६३ ॥ फिर पकावे तब पूर्णरसवाली पंहेले कही हुई सौ १०० हरडोंको निकासलेवे और शीतलहुए काथसे उनहरडोंको निकाल फिर ४०० चारसौ तोले पुराणा गुड, १६ तोले शहद और १६ तोले अथवा ८ तोले घृत मिलावे और चतुरवैद्यको पांचसौ ५०० पीपली मिलानी चाहिये ॥ ६४ ॥ इन सब औषधोंके चूर्णको एकजगह कूटके मिलादेवे फिर शहदके संग दोहरडे खानेसे सबरोगोंका नाश होता है । पांडुरोग, खांसी, हलीमक, गुदाका रोग, हृदयरोग, हिचकी, भ्रम इन रोगोंका नाश होता है और पीनस, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ, संग्रहणी इन रोगों को नाशता है ॥ ६५ ॥ लीके पुष्पको बढ़ाता है, शोजा, अरुचि, गुल्म, राजयक्ष्मा,

१ वरश्वासौ भिषेक् तत् सम्बुद्धौ ।

सूत्ररोग, आनाह, मलका बंधा इन रोगोंको नाशता है और क्षीणइन्द्रियवालोंको यह हरीतकी-
पाक हित है और मन्दाग्निको शांत करता है और अरुचिरोगके नाशके वास्ते अग्निके समान कहा
है और अमस्तिष्कभिसे कहाहुआ यह हरीतकीपाक देहको सुख देनेवाला है ॥ ६६ ॥

अथ बलाकाथ ।

बलाह्वयं गोक्षुरको बृहत्यौ निष्काथ्य दुग्धेन कणासमेतम् ॥
पानं हितं स्यान्मधुना सिताढ्यं विनाशनं कामलकं क्षयं वा ॥
मेहस्य तृष्णाशयनाशकारिक्षीणेन्द्रियाणां बलमातनोति ॥ ६७ ॥

खरैहटी, गोखरू, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, पीपली, इनका दुग्धमें काथवना फिर
शहद और मिश्री मिला पीना पथ्य है । कामला, क्षयरोग, प्रमेह, तृष्णा, इन रोगोंका नाश होता है
और क्षीणइन्द्रियवाले पुरुषोंके बलको बढ़ानेवाला है ॥ ६७ ॥

अथ पिप्पलीवर्द्धमानम् ।

पिप्पलीं वर्द्धमानं वा कारयेद्दुग्धसर्पिषा ॥ आद्यः पञ्च पुनः सप्त
पुनरेव नव क्रमात् ॥ ६८ ॥ एकादशस्रयोदशः पञ्चदशस्तथा
सप्तदशः स्मृतः ॥ एकोनविंश एकविंशः पृथक्पृथग्यथाक्रमम् ॥
॥ ६९ ॥ एवं क्रमेण वृद्धिः स्यात्कारयेच्छतमात्रया ॥ ततः
क्रमेण पुनः पश्चाद्यावच्छेषं च पञ्चकम् ॥ ७० ॥ भोजयेत्षष्टि-
कान्नं तु मुद्गेन सर्पिषा युतम् ॥ एवं बालश्च वृद्धश्च नरो नागबलो
भवेत् ॥ ७१ ॥ पिप्पली वर्द्धमाना तु ज्वरे जीर्णे प्रशस्यते ॥
मन्दाग्नौ पीतमेवाथ गुदजे वा तथा पुनः ॥ ७२ ॥ इति
पिप्पलीवर्द्धमानम् ॥

दुग्ध और घृतके संग पिप्पली वर्द्धमान बनाया जाता है उसको कहते हैं, क्रमसे पहले पांच
फिर सात फिर नव पीपलोंको दूधमें पका घृत मिला पान करना चाहिये ॥ ६८ ॥ और पीछले
दिन ग्यारह फिर १३ पीछे १५ पीछे १७ पीछे १९ पीछे २१ ऐसे बढ़ती हुई ॥ ६९ ॥
ऐसे दिन दिन प्रति दो बढ़ती हुई सौ पीपलोंतक बढ़ा लेनी चाहिये पीछे क्रमसे
घटती हुई जबतक पांच शेष रहें तबतक सेवन करे ॥ ७० ॥ इसपै सांठी चावलोंको मूंग और
घृतके संग भोजन करे । बालक अथवा वृद्धजन इस प्रकार इसका पान करताहुआ हस्तीके समान
पराक्रमवाला हो जाता है ॥ ७१ ॥ यह पीपली वर्द्धमान जीर्णज्वरमें श्रेष्ठ कहा है और मन्दा-
ग्निके तथा गुदाके रोगमें पीना हित है ॥ ७२ ॥

अथ शिलाजतुचूर्ण ।

द्वे पले मार्कवं धातु माक्षिकं च पुनर्ननवा ॥ तुगा पृक्का शालि-
पर्णी वासकं च दुरालभा ॥ ७३ ॥ चूर्णाद्धेन समं योज्यं
त्रिगन्धं सरिचानि च ॥ तालीसं मगधा चैव तदुद्धेन शिलो-
द्भवम् ॥ ७४ ॥ शिलाभेदं तदुद्धेन सर्वं चैकत्र मिश्रयेत् ॥ समेन
तिलचूर्णं तु शर्करायाः समायुतम् ॥ ७५ ॥ भक्षयेत्क्षीर-
पानं वा शस्यते घृतसंयुतम् ॥ तेन क्षयो राजयक्ष्मा कामला
च विनश्यति ॥ ७६ ॥ अपस्मारं जयत्याशु बलवीर्या-
धिको भवेत् ॥ शाम्यन्ति च महारोगाः शुक्राढ्यो जायते नरः
॥ ७७ ॥ इति शिलाजतुचूर्णम् ॥

मंगरा ९ तोले, सोनामांखी ९ तोले, सांठी ९ तोले, वंशलोचन ९ तोले, पृक्कासंज्ञक
वृक्षकी छाल ८ तोले, वांसा ८ तोले, शालपर्णी ८ तोले, जवासा ८ तोले ॥ ७३ ॥ ४ तोले
त्रिगन्ध अर्थात् इलायची, दालचीनी, तेजपात, मिर्च ४ तोले और तालीसपत्र, पीपली,
शिलाजीत ये दो दो तोले ॥ ७४ ॥ पाषाणभेद २ तोला ऐसे इन औषधोंको मिला चूर्ण बना
लेवे और इस चूर्णके समान तिलोंका चूर्ण और खांडू मिलावे ॥ ७५ ॥ पीछे इस चूर्णको घृतके
संग भोजन करे अथवा इसके ऊपर दूधको पीवे । इस चूर्णसे क्षयीका रोग, राजयक्ष्मा,
कामला इन रोगोंका नाश होता है ॥ ७६ ॥ और मृगीरोगको शीघ्र ही दूर करता है, बल,
वीर्य, इनको बढ़ाता है और महारोग शांत हो जाते हैं और इसके खानेसे मनुष्य वीर्यसे युक्त
होजाता है ॥ ७७ ॥

अथ जीवन्त्यादि घृत ।

जीवन्तिकावत्सकयष्टिकानां सपौष्करं गोक्षुरकं बले द्वे ॥ नीलो-
त्पलं चामलकी यवासं सत्रायमाणा मगधा च कुष्ठम् ॥ ७८ ॥
द्राक्षामलक्या रसप्रस्थमेकं प्रस्थद्वयं छागलकं पयश्च ॥ दध्मश्च
प्रस्थं च घृतस्य प्रस्थं पाने प्रशस्तं पचितं शुभाग्रौ ॥ ७९ ॥ नस्ये

१ 'मरुन्माला तु पिशुना स्पृका देवी लता लघुः । समुद्रान्ता वधूः कोटिवर्षा लंकोपिकेत्यपि' इत्यमरः
कोशगतस्पृकायां हारीतस्पृकायां च कोऽपि न भेदो यतः पृषोदरादित्वात् सलोपे स्पृका भवति । वाचस्पतिर-
प्यत्राह । स्पृका तु ब्राह्मणी देवी मरुन्माला लता लघुः । समुद्रान्ता वधूः कोटिवर्षा लंकोपिका मरुत् ।
मुनिमाल्यवती माला मोहना कुटिला लता ॥ केचित् पिंडकापि स्पृक्का ।

च वस्तावपि योजयेत्तद्विनाशमेत्याशु च राजयक्ष्मा ॥ हली-
मकः कामलपांडुरोगो मूर्च्छा भ्रमः कम्पशिरोऽर्तिशूलम् ॥ ८० ॥
महाश्मरी वा गुदकीलकुष्ठं शिरोगतो नाशमुपैति रोगः ॥ तस्य
प्रदानेन वियोजितेन पानेन पाण्ड्यामयराजयक्ष्मा ॥ ८१ ॥ नाश
शमं याति हलीमको वा वस्तिप्रदानेन गुदोद्भवाश्च ॥ रोगो विनाशं
समुपैति पुंसां विसर्पविस्फोटकप्रोक्षणेन ॥ ८२ ॥

गिलोय, कूड़ाकी छाल, मुलहटी, पोहकरमूल, मोखरू, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, नीला
कमल, मूमीआंवला, जवासा, त्रायमाण, पीपली, कूट ॥ ७८ ॥ दाख, इनको समान भाग
ले फिर आंवलोंका रस ६४ तोले, बकरीका दूध १२८ तोले, दही ६४ तोले, घृत ६४ तोले
इनमें मिला अग्निसे पकावे । यह घृत पानमें और भोजनमें हित कहा है ॥ ७९ ॥ नस्यमें तथा
वस्तिकर्ममें भी युक्त करना हित कहा है और राजयक्ष्मा, हलीमक, कामला, पांडुरोग, मूर्च्छा,
भ्रम, कंपरोग, शिरकी पीड़ा, शूल इन रोगोंको नाशता है ॥ ८० ॥ महापथरी, गुदकील,
कुष्ठ, शिरका रोग इनका नाश होता है और इस घृतका पान करनेसे पांडुरोग, राजयक्ष्मा
॥ ८१ ॥ हलीमक, इन रोगोंका नाश होता है और इस घृतको वस्तिकर्ममें वर्तनेसे गुदाके
रोग दूर होते हैं और इस घृतके मोक्षण अर्थात् शरीरपै छिड़कनेसे विसर्प, विस्फोटक इन रोगोंका
नाश होता है ॥ ८२ ॥

अथ पिप्पली आदि घृत ।

कणा पयःपञ्चगुणे पलाश आद्यं घृतं वै विपचेत्समांशम् ॥
पानेऽथवा भोजनके प्रशस्तं देयं च राजक्षयनाशहेतोः ॥ ८३ ॥

पीपली, केशू, इनको समान भाग ले इनसे पांचगुना दूधमें इन औषधोंके समानभाग, गौके
घृतको और इन औषधोंको पकावे । यह घृत पानमें और भोजनमें श्रेष्ठ है और राजयक्ष्मा, क्षय-
रोग इनका नाश करता है ॥ ८३ ॥

अथ पञ्चकोलआदि घृत ।

पञ्चकोलं यवाग्रश्च क्षीरं दध्ना घृतं पुनः ॥ समांशेन तु योज्यानि
भाङ्गीं कुष्ठं तु पौष्करम् ॥ ८४ ॥ शतं तत्र हरीतक्या जले चैव
चतुर्गुणे ॥ काथं चैकत्रयं योज्यं काथयेन्मृदुवह्निना ॥ ८५ ॥
मृदुपाकं घृतं सिद्धं पाने नस्ये च वस्तिषु ॥ गुणाधिक्यं भवे-

नृणां पाण्डुरोगे हलीमके॥८६॥राजयक्ष्मणि क्षये चैव शस्तं
चोक्तं भिषग्वर ॥ ८७ ॥

पञ्चकोल अर्थात् पीपल, पीपलामूल, चन्य, चीता, सोंठ, जवाखार, दूध, दही, घृत, भारंगी
कूठ, पोहकरमूल ॥ ८४ ॥ इन सर्वोंको समान भाग ले और सौ १०० हरद्वे ले फिर इन
औषधोंसे चौगुने जलमें मन्द मन्द अग्निसे काथ बनावे । मन्द मन्द अग्निसे पकाया हुआ ॥ ८५ ॥
यह घृत पानमें, नस्यमें और वस्तिकर्ममें युक्त करना श्रेष्ठ है और पाण्डुरोग, हलीमक
॥ ८६ ॥ इन रोगोंमें मनुष्योंके अधिक गुण करनेवाला है और हे उत्तम वैद्य ! राजयक्ष्मा
रोगमें यह घृत श्रेष्ठ है ॥ ८७ ॥

अथ पाराशर घृत ।

यष्टी बला गुडूची च पञ्चमूलं समांशकम् ॥ काथेन सदृशं
धात्रीरसं चक्षुरसं तथा ॥ ८८ ॥ विदार्याश्च रसं चैव घृतं च
समभागिकम् ॥ क्षीरं दधिसमं चात्र नवनीतं तु तत्समम् ॥ ८९ ॥
द्राक्षातालीससंयुक्तं यथालाभेन योजयेत् ॥ सिद्धं घृतं च पानाय
नस्ये वस्तौ प्रदापयेत् ॥ ९० ॥ जयति राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं
सुदारुणम् ॥ हलीमकं चार्शसं च रक्तपित्तनिवारणम् ॥ ९१ ॥
लेपेन दुष्टवैसर्पपित्तदग्धव्रणापहम् ॥ ९२ ॥

मुलहठी, खरेहठी, गिलोय, पंचमूल इनको समान भाग ले काथ बनावे और काथके
समान आंवलाका रस और ईखका रस ॥ ८८ ॥ और विदारीकंदका रस मिलावे । इन
औषधोंके समानभाग घृत और दूध, दही, नौनी घृत इन सर्वोंको समानभाग ले ॥ ८९ ॥
दाख, तालीसपत्र इनको अनुमानमुवाक्रिक मिला फिर इस घृतको सिद्ध कर पानमें
नस्यमें और वस्तिकर्ममें देना श्रेष्ठ है ॥ ९० ॥ यह राजयक्ष्मा, पाण्डुरोग, हलीमक,
बवासीर, रक्तपित्त इनको नाशता है ॥ ९१ ॥ इस घृतका लेप करनेसे दुष्टवैसर्परोग,
पित्तरोग, दग्ध, व्रण इनका नाश होता है ॥ ९२ ॥

अथ बलाआदि घृत ।

बला श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयं च पर्णीद्वयं गोक्षुरकं स्थिरा च ॥ पटो-
लनिम्बस्य दलानि मुस्तं सत्रायमाणा च दुरालभा च ॥ ९३ ॥
कृत्वा कषायं च यदावशेषं पूतीकृते चूर्णमिदं प्रयुज्यात् ॥ द्राक्षा
शटी पुष्करमूलधात्री तमालकी दुग्धसमं कषायम् ॥ ९४ ॥

सर्पिःप्रयुक्तं नवनीतकं च सर्पिस्तद्वर्धेन नियोजनीयम् ॥ सिद्धं
घृतं पानमथैव वस्तौ नस्ये तथाभ्यञ्जनभोजनेन ॥ ९५ ॥ जघन्य-
कासक्षयकामलानां राजक्षये क्षीणबलेन्द्रियाणाम् ॥ शतेषु
शोफेषु व्रणेषु शस्तं शिरोऽर्तिपार्श्वार्तिगुदामयघ्नम् ॥ ९६ ॥

खरैहटी, बड़ा गोखरू, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, माषपर्णी, मूंगपर्णी, छोटा गोखरू
और बड़ा गोखरू, शालपर्णी, परबल, नींवके पत्ते, नागरमोथा, त्रायमाण, जवासा ॥ ९३ ॥
इनका काथ बना जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतार बस्त्रसे छान पीछे दाख, कचूर, पोहकर-
मूल, आंवला, भूमिआंवला, इनका चूर्ण मिलावे और इस काथके समान दूध मिला ॥ ९४ ॥
नूनीघृतसे आधा और घृत मिला पीछे इस घृतको उस काथमें पकावे फिर यह घृत पीनेमें,
वस्तिकर्ममें, नस्यमें, मालिसमें, भोजनमें वर्तना श्रेष्ठ कहा है ॥ ९५ ॥ अत्यंत खांसी, क्षय-
रोग, कामला, राजयक्ष्मा इन रोगोंको नाशता है और क्षीण इंद्रियोंवाले तथा क्षीण बलवाले
पुरुषोंको हित कहा है। क्षतरोग, शोजा, व्रण, शिरकी पीडा, पसलीकी पीडा, गुदाका रोग इनको
नाश करता है ॥ ९६ ॥

अथ चन्दनादि तैल ।

चन्दनं सरलं दारु यष्टयेला वालकं शटी ॥ नलशैलेयकं पृक्षा
पद्मकं वनकेसरम् ॥ ९७ ॥ कङ्कोलकं मुरामांसी शैरियं द्विहरी-
तकी ॥ रेणुकात्वक्कुङ्कुमंच सारिवे द्वे तिक्तागरुः ॥ ९८ ॥ नलि-
काबले तथा द्राक्षा कषायं सुपरिस्तुतम् ॥ तैलमस्तु तथा लाजा
रसेन समभागिकम् ॥ ९९ ॥ मन्दाग्निना पचेत्तैलं सिद्धं पाने च
वस्तिषु ॥ नस्ये चाभ्यञ्जने चैव योजयेत्तद्विषग्वरः ॥ १०० ॥
हन्ति पाण्डुक्षयं कासं ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ मन्दज्वरमपस्मारकुष्ठ-
पामाहरं पुनः ॥ १०१ ॥ करोति बलपुष्ट्योजो मेधाप्रज्ञायुर्व-
र्द्धनम् ॥ रूपसौभाग्यदं प्रोक्तं सर्वभूतयशस्करम् ॥ १०२ ॥

चन्दन, सरल, देवदार, मूलहटी, इलायची, नेववाला, कचूर, नड, शिलारस, पृक्षासंज्ञक
वृक्ष, पद्माक, वनकेशर, ॥ ९७ ॥ कंकोल, मुरामांसी, लोबान, दोनों प्रकारकी हरद्वै, रेणुका,
दालचीनी, केशर, दोनों प्रकारकी सारिवा, अनंतमूल, कुटकी, अगर ॥ ९८ ॥ नाडीशाक,
खरैहटी, दाख इनका काथ बनावे और पीछे उस काथमें तेल, दहीका पानी, धानकी खीलोंका,
रस इनको समान भाग ले मिलावे ॥ ९९ ॥ इस तेलको मन्द मन्द अग्निसे पकावे सिद्ध किया

हुआ यह तेल वैद्यजनोंको पीनेमें, वस्तिकर्ममें, नस्यमें तथा मालिसमें वर्ताना चाहिये॥ १०० ॥ यह तेल पांडुरोग, क्षयरोग, खांसी, ग्रहदोष इनको नाशता है और बल वर्ण इनको करता है, मन्द-ज्वर, अपस्मार, कुष्ठ, पामा इन रोगोंको नाशता है ॥ १०१ ॥ बल, पुष्टि, पराक्रम, मेधा, बुद्धि, वायु इनको बढ़ाता है, रूप सौभाग्य इनको करता है, सम्पूर्ण भूतपीडाको दूर करता है १०२

अथ राजयक्ष्मारोगका निदान ।

स्वामिभार्य्याभिगमने गुरुपत्न्यमिलाषणात् ॥ राजस्वहेमचौ-
र्य्याद्वा राजयक्ष्मा भवेद्बुद्धः ॥ १०३ ॥ अथवा दुष्टरोगेण जायते
शृणु पुत्रका ॥ चतुर्भिर्हेतुभिर्यक्ष्मा जायते शृणु साम्प्रतम् १०४ ॥
व्यायामयानसुरतागतिपीडिताङ्ग-रोगेण वा व्रणनिपीडितक्षीण-
देहात् ॥ क्रोधातिशोकभयलङ्घनतोऽनभक्षात् सञ्जायते च
मनुजस्य महागदोऽयम् ॥ १०५ ॥ वार्द्धक्याद्यो भवति
नितरां ज्याधनुःकर्षणेन भारात्यर्थं भवति हननोत्पातबन्धेन
युद्धात् ॥ दूराध्मानात्कद्वानवशाच्चिन्तयातिव्यवायात्सम्भूतिः
स्यान्मनुजबलहृद्वाजयक्ष्मेतिसंज्ञः ॥ १०६ ॥

स्वामीकी स्त्रीसे संग करनेसे और गुरुकी स्त्रीसे अभिलाषा करनेसे, राजाका द्रव्य और सुवर्ण-की चोरी करनेसे राजयक्ष्मा रोग होता है ॥ १०३ ॥ अथवा दुष्टरोगसे होता है सो हे पुत्र ! चार हेतुओंकरके यह राजयक्ष्मा रोग होता है सो सुन ॥ १०४ ॥ कसरत, असवारी, मैथुन, गमन इनसे पीडित अंग होनेसे, रोगसे, व्रणसे पीडित होनेसे, क्षीण देह होनेसे, क्रोध, अतिशोक, लंघन करना, भय, व्रत इनसे मनुष्यके यह महान् रोग होता है ॥ १०५ ॥ निरन्तर धनुष्यके खींचनेसे बुढ़ापा हो जाता है उससे और अत्यन्त भार उठानेसे चोर आदिके उत्पातसे, युद्धसे, दूरसे अग्निको धमानेसे, बुरा भोजन करनेसे, चिंता करनेसे, अति मैथुनसे, मनुष्यके बलको हरनेवाला राजयक्ष्मासंज्ञक रोग हो जाता है ॥ १०६ ॥

अथ राजयक्ष्माके लक्षण ।

क्षतक्षयाच्छ्रमाद्वापि सहसोपप्लवादपि ॥ व्यवायातिप्रसङ्गेन तथा
रूक्षातिसेवनात् ॥ १०७ ॥ तेन संक्षीयते गात्रं ज्वरो मन्दश्च जा-
यते ॥ ज्वरान्ते जायते शोफो मलविट् चातिमूत्रता १०८ ॥ अति-
सारश्च भवति भक्षणेनातिशेषते ॥ कासते घृवतेऽत्यर्थं शोषं च

कुरुते भृशम् ॥ १०९॥स्त्रियोऽभिलाषतात्यर्थं वार्त्तायाद्विपता
पुनः ॥ राजयक्ष्मेति विज्ञेयो गदः साध्यो न विद्यते ॥ ११०॥
सुप्तौ पादौ भवेतां तु ग्रासं च बहु मन्यते॥शब्दे च पटुता यस्य
राजयक्ष्मा न जीर्यति ॥ १११ ॥

उरःक्षतसे, क्षय होनेसे अथवा श्रमसे एक बार जोरसे कूदनेसे, अत्यंत स्त्रीसंग करनेसे, खूबा भोजन सेवनेसे॥१०७॥शरीर क्षीण हो जाता है और मन्दज्वर हो जाता है, ज्वरके अंतमें शोजा होजाता है, मैल और विष्ठा मूत्र अत्यन्त उतरता है॥१०८॥अतिसार होता है, भोजन किया हुआ जरता नहीं है, अत्यन्त खांसता है और अत्यन्त थूकता है, बहुतसा शोष हो जाता है॥१०९॥ स्त्रीकी अभिलाषा अत्यन्त रहती है और वार्त्ता नहीं सुनी जाती है ऐसा यह :राजयक्ष्मा रोग कहाता है, यह साध्य नहीं कहा है ॥११०॥ जिसके पैर शून्य हो जावे और एक ग्रास भोजन-को भी बहुत माने और जिसकी बोली नम्रहो ऐसे पुरुषका राजयक्ष्मा रोग शांत नहीं होता है१११

अथ राजयक्ष्माका इलाज ।

यद्वन्नं यत्समाहारं यादृशं प्रतियाचते ॥ तत्तस्य च प्रदातव्यं
मधुरं घनमेव च ॥११२॥ यद्यदाहारमिच्छेद्वा नरं वा राजय-
क्ष्मिणम्॥तस्य तस्यास्य लाभेन क्षीयन्ते नास्य घातवः११३॥
यदा सरक्ताः शोफाः स्युः पाकतां यांति मानवे॥तदा पुनर्नवा-
काथः सलेशः प्रविधीयते ॥ ११४ ॥

जो अन्न अथवा जो पदार्थ राजयक्ष्मारोगवालेको देवे वही उसको मधुर और कड़ा देना चाहिये ॥११२॥ राजयक्ष्मारोगवालेको जिस जिस भोजनकी इच्छा होती है उसी उसी भोजनसे इसकी पातु क्षीण नहीं होती है॥११३॥जो यदि राजयक्ष्मारोगवाले पुरुषके रक्तसहित शोजा होवे और पक जावे तो सांठीका काथ किंचित्मात्र देना चाहिये ॥ ११४ ॥

अथ राजयक्ष्मावालेकी आयुष्यमर्यादा ।

सजीवेच्चतुरो मासान् षण्मासं वा बलाधिकः॥उत्कृष्टैश्च प्रतीकारैः
सहस्राहं तु जीवति ॥ ११५ ॥ सहस्रात्परतो नास्ति जीवितं
राजयक्ष्मिणः ॥ गतप्राणौजोवीर्यश्च क्षीणश्च विकलेन्द्रियः
॥११६॥ न भवेत्पुनरुच्छ्रायो याप्यरोगश्च मुञ्चति॥ यस्तदाया-
ससम्पन्नो भूयोऽपि कासना भवेत् ॥११७॥तस्य प्राणापहारी

स्याद्राजयक्ष्मातिदारुणः ॥ त्रिभिर्मासैश्च पण्मासैर्वर्षैश्चापि
त्रिभिः पुनः ॥ ११८ ॥

राजयक्ष्मारोगवाला पुरुष चारमहीनोंतक जीता है और बल अधिक होंवे तो छःमहीनों-
तक जीता है और अत्यंत इलाज होते रहें तो हजारदिनोंतक जीता है ॥ ११९ ॥ राज-
यक्ष्मारोगवाले पुरुषका जीना हजारदिनोंसे उपरांत नहीं होता है और प्राण, बल, वीर्य इनसे
हीन होजाता है, क्षीण होजाता है, इंद्रिय विकल होजाती हैं ॥ ११६ ॥ जो रोग फिर
नहीं बढ़ता है वह याप्यरोग छुटजाता है और जो उस रोगके परिश्रमसे युक्त हुआ फिर
खांतीसे युक्त होजाता है ॥ ११७ ॥ उस पुरुषका तीन महीनोंमें अथवा छःमहीनोंमें प्राणोंका
नाश होता है ॥ ११८ ॥

अथ अमृतप्राशनवृत्त ।

शतमूलीरसे प्रस्थं गुडूचीकल्कप्रस्थकम् ॥ हरीतकीशतानां च
कुटजस्य त्वचा तुलाम् ॥ ११९ ॥ निष्काथ्य च पृथक्त्वेन
पूतनाञ्चैकत्र मिश्रयेत् ॥ दार्वीप्रलेपनं कृत्वा गुडानां शतपञ्चकम्
॥ १२० ॥ सिता चामलकीचूर्णं त्वगेला चित्रकं शटी ॥ द्राक्षा
कुष्ठं शिलाजिच्च शिलाभेदस्तु तालकम् ॥ १२१ ॥ योज्यं
तत्राक्षमानेन भक्षयेच्छुद्धसर्पिषा ॥ तस्योपरि पिबेत्क्षीरं
भोजनञ्च ततः परम् ॥ १२२ ॥ राजयक्ष्मी लभेत्सौख्यं
पाण्डुकामलकाञ्जयेत् ॥ अतीसारं विनश्यति बले नागबली
भवेत् ॥ १२३ ॥

शतावरीका रस ६४ तोले, मिलोयका कल्क ६४ तोले, बडी सौ १०० हरडोंकी छाल
और कुड़ाकी छाल ४०० तोले ॥ ११९ ॥ इनका जुदा २ काढा बना फिर छानिके एक
जगह मिलालेवे पीछे अग्निपर पकावे जब कडलीके चपकने लगजावे तब ९०० पानसौ मुनक्का
दाख, ॥ १२० ॥ मिसरी, आंवलाका चूर्ण, दालचीनी, इलायची, चीता, कचूर, दाख, कूट
शिलाजीत, शिलाभेद, शुद्धमारित हरताल ॥ १२१ ॥ इनको एक २ तोला प्रमाण गेरै पीछे इसको
अच्छे घृतके संग खावे इसके ऊपर दूध पीवे पीछे भोजन करे ॥ १२२ ॥ इसके खानेसे राजय-
क्ष्मारोगवाला पुरुष सुखको प्राप्त होता है और पाण्डुरोग, कामला, अतिसार इनका नाश होता
है हस्तीके समान बल होजाता है ॥ १२३ ॥

अथ तालकाम्रातक ।

तालकं च शिलाभेदस्तथा चव शिलाजतुः॥क्षीरके द्वे समङ्गा
च कुष्ठ नागबला बला ॥ १२४ ॥ एलापत्रकतालीसं तमालं
हरिचन्दनम्॥ मुस्ता द्राक्षा च रास्ना च मुण्डी शैलेयकं पुरः
॥१२५॥सुरसा चव संयोज्या तिलाः कृष्णा द्विभागिकाः ॥
चूर्णं सूक्ष्मं प्रयुञ्जीत गुडेन मधुना युतम् ॥ १२६ ॥ पश्चाद्दो-
क्षीरपानं स्यात्क्षीरेण सह भोजनम् ॥राजयक्ष्मादिभिः क्षीणा
ग्रहणीपीडिताश्च ये ॥१२७॥ धातुक्षीणबला ये च तेषां संयो-
जयेद्दृशम्॥वृद्धोऽपि तरुणो भूत्वा नरो नार्य्याभिनन्दति१२८॥
वन्ध्यापि लभते पुत्रं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ तालकाम्रातकं
नाम कृष्णात्रेयविभाषितम् ॥ १२९ ॥

शुद्ध और मारित हरताल, पापाणभेद, शिलाजीत, काकोली, क्षीरकाकोली, मंजीठ, कूठ, वडीखरैहटी, खरैहटी ॥ १२४ ॥ इलायची, तेजपात, तालीसपत्र, तमालपत्र, लालचंदन, नागरमोथा, दाख, रास्ना, गोरखमुंडी, लोवान, गूगल ॥ १२५ ॥ तुलसी और कालेतिल दो भाग, इनका सूक्ष्म चूर्ण बना तिसमें गुड़ और शहद मिला भक्षण करे ॥ १२६ ॥ और पीछे गौक्रे दूधको पीवे और दूधके सगही भोजन करे, जो पुरुष राजयक्ष्माआदि रोगोंसे पीडित है और जो ग्रहणी रोगसे पीडित है ॥ १२७ ॥ धातुक्षीणरोगवाले इनको यह चूर्ण देना चाहिये और इसके खानेसे वृद्धपुरुष भी जवान होके स्त्रीके संग रमण करता है ॥१२८॥ वंध्य़ा स्त्री पुत्रको प्राप्त होजाती है और नपुंसक भी पुरुषकी तरह आचरण करता है यह तालकाम्रातकनामवाला औषध कृष्णात्रेयजीने कहा है ॥ १२९ ॥

अथ गुडूच्यादिचूर्ण ।

गुडूची च बले द्वे च धात्री च मरिचानि च ॥

चूर्ण गुडेन संयुक्तं राजयक्ष्मापहं नृणाम् ॥ १३० ॥

गिलोय, दोनों प्रकारकी खरैहटी, आंवला, मिरच, इनका चूर्ण गुड़में मिला खानेसे राजयक्ष्मारोगका नाश होता है ॥ १३० ॥

अथ क्षयरोगपर पथ्यापथ्य ।

शालिषष्टिकगोधूमवास्तुकं जाङ्गलानि च ॥ मुद्गांश्च गोपयश्चैव
शशकैर्गुरङ्गिणाम् ॥ १३१ ॥ तित्तिरक्रौञ्चलावानां वार्ताक-

पिच्छकच्छागलानां हि ॥ कथितानि मांसादीनि प्रलेपकानि
जगति च ॥ १३२ ॥ विभोजयेत्क्षीरसर्पिः क्षये वा राजयक्ष्मिणः ॥
क्षाराम्लकटुकं तीक्ष्णं तैलं सौवीरकं सुरा ॥ राजिकावर्जिताश्चैते
क्षये वा राजयक्ष्मिणः ॥ १३३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे
तृतीयस्थाने क्षयरोगचिकित्सा नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

शालीसंज्ञक तथा सांठीचावल, गेहूं, यथुवाका शाक, जांगलदेशके जीवोंका मांस, मूंग, गौका
दूध और शूसा, काला हिरन, हिरन ॥ १३१ ॥ तीतर, कूंजि, लावा, वत्तक, मोर, वकरा
इन्होंका मांस, इन सबोंका भोजन करना श्रेष्ठ कहा है ॥ १३२ ॥ और राजयक्ष्मा रोगमें
तथा क्षयरोगमें दूध और घृतका भोजन करना श्रेष्ठ कहा है और खारा, खट्टा, चर्चरा, तीक्ष्ण
ऐसा पदार्थ, तैल, कांजी, मदिरा, राई ये क्षयमें तथा राजयक्ष्मा रोगमें वर्ज देने चाहिये ॥ १३३ ॥
इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने-
क्षयरोगचिकित्सानाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः १०.

अथ रक्तपित्तका निदान और चिकित्सा ।

अतिघर्मतयावापि तीक्ष्णोष्णकटुसेवनात् ॥ क्षाराम्लसेवनाद्वापि
मद्यपानादिसेवनात् ॥ १ ॥ अतिव्यवायाच्छीतेन शुष्कशाका-
दिसेवनात् ॥ एतैस्तु कुपितं पित्तं रक्तेन सह मूर्च्छितम् ॥ २ ॥
पुत्रस्तु संशयापन्नः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अत्यंत घामसे और तीक्ष्ण तथा गरम वस्तुके सेवनेसे और खारे
खट्टे पदार्थके सेवनेसे तथा मदिराके सेवनेसे ॥ १ ॥ अत्यंत मैथुनके सेवनेसे, शीतल पदार्थके
सेवनेसे, सूखे शाकादिके सेवनेसे कुपित हुआ पित्त रक्तके संग मूर्च्छाको प्राप्त हो जाता है ॥ २ ॥
ऐसे सुन संशयमें युक्त हुआ हारीत आत्रेयजीसे पूछता है ॥ ३ ॥

हारीत उवाच ॥ कथं पित्तं प्रकुपितं केन वापि प्रचाल्यते ॥
तद्भद्रं प्रकुपितं जायते केन हेतुना ॥ ४ ॥ युगपदृश्यते केन
कथं वापि प्रवर्तते ॥ एवं पृष्ठो महाचार्य्यः प्रोवाच मुनिपुङ्गवः ॥

हारीत कहते हैं—पित्त कैसे कुपित होता है और किस प्रकार चलायमान होता है और रक्तका कोप किस कारणसे होता है ? ॥४॥ एक बार दोनों मिले, किस हेतुसे दीखते हैं और कैसे प्रवृत्त होते हैं ? ऐसे पूछे हुए महाचार्य उत्तम मुनि कहते भये ॥ ५ ॥

आत्रेय उवाच ॥ शृणु प्राज्ञ महातेजश्चिकित्सागमपारग ॥
येनैव कुप्यते पित्तं रक्तं तेनैव कुप्यते ॥ ६ ॥ तावत्प्रकुपिते
कोष्ठे वायुर्दारयते भृशम् ॥ ऊर्ध्वं च नयते प्राणश्चापानोऽपान-
सीरति ॥ ७ ॥ मध्ये समानः कुरुते रक्तपित्तस्य कोपनम् ॥
एवं युगपत्पित्तञ्च रक्तेन सह कुप्यति ॥ ८ ॥ चतुर्धा दृश्यते
कोपो गतिश्चास्य द्विधा मता ॥ ऊर्ध्वश्छेष्मणि संसृष्टं नासास्ये
कर्णरन्ध्रयोः ॥ ९ ॥ रक्तं प्रवर्तत यस्य साध्यास्तु विजिगी-
षुणा ॥ अधोयातेन संसृष्टं गुदेनापि प्रवर्तते ॥ १० ॥ स ज्ञेयो
रक्तपित्तस्तु कृच्छ्रेण सिद्धिसिच्छति ॥ उभाभ्यामध ऊर्ध्वाभ्यां
वातश्छेष्मणि वर्तते ॥ ११ ॥ तमसाध्यं विजानीयात्कृच्छ्रेण
यदि सिध्यति ॥ १२ ॥ एकमार्गबलतो वा नाभिवेगेन चोत्थि-
तः ॥ रक्तपित्तः सुखेनापि साध्यः स्यान्निरुपद्रवः ॥ १३ ॥
एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ॥ असाध्यस्तु
त्रिदोषेषु रक्तपित्तः प्रवर्तते ॥ १४ ॥ ऊर्ध्वगरक्तपित्तेषु विरेकं
कारयेत्सुधीः ॥ अधोभागगते रक्ते तदास्य वसनं हितम् ॥ १५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे प्राज्ञ ! महातेजवाले ! वैद्यकशास्त्रके पारको जाननेवाले ! सुनो जिस कारणसे पित्त कुपित होता है उसी कारणसे रक्तपित्त कुपित होता है ॥ ६ ॥ पहले कोष्ठस्थानमें पित्त कुपित होके वायुको अत्यंत फाड़ देता है, प्राणवायु ऊपरको प्राप्त हो जाता है और अपानवायु गुदाके स्थानमें कुपित हो जाता है ॥ ७ ॥ मध्यनाभिमें स्थित हुआ समान वायु रक्तपित्तको कोप कर देता है इसी तरह एकही बार पित्त रक्तके संग कुपित हो जाता है ॥ ८ ॥ रक्तपित्तका कोप चार प्रकारसे दीखता है और इसकी गति दो प्रकारकी कही है जिसके कफ मुखके ऊर्ध्वभागमें प्राप्त हो और नासिकाके तथा कानोंके छिद्रोंमें ॥ ९ ॥ रक्त प्रवृत्त होजावे वह साध्य कहा है और जिसके अधोमार्गमें रक्तकोप हो जाता है उसके गुदाके द्वारा रक्त निकसता है ॥ १० ॥ वह रक्तपित्त कष्टसाध्य कहा है और जो ऊर्ध्वमार्गमें प्राप्त हो तथा अधोमार्गमें प्राप्त हो और वात कफ अधिक वर्तते हों ॥ ११ ॥ वह

असाध्य जानना अथवा कष्टसे सिद्ध होता है ॥ १२ ॥ एक मार्गसे उठा हुआ अथवा नाभिके देशसे उठा हुआ रक्तपित्त साध्य है और उपद्रवोंसे रहित है ॥ १३ ॥ एकदोपसे उत्पन्न हुआ साध्य होता है, दो दोषोंसे उत्पन्न हुआ याप्यरोग होता है और तीन दोषोंसे उत्पन्न हुआ रक्तपित्त असाध्य कहा जाता है ॥ १४ ॥ और जब रक्तपित्त ऊर्ध्व भागमें प्राप्त होवे तब जुलाव दियावे और जब रक्त अधोभागमें स्थित हो तब वमन कराना चाहिये ॥ १५ ॥

अथ रक्तपित्तके उपद्रव ।

रोगक्षीणे छविरविकले हीनदौर्बल्यकाये मन्दाग्निर्वाक्षवधुरथवा पाण्डुता दाहशोषः॥तृष्णा छर्दिः श्वसनमधृतिर्भक्तविद्वेषमोहो हृत्पीडा स्याद्भ्रममथ भवेद्रक्तपित्तोपसर्गात् ॥१६॥ अष्टादश इमे प्रोक्ता रक्तपित्तउपद्रवाः ॥ उपद्रवैर्विना साध्योऽसाध्यः सोपद्रवस्तथा ॥१७॥ रक्तनिर्घ्नोऽपेक्षितो रक्तनेत्रो भ्रमातुरः ॥ रक्तमूत्रश्च वमते रक्तसूत्री न जीवति ॥ १८ ॥

रोगसे क्षीण होजावे और कांतिसे रहित होजावे, शरीर हीन होजावे और दुर्बल होजावे, मन्द अग्नि होजावे, छीकहो, पांडुरोगहो, दाहहो, शोषहो, तृषाहो, छर्दिहो, श्वासहो, धीरज नहीं रहे, भोजनसे वैर रहे, मोह रहे, हृदयमें पीडा रहे, रक्त और पित्तके उपसर्गसे भ्रमहो, ऐसे वे ॥ १६ ॥ अठारह रक्तपित्तके उपद्रव कहे हैं । उपद्रवोंसे रहित रक्तपित्त रोग साध्य कहा है और उपद्रवोंसे संयुक्त रक्तपित्त असाध्य कहा है ॥ १७ ॥ रक्तके थूकनेसे युक्त हो, रक्तनेत्र हो, भ्रमसे आतुर हो और रक्तमूत्रवाला पुरुष वमन करता है, वह जीता नहीं है ॥ १८ ॥

अथ रक्तपित्तका लक्षण ।

एवं प्रोक्तो निदानार्थस्ततो वक्ष्यामि भेषजम्॥सुलक्षणसमायुक्तं रक्तपित्तं सुखावहम् ॥१९॥ यस्यारुणं पवनफेनयुतं च तावत्पित्तातिकृष्णमथ पीतकुसुम्भकामम् ॥ पित्तेन पित्तमिति तं प्रवदन्ति धीराः सान्द्रं सपाण्डुरतिजं सघनं कफेन ॥२०॥

इस प्रकार निदान तो कह दिया है अब औषध कहेंगे । सुंदरलक्षणोंसे युक्त रक्तपित्त सुखसाध्य कहा है ॥ १९ ॥ जो ज्ञानों सहित और लाल थूके वह वातसे उपजा रक्तपित्त जानना और पित्त अधिक हो तो काला और कसुंभाके डहलके समान थूके उसको पित्तसे उपजा रक्तपित्त कहते हैं और कफसे होवे तो कडा और पीला सफेद चिकना ऐसा थूके ॥ २० ॥

अथ रक्तपित्तकी चिकित्सा ।

क्षीणमांसं कृशं वृद्धं बालं वा ज्वरपीडितम् ॥

शोषमूर्च्छाभ्रमापन्नं नातिरेचनमाचरेत् ॥ २१ ॥

क्षीणमांसवाला, कृश, वृद्ध, बालक, ज्वरसे पीडित, शोष, मूर्च्छा, भ्रम इनसे पीडित पुरुषको जुलाब अधिक नहीं दिलावे ॥ २१ ॥

अथ ऊर्ध्वरक्तका उपाय ।

निष्पीड्य वासारसमाददीत क्षौद्रेण खण्डेन युतं च पानम् ॥

नासारवकर्णे नयनप्रवृत्तं रक्तं तु शीघ्रं शमतां प्रयाति ॥ २२ ॥

अथवा अङ्गुलीके पत्तोंके रसको निचोड़ उसमें शहद और खांड मिला पीना चाहिये । इससे नासिका, मुख, कान इनमें प्रवृत्त हुआ रक्त शीघ्रही शांत होजाता है ॥ २२ ॥

अथ वासादि काथ ।

वासाकषायोत्पलनृत्प्रियङ्गुरोध्राजनाम्भोरुहकेसराणि ॥ पीत्वा

समध्वा ससिता प्रयोज्या पित्ताश्रयं चैव सुदीर्णमाशु ॥ २३ ॥

वांसाका काथ, कमलकी जड़की मांटी, गोंदी, लोध, रसांजन, कमलकेशर, इनमें शहद और मिसरी मिला पीनेसे रक्तपित्त शांत होता है ॥ २३ ॥

अथ निचकाथ अथवा अङ्गुसाका काथ ।

प्रविद्यमाने पिचुवासकेऽस्मिन् कथं नरः सीदति रक्तपित्ते ॥

क्षये च कासे श्वसनेऽपि यक्ष्मे वैद्यः कथं नातुरमादरन्ति ॥ २४ ॥

नीच और अङ्गुसाके रहते मनुष्य क्यों रक्तपित्तसे दुःखित होता है । क्षय, कास, श्वास और यक्ष्मामें वैद्य रोगीको क्यों यही नहीं देते हैं ? ॥ २४ ॥

अथ वासाकी प्रशंसा ।

भिषग्भिषजां माता वा पुरा कृत्य क्रिया यदि ॥ क्रियायते

रक्तपित्ते क्षये कासे च सिद्धिदा ॥ २५ ॥ वासायां विद्यमा-

नायामाशायां जीवितस्य च ॥ रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थम-

वसीदति ॥ २६ ॥

जो यह पहले कहीहुई चिकित्सा है यह सब वैद्योंकी माता है । रक्तपित्तमें, क्षयरोगमें, खांसीमें यह चिकित्सा सिद्धिको देनेवाली है ॥ २५ ॥ जबतक वासा औषध है तबतक इस रोगवाले की जीवनेकी आशा है सो रक्तपित्तरोगवाला और क्षयरोगवाला तथा खांसीवाला पुरुष किसवास्ते दुःख पाता है ॥ २६ ॥

पकाके पीनेसे रक्तपित्तकी शांति होती है ॥ ३० ॥ खैर, कचनाल, गोंदी, शाल्मली इनके पुष्पोंका चूर्ण शहदके संग चाटनेसे इसरोगसे छुट जाता है ॥ ३१ ॥ पीपली और हर-
डेको सात दिनतक वांसाके रसमें भावना दे फिर सुखाके शहदमें युक्त कर खानेसे अत्यंत दुर्जय
रक्तपित्तका नाश होता है ॥ ३२ ॥ इलायची, पद्माक, नागकेशर, दाख, रुद्रजटा, मुलहठी,
पीपली इनको समान भाग ले और इन सर्वोंके समान मिसरी मिला फिर लेह बना लेवे
इसके खानेसे शरीरकी खाज, रक्तपित्त ॥ ३३ ॥ दाह, ज्वरकी पीडा, श्वास, मोह, तृषा,
मूच्छा, वमन इनका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अथ नासाप्रवृत्तरुधिरचिकित्सा ।

श्राणे प्रवृत्तं रुधिरं यदि स्यात्तदा घृतेनामलकीफलानि ॥

तोयेन पिष्ट्वा शिरसि प्रलेपः स रक्तपित्तं सहसा रुणद्धि ॥ ३५ ॥

जो नासिकामें रुधिर प्रवृत्त हो जावे तो घृत और जलमें आंवलोंको पीस शिरपै लेप करना
चाहिये । यह रक्तपित्तको शीघ्रही दूर करता है ॥ ३५ ॥

द्वाक्षारसं वा घृतशर्कराढ्यं जलं सिताढ्यं च सरक्तपित्ते ॥

यवान्नमेवेक्षुरसं सिताढ्यं क्षयं च कासं क्षतजं निहन्ति ॥ ३६ ॥

दाखोंके रसमें घृत और खांड मिला देनेसे और मिसरी जलके संग पीनेसे रक्त-
पित्त दूर होता है और जवका अन्न ईखके रस तथा मिसरीके संग खानेसे क्षय, क्षतरोगसे
उत्पन्न हुई खांसी इनका नाश होता है ॥ ३६ ॥

अथ हरितालिकादि नस्य ।

नस्यं विदध्याद्धरितालिकाया रसेन वालत्करसेन वापि ॥

स्याद्वाडिमस्य प्रसवोद्धवेन रसेन नस्यं रुधिरस्रुतेऽपि ॥ ३७ ॥

कानमें रक्त प्राप्त हो जावे तब आलके रसमें अथवा अनारके रसमें हरताल मिला उसकी
नस्य बनाके देनी चाहिये ॥ ३७ ॥

अथ आम्रादि नस्य ।

आम्रास्थिजम्बूद्ववशर्कराढ्यं नस्यं सिताढ्यं हितकृज्ज्वराणाम् ॥

नासाप्रवृत्तं रुधिरं निहन्ति हिक्कासच्छर्दिश्चसनं विमर्दि ॥ ३८ ॥

आंवकी गुठली, जामनकी गुठली इनको पीस खांडमें मिला अथवा मिसरीमें मिला
नस्य देनेसे ज्वरोंका नाश होता है और नासिकामें प्रवृत्त हुआ रुधिरका नाश होता है और
हिचकी, वमन, श्वास इनका नाश होता है ॥ ३८ ॥

अथ पलांड्वादि नस्य ।

पलाण्डुपत्रनिर्यासनस्य नासाग्रजावहम् ॥

यष्टीमधूमधुयुतं पश्चात्त्रस्येऽस्रजं जयेत् ॥ ३९ ॥

प्याजके पत्तोंकी नस्य देनेसे रक्तापित्तरोग दूर होता है और मुलहटी, शंहद इनकी नस्य देनेसे शीघ्र ही इस रोगका नाश होता है ॥ ३९ ॥

अथ वासादिपानक ।

वासापत्ररसं विधाय मतिमान्योज्यानि चेमानि तु शोथं चोत्पल-
मृत्तिकासमधुकं कुष्ठं प्रियङ्गुवन्वितम् ॥ चूर्णं पुष्परसेन पाचक-
मिदं पित्ताश्रयाणां हितं कासकामलपाण्डुरोगक्षतजश्वासाप-
मर्दि भवेत् ॥ ४० ॥

वांसाके पत्तोंके रसको निचोड़ उसमें लोव, कमलकी जड़की मृत्तिका, मुलहटी, गोंदी इनका चूर्ण मिला और वांसाके पत्तोंका रस मिला फिर इसको खावे यह पाचक है और पित्ताशयवालोंको हित है और खांसी, कामला, पांडुरोग, चोटसे उपजा हुआ श्वासरोग इनको नाशता है ॥ ४० ॥

अथ दाडिमादि रस ।

रसो हितो दाडिमपुष्पकस्य तथैव किञ्जल्करसोत्पलस्य ॥

लाक्षारसो वा पयसा च नस्याद्ग्राणप्रवृत्तं रुधिरं रुणद्धि ॥ ४१ ॥

अनारकी कलीका रस तथा कमलकी केशर और लाखका रस इनका दूधके संग नस्य देनेसे नासिकामें प्रवृत्त हुआ रुधिर रुक जाता है ॥ ४१ ॥

अथ मुखमें प्रवृत्त हुए रुधिरकी चिकित्सा ।

दाडिमपुष्पादि नस्य ।

यदि वदनपथेऽसृक् जायते तस्य कुर्यात्प्रतिविधिमहमेनां
वच्मि सञ्चित्य युक्ताम् ॥ भवति न मुखसाध्यं लोहितं मानु-
षेषु तदनु युवतियोन्यां रक्तवाहस्त्वसाध्यः ॥ ४२ ॥ मधु मधु-
कमुशीरं कज्जकिञ्जल्कदूर्वारसमिह परिपीतं दाडिमस्य प्रसूतम् ॥
मलयजसितकुष्ठं पद्मकं चैव बालं मधु मधुकमुशीरं कोद्रवौ द्रौ
समन्तात् ॥ ४३ ॥ समसुरभिपयो वा धावनं तण्डुलानां परिक-
लितसमग्रं तुर्ग्यभागेन योज्यम् ॥ लघुतरमपि वह्नौ धावितं

सिद्धमेव भवति वदनवृत्ते लोहिते पानमस्य ॥ ४४ ॥ श्रुति-
पथमपि रक्ते वा प्रवृत्ते तु नासं विहितमपि तदा स्यात्पूरणं कर्ण-
नासे ॥ रुधिरमभिरुणद्धि श्वासमाशु क्षतं वा श्वसितरुधिरच्छ-
दिं मेहमुन्मादरोगम् ॥ ४५ ॥ नासाप्रवृत्ते नस्यं स्यान्मुखे
पानं विधेयकम् ॥ कर्णे नेत्रे पूरणं च गुदमार्गे निरुहणम्
॥ ४६ ॥ लिङ्गात् सितायुतं चूर्णं दाडिमस्य त्वचस्तथा ॥ पद्म-
किञ्जल्कचूर्णं वा लिङ्गाद्वा सितया पुनः ॥ ४७ ॥ मुखप्रवृत्तरु-
धिरं रुणद्ध्याशु वमिं क्लमम् ॥ श्वासशोषौ भ्रमं तृष्णां नाशय-
त्याशु निश्चयः ॥ ४८ ॥ जम्ब्वाम्रपल्लवानि स्युर्हरीतक्या यु-
तानि तु ॥ मधुशर्करया युक्तमास्यलोहितवारणम् ॥ ४९ ॥
वटप्रवालार्जुनजम्बुकाप्रकदम्बकानां खदिरस्य वापि ॥ यथा-
प्रपन्नो मधुनावलेह आस्यस्रजं वारयते क्षणेन ॥ ५० ॥

यदि मनुष्यके मुखमें रुधिर प्रवृत्त हो जावे तब उसकी विधिको कहते हैं । मनुष्योंके रुधिरक
विकार सुखसाध्य नहीं है और जवान स्त्रीकी योनिमें भी प्रवृत्त होके बहता हुआ रुधिर असा-
ध्य कहा है ॥ ४२ ॥ शहद, मुलहटी, खश, कमलकेशर, दूब, अनारदाना इनका रस पीना
श्रेष्ठ कहा है और चंदन, कूठ, पद्माख, नेत्रवाला, शहद, मुलहटी, उशीर, दोनों प्रकारके कोदू
धान्य ॥ ४३ ॥ गौका दूध इनका समान भाग ले और चतुर्थांश चावलोंके धोवनका पानी लेवे
फिर इन औषधोंका कल्क बना उसमें मिला मंदर अग्निसे पकावे, पीछे मुखमें प्रवृत्त हुए रुधिरमें
इसका पीना श्रेष्ठ है ॥ ४४ ॥ और कानमें प्रवृत्त हुए रुधिरमें अथवा नासिकामें प्रवृत्त हुए रुधिरमें कानमें
तथा नासिकामें इसको पूरण करे । यह रुधिरको शीघ्र ही नाशता है और श्वास, चोट, श्वासमें प्रवृत्त
हुआ रुधिर, प्रमेह, उन्माद इन रोगोंका नाश होता है ॥ ४५ ॥ जो नासिकामें रुधिर प्रवृत्त हो
जावे तो नस्य देनी चाहिये । मुखमें प्रवृत्त होवे तो पीना चाहिये और कानमें तथा नासिकामें प्रवृत्त
होवे तो पूरण कर गुदामें प्रवृत्त हो तो निरुहबस्ति देनी चाहिये ॥ ४६ ॥ अथवा अनारके फलकी
छालके चूर्णको मिसरीमें युक्त कर भक्षण करना चाहिये तथा कमलकेशरके चूर्णको मिसरीमें मिला
भक्षण करे ॥ ४७ ॥ इससे मुखमें प्रवृत्त हुआ रुधिर और वमन, ग्लानि इनका नाश होता है
और श्वास, शोष, भ्रम, तृष्णा इनको शीघ्र ही नाशता है ॥ ४८ ॥ और जामन, आंव इनके पत्ते,
हरडै इनको खांड और शहदमें मिला खानेसे मुखके रक्तरोगका निवारण होता है ॥ ४९ ॥ वड,
अर्जुनवृक्ष, कदंब, जामुन, आंव, खैर इनमेंसे कोईसे वृक्षकी पीपली और शहद मिला अवलेह
बना चाटनसे मुखमें प्राप्त हुआ रक्तका निवारण होता है ॥ ५० ॥

अथ शतावरीघृत ।

शतावरी मधुकं बला च ससिता काकोलिका दाडिमा मेदः
क्षीरविदारिका च फलिनी स्यात्तिन्तिडीकं बला ॥ सिद्धा
गोपयसाज्यकं हितमिदं पाने तथा वस्तिषु योनौ मेढ्रगुदप्र-
वृत्तरुधिरं हन्यात्सकासक्षयम् ॥ ५१ ॥

शतावरी, मुलहटी, खरहटी, मित्ररी, ककोली, अनारदाना, मेदा, विदारीकन्द, गोंदी, अमली, खरहटी इन औषधोंको गौके दूधमें पकावे, फिर उसमें घृत मिला उसको सिद्ध करे । यह घृत पीनेमें तथा वस्तिकर्ममें हित है और योनि, लिंग, गुदा इनमें प्रवृत्त हुए रक्तको नाशता है और खांसीको दूर करता है ॥ ५१ ॥

अथ मृद्वीकाआदिघृत ।

मृद्वीका मधुकं विदारिवसुधा नीलीसमझाफला काकोल्यो
बृहती युगं वृषमहामेदासितं चन्दनम् ॥ जातीपत्रपटोलश्याम-
समृतासंजीवकाश्वाभया मेदे द्वे च कुचन्दनं मधुरसाः
श्यामाः समांशास्त्वमी ॥ ५२ ॥ पक्का गोपयसा विशुद्ध-
विधिना सिद्धं चतुर्थांशकं मत्स्यण्डी मधुकं च सिद्धमिति
चेत्पानं प्रशस्तं नृणाम् ॥ स्त्रीणां चापि हितं निहन्ति रुधिरं
पित्ताद्भुदे वा भवेन्मेद्रे चापि च रोमकूपकपथे वृत्तं निहन्या-
त्स्रजम्* ॥ ५३ ॥ एतद्वाक्षाभिधानं घृतमपि विहितं रक्त-
पित्ते ज्वरे वा वातास्त्रे योनिशूले भ्रममदशिरसोन्मादरक्तप्रमेहे ॥
पित्ताम्ले चातिकुण्ठे क्षयक्षतरुधिरं राजयक्ष्मेऽथ पाण्डौ पाने
वस्तौ च नस्ये हितमपि मनुजां भाषितं चात्रिणा च ॥ ५४ ॥

मुनका दाख, मुलहटी, विदारीकन्द, लवुखजूरी, नील, मजीठ, त्रिफला, काकोली, दोनों प्रकारकी कटेहली, बांसा, महामेदा, सफेद चन्दन, जावित्री, परवल, निशोथ, गिलोय, जीवक, हरडै, मेदा, महामेदा, लाल चन्दन, मूर्वा, पीपल इन सबोंको समान भाग ले ॥ ५२ ॥ फिर गौके दूधमें पकावे, फिर चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि राख, मुलहटीका चूर्ण इनको मिलावे। इसका पीना मनुष्योंको तथा स्त्रियोंको भी हित है और रक्तरोगको नाशता है और पित्तसे प्राप्त हुआ गुदाका रक्त और लिंग, रोम इन्में प्राप्त हुआ रक्त इनका नाश होता है ॥ ५३ ॥

* अत्र घृतं दत्त्वा साधयेदिति भावार्थः ।

यह द्राक्षा आदि नामक घृत रक्तपित्तमें और ज्वरमें हित है और वातरक्त, योनिशूल, भ्रम, मद, शिरोरोग, उन्माद, रक्तप्रमेह, पित्ताम्ल, अतिकुष्ठरोग, क्षयी, क्षतरक्त, राजयक्ष्मा, पांडुरोग इन सब रोगोंको नाशता है और अत्रिकृषिसे कहा हुआ यह घृत पानमें तथा वस्तिकर्ममें मनुष्योंको हित कहा है ॥ ९४ ॥

अथ कूष्मांडावलेह ।

छल्लि निष्कृष्य कूष्माण्डखण्डानि प्रतिकल्पयेत् ॥ काञ्जिके-
नाशु धौतानि पुनरेव जलेन तु ॥ ९५ ॥ पश्चात्क्षीररसप्रस्थे कल्क-
येत्पुनरेव च ॥ घृतेन पुनरेवैतत्पाचयेत्सुविधानतः ॥ ९६ ॥ यदा
मधुनिभानि स्युस्तदा शर्करया सह ॥ निधाय तत्र चेमानि भेष-
जानि प्रकल्पयेत् ॥ ९७ ॥ पिप्पली शृङ्गवेराभ्यां द्वे पले मरिचानि
चाजीरके द्वे तथा धात्री त्वगेलापत्रकं तथा ॥ ९८ ॥ पला-
द्धेन विद्युज्जीयाञ्छूर्णं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ दाव्या विघट्टयेत्ताव-
ल्लेहीभूतं यदा भवेत् ॥ ९९ ॥ तदा मधुघृतेनापि लिह्याज्ज्ञात्वा
बलाबलम् ॥ रक्तपित्तं क्षयं कासं कामलं नैमिकं भ्रमम् ॥ १०० ॥
छर्दितृष्णाज्वरश्वासपांडुरोगान् क्षतक्षयम् ॥ अपस्मारं शिरो-
र्तिश्च योनिशूलं च दारुणम् ॥ १०१ ॥ चिरं योनौ रक्तवाहं मन्द-
ज्वरनिपीडनम् ॥ वृद्धोऽपि च युवा कामी वन्ध्या भवति पुत्रिणी
॥ १०२ ॥ अवीर्यो वीर्यमाप्नोति भवतेस्त्रीणां प्रियो नरः ॥
एष कूष्मांडको लेहः सर्वरोगनिवारणः ॥ १०३ ॥

कोहलेको छील उसके टुकड़े बनाके कांजीसे धोवे पीछे जलसे धोवे ॥ ९५ ॥ फिर उसका कल्क बना ६४ तोले दूध मिला पीछे ६४ तोले घृत मिला अच्छे विधानसे पका लेव ॥ ९६ ॥ जबवे कोहलाके टुकड़े शहदके समान वर्णवाले हो जावें तब खांड मिला इन आगे कही हुई औषधोंको मिलावे ॥ ९७ ॥ पीपल, अदरक, मिरच ये आठ आठ तोले और दोनों जीरे, आवले, दालचीनी, इलायची, तेजपात ॥ ९८ ॥ ये दो दो तोला मिला चूर्ण बनाके गेरेफिर कडलीसे चलावे जब लेह बन जावे ॥ ९९ ॥ तब बलाबलको विचार शहद और घृतके संग इसको खावे । यह अवलेह रक्तपित्त, क्षयी, खांसी, कामला, चक्करकी तरह भ्रम इन रोगोंको नाशता है ॥ १०० ॥ और छर्दि, तृष्णा, ज्वर, श्वास, पांडुरोग, क्षतक्षय, मृगीरोग, शिरकी पीड़ा, दारुण योनिशूल ॥ १०१ ॥ बहुतसा बहता हुआ योनिका रक्त,

मन्दज्वरकी पीडा, इनका नाश होता है और वृद्ध पुरुष भी जवान और कामी होता है, वंध्या स्त्री पुत्रवाली हो जाती है ॥ ६२ ॥ और जिसके वीर्य नहीं हो वह वीर्यवाला हो जाता है और स्त्रियोंको प्रिय होता है । यह कूष्मांडकावलेह सम्पूर्ण रोगोंको निवारण करता है ॥ ६३ ॥

अथ अन्यकूष्मांडका अवलेह ।

सुस्निग्धकूष्माण्डकखण्डकानि पलानि पञ्चाशद्व्यो सितायाः ॥
 युञ्ज्यात्सतोयं प्रणिधाय धीमान् घृतेन प्रस्थं परिपक्वमेव ॥ ६४ ॥
 विज्ञाय पक्वं पुनरेव तत्र वासाकपायञ्च विमिश्रयेच्च ॥ दावीप्र-
 लेपो भवतीति ज्ञात्वा चेमानि वस्तूनि पुनर्वियुञ्ज्यात् ॥ ६५ ॥
 गन्धत्रयामलकरुद्रजटा च भाङ्गी युञ्ज्यादिमानि सकला-
 नि च कर्षकाणि ॥ धान्या पुनर्नवयुतानि च नागराणि एषां पले-
 न तुलिता कथिता च मात्रा ॥ ६६ ॥ श्यामापलाष्टकमिदं
 विदधीत चूर्णं संघट्टयेत्सकलमेव पुनस्तु दर्व्या ॥ युञ्ज्यात्समं
 मधुयुतं सकलामयघ्नं कासं ज्वरं क्षतजमाशु निहन्ति हिक्काम्
 ॥ ६७ ॥ हृद्गोपित्तरुधिरं क्षयपीनसं च पित्ताम्लकं विजयते
 श्वासनं च मूर्च्छाम् ॥ स्त्रीणां हितं भवति बालकवृद्धकेषु श्रेष्ठं
 समस्तरुजनाशबलप्रदं च ॥ ६८ ॥

अच्छे सुन्दर कोहलाके चिकने चिकने टुकड़े बना फिर तिसमें २०० तोले मिसरी मिलावे पीछे तिसमें जल मिला और ६४ तोले घृत मिला तिसको पकावे ॥ ६४ ॥ जब पक जावे तब उतार तिसमें वांसाका काथ मिलाके फिर पकावे जब कडछीमें चपकने लगजावे तब इन औषधोंको गेरे ॥ ६५ ॥ आंवला, रुद्रजटा, भारंगी, सुगंधत्रय, दालचीनी, तेजपात, इलायची इन्हेंको एक एक तोला प्रमाण लेवे । सांठी, सौंठ, धनियां इन्हेंको चार चार तोले गेरे और निशोधका चूर्ण ३२ तोले मिलावे पीछे इन सबोंको मिला ॥ ६६ ॥ कडछीसे घोटे फिर इसको बराबरके शहदमें मिलाके खावे । यह अवलेह खांसी, ज्वर, क्षतरोग, हिचकी ॥ ६७ ॥ हृदयरोग, पित्तरक्त, क्षर्श, पीनस, पित्ताम्ल, श्वास, मूर्छा इन रोगोंको नाशता है और स्त्री, बालक, वृद्ध इनको श्रेष्ठ है, बलको देनेवाला है ॥ ६८ ॥

अथ खंडकाद्यरसायन ।

शतावरीमुण्डितिकामृता च फलाचत्वक्पुष्करमूलभाङ्गी ॥ वृषो
 बृहत्या खदिरं च मांशली पृथक्पृथक् पञ्चपलैकमात्रया ॥ ६९ ॥

उत्तार्य पक्कं जलमाशु पश्चाद्यावद्भवेच्छेषमथैव पूतम् ॥ विमू-
 छितं तत्र निधाय धीमान्पलं तथा द्वादशमाक्षिकस्य ॥ ७० ॥
 तथैव चूर्णस्य च लोहकस्य विघट्टितं खण्डघृतेन तुल्यम् ॥
 देयं पलं षोडशकं विधिज्ञो विपाचयेल्लोहमये च पात्रे ॥ ७१ ॥
 गुडेन तुल्योऽपि विभाति यावत्तुगा विडंगं मगधा च शुण्ठी ॥
 भृङ्गं फला कंटकजीरयुग्मं कंकोलधान्यं सह केसरेण ॥ ७२ ॥
 पलेन मात्रां विदधीत सम्यक् सुघट्टितं चूर्णमिदं घृतस्य ॥ स्निग्धे
 कटाहे प्रणिधाय युञ्ज्यात्कर्षप्रमाणं विदधीत चूर्णम् ॥ ७३ ॥
 प्रभातकालेऽनुपिवेत् सरःपयो गुरूणि चाम्लानि च वातलानि
 वा ॥ भगन्दरादिश्वयथून्निहन्ति वै रक्ताम्लकं वा श्वसनञ्च
 यक्षिमणम् ॥ ७४ ॥ विशोषणं कुष्ठरुजां च गुल्मान्बलप्रदं वृष्यतमं
 प्रदिष्टम् ॥ स रक्तपित्तं सहसा निहन्ति योनिप्रभावं च सरक्त-
 शूलम् ॥ ७५ ॥ रक्तातिसारं रुधिरप्रमेहं समेद्वस्तौ विहितं
 नराणाम् ॥ सौभाग्यदं कान्तिकरं प्रपुष्टिं तेजो बलौजश्च तथा
 तनोति ॥ ७६ ॥

शतावरी, गोरखमुंडी, गिलोय, त्रिफला, दालचीनी, पोहकरमूल, भारंगी, वांसा, कटेहली,
 खैर, मुसली इनको जुदे २ बीस बीस तोला प्रमाण लेवे ॥ ६९ ॥ फिर इनको जलमें पकावे
 जब चतुर्थांश काथ बाकी रहे तब उतार तिसको वस्त्रमांहेके छानी पीछे इन आगे कही हुई
 औषधोंको गेरे ४८ तोले प्रमाण शहद मिलावे ॥ ७० ॥ और ४८ तोले प्रमाण लोहाका
 चूर्ण गेरे और खांड तथा घृत इनको समानभाग ६४ तोले प्रमाण गेरे फिर लोहेके पात्रमें
 पकावे ॥ ७१ ॥ पीछे पकके गुड़के समान हो जावे तब वंशलोचन, वायविडंग, पीपली, सोंठ,
 दोनों जीरे, गोखरू, त्रिफला, मंगरा, धनियां, मिरच, केशर ॥ ७२ ॥ इन सबोंको चार २
 तोला प्रमाण लेवे पीछे इन सबोंका चूर्ण मिला अच्छीतरह घोट घृतके चीकने कडाहेमें घाल
 थरे पीछे इसको एक तोला प्रमाण हमेशा खावे ॥ ७३ ॥ प्रातःकाल सरोवरके जलका अनुपान
 करे और भारी तथा खड़े और वातवाले पदार्थ खाने चाहिये । वह भगंदर, शोजा, रक्ताम्ल, श्वास,
 राजयक्ष्मा ॥ ७४ ॥ विशोष, कुष्ठरोग, गुल्म इन रोगोंका नाश करता है और बलको देने-
 वाला है और वीर्यमें हित है और रक्तपित्तरोगको शीघ्र ही नाशता है और योनिमें बहता हुआ
 रक्त, योनिका शूल ॥ ७५ ॥ रक्तातिसार, रुधिरमेह, लिंगका रोग और वस्तिस्थानका

रोग इनको नाशता है और कांतिको करनेवाला है सौभाग्यप्रद है और तेज, पुष्टि, बल इनको बढ़ाता है ॥ ७६ ॥

अथ रक्तातिसारचिकित्सा ।

रक्तातिसारे च प्रयोजनीयं रक्तप्रवाहे सरुजे सदाहे ॥ फलत्रिकं चातिविषा समङ्गा सपर्पटं दाडिमधातकीनाम् ॥ ७७ ॥ क्षौद्रेण सध्वा सहितं च चूर्णं तथैव दध्ना सघृतं सलेहम् ॥ रक्तातिसारं रुधिरप्रवाहं योनिप्रवाहं सततं स्त्रियश्च ॥ ७८ ॥ निवारयत्याशु हितं नराणां बालातिसारे प्रशमाय योग्यम् ॥ ७९ ॥

रक्तातिसार तथा पीडासहित और दाहसहित रक्तप्रवाह, इन रोगोंमें त्रिफला, अतीश, मंजीठ, पित्तपापड़ा, अनारदाना, धवके फूल ॥ ७७ ॥ इनका चूर्ण बना उसमें खांड और शहद मिला और दही, घृत ये मिला फिर अवलेह बनाके देना चाहिये । यह अवलेह रक्तातिसार, रुधिरप्रवाह, स्त्रीके निरंतर योनि का प्रवाह ॥ ७८ ॥ इनका निवारण करता है और मनुष्योंको हित है । बालकके अतिसारको शांत करता है ॥ ७९ ॥

अथ योनिप्रवाहाचिकित्सा ।

योनिप्रवाहे मधुकं समङ्गा एलादलं निम्बदलानि पथ्या ॥ मुस्ता विशाला कटुरोहिणी च कल्को हितः शर्करया युतोऽयम् ॥ ८० ॥ योनिप्रवाहं विनिवारयेच्च सयोनिशूलं सरुजां तृषा-
र्तिम् ॥ एला समङ्गा सहशाल्मलीभिर्हरीतकी मागधिका समांशा ॥ ८१ ॥ काथोदितः शर्करया समध्वा योनिप्रवाहं विनिवारयेच्च ॥ ८२ ॥

योनि के प्रवाहमें मुलहठी, मंजीठ, इलायचीके पत्ते, नींबूके पत्ते, हरडै, नागरमोथा, इंद्रायण, कुटकी इन औषधोंका कल्क बना उसमें खांड मिला खाना चाहिये ॥ ८० ॥ यह विशेष करके योनि के प्रवाहको दूर करता है और पीडासहित योनिशूल, तृषाकी पीडा इनको दूर करता है और इलायची, मंजीठ, सैमर, हरडै, पीपली इनको समान भाग ले ॥ ८१ ॥ काथ बना उसमें खांड और शहद मिला पीनेसे रक्तप्रवाह दूर होता है ॥ ८२ ॥

घर्मातपान्ते च विदाहि चाम्लं सौवीरकं वा कटुकं कषायम् ॥ क्षारं सुरां वा परिवर्जनीयं सरक्तपित्ते मनुजे हिताय ॥ ८३ ॥ वास्तूकचिल्ली सुनिषण्णकश्च जीवन्तिका वा शतपुष्पिका वा ॥

शाका हिता रक्तभवे च पित्ते मुद्गास्तथा लोहिततण्डुलाश्च
 ॥ ८४ ॥ यवगोधूमचणकाः कोशातक्यः पटोलकम् ॥ मुद्गा
 माषा हिताश्चैव रक्तपित्तनिवारणे ॥ ८५ ॥ हरिणशशकलावास्ति-
 तिरास्ते कुलिङ्गाः अपि च शिखिककेरकौञ्जपारावतानाम् ॥
 पलमनिलसुपित्तावर्हणं वा हितञ्च भवति बलममोघं सत्त्वते-
 जश्च कान्तिः ॥ ८६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने
 रक्तपित्तचिकित्सा नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

रक्तपित्तरोगमें मनुष्यके हितके वास्ते घाम, अग्निकी गरमाई, बिदाही, खट्टा पदार्थ,
 कांजी, चर्चरा, कसैला पदार्थ, खारा और मदिरा इनको वर्ज देवे ॥ ८३ ॥ वथुआ
 चिल्ली, चौपतिया, कुरडू, जीवंतिकाशाक, सौंफ इनके शाक ये सब रक्तपित्तमें हित कहे हैं
 और मूंग, लाल चावल ये हित कहे हैं ॥ ८४ ॥ और जव, गेहूं, चणे, तूरीधान्य, परवल,
 मूंग, उडद ये अन्न रक्तपित्तको निवारण करनेमें हित कहे हैं ॥ ८५ ॥ हिरन, चौगड़ा, लावा,
 तीतर, चिमणापक्षी, ककेरा, मयूर, कूँजि, परेवापक्षी इनका मांस खानेसे और वातपित्तके
 नाशक मांसके खानेसे अमोघ बल होता है और सत्त्वगुण, तेज, कान्ति इनको बढ़ाता है ॥ ८६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशाह्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने रक्तपित्तचिकित्सानाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथ एकादशोऽध्यायः ११.

अथ अर्शचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अथातो वक्ष्यते पुत्र अर्शसश्च चिकित्सि-
 तम् ॥ षट्प्रकारेण ये प्रोक्तास्तेषां च शृणु लक्षणम् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! अब अर्श अर्थात् बवासीर रोगकी चिकित्सा कहते हैं,
 जो छह प्रकारके बवासीररोग कहते हैं उन्हींके लक्षणको सुनो ॥ १ ॥

अथ अर्शके प्रकार ।

जाता दोषैस्त्रिभिरपि वातपित्तकफादिकैः ॥ सन्निपाते चतुर्थः
 स्यात्पञ्चमो रक्तसम्भवः ॥ २ ॥ षष्ठकः सहजो ज्ञेयश्चार्शसां
 षड्विधो भवः ॥ एवं च षट्प्रकारेण जायन्ते गुदजा रुजः ॥ ३ ॥

वातसे १ पित्तसे २ कफसे ३ और सन्निपातसे उपजा चौथा और रक्तसे उपजा हुआ पांचवां बवासीर रोग होता है ॥२॥ और छटा सहज अर्थात् स्वभावसे ही उपजा हुआ होता है । इस प्रकारसे गुदाके रोग छः तरहसे होते हैं ॥ ३ ॥

अथ वातार्शके हेतु और संप्राप्ति ।

अनशनलघुखशाहारसंसेवनेन कटुलवणविदाहेः सेवयावातरो-
धात् ॥ भवति सततवीप्सा विष्टरेणैव हीना कुपितमरुतवेगाद-
र्शसां भूतिरासीत् ॥४॥ अनशनोपविष्टस्य मलमूत्रावधारणे॥
शीतसंसेवनेनापि गुदजः संप्रकुप्यति ॥५॥ लवणकटुकपाया
तिक्तसंसेवनेन अमितविलघुभोज्याच्छीतलेनातिरोधात् ॥
कुपितमलिननामापानमार्गेष्वपाने सृजति रुधिरवातोऽपान
मार्गेमरुत्सु ॥ ६ ॥

अनशन अर्थात् भोजन नहीं करनेसे हलका और सूखा भोजन करनेसे और चर्चरा, नमक, विदाही ऐसे पदार्थके खानेसे और वातके रोकनेसे और आसनपै निरंतर नहीं बैठनेसे वायु कुपित हो जाता है, उससे बवासीर रोग हो जाता है ॥४॥ जो भोजन किये बिना बैठ रहे और मलमूत्रके वेगको रोकें और शीतल वस्तुका सेवन करे उसके गुदाका वायु कुपित हो जाता है ॥ ५ ॥ नमक, चर्चरा, कसैला, कटुआ इन वस्तुओंके सेवनेसे अत्यंत ज्यादा हलके भोजनसे वायु कुपित होके मलिननामवाले अपानवायुको गुदामें रहनेवालेको विगाड़ देता है फिरवह अपानवायु गुदामें रक्तका रोग हो जाता है ॥ ६ ॥

अथ पित्तार्शका हेतु ।

कटुम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरुणि च ॥ सेवनाद्वायुतोयेन
श्रमाद्वायामपीडया ॥ यानव्यवायदोषाद्वा दुर्नामा पित्तसम्भवः ७

और चर्चरा, खट्टा, नमक, गरम, विदाही, भारी ऐसे पदार्थके सेवनेसे वायु, जल इनके सेवनेसे, श्रमसे, कसरतकी पीडासे, असवारी और मैथुनके दोषसे पित्तसे उपजा बवासीर होता है ॥ ७ ॥

अथ कफार्शका हेतु ।

अव्यायामात्तस्य शीलादजसं शीताद्धान्याद्वातसंसेवनाच्च ॥

लौल्यात्यम्लान्नैलसंपिच्छलेन दुर्नामा संजायते श्लेष्मरोगात् ८

कसरत नहीं करनेसे अथवा निरंतर कसरत करनेसे, शीतल वस्तुके सेवनेसे और वायुके सेव-

नेसे और जिसकी गुल्ली बंधती हो ऐसे पदार्थसे तथा अत्यंत खट्टा पदार्थ सेवनेसे कफसे उपजा हुआ बवासीर हो जाता है ॥ ८॥

अथ वातार्शका लक्षण ।

शीतत्वतोदं परुषं विनिद्रा गुल्मोदराष्टीलविषूचिका वा ॥

शोफाबुभौ कृष्णनखस्य नेत्रे लिङ्गानि वातप्रभवार्शसानाम् ॥ ९ ॥

शीतलता रहे, व्यथा हो, कठोरता हो, निद्रा नहीं आवे और गुल्मोदर, अष्टीला, विषूचिका, शोजा ये उपद्रव हों और नख, मुख, नेत्र ये काले रहें ये वायुसे उपजे हुए बवासीरों-
गके लक्षण हैं ॥ ९ ॥

अथ पित्तार्शका लक्षण ।

दाहभ्रमौ ज्वरपिपासिशरीरतो वा मूर्छारुचिर्नयनदन्तमुखानि
यस्य ॥ पीतच्छविर्भवति वा विटभेदनं च पित्तेन जातगुदजस्य
च लक्षणानि ॥ १० ॥

दाह हो, भ्रम हो, ज्वर हो, तृषा हो, शरीरमें मूर्च्छा हो, अरुचि हो और नेत्र, दांत, मुख, ये
जिसके पीले हो जावें विष्टा ढीला हो जावे ये पित्तसे उपजे बवासीरके लक्षण हैं ॥ १० ॥

अथ कफार्शका लक्षण ।

निद्रा च जाड्यघनमन्दरुजा च शोफा शूलातिगुल्मगुदभङ्गुरका-
स्तथा स्युः ॥ विड्वन्धतोदमरुचिर्गतिमन्दता च श्लेष्मोद्भवा
गुदरुजः खलु भषजज्ञ ॥ ११ ॥

निद्रा हो, जडता हो, भारीपन हो, मंद पीडा हो, शोजा हो, शूल, अत्यन्त गुल्म, गुदाका भंग,
विड्वन्ध, व्यथा, अरुचि, मंदगति ये लक्षण हों वह कफसे उपजा बवासीर जानना ॥ ११ ॥

अथ त्रिदोषार्शका लक्षण ।

शूलानाहारुचिः कासो हृष्टासो रुचितोदता ॥

स्कन्धयोजार्जव्यता सर्वाश्वाशासि संभवन्ति हि ॥ १२ ॥

शूल हो, अफारा हो, अरुचि हो, खांसी हो, थुकथुकी हो, अरुचिकी पीडा हो, कंधोंमें जडता ये
सब दोषोंसे उपजे बवासीरके लक्षण हैं ॥ १२ ॥

अथ गुदरोगलक्षण ।

गुदजलक्षणं वक्ष्ये गदे कण्डूरसृक्स्त्रवः ॥ परुषा विषमा दीर्घा
वातेन गुदजा मताः ॥ १३ ॥ सदाहाश्च विचित्राश्च पीता नीला-

वभासिकाः॥लोहितं स्रवते सोष्णं पित्तेन गुदजा मताः॥१४॥
 सदाहाः कठिना ये तु तत्र पाको विबन्धता ॥ शीतकण्डूसम-
 स्थूलाः कफेन गुदजा मताः ॥१५॥ सदाहाः सरुजः श्यावाः
 कण्डूः शोषश्च जायते॥स्रवते सततं रक्तं ते कण्डूासृग्भवार्षासाः
 ॥१६॥ धान्याङ्कुरसमाकाराः क्रिमयः संभवन्ति च॥वातवर्च-
 समालिङ्गा गुदजाः संभवन्ति हि ॥ १७ ॥ वक्रास्तीक्ष्णाः
 स्फुटितवदना दीर्घविम्बीफलाभाः केचित्सिद्धार्थककणनिभाः
 कालखर्जूरकाभाः ॥ कर्कन्ध्वाभाःकमलजसमा वा कलम्बेन
 तुल्या वायोश्चैते मनुजविहिताः सम्भवाश्चार्शासां च ॥१८॥

अब गुदाके रोगके लक्षणको कहते हैं । गुदामें खाज हो, रक्त प्रवृत्त हो, कठोर हो, विषम हो, दीर्घ हो ये वातसे उपजे गुदाके ववासीरोंके मसोंके लक्षण हैं ॥ १३॥ दाहवाली हों विचित्र हों नीलावर्णवाली हों, गरम रुधिर गिरता हो ये पित्तसे उपजे ववासीरके मसोंके लक्षण हैं ॥ १४॥ और दाहवाली हों कठिन हों पकी हुई हों विग्रवन्ध हों शीली हों, और खाजहो समान हों और स्थूल हों ये कफसे उपजी ववासीरकी गुमड़ियोंके लक्षण हैं ॥ १५॥ और जो दाहसहित हों, पीड़ासहित हों कपिशवर्णवाली हों, खाज हो, शोष हो और निरन्तर रक्त गिरे ये खाजसहित रक्तसे उपजे ववासीरके लक्षण हैं ॥ १६ ॥ और धान्यके अंकुरके समान चिह्नवाले क्रिमि हो जाते हैं और वायुके विष्टाके समान लिंगवाले होते हैं ॥ १७ ॥ और टेढ़े, खुले हुए मुख-वाले, तीक्ष्ण, बड़े गूलरके फलके समान तेजवाले, कलौंजीके समान आकारवाले और कुछ काली खजूरीके समान आकारवाले और कुछ वेरके समान आकारवाले अथवा सिरसमके फलके समान आकारवाले तथा कमलगट्टाके समान आकारवाले ऐसे मस्से वायुसे उत्पन्न हुए ववासीरके होते हैं ॥ १८ ॥

अथ अशके स्थान ।

गुदे नासिकायां च कर्णे मुखे वा तथानेत्रकोणे च योन्यन्त-
 रे वा ॥ असाध्या भवन्तीह रोगा नराणां क्रिया यत्नतस्तत्र
 सम्यग् विधेया ॥ १९ ॥

और गुदा, नासिका, कान, मुख, नेत्रोंके कोणमें, योनि का मध्य इन्हींमें मनुष्योंके अश-
 रोग होते हैं सो साध्य नहीं हैं वहां यत्नसे क्रिया करनी चाहिये ॥ १९ ॥

अथ गुदामे अर्शका स्थान ।

त्रिवलीगुदमध्ये तु बाह्यतोऽभ्यन्तरेषु च ॥ अर्शसां तु विजा-
नीयात्रीणि स्थानानि चैव हि ॥ २० ॥ बाह्यतः सुखसाध्यः
स्यान्मध्ये कष्टेन सिध्यति ॥ असाध्योऽन्तर्वलीजातो गुदजो
भिषजां वर ॥ २१ ॥

गुदाके बाहिर और भीतर त्रिवली होती है सो बवासीरोंके तीन स्थान हैं ॥ २० ॥
बाहिरके स्थानका बवासीर सुखसाध्य है और जो मध्यमें हो वह कष्टसाध्य होता है और
जो गुदाके अन्तर्वलीमें हो वह असाध्य रोग कहा है ॥ २१ ॥

अथ अर्शकी चिकित्साका प्रकार ।

प्रलेपवर्त्तिभिः स्वेदैर्बाह्याः सिध्यन्ति चोत्तमाः ॥ यन्त्रशस्त्रेण
मध्यास्तु अन्तर्जाश्चान्तरौषधैः ॥ २२ ॥ तस्मात्पुत्र प्रयत्नेन
क्रिया कार्या विजानता ॥ येनातुरस्य रक्षा स्याद्येन रोगो
निवर्त्तते ॥ २३ ॥

प्रलेप, वत्ती लगाना, स्वेद इनसे बाहिरकी पिंडिका सिद्ध होती है और गुदाके मध्यके
मन्सोंको यन्त्र शस्त्रसे सिद्ध करे और अन्तर भीतरके बवासीरको औषधोंसे सिद्ध करे ॥ २२ ॥
हे पुत्र ! इस वास्ते जानते हुए वैद्यको ऐसी क्रिया करनी चाहिये कि, जिससे रोगीकी रक्षा
हो जावे और रोग निवृत्त होवे ॥ २३ ॥

अथ अर्शरोगके उपद्रव ।

करचरणमुखे वा नाभिमेदू गुदे वा भवति हि यदि पुंसां शोफ-
शोषो ज्वरश्च ॥ श्वसनतमकच्छर्दिर्मोहहृत्पार्श्वशूल कृशमरु-
चिविवन्धश्चातिसारोपसर्गाः ॥ २४ ॥ इत्येवं द्वादशार्शसां
संभवन्ति ह्युपद्रवाः ॥ उपद्रवैर्विना साध्या न साध्या बहू-
पद्रवाः ॥ २५ ॥

यदि मनुष्योंके हाथ, पैर, मुख, नाभि, लिंग, गुदा इनमें शोजा और शोष हो तथा
ज्वर हो, श्वास हो, अन्वैरी आवे, छर्दि हो, मोह हो, हृदयमें पसलीमें शूल हो, दुर्बलता, अरुचि, मलका
वन्धा, अतिसार ये होंवें तो ॥ २४ ॥ ये बारह प्रकारके बवासीरके उपद्रव जानने । उपद्रवोंके
विना तो बवासीर रोग साध्य है और उपद्रवोंसहित बवासीर असाध्य है ॥ २५ ॥

अथ असाध्य अर्श ।

शूलारोचकतृष्णार्तश्चातिरक्तप्रवाहवान् ॥

शूलशोफातिसारात्तो ध्रुवं न जीवतेऽर्शसा ॥ २६ ॥

शूल, अरुचि, तृषा इनकी पीड़ावाला और रक्तके प्रवाहवाला, शोफा अतिसार इनकी पीड़ासे युक्त ऐसा अर्शरोगवाला पुरुष नहीं जीवता है ॥ २६ ॥

अथ पाचनकाथ ।

अतोऽर्शसां प्रवक्ष्यामि क्रियां चैव भिषग्वर ॥ वटिकाक्षारशस्त्राणि
येन संपद्यते सुखम् ॥ २७ ॥ अर्शसां च क्रियाः प्रोक्ताश्चाशौघा
वलवर्द्धनाः ॥ पित्तशोणितशमना न च वातप्रकोपनाः ॥ २८ ॥
तस्यादौ पाचनं श्रेष्ठं ततो भेषजमाहरेत् ॥ पथ्यामृता च
धनिका पाने काथो गुडान्वितः ॥ २९ ॥

हे उत्तम वैद्य ! अब बवासीररोगोंकी क्रियाको कहते हैं गोली, क्षार, शस्त्रक्रिया इन इला-
जोंसे सुख होता है ॥ २७ ॥ अर्शरोगोंको नाशनेवाली और वलको बढ़ानेवाली अर्शरोगकी
क्रिया कही है जो क्रिया रक्तपित्तको शांत करनेवाली और वातको कोप नहीं करनेवाली हो सो
करनी चाहिये ॥ २८ ॥ बवासीरकी आदिमें पाचन औषध करे पीछे अन्य औषध करे और
हरडै, गिलोय, धनियां इनका काथ बना उसमें गुड़ मिला पीना चाहिये यह पाचन औषध
कहा है ॥ २९ ॥

अथ कल्कयोग ।

दन्ती विडङ्गभगधा धान्या भल्लातकं कुष्ठगुडं तिलं वा ॥

एषां च कल्कः पयसा प्रयुक्तः निहन्ति पाने गुदजांश्च रोगान् ॥ ३० ॥

जमालगोटाकी जड़, वायविडंग, पीपली, धनियां, भिलावा, गुड़, तिल, कूठ इनका कल्क
बना दूधसे युक्त कर भक्षण करनेसे गुदाके रोगोंको नाशता है ॥ ३० ॥

नागरपिप्पलिविल्वविडङ्गं शट्यभया त्रिवृता पयदन्ती ॥

कल्कमिदं सगुडं प्रतिपाने वार्शसि नाशनकारि नराणाम् ॥ ३१ ॥

सोंठ, पीपली, वेलगिरी, वायविडंग, जमालगोटाकी जड़, कचूर, हरडै निशोथ और जमाल-
गोटा इनका कल्क बना गुड़ मिला खानेसे मनुष्योंके बवासीररोगोंका नाश होता है ॥ ३१ ॥

अथ पत्रकादिकाथ ।

पत्रककेसरशुण्ठिसमैलातुम्बुरुधान्यविडंगतिलानाम् ॥

काथो हरीतकिसर्पिर्गुडेन पीतो निहन्ति गुदे गदजानि ॥ ३२ ॥

तेजपात, नागकेशर, सोंठ, इलायची, धनियां, वायविडंग, तिल, हरडै इनको समान ले और धनियांको दो भाग ले फिर काथ बना गुड़ मिलाके पीनेसे गुदाके रोगोंका नाश होता है ॥ ३२ ॥

अथ पिप्पल्यादियोग ।

पिप्पलिकामभयां गुडयुक्तां प्रातरिमां यदि खादति कश्चित् ॥

तस्य गुदागतकीलकमाशु निहन्ति सकामलपाण्डुजरोगान् ३३

पीपल, हरडै इनको गुड़में मिला प्रातःकाल जो मनुष्य भक्षण करता है उसका गुदकीलकरोग शीघ्रही नष्ट होता है और कामला, पांडु इन रोगोंके समूहोंका नाश होता है ॥ ३३ ॥

अथ वार्ताकयोग ।

सुस्विन्नवार्ताकफलस्य तोयं दध्ना सिताह्वासलिलामृतेन ॥

पाने विधेयं गुदकीलकानां क्रिमीन्निहन्त्यात्क्रिमिजांश्च रोगान् ३४

वैंगने स्वेदित करके इनके जलमें दही और मिसरी मिलाके और अन्यजल मिलावे पीछे इसके पीनेसे गुदकीलकरोगका नाश होता है ॥ ३४ ॥

अथ भल्लातकचतुष्टय ।

भल्लातकाः कृष्णतिलाश्च पथ्या चूर्णं गुडेनापि नरस्य सेव्यम् ॥

ह्न्याच्च पाने गुदकीलमेहशूलार्शकासान् विनिहन्ति तस्य ३५

मिलावे, कालेतिल, हरडै इनके चूर्णको गुड़के संग खानेसे गुदकीलक रोग दूर होता है और प्रमेह, शूल, बवासीर, खांसी इनका नाश होता है ॥ ३५ ॥

सूरणकन्दकमर्कदलैस्तु वेष्टितमेव हि कर्दमलिप्तम् ॥ तप्तमिदं

किल वह्निसमानं भक्ष्यं सैन्धवतैलविमिश्रम् ॥ ३६ ॥ भक्षति

चार्शविनाशनहेतोर्वातविकारहितोऽपि नरस्य ॥ ३७ ॥

जमीकंदको आकके पत्तोंसे लपेट उसपै गारा लीप फिर अग्निमें स्थापित कर देवे, जब तपके अग्निके समान हो जावे तब तैल और सैन्धानमक मिला और दूध मिला ॥ ३६ ॥ भक्षण करनेसे बवासीर दूर होता है और वायुके विकार भी दूर हो जाते हैं ॥ ३७ ॥

अथ कल्याणनामक लवण ।

चित्रकपुष्करमूलशटीनां तेषु समांशास्तिला विनियोज्याः ॥

सूरणकन्दकखण्डसमेतास्तेषु समोऽग्निफलानि विदध्यात् ॥

॥ ३८ ॥ सैन्धवं तस्य चतुर्गुणकञ्च भावितमर्कदलेन सम-

स्तम् ॥ तञ्च घृतस्य घटे विनिधायारण्यसुगोमयवह्निविष-

कम् ॥३९॥ क्षीरमिदं लवणाज्यविपक्वं तक्रयुतं प्रतिपानमतो-
ऽपि॥ नाशयति गुदकीलककीलान्हन्ति विपूचिभगन्दरोगान्
॥४०॥ कामलपाण्ड्वानाहविवन्धान्गुल्ममरोचकनाशनकारी॥
मूत्रगदं गलकण्डुक्रिमीणां नाशनभद्रकसैन्धवो नाम ॥ ४१ ॥

चीता, पोहकरमूल, कचूर इनके समान तिल और जमीकंदके टुकड़े और इनके समान मालकांगनी ॥ ३८ ॥ इन सबोंसे चार भाग सैन्धानमक इन सबोंको आकके पत्तोंके रसमें भावना दे पीछे इसको घृतके चिकने घड़ेमें घालके आरनोंकी अग्निमें पकावे ॥ ३९ ॥ पीछे इसको दूधमें पकावे । फिर नमक घृत इनमें पका तक्रके संग पीनेसे गुदकीलकरोगोंका नाश होता है और विपूचिका, भगंदर ॥ ४० ॥ कामला, पांडुरोग, आनाह, मलका बंधा, गुल्म, अरुचि इनका नाश होता है और मूत्ररोग, गलरोग, क्रिमिरोग इनको यह कल्याणलवण सैन्धव औषध नाशता है ॥ ४१ ॥

अथ भल्लातकवटक ।

त्रिकटुकमगधानां मूलचित्रं त्रिगन्धं समतुलितसमीपां तुल्यभ-
ह्मातकानि ॥ सकलमिह समन्तादेकतः सम्प्रचूर्ण्य द्विगुणतु-
लितमात्रं योजनीयो गुडस्तु ॥ ४२ ॥ सकलमपि विकुट्य
स्निग्धभाण्डे निधाय प्रतिदिनमपि सेव्यं चाक्षमात्रं सुधीरैः ॥
गुदजजठररोगं शूलगुल्मान्क्रिमीस्तु जनयति वडवाग्निं हन्ति
पांडुं क्षयं वा ॥ ४३ ॥

त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, चीता, त्रिगन्ध अर्थात् दालचीनी, तेजपात, इलायची इनको समान भाग लेवे और सबोंके समान मिलावे लेवे पीछे इन सबोंका एक जगह चूर्ण बना इनसे दूनी मात्रा गुड गेरे ॥ ४२ ॥ पीछे इन सबोंको कूट चिकने बरतनमें घाल धरे फिर धीरे पुरुषोंको दिन दिन प्रति एक एक तोला प्रमाण खाना चाहिये यह गुदाके रोग, उदररोग, शूल, गुल्मरोग, क्रिमि, पांडु, क्षयरोग इनको नाशता है और जठराग्निको दीप्त करता है ॥ ४३ ॥

अथ प्राण देनेवाला मोदक ।

नागरं त्रिफलां चैव पलांस्त्रींश्च प्रयोजयेत् ॥ चतुष्पलानि मरि-
चानां पिप्पलीनां पलद्वयम् ॥ ४४ ॥ पलमेकं तु चव्यस्य
योज्यं तत्र भिषग्वरैः ॥ तालीसार्द्धं पलं देयं पलार्द्धं पद्म-

कस्य च ॥४५॥ जीरकस्य समं मात्रा समेन तुलितो गुडः ॥
 सुपका सुघना श्यामा पिप्पलीनां शतत्रयम् ॥ ४६ ॥ उलू-
 खलेक्षोदयित्वा स्निग्धमाण्डेन धारयेत् ॥ ४७ ॥ अक्षप्रमाणा
 गुटिका नराणां प्रातः प्रदेया सकलामयघ्नी ॥ निहन्ति चार्शांसि
 च पाण्डुरोगं हलीमकं कामलकं भ्रमं वा ॥ ४८ ॥ गुल्मातिसारं
 च सरक्तपित्तं क्षयं क्षतं चाक्षयमस्य यक्ष्मा ॥ जीर्णज्वरारोचक-
 पीनसानां हितो भवेत्प्राणदमोदकोऽयम् ॥ ४९ ॥

सोंठ, त्रिफला, बारह बारह तोले प्रमाण लेवे, मिर्च १६ तोले लेवे, पीपल ८ तोले ॥ ४४ ॥
 चव्य चार तोले लेवे और तालीसपत्र दो तोले, पद्माक २ तोले ॥ ४५ ॥ इन सबोंके समान
 जीरा और जीराके समान गुड़ लेवे और सुंदर पकी हुई सुंदर कडी और श्यामवर्णवाली ऐसी
 ३०० पीपल ॥ ४६ ॥ इन सबोंको ऊखलमें कूट फिर चिकने बरतनमें घाल बरे
 ॥ ४७ ॥ यह एक तोला प्रमाणकी गोली मनुष्योंको प्रातःकाल देनी चाहिये । यह सब रोगोंको
 नाशनेवाली है और बवासीर, पांडुरोग, हलीमक, कामला, भ्रम इन रोगोंका नाश होता है
 ॥ ४८ ॥ और गुल्म, अतिसार, रक्तपित्त, दारुण राजयक्ष्मा, जीर्णज्वर, अरुचि, पीनस
 इन रोगोंमें यह प्राणद मोदक हित है ॥ ४९ ॥

अथ कांकायनगुटिका ।

जाजीपिप्पलिमूलकोलमगधापथ्याश्लिकं नागराः सूक्ष्मैला च
 पलद्वयेऽपि क्रमशः कृत्वा पलैः सन्धवम् ॥ भ्रष्टातक्यफलानि
 पञ्चशतकं तेन समस्तेन तु द्वैगुण्येऽपि पुराणसूरणमतः सर्वस्य
 तुल्यो गुडः ॥ ५० ॥ क्षोदित्वा वटकाक्षमात्रमुपरि जातो
 विशेषो गुणः कुर्वत्यर्शनिवारणं क्षयमपि पुष्टं तथा सुप्रभम् ॥
 मन्दाग्निर्वडवासमो भ्रमहरो हृद्रोगपाण्ड्वामयं शूलानाहभगन्दरो
 भयहरो दुष्टार्तिनिर्वासनः ॥ ५१ ॥ कृतोऽप्यर्थे विकारोऽपि
 ऋषिणा योगयुक्तिना ॥ काङ्कायनेन मतिमांस्तेन सौख्यमभी-
 प्सति ॥ ५२ ॥

जीरा, पीपलामूल, बेर, पीपल, हरडै, चीता, सोंठ, छोटी इलायची इनको आठ २ तोला
 प्रमाण लेवे और इनके समान सैंधानमक लेवे और पांचसौ मिलावे लेवे और पीछे कही

इन सब औषधोंसे दूना प्रमाण पुराना जमीकंद लेवे और इन सब औषधोंके समान गुड़ लेवे ॥ ५० ॥ फिर इन सबोंको कूटके मिला लेवे पीछे १ तोला प्रमाण गोली बांध लेवे । यह गोली अतिविशेष गुणयुक्त है, बवासीररोगोंको निवारण करती है और क्षयरोगवाला सुंदर कांतिसे युक्त पुष्ट हो जाता है, मंदाग्नि अत्यंत तेज होती है, त्रसका नाश होता है और हृदयरोग, पांडु, शूल, अफारा, भगन्दर इनके भयको हरनेवाली है, दुष्ट पीडा बवासीरको नाशती है ॥ ५१ ॥ योगकी युक्तियाले कांकायनमुनिने उत्तम औषध कहा है, बुद्धिमान् पुरुष इससे सुखको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥

अथ लवणोत्तमादि ।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गवचाचिरविल्वमहत्पिचुमन्दयुतम् ॥ पिव
सप्तदिनं किल मस्तुजलैर्यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुजाम् ५३ ॥

सैधानमक, चीता, इंद्रजय, वच, करंजुया, चंकायन, इनको सात दिनतक दहीके जलसे पीवे जो यदि वायुके रोगोंको अर्थात् गुदरोगोंको नाशनेकी इच्छा हो तो ॥ ५३ ॥

अथ एलादिगुटिका ।

विश्वोपकुल्यामरिचानि केशरं पत्रं लवङ्गैलकवृद्धिमाह्वयाः ॥
चूर्णं हितं शर्करयुक्तमेतद्गुदाभयानामुदरार्तिशान्तये ॥ ५४ ॥

सोंठ १ भाग, पीपल २ भाग, मिरच ३ भाग, नागकेशर ४, तेजपात ५, लोंग ६, इलायची ७, इनको एकोत्तरवृद्धिभागसे लेवे पीछे इनके चूर्णमें खांड मिला खाना गुदाके रोग और उदरके रोगकी शांतिके वास्ते हित है ॥ ५४ ॥

अथ अर्शनाशकचतुःसममोदक ।

सनागरं पुष्करवृद्धदारुकं गुडो नवो मोदकमम्बुदारुकम् ॥
अर्शेषु दुर्नामकरोददारुकं करोति वृद्धं सहस्रैव दारुकम् ॥ ५५ ॥

सोंठ, पोहकरमूल, भिंदारा, नवीन गुड, नेत्रवाला, देवदार इन्होंका मोदक खानेसे बवासीर रोगोंका नाश होता है और वृद्ध पुरुष तत्काल बालकसरीखा निरोग या स्त्रीसे युक्त होता है ॥ ५५ ॥

अथ त्रिकटुकाद्यमोदक ।

त्रिकटुकमभयानां पुष्करं चित्रकाणां कृमिरिपुतिलचूर्णं कारये-
त्सद्गुडेन ॥ उषसि वटकमेकं भक्षयेद्यो मनुष्यो विनिहितगुदरो-
गश्चाभिवृद्धिं करोति ॥ ५६ ॥

सोंठ, मिरच, पीपल, हरड़, पोहकरमूल, चीता, वायविडंग, तिल इनका चूर्ण बना उसमें

गुड मिला जो मनुष्य प्रातःकाल इस मोदकको भक्षण करता है उसके गुदाके रोग दूर होते हैं और जठराग्निकी वृद्धि होती है ॥ ५६ ॥

अथ मरिचाद्यमोदक ।

मरिचं नागरचित्रं सूरणभागोत्तरेण संकुट्य ॥ सर्वसमो गुडयुक्तो
मोदको बिल्वप्रमाणं सेवेत् ॥ विनिहितपित्तविकारं क्षयति मनु-
जानां करोति तनुयुष्टिम् ॥ ५७ ॥

मिरच १ भाग, सोंठ २, चीता ३, जमीकंद ४, इनको एकोत्तरवृद्धिभागसे लेवे फिर कूटके इन सबोंके समान गुड मिला मोदक बांध लेवे फिर चार तोला इस मोदकको भक्षण करे यह मोदक मनुष्योंके पित्तके विकारको नाशता है और मनुष्योंके शरीरकी पुष्टि करता है ॥ ५७ ॥

अथ सूरणपिंड ।

त्रिसमगतसूरणकन्दो लोहितवर्णेन यो भवेन्मतिमान् ॥ षट्-
खण्डीकृतवानपि संशुष्कान् षोडशान्भागान् ॥ ५८ ॥ तस्यार्द्धेन
तुलितश्चित्रकशुण्ठयौ च तत्र संयोज्या ॥ मरिचस्य चैकभागो
गुडेन बद्धस्तु मोदको मनुजैः ॥ ५९ ॥ भक्षित एव हि गुणवा-
न्निहन्ति सकलान्गुदामयान् ॥ त्वरितमग्नेर्दीपनमुक्तं गुल्मानां
जठररुजाम् ॥ ६० ॥

तीनों तरफसे समान और लाल वर्णवाला ऐसे जमीकंदको लेके उसके छह टुकड़े बना सुखा लेवे यह जमीकंद सोलहभाग लेना चाहिये ॥ ५८ ॥ और चीता, सोंठको आठ भाग लेवे, मिरच १ भाग लेवे, पीछे इनको गुडमें मिला मोदक बांध लेवे । यह मोदक गुणवाला है ॥ ५९ ॥ और भक्षण किया हुआ गुदाके सब रोगोंको नाशता है, जठराग्निकी शीघ्र ही दीप्त करता है और गुल्मरोग, जठररोगको शीघ्र ही नाशता है ॥ ६० ॥

अथ भीमवटक ।

त्रिफलमगधजानां मूलतालीसपत्रं किमिरिपुमगधानां पुष्करं
चेत्समांशः ॥ मरिचदहनभागश्चैकभागेन शुण्ठी सकलतुलित-
तुल्यः सूरणस्यैकभागः ॥ ६१ ॥ मदनचपलयुक्तं वृद्धदारैर्लभृङ्गं
कृतमिह परिचूणं द्वियुगो शीर्णखण्डः ॥ कृतवटकमुखस्तु
प्राञ्जुते यो मनुष्यो हरति जठररोगं तस्य चाशु प्रकर्षम् ॥ ६२ ॥

गुदजरुधिरपित्तं कासमन्दाग्निशूलान्क्षयतमकहलीमान् काम-
लांश्च क्रिमींश्च ॥ विदधति वलपुष्टिं दापयेच्चाशु मार्गे प्रवल-
यति हुताशं योगराजः प्रसिद्धः ॥६३॥ योगराजेन युजीत
स्मरणेनाप्यगस्त्यतः ॥ अस्य योगस्य योगेन भीमोऽपि बहु-
भक्षकः ॥ ६४ ॥

त्रिकला, पीपलामूल, तालीसपत्र, वायविडंग, पीपल, पोहकरमूलको समान भाग लेवे
और मिर्च, चीता ये दोनों एक भाग, सोंठ एक भाग और इन सबके समान जमीकंद
॥ ६१ ॥ मैतफल, गठोना, विद्यारा, इलायची, भंगराका चूर्ण और दूनी पुरानी खांड
इनका बटक अर्थात् गोली बना जो मनुष्य खाता है उसका जठररोग शीघ्र ही दूर
होजाता है ॥ ६२ ॥ और गुदाका रक्तपित्त, खांसी, मंदाग्नि, शूल, क्षयरोग, तमक,
श्वास, हलीमक, कामला, क्रिमि, इन रोगोंको नाशता है और वल पुष्टि इनको बढ़ाता है
जठराग्निको तेज करता है यह सब योगोंका प्रसिद्ध राजा है ॥ ६३ ॥ इस योगराजको
अगस्त्यमुनिका स्मरण करके प्रयुक्त करे । इस योगके प्रतापसे भीम भी बहुत भोजनको भक्षण
किया करता था ॥ ६४ ॥

अथ चव्याद्यघृत ।

चव्यं पाठा त्रिकटु मगधा मूलकस्तुम्बुरुणां बिल्वाजाजीरज-
निसुरसा पथ्र्या सैन्धवं च ॥ पिष्ट्वा चैतत्समगविघृतं पाचये-
त्सुप्रयुक्तं पानाभ्यंगे हरति गुदजान्वातरोगाश्मरीं च ॥ ६५ ॥

चव्य, पाठा, त्रिकटु "सोंठ, मिर्च, पीपल", पीपलामूल, धनियां, बेलगिरी, जीरा,
हलदी, तुलसी, हरडै, सैन्धानमक, इनको पीसके बराबरके गौके घृतमें पकावे । यह घृत
पीनेसे और मालिस करनेसे गुदाके रोग, पथरी इनको नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ पिप्पल्याद्य तैल ।

श्यामा कुष्ठं मधुकमदनं पुष्पकं चित्रकञ्च बिल्वं दारु प्रतिवि-
शताह्वाकलिङ्गाशटीनाम् ॥ पिष्ट्वा तैलं द्विगुणपयसा पाचितं
चानुवासे चाभ्यङ्गे वा हितमपि गुदव्याधिनिर्णाशहेतोः ॥ ६६ ॥
वातव्याधिश्रवणरुधिरं कर्णशूलेऽश्मरीणां जङ्घापृष्ठे कटिशिरः-
शिरावेक्षणे वाततोद्रे ॥ विष्टाबन्धग्रहगतगदे मूढगर्भे तथैव श्रेष्ठं
तैलं सकलनिचयव्याधिसंधारणेन ॥ ६७ ॥

पीपली, कूठ, मुलहठी, मैनफल, मैनफलका पुष्प, चीता, वेलगिरी, देवदार, अतीश, शतावरी, इंद्रजव, कचूर, इनको तैलमें पीस फिर दूने दूधमें पका इसको अनुवासन वस्तिमें और मालिसमें वरतें । यह गुदाकी व्याधिके नाशके हेतुमें हित है ॥ ६६ ॥ वातव्याधि, कानका रुधिररोग, कणशूल, पथरी, जांघ, पीठ, कटि, शिर, इनका रोग, नाडियोंका फुरणा, वातकी व्यथा, मलका बंधा इनको नाशता है, ग्रहदोषको दूर करता है, मूढगर्भको दूर करता है, यह तैल संपूर्ण व्याधियोंको नाशता है ॥ ६७ ॥

अथ मुस्ताद्यवटक ।

मुस्ता विश्वविडंगचव्यकशटी पथ्या च तजोवती दन्तीन्द्रात्रि-
वृता समांशकपली मात्रा च प्रत्येकशः॥तस्मादष्टपलांश्च पुष्क-
रमपि षड् बृद्धदारोपलान् युज्ज्यात्षोडशसूरणाख्यसलिल-
द्रोणेऽखिलं कल्कितम् ॥६८॥ भूयो वै विपचेज्जलं त्रिगुणितं
चोद्धृत्य तत्रैव हि संयुज्ज्यात्पुनरेव चित्रकत्रिवृत्तजोवतीसूर-
णम्॥एलापत्रकनागकेशरलवंगानां समं चूर्णितमेषां षोडशभा-
गयोग्यविहितं सर्वञ्च तं चैकतः ॥ ६९ ॥ स्थाप्यं स्निग्धघटे
प्रभातसमये तं चाक्षमात्रं वटं जीर्णे क्षीरमपि प्रभूतमतिमान्
पाने तथा भोजने ॥ अशोर्गुल्मभगन्दरांश्च ग्रहणीपाण्डुं तथा
कामलां शूलञ्चाथ विबन्धकासक्षतजान् हन्त्याशु यक्ष्मां-
स्तथा ॥ ७० ॥

नागरमोथा, सोंठ, वायविडंग, चव्य, कचूर, हरडै, तेजवल, जमालगोटाकी जड़, इंद्रायण, निशोत, इन सबोंको समान भाग चार २ तोला प्रमाण लेवे और पोहकरमूल ३२ तोले लेवे विधारा २४ तोले प्रमाण लेवे, जमीकंद ६४ तोला प्रमाण लेवे फिर इनका कल्क बना १०२४ तो० प्रमाण जलमें पकावे ॥ ६८ ॥ पीछे कडा होजावे तब तिगुना जल मिला फिर पकावे पीछे इसको नीचे उतार इलायची, तेजपात, नागकेशर, लौंग इनको समान भागले चूर्ण बनाके उसमें मिलादेवे और इनका चूर्ण इन औषधोंसे सोलहमां भाग मिलाना चाहिये ॥ ६९ ॥ पीछे इसको चीकने बरतनमें घाल घरे फिर इसको प्रातःकाल एक तोला प्रमाण भक्षण करे पीछे यह चूर्ण जरजावे तब दूध पीवे और भोजनमें भी दूधको वरतें जो ववासीर, गुल्म, भगंदर, संग्रहणी, पांडुरोग, कामला, शूल, मलका बंधा, खांसी, क्षतजरोग, राजयक्ष्मा, इन रोगोंको नाशता है ॥ ७० ॥

अथ भल्लातकगुड ।

भल्लातकानां द्विसहस्रकाणां द्रोणे जले पाच्यपदावशेषम् ॥ काथे
तु तस्मिन् विपचेद्गुडस्य तुलाप्रमाणं पुनरेव तत्र ॥ ७१ ॥
भल्लातकानां शतपञ्चकानि तत्रैव संयोज्य पलत्रिकं वा ॥
व्योषं जवानीयनसैन्धवानामेलालवङ्गं दलनागकेशरम् ॥ प्रत्ये-
ककर्पं तुलितं नियोज्यं न चात्र किञ्चित् प्रविचारणीयम् ॥ ७२ ॥
संकुट्य तैले घृतभाजने वा स्थाप्यं प्रभाते वटकप्रमाणम् ॥ भक्षे-
द्गुडं यो विनिहन्ति रोगान्भगन्दरार्शः क्रिमियक्ष्मपाण्डून्
॥ ७३ ॥ गुल्माश्मरीमेहहलीमकं वा सरक्तपित्तं ग्रहणीं निहन्ति ॥
करोति पुष्टिं बलमातनोति वर्णप्रकर्षं सुखमादधाति ॥ ७४ ॥

दो हजार भिलावोंको १०२४ तोले जलमें पकावे, जब चतुर्थांश वाकी रहे तब उतार उस
काथमें ४०० तोले गुडको पकावे ॥ ७१ ॥ पीछे उसमें पांचसौ भिलावे भिलावे और त्रिफला,
सोंठ, मिरच, पीपल, अजवायन, नागरमोथा, सैधानमक, इलायची, लौंग, तेजपात, नागकेशर,
इनको एक २ तोला प्रमाण गेरे ॥ ७२ ॥ पीछे इनको अच्छी तरह कूटके मिला तैलके अथवा
घृतके चीकने पात्रमें घाल धरे पीछे प्रभातसमय इसको बड़ाके प्रमाण भक्षण करे । यह गुड
भगंदर, बवासीर, क्रिमि, राजयक्ष्मा, पांडु ॥ ७३ ॥ गुल्म, पथरी, हलीमक, रक्तपित्त, संग्र-
हणी, इन रोगोंको नाशता है और पुष्टि करता है, बलको बढ़ाता है, वर्णको सुन्दर करता है, सुख
करता है ॥ ७४ ॥

अथ अन्यभल्लातकगुड ।

दशमूलगुडूचिसटीक्षुरकं सहचित्रकभार्ङ्गिफलासहितम् ॥ भल्ला-
तकपञ्चशतं प्रदिशेद्विपचेज्जलद्रोणमितेन च तत् ॥ ७५ ॥
गुडजीर्णशतं प्रददेत्कथितमवतार्य सुशीतलमेलसमम् ॥ दलके-
सरभृङ्गलवङ्गयुतं कृतचूर्णमिदं सकलैकमिति ॥ ७६ ॥ घृत-
भावितमेकदिनं विदधीद्घृतभाजनके दिनसप्तमिदम् ॥ स्निग्धघटे
विदधीत मनुष्यो दत्तमिदं गुदजामयसङ्घे ॥ ७७ ॥ मोदकमेक-
मुषस्सु ग्रसेद्विनिहन्ति गुदामयमेहरुजः ॥ किल कासहलीम-
ककामलके हितमेव हुताशनदीप्तिकरम् ॥ ७८ ॥ यस्तु शीतजले

क्षितो जलेनैव विलीयते ॥ लोहितो लोहितां याति गुडपाकस्य
लक्षणम् ॥ ७९ ॥

दशमूल, गिलोय, कचूर, गोखरू, चीता, भारंगी, त्रिफला, पांचसौ मिलावे, इन्हेंको १०२४ तोले जलमें पकावे ॥ ७९ ॥ पीछे इस काथमें बराबर पुराना गुड़ मिला पकाके नीचे उतार शीतल हो जावे तब तेजपात, नागकेशर, भंगरा, लौंग इनका चूर्ण बना उसमें मिला ॥ ७६ ॥ फिर एक दिनतक घृतमें भावना दे पीछे सात दिनतक घृतके पात्रमें घाल रखे पीछे चिकने पात्रमें इसको घाल धरे । इस मोदकको गुदाके रोगोंके समूहोंमें खावे ॥ ७७ ॥ एक मोदक प्रातःकाल खावे । गुदाके रोग, प्रमेह, खांसी, हलीमक, कामला इन रोगोंको नाशता है और जठराग्नि को दीप्त करता है ॥ ७८ ॥ जो जलमें गेरा हुआ डूब जावे और लाल लाल वर्णवाला हो जावे यह गुड़के पाकका लक्षण है ॥ ७९ ॥

अथ भल्लातकावलेह ।

अन्धिकं चित्रकं सुस्तं चविकं त्रिफलामृता ॥ सहदेवी गजकर्णा-
पामार्गश्च कुठेरकम् ॥ ८० ॥ प्रत्येकं चतुष्पालिकं कल्के द्रोणा-
म्भसा सुधीः ॥ द्वे सहस्रे समे पिष्टे भल्लातक्याः फलानि तु
॥ ८१ ॥ पादावशेषे कल्के च लोहचूर्णं तुलार्द्धकम् ॥ क्षिपेत्कुड-
द्वयं सर्पिः सर्वं चैकत्र घट्टयेत् ॥ ८२ ॥ फलत्रिकं तथा व्योषं
चित्रकं लवणाष्टकम् ॥ विडङ्गानि सभांशानि सर्वाणि पलमात्रया
॥ ८३ ॥ चतुष्पलं वृद्धदारोर्भूर्वाख्या तु चतुष्पला ॥ संशु-
ष्कसूरणं कन्दं चूर्णं चाष्टपलोन्मितम् ॥ ८४ ॥ संक्षिप्य
स्वादयेच्चूर्णमवतार्य सुशीतले ॥ स्थापितं मधु संयोज्यं कुड-
वद्वयमात्रया ॥ ८५ ॥ देयं गुदामये चादौ कल्कमप्रातराशने ॥
अर्शांसि ग्रहणीरोगं कामलाराजयक्ष्मणः ॥ ८६ ॥ गुल्मक्रिमी-
नश्मरीं च मन्दाग्निमेहशोणितम् ॥ नाशयत्याशु यक्ष्माणं करोति
बलमाकृतेः ॥ ८७ ॥ आशु वृद्धिं प्रकुरुते वलीपलितनाशनम् ॥
रसायनस्य योगेन नरो नागबालो भवेत् ॥ ८८ ॥

गठोना, चीता, नागरमोथा, चव्य, त्रिफला, गिलोय, सहदेवी, गजपीपली, ऊंगा, बवई ॥ ८० ॥ इन सबोंको सोलह सोलह तोल प्रमाण लेवे पीछे कल्क बना एक हजार

चौबीस १०२४ तोले प्रमाण जलमें पकावे और दो हजार मिलावोंका कल्क बना उसका काथ बनावे ॥ ८१ ॥ जब चतुर्थांश वाकी रहे तब उतार २०० तोले प्रमाण लोहाका चूर्ण मिलावे और ३२ तोले प्रमाण घृत मिला पीछे एक जगह घोट ॥ ८२ ॥ पीछे त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल, चीता, आठ प्रकारके नमक, वायविडंग इन सबोंको चार चार तोला प्रमाण लेवे ॥ ८३ ॥ और भिदारा १६ तोले, मूर्वा १६ तोले और सूखा हुआ जमीकन्द ३२ तोले प्रमाण लेवे इनका चूर्ण बना उस पाकमें गर देवे ॥ ८४ ॥ पीछे शीतल हो जावे तब ३२ तोला प्रमाण शहद मिलावे ॥ ८५ ॥ पीछे गुदाके रोगकी निवृत्तिके वास्ते इस कल्कको प्रातःकाल खावे । बवासीर, संग्रहणी, कामला, राजयक्ष्मा इन रोगोंको नाशता है ॥ ८६ ॥ गुल्म, क्रिमि, पथरी, मन्दाग्नि, प्रमेह, रक्तरोग इन रोगोंको नाशता है और बल, आकृति इनको बढ़ाता है ॥ ८७ ॥ धातुओंकी वृद्धि करता है बुढ़ापाके सफेद वालोंको दूर करता है । इस रसायनके योगसे मनुष्य हस्तीके समान बलवाला होता है ॥ ८८ ॥

अथ रक्तबवासीरकी चिकित्सा ।

रक्तार्शसाधुपचारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ प्रातस्तिलान्मक्षयेच्च
नवनीतविमिश्रितान् ॥ ८९ ॥ सितानागरकं युक्तं नवनीतं
सशर्करम् ॥ केशरं मातुलुङ्गस्य विडंगं शर्करायुतम् ॥ ९० ॥
भक्षेत्कूष्माण्डकालेहं नवनीतेन सशर्करम् ॥ एतेन रक्तगुदजा-
ज्छमयन्ति विचक्षणाः ॥ ९१ ॥ समङ्गा शाल्मलीपुष्पं चन्दनं
ककुभत्वचम् ॥ नीलोत्पलमजाक्षीरं पिष्ट्वा पानमसृग्गदे ॥ ९२ ॥
कुटजमूलसकेसरमुत्पलं खदिरधातुकिमूलशृतं पयः ॥ पिबति
प्रक्षणयोगमसृग्भवं गुदजनाशनकारिविकारणम् ॥ ९३ ॥

अब रक्तके बवासीरकी चिकित्साको कहते हैं पुत्र ! सुनो, तिलोंको नौनी घृतमें मिला प्रातः भक्षण करे ॥ ८९ ॥ और मिसरी, सोंठ, नौनीघृत, खांड इनको मिला खावे और विजौराकी केशर, वायविडंग, खांड इनको खावे ॥ ९० ॥ अथवा कोहलेको नौनी घृत और खांडके, संग खावे, इन इलाजोंसे वैद्यजन रक्तकी बवासीरोंको शांत करै ॥ ९१ ॥ मंजीठ, सेंवरा पुष्प, चन्दन, अर्जुनवृक्षकी छाल, नीलाकमल, इनको बकरीके दूधमें पीस पीनेसे रक्तके रोगोंका नाश होता है ॥ ९२ ॥ कूड़ाकी छाल और जड़, कमलकेशर, खैरकी जड़, धवकी जड़ इनमें दूधको पका काथ बना जो मनुष्य पीता है उसकी गुदाके रक्तके रोगोंका नाश होता है ॥ ९३ ॥

अथ वर्तियोग ।

कुङ्कुटस्य पुरीषश्च तथा पारावतस्य च ॥ गृहधूमं च सिद्धार्थं
धतूरकदलानि च ॥ काञ्जिकेन च संपिष्य वर्ति सञ्चारयेद्भुदे
॥ ९४ ॥ सूरणकन्दकवर्तिर्विधेया मल्लीरसेन घृतेन च लिप्त्वा
॥ रोगगुदे गुदकीलकमाशु नाशयते गुदजांश्च क्रिमींश्च ॥ ९५ ॥
हरिद्रा मार्कवं कुष्ठं गृहधूमं सुवर्चलम् ॥ सिद्धार्थकरसश्चैव
काञ्जिकेन च पिष्यते ॥ ९६ ॥ मधुना सह वर्तिः स्याद्भुदे
सञ्चारिता यदि ॥ अर्शसां नाशनं चैव करोति सहसा नृणाम् ॥ ९७

सुरणाकी वीट, कवूतरकी वीट, घरका धुआं, सरसों, धतूराके पत्ते, इनको कांजीमें पीस गुड़ामें
वत्ती चढ़ानी चाहिये ॥ ९४ ॥ जमोकंदकी वत्ती बना मोगरीके रससे और घृतसे लीपि गुड़ामें
चढ़ानेसे गुदकीलक, गुदाके क्रिमि उन रोगोंका नाश होता है ॥ ९५ ॥ हलदी, भंगरा, कूट,
घरका धुआं, कालानमक इनको सरसोंके रसमें और कांजीमें पीस ॥ ९६ ॥ पीछे शहद मिला
वत्ती बना गुड़ामें चढ़ानेसे शीघ्र ही बवासीररोगोंका नाश होता है ॥ ९७ ॥

अथ देवदाल्यादि लेप ।

श्योनाकीपलसम्मितश्च हुतभुग्व्योषैरसानां गणान्पङ्कग्रन्थापि-
चुमन्दवारिककणाभाङ्गीशिलातैलकम् ॥ पिष्ट्वा श्लक्ष्णसमस्तका-
ञ्जिकयुतं दत्त्वा शिलालेपनं दुर्नामानि निहन्त्यथापि गुदजा-
न्सर्वातिसारामयान् ॥ ९८ ॥

सोनापाठा, चीता, व्योष अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल इनको चार २ तोला प्रमाण लेवे पीछे
इनका रस निकाल लेवे और वच, नींबू, नेत्रवाला, पीपली, भारंगी, शिलाजीत इनको समान भाग
ले पीछे तैलमें और कांजीमें तथा पूर्वोक्त औषधोंके रसमें इनको बारीक पीस शिलापै लीप देवे पीछे
शिला ऊपरसे उतार गुदापै लगानेसे बवासीर, सब प्रकारके अतीसार इनका नाश होता है ॥ ९८ ॥

अथ अर्शरोगपर शस्त्रादिकर्म ।

यन्त्रं शस्त्राग्निकार्यश्च कथितं तत्तु शल्यके ॥ यथा यन्त्रेण छिद्यन्ते
दाहस्तत्र विधेयकः ॥ ९९ ॥ चर्मकीलं तथा छित्त्वा दग्धं क्षारेण
धीमता ॥ पक्वजम्बूसमो वर्णो क्षारदग्धे प्रशस्यते ॥ १०० ॥
दग्धं वा सूरणक्षारं कदलीजीवमुद्गैः । पलाशकोकिलाक्षारम-

पामार्गघृतान्वितम् ॥ १०१ ॥ क्षारदाहे प्रशस्येत नवनीतघृतेन
 वा ॥ कुष्ठं पथ्या तथा निम्बपत्राणि च मनःशिला ॥ १०२ ॥
 तस्मान्मधुघृतमिश्रं निर्धूमाङ्गारके क्षिपेत् ॥ धूपयेद्गुदजातेन यथा
 सम्पद्यते सुखम् ॥ १०३ ॥ मनःशिला नागरकं सगुग्गुलं ससा-
 र्पपम् ॥ देवदारु सपौष्करं विशल्यासर्जिकारसम् ॥ १०४ ॥
 घृतेन धूपयेद्गुदजं गुदामयं भगन्दरम् ॥ निहन्ति दुष्टपीनसं व्रणं
 सपूयगन्धिकम् ॥ १०५ ॥ निर्गुण्डीदलशंभुतालमथवा सत्सार्प-
 पं चूर्णकं देवाह्वं घृतशर्करामधुयुतं धूपं गुदायां गते ॥ दुर्नामे
 सरुजे व्रणे च विषमे दुष्टे विसर्पेषु च पामापीनसकासनाशन-
 करो धूपो ग्रहोच्छेदनः ॥ १०६ ॥

यन्त्र, शस्त्र तथा अग्निकर्म कहा है वह शल्यतन्त्रमें कहा है और जो यन्त्रसे छेदन किया
 जावे वहां दाह करना चाहिये ॥ ९९ ॥ चर्मकीलको छेदन करके क्षारसे दग्ध करे और
 जो पक्का हुआ जामनके फलके समान वर्णवाला हो वह क्षारसे दग्ध करना श्रेष्ठ कहा है
 ॥ १०० ॥ जमीकन्दका खार, केला, जीवक, मूंग इनके खारसे दग्ध करना श्रेष्ठ कहा है और
 केशू, तालमखाना, ऊंगा इनको स्वारके घृतमें युक्त कर अथवा नौनीघृतमें युक्त कर ॥ १०१ ॥
 क्षारदाह करना श्रेष्ठ कहा है और कूठ, हरड़, नींबूके पत्ते, मनसिल ॥ १०२ ॥
 इनको शहदमें मिला धूवोंसे रहित हुए अंगारपै गेरे पीछे उससे गुदाके मस्सोंके
 धूमनी देवे तब रोगीको सुख प्राप्त होता है ॥ १०३ ॥ मनसिल, सोंठ, गुग्गुल, सिरसम्,
 देवदार, पोहकरमूल, कलहारी, साजीखार ॥ १०४ ॥ इनको घृतमें मिला धूप देनेसे बवा-
 सीरका मस्सा, गुदाके रोग, भगंदर, दुष्टपीनस, रादिकी गन्धसे युक्त व्रण, इनको नाशता है
 ॥ १०५ ॥ संभाळूके पत्ते, तेजपात, हरताल, सरसोंका चूर्ण, देवदार, इनको घृत,
 खांड, शहदमें मिला धूप देनेसे गुदाके रोग दूर होते हैं । पीड़ासहित बवासीर, विषम और
 दुष्ट विसर्परोग, पामा, पीनस, खांसी, इन रोगोंको नाशता है और यह धूप ग्रहदोषको दूर
 करता है ॥ १०६ ॥

अथ अर्शरोगमें पथ्य ।

एवं क्रियाविधिः प्रोक्तश्चातः पथ्यानि मे शृणु ॥ शालिषष्टिक-
 मुद्गाश्च कुलत्थाढक्यवास्तुकम् ॥ १०७ ॥ चिल्ली च शतपुष्पा च
 कूष्माण्डकपटोलकम् ॥ कारवेळं च तुण्डीरं सूरणो राजिकार्ज-

कम् ॥१०८॥ गुडस्तक्रं घृतं चैतत्प्रशस्यन्तेऽर्शसां सदा ॥
 सूकरः शल्लकी गोधा मूषको वा सरीसृपः ॥ १०९ ॥ लावति-
 त्तिरवा तार्कमांसानि कथितानि च ॥११०॥ वल्लूरमत्स्यदधि-
 पिच्छलतैलविल्ववार्त्तकभोजनमतिप्रतिवर्जनीयम् ॥ नैसर्गिकं
 निशि दिवा शयनञ्च शीतं शीतान्तमेव परिवर्जितमादरेण १११
 इत्यात्रेय भाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अर्शश्चिकित्सा नामै-
 कादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इस प्रकारसे क्रियाओंकी विधि कही है । अब पथ्यवस्तुओंको कहते हैं—सालिसंज्ञक चावल, सांठी चावल, मूंग, कुलथी, तुरीधान्य, वथुवा ॥ १०७ ॥ चिल्लीशाक अर्थात् वथुवाके भेद, सौंफ, कोहला, परवल, करेला, तोरी, जमीकंद, सिरसमकी डांकल इनका भोजन और शाक हित कहा है ॥ १०८ ॥ गुड़, तक्र, घृत ये ववासीरवालोंको हित हैं और शूकर, शेह गोह, मूसा, सर्प आदि ॥ १०९ ॥ लावा, तीतर, वत्तक, इनके मांस, पथ्य कहे हैं ॥ ११० ॥ सूखा मांस, मत्स्यका मांस, दही, झागोंवाला, पदार्थ, तैल, बेलगिरी, वत्तकका मांस, इनका भोजन नहीं करे और रात्रिमें प्रकृतिके अनुसार शयन करे, दिनमें नहीं सोवे और शीतल पदार्थोंको वर्ज देवे ॥ १११ ॥ इति वेरीनिवासिवुधाशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रनुवादि-
 तहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः १२.

अथ खांसीकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ जय पद्यामि कासानां निदानं सचिकित्सि-
 तम् ॥ कासांश्चाष्टविधांश्चैव शृणु पुत्र महामते ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—इससे अनन्तर कास अर्थात् खांसीरोगोंका चिकित्सासहित निदान कहते हैं, खांसी आठ प्रकारसे होती है सो हे पुत्र ! हे महामते ! सुनो ॥ १ ॥

अथ कासरोगके हेतु ।

हास्यात्प्रहास्यरजसानिलसंनिरोधान्मार्गेऽप्यतीव गमनादथ
 भोजनस्य ॥ वेगावरोधनिरतात्क्षवथोस्तथैव संजायतेऽपि
 मनुजां प्रतिधाम कासः ॥ २ ॥ संसेवनान्मधुरपिच्छलजाग-

रेण स्वप्नैर्दिवातिदाधौल्यहिमाशनेन ॥ संजायते मदनतैल-
मथाल्पकन्दी मद्येन वा किल कफस्य जनिर्नियुक्ता ॥ ३ ॥

हास्यसे, हँसीके और वायुके रोकनेसे, मार्गमें विशेष गमन करनेसे, भोजनका वेग रोकनेसे, छाँकके रोकनेसे, मनुष्योंको खांसी रोग होता है ॥ २ ॥ मधुर तथा झागोंवाले पदार्थके सेवनेसे, जागनेसे, दिनमें सोनेसे और अत्यंत दही, गुली बंधनेवाला पदार्थ, ठण्ढा पदार्थ इनके भोजन करनेसे तथा मैमफल, तैल, अल्प कंद, इनके भक्षण करनेसे, मदिरा पीनेसे खांसीमें कफ उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

अथ कासरोगकी संप्राप्ति ।

ऊर्ध्वं गतोदानविपर्ययेण कफेन प्राणानुगतेन दीर्घः ॥
हृदं निरेत्य कफकासकण्ठे करोति तेनापि च काससंज्ञाम् ॥ ४ ॥

कंठमें रहनेवाला उदानवायुके विपरीत होजानेसे कफके संग प्राणवायुके दीर्घ संग होनेसे हृदयमें प्राप्त हुआ कफ खांसीके संग कंठमें प्राप्त हो जाता है उससे खांसी रोग होता है ॥ ४ ॥

अथ कासरोगके प्रकार ।

कासाश्चाष्टौ समुद्दिष्टाः क्षतजोऽन्यः प्रकीर्तितः ॥ वातिकः पित्ति-
कश्चैव श्लेष्मिकः सान्निपातकः ॥ ५ ॥ वातपित्तसमुद्भूतः श्लेष्म-
पित्तसमुद्भवः ॥ सप्तमो लोहितेनात्र चाष्टमो जायते क्षयात् ॥ ६ ॥
न वातेन विना श्वासः कासो न श्लेष्मणा विना ॥ न रक्तेन विना
पित्तं न पित्तरहितः क्षयः ॥ ७ ॥ कथितः सम्भवः श्वासस्यातो
वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ येन संलक्ष्यते नृणां कासश्चाष्टविधः
परः ॥ ८ ॥

खांसी आठ प्रकारसे भी होती है, एक खांसी क्षतज होती है, वातसे १, पित्तसे २, कफसे ३, सान्निपातसे ४, वातपित्तसे ५, कफपित्तसे ६ और सातमी रक्तसे और आठमी क्षयसे होती है ॥ ५ ॥ ६ ॥ वातके विना श्वास नहीं होता, कफके विना खांसी नहीं होती, रक्तके विना पित्त नहीं होता, पित्तके विना क्षयरोग नहीं होता यह सिद्धान्त है ॥ ७ ॥ श्वासकी उत्पत्ति तो कह दी है अब लक्षण कहते हैं जिससे मनुष्योंको आठ प्रकारकी खांसी जानी जावेगी ॥ ८ ॥

अथ वातसे उपजी खांसीके लक्षण ।

क्षीणेन्द्रियः पार्श्वरुजोऽतिवेगः शूलावृतो वा गलके च बद्धः॥
निद्राकृतिभिन्नरवो मनुष्यो वातेन कासस्य भवेत्प्रकाशः॥९॥

इन्द्रिय क्षीण हों, पसलीमें पीडा हो, अत्यंत वेग हो, शूल हो, गलबंधा रहे, निद्रासी आवे
स्वर फटा रहे तो वातसे उपजी खांसी जाननी ॥ ९ ॥

अथ पित्तसे उपजी खांसीके लक्षण ।

कण्ठे विदाहो ज्वरशोषमूर्च्छातृष्णाभ्रमः पित्तभवे च कासे ॥
आस्ये कटुत्वं च शिरोऽर्तिपित्तं निष्ठीवते पीतनखानि नेत्रे १०

कंठमें दाह हो, ज्वर, शोष, मूर्च्छा, तृष्णा, भ्रम ये हों तत्र पित्तसे उपजी खांसी जाननी
और मुखमें कटुआपन हो, पित्त थूके, शिरमें पीडा हो, नख, नेत्र ये पीले रहें ॥ १० ॥

अथ कफकी खांसीके लक्षण ।

जाड्यं वमिः पाण्डुभवं च कासं निष्ठीवते यः सद्यं कफ वा ॥
भक्तारुचिर्वा कफपूर्णदेहे घनःस्वरःश्लेष्मभवे च कासे॥११॥

जडता हो, वमन हो, पिलासलिये सुपेद और चिकना करडा कफ थूके, भोजनमें अरुचि हो,
कफसे पूर्ण शरीर हो, भारी स्वर हो, ये कफसे उत्पन्न हुई खांसीके लक्षण हैं ॥ ११ ॥

अथ त्रिदोषकी खांसीके लक्षण ।

कण्डूदाहश्वासच्छर्दिशोषारोचकपीडिताः ॥ शिरोऽर्तिशोफह-
ृत्कासःकासे त्रिदोषसम्भवे॥१२॥कासः कण्डूःपिपासा च कुक्षि-
शूलो विनिद्रता ॥ शुष्ककासःपिपासा च वातपित्तोद्भवः कफः
॥१३॥ धूमगन्धः पीतवर्णोऽक्षिप्रपाकी सरक्तकः ॥ रक्तनेत्रः
पिपासाद्यः पित्तश्लेष्मान्वितः कफः ॥ १४ ॥

खाज हो, दाह हो, श्वास हो, छर्दि हो, शोष हो, अरुचिकी पीडा हो, शिरमें पीडा हो, शोका
हो, थुकथुकी हो, ये त्रिदोषसे उपजी खांसीके लक्षण हैं ॥ १२ ॥ खांसीकी घसक हो, खाज हो,
तृष्णा हो, कुक्षिमें शूल हो, निद्रा नहीं आवे, सूखी खांसी हो तो वातपित्तसे उपजा कफ अर्थात्
खांसी जाननी ॥ १३ ॥ धूवां सरीखी गंध हो, पीला वर्ण हो, आंखि पकजीवें, कफमें रक्त,
अति लाल नेत्र हो तो पित्तकफसे उपजी खांसी जाननी ॥ १४ ॥

अथ क्षतजखांसाक लक्षण ।

व्यवायातिप्रसङ्गेन वेगरुद्धाभिघातकः ॥ भारोद्धरणयातेन

जायते क्षतजः कफः ॥१५॥ तेन हृदि व्यथा रूक्षं कासते च स-
शोणितम् ॥ श्वासः संक्षीयते गात्रं दीनो मन्दज्वरातुरः ॥१६॥
वेपते पर्वभेदश्च मोहभ्रमनिपीडितः । एवं क्षतजनिर्दिष्टो नणां
प्राणापहारकः ॥ १७ ॥

मैथुनके अत्यंत प्रसंगसे, वेगके रोकनेसे, अभिघातसे और बोझाके उठानेसे क्षतसे उपजा-
हुआ कफ जानना ॥ १५ ॥ उस करके हृदयमें पीडा हो, रुखी खांसी आवे अथवा खांसीमें
रक्त आवे, श्वास हो, गात्र क्षीण हुआ जावे, गरीब रहे, मंदज्वरकी पीडा रहे, कंपना रहे, हड़कूटन
हो, मोह, भ्रम, इनकी पीडा हो ऐसे मनुष्योंके क्षतज अर्थात् चोटसे उपजी हुई, खांसी
जाननी यह प्राणको हरनेवाली खांसी है ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ रक्तकी खांसीके लक्षण ।

अल्पायासात्क्षतात्क्षीणात्संपातात्क्षणभोजनात् ॥ पातनाघात-
योगेन जायते रक्तजः कफः ॥१८॥ विस्रगन्धास्यहृच्छूलदीनो
वै विकलेन्द्रियः ॥ रक्तनिष्ठीवनोपेतः श्वासो वापि मदातुरः
॥ १९ ॥ क्षीयते सततं गात्रं मोहस्तृष्णा च जायते ॥ इत्येतै-
र्लक्षणैर्युक्तं रक्तकासं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

कुछ परिश्रम करनेसे, चोटसे, क्षीण होनेसे, गिरनेसे और दुष्टभोजनसे, गिरनेके घातके
योगसे रक्तसे उपजा हुआ कफ होजाता है ॥ १८ ॥ मुखमें बुरी गंध आवे, हृदयमें शूल हो,
गरीब रहे, इंद्रिय विकल रहें, रक्तके थूकनेसे युक्त हो, श्वास हो, मदसे पीडित हो ॥ १९ ॥
शरीर निरंतर क्षीण हुआ जावे, मोह हो, तृष्णा हो, इन लक्षणोंसे जो युक्त हो वह रक्तसे उपजी
खांसी जाननी ॥ २० ॥

अथ सबप्रकारकी खांसियोंके लक्षण ।

अथ क्षयानुमानेन लक्ष्यते कासलक्षणम् ॥ पाण्डुरोगे तथा
यक्ष्मे गुल्मे वापि क्षतक्षये ॥२१॥ शोफार्शसां प्रतिश्याये चाव-
श्यं काससम्भवः ॥ एतेषां चानुमानेन कासं संलक्षयेद्भृशम्
॥ २२ ॥ स्थवरिणां रक्तकासः सोऽपि याप्यः प्रकीर्तितः ॥
बालानां जायते कासो धात्रीवैकल्पयोगतः ॥ २३ ॥ एते

कासाः सद्युद्दिष्टा दशभिर्भिषग्युक्तमैः ॥ तेषां क्रियाप्रतीकारः
पथ्यभेषजमेव च ॥ २४ ॥

इससे अनंतर क्षयके अनुमान करके खांसीका लक्षण कहते हैं । पांडुरोग, राजयक्ष्मा, गुल्म, क्षतक्षय, शोजा, ववासीर, पीनस इनमें अवश्य खांसी होजाती है इनके और अनुमानसे अत्यंत खांसीका लक्षण जानना ॥ २१ ॥ २२ ॥ वृद्ध पुरुषोंको जो रक्तसहित खांसी होती है वह याप्यरोग कहाता है और धायके विकलताके योगसे बालकोंको खांसी उत्पन्न होती है इन दशप्रकारके लक्षणों करके वैद्यजनोंने खांसी कही है सो उनके बंद करनेवाली क्रियाओंको कहते हैं और पथ्य औषधोंको कहते हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ वातकी खांसीकी चिकित्सा ।

शतमूलिकायाः कथितः कषायः पीतः कणाचूर्णयुतः सुखोष्णः ॥
नृणां निहन्यान्मरुतोद्भवं तु कासं शूलं च विपाचनं स्यात्
॥ २५ ॥ भार्ङ्गी शटीगोस्तनिशृङ्गवेरशृङ्गीकणाचूर्णयुतोऽवलेहः ॥
गुडेन तैलेन हितो नराणां कासस्य वायोश्च विकारहन्ता
॥ २६ ॥ नागरं पुष्करं दारु दुस्पर्शकं पिप्पली सुस्तकं
रास्ना च शटी ॥ भार्ङ्गिका शर्करा संयुतं चूर्णकं हन्ति कासं
विनिःश्वासवातोद्भवम् ॥ २७ ॥

महाशतावरीका काथ बना उसमें पीपलीका चूर्ण मिला सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीनेसे मनुष्योंके वातसे उपजी हुई शूलसहित खांसी दूर होती है और पकजाती है ॥ २५ ॥ भारंगी, कचूर, दाख, अदरक, काकडासींगी, पीपल, इनका चूर्ण बना गुड़में और तेलमें अवलेह बना चाटनेसे वातसे उपजी हुई खांसी दूर होती है ॥ २६ ॥ सोंठ, धमासा, काकडासींगी, कचूर, पोहकरमूल, देवदार, भांगी, पीपल, नागरमोथा, रास्ना इनका चूर्ण बना खांड मिला खानेसे श्वासरहित वातकी खांसी दूर होती है ॥ २७ ॥

अथ कट्फलआदि औषध ।

कट्फलं रोहिषं धान्यं भार्ङ्गी सुस्ता वचा तथा ॥ कर्कटं पर्पटं
दार्वी देवदारु च नागरम् ॥ २८ ॥ कल्कितं मधुना युक्तं पानमस्य
न संशयः ॥ कासश्लेष्मप्रतीकारमनेन किल निश्चितम् ॥ २९ ॥
शोषवातक्षयं कण्ठग्रहं पीनसकं कफम् ॥ हिक्कां कफज्वरं चैव
नाशयत्याश्वसंशयम् ॥ ३० ॥

कायफल, रोहिपतृण, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनिया, पित्तपापड़ा, देवदारु, दाहलदी, सोंठ, काकड़ासिंगी ॥ २८ ॥ इनका कल्क बना शहद मिला पीना हित है । इस औषधसे खांसी और कफ दूर होता है ॥ २९ ॥ क्षय, पीनस, कंठग्रह, वातसे उपजा शोष, कफ, हिचकी, कफसे उपजा ज्वर इनको नाशता है ॥ ३० ॥

अथ द्राक्षादि औषध ।

द्राक्षामलक्याः फलपिप्पलीनां कोलं सखर्जूरयुतोऽवलेहः ॥

निहन्ति कासं क्षयरक्तपित्तात्सकामलं पाण्डु हलीमकञ्च ॥ ३१ ॥

दाख, आंवला, पीपल, चव्य, खजूर इन्होंका अवलेह बना चाटनेसे रक्तपित्त, खांसी, क्षयरोग इनका नाश होता है, कामला, पांडुरोग, हलीमक इनको नाशता है ॥ ३१ ॥

अथ बालकादि कल्क ।

बालावृहत्यौ मधुकं वृषं च तथैव कुष्ठं पिचुमन्दकञ्च ॥

गवास्तनीसंयुतकल्कमेतत्पानं हितं पित्तकफात्मके च ॥ ३२ ॥

नेत्रवाला, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, मुलहठी, वांसा, कूट, नींव, दाख इनका कल्क बना पित्तकफसे उपजी हुई खांसीमें पीना हित है ॥ ३२ ॥

अथ सुस्ता चूर्ण ।

सुस्ताट्ठरूपकफलत्रिकदारुभाङ्गी व्याघ्रीसपुष्पफलमूलदलैरु-

पेता ॥ रास्त्रा विषातुलसिका विहितं सुचूर्णं काथेन हन्ति किल

कासमिदं न चिन्त्यम् ॥ ३३ ॥ बद्धाथवा च गुटिका मधुना

गुडेन सिन्धूद्धवेन मगधासमहौषधेन ॥ आस्ये धृता निशि वि-

शालगुणा भवन्ति श्वासं क्षयं क्षतजकासमिदं निहन्ति ॥ ३४ ॥

नागरमोथा, वांसा, त्रिफला, देवदार, भारंगी और पुष्प, फल, मूल, पत्ते इन पंचांगोंसहित कटेहली, रास्त्रा, अतीश, श्रेष्ठ तुलसीके पत्ते, इनका चूर्ण बना, जलमें काथ बना पीनेसे खांसी दूर होती है ॥ ३३ ॥ अथवा इस चूर्णको शहद तथा गुड़में मिला और सैंधानमक, पीपल, सोंठ ये मिला गोली बांध मुखमें धरे । रात्रीके समयमें यह उत्तम गुणवाली कही है और श्वास, क्षय, क्षतसे उपजी खांसी इनको नाशती है ॥ ३४ ॥

अथ पित्तकी खांसीकी चिकित्सा ।

शर्करा चवखर्जूरं द्राक्षा लाजा कणा मधु ॥ सर्पिर्युतो हितो

लेहः पित्तकासनिवारणः ॥ ३५ ॥ आट्ठरूपकपत्राणि पिचुमन्द-

दलानि च ॥ तुलसीस्वरसञ्चैव शटी शृङ्गी मरीचकम् ॥ ३६ ॥
 शुण्ठीचूर्णं गुडे युक्तं लिह्यात्कासे कफात्मके ॥ भार्ङ्ग्याश्च
 नागपिप्पल्याः पिबेत्काथं सुखोष्णकम् ॥ ३७ ॥ आर्द्रकस्य रसं
 नीत्वा मधुना च पिबेत्सुधीः ॥ कासे श्वासे प्रतिश्याये ज्वरे
 श्लेष्मसमुद्भवे ॥ ३८ ॥ कट्फलं भूतृणं भार्ङ्गी शुण्ठी पर्पटकं
 वचा ॥ सुराह्वं च जलशृतमुक्तञ्च पण्डितैस्तथा ॥ ३९ ॥ मधुना
 संयुतं पानं कासे वातकफात्मके ॥ श्वासे हिक्काज्वरे शोषे महा-
 कासे च दारुणे ॥ ४० ॥

खांड, खजूर, दाख, धानकी खील, पीपल, शहद इन औषधोंके चूर्णमें घृत मिला लेह बना
 चाटनेसे पित्तकी खांसी दूर होती है ॥ ३६ ॥ बांसाके पत्ते, नींबूके पत्ते, तुलसीका
 रस और कचूर, काकड़ासींगो, मिरच ॥ ३६ ॥ सोंठ, इनका चूर्ण बना गुड़में मिला चाट-
 नेसे कफसे उपजी खांसी दूर होती है और भारंगी, गजपीपली इनका काथ सुखसे सुहाता हुआ
 गरम २ पीवे ॥ ३७ ॥ अदरकका रस निकाल शहदके संग पीना खांसी, श्वास, पीनस,
 कफसे उपजा ज्वर इनमें श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥ कायफल, रोहिपतृण, भारंगी, सोंठ,
 पित्तपापडा, वच, देवदार इनको जलमें पकावे ऐसे पंडितोंने कहा है ॥ ३९ ॥ पीछे शहद
 मिला पीनेसे वात कफसे उपजी खांसी दूर होती है और श्वास, हिचकी, ज्वर, शोष, महा-
 दारुण खांसी इनमें श्रेष्ठ है ॥ ४० ॥

अथ लघुतालीसआदि औषध ।

तालीसपत्रं मरिचञ्च विश्वाश्यामायुतं चोत्तरभागवृद्ध्या ॥
 त्वक्पत्रकेणापि लवङ्गमेलामण्डौ कणाया गुणितां सिताञ्च ॥
 ॥ ४१ ॥ लिह्यात्प्रभाते श्वसने च कासे ग्रीहारुचौ पीनसच्छ-
 र्दिहिक्काम् ॥ शोफातिसारं ग्रहणीं च पाण्डुं क्षयं निहन्यात्क्षतजं
 च यक्ष्मम् ॥ ४२ ॥

तालीसपत्र १, मिरच २, सोंठ ३, पीपल ४ इनको यथोत्तर वृद्धिभागसे ले और
 दालचीनी, तेजपात, लौंग, इलायची इनको मिला और पीपलसे आठगुनी मिसरी मिला ॥
 ॥ ४१ ॥ फिर प्रभातसमयमें खानेसे श्वास, खांसी, ग्रीह अर्थात् तिल्ली, अरुचि, पीनस, छर्दि,
 हिचकी, शोजा, अतिसार, संग्रहणी, पाण्डु रोग इन रोगोंका नाश होता है और चोटसे उपजा
 क्षय, राजयक्ष्मा इनको नाशता है ॥ ४२ ॥

अथ बृहत्तालीसाद्य औषध ।

तालीसं त्रिफलाप्रियङ्गुमगधामूलञ्च सुस्ता शटी दाव्येलादल-
नागकेसरलवङ्गानां तथा नागराः ॥ कृष्णाकोलकबालकं सच-
विला सूया विषा कर्कटं द्राक्षा कुठनिशाग्रिवत्सकवृषं गोकण्ट-
तित्ता तथा ॥ ४३ ॥ वृक्षाम्लं च सदाडिमास्लकरसं पक्वं बद-
र्याः फलं चैतेषां समभागचूर्णविहितं योज्या समा शर्करा ॥
योज्यं चार्द्धफलं निहन्ति क्षतजं कासं तथा श्वासकं पाण्डुं
कामलमेदशोषमुदजे शस्तं सदा यक्ष्मणाम् ॥ ४४ ॥

तालीसपत्र, त्रिफला, गोंदी, पीपलामूल, नागरमोथा, कचूर, देवदार, इलायची, तेजपात,
नागकेशर, लौंग, सोंठ, पीपली, कंकोल, नेत्रवाला, चव्य, मूया, अतीश,
काकड़ासींगी, दाख, कूठ, दाखहलदी, चीता, कूड़ाकी छाल, वांसा, गोखरू, कुटकी ॥
॥ ४३ ॥ विजौरा, अनारदाना, पके हुए बेर इनको समान भाग ले चूर्ण बनावे
और सब चूर्णके समान खांड मिलावे, इस चूर्णको आधा तोला प्रमाण खावे । यह क्षतसे
उपजी खांसी, श्वास, पांडुरोग, कामला, मेद, शोष, गुदाके रोग, राजयक्ष्मा इन
रोगोंको नाशता है ॥ ४४ ॥

मधुयष्टिका हिता श्रोक्ता क्षये कासे त्रिदोषजे ॥

क्षयसे उपजी हुई खांसीमें और त्रिदोषसे उपजी हुई खांसीमें मुलहठीका सेवन
करना हित है ॥

आमजे शूलरोगार्तिः पर्वभेदो भ्रमः कुमः ॥

शोषः शिरोव्यथा कुदो नेत्रे गम्भीरमिच्छति ॥ ४५ ॥

आमसे उपजी हुई खांसीमें शूलरोगकी पीडा, संधियोंका भेद, भ्रम, ग्लानि ये होते हैं और
शोष हो, शिरमें पीडा हो, ग्लानि हो, नेत्र गंभीर हों ये लक्षण हो जाते हैं ॥ ४५ ॥

अथ छर्दिलक्षण ।

खल्ली वा चेतनं वापि अजीर्णाजायते वमिः ॥ सापि स्निग्धा च
रूक्षा च द्विविधा जायते वमिः ॥ ४६ ॥ गम्भीरनेत्रो वमते विड्-
बन्धो वाति साय्यते ॥ गात्रे खल्लीकरं शूलं तथा शोथाति-
मूर्च्छना ॥ ४७ ॥ विकलाङ्गो भ्रमार्तश्च भ्रमन्तं पश्यते जगत् ॥
शिरोऽर्तिर्विपतेऽत्यर्थं करपादौ हिमोपमौ ॥ ४८ ॥ एतैर्लिङ्गैस्तु

संयुक्तां छर्दिं दूरे परित्यजेत् ॥ असाध्या सर्वयोगैस्तु साप्यजीर्णा
सुधीमता ॥ ४९ ॥

अजीर्णसे, वमन होनेसे खल्लीरोग हो जावे, मूर्च्छा हो जावे और वमन भी स्निग्ध, रुक्ष ऐसे दो प्रकारकी होती हैं ॥ ४६ ॥ जिसके गंभीर नेत्र हों और वमन करे, विष्टा बन्व हो, अतिसार हो और शरीरमें खल्ली रोग हो, शूल हो, शोजा हो, अतिमूर्च्छा हो ॥ ४७ ॥ अंग विकल हो, अमकी पीडा हो, जगत्को अमताहुआ देखे, शिरमें पीडा हो, कांपन हो, हाथ पैर ठंढे हों ॥ ४८ ॥ इन लक्षणोंसे युक्त जो वमन हो उसको दूरसे ही त्याग देवे और सब योगों करके यह असाध्य है अजीर्णसे उपजी कहाती है ॥ ४९ ॥

अथ वातच्छर्दिकी चिकित्सा ।

सपञ्चमूलीकथितः कषायः ससैन्धवं चामलकञ्च कल्कः ॥
काथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकं छर्दंश्च वातस्य निवारकञ्च ॥ ५० ॥
दद्यात्क्षीरं शर्कराभिर्नरस्य पित्तोद्धूतां वातिशीघ्रं निहन्ति ॥
द्राक्षा वापि क्षीरदाव्या विचूर्णं लेहो हन्ति सारघाणां पिबन्ति ॥
॥ ५१ ॥ फलत्रिकं पुष्करकं वचां च तथाभयासैन्धवकं गुडेन ॥
चूर्णं विलिङ्गात्कफवान्तिमसि नरस्य मूत्रेण युतस्य पानम् ॥
॥ ५२ ॥ शटी दार्व्यभया शुण्ठी मागधी घृतसंयुता ॥ चूर्णं
तक्रेण संयुक्तं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ ५३ ॥ रक्तशाल्युद्धवा
लाजा मधुशर्करयान्विता ॥ ज्वरार्तिं युवतेः शीघ्रं नाशयन्त्येव
मे मतम् ॥ ५४ ॥ आमलक्या रसेनाथ घृष्टं चन्दनकं मधु ॥
गुटिका पलमानेन लेहो हन्ति वमिं ध्रुवम् ॥ ५५ ॥ आर्द्रदाडि-
मनिर्यासश्चाजाजी शर्करान्विता ॥ सतैलं माक्षिकं वापि
चत्वारः कवलग्रहाः ॥ ५६ ॥ वाताद्यद्वन्द्वजांश्छर्दीन्निहन्त्येव
न संशयः ॥ ५७ ॥ त्रिकटुकरजनीद्रव्यं च फलत्रिकं मध्वा च
यावशूकञ्च ॥ समकृतमिति चूर्णमेतन्मधुना युतं वमिं निवार-
यति ॥ ५८ ॥ सगुडं दाडिमद्राक्षापथ्यागुडनागरैर्युक्ता ॥
त्रिवृता नागरमथवा गुडेन युक्तं वमिं दहति ॥ ५९ ॥

लघुपंचमूलका काथ बना उसमें सैंधानमक, आंवला, इनका कल्ल बना और पीपल
मिला इस काथके पीनेसे वातसे उपजी छर्दि दूर होती है ॥ ९० ॥ और दूधमें खांड मिला
पीनेसे पित्तसे उपजी छर्दि शीघ्रही नष्ट होती है और दाख, क्षीरविदारी इनके चूर्णका सारघ
शहतमें लेह बना पीनेसे पित्तछर्दिका नाश होता है ॥ ९१ ॥ और त्रिफला, पोहकरमूल,
वच, हरडै, सैंधानमक इनका चूर्ण बना गुड़में मिला चाटनेसे कफकी छर्दि दूर होती
है और जिसके ज्यादा मूत्र उतारता हो उसको भी इसीका पीना श्रेष्ठ है ॥ ९२ ॥ और
कचूर, देवदार, हरडै, सोंठ, पीपल इनके चूर्णको घृतमें अथवा तक्रमें मिला खानेसे
निदोषसे उपजी छर्दि दूर होती है ॥ ९३ ॥ और शालीचावलोंकी खीलोंमें शहद और खांड
मिला खानेसे शीघ्र ही ज्वरकी पीडाका नाश होता है ॥ ९४ ॥ आंवलाके रसमें चंदनको
चिस तिलमें शहद मिला आंवलाके प्रमाण गोली बांधलेवे । यह लेह वमनको निश्चय नाशता
है ॥ ९५ ॥ अदरकका रस, अनारदानाका रस, जीरा, खांड, तैल, शहद इनके कवलग्रह
अर्थात् ग्रास बनाके मुखमें धारण करे ॥ ९६ ॥ इस ग्रासोंके धारण करनेसे वात आदिक दोषोंसे
उपजीहुई तथा दोदोषोंसे उपजी हुई और तीन दोषोंसे उपजीहुई वमन दूर होती है ॥ ९७ ॥
और सोंठ, मिरच, पीपल, हलदी, दारुहलदी, त्रिफला, मदिरा, जवाखार, इनको समान
भागले चूर्ण बना शहदमें खानेसे छर्दिका निवारण होता है ॥ ९८ ॥ और अनारदाना, दाख,
इन्होंको मिला अथवा हरडै, सूठ, इनको गुड़ मिलाय अथवा निशोथ, सूठ इनको गुड़में
मिला खानेसे वमन दूर होती है ॥ ९९ ॥

अथ पित्तकी छर्दिकी चिकित्सा ।

पर्पटं सगुडं काथं शीतलं पाययेन्नृणाम् ॥ हन्ति वमिं महाघोरां
सपित्तां भ्रमसंयुताम् ॥ ६० ॥ काकोली काकमाची च काथं
शर्करया युतम् ॥ लाजाशर्करसंयुक्तं हन्ति पित्तवमिं नृणाम् ॥ ६१ ॥
मातुलुङ्गरसश्चैव पथ्या शर्करया युतः ॥ हन्ति कासं पित्तभवं
वमिं शीघ्रं नियच्छति ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा पित्तवमिं घोरां सदाहभ्रम-
दायिनीम् ॥ तस्यारग्वधपत्राणि मधुशर्करयान्वितम् ॥ ६३ ॥
क्षीरपानं प्रशस्तं वा मुस्ताशर्करयान्वितम् ॥ ६४ ॥

पित्तपापडा, गुड़ इनका काथ बना शीतलकर मनुष्योंको पिलानेसे पित्तसहित और भ्रमसहित
महाघोर वमन दूर होती है ॥ ६० ॥ काकोली, मकोह, इनका काथ बना उसमें खांड मिला
पीनेसे अथवा धानकी खीलोंके रसमें खांड मिला पीनेसे पित्तकी छर्दि दूर होती है ॥ ६१ ॥
विजौराके रसमें हरडैका चूर्ण और खांड मिला पीनेसे पित्तसे उपजी खांसी और वमन दूर

होती है ॥ ६२ ॥ दाह तथा भ्रमवाली घोर पित्तकी छर्दिको देखि तहां अमलतासके पत्तोंके रसमें शहद और खांड मिला पीना ॥ ६३ ॥ तथा नागरमोथा, खांड ये मिला दूधका पीना श्रेष्ठ कहा है ॥ ६४ ॥

अथ कफकी छर्दिकी चिकित्सा ।

जम्बवाप्रकप्रवालानि दाडिमामलकं तथा ॥ मस्तुनोपोषितं पानं
हन्याच्छेषमवमिं नृणाम् ॥ ६५ ॥ सर्जार्जुनंधवकदम्बकलोलचूर्णं
धान्याकशुण्ठिसहितं सगुंडं प्रदद्यात् ॥ श्लेष्मोद्भवं वमनमाशु
निहन्ति पुंसां लेहस्तथा मधुकणाक्रिमिहाशटीनम् ॥ ६६ ॥

जामुन, आंव इनके कोमल पत्ते, अनारदाना, आंवला, इनको दहीके मस्तुमें पीस पीनेसे मनुष्योंको कफसे उत्पन्न हुई छर्दि दूर होती है ॥ ६५ ॥ और रालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, धव कदंब, कंकोल, सूठ, धनियां इनका काथ बना गुड़ मिला पीनेसे कफसे उपजी छर्दि दूर होती है और कचूर, पीपल, शहद, वायविडंग इनका अवलेह बना चाटना हित है ॥ ६६ ॥

अथ एलादिचूर्ण ।

एलालवङ्गजकेसरकोलसर्जालाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पली-
नाम् ॥ चूर्णानि मार्कवसितासहितानि लीढ्वा छर्दिं निहन्ति कफ-
मारुतपित्तजाश्च ॥ ६७ ॥ एलादलानि गजकेसरकत्वगेलालाम-
ज्जकं च दहनं च घनं प्रियङ्गुम् ॥ सच्चन्दनं सगधजासमच्चूर्णितञ्च
लीढ्वा सितासमत्रिदोषवमिं जघान ॥ ६८ ॥

इलायची, लौंग, नागकेसर, चव्य, रालवृक्ष, धानकी खील, गोंदी, नागरमोथा, चन्दन, पीपल, भांगरा इनके चूर्णमें मिसरी मिला चाटनेसे कफ वात पित्त इन दोषोंसे उपजी हुई छर्दि दूर होती है ॥ ६७ ॥ और इलायचीके पत्ते, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, रोहिषतृण, चीता, नागरमोथा, गोंदी, चन्दन, पीपल इनको समानभाग ले चूर्ण बना मिश्री मिला खानेसे त्रिदोषसे उपजी छर्दिका निवारण होता है ॥ ६८ ॥

अथ छर्दीकी शमनक्रिया ।

उर्ध्वभागगते दोषे रेचनं तु प्रशस्यते ॥ तस्मिञ्जातेऽप्यधोभागं
वमनं शाम्यति ध्रुवम् ॥ ६९ ॥ अथवा द्विभागगते तदा देया-
भया मधु ॥ क्रिमिजं वमनं ज्ञात्वा क्रिमीणां शमनक्रिया ७०

वमन व खांसीमें जो दोष उर्ध्वभागमें स्थित हो तो जुलाव दिवानी चाहिये और जो

अधोभागमें अर्थात् नीचेके स्थानोंमें दोष प्राप्त होवें तो वमन कराना श्रेष्ठ है ॥ ६९ ॥ और जो नीचे तथा ऊपर दोनों भागोंमें दोषस्थित हों तो हरडै, शहद देने चाहिये और क्रिमियोंसे उपजे वमनको जानके क्रिमियोंको शांत करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥ ७० ॥

अथ छर्दिरोगमें पथ्यापथ्य ।

न चोष्णं नातिचाम्लं च न तीक्ष्णं न तथा लघु॥तन्दुलीय-
कशाकं वा न मद्यं काञ्जिकं न तु॥७१॥ वमिदोषे च कथितं
पथ्यं चात्र शृणुष्व मे ॥ अनूपं शालिभक्तं च शतपुष्पा च
वास्तुकम् ॥७२॥ आढकी मुद्गयूपश्च दधि गुडघृतान्वितम् ॥
अंगारमण्डका चाथ वमौ पथ्यं प्रशस्यते ॥ ७३ ॥ यथाबलं
यथाकालं यथारोगं यथानलम्॥तथा दृष्ट्वा प्रकुर्वन्ति पथ्यानां
समुपक्रमम्॥७४॥ दिवा निद्रां प्रयुञ्जीयाद्भूमौ श्वासेऽतिसा-
रके॥हिककाशोपे तथाजीर्णे वमिकलेदेऽथवा पुनः ॥ ७५ ॥ न
चोष्णतोयपानञ्च नातिभोजनमेव च ॥ न धावनं न कर्तव्यं
वर्जयेद्भ्रमनादिते ॥७६॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीय-
स्थाने छर्दिचिकित्सा नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

गरम, अत्यंत खट्टा, तीक्ष्ण तथा हलका, चौलाईका शाक, मदिरा, कांजी इनको वमन रोगमें नहीं खावे ॥ ७१ ॥ अब वमनमें पथ्य कहते हैं सुनो । अनूपदेशके जीवोंका मांस, शालिंसंज्ञक चावल, सोंफ, वथुवा ॥७२॥ तुरीधान्य, मूँगोंका यूप, दही, गुड़, घृत, अङ्गारोंमें सैके हुए मांडे ये वमनमें भोजन करने श्रेष्ठ हैं ॥७३॥जैसा बल हो जैसा समय हो जैसा रोग हो जैसी जठराग्नि हो तैसे ही पथ्य भोजनोंको विचारके देवे ॥ ७४ ॥ वमन, श्वास, अतीसार इन रोगोंवाले पुरुषोंको दिनमें सुवावे और हिचकी, शोष, अजीर्ण, वमन, ग्लानि इन रोगोंमें भी दिनमें सोना श्रेष्ठ है ॥ ७५ ॥ गरम जल नहीं पीवे, ज्यादा भोजन नहीं करे और वमनसे पीड़ित पुरुषको दांतन नहीं करनी चाहिये ॥ ७६ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता-
भाषाटीकायां तृतीयस्थाने छर्दिचिकित्सानाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः १३.



अथ तृषा और तालुशोषकी संप्राप्ति ।

आत्रेय उवाच ॥ भयश्रमाद्वलहीनाद्विदलरूक्षसेवनात् ॥ आतपे

वा ज्वरे जीर्णे क्षयाच्च क्षतजास्तथा ॥ १ ॥ एतैः संकुपिता दोषा
वातपित्तकफास्त्रयः ॥ चतुर्थी क्षतजा प्रोक्ता पञ्चमी क्षयजा स्मृता
॥ २ ॥ अजीर्णात्पृष्ठी संप्रोक्ता सप्तमी रूक्षसेवनात् ॥ अष्टमी
स्याज्वरोत्पन्ना लक्षणानि शृणुष्व मे ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—भय, श्रम, बलकी हीनता इनसे, विदल संज्ञक अर्थात् कुलथी
आदि अन्नको सेवनेसे, घामसे और ज्वरसे, अजीर्ण और क्षतसे तथा क्षयसे ॥ १ ॥ इनसे कुपित
हुए वातपित्त कफसे तीन प्रकारकी तृषा होती है और घावके होनेसे चौथी और क्षयसे उपजी
पांचवीं तृषा होती हैं ॥ २ ॥ अजीर्णसे छठी और रूक्षपदार्थको सेवनेसे सतवीं और ज्वरसे
उपजी आठवीं ऐसे तृषा कही हैं उनके लक्षणको मुझसे सुनो ॥ ३ ॥

अथ वातआदि दोषोंसे उपजी तृषाके क्रमसे लक्षण ।

क्षामः श्यावास्यता चाथ वैरस्यं वेपथुस्तथा ॥ वातेन सा भवे-
त्तृष्णा विज्ञेया भिषजां वरैः ॥ ४ ॥ शीततोयाभिलाषश्च भ्रमदा-
हप्रलापतः ॥ मूर्च्छा च लोहिते नेत्रे तृष्णा पित्तोद्भवा मता ॥
॥ ५ ॥ निद्रा श्यावास्यतालस्यं बलासोष्णाभिलाषता ॥ घन-
श्यावांगशैत्यं च श्लेष्मणो जायते तृषा ॥ ६ ॥

कृश शरीर हो जावे और मुख काला हो जावे, मुखमें स्वाद आवे नहीं और कंप उपजे ये
लक्षण होवें तब वातकी तृषा जाननी ॥ ४ ॥ शीतल पानीकी इच्छा रहे, भ्रम, दाह, प्रलाप,
ये उपजे, मूर्च्छा हो, नेत्र लाल होजावें तब पित्तकी तृषा जाननी ॥ ५ ॥ नींद हो, मुख काला हो,
कफ पड़े, गरम चीजकी इच्छा रहे, कठिन और काला और शीतल ऐसा अंग होजावे तब
कफकी तृषा जाननी ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषकी तृषाका लक्षण ।

दृक्शूलं वमते, दाहो भ्रमो वा शिरसो व्यथा ॥

वेपथुश्चाङ्गशैत्यञ्च त्रिदोषप्रभवा तृषा ॥ ७ ॥

नेत्रोंमें शूल चले, छर्दि आवे, दाह और भ्रम हो, शिरमें पीड़ा रहे, कंप हो, अंगोंमें शीत-
लता हो, तब त्रिदोषकी तृषा जाननी ॥ ७ ॥

अथ अन्यतृषाओंके लक्षण ।

वक्रशोषो भवज्जृम्भा शिरोऽर्त्तिर्गुरुतोदरे ॥ अजीर्णेनाथ मनुजे
तृष्णा संलक्ष्यते गदः ॥ ८ ॥ रसक्षये यदा तृष्णा तथाक्षमक्षुधा-

तुरः ॥ ग्लानिः शोषो भ्रमः श्वासो दैन्यमाशु प्रवर्तते ॥ ९ ॥
क्षतक्षयेषु या तृष्णा तस्यां नात्राभिनन्दनम् ॥ अन्या ज्वरातुरे
प्रोक्ता तृष्णा सा ज्वरवेगजा ॥ १० ॥ अन्यातिसारे शूले वा
तृष्णा ज्ञेया भिषग्वरैः ॥ ११ ॥

मुखमें शोष हो और जँभाई आवे, शिरमें पीड़ा हो, पेट भारी रहे तब अजीर्णकी तृषा जाननी
॥ ८ ॥ शरीर कृश हो, भूखसे पीडित रहे, ग्लानि, शोष, भ्रम, दीनपना ये शीघ्र उपजें तब रसके
क्षयसे उपजी तृषा जाननी ॥ ९ ॥ घावसे उपजी तृषामें अन्नमें रुचि न हो, ज्वररोगवालेके ज्वरके
वेगसे उपजी तृषा होती है ॥ १० ॥ अतीसारसे और शूलसे भी उपजी तृषा जाननी ॥ ११ ॥

अथ असाध्यतृष्णाका लक्षण ।

तृष्णातिसारवमनदाहमूर्च्छाभ्रमशोषोद्भवा ॥

तोयेन न याति तृप्तिमसाध्यां तां विजानीहि ॥ १२ ॥

अतीसार, छर्दि, दाह, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनसे उपजी जो तृषा पानीसे शांत नहीं होवे
तब वह असाध्य जाननी ॥ १२ ॥

अथ वातकी तृषाकी चिकित्सा ।

तृष्णां वातोद्भवां दृष्ट्वा शस्यते सगुडं दधि ॥ सगुडं वामृताका-
थ पीतं वाततृषापहम् ॥ १३ ॥ शुण्ठी च जीर्णा सह शृङ्गवेरं
जलेन सौवर्चलयुक्तकल्कः ॥ पिबेत्कषायं च सुशीतलं वा
वातोद्भवां चाशु निहन्ति तृष्णाम् ॥ १४ ॥

वातकी तृषा देख गुडसहित दही हित है अथवा गिलोयके काथमें गुड मिला पीवे । यह
वातकी तृषा शांत होती है ॥ १३ ॥ सूंठ, जीरा, अदरक, कालानमक इनका पानीसे
पीस कल्क बनावे अथवा काथ बना पीनेसे वातकी तृषा शांत हो जाती है ॥ १४ ॥

अथ पित्तकी तृषाकी चिकित्सा ।

काश्मर्यं पद्मकोशीरं द्राक्षा मधुकचन्दनम् ॥ वालकं शर्करायु-
क्तं काथं पित्ततृषापहम् ॥ १५ ॥ वटदुमो रोध्रसिता च चन्दनं
सदाडिमं तण्डुलधावनेन ॥ पिष्टञ्च शीतेन जलेन वापि पीतं
च पित्तोत्थतृषापहञ्च ॥ १६ ॥ कुष्ठमुत्पललाजां च न्यग्रोधस्य
प्ररोहकान् ॥ संचूर्ण्य शर्करायुक्ता गुटिका तृष्णिवारणी ॥ १७ ॥

द्वाक्षोत्पलं सयष्टीकं शस्तं चेशुरससेवनात् ॥ पीतं पित्तोद्भवां
तृष्णां हन्ति दाहश्च पित्तजम् ॥ १८ ॥ आकण्ठं शर्करायुक्तं
तथा क्षीरं पिबेन्नरः ॥ वमनश्च तदा कुर्व्याद्वन्ति तृष्णां सपैत्ति-
कीम् ॥ १९ ॥ लोष्ठप्रतप्ततोयश्च निर्वाप्य शीतलं कृतम् ॥
पिबेत्तृष्णाविनाशाय जलं वा चन्दनान्वितम् ॥ २० ॥

कमारी, कमल, खस, दाख, मुलहठी, चंदन, नेत्रवाला इनके काथमें खांड मिला पीवे यह पित्तकी
तृषाको हरता है ॥ १९ ॥ बडके कोंपल, लोध, मिश्री, चंदन, अनारदाना इनको चावलोंके
पानीसे अथवा शीतल पानीसे पीस पीवे । यह पित्तकी तृषाको हरता है ॥ १६ ॥ कूठ, नीला-
कमल, धानकी खील, बडकी कोंपल इनके चूर्णमें खांड मिला गोली बांधै । ये गोली पित्तकी
तृषाको हरती है ॥ १७ ॥ दाख, नीलाकमल, इनका और मौरेठीका चूर्ण अथवा ईस्वका रस
सेवनेसे पित्तकी तृषा और पित्तका दाह शांत होता है ॥ १८ ॥ खांडसे युक्त किये दूधको
कंठतक पीवे पीछे वमन करे तब पित्तकी तृषा शांत होती है ॥ १९ ॥ जलीहुई माटीको या
राखको, लोहको या बाखरेतको गरम कर पानीमें बुझावे पीछे शीतल कर पीवे अथवा चंदनसे
युक्त किये पानीको पीवे तब पित्तकी तृषा शांत होती है ॥ २० ॥

अथ कफकी तृषाकी चिकित्सा ।

जम्बवाभ्रकप्रवालानि तथा लाजा च चन्दनम् ॥ धातकीकुसु-
मानि स्युः पिष्टवासारसंयुतः ॥ २१ ॥ ॥ श्लेष्मतृष्णापहो लेहो
दाहमूर्च्छाभ्रमापहः ॥ पिबेच्चाढकीयूषश्च लाजाशर्करयान्वितम्
॥ २२ ॥ क्षीरपानं समरिचं जलं वा मरिचान्वितम् ॥ श्लेष्म-
तृष्णाविनाशाय पिबेद्वा कोलकं पयः ॥ २३ ॥

जामुन और आंबकी कोंपल, धानकी खील, चंदन, धवके फूल इनको वांसाके रसमें
पीस चाटे । यह अवलेह कफकी तृषा, दाह, मूर्च्छा, अम इनको नाशता है ॥ २१ ॥
धानकी खीलोंसे संयुक्त किये अरहरके यूपमें खांड मिला पीवे अथवा मिरचोंसहित दूधको पीवे
॥ २२ ॥ अथवा मिरचोंसहित पानीको पीवे अथवा बड़वरीके पत्तोंके रसको पीवे तब कफकी
तृषा नष्ट होजाती है ॥ २३ ॥

अथ त्रिदोषकी तृषाकी चिकित्सा ।

दुरालभा पर्पटकं प्रियङ्गु लोधद्रुमं त्र्यूषणकं सकुष्ठम् ॥ काथः
सुशीतो मधुशर्करायास्तृष्णां त्रिदोषप्रभवां निहन्ति ॥ २४ ॥

कालदाडिमवृक्षाम्लाः सारिवासमशर्करा ॥ पथ्या दाडिमचूर्ण
वा मातुलुङ्गरसान्वितम् ॥ २५ ॥

जवासा, पित्तपापडा, कांगनी, लोव, सूठ, मिर्च, पीपल, कूठ इनके काथको शीतल वन
उसमें शहद और खांड मिला पीवे यह त्रिदोषकी तृपाको नष्ट करता है । कालाअनार, वृक्षाम्ल
और सारिवा इनके समान भाग शर्कराका चूर्ण खावे अथवा सूठ और अनारका चूर्ण
विजौराके रसके साथ खावे ॥ २५ ॥

अथ तालुशोषकी चिकित्सा ।

काष्ठपात्रे शृतं सम्यक्छीतलं सलिलं तथा ॥ मर्दितं बहुवेलां
तु तत्पानीयं च पाययेत् ॥ २६ ॥ तालुशोषे घृतं तच्च दापयेच्च
मिषग्वरः ॥ तृष्णादाहभ्रमच्छर्दिशोषमूर्च्छा व्यपोहति ॥ २७ ॥
क्षतजां क्षयजां तृष्णां वारयत्याशु निश्चितम् ॥ २८ ॥

गरम किये पानीको काष्ठके पात्रमें घाल बहुत देरतक मर्दितकर पीवे ॥ २६ ॥ और
उसी पानीमें घृतको सिद्धकर घेद्य तालुशोषमें देवे यह तृषा, दाह, भ्रम, छर्दि, शोष, मूर्च्छा
इनको नाशता है ॥ २७ ॥ क्षतसे और क्षयसे उपजी तृपाको शीघ्र दूर करता है ॥ २८ ॥

अथ दाडिमकोल ।

दाडिमं कोल चुक्रीका वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥
रसं चैव तथा पथ्यायुक्तं तालुप्रलेपनम् ॥ २९ ॥

अनार, वेर, चूका, विजौरा, अम्लवेतसके रसमें हरडेका चूर्ण मिला तालुपर
लेप करै ॥ २९ ॥

अथ तृष्णाआदिकोंकी साधारण चिकित्सा ।

वारयत्याशु शोषं च तृष्णां हन्ति च सज्वराम् ॥ केसरं मातुलु-
ङ्गस्य पिष्टं तण्डुलवारिणा ॥ ३० ॥ प्रतप्तमधुना तालुलेपो मुख-
शोषापहः ॥ मधुशर्करया तालुलेपो शोषनिवारणः ॥ ३१ ॥
पद्मकन्दशृतालेपः शीतः शीतलवारिणा ॥ तालुशोषं निह-
न्त्याशु जम्ब्वाम्रपल्लवानि च ॥ ३२ ॥ निम्बान् वा मातुलु-
ङ्गान् वा सौवीरं नागराणि च ॥ तृषार्त्तपुरतो भक्षेन्न देयं तस्य
धीमता ॥ ३३ ॥ दर्शनात्तस्य चास्ये च लाला प्रस्रवते भृशम् ॥

तेनास्य शोषं हरति तृष्णामपि नियच्छति ॥३४॥ रक्तशाल्यो-
दनं शस्तं दधिशर्करयान्वितम् ॥ भोजनञ्च प्रशस्तं च न क्षारं
कटुकं पुनः ॥३५॥ शोषे च च्छर्दितृष्णायां श्रमे पानात्ययेऽपि
च ॥ अतीसारे च शोषे च दिवा निद्रा सुखावहा ॥३६॥ इत्या-
त्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने तृष्णातालुशोषचिकित्सा
नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

विजौराकी केशरको चावलोंके पानीसे पीस पीनेसे तालुशोष और ज्वरसहित तृषा शांत होती है ॥ ३० ॥ गरम किये शहदसे तालुपर लेप करे यह मुखशोषको नाशता है, शहद और खांडसे तालुपर लेप करे यह मुखके शोषको दूर करता है ॥ ३१ ॥ कमलकंदको शीतल पानीसे पीस लेप करे अथवा जामन और आंवके पत्तोंको पीस लेप करे तब तालुशोष शांत होता है ॥ ३२ ॥ नींबू, विजौरा, कांजी, सूठ, इनको इस रोगवालेके आगे खावे परंतु उस रोगीको नहीं देना ॥ ३३ ॥ इनके देखनेसे रोगीके मुखमें अत्यंत लाल झिरने लगती है उससे तृषा और शोष दूर होता है ॥ ३४ ॥ दही और खांडसे संयुक्त किये लाल शालिचावल इसरोगमें भोजन करने श्रेष्ठ हैं, खारा और चर्चरेको फिर नहीं खावे ॥ ३५ ॥ शोष, छर्दि, तृषा, परिश्रम, पानात्यय इन रोगोंमें दिनकी नींद सुखको देती है ॥ ३६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने तृषातालुशोषचिकित्सानाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः १४.



अथ मूर्च्छाकी संप्राप्ति ।

आत्रेय उवाच ॥ वेगाभिघातातिनिरोधकेन क्षीणक्षताच्च तृषि-
तेन वापि ॥ विरुद्धयुक्तान्नविभक्षणेन दोषः प्रदुष्टः प्रकरोति मूर्च्छा
म् ॥ १ ॥ पञ्चेन्द्रियाणां संलग्नाः प्रत्येके द्वादशादयः ॥ पञ्चे-
न्द्रियाणां सहिता नाडिकाः षष्टिसंख्यया ॥ २ ॥ रुन्धन्ति नाडि-
काद्वारं तेन चेतो विमूर्च्छति ॥ संज्ञानाशाद्भवेच्छीघ्रं निश्चेताश्च
सदा नरः ॥ ३ ॥ पतति काष्ठवत्तूर्णं मोहमूर्च्छा निगद्यते ॥ सा
षड्विधा समुद्दिष्टा वातपित्तकफात्तथा ॥ ४ ॥ शोणितादभिघा-

तन मद्येनाथ विपेण वा॥एतेपां कोपयेत्पित्तं मरुद्रक्तं समीरि-
तम् ॥५॥ संख्यादौर्वल्यकं तेन मूर्च्छा मोहःप्रकथ्यते ॥ कथ-
यामि सप्तासेन लक्षणानि पृथक्पृथक् ॥ ६ ॥

आत्रेय कहते हैं—विषयआदि वेगके अभिघातसे, मूत्रआदिको रोकनेसे, क्षीण क्षतसे, तृपाकी पीडासे, विरुद्ध अन्नको सेवनेसे दुष्टहुआ वातआदि दोष मूर्च्छाको करता है ॥ १ ॥ अलग २ बारहनाड़ी पांचों इन्द्रियोंमें लगीहुई है ऐसे साठ नाड़ी जाननी ॥ २ ॥ जब दुष्ट हुए दोष नाड़ियोंके द्वारको रोकते हैं तब मनुष्य मूर्च्छाको प्राप्त होते हैं । संज्ञाके नाश होनेसे शीघ्रही जड़रूप मनुष्य होजाता है ॥ ३ ॥ और काष्ठकी तरह मनुष्य शीघ्र निर पड़ता है उसको मोहमूर्च्छा कहते हैं वह छःप्रकारकी कही है ॥ ४ ॥ वातकी, पित्तकी, कफकी, रक्तकी, चोटकी, मदिराकी अथवा विषकी, ऐसे मूर्च्छा हैं । वायु और रक्तसे प्रेरित किया पित्त इन मूर्च्छाओंको कोपित करता है ॥ ५ ॥ ऐसे गिनती है अब इस मोहमूर्च्छाके लक्षणोंको विस्तारसे पृथक् २ कहता हूं ॥ ६ ॥

अथ मूर्च्छाका लक्षण ।

नीलं कृष्णारुणं पश्येत्तमः प्रविशति क्षणात् ॥

कम्पो मार्दवमेतासां क्षणेन प्रतिबुध्यति ॥ ७ ॥

नीला, काला, लाल ऐसे रंगको देखे और क्षणभरमें आँधेरीको प्राप्त होवे, कंप हो और शरीर शिथिल होजावे और क्षणभरमें जागे ये मूर्च्छाके लक्षण हैं ॥ ७ ॥

अथ वातजआदिमूर्च्छालक्षण ।

वातेन मूर्च्छा भवति कृशता विकृतास्यता ॥

नेत्रप्लावश्च मृष्टिश्च आध्मानश्च भवेत्क्षणम् ॥ ८ ॥

शरीर कृश होवे, मुख विकारको प्राप्त हो, नेत्रोंमें पानी क्षिरे और शरीरमें हड़फूटन होवे और क्षणभरमें पेटपर अफारा हो तब वातकी मूर्च्छा जाननी ॥ ८ ॥

अथ पित्तजमूर्च्छा ।

पीतञ्च नीलहरितं तमः प्रविशते भृशम् ॥ सन्तापश्च पिपासा

च रक्ते पीते च लोचने ॥९॥ सस्वेदं शरीरं चापि श्रमःसंभि-

न्नवर्चसाम्॥पित्ताद्भवति मूर्च्छात्वं जायते च शिरोव्यथा॥१०॥

पीला, नीला, हरा ऐसे अँधेरेमें प्राप्त हो, संताप और पिपासा हो, लाल और पीले नेत्र हो जावें ॥ ९ ॥ पसीना आवे, श्रम हो, पतला मल उतरे और शिरमें पीडा हो तब पित्तका मूर्च्छा जाननी ॥ १० ॥

अथ कफजमूर्च्छा ।

धूमाकुलां दिशं पश्येत्तमः पश्यति यः पुरः ॥ नेत्राकुलत्वं
मन्दाग्निस्तमोऽङ्गेषु च शीतता ॥ ११ ॥ चिरात्प्रबुध्यते-
ऽत्यर्थं कण्ठश्च घुर्घुरायते ॥ हंछासमूर्च्छा भवति कफजा च
विलक्षणेः ॥ १२ ॥

धूमासे व्याप्त हुई दिशाको देखे और आगे अंधेरीको देखे, नेत्र व्याकुल होवें, मदाग्नि हो,
अंगोंमें भी मन्दपना और शीतलपना हो ॥ ११ ॥ बहुत देरमें जागे, कंठमें घुर्घुर शब्द होवे,
थुकथुकी होवे तब कफकी मूर्च्छा जाननी ॥ १२ ॥

अथ सन्निपातजमूर्च्छा ।

सन्निपातादपस्मारो दृश्यते भिषजांवर ॥

स प्राणिनां घातयति रक्तेन सहितो यदि ॥ १३ ॥

हे वैद्यवर ! सन्निपातसे मृगी रोग दीखता है वह रक्तसे मिलके जीवोंको नाशता है ॥ १३ ॥

अथ रक्तगन्धजमूर्च्छा ।

रक्तगन्धेन मूर्च्छन्ति तेन मूर्च्छा शिरोव्यथा ॥

कम्पते नष्टचेष्टत्वं जल्पते वमते पुनः ॥ १४ ॥

रक्तकी गन्धसे उपजी मूर्च्छामें शिरपीडा होती है, रोमी कांपता है, चेष्टा नष्ट हो जाती
है, ज्यादा बोलता है और वमन करता है ॥ १४ ॥

अथ मद्यादिजन्यमूर्च्छा ।

विभ्रान्तचेता रक्ताक्षः स्वप्नशीलः सुरावशः ॥ १५ ॥ क्षतक्षया-
द्भवेच्चान्या कोद्रवात्रनिषेवणात् ॥ जायते मोहमूर्च्छा च तेन
निद्राति दुर्मनाः ॥ १६ ॥

मदिरासे उपजी मूर्च्छामें भ्रमते हुए चित्तवाला और लाल नेत्रोंवाला और शयन करनेको
चाहनेवाला ऐसा मनुष्य होजाताहै ॥ १५ ॥ क्षतक्षयसे और कोदूआदि अन्नसे उपजी मूर्च्छामें
अत्यंत नींद आती है और मन बिगड़ जाता ॥ १६ ॥

मूर्च्छा, भ्रम, निद्रा और तन्द्रा इन्होंका हेतु ।

पित्तोत्तमाद्भवति वै मनुजस्य मूर्च्छा पित्तप्रभञ्जनभवं भ्रममेव
पुंसाम् ॥ वातात्कफात्तमथुता मनुजस्य तन्द्रा निद्रा कफानि-
लतमा भजते नरस्य ॥ १७ ॥

मनुष्यको पित्तके अत्यंतपनेसे मूर्च्छा होती है और मनुष्योंके पित्त और वातसे उपजा भ्रम होता है, वात और कफसे अंधेरी करके युक्तहुई तंद्रा होती है और कफ वात और तम इनसे ही नींद होती है ॥ १७ ॥

अथ मूर्च्छाकी चिकित्सा ।

स्वेदाभिपङ्गविधिमर्दनवातशान्त्यै शीतान्नपानव्यजनानिलपित्तशान्त्यै॥कषायबहुलस्य सदा प्रशस्तं श्लेष्मोद्भवा विनिहिता भ्रममूर्च्छना वा ॥१८॥ पाययेत्त्रिफलाक्वाथं शीतं शकस्या युतम्॥दुरालभायाःक्वाथश्च पाययेच्छर्करान्वितम्॥१९॥

पसीना, मालिस, मर्दन ये वातकी मूर्च्छामें हित हैं, शीतल अन्न और पान, वाजनाकी पवन ये सत्र पित्तकी मूर्च्छामें हित हैं, कसेला पदार्थका पान कफकी मूर्च्छामें हित है ॥१८॥ त्रिफलाके शीतलक्वाथमें खांड मिला पीवे अथवा जवासाके क्वाथमें खांड मिला पीवे ये दोनों क्वाथ मूर्च्छाको हरते हैं ॥ १९ ॥

अथ रक्तमूर्च्छाआदिकोंको उपाय ।

कणां कोलस्य मज्जाश्च केसरोशीरचन्दनम्॥पिष्ट्वा शीताम्बुना खण्डपानं हन्ति विमूर्च्छितम् ॥२०॥रक्तजां मूर्च्छनां दृष्ट्वा विधेयः शीतलो विधिः॥क्षयजे दुर्बले क्षीणे मूर्च्छापोषणकारणम्॥२१॥ नष्टचेष्टात्वमापन्ने नरे संचेतनक्रिया ॥ संपीड्य च नवाङ्गुष्ठं नासिकां च प्रपीडयेत् ॥ २२ ॥ दन्तैर्वा सन्दंशैर्वापि शनैर्गात्रं प्रपीडयेत् ॥ दाहयेद्वा ललाटे तु पृष्ठदेशे च भालके ॥ २३ ॥ एवं न सिध्यते वापि तदा चान्दोलनं हितम् ॥ २४ ॥

पीपल, वेरकी मज्जा, नागकेसर, खस, चंदन इनको शीतल पानीसे पीस और खांड मिला पीवे यह मूर्च्छाका नाशता है ॥ २० ॥ रक्तसे उपजी मूर्च्छाको देखके शीतल विधि करनी चाहिये । क्षयवाला, दुर्बल, क्षीण इनके मूर्च्छाकी रक्षाका कारण करना ॥ २१ ॥ जब मूर्च्छासे मनुष्यकी संज्ञा जाती रहे तब मनुष्यको चेतन करानेकी क्रिया करे. अँगूठेको पीडित कर पीछे नासिकाको पीडित करना ॥ २२ ॥ दंतोंसे अथवा नखआदिसे धीरेधीरे शरीरको पीडित करना अथवा मस्तकमें और पृष्ठभागमें दाग देवे ॥ २३ ॥ जो ऐसे भी सिद्धि नहीं होवे तो आंदोलन क्रिया करनी हित है अर्थात् हिंडोलेसे झुलाना हित है ॥ २४ ॥

अथ नष्टसंज्ञमूर्च्छितकी चिकित्सा ।

मूर्च्छातुरं सकलशीतजलेन सिञ्चेत्संवीजयेच्च शिखिपिच्छकवी-
जनैस्तु॥दोलायनं हि विहितं मनुजस्य मूर्च्छा मोहं भ्रमश्च हरते
च मदात्ययं वा ॥ २५ ॥

मूर्च्छासे पीडित हुए मनुष्यको शीतल पानीसे सींचे और मोरकी पंखोंके बीजनेसे हवा करे
और दोलायन अर्थात् हिंडोलाके द्वारा झुलानेसे मूर्च्छा, मोह, भ्रम, मदात्यय इनका नाश
होता है ॥ २५ ॥

अथ मूर्च्छा मद् भ्रम इनकी चिकित्सा ।

करञ्जबीजं सह सैन्धवेन रसोनपत्रस्य रसं च यत्र ॥ मार्कं च
पथ्यञ्च वचां जलेन पिष्ट्वाञ्जनं हन्ति दिनस्य तन्द्राम् ॥ २६ ॥
घोटकलालामरिचं लवणयुतं नेत्रयोरञ्जनं शस्तम् ॥ विनिहन्ति
दिनशतं तन्द्रां निद्रां वा मानुषस्य ॥ २७ ॥ सुगन्धं सुकषा-
योपयुक्ता रसस्त्रिफला गुडार्द्रकं प्रातः ॥ सप्ताहान्मधुरजलं
हन्ति मद्मूर्च्छाकरानुन्मादान् ॥ २८ ॥ रक्तकर्षणमिच्छन्ति
मोहमूर्च्छाप्रशान्तये ॥ तस्मादवहितः कुर्यात्तासु रक्तावसेच-
नम् ॥ २९ ॥

करंजुआंके बीज, सैन्धानमक, लहसनके पत्ताका रस, भंगरा, हरडै, बच, इनको पानीसे
पीस अंजन करनेसे तंद्रा दूर होती है ॥ २६ ॥ घोटका लालोंसे काली मिर्च और सैन्धा-
नमकको पीस नेत्रोंमें आजनेसे सौ १०० दिनोंतक मनुष्यकी तंद्रा और नींद दूर हो जाती है
॥ २७ ॥ चंदन, हरडै, बहेड़ा, आंवला, गुड़, अदरक इनको प्रभातमें खाके ऊपर मधुर
जलको पीनेसे मद् और मूर्च्छाको करनेवाले उन्माद दूर होते हैं ॥ २८ ॥ कुशल वैद्य मोह
और मूर्च्छाकी शांतिके लिये रक्तको घटाना चाहते हैं इसवास्ते मोह मूर्च्छारोगमें सावधान
मनुष्य रक्तको निकसावे ॥ २९ ॥

अथ मूर्च्छादिकोंके साधारण उपाय ।

शीतसेकावगाहाद्याञ्जरीखण्डं व्यजनानिलान् ॥ शीतानि
चान्नपानानि सर्वमूर्च्छासु योजयेत् ॥ ३० ॥ शर्करेशुरसद्राक्षा-
वातमूर्च्छाप्रपानकैः ॥ काश्मर्यमधुकैरेव पित्तमूर्च्छा जयेन्नरः ॥
॥ ३१ ॥ यष्ट्याः काथं शृतं सर्पिः शृतं वामलकीरसम् ॥ पिबे-

द्रुसं सितालाजायुक्तं चोष्णं च शीतलम् ॥३२॥ मधुना हन्ति
च मूर्च्छायालेपैश्च प्रबोधयेत् ॥३३॥ इत्यात्रेयभाषिते हारी-
तोत्तरे तृतीयस्थाने मूर्च्छाचिकित्सा नाम चतुर्दशोऽध्यायः १४॥

शीतल पानीको सेक, शीतल पानीमें स्नान करना, सफेद चंदन, बीजनाकी पवन, शीतल
अन्न और पान ये सब प्रकारकी मूर्च्छामें योजित करने ॥ ३० ॥ खांड, ईखका रस, दाख,
इनसे वायुकी मूर्च्छाको दूर करे, खैभारी और मुलहटीसे पित्तकी मूर्च्छाको दूर करे । ॥ ३१ ॥
मुलहटीके काथमें पकाया हुआ घृत अथवा आंवलोंके रसमें धानकी खोलोंका चूर्ण और मिश्री
मिला पीवे ॥ ३२ ॥ अथवा शहद मिला पीवे तो मूर्च्छा दूर होती है और मूर्च्छारोगाको
सुन्दर आलापोंसे जगाना श्रेष्ठ है ॥ ३३ ॥ इति वेरीनिवासिनुवशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशाह्य-
नुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः १५.

अथ निद्राचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥दिवा निद्रा तथा तंद्रा धुरिणां नृत्यहास्यभिः।
गीतैश्च शान्तिमायाति नात्र कार्या विचारणा॥ यदा रात्रौ न
निद्रा स्यात्तदा कुर्यादिमां क्रियाम् ॥ १ ॥ काकमाच्यास्तु
मूलञ्च शिखां बद्ध्वा भिषग्वरः॥अधोमुखीं शिखां बद्ध्वा निद्रां
जनयति निशि ॥ २ ॥ मस्तुना पादतलको मर्दयेन्निद्रया-
र्थिनाम् ॥ यस्य नो दिवसे निद्रा तस्य निद्रा निशासु च ॥ ३ ॥
भयचिन्तया च लोभेन या निद्रा न भवेन्निशि ॥ तां चिन्तां
च परित्यज्य निद्रा संजायते क्षणात् ॥ ४ ॥ सिंही व्याघ्री
सिंहमुखी काकमाची पुनर्नवा॥वार्त्ताकीनां च मूलानां काथो
निद्राकरो नृणाम् ॥ ५ ॥ काकजंघा चापामार्गः कोकिलाक्षः
सुपर्णिका ॥ काथो निद्राकरः शीघ्रं मूलं वा बन्धयेच्छिवाम्
॥ ६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने निद्राचिकित्सा
नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं-वैल और घोड़ाआदिके बोलनेसे, नाचनेसे, हास्य करनेसे दिनकी नींद और तंद्रा दूर होती है और जो रात्रिमें नींद नहीं आवे तब इस क्रियाको करना ॥ १ ॥ काकमाचीकी जड़को चोटीपर बंधानेसे अथवा चोटीके मुखको नीचेकी तर्फ कर बांधनेसे रात्रिको नींद आ जाती है ॥ २ ॥ नींदकी इच्छावालोंके पैरोंके तलुवोंको दहीके पानीसे मर्दित करे और जिसको दिनमें नींद नहीं आती है उसको रात्रिमें नींद आजाती है ॥ ३ ॥ भय, चिंता, लोभ, इनसे जो रात्रिमें नींद नहीं आवे तब भय, चिंता, लोभ इनको त्यागनेसे नींद आती है ॥ ४ ॥ कटेहली, बड़ी कटेहली, बांसा, मकोहविशेष, सांठी, वार्ताकुनामक कटेहलीका भेद इनकी जड़ोंका काथ मनुष्योंको नींद प्राप्त करता है ॥ ५ ॥ काकजंघा, जंगा, तालमखाना, सालवण, इनका काथ बना पीवे अथवा इनकी जड़ोंको शिखा अर्थात् चोटीपर बंधावे ॥ ६ ॥

इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने निद्राचिकित्सानाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः १६.



अथ मदात्ययचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ हालाहलाहलसमं भजते वियोगात् तत्सेवया
तु मनुजस्य महापकारः ॥ तृष्णा वमिः श्वसनमोहनदाहतृष्णा
संजायतेऽतिसरणं विकलेन्द्रियत्वम् ॥ १ ॥ ये नित्यं सेव-
नादुष्टा मद्यस्य मनुजा भृशम् ॥ विषमाहारसदृशी सुरा मोहन-
कारिणी ॥ २ ॥ यथा विषं प्राणहरं वियोगाद्योगेन तं चाप्यमृतं
वदन्ति ॥ तथा सुरा योगयुता हिता स्याद्योगतश्चारभतेऽतिक-
ष्टम् ॥ ३ ॥ क्षुधातुरे तृषाक्रान्ते सुरा वा भोजनं विना ॥ न च
क्षीणैर्विना भक्ता विनाहारातिपानकम् ॥ ४ ॥ अत्यशनेऽप्यजी-
र्णोऽपि सुरा पीता रुजाकरी ॥ ५ ॥

विशेषयोगसे मदिरा हलाहलविषके समान फलको देती है और मदिराको अत्यन्त पीनेसे तृषा, छर्दि, श्वास, मोह, दाह, अतिशरणपना, इन्द्रियोंका विकलपना ये उपजते हैं ॥ १ ॥ जो नित्य मदिराको पीते हैं उनको जो समयपर नहीं मिले तब वह मदिरा विषमभोजनके समान हो जाती है और मोहको करती है ॥ २ ॥ जैसे बुरे योगसे विष प्राणोंको हरता है और अच्छे योगसे विष

अमृतके समान हो जाता है वैसे ही योगसे युक्तकरी मदिरा हित है और अयोगसे युक्तकरी अत्यन्त कष्टको करती है ॥ ३ ॥ क्षुधासे पीडितको, तृषासे पीडितको, भोजनसे रहितको, क्षीणको, आहार और पानसे वर्जितको ॥ ४ ॥ भोजनपर भोजन करनेवालेको और अजीर्णवालेको पानकरी मदिरा रोगको करती है ॥ ५ ॥

अथ वातादिदोषजन्य मदात्यय ।

यस्य प्रलपनं चापि वाचा वातमदात्ययः ॥ दाहमूर्च्छातिसारश्च
ज्वरः पित्तमदात्यये ॥ ६ ॥ छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौ-
रवम् ॥ शीतता च प्रतिश्यायः कफजे च मदात्यये ॥ ७ ॥ त्रिषु
दोषेषु समता लिङ्गैर्येषामुपक्रमः ॥ स त्रिदोषसमुद्भूतो मदात्ययो
भिषग्वर ॥ ८ ॥

जिसके बहुत प्रलाप उपजे उसके वातका मदात्यय जानना और जिसके दाह, मूर्च्छा, अती-
सार, ज्वर ये उपजें उसके पित्तका मदात्यय जानना ॥ ६ ॥ जिसके छर्दि, अरोचक, थुक्थुकी,
तन्द्रा, शरीरका नीलापन, भारीपन, शीतलपना, जुखाम ये उपजें उसके कफका मदात्यय जानना
॥ ७ ॥ जिसके तीन दोषोंके लक्षण मिलें उसके सन्निपातका मदात्यय जानना ॥ ८ ॥

मदात्ययकी चिकित्सा ।

वमनं च प्रशस्तं च निद्रासंसेवनं पुनः ॥ स्नानं हितं पयःपानं
भोजने सगुडं दधि ॥ ९ ॥ मस्तुखण्डं सखर्जूरं मृद्वीका सारि-
वाभ्लिका ॥ आमला च पल्लवं च लेहो हन्ति मदात्ययम्
॥ १० ॥ द्राक्षामलकखर्जूरपल्लवकरसेन वा ॥ कल्कयेत्पयसा
तत्तु पानं सर्वमदात्यये ॥ ११ ॥ पथ्याक्वाथेन संयुक्तं पयःपानं
मदात्यये ॥ १२ ॥

वमन, नींदको सेवना, स्नान, दूधका पीना, भोजनमें गुड़ सहित दही ये मदात्ययमें हित
हैं ॥ ९ ॥ दहीका पानी, खांड, छुहारा, मुनक्का, सारिवा, अमली, आंवला, फालसा,
इनकी चटनी मदात्ययको नाशती है ॥ १० ॥ दाख, आंवला अथवा छुहारा,
फालसा इनके रस करके बनायी चटनी मदात्ययको नाशती है ॥ ११ ॥ सब
प्रकारके मदात्ययमें दूधसे कल्क बना पीवे और मदात्ययरोगमें हरडूँके कांथसे संयुक्त किये
दूधको पीना हित है ॥ १२ ॥

अथ सुपारीके मदका निदान और चिकित्सा ।

पूगीफलमदे कम्पो मोहो मूर्च्छा कुमस्तमः ॥ प्रस्वेदो विधुरत्वं
च लालास्रावश्च जायते ॥१३॥ भ्रमक्लमपरीतत्वं विज्ञेयं पूग-
मूर्च्छिते ॥ मानवो लक्षणैरेभिज्ञेयः पूगविमूर्च्छितः ॥१४॥ तस्य
शीतं जलं पीतं बस्तिर्वा तु हितं भवेत् ॥ शर्करा भक्षणे देया
मुस्ता वा शर्करान्विता ॥ १५ ॥

सुपारीके मदमें कंप, मोह, मूर्च्छा, ग्लानि, अँधेरी, पसीना, लारका पड़ना ये उपजते हैं
॥ १३ ॥ इन लक्षणोंके होनेसे मनुष्य सुपारीसे मूर्च्छित हुआ जानना । उसको शीतल पानीका
पीना और बस्तिकर्म हित कहा है ॥ १४ ॥ इस रोगीको खानेवास्ते अकेली खांड
अथवा नागरमोथासहित खांडका देना हित है ॥ १५ ॥

अथ कोदूआदिसे उपजे मदात्ययकी चिकित्सा ।

कोदूवाणां भवेन्मूर्च्छा देयं क्षीरं सुशीतलम् ॥ धतूरकमदे देयं
शर्करासहितं दधि ॥१६॥ हलिनी करवीरं च मोहिनी मदय-
न्तिका ॥ अन्येषामपि कन्दानां वमनं चाशु कारयेत् ॥१७॥
पाययेच्छर्करायुक्तं क्षीरं वा दधि शर्कराम् ॥ १८ ॥ इत्यात्रेय-
भाषिते हारीतोतरे तृतीयस्थाने मदात्ययचिकित्सा नाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

कोदूसे उपजी मूर्च्छामें अच्छीतरह शीतल किया दूध हित है, धतूराके मदमें खांडसहित
दही हित है ॥ १६ ॥ कलहारी, कनेर, भांग, मोगरी, अन्य प्रकारके सब कंद इनके
मदोंमें शीघ्र वमनको करवावे ॥ १७ ॥ अथवा खांडसे युक्त किये दूधको अथवा खांडसे
युक्त करी दहीको पान करावे ॥ १८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशा-
स्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः १७.

अथ दाहकी संप्राप्ति आदिक ।

आत्रेय उवाच ॥ समानः संकुद्धो रुधिरमपि पित्तं त्वचि गतं
नरस्याङ्गे दाह्यं भवति नितरां घोरमपि च ॥ कदा दन्तोद्धर्षो

भवति मनुजां दाहउदये भवेच्छीतस्यार्तिः श्वसनमपि वा शो-
षमरतिः ॥ १ ॥ पित्तज्वरसमानानि लक्षणानि भिषग्वर ॥

पित्तज्वरवदारभ्य क्रिया दोषोपशान्तये ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जब समान वायु और रक्त कुपित होता है और पित्त त्वचामें प्राप्त होता है तब मनुष्यके अंगोंमें घोर दाह उपजता है और दाहके उदयमें कभी २ दंतोंको घसता है और शीतलकी भी पीड़ा होती है, शोष और ग्लानि उपजती है ॥ १ ॥ हे वैद्यवर ! दाहरोगके लक्षण पित्तज्वरके समान होते हैं इस कारणसे दोषकी शांतिके लिये पित्तज्वरकी तरह क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

अथ दाहकी चिकित्सा ।

कुशकासेक्षुमूलानामुशीरं घनवालकौ ॥ काथः शर्करया युक्तः
शीतदाहं नियच्छति ॥ ३ ॥ पर्पटः सघनोशीरः क्वथितः शर्करा-
न्वितः ॥ शीतपानं निहन्त्याशु दाहं पित्तज्वरं नृणाम् ॥ ४ ॥ लाम-
ज्जचन्दनोशीरैर्लेपनं दाहशान्तये ॥ बीजयेत्तालवृन्तैश्च कदल्य-
म्भोजसंस्तरे ॥ ५ ॥ कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ श-
स्यते शीतलं वारि दाहतृष्णानिवारणम् ॥ ६ ॥ उत्तानस्य प्रसुप्तस्य
नाभेरुपरि संदधेत् ॥ कांस्यपात्रमये सौख्यं धाराभिः शीतवारिणा
७ पूरयेत्सुरतं यत्नात्तेन सौख्यं समाप्नुते ॥ शतधौतं घृतमपि तदा-
होपरि धारयेत् ॥ ८ ॥ मतिर्धात्रीफलं वापि जलशीतेन लेपनम् ॥
दाहशोषातुरस्यापि लेह्यं वा सुखकारकम् ॥ ९ ॥ जम्बाप्रपल्लवा
त्रिम्बं बीजपूररसेन तु ॥ पिष्ट्वा प्रलेपनं दाहेशीघ्रं सुखमभीप्सते
॥ १० ॥ धारागारमथापि शीतलशशी ज्योत्स्ना तु पानानि च
वातः शीतलचन्दनं च कमलं प्रेमानुबन्धस्तथा ॥ रामागूहनम-
र्दनं स्तनयुगे शुक्लार्द्रवस्त्राणि च क्षीरं शर्कराशङ्खलोहरजतं दाहप्र-
शान्त्यै हितम् ॥ ११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीय-
स्थाने दाहचिकित्सा नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

डामकी जड़, कांसकी जड़, ईखकी जड़, खस, नागरमोथा, नेत्रवाला इनके काथमें खांड मिला पीवे यह शीतसहित दाहको नाशता है ॥ ३ ॥ पित्तपापड़ा, नागरमोथा, खस इनके

काथमें खांड मिला पीवे परन्तु यह शीतकषाय बनाके पीना चाहिये । यह मनुष्योंके दाहको और पित्तज्वरको नाशता है ॥ ४ ॥ रोहिपतृण, चन्दन, खस इनका लेप दाहकी शांतिके लिये हित है और दाहवालेको केलाके या कमलपत्तोंकी सेजपर शयन करा ताड़के यामलके बीजनेसे हवा करवावे ॥ ५ ॥ दाहहलदीके रससे लेप करना दाहरोगमें हित है और शीतल पानी भी श्रेष्ठ है । वह तृषाको और दाहको निवारण करता है ॥ ६ ॥ दाहवाले मनुष्यको सीधा शयन करा उसकी नाभिके ऊपर कांसीके पात्रको धर उसमें शीतल पानीकी धारा देनेसे सुख उपजता है ॥ ७ ॥ सुन्दर स्त्रीसे मिलाप होनेसे भी दाह दूर होता है और सौ सौ बार धोये हुए घृतकी मालिस करनेसे भी दाह दूर होता है ॥ ८ ॥ मर्चकनको अथवा आंवलाको शीतल पानीसे पीस लेप करावे अथवा चटावे तब दाहमें सुख होता है ॥ ९ ॥ जामन, आंव, नींबू इनके पत्तोंको विजौराके रससे पीस लेप करनेसे दाहरोगीको सुख मिलता है ॥ १० ॥ कुहारेका स्थान, चन्द्रमाकी शीतल चांदनी, शीतल पत्ते, शीतल वायु, सफेद चन्दन, कमल, प्रेमका होना, स्त्रीका मिलाप और स्त्रीकी चूचियोंको मसलना, सफेद वस्त्रको गीला बना धारण करना, दूध, खांड, शंख, लोहा, चांदी ये सब दाहकी शांतिके लिये हित हैं ॥ ११

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैचरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने दाहचिकित्सा नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः १८.

अथ मृगरोगकी संप्राप्ति आदिक ।

आत्रेय उवाच ॥ पित्तं मरुच्च श्लेष्मा च उदानः कुपितो भृशम् ॥
प्राणः शिरसि संकुप्य कुरुते नष्टचेष्टताम् ॥ १ ॥ प्राणान्नयत्यचै-
तन्यं नाडीं चेन्द्रियरोधनम् ॥ पतते काष्ठवल्होको मुखे लालां
विमुञ्चति ॥ २ ॥ कण्ठश्च धुर्धुरायेत फेनमुद्गिरतेऽथवा ॥ कम्पते
हस्तपादौ च रक्तव्यावर्ति लोचनम् ॥ ३ ॥ अपस्मारे च
लिङ्गानि जायन्ते भिषजां वर ॥ व्यावृत्तं लोचनं क्षामं
तमो दाहः शिरोव्यथा ॥ ४ ॥ हताभेन्द्रियसंज्ञश्चापस्मारी
विनश्यति ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—पित्त, वात, कफ, उदानवायु ये अत्यन्त कुपित होके और प्राण-

१ यह एक तरहका शाक होता है ।

वायु शिरमें छुपित होकर चेष्टाको नष्ट करते हैं ॥ १ ॥ तब चेतन नहीं रहता और नाड़ी भी अचेत हो जाती है और इन्द्रियां रुक जाती हैं और काष्ठकी तरह मनुष्य गिर जाता है और मुखसे लार पड़ती है ॥ २ ॥ कण्ठमें घुर्घुर शब्द होता है अथवा ज्ञानको मुखसे गेरता है, हाथ और पैर कंपते हैं और रक्तसे विशेषकरके आवृत हुए नेत्र हो जाते हैं ॥ ३ ॥ हे वैद्यवर ! मृगीरोगमें ये लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥ जिसके नेत्र पलट जायें और शरीर दृढ़ हो जाये और अन्वेषी, दाह, शिरमें पीड़ा ये उपजे, इन्द्रियोंकी कांति और संज्ञा जाती रहे ऐसा अपस्मारी अर्थात् मृगी रोगी मर जाता है ॥ ५ ॥

अथ मृगीरोगकी चिकित्सा ।

तस्य पानाज्जनालेपमर्दनं पानमेव च ॥ अपस्मारं चोपचार्य
घृतं तैलं च धीमता ॥ ६ ॥ अगस्तिपत्रं मरिचं मूत्रेण परिपेषि-
तम् ॥ नस्ये शस्तमपस्मारं हन्ति शीघ्रं नरस्य तु ॥ ७ ॥ वन्ध्या-
कर्कोटिकामूल घृतं शर्करयान्वितम् ॥ नस्ये वापि प्रयोक्तव्यम-
पस्मारप्रशान्तये ॥ ८ ॥

इस रोगवालेके लिये कुशल वैद्यको पान करनेके पदार्थ, अंजन, आलेप, मर्दन, घृत, तैल, इनसे इलाज करना चाहिये ॥ ६ ॥ अगस्ति वृक्षके पत्तेको और काली मिर्चको गोमूत्रमें पीस नासिकामें चढ़ानेसे मृगीरोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ७ ॥ बांझककोड़ी की जड़के रसमें घृत और खांड मिला नासिकामें चढ़ानेसे मृगीरोग शांत होता है ॥ ८ ॥

अथ कूष्माण्डलेह ।

कूष्माण्डखण्डाश्च रसेन पाचिताः सत्र्यूपगैलादलनागकेशरम् ॥
कुमेधिकाग्रन्थकधान्यकानां समांशकेनापि सिता प्रयोज्या ॥
॥ ९ ॥ उपस्सु वै भक्षणकं विधेयं तस्योपरिक्षीरमितं प्रशस्तम् ॥
विहन्त्यपस्मारविकारमाशु विनाशयेच्छीघ्रमसृग्विकारम् ॥ १० ॥

जलसे पके हुए कोहलेके टुकड़े ले उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, इलायची, तेजपात, नागकेशर, रानीमेशी, पीपलामूल, धनियां इन सबके चूर्ण मिला सबके समान मिश्री मिलावे, पीछे प्रभातमें खावे और उसके ऊपर प्रमाणसे दूधको पीवे । यह मृगी रोगको और रक्तके विकारको शीघ्र हरता है ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ कूष्मांडघृत ।

कूष्मांडब्राह्मी षडग्रन्था शंखपुष्पी पुनर्नवा ॥ सुरसासहितं

चूर्णं शर्करामधुसंयुतम् ॥ ११ ॥ अपस्मारविनाशाय भक्षणे
हितमेव च ॥ उन्मादे पित्तरक्ते तु बन्ध्याया गर्भदायकम् ॥ १२ ॥

कोहला, ब्राह्मी, वच, शंखपुष्पी, सांठी, तुलसी इनके चूर्णमें खांड और शहद मिला ॥ ११ ॥
खानेसे मृगीरोग, उन्माद, रक्तपित्त इनका नाश होता है और बन्ध्याके गर्भ ठहरता है ॥ १२ ॥

अथ दीपघृत ।

रास्नामागधिकामूलं दशमूलं शतावरी ॥ शणत्रिवृत्तथैरण्डो
भागान्द्विपलिकान्क्षिपेत् ॥ १३ ॥ यष्टीमधुकमृद्वीका शंखपुष्पी
शतावरी ॥ रास्ना समङ्गा शृतकं त्रिसुगन्धञ्च भीरुकम् ॥ १४ ॥
कुष्ठं वैतदीपकं च घृतं योज्यं भिषग्वरैः ॥ हन्त्यपस्मारमुन्मादं
रक्तपित्तं गुदामयम् ॥ १५ ॥

रास्ना, पीपलामूल, शतावरी, शण, निशोत, अरंड ये सब आठ २ तोले लेने ॥ १३ ॥
मुलहठी, मुनक्का, शंखपुष्पी, शतावरी, रायसन, मंजीठ, दालचीनी, इलायची, तेजपात,
शतावरीका भेद ॥ १४ ॥ कूठ इनमें घृतको पकावे । यह घृत मृगी रोग, उन्माद, रक्तपित्त,
गुदाका रोग इनको नाशता है ॥ १५ ॥

अथ ब्राह्मीघृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेव च ॥

पचेद्घृतं पुराणं च अपस्मारं नियच्छति ॥ १६ ॥

ब्राह्मीका रस, वच, कूठ, शंखपुष्पी इनमें पुराने घृतको पकावे । यह मृगी रोगको
नाशता है ॥ १६ ॥

अथ अन्य उपाय ।

महाबलाद्यं तैलं च बस्तौ नस्ये प्रशस्यते ॥ शतावर्यादिकं
चापि सदैव च हितं भवेत् ॥ १७ ॥ चन्दनाद्यं घृतं चैव
प्रयोज्यं चात्र चोत्तमैः ॥ अपस्मारे वाप्युन्मादे वातरोगे-
ऽथवा हितम् ॥ १८ ॥

महाबलादि तैल और शतावर्यादि तैल नस्यकर्ममें और बस्तिकर्ममें सदा हित है ॥ १७ ॥
मृगीरोग, उन्माद, वातरोग इनमें चन्दनादि घृत युक्त करना ॥ १८ ॥

अथ त्र्यूषणादि गुटिका ।

त्र्यूषणं त्रिफला हिङ्गु सैन्धवं कटुका वचा ॥ नक्तमालकबी-

जानि तथा च गौरसर्पणाः ॥ १९ ॥ वस्तमूत्रेण पिष्टैस्तु
गुटिका छायाशोपिता ॥ अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादं चैव
दारुणम् ॥ २० ॥ स्मृतिभ्रंशभ्रमीदोषभूतदोषविनाशनम् ॥ ऐका-
हिकं द्वयाहिकञ्च चातुर्थिकं ज्वरं हरेत् ॥ २१ ॥ हन्ति तिमिर-
पटलं रात्र्यान्व्यं च शिरोरुजम् ॥ सन्निपातविस्मरणं चेतयत्याशु
मानवम् ॥ २२ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, हरडै, बहेडा, आंवला, हींग, सेंधानमक, कुटकी, वच, करंजुवाके बीज,
सपेद सरसों ॥ १९ ॥ इनको बकरेके मूत्रमें पीस गोलियां बना छायामें सुखावे । पीछे
गोलीको बिस नेत्रोंमें आंजनेसे मृगीरोग, दारुणरूप उन्माद ॥ २० ॥ स्मृतिभ्रंश, भ्रम,
भूतदोष, ऐकाहिकज्वर, द्वयाहिकज्वर चातुर्थिकज्वर ॥ २१ ॥ तिमिर, पटलगतरोग, स्तौब,
शिरकी पीडा इनका नाश होता है और सन्निपातसे मूर्च्छित हुआ रोनी जागता है ॥ २२ ॥

चन्दनादि चूर्ण ।

चन्दनं तगरं कुष्ठं यष्टीत्रिसुगन्धवासकम् ॥ मज्जिष्ठाभीरुमृद्धीका-
पाठाश्यामाप्रियङ्गुभिः ॥ २३ ॥ स्वयंगुप्ता पीलुपर्णी विषा-
रास्ना गवादनी ॥ काकोल्यौ जीरकं मेदे पुष्करं घनवालुकम् ॥
॥ २४ ॥ विदारी वासुमन्ती च वृद्धदन्ती विडङ्गकम् ॥ पद्मकं
चैन्द्रवृक्षश्च तथारग्वधचित्रकम् ॥ २५ ॥ धान्यकं पञ्चजीरेण
तथा तालीसपत्रकम् ॥ खदिरं निर्यासतगरं कालीयकं च कै-
थकम् ॥ २६ ॥ नागकेसरं परूषश्च खर्जूरं चैकत्र मर्दयेत् ॥
भावितं पुनरेवं च मधुना सघृतेन च ॥ २७ ॥ लेहोऽयञ्च सदा
शस्तश्चापस्मारेऽति दारुणे ॥ उन्मादे कामलारोगे पांडुरोगे हली-
मके ॥ २८ ॥ राजयक्ष्मे रक्तपित्ते पित्तातीसारपीडिते ॥
रक्तातिसारे शोषे च शिरोरोगे सदाज्वरे ॥ २९ ॥ तप्तकभ्रमके
छर्दिदाहे च समदात्यये ॥ अश्मर्याश्च प्रमेहेषु कासे श्वासे
च पीनसे ॥ ३० ॥ एतेषां च प्रयोक्तव्यः सर्वरोगनिवारणः ॥
वन्ध्यानां च प्रयोक्तव्यो वृद्धानां च विशेषतः ॥ ३१ ॥ बालानां

च हितश्चैव शृणु चात्र प्रमाणकम् ॥ एवं प्रयोजितो रोगे महा-
कल्को मतो बुधैः ॥ ३२ ॥ बलवान्गुणवांश्चैव भवतीह फल-
प्रदः ॥ भिषग्भिः कथ्यते लेहः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ३३ ॥

चंदन, तगर, कूठ, मुलहटी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, वांसा, संजीठ, शतावरी,
मुनक्का, स्योनापाठा, कालीनिशोत, मालकांगनी ॥ २३ ॥ कौंचके वीज, मीठी तोरी,
अतीश, राखा, इंद्रायन, काकोली, क्षीरकाकोली, जीरा, मेदा, महामेदा, पोहकरमूल, नागर-
मोथा, नेत्रवाला ॥ २४ ॥ विदारीकंद, शालग्रण, विधायरा, जमालगोटाकी जड, वायवि-
डंग, पद्माक, इंद्रायणविशेष, अमलताश, चीता ॥ २५ ॥ धनियां, पांचों तरहके जीरे,
तालीशपत्र, खर, तगर, दारुहलदी, कैथ ॥ २६ ॥ नागकेशर, फालसा, छुहारा ये सब
समान भाग लेके मर्दित करने पीछे घृत और शहदमें मिला खावे ॥ २७ ॥ यह लेह भयंकर-
रूपी मृगीरोग, उन्माद, कामला, पांडुरोग, हलीमक ॥ २८ ॥ राजरोग, रक्तपित्त, पित्तका
अतिसार, शोष, शिरका रोग, सब कालमें रहनेवाला ज्वर ॥ २९ ॥ तमक, श्वास, अम, छर्दि,
दाह, मदात्यय, पथरीरोग, प्रमेह, खांसी, श्वासरोग, पीनस ॥ ३० ॥ इनमें प्रयुक्त करना
चाहिये । यह सब रोगोंको निवारण करता है, बंध्या स्त्रियोंको और वृद्ध मनुष्योंको विशेष करके हित
है ॥ ३१ ॥ और बालकोंको हित है ऐसे यह कल्क बुद्धिमानोंने माना है ॥ ३२ ॥ यह चूर्ण
बलको देता है, गुणोंको प्रकाशित करता है । यह चूर्ण अथवा कल्क वृद्ध वैद्योंने कहा है
और कृष्णात्रेयजीने पूजित किया है ॥ ३३ ॥

अथ द्राक्षावलेह ।

द्राक्षा दारु तथा निशा च मधुकं कृष्णा कलिं गा त्रिवृद्धष्टीका
त्रिफला विडंगकटुकासृक्चन्दनं दाडिमम् ॥ चातुर्जातकनिम्ब-
का च तुरगी तालीसपत्रं घना मेदे द्वे सुरदारु कुष्ठकमलं रोध्रं
समङ्गा वरी ॥ ३४ ॥ भाङ्गीकोलकदाडिमाम्लसहितं काश्मर्य-
शृङ्गाटकं काम्बोजा शणघण्टिका लघुतराक्षुद्रा च रास्नायुतम् ॥
चूर्णं शर्करया समं मधु घृतं खर्जूरके संयुतं लिह्यात्कर्षमिदं सम-
स्तबलकृद्घन्त्याश्वपस्मारकम् ॥ ३५ ॥ उन्मादश्च सुदारुणं
क्षयमथो यक्ष्मा च पाण्डुश्च सन् कासासृग्धिरप्रमेहगुदजं स्त्रीणां
हितं शस्यते ॥ ३६ ॥

मुनक्का, देवदार, हलदी, मुलहटी, पीपल, सफेद निशोत, काली निशोत, महुवा, हरडै,
बहेडा, आंवला, वायविडंग, कुटकी, रक्तचंदन, अनार, दालचीनी, इलायची, नागकेशर,

तेजपात, नींबूकी छाल, कालानमक, असगंध, तालीशपत्र, नागरमोथा, मेदा, महामेदा, देवदार, कूठ, कमल, लोध, मजीठ, शतावरी ॥ ३४ ॥ भारंगी, वेर, अनार, अमली, कंभारी, सिंगाड, पदमाख, तानीबेल, छोटी कटेहली, रास्ना, खिजूर ये अथवा छुहारे इनके चूर्णमें खांड, वृत्त, शहद इनको मिला १ तोलाभरको चाटे । यह बलको करता है, मृगी रोगको हरता है ॥ ३५ ॥ उन्माद, दाहणरूपी क्षय, राजरोग, पांडु, श्वासरोग, खांसी, रक्तके रोग, प्रमेहरोग, गुदाके रोग इनको भी नाशता है और स्त्रियोंको हित कहा है ॥ ३६ ॥

अथ अन्य उपाय ।

एतैर्यदि न सौख्यं स्याद्दहेल्लोहशलाकया ॥ ललाटे च भ्रुवोर्मध्ये
दहेद्वा सूर्ध्व मानवम् ॥ ३७ ॥ वर्जयेत्कटुकं चाम्लं रक्तपित्तवि-
कारिणाम् ॥ विशेषेण वर्जनीयं सुरापूगकषायकम् ॥ ३८ ॥ न
सेव्यानि ह्यपस्मारे मोहमूर्च्छाकराणि वा ॥ ३९ ॥ इत्यात्रेयभा-
षिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अपस्मारचिकित्सा नामाष्टा-
दशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

जो इन योगोंसे मुख नहीं होवे तब लोहेकी सलाईको गर्म कर मस्तक, भ्रुकुटियोंका बीच, शिर इनमें दाग देवे ॥ ३७ ॥ चर्चरा, खट्टा, रक्तपित्तविकारवालोंको वर्जित करे, मदिरा, नुगारी, कसैला पदार्थ ॥ ३८ ॥ मोह और मूर्च्छाको करनेवाले पदार्थ इनको मृगी-रोगमें त्यागे ॥ ३९ ॥ इति बेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रनुवादितहारीतसंहिता-भाषाटीकायां तृतीयस्थानेऽपस्मारचिकित्सा नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

ऊनविंशोऽध्यायः १९.

अथ उन्मादानिदान ।

आत्रेय उवाच ॥ अयं मानसिको व्याधिरुन्माद इति कीर्तितः ॥
प्रमत्ता ऊर्ध्वगा दोषा ऊर्ध्व गच्छन्त्यमार्गताम् ॥ १ ॥ उन्मादो
नाम दोषोऽयं कष्टसाध्यो भिषग्वरैः ॥ सोऽपि पृथग्विधैर्दोषैर्द्रव्य-
जोऽन्यः प्रकीर्तितः ॥ तथान्यः सन्निपातेन विषाद्भवति चापरः
॥ २ ॥ अशुचिविषयशून्यागारकेऽरण्यमध्ये समयगहनवीथी-
देवतागारके च ॥ अथ कथमपि भीत्या शङ्कया खिन्नचेतः

क्षुभितमनसमार्गत्याज्यमुन्मार्गयेति ॥३॥ चिन्ताव्यथासुभय-
 हर्षविमर्षलोभादेवातिथिद्विजनरेन्द्रगुर्वपमानात् ॥ प्रेमाधिकाच्च
 युवतौ हितविप्रयोगादुन्मादजन्म च नृणां कथितं वरिष्ठैः ॥४॥
 तेन गायति वा रौति विरूपं पठते यदा ॥ लोलयेच्छर्दिते वापि
 कम्पते हसते तथा ॥ ५ ॥ धावते हनने चैव तथा जिह्वा विन-
 श्यति ॥ जवे भासयतेऽत्यर्थं पश्येद्धनमथातुरः ॥ ६ ॥ तस्या-
 पस्मारकं कर्म कर्त्तव्यं भिषजां वरैः ॥ विशेषेण भूतविद्यामध्ये
 वक्ष्यामि चाग्रतः ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीय-
 स्थाने उन्मादनिदानं नामोऽविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

आत्रेयजी कहते हैं:-मनमें होनेवाली व्याधि उन्मादसंज्ञक कहाती है, प्रमत्त अर्थात् बिगड़के बड़े हुए दोष ऊपरके मार्गमें प्राप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥ तब यह उन्माद रोग होता है यह वैद्योंने कष्टसाध्य कहा है वह उन्माद वात, पित्त, कफ इनसे और द्वंद्वज होता है और एक सन्निपातसे उन्माद होता है, एक विषसे होता है ॥ २ ॥ और अशुद्ध होके भयंकर मार्गमें, शून्य मकानमें, वनमें तथा भयवाले गहर मार्गमें, देवताके मंदिरमें, किसी प्रकारसे भयकी शंकासे, खिन्न मन होनेसे मन क्षोभको प्राप्त हो अपने मार्गको त्याग उन्मादको प्राप्त हो जाता है ॥ ३ ॥ चिन्ता, व्यथा, भय, हर्ष, क्रोध, लोभ इनसे और देवता, अतिथि, ब्राह्मण, राजा, गुरु इनके अपमान करनेसे और अधिक प्रेमवाले जनका तथा स्त्रीका वियोग होनेसे बुद्धिमान् पुरुषोंने उन्मादका हेतु कहा है ॥ ४ ॥ उस उन्मादके होनेसे कभी गावे, कभी रोवे, विरूप हो जावे, कभी पड़े, चंचलपना हो, छर्दि करे कांपे, हंसे ॥ ५ ॥ मारनेके समय भाग जावे, जिह्वाको छिपा लेवे और बेगसमय अत्यंत तेज हो जावे और पीडित होके वनको देखे ॥ ६ ॥ ऐसे पुरुषके वैद्यजनोंको मृगीरोगमें कहे हुए कर्म करने चाहिये और विशेष करके भूतविद्यामध्यमें इसे कहेंगे ॥ ७ ॥

इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने उन्मादनिदानं नाम ऊनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

विंशोऽध्यायः २०.

अथ वातव्याधिविकित्सा तहां सोलह प्रकारके शिरोगत प्राणवायुका प्रकोप ।

आत्रेय उवाच ॥ चतुरशीतिर्विरूपाता वाता नृणां रुजाकराः ॥

तेषां निदानं वक्ष्यामि समासेन पृथक्पृथक् ॥१॥ विरुद्धचि-
न्ताशनजागराच्च व्यायासतश्चातितमोऽभिषङ्गात् ॥ असृग्विरे-
काद्विषमासनेन प्राणस्तथापानसमानरोधात् ॥ अध्वाश्रमे क्षी-
णबलेन्द्रियाणामासन्नतो धातुगतोऽपि वायुः ॥२॥ प्राणोऽपानः
समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ एषां दोषाद्भवन्त्येते वातदोषाः
पृथक्पृथक् ॥ ३ ॥ शिरःशूलं कर्णशूलं शङ्खशूलमसृग्गदः ॥
अर्द्धशीर्षविकारश्च दिनवृद्धिसमुद्भवः ॥४॥ नासिकोपद्रवो वापि
मन्यास्तम्भो हनुग्रहः ॥ जिह्वास्तम्भस्तालुशूलं तथा च तमकं
भ्रमः ॥५॥ तन्द्राश्वासगलाद्याश्च षोडशैते शिरोगताः ॥ प्राण-
प्रकोपतो यान्ति पित्तेन सममीरिताः ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—वातसे उत्पन्न होनेवाले विकार मनुष्योंके ८४ होते हैं सो
संक्षेप करके जुदे २ उनके निदानोंको कहेंगे ॥ १ ॥ विरुद्ध भोजन, चिन्ता, जागरण,
कसरत, अत्यन्त तमोगुणके अभिपंगसे, रुधिरके विरेक अर्थात् फस्तसे, विषमभोजनसे, प्राण,
अपान, समान इन वायुओंके रोकनेसे, मार्गके श्रमसे, क्षीणबल इंद्रियवाले पुत्रोंके धातुके
समीपमें वायु प्राप्त हो ॥२॥ प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान इन वायुओंके दोषसे जुदे २
वातदोष हो जाते हैं ॥ ३ ॥ शिरमें शूल हो, कानमें शूल हो, कनपटियोंमें शूल हो, रुधिरकी
पीड़ा हो, दिनके चढ़नेके समय आधे शिरमें पीड़ा हो ॥ ४ ॥ नासिकामें उपद्रव हो, मन्यास्तम्भ
हनुग्रह अर्थात् ठोड़ी बंध रहे, जिह्वास्तम्भ, तालुवामें शूल, तमकश्वास, भ्रम ॥ ५ ॥ तन्द्रा, श्वास,
गलके रोग ये सोलह शिरमें प्राप्त होनेवाले वायुके रोग हैं और प्राण वायुके कोपसे पित्तके संग
कोप पा जाते हैं ॥ ६ ॥

अथ सोलह प्रकारके उदानवायुके कोप ।

हिक्का श्वासः परिश्वासः कासः शोषार्तिघण्टिका ॥ हृह्वासो
हृदि शूलञ्च यकृद्वातादिका वमिः ॥७॥ क्षवथुर्जृम्भणं चैव तथा
वैस्वर्यपीनसः ॥ अरुचिश्च प्रतिश्याय एते प्रोक्ता उदानतः ॥
॥ ८ ॥ उदानः श्लेष्मसंयुक्तो दोषाद्धृदि प्रकुप्यति ॥ ९ ॥

हिचकी, श्वास, अत्यन्त श्वास, खांसी, शोषकी पीड़ा, गलबंटिका रोग, थुकथुकी, हृदयमें शूल
यकृत, वात आदिकोंकी छर्दि ॥ ७ ॥ छींक आना, जैमाई आना, स्वर बिगड़ना, पीनस,

अरुचि, जुकाम ये रोग उदानवायुके कोपसे होते हैं ॥ ८ ॥ यह उदान वायु कफके साथ दोष करके हृदयमें कुपित होता है ॥ ९ ॥

अथ व्यानवायुके कोपके लक्षण ।

वक्ष्यामि व्यानको नाम मरुतस्य प्रकोपनम् ॥ वातः सर्वाङ्गको
धातुविकारं कुरुते भृशम् ॥ १० ॥ स च धातुगतो ज्ञेयस्तथा
प्रोक्तः पृथक् पृथक् ॥ त्वग्वाते रोमहर्षश्च मन्या चांसाभूरेव च ॥
॥ ११ ॥ मांसगे शोथतोदश्च मेदःस्वस्थे च कम्पता ॥ भङ्गता-
स्थिगते वाते पतनं मज्जगे भवेत् ॥ १२ ॥ शुक्रगे सन्धि शोथश्च
तस्मात्त्वग्वातलक्षणम् ॥ एतैर्धातुगतान्वातान्साध्यासाध्यात्रि-
रोधयेत् ॥ १३ ॥ संत्यक्तमांसमेदःस्थो वायुः सिध्यति भेषजैः ॥
अन्ये कष्टेन सिध्यन्ति न सिध्यन्त्यथवा पुनः ॥ १४ ॥

अब व्याननामवाले वायुके कोपके लक्षणोंको कहते हैं, सब अंगमें रहनेवाला यह वायु अत्यन्त धातुविकारको करता है ॥ १० ॥ सो वह धातुमें प्राप्त हुआ पृथक् २ जानना । यह वातके त्वचामें कोप हो जानेपर रोम खड़े हों मन्यासंज्ञक नसोंका फुरणा हो ॥ ११ ॥ मांसमें प्राप्त हो जावे तब शोजा हो, पीडा, मेदमें कंपना हो ॥ १२ ॥ अस्थियोंमें प्राप्त होवे तब हाड़ टूट जावे, मज्जामें कुपित होवे तब गिरना होवे, वीर्यमें होवे तब संधियोंमें शोजा होवे, ऐसे त्वचा आदिकोंमें वायु प्राप्त होता है । इत्यादिक धातुओंमें प्राप्त हुए वायुओंको साध्य और असाध्योंको रोके ॥ १३ ॥ जो वायु मांससे रहित मेदमें प्राप्त होवे वह औषधोंसे सिद्ध होता है और अन्य वायु कष्टसे सिद्ध होते हैं ॥ १४ ॥

अथ समानवायुका प्रकोप ।

लोमहर्षी भवेत्तोदो निद्रानाशोऽरुचिस्तमः ॥ गात्रं सूची च वि-
ध्येत भ्रमन्त्येव पिपीलिकाः ॥ १५ ॥ रूक्षत्वं त्वग्रसे नेत्रे कृश-
त्वं जायते पुनः ॥ गर्भरजसः शुक्रस्य नाशो भवति वेपथुः १६
मन्दाग्नित्वं च भवति स्वप्नानि च स पश्यति ॥ निद्रानाशः
क्षोभयति सामान्यं वातलक्षणम् ॥ १७ ॥

रोमहर्ष अर्थात् रोम खड़े हो जावें, शरीरमें व्यथा हो, निद्राका नाश हो, अरुचि हो, अंधेरी हो, शरीरमें कीड़ीसी जले ॥ १५ ॥ त्वचा, नेत्र ये रूखे रहे और दुर्बल शरीर हो जावे और स्त्रीके गर्भ, रजस्वला इनका नाश हो जावे, वीर्य नष्ट हो जावे, कंपना हो ॥ १६ ॥

मंद अग्नि हो जावे, अनेक मुपने आवे, निद्राका नाश हो जावे शरीरमें शोभ होवे ये सामान्य वातके लक्षण हैं ॥ १७ ॥

अथ आक्षेपकवायुका लक्षण तथा अपतन्त्रकवायुका लक्षण ।
मुहुराक्षेपयेद्वात्रं मेदस्तोदो बहुस्वरः ॥ स चैवाक्षेपको नाम
जातो व्यानप्रकोपतः ॥ १८ ॥ धनुर्वन्मन्यते गात्रमाक्षिपेच्च
मुहुर्मुहुः ॥ प्रह्लिन्ननेत्रस्तब्धाक्षः कपोत इव कूजति ॥ तमाहु-
र्भिषजां श्रेष्ठा अपतन्त्रकनामतः ॥ १९ ॥

और जो बारंवार शरीर कांपे, मैदमें व्यथा हो, ज्वर बहुत हो जावे ऐसा आक्षेपकनाम-
वाला वायु होता है, यह व्यानवायुके कोपसे होता है ॥ १८ ॥ शरीर बारंवार धनुषकी तरह
नवे, नीले और गर्वसरीखे नेत्र रहें, कपोतकी तरह कूजे ये लक्षण हों उस वायुको वैद्यजन्त,
“ अपतन्त्रकनामवाला ” कहते हैं ॥ १९ ॥

अथ अप्रतानकवायुप्रकोप ।

मतान्तरे वदन्त्यन्ये प्रह्वप्रतानको मतः ॥

गृहीतार्द्धं ततो वायुरप्रतानकः संस्मृतः ॥ २० ॥

कईक मतोंमें इस वायुको अप्रतानक कहते हैं अथवा जो आधा शरीरको बंध कर देवे
उसको “ अप्रतानक ” वायु कहते हैं ॥ २० ॥

सोऽपि कफाश्रितो वायुः संपीडयति दण्डवत् ॥ स्तम्भयत्याशु
गात्राणि सोऽपि दण्डाप्रतानकः ॥ २१ ॥ हृद्वक्षोजकराङ्गुली गुल्फ-
सन्धौ समाश्रितः ॥ स्नायुं प्रतानयेद्यस्तु सोऽपि स्नायुप्रतानकः
॥ २२ ॥ बाह्यानामथ नाडीनां प्रतानयति मारुतः ॥ कन्ध्या-
श्रितो वा भवति सशल्यमिव कुर्वते ॥ २३ ॥ तमसाध्यं बुधाः
प्राहुस्तच्च वातं प्रतानकम् ॥ अन्धं चतुर्थमाक्षेपमभिघातसमुद्भ-
वम् ॥ २४ ॥ अभिघातेन यो जातो न स साध्यः प्रतानकः ॥
ऊर्ध्वं तानयते यस्तु विशोषयति गात्रकम् ॥ २५ ॥ मोहतमः
कृते वास्थिसन्धिसंशुष्कको मतः ॥

और वही वायु कफके आश्रय होके लाठीकी चोट सरीखी पीडा करता है, गात्रोंको बंध
कर देता है वह दण्डप्रतानक वायु कहाता है ॥ २१ ॥ हृदय, छाती, हाथोंकी अंगुली, गुल्फ

इनकी संधियोंके आश्रय होके जो नसोंको विस्तारित कर देता है वह स्नायुप्रतानक वायु कहाता है ॥ २२ ॥ जो वायु बाहरकी नसोंमें विस्तारित हो जाता है अथवा कटिके आश्रय हो जाता है और शल्य चोट लगी सरीखी पीड़ा हो ॥ २३ ॥ उसको बुद्धिमान् मनुष्य असाध्य प्रतानक वात कहते हैं और चोटसे उत्पन्न होनेवाला चौथा आक्षेपक वात कहाता है ॥ २४ ॥ वह ऊपरले अंगोंमें फैलता है और शरीरमें शोष कर देता है ॥ २५ ॥ और मोह हो, तम अर्थात् अंधेरी हो वह अस्थिसंभि इनको सुखानेवाला वायु कहाता है ।

अथ एकाङ्गवायु ।

कृच्छ्राद्धकर्म भवति शुष्कतां च प्रकुञ्चति ॥ २६ ॥

पृष्ठं प्रतानार्द्धं यो वै स तथैकाङ्गिको मतः ॥ २७ ॥

उससे आधा शरीरमें कष्ट रहे, खिंचा हुआ रहे और शोषका कोप हो ॥ २६ ॥ और जो पीठको तथा आधे शरीरको बंध कर देता है वह एकांगिक वायु कहाता है ॥ २७ ॥

अथ एकांगपक्षघातवायु ।

एकांगपक्षघातश्च भवत्यन्यतमो यदि ॥

वातग्रैरौषधैः सर्वैर्वायुः कष्टेन सिध्यति ॥ २८ ॥

और जो यदि अन्य पक्षघातसंज्ञक वायु एकओरके अंगमें प्राप्त हो जाता है वह संपूर्ण वातनाशक औषधोंकरके कष्टसे सिद्ध होता है ॥ २८ ॥

अथ तूनी तथा प्रतितूनी वायु ।

तोदमूर्च्छा वेपनं स्याद्वेष्टता स्पर्शनाज्ञता ॥ यस्तु नश्यति
गात्राणि वायुस्तूनीतिशब्दतः ॥ २९ ॥ वेपनं तोदवेष्टत्वं
स्पर्शनं वेत्ति यः पुनः ॥ प्रतूनयति गात्राणि प्रतितूनीति
गद्यते ॥ ३० ॥

शरीरमें पीड़ा हो, मूर्च्छा हो, कंपना हो, शरीर बंधा रहे, स्पर्श नहीं जाना जावे और अंगोंको नष्ट कर देवे वह तूनीसंज्ञक वायु कहाता है ॥ २९ ॥ और शरीर कांपे, व्यथा हो, शरीर बंध रहे और स्पर्श सह लेवे, शरीरको पीने अर्थात् पीनने सरीखी पीड़ा हो वह प्रतितूनी वात कहाता है ॥ ३० ॥

अथ व्यानवायुके कोपका लक्षण ।

हृदि स्तम्भः पृष्ठस्तम्भ ऊरुस्तम्भश्च गृध्रसि ॥ पृथक्त्वेन च
कथितमग्रे शृणुष्व कोविद ॥ ३१ ॥ एते व्यानप्रकोपेण द्विषो-
डश प्रकीर्तिताः ॥ ३२ ॥

हृदय बंध रहे पीठ बंध रहे, जांघ बंध रहे, गृध्रसी रोग हो जावे तो बुदे २ वर्त्तिस प्रकारके रोग पहले न्यान वायुके कोपसे कहे हैं । अब आगे कहे हुए अन्य वायुओंके लक्षणोंको सुनो ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अथ सोलह प्रकारके समानवायुके कोप ।

शूलं गुल्म उदावर्त्त आध्मानोदावर्त्तमेव च ॥ परिणामो विपमा-
ग्निरजीर्ण वाति गुल्मकः ॥ ३३ ॥ परिक्षेदी रसशोषो रसश्च मल-
वालकः ॥ वन्धी भेदी विलासी च षोडशैते समानतः ॥ ३४ ॥

शूल हो, गुल्म, उदावर्त्त, अफारा, परिणामशूल, विपमान्नि, अजीर्ण, वातका मोला ॥ ३३ ॥
परिक्षेद, पीड़ा, रसशोष, रस नहीं पकना, मल कच्चा रहना, मलका बंधा, तथा
पतला मल होना, भोग करनेकी इच्छा रहे ये सोलह विकार समान वायुके कोपसे
होते हैं ॥ ३४ ॥

अथ सोलह प्रकारके अपानवायुके लक्षण ।

भगन्दरो वस्तिशूलो मेहार्शश्चातिकोठकः ॥ लिङ्गदोषो गुदभ्रं-
शस्तथान्यो गुदशूलकः ॥ ३५ ॥ सूत्रोदो विद्रोधश्च षोडशैते
विजानता ॥ अपानस्य प्रकोपेन विज्ञेयास्तु प्रधानतः ॥ ३६ ॥
सुते विकाराः कथिताः विस्ताराश्च प्रकीर्त्तिताः ॥ दाहः सन्तापः
शोषश्च मूर्च्छा पित्तान्वितो मरुत् ॥ ३७ ॥ शैत्यं शोफारुचि-
र्जाड्यं वातश्लेष्मसमन्वितम् ॥ यो द्वन्द्वजाश्रितो धीर तं
साध्यं मारुतं त्रिदुः ॥ ३८ ॥ केवलोऽपि समीरोऽपि सोऽपि
साध्यतमः स्मृतः ॥ ३९ ॥

भगंदर रोग हो, वस्तिमें शूल, प्रमेह, ववासीर, शीत, पित्त, लिङ्गदोष, गुदभ्रंश, गुदामें शूल
॥ ३५ ॥ सूत्रबंध होना मलबंध होना, ये सोलह विकार वैद्योंको अपानवायुके कोपसे जानने
चाहिये ॥ ३६ ॥ ये विकार विस्तार करके यहां कह दिये हैं, और दाह, संताप, शोष, मूर्च्छा ये
पित्तवातसे होते हैं ॥ ३७ ॥ शीतलता, शोजा, अरुचि, जडपना ये वातकफसे होते हैं
और जो दो दोषोंसे मिला हुआ वायु है उसको साध्य कहते हैं ॥ ३८ ॥ तथा एक दोषवाला भी
वायु सुखसाध्य कहा है ॥ ३९ ॥

अथ अर्दित अर्थात् लकुआके लक्षण ।

वक्रं भवति वक्रार्द्धं ग्रीवा चाप्युपवर्त्तते ॥ वैकृत्यं नयनानाञ्च

विसंगो वेदनातुरः ॥ ग्रीवायां गण्डयोर्दन्तपार्श्वे यस्यातिवेदना
॥ ४० ॥ तमर्दितमिति ग्राहुर्वातव्याधिविचक्षणाः ॥ ४१ ॥

मुख टेढ़ा हो जावे तथा ग्रीवा ऊपरको हो जावे, नेत्र विगड़ जावे, वायु बन्ध हो जावे, पीडा रहे और ग्रीवा, कपोल, दांतोंके मसूढ़े इनमें ज्यादा पीडा हो ॥ ४० ॥ उसको व्याधिको जाननेवाले वैद्य अर्दित अर्थात् लकुआ कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ द्रव्यज अर्दितका लक्षण ।

लालास्रावोऽथ शोषश्च हनुग्रहो विरस्यता ॥ दन्तशूलं भवेद्यस्य
वातेनार्दितमेव च ॥ ४२ ॥ पीतांगं सज्वरं तृष्णा पित्तजो मोह
एव च ॥ शोफस्तम्भोऽस्य भवति कफोद्धूतेऽथवा र्दिते ॥ ४३ ॥

लार गिरे, शोष हो, ठोड़ी बन्ध रहे, मुखका रस विगड़ा रहे, दांतोंमें शूल हो ये अर्दित वातके लक्षण हैं ॥ ४२ ॥ पीला शरीर हो, ज्वर हो, तृषा हो, मोह हो ये पित्तसे उपजे अर्दित वायुके लक्षण हैं और शोका हो गात्र बन्ध रहे ये कफसे उपजे वायुके लक्षण हैं ॥ ४३ ॥

अथ असाध्य अर्दित ।

भाविनो लक्षणं यस्य वेपथुर्नेत्रमाविलम् ॥ क्षीणस्यानिमिषाक्ष-
स्य प्रसक्ताव्यक्तभाषिणः ॥ ४४ ॥ न सिध्यत्यर्दितं गाढं विषमं
चापि तस्य च ॥ कण्ठो घोरो भक्षणार्थं जृम्भा प्रस्तारिते
मुखे ॥ ४५ ॥ हनुस्तम्भो भवत्येते कृच्छ्रसाध्या भवन्ति हि ॥
विषमे वा दिवास्वप्ने विवर्तितनिरीक्षणे ॥ ४६ ॥ मन्यास्तम्भं
जनयति कृच्छ्रात्पार्श्वं विलोकते ॥ वाग्वादिनीं शिरां रुद्ध्वा
स्तम्भयेद्दसनानिलः ॥ ४७ ॥ रक्ताश्रितोऽपि पवनः शिरो-
नाड्यां समाश्रितः ॥ शिरोऽर्तिं कुरुते यस्तु सोऽप्यसाध्यः
शिरोग्रहः ॥ ४८ ॥

जिसके कम्पना हो, नेत्र गड़ जावे, आखोंकी पलक क्षीण हो जावे और अव्यक्त अप्रकट बोले उसके जानना कि अब अर्दित वात होवेगा ॥ ४४ ॥ और जिसके विषम तथा अत्यन्त लकुआ वात हो जाता है उसके अच्छा नहीं होता है और जिसका कण्ठ घोर हो, भक्षण करनेके वास्ते तथा जंभाई लेनेके वास्ते फाड़ा हुआ मुखसरीखा मुख रह जावे ॥ ४५ ॥ ठोड़ी बन्ध हो जावे ये कृच्छ्रसाध्य लकुआके लक्षण हैं और जिसके दिनमें विषम सोनेसे उलटे देखनेके समय ॥ ४६ ॥

ठोड़ीकी नस बन्ध रहें और बगलकी ओर बड़े कष्टसे देखा जावे और बाणीको बोलनेवाली नाडीको श्वासवायु बन्ध कर देंगे यह भी कष्टसाध्य बात है ॥ ४७ ॥ और रक्तको आश्रय हुआ वायु शिरकी नाड़ियोंके आश्रय हो जो शिरमें पीडा कर देता है वह भी शिरोग्रह वायु असाध्य कहाता है ॥ ४८ ॥

अथ अपान आदिक बातोंकी चिकित्सा ।

अतः प्रतिक्रियां वक्ष्ये यथा सिध्यति मारुतः ॥ स्नेहनं
रूक्षणं कार्यं पाचनं शमनानि च ॥ ४९ ॥ स्वेदनं मर्दनाभ्यङ्गो
वस्तिस्नेहो निरूहणम् ॥ स्नायुसन्ध्यस्थिसंप्राप्ते भेदनं कारये-
त्सुधीः ॥ ५० ॥ माणिमन्थेन यन्त्रेण ततः संभूषयानिलम् ॥
असाध्ये शुक्रमे व्याने बीजवत्समुपाचरेत् ॥ ५१ ॥

अब जैसे वायु सिद्ध होता है वैसे चिकित्साको कहते हैं—स्नेहन, रूक्षण, पाचन, शमन ऐसे इलाज करने चाहिये ॥ ४९ ॥ पसीना दिवाना, मालिस करनी, वस्तिस्नेह, निरूहण वस्ति ये चिकित्सा करनी चाहिये और स्नायु, संधि, अस्थि इनमें वायु प्राप्त हो जावे तो भेदन अर्थात् गहावे ॥ ५० ॥ और माणिमन्थ यंत्र करके वायुको शांत करे और जो असाध्य व्यानवायु शुक्रमें प्राप्त होवे तो वीर्यवृद्धिसरीखी औषध करे ॥ ५१ ॥

अथ स्नेहननाम घृत ।

मुण्डी गुडूची बृहतीद्वयं च रास्ना समङ्गा कथितः कषायः ॥
समुच्चितेनापि विमिश्रितं च दुग्धं दधि स्यान्नवनीतकञ्च ॥ ५२ ॥
पचेत्सुधीमान्मृदुवह्निना च सिद्धं घृतं स्नेहनमेव पुंसां ॥
कर्षप्रमाणं विहितं च पाने चाभ्यङ्गके भोजनके तथैव ॥ ५३ ॥
वस्तौ हितं स्नेहनमेव पुंसां सप्ताहकं वातविकारिणाञ्च ॥ ५४ ॥

गोरखमुंड़ी, गिलोय, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, रास्ना, मंजीठ इनका काथ बना लेवे पीछे इस काथमें दूध, दही, नूनीघृत ॥ ५२ ॥ इनको मिला फिर मंद मंद अग्निसे पकावे फिर यह घृत सिद्ध हो जावे तब इसकी मालिस करनी वातवाले पुरुषोंको हित है और एक तोला प्रमाण इसको पीवे अथवा मालिसमें और भोजनमें वरते ॥ ५३ ॥ वातके विकारवाले पुरुषोंको यह घृत सात दिनतक सेवन करना चाहिये ॥ ५४ ॥

अथ निरूहणवस्ति ।

रास्नाविडङ्गरजनी सह नागरेण सौवीरकेण सुरसा सह सैन्ध-

वेन ॥ सोष्णञ्च पानमिदमेव विरूक्षणं स्यान्नृणाञ्च पञ्चदिन-
कर्षकमात्रमेव ॥ ५५ ॥

रास्ना, वायविडंग, हलदी सोंठ, कांजी, तुलसी, सेंधानमक इनको एक जगह मिला गरम गरम पीना हित है और रूखा भोजन खावे और पांच दिनतक एक एक तोला प्रमाण इसको खावे ॥ ५५ ॥

अथ पाचन तथा शमनका कथन ।

अतः स्यात्पाचनं सम्यग् दिनसप्तकमेव तत् ॥ पाचिते चैव दोषे
च तस्मात्संशमनं ददेत् ॥ ५६ ॥ वक्ष्यामि ते पुष्टिगते धमन्याः
समाश्रिते च बहुधाशमेन ॥ संस्विद्य नाशं च नयेत् समीरं
सप्ताहकं चोष्णजलेन सेकः ॥ ५७ ॥

इसके सेवनेसे वायु पक जाता है और फिर सात दिन पीछे दोष पक जावे तब संशमन औषधको करे ॥ ५६ ॥ अब धमनी नाडीके आश्रय होके पुष्टिस्थानमें प्राप्त हुए वायुके इलाजको कहते हैं उस वायुको बहुत प्रकारसे शमन करके स्वेद अर्थात् पसीना दिवाके वायुको शांत करे और सात दिनतक गरम जलसे सेके ॥ ५७ ॥

अथ सर्वांगवायुकी चिकित्सा ।

रास्नात्रिकण्टकैरण्डशतपर्वा पुनर्नवा ॥ काथो वातामयं हन्ति
सर्वाङ्गगतमाशु च ॥ ५८ ॥ रास्नागुडूचिकादारुनागरैरण्डसंयुतः ॥
काथः सर्वाङ्गवातेऽपि समधातुगते हितः ॥ ५९ ॥ रास्नाश्वग-
न्धाकाशीशं वचा च कपिकच्छुकम् ॥ काथस्त्वेरण्डतैलेन
पीतो हन्ति समीरणम् ॥ ६० ॥ रास्नाधान्यकशुण्ठी च यवानी
दशमूलकम् ॥ काथः पाचनके प्रोक्तो नरे वातविकारिणि ॥ ६१ ॥
रास्नाद्यानि पाचनानि हितानि कथितानि च ॥ ६२ ॥

रास्ना, छोटी कटेहली, बड़ी कटेहली, गोखरू, अरंड, वच, सांठी इनका काथ बना पीनेसे वातोंके रोग दूर होते हैं और सर्वांगवात शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ५८ ॥ रास्ना, गिलोय, देवदार, सोंठ, अरंड इनका काथ सर्वांगवातमें और धातुगत वातमें हित है ॥ ५९ ॥ रास्ना, असंगंध, हीराकसीस, वच, कौंचके बीज इनके काथको अरंडीके तेलके संग पीनेसे वातका नाश होता है ॥ ६० ॥ रास्ना, धनियां, सोंठ, अजवायन, दशमूल इनका काथ वातविकारवाले पुरुषोंको पाचन कहा है ॥ ६१ ॥ ऐसे ये रास्ना आदिक काथ वातवालोंको हित और पाचन कहे हैं ॥ ६२ ॥

अथ रसोनकयोग ।

अर्द्धपलं रसोनञ्च हिङ्गुसैन्धवजीरकैः ॥ सौवर्चलेन संयुक्तं
तथैव कटुकत्रिकम् ॥ ६३ ॥ घृतेन संयुतं भक्षेन्मासमेकं दिने दिने ॥
निहन्ति वातरोगञ्च अर्दितं च प्रतानकम् ॥ ६४ ॥ एकाङ्गरोगि-
णाञ्चापि तथा सर्वाङ्गरोगिणाम् ॥ ऊरुस्तम्भं क्रिमिदोषं गृध्रसी-
र्वापि कर्पति ॥ ६५ ॥ पलार्द्धञ्च पलं चापि रसोनञ्च सुकुट्टितम् ॥
हिङ्गुजीरकसिन्धूत्थं सौवर्चलकटुत्रयम् ॥ ६६ ॥ एभिः संचू-
र्णितैः सर्वैस्तुल्यं तैलेन संयुतम् ॥ यथाग्निं भक्षयेत्प्रातः रुबु-
काथानुपानवत् ॥ ६७ ॥ मासमेकं प्रयोगेण सर्ववातामयाञ्जयेत् ॥
एकाङ्गं चैव सर्वाङ्गमूरुस्तम्भं च गृध्रसीः ॥ ६८ ॥ कटिपृष्ठा-
स्थिसन्धिस्थमर्दितं चापतन्त्रकम् ॥ ज्वरं धातुगतं जीर्णं नित्यञ्च
शीतलाह्वयम् ॥ ६९ ॥

लहसन २ तोले, हींग, सेंधानमक, जीरा, कालानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल इनको
समान भाग ले ॥ ६३ ॥ घृतमें मिला दिन २ प्रति एक २ मास प्रमाण भक्षण करे । यह
वातरोग, लकुवा, प्रतानकवात इनको नाशता है ॥ ६४ ॥ एकाङ्गवातरोग, सर्वाङ्गवात,
ऊरुस्तम्भ, क्रिमिदोष, गृध्रसी वात इनको दूर करता है ॥ ६५ ॥ चार तोले अथवा दो
तोले लहसनको कूट उसमें हींग, जीरा, सेंधानमक, कालानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल
॥ ६६ ॥ इन सबोंको समान भाग ले चूर्ण बना उसमें वरावरका तैल मिला फिर प्रातः-
काल जठराग्निके अनुसार इसको भक्षण करे और इसपै अरंडके काथका अनुपान करे ॥ ६७ ॥
इसके एक मासे खानेसे सब प्रकारके वातरोगोंका नाश होता है । एकाङ्गवात, सर्वाङ्गवात,
ऊरुस्तम्भ, गृध्रसीवात ॥ ६८ ॥ कटि, पृष्ठ, अस्थि, संधि इनको मर्दन करनेवाला वात,
अपतन्त्रकवात, धातुगत ज्वर, तथा जीर्णज्वर और नित्य आनेवाला ज्वर, शीतज्वर
इनको नाशता है ॥ ६९ ॥

अथ वातको शमन करनेवाले काथ ।

जागरा च हरिद्रा च कणाजाज्यजमोदिका ॥ वचा सैन्धवरास्त्रा
च मधुकं समभागिकम् ॥ ७० ॥ श्लक्ष्णचूर्णं पिबेच्चैव सर्पिषा
प्रत्यहं नरः ॥ एकविंशतिदिनैर्वा रोगान्हन्ति न संशयः ॥ ७१ ॥
अवेच्छुतिधरः श्रीमान्मेघदुन्दुभिनिस्वनः ॥ हन्ति वातामयान्

सर्वाल्लेहो यश्च सुखावहः ॥ ७२ ॥ शतावरी वचा शुण्ठी
 रास्ना कदरशल्लकी॥दशमूली बलाकिण्वस्तुम्बुरू च गुडूचिका
 ॥ ७३ ॥ एष कल्को घृतैर्युक्तो हन्ति वातं शरीरगम् ॥ ७४ ॥
 शल्लकीचिक्कणीत्वचोक्ताथस्तैलेनसंयुतः॥कुर्याद्वातादितंस्वस्थ-
 मेकविंशतिदिनैर्नरम् ॥ ७५ ॥ अतोऽभ्यङ्गश्च कर्तव्यस्तैलैरपि
 घृतैरपि ॥ गुग्गुलुश्च रसोनश्च कारयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ७६ ॥

सोंठ, हलदी, पीपल, जीरा, अजमोद, वच, सेंधानमक, रास्ना, मुलहठी इनको समान
 भाग ले ॥ ७० ॥ बारीक चूर्ण बना घृतके संग पीनेसे इक्कीस दिनोंमें वातके रोग नष्ट होते हैं
 इसमें संदेह नहीं ॥ ७१ ॥ और श्रोत्र इंद्रिय बलवान् हो जाती हैं । मेवके समान स्वर हो जाता
 है इसमें संदेह नहीं और यह लेह सब प्रकारके वातरोगोंको नाशता है, सुख करनेवाला
 है ॥ ७२ ॥ शतावरी, वच, सोंठ, रास्ना, छोटा शल्यकी वृक्ष, दशमूल, खरेहटी,
 मदिरासे वाकी रहा द्रव्य, धनियां, गिलोय ॥ ७३ ॥ इन औषधोंका कल्क बना
 घृतके संग खानेसे शरीरमें प्राप्त हुए वातका नाश होता है ॥ ७४ ॥ शालवृक्ष,
 सुपारीका वृक्ष इनकी छालके काथमें तैल मिला मालिस करनेसे इक्कीस दिनमें वातसे
 पीडित मनुष्य स्वस्थ आनंदित होता है ॥ ७५ ॥ इसवास्ते तैलोंकरके तथा घृत-
 करके मालिस करनी हित है और विधिपूर्वक लहसनमें गुग्गुलुको सिद्ध कर उसका सेवन
 करना हित है ॥ ७६ ॥

अथ बलाआदिक औषध ।

भागाश्चाष्टौ बलामूलं चत्वारो दशमूलकम् ॥ काथश्चतुर्गुणे
 तोयेऽथवा द्रोणस्य संख्यया ॥ ७७ ॥ तत्राढकं क्षिपेत्क्षीरमाढकं
 मिश्रयेद्दधि ॥ कुलत्थाढकयूषं वै चाशु पर्य्युषितं क्षिपेत् ॥
 ॥ ७८ ॥ तैलं तिलानां द्रोणं तु कटाहे पाचयेच्छनैः॥जीवन्ती
 जीवनीया च काकोल्यौ जीवकर्षभौ ॥ ७९ ॥ मेदे द्वे सरलं
 दारु शल्लकश्च कुचन्दनम्॥कालीयकं सर्जरसं मज्जिष्ठा त्रिसुग-
 न्धिकम् ॥ ८० ॥ मांसी शैलेयकं कुष्ठं वचा कालाष्टशारिवा ॥
 शतावरी चाश्वगन्धा शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ ८१ ॥ किण्वकं च
 सुरा मुस्ता तथा तालीसपत्रकम् ॥ कटुत्रयं वालुकौ च सर्व

तत्रैव मिश्रयेत् ॥ ८२ ॥ सिद्धं सर्वगुणं श्रेष्ठं कृत्वा मङ्गलवाच-
नम् ॥ सौवर्णे राजते कुम्भे वाथवा सृन्मयायसे ॥ ८३ ॥ प्रतप्तं
धारयित्वा तु पानाभ्यङ्गे निरुहके ॥ वस्तौ वापि प्रयोक्तव्यं
मनुष्यस्य यथाबलम् ॥ ८४ ॥ वातादितेऽथवा भग्ने भिन्ने वापि
प्रदापयेत् ॥ या वन्ध्या च भवेन्नारी पुरुषाश्चात्परतसः ॥ ८५ ॥
क्षीणो वा दुर्वलो वापि तथा जीर्णज्वरातुरः ॥ आमवातातुरा-
णाञ्च तथा प्रक्षिप्य कञ्चटम् ॥ ८६ ॥ प्रभाते च प्रयोक्तव्यं तथा
शुष्के हनुग्रहे ॥ कर्णशूले चाक्षिशूले मन्यास्तम्भे च पार्श्वगे ॥
॥ ८७ ॥ सर्वदातविकाराणां हितं तैलं यथास्मृतम् ॥ हन्ति श्वासं
च कासं च गुल्मशोऽग्रहणीगदम् ॥ ८८ ॥ अष्टादशानि कुष्ठानि
शीघ्रं वापि नियच्छति ॥ ग्रहभूतपिशाचाश्च डाकिनी
शाकिनी तथा ॥ ८९ ॥ दूरदेशे पलायन्ते बलातैलस्य दर्श-
नात् ॥ अपस्मारादिदोषांश्च तच्च दूरे नियच्छति ॥ ९० ॥ वृद्धा
युवानो भवन्ति वन्ध्या च लभते सुतम् ॥ तैलं महाबलाद्यं च
महावातहरं स्मृतम् ॥ ९१ ॥

खरैहटीकी जड़ आठ भाग, दशमूल चार भाग इनको चारगुना जलमें और १०२४ तोले जलमें पकाके काथ बनावे ॥ ७७ ॥ पीछे उसमें २५६ तोले दूध मिला और २५६ तोले दही, २५६ तोले कुलथीके यूपको वासी करके मिलावे ॥ ७८ ॥ और तिलोंका तैल १०२४ तोले ऐसे इन सबोंको मिला पीछे शनैःशनैः कड़ाहीमें पकावे और जीवंती, हरद्वै, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, कृष्णमक ॥ ७९ ॥ मेदा, महामेदा, सरस, देवदार, शलुकी, लाल चन्दन, रोहिस तृण, शलका वृक्ष, मंजीठ, त्रिसुगन्धि अर्थात् तेजपात, इलायची, दालचीनी ॥ ८० ॥ जटामांसी, शिलारस, कूठ, वच, नील, अनंतमूल, शतांवरी, असगंध, सौंफ, सांठी ॥ ८१ ॥ मदिरासे बाकी रहा द्रव्य, मदिरा, नागरमोथा, तालीसपत्र, कुटकी, नेत्रवाल इन सबोंको एक जगह मिला ॥ ८२ ॥ पीछे इसको सिद्ध करे । यह सब गुणोंवाला है, श्रेष्ठ है । इसको मंगलाचरण करके सुवर्ण अथवा चांदी तथा मृत्तिकाके पात्रमें घाल धरे ॥ ८३ ॥ इसको गरम २ पीनेमें अथवा मालिसमें तथा निरुहबस्तिमें प्रयुक्त करे अथवा मनुष्यके अग्निबलको विचार साधारण बस्तिमें इसको प्रयुक्त करे ॥ ८४ ॥ लकुवावात, भग्नवात, भिन्नवात इन्होंमें यह औषध द्रवतना चाहिये और जो वन्ध्या स्त्री है अथवा अल्पवीर्यवाला पुरुष है

उसको यह श्रेष्ठ कहा है ॥ ८९ ॥ क्षीण पुरुष, दुर्बल, जीर्णज्वरसे पीड़ित इन पुरुषोंके वास्ते श्रेष्ठ कहा है और आमवात रोगवाले पुरुषोंको इस औषधमें गजपीपली मिलाके देना चाहिये ॥ ८६ ॥ और शुष्क हनुग्रहरोगमें भी इसको प्रमातकालमें खावे और कर्णशूल, अक्षिशूल, मन्यास्तंभ, पशलीशूल इनको नाशता है ॥ ८७ ॥ और यह तैल सम्पूर्ण वातके विकारोंको नाशता है और श्वास, खांसी, गुल्म, वन्नासीर, संग्रहणी रोग ॥ ८८ ॥ अठारह प्रकारके कुछ रोग इन सर्वोंको नाशता है और ग्रहदोष, भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी ॥ ८९ ॥ ये सब इस बलातैलके दर्शन करनेसे दूर भाग जाते हैं और मृगी आदि रोग दूर चले जाते हैं ॥ ९० ॥ और वृद्ध पुरुष जवान हो जाता है और वन्ध्या स्त्री पुत्रवाली हो जाती है । यह महाबला आदिक नामवाला तैल महावातरोगोंकोहरने-वाला कहा है ॥ ९१ ॥

अथ बलाआदि तैल ।

बलाववाथाढकं क्षिप्त्वा क्षिपेत्तत्राढकं दधि॥कुलत्थाढकयूषं तु
सौवीरस्याढकं तथा ॥९२॥ एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौष-
धञ्च तत् ॥ शतपुष्पा देवदारु पिप्पली गजपिप्पली ॥९३॥
त्रिसुगन्धि सुरामांसी कुष्ठञ्च दशमूलकम् ॥ चूर्णकं निक्षिपेत्तत्र
सिद्धं तद्वतारयेत् ॥ ९४ ॥ योज्यं पाने तथाभ्यङ्गे निरूहे
नस्यकर्मणि॥हन्ति वातामयाशीतिं श्रेष्ठं गुणगणात्मकम्॥९५
यथा महाबलं तैलं तथेदं गुणवर्द्धनम् ॥ ९६ ॥

२५६ तोले खरेहटीके काथमें २५६ तोले दही मिलावे पीछे उसमें २५६ तोले कुल-
थीका यूष मिलावे, २५६ तोले कांजी मिला ॥९२॥ इन सर्वोंको एक जगह कर आगे कहीं
हुई औषधोंको मिलावे । सौफ, देवदार, पीपल, गजपीपल ॥ ९३ ॥ दालचीनी, तेजपात,
इलायची, सुरामांसी, कूठ, दशमूल इनके चूर्णको मिला अग्निसे पकावे । सिद्ध हो जाय तब
उतार ॥ ९४ ॥ इसको पीनेमें, निरूहवास्तिमें, नस्यकर्ममें वरते और अस्सी प्रकारके वात-
रोगोंको यह तैल नाशता है, जैसे पहले कहा हुआ महाबलादिक तैल गुणोंवाला है ॥ ९५ ॥
ऐसे ही यह तैल गुणोंको बढ़ानेवाला और बलप्रद कहा है ॥ ९६ ॥

अथ भृङ्गराजतैल ।

भृङ्गराजरसञ्चैव कटुतुम्बीरसं तथा॥सौवीरकरसं चैव क्वाथं
वै दशमूलकम् ॥ ९७ ॥ माषकुलमाषयूषं च वाजं दधि समा-
श्रयेत्॥समांशकानि सर्वाणि तैलं चार्द्धं प्रयोजयेत् ॥ ९८ ॥

मृद्भिना पाचनीयं सिद्धं चैवावतारयेत्॥अभ्यङ्गे च प्रयोक्तव्यं
न पाने वस्तिकर्मणि ॥ ९९ ॥ पूरणं कर्णरोगेषु शिरःशूले च
दारुणे॥अर्द्धशीर्षविकारेषु भ्रुवः शङ्खाक्षिशूलके ॥ १०० ॥
तस्य योगेन मनुजः सुखमापद्यते द्रुतम् ॥ हन्ति कुष्ठं
च पासानं त्वग्रोगोऽभ्यङ्गनेन तु ॥ १०१ ॥ शीघ्रं विनाशमाया-
तिहन्त्यपस्मारमुत्कटम्॥न वस्तिशूलो भवति वामवाते श्रमः
कृमः ॥ १०२ ॥

भंगराका रस, कड़ुई त्वीका रस, कांजीका रस, दशमूलका काथ ॥ ९७ ॥ उड़दोंके
वाकलोंका यूप अथवा वकरीका दही इनको समान भाग ले और आधा भाग तैल मिल
॥ ९८ ॥ पीछे मंद मंद अग्निसे पकावे । जब सिद्ध हो जावे तब उतारि इसकी मालिस करे
और यह तैल पीनेमें तथा वस्तिकर्ममें नहीं बरतना चाहिये ॥ ९९ ॥ और कानके रोग,
दारुण शिरकी शूल, इनमें पूरण करना चाहिये और अधशिराका विकार, भ्रुकुटि, कन-
पटी आंखि इनकी शूल ॥ १०० ॥ इन रोगोंवाला मनुष्य इस तैलके योगसे सुखको प्राप्त
हो जाता है और इस तैलकी अच्छीतरह मालिस करनेसे कुष्ठ, पामा इनका नाश होता है
॥ १०१ ॥ मृगीरोग शीघ्र ही नष्ट होता है और वस्तिस्थानमें शूल नहीं रहता है और
आमवातमें श्रम और ग्लानि होती है ॥ १०२ ॥

अथ आमपाककी चिकित्सा ।

आमपाकीति विज्ञेयो न कुर्यात्तस्य पाचनम् ॥ विरेचनं न
कर्तव्यं स्तम्भनं तस्य कारयेत् ॥ १०३ ॥ कटिपृष्ठे वक्षोदेशे
तोदनं वस्तिशूलता ॥ गुल्मवज्जठरं गर्जेत्तथान्त्रे शोफमेव च
॥ १०४ ॥ शिरोगुरुत्वं भवति वामे च पतति भृशम् ॥ सर्वा-
ङ्गगो भवेत्सोऽपि विज्ञेयः सुविजानता ॥ १०५ ॥ तस्य च
पाचनं कुर्याद्विरेचनं ततः परम्॥विष्टम्भी गुल्मपाकी चसर्वा-
ङ्गगोऽन्यः प्रकीर्तितः॥ १०६ ॥ विज्ञेयस्तत्र यः साध्यश्चान्यौ द्वौ
कष्टसाध्यकौ॥स्नेही वामश्च कथितः कृत्वापस्मारनिग्रहम् १०७

जो पुरुष आमपाकी हो उसको पाचन औषध नहीं देवे और जुलाब नहीं दिवावे
किंतु स्तम्भन औषध देवे ॥ १०३ ॥ और कटि, पीठ, छाती इनमें व्यथा, वस्तिमें

रूल हो और गोलाकी तरह पेट बोले आंतोंमें शोजा हो ॥ १०४ ॥ शिर भारी हो और बहुतसी आंव गिरै वह सर्वांगवात अर्थात् सब अंगमें प्राप्त हुआ वात जानना ॥ १०५ ॥ उसमें पहले पाचन औषध देवे पीछे जुलावकी औषध देवे और जिसका मलबंध हो गोला पक जावे वह भी अन्यप्रकारका सर्वांगवात कहाता है ॥ १०६ ॥ वहां एक तो साध्य होता है और दो कष्टसाध्य होते हैं, और स्नेह, तैलादिक देके वमन करके मृगीरोगको दूर करे ॥ १०७ ॥

अथ नारायणनामक तैल ।

श्योनाकः पाटला बिल्वं तर्कारी पारिभद्रकम् ॥ अश्वगन्धा
कण्टकारी प्रसारिणी पुनर्नवा ॥ १०८ ॥ श्वदंष्ट्रातिबला चैव
बला च समभागिकी ॥ पादशेषं जलद्रोणे कथितं परिस्त्रावयेत्
॥ १०९ ॥ वाच्यमानानि योज्यानि भेषजानि भिषग्वरैः ॥ ११० ॥
शतपुष्पा वचा मांसी दारु शैलेयकं वरा ॥ पतङ्गं चन्दनं कुष्ठं
तथान्यं रक्तचन्दनम् ॥ १११ ॥ करञ्जबीजांशुमती त्रिसुगन्धि
पुनर्नवा ॥ रास्ना तुरङ्गगन्धा च सैन्धवं च दुरालभा ॥ ११२ ॥
मिष्टासुरसा चैतत्तु प्रत्येकं तु पलद्वयम् ॥ चूर्णं कृत्वा क्षिपेत्तत्र
क्षिपेच्छाक्षारसाढकम् ॥ ११३ ॥ शतावरीरसं चैव अजाक्षीरं
चतुर्गुणम् ॥ दधि तत्राढकं गव्यं तिलतैलं प्रयोजयेत् ॥ ११४ ॥
सिद्धंतत्र प्रदृश्येत ततो मङ्गलवाचनम् ॥ प्रति ह्येनं प्रति घ्राप्य
नारायणमिदं स्मृतम् ॥ ११५ ॥ हन्ति वातविकारांश्च अपस्मार-
ग्रहांस्तथा ॥ शिरोरोगान्कर्णरोगान्कुष्ठान्यष्टादशान्यपि
॥ ११६ ॥ वन्ध्या च लभते पुत्रं षण्ढोऽपि पुरुषायते ॥ कृशो युवा-
यते मूर्खो विद्याराधनतत्परः ॥ ११७ ॥ नारायणमिदं तैलं
कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ ११८ ॥

सोनापाठा, पाडलवृक्ष, वेलपत्र, अरणी, नींब, असगंध, कटेहली, खीप, सांठी ॥ १०८ ॥ गोखरू, खरैहटी, गंगेरनकी जड़ इनको समान भाग ले १०२४ ॥ तोले जलमें पकावे जब चतुर्थांश बाकी रहे तब उतारि बख्खसे छान लेवे ॥ १०९ ॥ पीछे वैद्यजनोंको आगे कही हुई औषधें गेरनी चाहिये ॥ ११० ॥ जैसे-सौंफ, वच, जटामांसी, देवदार, शिलारस, त्रिफला,

पतंग, चन्दन, कूठ, लाल चन्दन ॥ १११ ॥ करंजुवाके बीज, शालवन, तेजपात, दालचीनी, इलायची, सांठी, रास्ता, असगंध, सेंधानमक, जवांसा ॥ ११२ ॥ मीठी तोरी, तुलसी इन सबोंको आठ २ तोला प्रमाण ले चूर्ण बना उसमें पहले कहे काथमें गेरू देवे और लाखका रस २५६ तोले ॥ ११३ ॥ शतावरीका रस २५६ तोले, बकरीका दूध चार भाग, गौका दही २५६ तोले और २५६ तोले तिलोंका तैल इनको मिला ॥ ११४ ॥ फिर अग्निसे सिद्ध करे पीछे मंगलाचरण करके इस नारायणनामक तैलको प्रतिष्ठा करके स्थापित कर देवे ॥ ११५ ॥ यह तैल वातके विकारोंको नाशता है और मृगीरोग, ग्रहदोष इनको दूर करता है और शिरके रोग ॥ ११६ ॥ कर्णरोग, अठारह प्रकारके कुष्ठ इनको नाशता है । बंध्या स्त्री पुत्रको प्राप्त हो जाती है और नपुंसक भी पुरुषकी तरह आचरण करता है और दुबला पुरुष भी जवानकी तरह आचरण करता है और मूर्ख पुरुष विद्यावान् हो जाता है ॥ ११७ ॥ यह नारायण नामवाला तैल कृष्णात्रेयजीने कहा है ॥ ११८ ॥

अन्यानि घृततैलानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ एतेन जायते
सौख्यं वातरोगं नियच्छति ॥ ११९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारी-
तोत्तरे तृतीयस्थाने वातव्याधिचिकित्सा नाम विंशोऽध्यायः २०

अन्य भी जो घृत तथा तैल कहे हैं वे सब इस जगह प्रयुक्त करने चाहिये इस कर्मकरके सुख होता है और वातरोग दूर होते हैं ॥ ११९ ॥ इति वेरीनियासिन्धुशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्त-
शास्त्र्यानुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वातव्याधिचिकित्सानाम विंशोऽध्यायः २० ॥

एकविंशोऽध्यायः २१.

अथ आमवातचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ लक्षणं शृणु पुत्र त्वं समासेन वदाम्यहम् ॥
गुर्वन्नाहारपुष्टेन मन्दाग्निना व्यवयिनः ॥ १ ॥ तर्पितैः कन्दशा-
कैस्तु आमो वायुसमीरितः ॥ श्लेष्मस्थाने प्रपच्यैव जायते बहु-
वेदनः ॥ २ ॥ आमातिसारो वर्तेत सन्धौ शोफः प्रजायते ॥
जरत्वञ्चैव गात्राणां बलासपतनं मुखे ॥ ३ ॥ पृष्ठमन्यात्रिके
जाते वेदनात्तेऽपि सीदति ॥ अङ्गं वैकल्यमायाति आमवाते
भिषग्वर ॥ ४ ॥ तस्य नो स्नेहनं कार्यं पाचनञ्च विधीयते ॥

आमं संक्षयते प्राज्ञश्चतुर्धा भेदलक्षणैः ॥ ५ ॥ विष्टम्भी गुल्मकू-
न्येही आमः पक्वाम एव च ॥ सर्वाङ्गो भवेच्चान्यो वक्ष्ये तस्यापि
लक्षणम् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र! आमवातके लक्षणोंको संक्षेपमात्रसे कहते हैं सुनो, भारी
अन्नके भोजनसे, मंदअग्निवाले पुरुषके ॥ १ ॥ कसरत नहीं करनेसे, कंद मूलआदिक शाकों-
से तृप्त होनेसे वायुसे प्रेरित हुआ आम अर्थात् कच्चा रस सो कफके स्थानमें पकके बहुत पीड़ा-
सहित हो जाता है ॥ २ ॥ उससे आमातिसार होता है । संधियोंमें शोजा हो, अंगोंमें ज्वर
बना रहे, मुखसे कफ गिरे ॥ ३ ॥ और पीठ, मन्या कटिआदि त्रिकस्थान इनमें अत्यंत
पीड़ा रहे और हे उत्तम वैद्य ! आमवातरोगमें सब अंग विकल हो जाते हैं ॥ ४ ॥ उस
आमवातमें स्नेहन अर्थात् तैलआदिका औषध नहीं करे, पाचन काथ देने चाहिये और चार
प्रकारके लक्षणोंसे आमवात होता है ॥ ५ ॥ विष्टम्भी अर्थात् मलबंध रहे १, पेटमें गुल्म हो २,
स्नेही आम ३, पक्वाम ४ ऐसे चार प्रकारका होता है और एक सर्वाङ्गवात होता है उसका
लक्षण भी कहेंगे ॥ ६ ॥

अथ विष्टम्भी आमके लक्षण ।

विष्टम्भी गुरु चाध्मानं बस्तिशूलं च जायते ॥
तस्यापि पाचनं कार्यं स्नेहनं नैव कारयेत् ॥ ७ ॥

मल बंध रहे, पेट भारी रहे, अफारा हो, बस्तिमें शूल हो उसका भी पाचन औषध करना
चाहिये और स्नेहन औषध नहीं करे ॥ ७ ॥

अथ गुल्मीआमका लक्षण ।

जठरं गर्जते यस्य गुल्मवत्परिपीड्यते। कटिदेशे जडत्वञ्च आम-
गुल्माभिर्शंकितः ॥ ८ ॥ तस्यादौ लङ्घनानि स्युर्ज्ञात्वा देह-
बलाबलम् ॥ पाचनं नैव कर्तव्यं गुल्मपाके विमूर्च्छति ॥ ९ ॥
पाचिते चापि गुल्मामे तदाशु मरणं ध्रुवम् ॥ १० ॥

जिसका पेट गर्जता रहे, गोलासरीखी पीड़ा हो, कटिमें जडता हो वह गुल्मवाला आम
कहाता है ॥ ८ ॥ उसकी देहके बलाबलको विचार लंघन कराने चाहिये और पाचन औषध
नहीं करावे गुल्मपाक होनेमें मूर्च्छा हो जाती है ॥ ९ ॥ गुल्म आममें पाचन औषध करनेसे
शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है ॥ १० ॥

अथ स्नेहीआमके लक्षण ।

यस्य च स्निग्धता गात्रे जाड्यं मन्दाग्निको बली ॥ स्नेहामो

विजलो यस्य स्नेही वामः प्रकीर्तितः ॥ ११ ॥ तस्य नो स्नेहनं
कार्यं चोपवासश्च कारयेत् ॥ पाचनं चैव कर्तव्यमामं चैवा-
तिसारयेत् ॥ १२ ॥

जिसके शरीरपै चिकनाइ हो, जडता हो, मन्दअग्नि हो और जलसे रहित चिकनी चिकनी आम गिरे वह स्नेही आम होता है ॥ ११ ॥ उसकी स्नेहन औषध नहीं करे, उपवास वस्तिकर्म करे और पाचन औषध करे, आमको निकासे ॥ १२ ॥

अथ आमके लक्षण ।

यस्य शोफाननं जाड्यं तथा चैव घनोदरम् ॥ अरुच्यामाति-
सारश्च स चासाध्यो विजानता ॥ १३ ॥ प्रत्याख्येया क्रिया
कार्या जीवितस्यापि संशये ॥ पाचनं पाचितं ज्ञात्वा तस्मा-
च्चूर्णानि दापयेत् ॥ १४ ॥

जिसके मुखपै शोजा हो, जडता हो, पेट कडा हो, अरुचि हो, आमातिसार हो वह असाध्य कहा है ॥ १३ ॥ उसकी सब क्रिया त्याग देनी चाहिये । उसके जीवनेमें संदेह है वह पाचन औषधोंको पकानेवाली जानके चूर्ण देना चाहिये ॥ १४ ॥

अथ पक्वाम और सर्वाङ्गआमके लक्षण ।

सपीतो विजलः श्यामः पक्वामः पतते त्वधः ॥ न वस्तिशूलो
भवति आमवाते श्रमः क्लमः ॥ १५ ॥ आमपाकीति विज्ञेयो न
कुर्यात्तस्य पाचनम् ॥ विरेचनं न कर्तव्यं स्तम्भनं तस्य कार-
येत् ॥ १६ ॥ कटिपृष्ठे वक्षोदेशे तोदनं वस्तिशूलवान् ॥ गुल्मतो
जठरं गर्जेत्तथातः शोफ एव च ॥ १७ ॥ शिरोगुरुत्वं भवति
आमश्च पतते भृशम् ॥ सर्वाङ्गो भवेत्सोऽपि विज्ञेयोऽसौ
विजानता ॥ १८ ॥ तस्य च पाचनं कुर्याद्विरेचनमनन्तरम् ॥ वि-
ष्टम्भी गुल्मपाकी च अन्यः सर्वाङ्गो मतः ॥ १९ ॥ विज्ञेया-
श्चात्र ये साध्याश्चान्यौ द्वौ कष्टसाध्यकौ ॥ स्नेही आमश्च कथितः
कृच्छ्रसाध्यं द्वयं मतम् ॥ २० ॥ पक्वामः सुखसाध्यस्तु ज्ञात्वा
कर्म समाचरेत् ॥ २१ ॥

पीला रंगवाला, जलसे रहित, काला रंगवाला ऐसा पका हुआ आंव गिरे और बस्तिस्थानमें शूल नहीं होवे और जो आमवात होवे तो श्रमग्लानि होती है ॥ १९ ॥ और जो आमपाकी वात होवे तो उसका पाचन नहीं करे जुलाब भी नहीं देवे वहां स्तंभन औषधोंको करे ॥ १६ ॥ कटि, पीठ, छाती इनमें व्यथा हो, बस्तिमें शूल हो, गुल्मसरीखा पेट गर्जे, शोजा हो ॥ १७ ॥ शिर भारी हो, बहुतसा आम गिरे वह सर्वांगवात जानना ॥ १८ ॥ उसको पहले पाचन औषध देवे पीछे जुलाब देवे, और विष्टभी, गुल्मपाकी, सर्वांग ॥ १९ ॥ ये रोग साध्य हैं और स्नेही आम, आम ये दो कष्टसाध्य कहे हैं ॥ २० ॥ वहां पके हुए आमको सुखसाध्य जानके उसका कर्म करे ॥ २१ ॥

अथ पाचनविधि ।

रास्ना त्रिकण्टमेरण्डं शतपुष्पा पुनर्नवा ॥ पानं पाचनके शस्तं
वामे वाते भिषग्वर ॥ २२ ॥ रास्ना श्योनाककाश्मीरं चिकणीकं
च पुष्करम् ॥ काथं शृतं सुखोष्णं च पाचनं पाययेन्नरः ॥ एत-
त्पाचनकं विद्धि श्रोतं चामे सवातिके ॥ २३ ॥

हे उत्तम वैद्य! आमवातमें रास्ना, गोक्षुर, अरंड, सौंफ, सांठी इनका काथ बना पीनेमें पाचनके वास्ते श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ रास्ना, सोनापाठा, खंभारी, चिकनीसुपारी, पोहकरमूल इनका काथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीना पाचनमें हित है । यह काथ आमवातमें पाचनके वास्ते श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥

आमवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ गुडूची नागरं पथ्या
चूर्णमेतद्गुडान्वितम् ॥ २४ ॥ धान्यनागरराजाम्लदेवदारुवचा-
भयाः ॥ पाचनं चामवाते च श्रेष्ठमेतत्सुखावहम् ॥ २५ ॥ तथा
कोलकचूर्णं वा पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ आमवातश्च मदाग्निं
शूलं गुल्मश्च नाशयेत् ॥ २६ ॥ बलाकाथाढकं क्षिप्वा दधित-
काढकं क्षिपेत् ॥ कुलत्थाढकयूषं तु सौवीरस्याढकं तथा ॥ २७ ॥
एकत्र कृत्वा विपचेद्योजयेदौषधश्च तत् ॥ शतपुष्पा देवदारु
पिप्पली गजपिप्पली ॥ २८ ॥ त्रिसुगन्धि मुरामांसी कुष्ठं द्विप-
त्रमूलकम् ॥ चूर्णं विनिक्षिपेत्तत्र सिद्धं तदवतारयेत् ॥ २९ ॥ पाने
चाभ्यन्तरे योज्यं निरूहे बस्तिकर्मणि ॥ हन्ति वातामयं सर्वं
श्रेष्ठं गुणगणप्रदम् ॥ ३० ॥ पिबेदेरण्डजं तैलं गुडक्षीरेण संयु-

तम् ॥ सर्वाङ्गे चामवाते हि श्रेष्ठमेतद्विरेचनम् ॥ ३१ ॥ नागरस्य
भागमेकं द्वौ भागौ क्रिमिजस्य तु ॥ त्रिवृद्धागत्रयं क्षित्वा चूर्णं
गुडसमं वटम् ॥ ३२ ॥ भक्षेत्तथोष्णतोयेन पुनश्चोष्णं पयः
पिबेत् ॥ एतेन जायते वासे विरेकः सुखकारकः ॥ ३३ ॥
विडङ्गशुण्ठी रास्ना च पथ्या त्रिकटुकान्विता ॥ काथमष्टावशेषं
च कारयेद्भिषजांवरः ॥ ३४ ॥ दुग्धं काथार्द्धकं तैलं तथैवैरण्डजं
क्षिपेत् ॥ कर्पमात्रं सुपातव्यो विरेकश्चानुपानतः ॥ ३५ ॥ गुडूची
त्रिफला पथ्या गुडेन सह भक्षयेत् ॥ विरेको ह्यामवातेषु श्रेष्ठमे-
तत्सुखावहम् ॥ ३६ ॥

आमवातमें पीपल, दशमूल इनका काथ बना पीना हित है और गिलोय, सोंठ इनके चूर्णमें
गुड़ मिला खाना ॥ २४ ॥ तथा धनियां, सोंठ, अमलतास, देवदार, हरडै इनका चूर्ण आम-
वातमें पाचन है और सुखको करनेवाला है ॥ २५ ॥ पीपलोंके चूर्णको गरम जलके संग पीनेसे
आमवात, मंदाग्नि, शूल, गुल्म इनका नाश होता है ॥ २६ ॥ और २५६ तोले खरेहटीका
काथ, दही, तक्र इनको २५६ तोले लेवे कुलथीका यूप २५६ तोले, कांजी २५६ तोले
॥ २७ ॥ इनको एक जगह मिलाके पकावे और इन आगे कही औषधोंको गेरे । सोंफ, देवदार,
पीपल, गजपीपल ॥ २८ ॥ त्रिसुगंधि अर्थात् दालचीनी, तेजपात, इलायची, मुरामांसी, कूठ, दशमूल
इनका चूर्ण गेरे पीछे सिद्ध हो जायें तब उतार लेवे ॥ २९ ॥ यह पीनेमें और निरुहवस्तिमें उदरके
भीतर युक्त करना चाहिये । यह संपूर्ण वातरोगोंको नाशता है, श्रेष्ठ है, गुणको देनेवाला है ॥ ३० ॥
और अरंडीके तेलको गुड़ तथा दूधके संग पीवे । सर्वांगवातमें और आमवातमें यह जुलाव श्रेष्ठ है
॥ ३१ ॥ और सोंठ एक भाग, अगरदो भाग, निशोत तीन भाग इन सबोंके समान गुड़ मिला
गोली बांध लेवे ॥ ३२ ॥ पीछे गरम जलके संग भक्षण करे और ऊपरसे गरम दूध पीवे इससे
आमवातमें सुखका करनेवाला जुलाव होता है ॥ ३३ ॥ और वायविडंग, सोंठ, रास्ना, हरडै
इनको जलमें चढ़ा अष्टमांश बाकी रहे तबतक काथ बनावे ॥ ३४ ॥ पीछे काथसे आधा दूध
और अरंडीका तैल मिलावे पीछे यह एक तोला प्रमाण पीना चाहिये । इसमें जुलावका अनुपान
करे ॥ ३५ ॥ गिलोय, त्रिफला, हरडै इनको गुड़के संग भक्षण करे । यह जुलाव आमवातमें
हित है, सुखको करनेवाली है ॥ ३६ ॥

अथ आमवातरोगको शमन करनेवाली औषध ।

अभया मस्तुना पिष्टा मधुशर्करयान्विता ॥ आमातिसारं स्त-
म्भेत्तु गुडामलकमेव च ॥ ३७ ॥ वत्सकं जीरके द्वे च दध्ना पिष्टं

तु दापयेत् ॥ आमातिसारशमनं वस्तिशूलं नियच्छति ॥ ३८ ॥
 गुग्गुलुं च रसोनं च हिड्डु नागरसंयुतम् ॥ काथं वामविनाशाय
 शमनं मारुतस्य च ॥ ३९ ॥ अजमोदोऽथगन्धा च कुष्ठं त्रिक-
 टुकं शटी ॥ फलत्रिकं च भाङ्गी च पुष्करं लवणाष्टकम् ॥ ४० ॥
 जीरके द्वे विडङ्गानि तुम्बुरु द्वे च दारु च ॥ तथा बिल्वा शिला
 भेदो रोध्रं वत्सकवासकम् ॥ ४१ ॥ धातकीकुसुमं चैव शाल्मली
 त्वक् च दाडिमम् ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कार-
 येत् ॥ ४२ ॥ घृतेन संयुतं वातं नाशयत्याशु निश्चितम् ॥
 सहिगु चारनालेन पीतं शूलार्तिनाशनम् ॥ ४३ ॥ तथा चोष्ण-
 जलेनापि वामवातं नियच्छति ॥ गृध्रसीकटिशूले च दशमूल-
 जलेन तु ॥ ४४ ॥ विबन्धैरण्डतैलेन शोफे वापि सुदारुणे ॥
 गुल्मगोमूत्रसंयुक्तं गुडेन पाण्डुरोगजित् ॥ ४५ ॥ प्रमेहे मधुसं-
 युक्तं यक्ष्मणि शर्करायुतम् ॥ हन्ति सर्वामयान् घोरान् यथा-
 योगेन योजितम् ॥ ४६ ॥

हरडैको दहीके पानीमें पीस शहद और खांड मिला पीनेसे अथवा गुड आंवला इनके
 पीनेसे आमातिसार बन्द होता है ॥ ३७ ॥ कूडाकी छाल, दोनो जीरे इनको दहीमें पीस
 देनेसे आमातिसार, वस्तिशूल ये शांत होते हैं ॥ ३८ ॥ गूगल, लहसन, हींग, सोंठ,
 इनका काथ बना पीनेसे आमवातका नाश होता है ॥ ३९ ॥ अजमोद, वच, कूठ, सोंठ,
 मिरच, पीपल, कचूर, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल, लवणाष्टक ८ नमक ॥ ४० ॥ दोनों
 जीरे, वायविडंग, धनियां दो भाग, देवदार, बेलगिरी, पाषाणभेद, लोध, कुडाकी छाल, वांसा
 ॥ ४१ ॥ धायके फूल, सालवनकी छाल, अनारदाना इनको समान भाग ले बारीक चूर्ण
 बना लेवे ॥ ४२ ॥ पीछे घृतमें मिला खानेसे आमवातका नाश होता है और हींग, कांजी
 इनके संग पीनेसे वस्तिशूलकी पीडाका नाश होता है ॥ ४३ ॥ और गरम जलके संग
 पीनेसे आमवातका नाश होता है और गृध्रसीवात, कटिशूल इन रोगोंमें दशमूलके काथके
 संग पीवे ॥ ४४ ॥ और मलका बन्वा, दारुण शोजा इनमें अरंडीके तैलके संग पीवे, पांडु-
 रोगमें गुडके संग और पेटके गोलेमें गोमूत्रके संग पीवे ॥ ४५ ॥ प्रमेहमें शहदके संग,
 राजयक्ष्मारोगमें खांडके संग पीवे । यह चूर्ण इस प्रकार यथायोगके संग देनेसे संपूर्ण घोर वात-
 रोगोंको नाशता है ॥ ४६ ॥

अथ आमवातमें वर्ज्य ।

वर्जयेद्विदलं गौल्यं तैलं पिच्छलमेव च ॥ शीतोदकेन न स्नान-
सामवाते भिषग्वर ॥ ४७ ॥ पाचिते चामदोषे च आमवातं न
सेवयेत् ॥ न सेवनीयं चोष्णं च द्रवं द्रावं विशेषतः ॥ ४८ ॥
ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥ इत्या-
त्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने आमवातचिकित्सा नामै-
कविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्विदल धान्य, गुल्ली बंधनेवाला अन्न, तैल, ज़ागोंवाला पदार्थ वर्ज देवे और हे उत्तम
वैद्य ! आमवातमें शीतल जलसे स्नान नहीं करावे ॥ ४७ ॥ जब आमदोष पक जावे तब
आमवातनाशक औषधोंको नहीं सेवे और विशेष करके गरम वस्तुसे पतला और दस्त
लगानेवाला भोजन नहीं सेवे ॥ ४८ ॥ और ज्वरमें कही हुई पथ्य वस्तुको यहां
प्रयुक्त करे ॥ ४९ ॥

इति वेरीनिवासितुयशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रयनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृती-
यस्थाने आमवातचिकित्सानाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

द्वाविंशोऽध्यायः २२.



अथ गृध्रसीवातका निदान और लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ रक्तवातसमुद्भूतान्दोषाञ्छृणु महामते ॥
कट्यूरुजानुमध्ये तु जायते बहुवेदना ॥ १ ॥ गृध्रसीलि विजा-
नीयात्तेन नोक्तञ्च लक्षणम् ॥ २ ॥ जानुमध्ये भवेच्छोफो जायते
तीव्रवेदना ॥ वातरक्तसमुद्भूता विज्ञेया कोष्ठशीर्षिका ॥ ३ ॥
कण्डरा बाहुपृष्ठे च अङ्गुल्यभ्यन्तरेषु च ॥ करक्रमक्षयकरी सा
विज्ञेया विपश्चिता ॥ ४ ॥ पादहर्षो भवेच्चात्र पादयोर्लोमहर्षणम् ॥
कफवातप्रकोपान्ते प्रस्वेदः करपादयोः ॥ ५ ॥ पित्तवातान्वितं
चान्ते उष्णत्वं करपादयोः ॥

आत्रेयजी कहते हैं--हे महामते ! रक्तवातसे उपजे हुए दोषोंको सुन, कटि, जांघ,

गोड़े इनमें बहुतसी पीडा होती है ॥ १ ॥ उसको गृध्रसीवात कहते हैं इसके अन्य लक्षण पहले नहीं कहे हैं ॥ २ ॥ गोड़ोंके मध्यमें पीडा हो, शोजा हो, तीव्र वेदना हो वह वातरक्तसे उपजी हुई कोष्ठशीर्षिका कहाती है ॥ ३ ॥ और भुजा, पीठ, अंगुलीमें खाज हो वह करक्रमक्षय- करी अर्थात् हाथके क्रमसे क्षय करनेवाली गृध्रसी कहाती है ॥ ४ ॥ और पैरोंमें जो रोमहर्ष होता है वह पादहर्ष कहाता है और कफवातके प्रकोपके मध्यमें हाथ पैरोंमें पसीना हो जावे ॥ ५ ॥ और पित्तवातके मध्यमें हाथ पैर गरम हो जाते हैं ॥

अथ गृध्रसीवातकी चिकित्सा ।

अमीषां रुधिरस्त्रावं ततः स्वेदं च कारयेत् ॥ ६ ॥ अभ्यङ्गे वातह-
तलै पानं रास्नायाः पञ्चकम् ॥ शतावरी बले द्वे च पिप्पली
पुष्कराह्वयम् ॥ ७ ॥ चूर्णमेरुण्डतैलेन गृध्रसीमपकर्षति ॥
अजमोदादिकं चूर्णमामवाते प्रकीर्तितम् ॥ ८ ॥ तदत्र योज-
नीयं च गृध्रसीनां निवारणम् ॥ एतैर्न जायते सौख्यं दहेल्लोहश-
लाकया ॥ ९ ॥ पादरोगेषु सर्वेषु गुल्फे द्वे चतुरङ्गुले ॥ तिर्य-
ग्दाहं प्रकुर्वीत दृष्ट्वा पादे शिरां दहेत् ॥ १० ॥ वातरोगेषु
श्रोक्तानि पथ्यानि चात्र योजयेत् ॥ ११ ॥ इत्यात्रेयभाषिते
हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गृध्रसीचिकित्सा नाम द्वाविंशो-
ऽध्यायः ॥ २२ ॥

इन सबोंमें रुधिरस्त्राव करावे, पसीना दिवाना चाहिये ॥ ६ ॥ वातको हरनेवाले तैलको मालिसमें वरते और रास्नापंचक आदि औषधोंका काथ पीना चाहिये और शतावरी, खरेहटी, बडी खरेहटी, पीपल, पोहकरमूल ॥ ७ ॥ इनके चूर्णको अरुंडके तैलमें मिला पीनेसे गृध्रसी वातका नाश होता है और अजमोद आदि चूर्ण जो आमवात रोगमें कहा है ॥ ८ ॥ वह यहां गृध्रसी वातके निवारण करनेमें देना चाहिये और इन इलाजोंसे यदि सुख नहीं होवे तो लोहकी शलाका करके दग्ध करे ॥ ९ ॥ संपूर्ण पादरोगोंमें दोनों टंकनोंसे चार अंगुल दाह करे अथवा पैरपे नाडीको देख तिरछा दाह करना चाहिये ॥ १० ॥ और वातरोगमें कहे हुए पथ्योंको यहां करे ॥ ११ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

गृध्रसीचिकित्सानाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथ वातरक्तका निदान और लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ कटुक्षाराम्ललवणै रक्तं देहे प्रकुप्यति ॥ रोधा-
त्संधारणाद्वापि दिवास्वप्नादिसेवनैः ॥१॥ समीरकोपः प्रत्यङ्गे
युगपदृश्यते नृणाम् ॥ वातरक्तमिति प्रोक्तं नृणां देहे प्रवर्तते ॥
॥ २ ॥ जायते सुकुमाराणां तथा स्त्रीणां भिषग्वर ॥ स्थूलानाञ्च
विशेषेण कुप्यते वातशोणितम् ॥३॥ आलस्यं च तथा कण्डूर्म-
ण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ वैवर्ण्यं स्फुरणं शोफशोषौ दाहश्च सार्दवम्
॥४॥ वातरक्तं विजानीयाच्छयावतां दन्तरक्तयोः ॥ एतद्विलक्षणं
दृष्ट्वा कर्त्तव्या च प्रतिक्रिया ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—कटुआ, खारा, खट्टा, नमक इन भोजनोंके खानेसे शरीरमें रक्त
कुपित होता है और मल आदिकोंके वेगके धारण करनेसे, दिनमें सोनेसे ॥ १ ॥ वायुका कोप
हो जाता है तब मनुष्योंके अंगमें एक बार वातरक्त कुपित होके दीखता है ॥ २ ॥ यह रोग सुन्दर
बालकोंके तथा स्त्रियोंके होता है और स्थूल शरीरवाले पुरुषके विशेष करके वातरक्त कुपित होता
है ॥ ३ ॥ आलस्य हो, खाज हो, शरीरमें मंडलसे दीखे, शरीर विवर्ण हो जावे और स्फुरण और
शोका हो, शोष हो, दाह हो, कोमलपना हो ॥ ४ ॥ दांत, रक्त ये काले हों तब जानिये कि,
वातरक्त है ऐसा विलक्षण रोग जानके इसका इलाज करे ॥ ५ ॥

अथ वातरक्तकी चिकित्सा ।

विरेकं रक्तमोक्षं च पानलेपनलेहकान् ॥ धान्यनागरसंयुक्तं
क्षीरं चास्य प्रदापयेत् ॥ ६ ॥ पटोलीनिम्बपत्राणि कथित्वा
मधुसंयुतम् ॥ पाचनं वातरक्तानां तथा च शमनानि च ॥७॥
काज्जिकेन च संपिष्य पिचुमन्ददलानि च ॥ लेपनं शस्यते तस्य
वातरक्तप्रशान्तये ॥८॥ दूर्वा मूर्वा शटी शुण्ठी धान्यकं मधुय-
ष्टिका ॥ वर्तनं शीततोयेन वातरक्तप्रलेपनम् ॥ ९ ॥ धन्यकर्षश्च
जीरे द्वे गुडेन परिपाचितम् ॥ भक्षणे वातरक्तानां दापयेदोषशा-

न्तये ॥ १० ॥ एतैर्यदि न सौख्यं स्यात्तदा रक्तावसेचनम् ॥
ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत् ॥११॥ इत्या-
त्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सानाम्
त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

जुलाब दिवानी, फस्त खुलानी, पान, लेप, अवलेह ये क्रिया करनी चाहिये और
धनियां, सोंठ इनसे युक्त दूधका पान करना चाहिये ॥ ६ ॥ परवल, नीमके पत्ते
इनका काथ बना शहद मिला पीनेसे रक्तवातका पाचन होता है और शमन होता है
॥ ७ ॥ नीमके पत्तोंका कांजीमें पीस लेप करनेसे वातरक्तकी शांति होती है ॥
॥ ८ ॥ दूब, मूर्वा, सोंठ, कचूर, धनियां, मुलहटी इनको शीतल जलमें पीस लेप
करनेसे वातरक्तकी शान्ति होती है ॥ ९ ॥ और १ तोला धनियां, १ तोला दोनों जीरे
इनको गुड़में पका भक्षण करनेसे वातरक्त दोषकी शांति होती है ॥ १० ॥ और इनसे जो
शांति नहीं होवे तो रक्त निकसावे और ज्वरमें कहे हुए जो पथ्य हैं उनको यहां करवावे ॥११॥

इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने रक्तवातचिकित्सा

नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः २४.

अथ अम्लपित्तका निदान ।

आत्रेय उवाच॥गुडनिषेवणाच्चांम्ले विरुद्धाहारसूचिते॥कुपित-
श्चांम्लपित्तश्च कण्ठस्तेन विदह्यते ॥१॥ दाहो वा हृदये तस्य
शिरोऽर्तिश्चैव जायते ॥ उद्गारानम्लकान् कण्ठे हिक्कांम्लोऽपि
प्रधावति ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—गुड़का सेवन करनेसे और खट्टा पदार्थ खानेसे, विरुद्ध भोजन
करनेसे अम्लपित्त कुपित हो जाता है, उससे कंठ दग्ध होता है ॥ १ ॥ अथवा उसके हृदयमें
दाह होता है और शिरमें पीड़ा होती है और कंठमें खट्टी २ डकार आती हैं खट्टी हिचकी
भी आती है ॥ २ ॥

अथ अम्लपित्तकी चिकित्सा ।

शृणु तस्य प्रतीकारं वमनं कारयेद्भुतम् ॥ अधोगते चांम्लपित्ते
विरेकश्च प्रदीयते ॥३॥ पारिभद्रदलानीति आमलक्याः फला-

नि च॥काथपानं प्रयोक्तव्यमम्लपित्तं व्यपोहति ॥४॥ पटोल-
पाटलाकाथो धान्यनागरकान्वितः॥जलेन हितकः प्रोक्तश्चाम्ल-
पित्तनिवारणे ॥५॥पटोलविश्वामृतवह्नितित्तापत्राणि निम्बस्य
च वत्सकानाम्॥काथो विसर्पे कृतमम्लपित्तं विनाशयेन्मण्डल-
कानि दद्रुन् ॥६॥ रात्रौ संपाचनं देयं धान्यनागरकलिकतम् ७
इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने अम्लपित्तचिकित्सा
नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

उक्तके इलाजको मुनो । वहां शीघ्रही पहले वमन करवावे और जो अम्लपित्त नीचेको
गत हो रहा हो तो जुलाब दिवानी चाहिये ॥ ३ ॥ नींबूके पत्ते आंवले इनका काथ बना पीनेसे
अम्लपित्तका नाश होता है ॥ ४ ॥ परवल, पाडलवृक्ष इनका काथ अथवा धनियां, सोंठ इनका
काथ बना पीनेसे अम्लपित्तका निवारण होता है ॥ ५ ॥ परवल, सोंठ, गिलोय, कुटकी और
तीव्र, वाता इनके पत्तोंका काथ बना पीनेसे विसर्परोगसे उपजा हुआ अम्लपित्तका नाश होता है
और मंडल, दद्रु इनका नाश होता है ॥ ६ ॥ और धनियां, सोंठ इनका कलक बना रात्रिमें
संपाचनके वास्ते देना चाहिये ॥ ७ ॥ इति वेरीनिरासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां अम्लपित्त-
चिकित्सानाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः २५.



अथ शोफचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच॥शोफो भवेच्च विकलेन्द्रियरोममार्गे क्षीणे बले
चपुषि चाम्लकटूष्णसेव्यात् ॥ शैत्यात्तथा विशदपिच्छल-
सेवनेन रूक्षाभिघातपतनेन च धारणाद्वा ॥१॥आमाशये गत-
वतोऽपि नरस्य यस्य अन्ते प्रधावति ततोऽपि च दोष एषः ॥
पाणौ तथैव चरणे च पृथक् प्रसूतो द्रन्द्रेण वा भवति शोफ-
विकारचारः॥२॥ नरस्य चान्तःप्रभवाश्च शोफाः साध्या भवेयु-
र्विनता मुखेषु॥साध्येर्विना सर्वशरीरगाश्च पादे स्त्रियो वा वदने
नरस्य ॥ ३ ॥ वायौ क्षये वापि च गुल्मदेशे तद्वाजयक्ष्मण्य-

अवोदरेषु॥रक्तेन जातोऽप्ययमेव शोफो गात्रे भवेच्छोफविकार-
 चारः॥४॥अन्याश्चोर्ध्वगशोफाश्च श्लेष्मपित्तसमुद्भवाः॥कष्टसा-
 ध्याश्च विज्ञेया बहूपद्रवसंयुताः॥५॥श्लेष्मणिशिरसि प्राप्ते ऊर्ध्व-
 शोफःप्रजायते॥मध्यःपक्वाशयस्थेऽपि मलमप्यागते त्वधः॥६॥
 रसे सर्वानुगाःशोफाःसर्वदेहानुगा रसाः॥७॥सर्वाङ्गशोफा अथ
 मध्यशोफाःसर्वाङ्गशोफाःपरिवर्जनीयाः॥वृद्धे च बाले क्षतजाः
 क्षयोत्थाश्छर्द्यातिसारश्वसनेन युक्ताः ॥८॥भ्रमज्वरक्षीणशरी-
 रजाता शोफोद्भवा या च भवेन्नरस्य ॥ साध्या न वैद्यस्य
 च दोषदुष्टा सा नैव साध्या भिषजां वरिष्ठ ॥९॥तोदश्च रूक्षं
 श्वसनञ्च वातात्पित्ताच्छ्रमःशोफविदाहकश्च॥शीता घनाःश्लेष्म-
 णि वाथ कण्डूः स्याद्वन्द्वा द्रवजलक्षणेन॥१०॥अतो वदा-
 मीत्युपचारमस्यां संस्वेदनं पाचनशोधनं वा॥विरेचनं रक्तवि-
 मोक्षणं च कषायशोफेषु विधिः प्रदिष्टः ॥११॥न चास्य स्ने-
 हनं कार्यं नैव कार्यं विरूक्षणम् ॥ १२ ॥

अत्रियजी कहते हैं--जिनकी इन्द्रिय और रोममार्ग विकल हो जावे, वल क्षीण हो जावे तब खट्टा, चर्चरा, गरम ऐसे पदार्थके सेवनेसे शरीरमें शोजा हो जाता है और शीतल पदार्थ, कोमल और झागोंवाले पदार्थके सेवनेसे, रूखा भोजन करनेसे और चोट आदिके लगनेसे, गिरनेसे, मल मूत्र रोकनेसे॥ १॥आमाशयमें प्राप्त हुआ शोथ वायुविकार मनुष्यके भीतर कुपित हो जाता है तब हाथ पैरोंपै शोजा हो जाता है और दो दोषोंके विकारसे भी यह शोजा होता है॥२॥मनुष्यके भीतर होनेवाले शोजे और प्रमेहरोगसे उपजी हुई पिडिकाओंके मुखका शोजा साध्य है और सब शरीरमें होनेवाला शोजा, स्त्रीके पैरोंमें तथा पुरुषके मुखमें होनेवाला शोजा असाध्य होता है ॥ ३ ॥ क्षयी रोग, वात, गुल्मका स्थान, राजयक्ष्मा, उदररोग इनमें भी रक्तसे उपजा हुआ यह शोजेका विकार हो जाता है ॥ ४ ॥ अन्य ऊपरको होनेवाले शोजे कफपित्तसे होते हैं व कष्टसाध्य होते हैं और बहुत उपद्रवोंसे युक्त होते हैं॥५॥जब शिरमें कफ प्राप्त हो जावे तब ऊपरको शोजा हो जाता है और पक्वाशयमें स्थित हुआ मल नीचेको प्राप्त हो जावे तब मध्यमें शोजा होता है ॥ ६ ॥ सब प्रकारके शोजे रसके अनुसार रहते हैं, रस सब शरीरमें प्राप्त होनेवाले हैं ॥ ७ ॥ सब अंगोंमें होनेवाला और मध्यमें होनेवाला दो प्रकारका शोजा होता है वहां सर्वाङ्ग-शोथ और वृद्ध, बालक इनका शोजा चोटसे उपजा तथा क्षयरोगमें उपजा और छर्दि, अतिसार

इन्होंसे युक्त ये सब शोजे वर्ज देने अर्थात् असाध्य हैं ॥ ८ ॥ और भ्रम, ज्वर इनसे क्षीण हुए शरीरमें जिस पुरुषके शोजेकी पीडा होती है वह वैद्यजनोंने असाध्य कही है. हे उत्तमवैद्य ! वह शोजाकी पीडा साध्य नहीं है ॥ ९ ॥ वातसे उपजे शोजेमें व्यथा हो, रूखा शोजा हो, श्वास हो, पित्तके शोजेमें श्रम हो, दाह हो और कफसे उपजा शोजा शीतल और कडा हो, खाजकी पीडा होती है और दो दोषोंसे उपजे शोजेमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं ॥ १० ॥ अब इस शोजेका इलाज कहते हैं। पसीना देना, पाचन और शोधन औषध देनी, जुलाव दिवानी, फस्त खुलानी, काथपान ये विधि शोफ रोगमें कही हैं ॥ ११ ॥ शोजाकी आदिमें तेलआदि औषध और रूखी औषध नहीं करनी चाहिये किंतु आगे कही हुई औषधोंको पाचनके वास्ते देवे ॥ १२ ॥

अथ पुनर्नवादि काथ ।

कंकोल शुण्ठि मगधा च पुनर्नवा च निम्बाभया च कटुका च
पटोलदार्वी ॥ काथः सुखोष्णकथितस्तु विपाचनेन शोफो
जहाति जठरं च नरस्य शीघ्रम् ॥ १३ ॥

सोंठ, भिच, पीपल, सांठी, नींबू, हरडै, कुटकी, परवल, दाहलदी इनका काथ बना गरम २ पीना पाचन कहा है और मनुष्यके उदरमें प्राप्त हुआ रोग और शोजेको शीघ्र ही नाश देता है ॥ १३ ॥

अथ अन्य उपाय ।

पुनर्नवा गुडूची च गुग्गुलुं समकलिकतम् ॥

हन्ति गुल्मोदरांश्चैव शोषदोषान्कफांस्तथा ॥ १४ ॥

सांठी, गिलोय, गुग्गुल इनको समान भाग ले कल्क बना खानेसे शोजा, गुल्मरोग, उदररोग, कफरोग इनका नाश होता है ॥ १४ ॥

हस्ती महिष्या वृषभस्य मूत्रं तथैव लाजं सकणं प्रयोज्यम् ॥

पानेन शोफो विजहाति शीघ्रमेरण्डतैलेन युतं पयो वा ॥ १५ ॥

संस्वेदनक्रिया तत्र कार्या चैव पुनः पुनः ॥ एरण्डपत्रकैर्वापि

अथवा तिन्तिडीच्छदैः ॥ १६ ॥ लोमशा कटुतुम्बी च काञ्चिकेन

जलेन वा ॥ निष्काथ्य चापि संस्वेदस्तथैवोष्णेन तेन च ॥ १७ ॥

इत्यात्रियभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शोफचिकित्सा नाम

यञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

हस्ती, भैंस, बैल इनके मूत्रमें धानकी खील और पीपल मिला काथ वनाके पीनेसे शीघ्र ही शोजाका नाश होता है और अरंडीके तेलमें दूध मिला पीनेसे भी शीघ्र ही नाशता है ॥ १५ ॥ अरंडीके पत्तोंसे अथवा अमलीके पत्तोंसे बारंवार स्वेदनक्रिया अर्थात् पसीना दिवावे ॥ १६ ॥ बालछड़, कडुई तुन्वी, इनको कांजीमें अथवा जलमें औटाय गरम २ जलसे पसीना दिवावे अथवा इनके ही गरम करके पसीना दिवावे ॥ १७ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहाय ० हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीय-
स्थाने शोफचिकित्सा नाम पंचविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः २६.



अथ गुल्मनिदान और लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ श्वयथूत्थैरुपचारैस्तैरनिलः कुप्यते यदा ॥ मन्दा-
ग्निना विषमेण गुल्मं जठरे जायते ॥ १ ॥ उदरं गर्जते यस्य विष-
माग्निश्च दृश्यते ॥ तोदो वपुषि शूलं च वातगुल्मं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥ शोषोऽरतिः सपीतत्वं मन्दज्वरनिपीडितम् ॥ तमोभ्रम-
पिपासार्तिगुल्मं तत्पित्तसम्भवम् ॥ ३ ॥ शोषो जाड्यश्च हृल्लास-
स्तन्द्रालस्यं सशीतकम् ॥ मन्दाग्निर्विड्बिबन्धश्च गुल्मं तच्छ्ले-
ष्मसम्भवम् ॥ ४ ॥ मोहो विभ्रमता जाड्यमरतिः क्षुत्पिपासकम् ॥
आलस्यं निद्रतावेश्यं गुल्मं तत्कफपैतिकम् ॥ ५ ॥ निद्राल-
स्यश्च दाहश्च शोफाच्छूलं च सज्वरम् ॥ वैवर्ण्यमरतिर्जाड्यं
विड्बन्धो विकलाङ्गता ॥ ६ ॥ तथातिसारो मूर्च्छा च तृड्हृल्ला-
सश्च वेपथुः ॥ श्वासोऽरुचिरजीर्णत्वं गुल्मं तत्सान्निपातिकम् ॥
॥ ७ ॥ साध्यं केवलदोषोत्थं द्वन्द्वं कष्टेन सिध्यति ॥ असाध्यं
सन्निपातोत्थं वक्ष्यामस्तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—शोजेसे उत्पन्न हुए उपचारोंकरके वायु जब कुपित हो जाता है तब मन्द अग्निसे और विषम अग्निसे उदरमें गुल्म अर्थात् मोला उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥ जिसका उदर गर्जे और विषम अग्नि दीखे, शरीरमें व्यथा हो और शूल हो वह वातसे उपजा

गुल्म जानना ॥ २ ॥ शोष हो, पीडा हो, ग्लानि हो, पीला शरीर हो, मन्द ज्वरकी पीडा हो, तम अर्थात् अँधेरी, भ्रम, पिपासा ये हों वह पित्तसे उपजा गुल्म जानना ॥ ३ ॥ शोष हो, जडता हो, थुकथुकी हो, तन्द्रा हो, आलस्य हो, ठँढकर रहे, मन्दाग्नि रहे, विष्टा बन्ध रहे वह कफसे उपजा गुल्म जानना ॥ ४ ॥ मोह, विभ्रम, जडता, ग्लानि, क्षुधा, पिपासा, आलस्य, निद्रा आना ये हों वह कफपित्तसे उपजा गुल्म जानना ॥ ५ ॥ निद्रा हो, आलस्य हो, दाह हो, शूलसहित शोजा हो, ज्वर हो, बुरा वर्ण हो, ग्लानि हो, जडता, मलबन्ध, विकलपना ॥ ६ ॥ अतिसार, मूर्च्छा, तृषा, थुकथुकी, कांपना, श्वास, अरुचि, अजीर्ण, ये हों वह सन्निपातका गुल्म जानना ॥ ७ ॥ एक दोपका गुल्म साध्य है और दो दोपोंसे उपजा गुल्म कष्टसाध्य है, सन्निपातसे उपजा गुल्म असाध्य होता है। अब इनकी चिकित्सा कहेंगे ॥ ८ ॥

अथ गुल्मचिकित्सा ।

यकृद्ग्रहणीचिकित्सैव कथितं चोपचारणम् ॥ तद्वत्प्लीहा समा-
ख्यातो न चात्र कथितः पुनः ॥ ९ ॥ चिकित्सोदरगुल्मस्य वक्ष्यते
शृणु साम्प्रतम् ॥ स्नेहनं रूक्षणञ्चैव पाचनं शोधनानि च
॥ १० ॥ संशमनं विरेकश्च वस्तिस्नेहनिरूक्षणम् ॥ क्षारपानञ्च
चूर्णानि गुल्मोपचरणक्रिया ॥ ११ ॥

पहले यकृत् ग्रहणीके गुल्मकी चिकित्सा जो कही है वही तिहरीकी चिकित्सा जान लेनी, अब फिर नहीं कहेंगे ॥ ९ ॥ अब गुल्मोदर अर्थात् पेटके गुल्मकी चिकित्साको कहते हैं सो सुनो । स्नेहन, रूक्षण, पाचन, शोधन ॥ १० ॥ संशमन, जुलाव, स्नेहनवस्ति, रूक्षण-वस्ति, क्षारपान, चूर्ण ये सब क्रिया गुल्मरोगकी शांतिके वास्ते करें ॥ ११ ॥

अथ शुंघ्यादि काथ ।

पञ्चमूलं लघुः शुण्ठी मूर्वा च सुरसा तथा ॥

काथोऽस्याष्टावशेषः स्यात्तत्समं क्षीरमेव च ॥ १२ ॥

सोंठ, देवदार, तुलसी, मूर्वा, लघुपंचमूल इनका काथ अष्टमांश बाकी जल रहे ऐसा लेवे और इसके बराबर दूध मिलवे ॥ १२ ॥

अथ स्नेहविधि ।

दधि तत्सममाज्यं तु पाचयेत्तत्समाग्निना ॥ घृतं यावत्प्रदृश्येत
सिद्धमुच्चार्यते ततः ॥ १३ ॥ तत्कृतं पानकेऽभ्यङ्गे भाजने च
प्रदापयेत् ॥ स्नेहः सप्तविधो यावत्तस्माच्च रूक्षणं हितम् ॥ १४ ॥

उस दूधके समान दही मिला फिर उसीके समान घृत मिलावे, फिर मंद २ अग्निसे पकावे । जब घृतमात्र बाकी रह जावे तब सिद्ध हुआ जानके उत्तार लेवे ॥ १३ ॥ पीछे इसको पात्रमें घाल धरे इसको पीनेमें और मालिसमें वरते । खेह सात प्रकारका होता है इस-वास्ते रूक्षण कर्म करना हित है ॥ १४ ॥

अथ शुंठ्यादि पानक ।

दिनत्रयञ्च कर्त्तव्यं कथयाम्यत्र कोविद ॥ शुण्ठी सौवर्चलं
जीरे द्वे वा हिङ्गुसमन्वितम् ॥ १५ ॥ काञ्जिकं पानमेतेषां
रूक्षणं गुल्मशान्तये ॥ चिकित्सितेऽत्र गुल्मस्य क्षारपाकं
प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥

तीन दिनतक रूक्षण कर्म करे सो कहते हैं—सोंठ, काला नमक, दोनों जीरे, हींग इनको ॥ १५ ॥ कांजीमें मिला पान करना यह गुल्मकी शांतिके वास्ते रूक्षण कर्म कहा है और यहां गुल्मकी चिकित्सामें क्षारपाकयुक्त करना भी श्रेष्ठ है ॥ १६ ॥

अथ विरूक्षण ।

क्षारं पलाशार्जुनसूरणस्य तथैव क्षारं सहायवशूकम् ॥ सौवर्चलं
सिन्धुभवोद्भिदञ्च सासुद्रजं वापि विमिश्रयेच्च ॥ १७ ॥ तोयं
परिस्राव्य विधानतोऽपि युक्तं तथैतानि सदौषधानि ॥ पथ्या-
ग्रिशुण्ठीरजनीसुराह्वं कुष्ठं विशाला च जवानिका च ॥ १८ ॥
तथाजमोदा सह जीरेके द्वे षड्ग्रन्थिका हिङ्गुयुतं च चूर्णम् ॥
क्षारोदकापानविमिश्रपानं निहन्ति सर्वाण्यपि कोष्ठजानि
॥ १९ ॥ गुल्मानि सर्वाणि विषूचिकानां मन्दाग्रिशूलानि
भगन्दराणाम् ॥ प्लीहोदरानाहनविड्विबन्धं विनाशयेद्रोगत्रयं
नराणाम् ॥ २० ॥

टेशू, अर्जुनवृक्ष, जमीकंदका खार, जवाखार, कालानमक, सेंधानमक, रेही इनका खार, खारीनमकका खार इनको एकत्र मिलाय ॥ १७ ॥ जलमें उतार पीछे विधिसे इन औषधोंको गेरे । हरडै, चीता सोंठ, हलदी, देवदार, कूठ, इंद्रायण, अजवायन ॥ १८ ॥ अजमोद, दोनों जीरे, वच, हींग इनके चूर्णको उन क्षारोंके संग पीवे । यह कोष्ठमें उपजे हुए सब विकारोंको नाशता है ॥ १९ ॥ और सब प्रकारके गुल्म, विषूचिका, मन्दाग्रि, शूल, भगं-दर, प्लीहोदर, अफारा, विड्वन्ध इन सब रोगोंको नाशता है ॥ २० ॥

अथ वातगुल्मपाचन ।

पथ्या समङ्गा कलशी वृषश्च सहोपधं वातिविपा सुराह्वम् ॥ जले
च निष्क्राथ्य त्विदं हि पानं गुल्मामयानां प्रतिपाचनम् ॥ २१ ॥
वचायवानीत्रिकटुदशमूलीजलं स्मृतम् ॥ काथश्चोष्णो हितः
पाने धान्यनागरयाथवा ॥ २२ ॥ वातगुल्मेषु सर्वेषु ज्वरेषु
विषमेषु च ॥ रास्नाद्यं पञ्चकं वापि वातगुल्मप्रपाचनम् ॥ २३ ॥
शटी सौवर्चलं शुण्ठी पाचनं वाथ गुल्मिणे ॥ २४ ॥

हरद्वै, मंजीठ, पिठवन, वांसा, सोंठ, अतीश, देवदार इनका जलमें काथ बना उसका पीना गुल्मरोगमें पाचन है ॥ २१ ॥ वच, अजवायन, त्रिकटु, सोंठ, मिर्च, पीपल, दशमूल इनका जलमें काथ बना सुखसे सुहाता हुआ गरम २ पीना हित है अथवा धनियां, सोंठ इनका काथ हित है ॥ २२ ॥ संपूर्ण वातगुल्म और विषमज्वर इनमें ये काथ हित हैं अथवा रास्नाद्यपंचक रास्ना आदि पांच औषधोंका क्वाथ वातगुल्ममें पाचन है ॥ २३ ॥ अथवा कचूर, कालानमक, सोंठ इनका क्वाथ देना पाचन है ॥ २४ ॥

अथ पित्तगुल्म तथा कफके गुल्मका पाचन ।

कटुका विडुला द्राक्षा निम्बपत्राणि चैव तु ॥ सगुडं पाचनं देयं
पैत्तिके गुल्मरोगिणि ॥ २५ ॥ धात्रीकल्कं सितोपेतं पाचनं पित्त-
गुल्मिणे ॥ यवानी चोश्रगन्धा च तथा च कटुकत्रयम् ॥ पाचनं
श्लेष्मिके गुल्मे पीतं चोष्णं निशासु च ॥ २६ ॥

सातला, दाख, कुटकी, नींबूके पत्ते इन औषधोंके काथमें गुड मिला पित्तके गुल्ममें पाचन देना चाहिये ॥ २५ ॥ और आंवलोंके कल्कमें मिश्री मिला खाना पित्तके गुल्ममें पाचन है और अजवायन, वच, सोंठ, मिर्च, पीपल इनका क्वाथ रात्रिमें पिया हुआ पाचन है ॥ २६ ॥

अथ वातके गुल्ममें जुलाब ।

नागरा क्रिमिजित्पथ्या त्रिवृतात्रिगुणायुता ॥ चूर्णं गुडान्वितं
देयं वातगुल्मविरेचनम् ॥ २७ ॥ दन्ती च भागमेकं च द्वौ
भागौ च हरीतकी ॥ त्रिवृता भागत्रयं स्याच्छुठ्याश्चत्वार एव
च ॥ २८ ॥ प्रक्षिप्य सर्वमेकत्र सर्वतुल्यगुडेन तु ॥ वटकं

भक्षयेत्प्रातस्तस्योपरि जलं पिबेत् ॥ २९ ॥ कथितं च विरे-
काय वातगुल्मोपशान्तये ॥ ३० ॥

सोंठ, वायविडंग, हरडै, तीन भाग निशोत इनके चूर्णमें गुड मिला वातगुल्ममें जुलाबके चास्ते देना चाहिये ॥ २७ ॥ जमालगोटाकी जड एक भाग, हरडै दो भाग, निशोत तीन भाग, सोंठ चार भाग ॥ २८ ॥ इस प्रकार इनको ले चूर्ण बना उसके समान गुड मिला उस गोलीको प्रातःकाल भक्षण करे, ऊपर औटाया हुआ जल पीवे ॥ २९ ॥ इस प्रकार जुलाब देनेसे वातका गुल्म शांत होता है ॥ ३० ॥

अथ पित्तके गुल्ममें जुलाब ।

पिबेदरण्डतैलं च शर्कराक्षीरसंयुतम् ॥ पित्तगुल्मविरेकाय श्रेष्ठ-
मेतत्सुखावहम् ॥ ३१ ॥ आरग्वधप्रवालानि तथैवारग्वधानि च ॥
विभाव्यैरण्डतैलेनैरण्डपत्रैस्तु वेष्टयेत् ॥ ३२ ॥ कर्दमेन प्रलि-
प्याथ अङ्गारैषु च स्थापयेत् ॥ सुस्विन्नभर्जिकां ताञ्च भक्षये-
च्छर्करान्विताम् ॥ ३३ ॥ विरेकः पित्तिके गुल्मे हितं शुद्धवि-
रेचनम् ॥ ३४ ॥

अरंडीके तैलमें खांड और दूध मिलाके पीवे यह जुलाब पित्तके गुल्ममें श्रेष्ठ और सुखको देनेवाला कहा है ॥ ३१ ॥ अमलतासके पत्ते तथा अमलतास इनको अरंडीके तेलमें भावना दे फिर अरंडके पत्तोंमें लपेट ॥ ३२ ॥ गारासे लीप अंगारोंमें रख देवे जब अच्छी तरह पक जावे तब खांड मिलाके भक्षण करे ॥ ३३ ॥ पित्तसे उपजे गुल्ममें यह जुलाब हित और शुद्ध कही है ॥ ३४ ॥

अथ कफगुल्मपर विरेचन ।

त्रिफलासुरसाशुण्ठीचूर्ण कृत्वा विभावयेत् ॥ स्नुहीक्षीरेण वारैकं
गुडेन सह मिश्रितम् ॥ ३५ ॥ विरेकः श्लेष्मके गुल्मे सर्वोदरवि-
नाशनः ॥ ३६ ॥ शुण्ठी सौवर्चलं पथ्या विडङ्गश्च पुनर्नवा ॥
चूर्णेऽपामार्गबीजानां सुहीक्षीरेण भावितम् ॥ ३७ ॥ गुडेन
संयुतं स्वादेत्पश्चादुष्णं जलं पिबेत् ॥ विरेकः सर्वगुल्मेषु प्रशस्तो
हितकारकः ॥ ३८ ॥

त्रिफला, तुलसी, सोंठ इनका चूर्ण बना एक बार थोहरके दूधमें भावना दे गुडमें मिला भक्षण करे ॥ ३५ ॥ यह जुलाब कफके गुल्ममें हित कही है और सब प्रकारके उदररोगोंका

नाश करती है ॥ ३६ ॥ सोंठ, कालानमक, हरद्वै, वायविडंग, सांठी, ऊंगाके बीज इनका चूर्ण बना थोहरके दूधमें भावना दे ॥ ३७ ॥ गुडमें मिला भक्षण करे, पीछे गरम पानी पीवे । यह जुलाब सब प्रकारके गुल्मोंमें सुख करनेवाला है ॥ ३८ ॥

अथ क्षारपान ।

शुक्तिक्षारनिशाविशालकदली स्यात्सूरणं कोकिला पालाशं दह-
नार्जुनं शट्जियापामार्गकूष्माण्डकम् ॥ दग्ध्वा क्षारविपाचितं
परिचुतं हिड्डु त्रिकट्वान्वितं गुल्मानाहविवंधशूलहरणं सर्वोद-
राणां हितम् ॥ ३९ ॥

सीप, जवाखार, हलदी, इन्द्रायण, केला, जमीकन्द, कोलिस्ता, टेक, चीता, अर्जुनवृक्ष, कचूर, अरणी, ऊंगा, कोहला इनको जला फिर पानीमें धोलके खार जमाके उस खारमें हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल ये मिला खानेसे गुल्म, अफारा, मलका बन्धा, शूल इनका नाश होता है और सब प्रकारके उदररोगोंमें हित है ॥ ३९ ॥

अथ अजमोदादि औषध ।

अजमोदा शटी दन्ती विडंगं कुष्ठतुम्बुरू॥त्रिफला चित्रकं चैव
शुण्ठी कर्कटशृङ्गिका ॥ ४० ॥ त्रिवृता च सुराह्वा च पुष्करं
वृद्धदारुकम्॥तथाम्लवेतसं चैव तिन्तिडीकश्च चिञ्चिनी॥४१॥
समं तु मातुलङ्गेन विभाव्यमेकतः कृतम्॥ त्रिभागहिड्डुसंयुक्तं
घृतेन चूर्णितं हितम् ॥ निहन्ति वातगुल्मश्च सशूलमुदरं
तथा ॥ ४२ ॥

अजमोद, कचूर, जमालमोटाकी जड, वायविडंग, कूठ, धनियां, त्रिफला, सोंठ, काकडा-
सींगी ॥ ४० ॥ निशोत, देवदार, पोहकरमूल, भिदारा, अम्लवेत, अमली इनको ॥ ४१ ॥
समानभाग ले एक बार विजोराके रसमें भावना दे, तीन भाग हींग मिला फिर घृतके संग इस
चूर्णको खावे । यह वातके गुल्मको तथा शूलसहित उदररोगको नाशता है ॥ ४२ ॥

अथ हिङ्गवादिचूर्ण ।

हिङ्गुफलत्रिकजीरकयुग्मं चित्रकभाङ्गीकुष्ठविडंगम् ॥ तुम्बुरू-
पुष्करविश्वसुराह्वं क्षारयुतं लवणानि च पञ्च ॥ ४३ ॥ वात्ति-
कगुल्मविनाशनहेतोः शूलरुजश्च निहन्ति नराणाम् ॥ ४४ ॥

हिडुसौवर्चलाजाजी विश्वा कुष्ठं विडंगकम्॥आरनालेन पीतं
च हन्ति गुल्मं सवातिकम् ॥ ४५ ॥

हींग, त्रिफला, दोनों जीरे, चीता, भांगी, कूठ, वायविडंग, धनियां, पोहकरमूल, सोंठ, देवदार इनके चूर्णमें जवाखार और पांचो नमक मिला खानेसे वातके ॥ ४३ ॥ गुल्मका नाश होता है और मनुष्योंके शूलकी पीड़ाका नाश होता है ॥ ४४ ॥ हींग, कालानमक, जीरा, सोंठ, कूठ, वायविडंग इनको कांजीके संग पीनेसे वातके गुल्मका नाश होता है ॥ ४५ ॥

अथ पित्तगुल्मोदराचिकित्सा ।

जीरे द्वे त्रिकटु शटी तुम्बुरु चित्रकं मधु ॥ लेहः पित्तात्मके
गुल्मे हितः शोफनिवारणः ॥४६॥ यष्टिकं निम्बपत्राणि तथा
धात्रीफलं सिता॥चूर्णं मध्वक्लीढं च पित्तगुल्मनिवारणम्॥४७॥

दोनों जीरे, त्रिकटु अर्थात् सोंठ, मिर्च, पीपल, कचूर, धनियां, चीता, शहद इनका लेह बना खानेसे पित्तके गुल्मका नाश होता है और शोजा दूर होता है ॥ ४६ ॥ मुलहठी, नींबूके, पत्ते, आंवले, मिश्री इनके चूर्णको शहदमें मिला चाटनेसे पित्तके गुल्मका नाश होता है ॥ ४७ ॥

त्रिकटुत्रिफलाचित्रवटकफलसंयुतम् ॥ चूर्णं मद्येन वा पीतं
फलकाथेन वा हितम् ॥४८॥ श्लेष्मगुल्मविनाशाय हितं चैत-
त्सुखावहम् ॥ ४९ ॥

और सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, चीता, बडके फल, बडवंटे इनके चूर्णको मदिराके संग अथवा त्रिफलाके काथके संग पीवे॥४८॥ तो कफके गुल्मका नाश होता है और यह हित है सुखको देनेवाला है ॥ ४९ ॥

अथ कफके गुल्मकी चिकित्सा ।

रोध्रं च कमलं विश्वा कुष्ठं चित्रकमेव च ॥ नागरं हिडुसंयुक्तं
चूर्णं मूत्रेण संयुतम् ॥५०॥ श्लेष्मगुल्मविनाशाय शूलोदरविनाश-
नम् ॥ उग्रगन्धा च मरिचं क्षारचूर्णसमन्वितम् ॥ ५१ ॥ पि-
बेन्मूत्रेण संयुक्तं श्लेष्मगुल्मविनाशनम् ॥ ५२ ॥

लोध्र, कमल, सोंठ, कूठ, चीता, नागरमोथा, हींग इनके चूर्णको गोमूत्रके संग खावे ॥ ५० ॥ तो कफकी शूल, उदररोग, कफका गुल्म इनका नाश होता है और वच, मिर्चके समान जवाखार-के चूर्णको ॥ ५१ ॥ गोमूत्रके संग पीनेसे कफके गुल्मका नाश होता है ॥ ५२ ॥

अथ वातकफके गुल्मकी चिकित्सा ।

शुण्ठी सौवर्चलं भाङ्गी वत्सकं यावशूककम् ॥ जीरे द्वे चाटूरूपं
च यवानी हिङ्गु सैन्धवम् ॥ ५३ ॥ आरुघवेन संयुक्तं चूर्णं
सघृतमेव च ॥ वातश्लेष्मोद्धवे गुल्मे सुखमाशु प्रपद्यते ॥ ५४ ॥
उग्रगन्ध्या फलत्रिकं देवदारु पुनर्नवा ॥ त्रिवृत्सौवर्चलोपेतं क्षा-
रोदकसमन्वितम् ॥ पीतं वातकफे गुल्मे सुखकारि परं मतम् ॥ ५५ ॥

सोंठ, कालानमक, भारंगी, कुड़ाकी छाल, जवाखार, दोनों जीरे, वांसा, अजवायन, हींग,
सैन्धानमक ॥ ५३ ॥ अमलतास इनके चूर्णमें घृत मिला खानेसे वातकफसे उत्पन्न हुए गुल्ममें
शीघ्र ही मुख उत्पन्न होता है ॥ ५४ ॥ वच, त्रिफला, देवदार, सांठी, निशोत, कालानमक
इनको जवाखारके जलके संग पीनेसे वातकफसे उपजे हुए गुल्ममें अत्यन्त मुख होता है ॥ ५५ ॥

अथ सन्निपातके गुल्मकी चिकित्सा ।

ग्रहणीगुल्मक्रिया या वा सा चात्र प्रभवेद्यदि ॥ शोफोदरेषु सर्वेषु
कार्य्यञ्चात्र विरेचनम् ॥ ५६ ॥ शोफातिसारसंयुक्तो हन्ति गुल्मो-
दरो नरम् ॥ तस्य क्षारोदकपानं बृहद्धिंग्वादिचूर्णकम् ॥ ५७ ॥
अजमोदादिकं वापि शोफातिसारशान्तये ॥ वमिश्रैवातिसारश्च
गुल्मरोगेषु यद्यपि ॥ ५८ ॥ तेन साध्यं विजानीयात्प्रत्याख्येयां
क्रिया हिता ॥ गुडदाडिमपथ्यां च मधुना सहितां पिबेत् ५९
वमिश्च वातिसारं च वारं वारं प्रयोजयेत् ॥ सर्वलक्षणसंयुक्तं
गुल्मं तत्सान्निपातिकम् ॥ ६० ॥ तोदोऽरतिर्विवर्णत्वं मूर्च्छा-
तीसारसंयुतम् ॥ वमिः क्लेशश्च तन्द्रा च तदसाध्यं त्रिदो-
षजम् ॥ ६१ ॥

संग्रहणी गुल्ममें कही हुई जो क्रिया हों वह यहां करनी चाहिये और सब प्रकारके उदररोगोंमें
जुलाव दिवानी चाहिये ॥ ५६ ॥ और शोजा, अतीसार इनसे संयुक्त गुल्मोदर मनुष्योंको मार
देता है । उसको बृहत् हिङ्गवादि चूर्णके संग क्षारोदक पान कराना चाहिये ॥ ५७ ॥ अथवा
अजमोदआदिक चूर्णको शोजाकी शान्तिके वास्ते देवे, गुल्मोदर रोगोंमें वमन हो और अतीसार हो
॥ ५८ ॥ तो साध्य जानना । उसकी संपूर्ण क्रिया करनी हित कही हैं और गुड़, अनारदाना,
हरडै, इनको शहदके संग पीवे ॥ ५९ ॥ वमन, अतीसार इनको बारंवार करवावे और जो सब

लक्ष्णोंसे युक्त हो वह सन्निपातसे उपजा गुल्म जानना ॥ ६० ॥ व्यथा हो, ग्लानि हो, विवर्ण हो, मूर्च्छा हो, अतीसार हो, वमन हो, गीलापन हो, आलस्य हो, वह त्रिदोषसे उपजा गुल्मरोग असाध्य जानना ॥ ६१ ॥

अथ शोथचिकित्सा ।

शृणु पुत्र महाप्राज्ञ एकाग्रमनसाधुना ॥ शोफोद्धारक्रियां नृणां वक्ष्यते च विजानता ॥ ६२ ॥ त्रिवृत्तथा चेक्षुगुडेन युक्ता अनन्तरं कोष्णजलेन पीता ॥ तस्मान्निहन्त्योदरकं सशोफं पित्तात्मकं वा विजहाति पुंसाम् ॥ ६३ ॥ हरीतकी च त्रिवृता च शुण्ठी गुडेन युक्ता त्वथ हन्ति शोफम् ॥ द्विपञ्चमूलं कथितं सुखोष्णमेरण्डतैलेन जहाति शोफम् ॥ ६४ ॥ गोमूत्रयुक्तं वरुणस्य तैलं पाने हितं नाशयते च शोफम् ॥ ६५ ॥

हे पुत्र ! अब एकाग्र मन करके सुनो, मनुष्योंके शोजाको दूर करनेवाली क्रियाको कहते हैं ॥ ६२ ॥ निशोतको ईखके गुड़के संग खावे पीछे गरम जल पीवे इससे शोजासहित उदररोगका नाश होता है और पित्तसे उपजा गुल्मरोग भी शांत होता है ॥ ६३ ॥ हरडै, निशोत, सोंठ इनको गुड़में मिला खानेसे शोजाका नाश होता है और दशमूलके गरम २ क्वाथको अरंडीके तेलके संग पीनेसे शोजाका नाश होता है ॥ ६४ ॥ और वरुणाका तैल गोमूत्रके संग पीना हित है तथा शोजाको नाशता है ॥ ६५ ॥

अथ शोथरोगमें वर्ज्य ।

ग्राम्यानूपं पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टं सद्-
धिकृशं निर्जलं मद्यमन्नम् ॥ धान्यं शोफाकरणमथवा गुर्व-
सात्म्यं विदाहि स्वप्नं रात्रावपि च श्वयथुर्वर्जयेन्मैथुनं च ॥ ६६ ॥
लेपोऽरुष्करस्य शोफं हन्ति तिलदुग्धमधुकनवनीतैः ॥ तत्तरुत-
लमृद्धिर्वा सकदलैर्वापि सविरणैः ॥ ६७ ॥ शोषे विषनिमित्तं
तु विषोक्ता शमनक्रिया ॥ लंघनं दीपनं स्निग्धमुष्णवाता-
नुलालनम् ॥ ६८ ॥ बृंहणं तु भवेदन्नं तद्विषं सर्वगुलिमनाम् ॥
वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्जुष्कशाकादि वैदलम् ॥ ६९ ॥ न
खादेद्दालुकं गुल्मी मधुराणि समानि च ॥ ७० ॥

गाममें रहनेवाले बकरे आदि जीव, अनूपदेशके जीवोंका मांस, नमक, सूखा शाक, नवीन अन्न, गुड़का भोजन, पीठीका भोजन, दही और खिचड़ी, जलसे रहित सूखा अन्न, मदिरा, धान्य, शोजा करनेवाला पदार्थ, भारी, प्रकृतिसे रहित और विदाही पदार्थ, रात्रिमें भी सोना, मैथुन इनको शोजावाला पुरुष त्याग देवे ॥ ६६ ॥ भिलावा, तिल, मुलहदी इनको दूधमें पीस नोनी घृत मिला लेप करनेसे शोजाका नाश होता है अथवा भिलावाके वृक्षकी जड़की माटी, बांसाके पत्ते, नेत्रवाला इनका लेप करनेसे शोजाका नाश होता है ॥ ६७ ॥ और विपक्षे उपजे हुए शोजेमें विषोंको शांत करनेवाली चिकित्सा करे, लवण, दीपन, स्निग्ध अर्थात् तेल आदि गरम बातको संचालन करना ॥ ६८ ॥ वृंहण पदार्थ, ऐसा अन्न सत्र गुल्मरोगवालोंको विपक्षे समान है और सूखा मांस, मूली, मच्छी, सूखा शाक, वैदल ॥ ६९ ॥ और आलुकादि कंद, मधुर पदार्थ इनको गुल्मरोगवाला पुरुष नहीं खावे ॥ ७० ॥

अथ रक्तगुल्ममें पाचन ।

सरक्तगुल्मे न तु पाचनं तु न हिङ्गुपानं कटिमर्दनं च ॥ न चैव संस्वेदनमर्दनञ्च न चक्रमं नोत्प्लवनं हितं च ॥ ७१ ॥ रोध्रार्जुनं खदिरमागधिकासमङ्गकाथोऽम्लवेतसमधुघृतसंप्रयुक्तः ॥ गुल्मं सरक्तमपि चाथ निहन्ति चाशु हृत्क्लेदनं च विनिहन्ति च कुङ्करक्तम् ॥ ७२ ॥

रक्तसहित गुल्मरोगमें पाचन औषध नहीं देवे और हिङ्गुआदि औषध पान, कटि मसलना, पसोने दिवाने, मालिस करनी, ऊपरको लफना, कूदना ये हित नहीं हैं ॥ ७१ ॥ रोध्र, अर्जुन वृक्ष, खैर, पीपली, मंजीठ, अम्लवेत, इनका काथ बना शहद और घृत मिला खानेसे रक्तसहित गुल्मका शीघ्र ही नाश होता है और हृदयकी पीडा, अत्यंत रक्तरोग इनका नाश होता है ॥ ७२ ॥

अथ रक्तगुल्ममें पथ्य ।

क्षीरपानं प्रदातव्यं घृतसौवर्चलान्वितम् ॥ रक्तगुल्मविनाशाय यकृद्विक्षतजेऽपि वा ॥ ७३ ॥ न च हिङ्गुयुतं पथ्यं न चोष्णं न विदाहि च ॥ रक्तजे क्षतजे गुल्मे मांसानि जाङ्गलानि च ॥ ७४ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सा नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

रक्तके गुल्मके नाशके वास्ते तथा यकृत भंगसे उपजे गुल्मके नाशके वास्ते घृत, काला नमक इनसे युक्त दूधको पीना चाहिये ॥ ७३ ॥ हिंगुसंयुक्त औषध और गरम तथा विदाही पदार्थ हित नहीं हैं और रक्तसे उपजे तथा चोटसे उपजे गुल्ममें जांगल देशके जीवोंका मांस हित नहीं है ॥ ७४ ॥ इति वेरीनिवासिबुवशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशाह्यनु-
वादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने गुल्मचिकित्सानाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

सप्तविंशोऽध्यायः २७.

अथ जलोदरका निदान तथा लक्षण ।

आत्रेय उवाच॥विषमासनोपवेशात्पीततोयादथापि वा॥श्रमा-
ध्वश्वासनिष्क्रान्ते अतिव्यायामितेऽपि या॥पीतं तूदरमेवं च
तस्माज्जातं जलोदरम्॥१॥उदरं सजलं यस्य सघोषमतिवर्द्धितः॥
श्वयथुः पादयोः शोषो जलोदरस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

विषम आसनपै बैठनेसे, ज्यादा जल पीनेसे, श्रम, मार्ग, इनकी पीड़ा होनेसे अथवा अत्यंत कसरत करनेसे पीला उदर हो जाता है इनसे जलोदरसंज्ञक रोग हो जाता है ॥ १ ॥ जिसका उदर जलसहित दीखे, शब्द हो और अत्यंत बढ जावे, पैरोंमें शोका हो यह जलोदरका लक्षण है ॥ २ ॥

अथ जलोदररोगकी चिकित्सा ।

विरेकं वमनं कुर्यात्पाचनानि च कारयेत् ॥ क्षारयोगश्च
वटकस्तेन तदुपशाम्यति ॥ ३ ॥ तस्मान्नाभेर्वलीभागे वर्जि-
त्वाङ्गुलमात्रकम् ॥ जलनाडी चानुमान्य कुशमात्रेण वेष्टयेत्
॥ ४ ॥ एरण्डजलनालं च तत्र सञ्चारयेद्बुधः ॥ अन्तर्गतं
जलं स्राव्य ततः सञ्चारयेद्भुतम् ॥ ५ ॥ यदा न धरते तच्च तदा
दाहः प्रशस्यते ॥ कणकल्कं परिस्राव्य घृतं देयं चतुर्गुणम् ॥ ६ ॥
शुण्ठीविषासमं पाच्य पानमालेपनं हितम् ॥ शस्त्रकर्म भिषक्छ्रेष्ठो
विज्ञातेनैव कारयेत् ॥ ७ ॥ दुष्करं शस्त्रकर्मैव न कुर्याद्यत्र तत्र
तु ॥ अक्रियायां ध्रुवो मृत्युः क्रियायां संशयो भवेत् ॥ ८ ॥

तस्मादवश्यं कर्तव्यमीश्वरं साक्षिकारिणा ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभा-
पिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने जलोदरचिकित्सा नाम सप्तविं-
शोऽध्यायः ॥ २७ ॥

इस रोगमें जुलाब, वमन, पाचन औषध इनको करावे और क्षार योग, गोलीआदिक
इनसे यह रोग शान्त होता है ॥ ३ ॥ इस रोगमें नाभिके बलीभागसे एक अंगुल मात्र जगह
वर्जके जलकी नाडीका अनुमान जानके कुशासे बांध देवे ॥ ४ ॥ पीछे बुद्धिमान् जन वहां
अरंडीके जलकी नालीको प्रयुक्त करे, भीतरको प्राप्त हुए सब जलको क्षिरा देवे पीछे शीघ्र
बंद कर देवे ॥ ५ ॥ और जो इस प्रकार करनेसे वहां आराम नहीं होवे तो दाह करना श्रेष्ठ
कहा है । नेट्रुओंके कणीके चूनको छान तिसमें चौगुना घृत मिला ॥ ६ ॥ सोंठ अतीश इनको
चूनके समान भाग मिला पका लेवे पीछे इसका पीना और लेप करना हित है और उत्तम
वैद्यको अच्छी तरह जाने बिना शस्त्रकर्म नहीं करना चाहिये ॥ ७ ॥ शस्त्रकर्म अत्यंत दुष्कर
है इसवास्ते जहां तहां सब जगह नहीं करना चाहिये । अन्यथा चिकित्सा होनेमें निश्चय मृत्यु
हो जाती है । यथार्थ चिकित्सा करनेमें भी सन्देह रहता है ॥ ८ ॥ इसवास्ते अवश्य ईश्वरको
साक्षी करके कर्म करना चाहिये ॥ ९ ॥ इति वैरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र-
नुयादितहारितसंहिताभाषाटीकायां जलोदरचिकित्सानाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः २८.

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ विंशत्येवं प्रमेहास्तु नराणामिह लक्षणम्
॥ १ ॥ श्रमाद्व्यवायाच्च तथैव घर्मविरुद्धतीक्ष्णोष्णविभोज-
नेन ॥ मद्येन वा क्षीरकटुप्रसेवनान्मेहप्रसूतिः कथिता मुनीन्द्रैः
॥ २ ॥ जलप्रमेहो रुधिरप्रमेहः पूयप्रमेहो लवणप्रमेहः ॥ तक्र-
प्रमेहः खटिकाप्रमेहः शुक्रप्रमेहः कथितः पुरस्तात् ॥ ३ ॥ स्या-
च्छर्करामेहो वसाप्रमेहो रसप्रमेहोऽन्यघृतप्रमेहः ॥ पित्तप्रमेही
कफमेहिनश्च मधुप्रमेहीति विभावयेच्च ॥ ४ ॥ यथा च नासानि
तथैव लक्षणं बलक्षयं वापि नरस्य देहे ॥ कुर्वन्ति शीघ्रं भिषजां
वरिष्ठाः कुर्यात्क्रियाश्च शमनाय हेतुम् ॥ ५ ॥

आग्नेयजी कहते हैं—मनुष्योंके बीस प्रकारके प्रमेह रोग होते हैं ॥ १ ॥ श्रम करनेसे, घाम, तीक्ष्ण, विरुद्ध भोजन इनसे, मदिरा, दूध, चर्चरा इन वस्तुओंके सेवनेसे मुनि-जनोंने प्रमेह रोगकी उत्पत्ति कही है ॥ २ ॥ जलप्रमेह १ रुधिरप्रमेह २ पूयप्रमेह ३ लवण-प्रमेह ४ तक्रप्रमेह ५ खटिकाप्रमेह ६ शुक्रप्रमेह ७ ॥ ३ ॥ शर्कराप्रमेह ८ वसाप्रमेह ९ रस-प्रमेह १० घृतप्रमेह ११ पित्तप्रमेह १२ कफप्रमेह १३ मधुप्रमेह १४ इस प्रकारसे हैं ॥ ४ ॥ जैसे इनके नाम हैं वैसेही लक्षण हैं । ये प्रमेहरोग मनुष्यके देहमें बलका क्षय कर देते हैं इस वास्ते इस रोगके नाशके लिये शीघ्र ही उत्तम वैद्यको चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥

अथ प्रमेहचिकित्सा ।

धवार्जुनं चन्दनशालछल्लीकाथो हितः स्याच्च जलप्रमेहे ॥ रक्त-
प्रमेहे शिशिरं पयश्च द्राक्षान्वितं यष्टिकचन्दनेन ॥ ६ ॥ स्त्रीसे-
वनं चाल्पतरश्च पूयमेहे हितः काथो धवार्जुनस्य ॥ दूर्वाकसेरु-
कदलीनलिन्या लवणस्य मेहे च कषाय उक्तः ॥ ७ ॥ कदम्बशा-
लार्जुनदीप्यकानां विडङ्गदार्वाधवशह्वकीनाम् ॥ सर्वे तथैते मधु-
ना कषायाः कफप्रमेहेषु निषेवणीयाः ॥ ८ ॥ रोध्रार्जुनः शीरमरिष्ट-
पत्रात्तत्रैव धात्रीफलचन्दनानि ॥ तक्रप्रमेहे खटिकाप्रमेहे देयो
हितः काथगुडावटश्च ॥ ९ ॥ दूर्वा च मूर्वा कुशकाशमूलं दन्ती
समङ्गा सह शालमली च ॥ शुक्रप्रमेहे कथितं जलेन पानं हितं
वा रुधिरप्रमेहे ॥ १० ॥ फलत्रिकारग्वधमूलमूर्वाशोभाञ्जना-
रिष्टदलानि मोचा ॥ द्राक्षायुतो वा कथितः कषायः सर्पिः-
प्रमेहस्य निवारणाय ॥ ११ ॥ कुष्ठं तथा पर्पटकं च तिक्ता
सिता प्रगाढं कथितः कषायः ॥ मूर्वारिकापाटलिकानियुक्तो
दुरालभाकिंशुकटुण्डुकानाम् ॥ रसप्रमेहे च सदा हितः स्यान्न
किञ्चिदत्रास्ति विचारणीयम् ॥ १२ ॥ नीलोत्पलार्जुनकलिङ्ग-
धवास्लिकानां धात्रीफलानि पिचुमन्ददलानि तोये ॥ निष्काथ्य
शर्करयुतै मनुजस्य पाने पित्तप्रमेहशमनाय वदन्ति धीराः
॥ १३ ॥ विडङ्गसर्जार्जुनकटफलानां कदम्बरोध्राशनवृक्षका-
णाम् ॥ जलेन काथश्च हितो नराणां कफप्रमेहं विनिहन्ति तेषाम्

॥ १४ ॥ सुस्ता फलत्रिकनिशा सुरदारु सूर्या इन्द्रा च रोध्रस-
लिलेन कृतः कषायः॥ पाने हितः सकलमेहभवे गदे च सूत्र-
ग्रहेषु सकलेषु वियोजनीयः ॥१५॥ यच्चाभयालोहरजोनिकु-
म्भचूर्णं हितं शर्करया समेतम् ॥ फलत्रिकाया मधुना च लेहं
सर्वमेहेषु हितं वदन्ति ॥ १६ ॥ मधुमेहे प्रयोक्तव्यं घृतपानं
सुधीमता ॥ क्षीरं वा शर्करायुक्तं काथो वा गुटिकानि च ॥१७॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षारम्बधटुण्डुकम् ॥ पियालं कुकुभं
जम्बूकपित्थाम्रातकानि च ॥१८॥ मधुकं यष्टिमधुकं रोध्रं वै
पाणिसङ्कम् ॥ पटोलं चारिणी चैव दन्ती मेषविपाणिका १९
चित्रकं च करञ्जश्च शक्राहं त्रिफलायुतम् ॥ भल्लातकानाञ्च समं
त्रितन्वं कटुकत्रयम् ॥२०॥ सूक्ष्मचूर्णं प्रदातव्यं न्यग्रोधाद्यं
लुणाधिकम् ॥ मधुना संयुतं लेहो हन्याच्च मधुमेहकम् ॥२१॥
काथो वा तैलपाको वा घृतपाकोऽथवापि च ॥ पानाभ्यङ्गे
प्रशस्तः स्याद्वन्ति वै सूत्रजं गदम् ॥ २२ ॥ न्यग्रोधाद्यमिदं
चूर्णं पेयं वा क्षीरसंयुतम् ॥ मधुमेहे तु नान्योऽस्ति यथालाभेन
योजितः ॥२३॥ माक्षीकं धातुमाक्षीकं शिलोद्भेदं शिलाजतु ॥
चन्दनं रक्तधातुञ्च तथा कर्पूरकं कणाः ॥२४॥ वंशरोचनकं
चैव क्षीरेण सहितं पिबेत् ॥ मधुप्रमेहं हरति सूत्ररोगाद्भि-
मुच्यते ॥ २५ ॥

धव, अर्जुन वृक्ष, चन्दन, शालवृक्ष इनकी छालका काथ बना पीना जलप्रमेहमें
हित है और रक्तप्रमेहमें दाख, मुलहठी, चन्दन इनसे युक्त ठंढा दूध पीना हित है ॥ ६ ॥
मैथुन स्वल्प करना, धव, अर्जुनवृक्ष इनका काथ पीना मूत्रप्रमेहमें हित है और दूध,
कसेरु, कैला, कमलिनी इनका काथ लवणप्रमेहमें हित है ॥ ७ ॥ कदंब, अर्जुनवृक्ष,
शाल, अजमोद, वायविडंग, दारुहलदी, धव, शलकीवृक्ष, इनका काथ शहदके संग पीना
कफप्रमेहमें हित है ॥ ८ ॥ लोध, अर्जुनवृक्ष, दूध, नीबूके पत्ते, आवला, चन्दन, इनका
काथ अथवा गुड़में मिलाके गोली देना तक्रप्रमेह, खटिकाप्रमेह इनमें हित है ॥ ९ ॥
और दूध, सूर्या, कुशा, कांस इनकी जड़, जमालगोटाकी जड़, मँजीठ, शालबन इनका

काथ वनाके पीना शुक्रप्रमेहमें और रुधिरप्रमेहमें हित है ॥ १० ॥ त्रिफला, अमलतासकी जड़, मूर्वा, सहीजना, नींबूके पत्ते, मोचरस, दाख इनका काथ पीनेसे घृतप्रमेहका निवारण होता है ॥ ११ ॥ कूठ, पित्तपापडा, कुटकी, मिश्री इनका अच्छीतरह काथ बना पीना अथवा मूर्वा, खैर, पाड़लवृक्ष, जवासा, टेशू, टेंदूवृक्षका काथ पीना रसप्रमेहमें सदा हित है ॥ १२ ॥ नीला कमल, अर्जुनवृक्ष, इंद्रजव, धव, अमली, आंवला, नींबूके पत्ते इनका काथ बना उसमें खांड मिला मनुष्यको पीनेसे पित्तप्रमेह शांत होता है ऐसे वैद्यजन कहते हैं ॥ १३ ॥ वायविडंग, रालवृक्ष, अर्जुनवृक्ष, त्रिफला, कदंब, लोध, आसना इनका काथ बना पीनेसे कफप्रमेहका नाश होता है ॥ १४ ॥ नागरमोथा, त्रिफला, हलदी, देवदार, मूर्वा, इन्द्रायण, इनका काथ बना पीनेसे सब प्रकारके प्रमेहरोग और मूत्रग्रह अर्थात् मूत्र बंद होना ये दूर होते हैं ॥ १५ ॥ हरडै, लौहाकी रज, जमालगोटाकी जड़ इनका चूर्ण बना खांडके संग खानेसे अथवा त्रिफलाके चूर्णको शहदमें मिला लेह बना चाटनेसे सबप्रकारके प्रमेहरोग दूर होते हैं ॥ १६ ॥ वैद्यजनको मधुप्रमेहमें घृतका पान कराना चाहिये और खांडसे युक्त दूधके काथका पान करावे तथा गोली देवे ॥ १७ ॥ वड़, गूलर, पीपल, पिलखन, अमलतास, टेंदूवृक्ष, चिरौंजीका वृक्ष, अर्जुनवृक्ष, जामन, कथ, अंवाडा वृक्ष ॥ १८ ॥ महुआ वृक्ष, मुलहटी, लोध, नींबू, परवल, अरणी, जमालगोटाकी जड़, मेंढासींगी ॥ १९ ॥ चीता, करंज वृक्ष, देवदार, त्रिफला, मिलावे, त्रिगंध, दालचीनी, तेजपात, इलायची, सोंठ, मिर्च, पीपल ॥ २० ॥ इन सब औषधोंका चूर्ण बना शहदमें मिला लेह बना खानेसे मधुप्रमेहका नाश होता है ॥ २१ ॥ अथवा इन औषधोंका काथ तथा तैलपाक अथवा घृतपाक बनाके पीनेमें और मालिस करनेमें हित कहा है और सब प्रकारके मूत्ररोगोंको नाशता है ॥ २२ ॥ वड़आदि औषधोंका यह चूर्ण दूधके संग पीना हित है । मधु प्रमेहमें इसके समान औषध नहीं है । इसमें कहीं हुई जितनी औषध मिलें उतनी ही मिला देवे ॥ २३ ॥ और शहद, सोनामाखी, पाषाणभेद, शिलाजीत, चंदन, गेरू, कपूर, पीपल ॥ २४ ॥ वंशलोचन इनके चूर्णको दूधके संग पीवे । मधुप्रमेहको नाशता है और संपूर्ण मूत्ररोगोंको दूर करता है ॥ २५ ॥

अथ प्रमेहपिटिकाकी चिकित्सा ।

प्रमेहपिटिकानाञ्च वक्ष्यामोऽथ चिकित्सितम् ॥ धवार्जुनकदम्बानां बदरीखदिरशिशपे ॥ पारिभद्रकमेतेषां मेहनस्य प्रधावनम् ॥ २६ ॥ अर्जुनस्य कदम्बस्य टिण्डुकी वान्तरत्वचा ॥ पाके पूयविशोधार्थं मेहनस्य प्रशस्यते ॥ २७ ॥ भृङ्गराजरसं गृह्य तथा च सुरसादलम् ॥ निष्पावकपटोलानां पत्राणि काञ्चि-

केन तु ॥२८॥ पिष्ट्वा वातपिटिकानां लेपनं मेहनस्य च ॥२९॥
यष्टीमधु तथा कुष्ठं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ उशीरं कत्तृणं चैव
रक्तयातुष्टृणालकम् ॥३०॥ क्षीरमण्डकसंयुक्तं यथालाभं भिष-
ग्वर ॥ लेपनं पित्तरक्तानां मेहदाहः प्रशाम्यति ॥ ३१॥ धावनं
शीतपयसा नवनीतेन मर्दनम् ॥ कणं कदम्बार्जुनपिण्याकप-
त्राणि दाडिमस्य च ॥ ३२ ॥ खदिरस्य दलानां तु तथा चाम-
लकीदलान् ॥ उष्णेन वारिणा पिष्ट्वा सोमपाके च मेहने ॥३३॥
त्रिफलायाश्च वा चूर्णं शुष्कपूयनिवारणम् ॥ धावनं काञ्जिके-
नाथ तक्रेणाथ तुपाम्बुना ॥ ३४ ॥ अतिशीतेन तोयेन मेहपाके
च धावनम् ॥

अथ प्रमेहकी पिडिकाओंकी चिकित्साको कहते हैं, धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, खैर, सीसम,
नींब इनकी छालके काथसे प्रमेहरोगकी पिडिकाओंको धोवे ॥ २६ ॥ अर्जुनवृक्ष, कदंब,
वैटवृक्षकी भीतरकी बकलके काथसे पकी हुई पिडिकाओंकी रावको शोधनेके वास्ते धोवें
॥ २७ ॥ मंगरेका रस, तुलसीके पत्तोंका रस, मोठ, परवल इनके पत्ते कांजीसे ॥ २८ ॥
पीस वातसे उपजी हुई प्रमेहकी पिडिकाओंपै लेप करे ॥ २९ ॥ मुलहठी, कूठ, चंदन, लाल
चंदन, खश, रोहिसतृण, गेरू, कमलकी नाली ॥ ३० ॥ दूधमें तथा चावल्लोंके मांडमें पीसके
लेप करनेसे शिशिका दाह शांत होता है ॥ ३१ ॥ चावल्लोंके धोवनसे ठंडे पानीमें वा नोनी
घृतमें पीस और गेहूँके कणका रवा, कदंबवृक्ष, तिलोंका वृक्ष इनके पत्ते और अनार ॥ ३२ ॥
खैर, आंवला इनके पत्ते गरम जलमें पीस सोमपाक प्रमेहरोगमें देवे ॥ ३३ ॥ त्रिफलाका
चूर्ण शुष्कपूय प्रमेहका निवारण करता है अथवा कांजी, तक्र, शीतल जलसे इंद्रियका धोना हित
है ॥ ३४ ॥ और प्रमेहपाकमें अत्यंत ठंडे जलसे इंद्रियका धोना श्रेष्ठ है ॥

अथ प्रमेहमें पथ्यापथ्य ।

रक्तशालिश्च षाष्टीकश्चाढकी वा कुलत्थकः ॥ ३५ ॥ घृतं च
मधुरं किञ्चिद्भोजनार्थं विधीयते ॥ क्षाराम्लकटुकं वापि दिवा
स्वप्नं विशेषतः ॥ ३६ ॥ स्त्रीदर्शनं व्यवयञ्च तथा चात्यशनं
तथा ॥ चलनं धावनं चेति तथा मूत्रविरोधनम् ॥ ३७ ॥
वस्त्रपातं रक्तवस्त्रं वर्जयेद्विषजां वरः ॥ एकान्ते गृहमध्ये च

गानस्त्रीबालकं रसः ॥ ३८ ॥ न चाभरणताम्बूलं कोपशोषं
जहाति च ॥ दूरे चैतानि वर्ज्येत्तु यदीच्छेत्सुखसम्पदः ॥ ३९ ॥

लाल चावल, सांठी चावल, अरहर, कुलथी ॥ ३९ ॥ घृत, किंचित् मधुर अन्न इनको भोजनके वास्ते देवे और खारा, चर्चरा पदार्थ, दिनमें सोना विशेष करके वर्ज्य देवे ॥ ३६ ॥ स्त्रीका दर्शन, मैथुन, ज्यादा भोजन करना, मार्गमें चलना, भाजना, मूत्रका रोकना ॥ ३७ ॥ वस्त्रसे वायु करना, रक्तवस्त्र पहिरना वैद्यजन इस रोगमें वर्ज्य देवे । एकांतमें, घरके मध्यमें, गाना, स्त्री बालक इनके संग प्यार करना ॥ ३८ ॥ अभूषण पहिरना, पान चवाना, क्रोध करना इनको इस रोगमें दूरसे ही त्याग देवे तब सुख होता है ॥ ३९ ॥

पीतप्रमेहपर हरिद्रादिकाथ ।

हरिद्राद्वितयं शुण्ठी विडङ्गानि हरीतकी ॥ कफप्रमेहे विहितः
काथोऽयं मधुना सह ॥ ४० ॥ नीलोत्पलमुशीरश्च पथ्यामल-
कमुस्तकम् ॥ पिबेत्पीतप्रमेहार्तः काथं मधुविमिश्रितम् ॥ ४१ ॥

दोनों हलदी, सोंठ, वायविडंग, हरडै इनका काथ शहदके संग पीना कफप्रमेहमें श्रेष्ठ कहा है ॥ ४० ॥ नीलाकमल, खश, हरडै, आंवला, नागरमोथा इनका काथ शहदके संग पीनेसे पीतप्रमेहका नाश होता है ॥ ४१ ॥

अथ पित्तप्रमेहपर कमलादिकाथ ।

कमलश्च तथा रोध्रमुशीरमर्जुनान्वितम् ॥

पित्तप्रमेहे विहितः काथोऽयं मधुना सह ॥ ४२ ॥

कमल, लोध, खश, अर्जुनवृक्ष इनका काथ शहदके संग पीना पित्तप्रमेहमें हित कहा है ॥ ४२ ॥

अथ आमलक्यादिचूर्ण ।

आमलकस्य स्वरसं मधुना च विमिश्रितम् ॥

हरीतक्याश्च चूर्णं वा सर्वमेहनिवारणम् ॥ ४३ ॥

आंवलोंके रसमें शहद मिला अथवा हरडैके चूर्णमें शहद मिला खानेसे सब प्रकारके प्रमेह रोगोंका नाश होता है ॥ ४३ ॥

अथ खदिरादिचूर्ण ।

खदिरं शर्करा दारु हरिद्रा मुस्तमेव च ॥

चूर्णितं तु पिबेत्सर्वप्रमेहगदशान्तये ॥ ४४ ॥

खैर, खांड, देवदार, हलदी, नागरमोथा इनके चूर्णको पीनेसे सब प्रमेहरोग शांत होते हैं ॥ ४४ ॥

अथ कुष्ठादि चूर्ण ।

कुष्ठं हरिद्राद्वयदेवदारु पाठा गुडूची त्रिफला च मुस्तम् ॥ एषां हि चूर्णं मधुना विमिश्रं मूत्रप्रमेहं हरते व्यथाञ्च ॥ ४५ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने प्रमेहचिकित्सा नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

कुष्ठ, दोनों हलदी, देवदार, पाठा, गिलोय, त्रिफला, नागरमोथा इनके चूर्णको शहदके संग पीनेसे सब मूत्रप्रमेहरोग और पीडा इनका नाश होता है ॥ ४५ ॥

इति वैरीन्यासिनुधशिवसहायसुनुवैद्यरविदत्तशास्त्रनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने प्रमेहचिकित्सानाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः २९.



अथ मूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ एलाशिलाजतुयुतं मागधिकापाषाणभेदसंचूर्णम् ॥ तण्डुलजलेन पीतं प्रमेहशोभं हरत्येव ॥ १ ॥ एरण्डमूलपाषाणभेदगोक्षुरकास्तथा ॥ एलाटरूपपिप्पल्यो यष्टीमधुसमन्विताः ॥ २ ॥ एषां क्वाथं पिबेज्जन्तुः शिलादित्येन योजितम् ॥ अश्मरीशर्करायाश्च शर्करायाः पलद्वयम् ॥ ३ ॥ सुशीतलं जलं कर्पमात्रं स्यान्मूत्रकृच्छ्रहृत् ॥ दध्यम्बुना च संमिश्रमयश्चूर्णं सुखप्रदम् ॥ ४ ॥ मूत्रकृच्छ्रे यवक्षारचूर्णं हिंशुप्रयोजितम् ॥ कूष्माण्डं च समादाय शर्करासहितं पिबेत् ॥ ५ ॥ यो हि त्रिदोषसम्भूतमूत्रकृच्छ्रनिवारणः ॥ पिबेच्छतावरीमूलं शीतपानीयचूर्णितम् ॥ ६ ॥ अतः शर्करारोगार्ते शर्करां संप्रयोजयेत् ॥ आरग्वधफलं मूलं दुरालभा धान्यकशतावर्यः ॥ ७ ॥ पाषाणभेदपथ्ये क्वाथोऽयं मूत्रकृच्छ्रे स्यात् ॥ ८ ॥ पाषाणभेदस्त्रिवृता

च पथ्या दुरालभा गोक्षुरपुष्करं वा॥एला कुरण्टाप्यथकर्कटीजं
बीजं कषायः सुनिरुद्धमूत्रे ॥ ९ ॥ कुलत्थयुक्तः पटोलीमू-
लकषायः प्रतिपाकः ॥पुष्करमूलविमिश्रः प्रमेहपाषाणरोगघ्नः
स्यात् ॥ १०॥ यो मातुलुङ्गिकामूलं पिबेत्पथ्युपिताम्बुना ॥
तस्यान्तः शर्करोद्भूतं दुःखं सद्यो विलीयते ॥११॥ गवां तक्रेण
संपिष्टं क्षिप्रनामकमौषधम् ॥ पिबेच्चिरेण तक्रञ्च शर्करादोषदू-
षितः ॥१२॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूत्र-
कृच्छ्रचिकित्सा नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--इलायची, शिलाजीत, पीपल, पाषाणभेद इनके चूर्णको
चावलोंके धोवनके जलके संग पीनेसे प्रमेहरोगका नाश होता है ॥ १ ॥ अरंडकी
जड़, पाषाणभेद, गोखरू, इलायची, वांसा, पीपली, मुलहटी इनका काथ बना
शिलाजीत मिला पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ २ ॥ और पथरीरोग, शर्करारोग, इनमें
८ तोला प्रमाण खांड मिला पीना चाहिये ॥ ३ ॥ एक तोला प्रमाण ठण्डा जल पीनेसे
मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है तथा दहीके पानीसे लोहचूर्णको पान करे ॥ ४ ॥ और मूत्रकृ-
च्छ्ररोगमें जवाखारका चूण, हींग, कोहला, खांड इनको जलके संग पीवे ॥ ५ ॥ और
शीतल जलके संग शतावरीके जड़को पीनेसे त्रिदोषसे उपजा मूत्रकृच्छ्र दूर होता है ॥ ६ ॥
और शर्करारोगमें खाँड़को पीवे और अमलतास, मूली, जवांसा धनियां शतावरी ॥ ७ ॥
पाषाणभेद, हरडै इनका काथ पीनेसे मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥ पाषाणभेद,
निशोत, हरडै, जवासा, गोखरू, पोहकरमूल, इलायची, कोरंटा, काकड़ीका बीज, इनका
काथ मूत्रबन्धमें पीना श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ कुलथी, परवल, मूली, पोहकरमूल इनका काथ
बना पीनेसे प्रमेह, पथरीरोग इनका नाश होता है ॥ १० ॥ जो पुरुष विजौराकी जड़को वासी
जलके संग पीता है वह शर्करारोगसे छूट जाता है ॥ ११ ॥ और गौकी तक्रके संग कायफलको
पीस पीनेसे शर्करारोग दूर होता है ॥ १२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशा-
स्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मूत्रकृच्छ्रचिकित्सानामैकोनत्रिंशोऽध्यायः २९॥

त्रिंशोऽध्यायः ३०.

अथ मूत्ररोधचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ पिबेत्कर्कटिकाबीजं त्रिफलासैन्धवान्वितम् ॥

उष्णांबुचूर्णितं पीतं मूत्ररोधं क्षयं नयेत् ॥ १ ॥ यस्तिलकाण्ड-
क्षारं दधिमधुसंमिश्रितं पिवेत् ॥ स नरश्च मूत्ररोधं हत्वा सद्यः
सुखमायाति ॥ २ ॥ अजाक्षीरेण संमिश्रं जातीमूलं प्रपेपितम् ॥
पिवेत्सदाहमूत्रोष्णवेदनाशमनं यतः ॥ ३ ॥ तैलेन पद्मिनी-
कन्दं पक्वममूत्रमिश्रितम् ॥ पिवेन्मूत्रनिरोधे तु सतीव्रवेदना-
न्विते ॥ ४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—काकड़ीके बीज त्रिफला, सेन्धानमक, इनके साथ पीस गरम जलके संग पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है ॥ १ ॥ तिलोंकी नालियोंका क्षार, दही, शहद इनको मिला पीनेसे मूत्ररोध रोग दूर होता है, तत्काल सुख होता है ॥ २ ॥ जायफलको वकरीके दूधमें पीस पीनेसे दाह, गरम, मूत्रकी पीड़ाकी शांति होती है ॥ ३ ॥ कमलकंदको तेलमें पीस गोमूत्रमें मिला पीनेसे तीव्र पीड़ासे युक्त मूत्रकृच्छ्ररोग दूर होता है ॥ ४ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रका कारण ।

पित्तप्रकोपनैर्द्रव्यैः कट्वाम्ललवणैस्तथा ॥ गौरास्त्रीसेवनेनापि
रक्तं वापि प्रवर्तते ॥ ५ ॥ मद्यपानेन चोष्णेन श्रमव्यायामपी-
डितैः ॥ पित्तं प्रकोपयेच्छीघ्रं करोति मूत्रकृच्छ्रकम् ॥ ६ ॥ तेन
मूत्रयते कृच्छ्रं चोष्णधारा प्रवर्तते ॥ मूत्रस्रोतश्च हरति रक्तं
चापि प्रवर्तते ॥ तस्य वक्ष्यामि भेषज्यं येन संपद्यते सुखम् ॥ ७ ॥

पित्तको कोप करनेवाले द्रव्य, चर्चरा, खट्वा, नमक इनके खानेसे और गौरास्त्रीके सेवनेसे इन्द्रियमें रक्त प्रवृत्त होजाता है ॥ ५ ॥ गरम मदिरा पीनेसे, श्रम, कसरत, इनकी पीड़ा होनेसे शीघ्र ही पित्त कुपित हो जाता है, वह मूत्रकृच्छ्र रोगको कर देता है ॥ ६ ॥ उससे कष्टसे मूत्र-उत्तरे । गरम गरम धार जावे और मूत्रका वेग बंद हो जावे तथा रक्त गिरने लगे ॥ ७ ॥

अथ मूत्रकृच्छ्रपर उपाय ।

यष्टीमधुकमृद्धीकाचन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ रक्ततण्डुलतोयेन मूत्र-
कृच्छ्ररुजापहम् ॥ ८ ॥ वटप्ररोहमालासु द्राक्षाशर्करयान्वितः ॥
लेहोऽयं मूत्रकृच्छ्रस्य नाशनो भिषजां वर ॥ ९ ॥ देहोपशमनः
प्रोक्तः शीतगाहनकोपतः ॥ मूत्रकृच्छ्रे तु तत्प्रोक्तं भोजनं मधुरं
हितम् ॥ १० ॥ उत्तानस्य रतौ भङ्गाद्दाहव्यायामजातके ॥

मूत्ररोधे वचा वय्या दद्यात्तत्रानिरोधकान् ॥११॥ अव्यायामे
 शुभं भोज्ये शीतावगाहिता नरे ॥ एतैस्तु कुपितो वायुर्मूत्रद्वारं
 ग्रहन्धति ॥ १२ ॥ श्लेष्मसहितः पापिष्ठ उक्तः कष्टतमो गदः
 ॥ शृणु तस्य प्रतीकारं कषायं वानुवासनम् ॥ १३ ॥ बस्ति-
 निरूहकाथं च मूत्ररोधे हितो विधिः ॥ सर्वसंस्वेदनं चैव स्थानं
 वक्रमणाविव ॥१४॥ तुरङ्गशकटारोहधावनं च हितं मतम् ॥
 फलत्रिकं समगुडं काथः क्षीररसेन तु ॥१५॥ पानं मूत्रनिरो-
 धेषु पित्ताद्वा लवणाम्लिकम् ॥ पाटलाटुण्डका चैव निम्बगो-
 क्षुरकं तथा ॥१६॥ एलात्वक् च तथा पत्रं काथस्त्रिफलयान्वितः ॥
 गुडेन संयुतं पीतं हन्ति मूत्रनिरोधकम् ॥ १७ ॥ दाडिमाम्ल-
 युतं चैव हितं मूत्ररुजां नृणाम् ॥ त्रिफलेक्षुसिताकाथगुडेन सह
 सैन्धवम् ॥१८॥ मूत्ररोधं वारयति पथ्या वा गुडसंयुता ॥
 अथवा तोदनन्नारीमैथुनं च विधेयकम् ॥ १९ ॥ तेन सौख्यं
 भवेच्छीघ्रं स्त्रीणाञ्च योनिमर्दनम् ॥२०॥ इत्यात्रेयभाषितेहारीतो
 तरे तृतीयस्थाने मूत्ररोधचिकित्सानाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अब तिसकी औषधोंको कहते हैं जिससे सुख होवे है-मुलहटी, महुआ, मुनक्का, दाख, चन्दन,
 लाल चन्दन ॥ ८ ॥ इनको लाल चावलोंके धोवनके जलमें पीस पीनेसे मूत्रकृच्छ्रकी
 पीड़ा दूर होती है। और बड़के पत्तोंके अंकुर, दाख, खांड, ये मिला लेह बना खानेसे
 मूत्रकृच्छ्ररोगका नाश होता है ॥ ९ ॥ और यह लेह देहको शांत करनेवाला है और शीतल
 जलमें गोता मारनेसे उपजे हुए मूत्रकृच्छ्ररोगमें मधुर भोजन हित कहा है ॥ १० ॥
 मोघा सोवनेसे मैथुनके भंग होनेसे, दाह और कसरतके परिश्रमसे उपजे हुए मूत्ररोधमें
 वच, शतावरी इनको देवे ॥ ११ ॥ कसरत नहीं करना, सुन्दर तथा ज्यादा भोजन
 करना, शीतल जलमें गोता मारना, इनसे कुपित हुआ वायु मूत्रद्वारको रोकलेता है ॥ १२ ॥
 और अत्यंत कष्टवाला पापवाला यह रोग कफ सहित होता है। अब इसरोगका इलाज कह-
 ते हैं, अनुवासन बस्तिमें काथ भरतना चाहिये ॥ १३ ॥ मूत्ररोधमें निरूह बस्तिद्वारा
 काथ देना चाहिये और सब शरीरमें पसीना दिलांना हित है जैसे टंढी मणिमें स्थान दीखता
 है ऐसे ही मूत्ररोग जानना ॥ १४ ॥ वोड़ा, गाड़ी इनकी सवारीपर चढ़के भागना
 हित कहा है और त्रिफला, गुड़ इनको समान भागले गुड़में काथ बनादेना हित है ॥ १५ ॥

वाथ धवार्जुनकदम्बकम् ॥ धावनं सर्पिणे शस्तं सुरासौवीर-
 केण वा ॥ ८ ॥ धावनञ्च हितं तस्य सन्निपाते विसर्पिणे ॥
 यवाग्निमन्थैश्च शटीन्यग्रोधैश्च ससर्पपैः ॥ ९ ॥ क्वाथः स्यात्स-
 न्निपातोत्थविसर्पधावने हितः ॥ पञ्चजीरकपित्थांश्च काञ्जिकेन
 तु पेषयेत् ॥ मातुलुङ्गरसेनापि लेपनं वातसर्पिणे ॥ १० ॥ धवा-
 रोध्रतिलाश्चैलविदारीकण्टकं तथा ॥ लेपः पित्तविसर्पे वा
 गुञ्जापत्रैस्तु लेपनम् ॥ ११ ॥ सैन्धवारिष्टतुम्बीकापटोलपत्रकै-
 र्युतम् ॥ पाचितं लेपने शस्तं विसर्पाणां निवारणम् ॥ १२ ॥
 रक्तजेषु विसर्पेषु कुर्याद्रक्तावसेचनम् ॥ पश्चाद्धवकदम्बानां
 सर्वदा गृहधूमकम् ॥ १३ ॥ लेपने हितकृत्प्रोक्तं धावनं काञ्जि-
 केन तु ॥ कुठेरकाश्च सुरसा चक्रमर्दो निशायुगम् ॥ १४ ॥
 सर्पपाः काञ्जिकेनापि पिष्ट्वा च लेपनं हितम् ॥ १५ ॥ इत्या-
 त्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सा नाम
 त्रयास्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—नमक, खट्टा, खारा, चर्चरा, गरम, ऐसा पदार्थ सेवनेसे और
 पसीनेके दोषसे रक्तपित्त कुपित हो जाता है वह विसर्परोग कहाता है ॥ १ ॥ वह जुदे जुदे
 दोषों करके और द्रव्य दोषों करके सात प्रकारका होता है और केवल रक्तसे उपजा हुआ
 सन्निपातसे युक्त सातवां होता है ॥ २ ॥ अन्य कईक जन जुदे २ नामोंवाले इन रोगोंको
 कहते हैं । आक्षेपनामवाला, ग्रंथिकनामवाला, घोरनामवाला और कर्दमनामवाला ऐसे तीन
 प्रकारसे होता है ॥ ३ ॥ आक्षेप विसर्परोग वातपित्तसे होता है और ग्रंथिक पित्तकफसे होता है,
 कर्दमनामवाला विसर्प वातकफसे होता है और घोरनामक सन्निपातसे होता है ॥ ४ ॥ रक्तकांति,
 त्वचा, मांस इनसे दूषित हुए तीनों दोष और सात धातु ये विसर्प रोगोंकी उत्पत्तिमें हेतु कहे
 हैं ॥ ५ ॥ और बड़, बेलगिरी, खैर इनके काथसे शरीरका धोवना हित है और कांजीका खटाई-
 के झागोंसे अथवा सौवीर संज्ञक कांजीके रससे ॥ ६ ॥ अथवा विजौराके रससे धोवना वातसे
 उपजे विसर्परोगमें हित है और पित्तके विसर्पमें दूध और शोतल जलकरके धोवना हित है
 ॥ ७ ॥ कफके विसर्परोगमें धव, अर्जुनवृक्ष, इनके काथसे अथवा मदिरा सौवीर संज्ञक कांजी इनसे
 धोवना हित है ॥ ८ ॥ सन्निपातके विसर्पमें भी मदिरा, सौवीर संज्ञक कांजी इनसे धोवना
 हित है और अजवायन, अरणी, कचूर, बड़, सरसों ॥ ९ ॥ इनके क्वाथसे सन्निपातसे उपजे विसर्पको

धोना हित है और पांच प्रकारके जीरे, कैथ, इनको कांजीमें पीस बिजौराके रसके संग वातके विसर्पमें लेप करना हित है ॥ १० ॥ धव, लोव, तिल, एलवालुक्त, बिदारीकंद, गोखरूको पीस लेप करना अथवा चिरमईके पत्तोंका लेप करना हित है ॥ ११ ॥ सैंधानमक, नीव, तुंची, परवलके पत्ते इनको वृत्तमें पका लेप करनेसे सत्र प्रकारके विसर्पोंका नाश होता है ॥ १२ ॥ रक्तसे उपजे हुए विसर्परोगमें फस्तगुलानी चाहिये पीछे धव, कदंब, वरका धूवां ॥ १३ ॥ इनका लेप करना हित है और कांजीसे धोवना हित है और आजबला, तुलसी, पुआड़, दोनों प्रकारकी हल्दी ॥ १४ ॥ सरसों इनको कांजीमें पीस लेप करना हित है ॥ १५ ॥

इति वैरीनिवासिनुवशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटी-
कायां तृतीयस्थाने विसर्पचिकित्सानाम त्रयविंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ३४.

अथोपसर्गचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ चतुर्विधो भवेदोषो वातरक्तसमुद्भवः ॥
गन्धदोषेण जायन्ते नामान्येषां पृथक् पृथक् ॥ १ ॥ क्षुद्रतश्वा-
न्तको घोरोऽथवा चान्यमसूरिका ॥ वसन्तः सर्पपाकारा पिटका
यस्य दृश्यते ॥ २ ॥ सोऽपि क्षुद्रतरः प्रोक्तः पित्तरक्तप्रदोषतः ॥
अग्निदग्धवत्स दाह्यः पिटिका यस्य दृश्यते ॥ ३ ॥ सोऽप्यतीव
विसर्पी स्यादसुखी च निरन्तरम् ॥ ४ ॥ सवनाः पीडका यस्य
पाकयति समः कफः ॥ दाहोऽरतिर्विवर्णत्वं तस्य सद्यः प्रजायते
॥ ५ ॥ वर्तुलमसूरिकावत् पिटका यस्य दृश्यते ॥ शाम्यति शीघ्रं
पाकेन सा विज्ञेया मसूरिका ॥ तस्य वक्ष्यामि भैषज्यं यथाविधि
सहामते ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--वातरक्तसे उपजाहुआ चारप्रकारका दोष होता है सो गंधके दोपसे उत्पन्न होते हैं उनके जुदे २ नामोंको कहते हैं ॥ १ ॥ क्षुद्रक, अंतक, घोर, मसूरिका ये हैं और जिसके गौर सरसोंके आकार फुनसी दीखें ॥ २ ॥ वह क्षुद्ररोग, पित्तरक्तके दोपसे होता है और जिसमें अग्निके दग्ध होनेके समान दाह हो ॥ ३ ॥ निरंतर सुखी नहीं हो वह अति घोर विसर्परोग होता है ॥ ४ ॥ कड़ी तथा पकीहुईके समान पिड़िका हो, दाह हो,

ग्लानि हो, विवर्ण हो वह तात्काल अंतक रोग होता है ॥ ५ ॥ जिसके मसूरिकाके समान गोल पिडिका हो जल्दी ही पक्के शांत होजावे वह मसूरिका कहाती है । हे महामते ! इसकी यथार्थ विधिको कहते हैं ॥ ६ ॥

अथ मसूरिकामें चिकित्सा ।

गुप्ताकारं सुरक्षेत्र रक्षायोगविधानतः ॥ न स्त्रीणां नाधमानाश्च
संसर्ग वा प्रसङ्गकम् ॥ ७ ॥ सुशीतं शीतलं स्थानं कारयेत्सु-
प्रयत्नतः ॥ क्षुद्रकस्योपसर्गस्य लेपनं चात्र कारयेत् ॥ ८ ॥
कुष्ठं सौशीरन्यग्रोधस्तथोदुम्बरिकत्वचः ॥ प्रलपेनं प्रशस्तं
स्यात्क्षुद्रोपसर्गवारणम् ॥ ९ ॥ मधुशर्करया युक्तं क्षीरपानं
सुखावहम् ॥ जम्बवाग्रपल्लवानाश्च विष्टं दधिमधुयुतम् ॥ १० ॥
पाययेत् क्षुद्रकस्यास्य अतिसाराग्निनाशनम् ॥ गोक्षुरश्चाति-
विषा च कर्कटाद्यं सपर्पटम् ॥ ११ ॥ कल्कमेतत्प्रयोक्तव्यं मधु-
शर्करया युतम् ॥ हरीतकीमातुलुङ्गस्वरसं शर्करायुतम् ॥ १२ ॥
क्षुद्रकस्योपसर्गस्य वमिशोषनिवारणम् ॥ अग्निकोऽप्युपसर्गे च
योज्यं चैतत्प्रलेपनम् ॥ १३ ॥ रक्तचन्दनमजिष्ठा निम्बप-
त्राणि चार्जुनम् ॥ क्षीरेण नवनीतेन हितं स्याल्लेपनं तथा ॥ १४ ॥

गुप्त आकारसे रक्षायोगके विधानसे उस रोगीको रक्खे और स्त्री तथा नीच जन इनका मेल नहीं होनेदेवे ॥ ७ ॥ अत्यंत यत्नसे शीतल स्थान रक्खे और क्षुद्रक उपसर्गमें लेप करना चाहिये ॥ ८ ॥ कूठ, खश, बड़, गूलरकी छाल इनका लेप करनेसे क्षुद्र उपसर्गरोगका निवारण होता है ॥ ९ ॥ शहद, खांड इनसे युक्त दूधका पीना सुखदायक है और जामन, आंव इनके पत्तोंको पीस दही और शहद मिला ॥ १० ॥ पीनेसे क्षुद्रक रोग अतीसारकी अग्नि इनका नाश होता है । और गोखरू, अतीश, काकडासींगी, पित्तपापड़ा ॥ ११ ॥ इनका कल्क बना शहद और खांड मिला ॥ १२ ॥ खानेसे क्षुद्र रोगवाले पुरुषका वमन, शोष, इनका निवारण होता है और अग्निसरीखे दाहवाले उपसर्गरोगमें ॥ १३ ॥ लाल चंदन, मँजीठ, नींद पत्ते, अर्जुनवृक्षकी छाल इनको दूध, नौनीघृतमें पीस लेप करना हित है ॥ १४ ॥

घोरं चोषद्रवं दृष्ट्वा न स्वेदं न च मर्दनम् ॥ प्रलेपनं न कुर्वन्ति
यथायोगेन पण्डिताः ॥ १५ ॥ अरण्यगोमयक्षारतैलेन चालनं
हितम् ॥ न तैलेनापि चाभ्यङ्गं लेपेनैव च कारयेत् ॥ १६ ॥

चन्दनं मधुकं रोध्रं न्यग्रोद्योत्पलसारिवा ॥ मधुना संयुतः कल्कः
 पानेन चोपसर्गहृत् ॥ १७ ॥ उपसर्गे ज्वरस्तीव्रो रक्तसूत्रं प्रजा-
 यते ॥ तस्य वक्ष्याम्युपचारं येन संपद्यते सुखम् ॥ १८ ॥
 पटोलं पर्पटं गुण्ठी मुस्ता च खदिरं समम् ॥ कल्को मधुयुतः
 पाने हितः स्याज्ज्वरनाशनः ॥ १९ ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठा पु-
 ष्करं दन्तधावनम् ॥ काथपानं मधुयुतमुपसर्गज्वरापहम् २० ॥
 वसने चातिसारे च दाडिमं कुटजस्तथा ॥ मधुदधान्वितं पान-
 सनिसारनिवारणम् ॥ २१ ॥ शेषाश्च क्षुद्रिकाः प्रोक्ताः क्रिया
 चात्र विधेयका ॥ एका क्रिया मसूरिके कर्तव्या सुविधानतः
 ॥ २२ ॥ वातलानि च सर्वाणि तथा रूक्षाणि कोविदः ॥ स्त्री-
 सङ्गं रूक्षशोकश्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ २३ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि
 पथ्यानि तानि चात्र प्रदापयेत् ॥ एवं त्रिसप्तरात्रेण सुखं सम्प-
 द्यते नरः ॥ २४ ॥ ततोऽभिषेकः कर्तव्यः कृत्वा मङ्गलवाच-
 नम् ॥ नूतनानि च सूक्ष्माणि वस्त्राणि च सितानि च ॥ २५ ॥
 परिवाप्य होमकार्यमिष्टभोज्यं विधेयकम् ॥ २६ ॥ इत्यात्रेय-
 भाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सानाम् चतु-
 र्विंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

उपसर्गरोगमें घोर उपद्रवको देखिके पसीना नहीं दे, मर्दन नहीं करे और लेप भी नहीं करे
 पंडित जनोंने ऐसे जानना ॥ १९ ॥ वनके आस्तोंकी राख और तेल करके चालन कर्म करना
 हित है, तेलसेभी मालिस और लेप नहीं करवावे ॥ १६ ॥ चंदन, महुआ, लोध, वड़, कमल,
 अनंतमूल, इनका कल्क बना शहदके संग पीनेसे उपसर्गरोगका नाश होता है ॥ १७ ॥ उपस-
 र्गरोगमें तीव्रज्वरहो लालमूत्र उतरै, उसकी चिकित्सा कहते हैं जिससे सुख उत्पन्न होवे ॥ १८ ॥
 परवल, पित्तपापड़ा, सोंठ, नागरमोथा, खैर इनको समान भाग ले कल्क बना शहद मिला पीनेसे
 ज्वरका नाश होता है और यह हित है ॥ १९ ॥ चंदन, खश, मँजीठ, पोहकरमूल इनके
 काथसे दातोंका धोवना और इसमें शहद मिला पीनेसे उपसर्गरोगमें उपजे ज्वरका नाश होता
 है ॥ २० ॥ वमन, अतीसार इनमें अनारदाना इंद्रजौ इनका काथ और शहद, दही इनके पीनेसे
 अतीसारका नाश होता है ॥ २१ ॥ और बाकीके रहे सब क्षुद्ररोगमें यही क्रिया करनी । यह क्रिया

उत्तम विधानसे मसूरिका रोगमें करनीचाहिये ॥ २२ ॥ और सब वातवाले पदार्थ तथा रूखे पदार्थ स्त्रीसंग, शोक इनको वैद्यजन दूरसेही वर्ज देवे ॥ २३ ॥ ज्वरमें कहेहुए जो पथ्य हैं उनको यहां करवावे इसप्रकार करनेसे तीन रात्रिमें अथवा सात रात्रिमें सुख उत्पन्न होता है ॥ २४ ॥ पीछे स्वास्तिवाचन करवाके अभिषेक अर्थात् स्नान करवावे नवीन तथा बारीक सफेद वस्त्रोंको ॥ २५ ॥ धारण कर होम करवा इच्छा पूर्वक भोजन करे ॥ २६ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने उपसर्गचिकित्सानाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ३५.



व्रणचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अथातः संप्रवक्ष्यामि व्रणानां तु चिकित्सितम् ॥
व्रणाश्चानेकधा प्रोक्ता नानाधातुविकारिणः ॥ १ ॥ दुष्टाम्बुपा-
नाशनसेवनाच्च क्रोधातिभाराद्व्यसनेन वापि ॥ संजायते दुष्ट-
व्रणोऽपि घोरश्चान्येन रक्तस्य हि दूषणेन ॥ २ ॥ वातेन पित्तेन
कफेन वापि द्वन्द्वेन वा दोषसमुच्चयेन ॥ मांसं प्रहृष्य रुधिरं
विकीर्य संजायते दुष्टव्रणोऽपि घोरः ॥ ३ ॥ त्वग्रक्तानि समेदांसि
प्रदूष्यास्थिसमाश्रितः ॥ दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युद्धता
भृशम् ॥ ४ ॥ सरक्तश्च सशूलश्च रुजावच्च सवेपथुः ॥ रुक्षं वा वात-
सम्भूतं विज्ञेयं सरुजं व्रणम् ॥ ५ ॥ तप्तदाहज्वरः सृष्टः स्पर्शनं
सहते तु यः ॥ शीतः सौख्यं लघुपाकी पित्तात्संजायते व्रणः ॥
॥ ६ ॥ कठिनो वर्तुलाकारो घोरः पीतोऽल्पवेदनः ॥ उष्णसहः
स्निग्धतरश्चिरपाकी कफव्रणः ॥ ७ ॥ सर्वैर्लिङ्गैर्विजानीयात्सन्नि-
पातसमुद्भवम् ॥ द्वन्द्वजे द्वयदोषस्तु दोषे चापि प्रदृश्यते ॥ ८ ॥
अभिघातसमुद्भूता विज्ञेयास्ते चतुर्विधाः ॥ अन्ये नाडीव्रणा-
ये स्युः सवाताश्च सवेदनाः ॥ ९ ॥ अन्ये तु स्रोतसां मध्ये तेषां
शृणु चिकित्सितम् ॥ प्रथमं मण्डविस्त्रावो द्वितीयं स्वेदनं स्मृ-

तम् ॥१०॥ तृतीयं पाचनं प्रोक्तं पाचिते पाटनं तथा ॥ शोध-
नञ्च प्रयोक्तव्यं तथा रोहणमेव च ॥ ११ ॥ पश्चात्क्रमस्तथैव
स्याद्ब्रणानां हितकारकः ॥ रास्त्रा वचा तथा शुण्ठी मातुलुङ्ग-
रसस्तथा ॥ १२ ॥ काञ्जिकेन सममेकधावनं वातिके व्रणे ॥
यष्टीमधुकमज्जिष्ठापटोलनिम्बपत्रकैः ॥ १३ ॥ दुग्धेन कथितं
शीतं धावनं पैत्तिके व्रणे ॥ १४ ॥ त्रिफला च कदम्बञ्च तथा
जम्बु कपित्थकम् ॥ काथः सोष्णकफोद्धूते व्रणे धावनमुत्तमम्
॥ १५ ॥ मातुलुङ्गाग्रिमन्थौ च मूलं वा काञ्जिकेन च ॥ सुर-
दारु तथा शुण्ठीलेपो वातव्रणे हितः ॥ १६ ॥ नलमूर्वा च
मधुकं चन्दनं रक्तचन्दनम् ॥ पिष्टं तण्डुलतोयेन पित्तव्रणवि-
नाशनम् ॥ १७ ॥ अंकोलकञ्च रोधञ्च कदम्बार्जुनवेतसाः ॥
पारिभद्रदलानां तु पिष्ट्वा व्रणविलेपनम् ॥ १८ ॥ पाकं गते
व्रणे वापि गम्भीरे सहजेऽथवा ॥ सरन्त्रे शोधनं काव्य धा-
वनं तु भिषग्वरैः ॥ १९ ॥ करञ्जधवनिम्बानां कदम्बार्जुन-
वेतसैः ॥ पादावशेषे काथेन गम्भीरव्रणधावनम् ॥ २० ॥
मज्जिष्ठा च तथा लाक्षारसश्चैव मनःशिला ॥ निशायुगे समा-
युक्तं पिष्ट्वा वस्त्रपरिस्तुतत् ॥ २१ ॥ मधुयुक्तं शोधनञ्च व्रणानां
हितकारकम् ॥ निम्बपत्राणि संक्षिप्य मधुना व्रणशोधनम्
॥ २२ ॥ निम्बपत्रतिलक्षौद्रं दार्वीमधुकसंयुतम् ॥ तथा
तिलानां कल्कञ्च शोधनञ्च व्रणेषु च ॥ २३ ॥ ति-
लका निम्बसीतस्य पत्राणि सुममासु च ॥ कषायश्च हित-
श्चैव व्रणानां शोधनेषु च ॥ २४ ॥ विशुद्धञ्च व्रणं ज्ञात्वा
व्रक्षयेच्च व्रणं च तत् ॥ नवनीतेन वा श्रेष्ठं न तेन दहते
व्रणः ॥ २५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अब व्रणोंकी चिकित्साको कहेंगे—अनेक प्रकारकी वातुओंके
विकारवाले अनेक प्रकारके व्रण कहे हैं ॥ १ ॥ दूषित जल और अन्नके, सेवनेसे, क्रोधसे,

अत्यंत वायुके उठानेसे, किसी वातके व्यसनसे मनुष्योंके घोर दुष्ट व्रण हो जाता है अथवा दूषित रक्तसे घोर व्रण होता है ॥ २ ॥ वातसे, पित्तसे, कफसे अथवा दोषोंसे तथा सब दोषोंके मिलापसे मांसमें प्रहर्ष होके रुधिर बिखरके घोर दुष्ट व्रण हो जाता है ॥ ३ ॥ और त्वचा, रक्त, मेद इनको दूषित कर अस्थियोंके आश्रय होके उठे हुए दोष शनैः शनैः अत्यंत शोकाको उत्पन्न कर देते हैं ॥ ४ ॥ वहां रक्तसहित शूलसहित पीड़ा होती है और कंपना होती है तहां रूखाव्रण हो वह वातसे उपजा जानना ॥ ५ ॥ और जो तप्तदाहज्वर इसे युक्त हो और स्पर्शको सहे और जिसमें शीतसे सुख हो, शीघ्र पाक हो वह पित्तसे उपजा व्रण होता है ॥ ६ ॥ कठिन हो, गोल आकार हो, घोर हो, शीतल हो, थोड़ी पीड़ा हो, गरम वस्तुको सहै, अति चिकना हो, बहुत कालमें पके वह कफसे उपजा व्रण जानना ॥ ७ ॥ जो सब लक्षण मिलते हों तो वह सन्निपातसे उपजा व्रण जानना और दो दोषोंसे उपजे व्रणमें दो दोषोंके लक्षण मिलते हैं ॥ ८ ॥ चोट आदिसे उपजे हुए चार प्रकारके व्रण होते हैं और अन्य जो नाडीव्रण होते हैं वे पीडासहित और वातसहित होते हैं ॥ ९ ॥ अन्य व्रण स्रोतोंमें होते हैं उनकी चिकित्साको सुनो । पहले तो उठते ही मांडका तरडा दे जिसे शायद बैठ ही जावे पीछे पसीना दिवावे अर्थात् अग्नि या गरम पदार्थसे सेंके ॥ १० ॥ फिर तीसरे पकावे पक जावे तब व्रणके फाड़नेकी विधि कही है, पीछे शोधन करे, पीछे व्रणको भरे ॥ ११ ॥ पीछे व्रणको हित करनेवाला क्रम करना चाहिये । रास्ना, वच, सूठ विजौरेका रस ॥ १२ ॥ कांजी इनसे धोवना वातके व्रणमें हित है और मुलहठी, महुआ, मजीठ, परवल, नींबूके पत्ते ॥ १३ ॥ इनको दूधमें मिला काथ बना, शीतलकर पित्तका व्रण धोवना चाहिये ॥ १४ ॥ त्रिफला, कदंब, जामन, कैथा इनका काथ बना गरम २ से कफसे उपजा व्रण धोवना चाहिये ॥ १५ ॥ और विजौरा, अरणी, मूली, कांजी, देवदार, सूठ इनका लेप करना वातव्रणमें हित है ॥ १६ ॥ नड, मूर्वा, मुलहठी, चन्दन, लाल चन्दन, इनको चावलके धोवनके जलमें पीस लेप करनेसे पित्तके व्रणका नाश होता है ॥ १७ ॥ और अंकोल, लोव, कदंब, अर्जुन वृक्ष, वेत, नींबूके पत्ते इनको पीस व्रणपै लेप करे ॥ १८ ॥ और व्रण पकजावे अथवा गंभीर हो जावे, पीडासहित हो अथवा छेक हो रहा हो वहां वैद्यजनोंको शोधन और धावन करना चाहिये ॥ १९ ॥ करंजुआ, धव, नींबू, कदंब, अर्जुन और वेत इनका चतुर्थांश काथ रहे तब उससे गंभीर व्रणको शोधन करे ॥ २० ॥ मंजीठ, लाखका रस, मनसिल रस, मनसिल, दोनों प्रकारकी हलदी इनको समान भागले ढकरके मूत्रमें पीस शहद मिला लेप करनेसे व्रणोंका शोधन होता है यह हित है और नींबूके पत्तोंको पीस शहद मिला लेप करनेसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥ और नींबूके पत्ते, तिल, शहद, दारुहलदी, तिलोंका कल्क इनके लेप करनेसे व्रणोंका शोधन होता है ॥ २३ ॥ तिल, नींबू, बहेडा इनके पत्ते और पुष्पोंका

काय बना सेक करनेसे व्रणोंका शोथन होता है ॥ २४ ॥ पीछे शुद्ध व्रणको जानके व्रणको नौनी घृतसे धोलेवे अर्थात् नौनी घृत धोके लगावे, नौनी घृत श्रेष्ठ है इससे व्रण भर- जाता है और दाह नहीं होता ॥ २५ ॥

अथ जात्यादि घृत ।

जातीकरञ्जपिचुमन्दपटोलमत्र यष्टीमधुञ्च रजनी कटुरोहिणी च ॥ सज्जिष्ठकोत्पलसुशीरकरञ्जबीजं स्यात्सारिवा त्रिवृन्भाग- धिका समांशा ॥ २६ ॥ पक्वं घृते विहितमस्ति व्रणे प्रशस्तं नाडी गते च सरुजे च सशोणिते च ॥ लूता विसर्पमपि हन्ति गभीर- येन व्रणाः सदाहकठिना अपि रोहयन्ति ॥ २७ ॥ इति जात्यादि घृतम् ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सा नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

जावित्री, करंजुवा, नींव, परवल, मुलहट्टी, हलदी, कुटकी, हर, मँजीठ, कमल, खश, करजु- बाके बीज, अनंतमूल, निशोत, पीपल, इनको समान भाग ले ॥ २६ ॥ इनको घृतमें पकालेवे यह घृत व्रणमें हित है और पीडा सहित तथा रक्तसहित नाडीव्रण, छत, विसर्प रोग इनको, नाश करता है और इससे दाहसहित तथा कठिन ऐसा व्रण भरजाता है ॥ २७ ॥

इति वेरीनिवासिवृषशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रयनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने व्रणचिकित्सानाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६.

अथ श्लीपदरोगका निदान तथा लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ व्रणोक्तरूपचारैश्च जायते श्लीपदं तथा ॥ वातेन स्फुटितं रूक्षं श्यामञ्चापि प्रदृश्यते ॥ १ ॥ सदाहपाकं पित्तेन सज्वरञ्चैव दृश्यते ॥ श्लेष्मणा जायते स्निग्धं घनं शोफसमन्वि- तम् ॥ २ ॥ सन्निपातेन सर्वाणि जायन्ते शिषजांवर ॥ मेदाश्रितं तु वाल्मीकिं वल्मीकवत् प्रदृश्यते ॥ ३ ॥ सदृश्यानि च चिह्नानि वातिकोत्थानि लक्षयेत् ॥ क्रियास्तस्य व्रणोक्ताश्च कारयेद्विधि- पूर्विकाः ॥ ४ ॥ जात्यादि च घृतं शस्तं तथैवालेपजानि च ॥

पुनः प्रलेपनं कार्यं धवार्जुनकदम्बकैः ॥५॥ गिरिकर्णिकामूलञ्च तथा वृक्षादनीमपि ॥ पिष्ट्वा प्रलेपनं कार्यं वाल्मीकश्लिपदस्य च ॥ ६ ॥ सूरणकन्दकं पिष्ट्वा मधुना च घृतेन च ॥ लेपनं च हितं तस्य वाल्मीकश्लिपदापहम् ॥७॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने श्लिपदचिकित्सा नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

व्रणमें कहेहुए उपचारोंकरके श्लिपदसंज्ञक रोग हो जाता है, वातसे उपजा श्लिपद स्फुटित हो, रूखा हो, श्याम बगवाला हो ॥ १ ॥ पित्तसे उपजे श्लिपद रोगमें दाह हो, पाक हो और ज्वर होता है और कफसे उपजा श्लिपद रोग चिकना हो करडा हो शोजासे युक्त होता है ॥ २ ॥ सन्निपातसे उपजे श्लिपद रोगमें सब लक्षण मिलते हैं और मेदके आश्रय हुआ यह रोग सर्पकी बँवईके समान लक्षणोंवाला होता है ॥ ३ ॥ और वातसे उपजे इस रोगमें समान लक्षण होते हैं उसकी क्रिया व्रणमें कहीहुई करना चाहिये ॥ ४ ॥ और पहले कहाहुआ जात्यादिवृत लेप करनेमें हित है और धव, अर्जुनवृक्ष, कदम्ब, ॥ ५ ॥ गिरिकर्णिकाकी मूल, अमरवेल, इनको पीस लेप करनेसे वाल्मीकसंज्ञक श्लिपद रोगका नाश होता है ॥ ६ ॥ जमीकंदको पीस शहद और घृतमें मिला लेप करनेसे वाल्मीकसंज्ञक श्लिपद रोगका नाश होता है ॥ ७ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने श्लिपदचिकित्सानाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७.

अथ अर्बुदरोगकी चिकित्सा ।

वाताभिघातपवनाद्गुणाद्वापि तथा पुनः ॥ रक्तनाड्यः प्ररोहन्ति रुन्धन्ति च तथा पुनः ॥१॥ तेन रक्तस्य मार्गस्तु रुध्यते तेन जायते ॥ अर्बुदञ्च महास्थूलं मार्गरोधाच्च जायते ॥२॥ वातान्मृदुच परुषं कफाच्च घनशीतलम् ॥ पित्तेन दाहपाकाद्यं विजानीयं विचक्षणैः ॥३॥ सन्निपातेन कठिनं घनं पाषाणसन्निभम् ॥ वृद्धिमच्च गडुकं स्यादसाध्यं तद्भिषग्वर ॥४॥ तस्यादौ पाटनं

कार्यं मर्मस्थानञ्च वर्जयेत् ॥ सैन्धवेन घृतेनापि कुर्यात्त-
ल्याबुलेपनम् ॥ ५ ॥ सूरणं कन्दकं दग्ध्वा घृतेन च गुडेन
च ॥ लेपनं चार्बुदानाञ्च नाशनञ्च भिषग्वर ॥ ६ ॥ शेषा
व्रणक्रिया प्रोक्ता शस्ता वार्बुदशान्तये ॥ वातघ्नानि च पथ्यानि
हितानि मधुराणि च ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृती-
यस्थाने अर्बुदचिकित्सानाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—चोटके अभिघातसे और वायुसे तथा व्रणसे रक्तकी नाड़ी भरजाती
और रुकजाती है ॥ १ ॥ उससे रक्तका मार्ग रुकजाता है सो मार्गके रुकनेसे महास्थूल
अर्बुदरोग हो जाता है ॥ २ ॥ वातसे उपजा अर्बुद रोग कोमल हो और खरदरा हो और
कफसे कड़ा और शीतल होता है और पित्तसे उपजेमें दाह और पाक होता है ऐसा वैद्यजनोंको
जानना चाहिये ॥ ३ ॥ सन्निपातसे उपजा कठिन और पत्थरके समान कड़ा होता है
हे वैद्यजन! बढनेवाला और गोलीसरीखा यह अर्बुदरोग असाध्य होता है ॥ ४ ॥ उस रोगकी आदिमें
मर्मस्थानको वर्जके फाडनेकी विधि करनी चाहिये पीछे सेंवानमक घृत इनका लेप करना चाहिये
॥ ५ ॥ जमीकंदको दग्ध कर घृत और गुडमें मिला लेप करनेसे अर्बुदरोगोंका नाश होता है
॥ ६ ॥ बाकीकी व्रणमें कहीं हुई क्रिया करनी यह श्रेष्ठ है और वातको नाश करनेवाले मधुर
पदार्थ हित कहे हैं और पथ्य हैं ॥ ७ ॥

इति त्रेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रयनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने अर्बुदचिकित्सानाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८.

अथ लूत तथा गंडमाला रोगका निदान और लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ इति व्रणक्रिया प्रोक्ता समासेन भिषग्वर ॥
यथायोगं चोपचारं ज्ञात्वा सम्यगुपाचरेत् ॥ १ ॥ दुष्टाम्बुपानक
कद्वन्ननिषेवणाच्च संजायते चक्रिमिसम्भवगण्डमाला ॥ सामारुते
च कफपित्तभवे विकारे संसर्पते क्रिमिजदोषगणश्च गण्डात् ॥ २ ॥
वातेन वातसदृशानि च लक्षणानि पित्तेन दाहसरुजव्रणशोष-

तापाः ॥ शैत्यं कफेन परुषत्वमनेकयोगात्सा सन्निपातवि-
हिता च समस्तलिङ्गैः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे उत्तमवैद्य ! इस प्रकारके संक्षेपमात्रसे व्रणकी चिकित्सा कहदी है इसके यथार्थ उपचारको जानकेअच्छी तरहसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥ दूषित जलके पीने से और कुत्सित अन्नके सेवनेसे क्रिमिरोगसे उपजीहुई गंडमाला जाननी। वात पित्त कफ इन दोषोंसे उपजेहुए इस विकारमें क्रिमियोंसे उपजाहुआ दोष गंड अर्थात् कपोल स्थानसे चलता है ॥ २ ॥ वातसे उपजे हुए इसरोगमें वातके समान लक्षण होते हैं और पित्तसे उपजेमें दाह, पीड़ा, व्रण, शोष, ताप, ये होते हैं और कफसे उपजेमें शीतलता, कठोरता ये उपचार होते हैं और जिसमें सब लक्षण मिलते हों वह सन्निपातसे उपजा जानता ॥ ३ ॥

अथ लूता गंडमाला चिकित्सा ।

तस्य चेमं प्रतीकारं वक्ष्यामि शृणु पुत्रक ॥ रोहिणी विशदा
चैव विजया च विभेदिनी ॥ ४ ॥ कान्तारी वज्रपुष्पा च तथा
चन्द्रायुधापरा ॥ इति सप्तविधा लूताः शृणु पश्चात्पृथक्पृथक् ॥ ५ ॥
रक्तमुण्डाभवेद्रक्ता रक्तस्थाने च रोहिणी ॥ विशदा मांसलस्थाने
श्वेतवर्णा च दीर्घिका ॥ ६ ॥ विजया च शिरोमध्ये पीतवर्णा
यवप्रभा ॥ ७ ॥ भेदिनी मेदसंस्थाने श्वेता च नीलरेखिका ॥ ८ ॥
कान्तारी वस्तिमध्ये च श्वेताङ्गा रक्तमुण्डिका ॥ वज्रपुष्पा
चास्थिमध्ये श्वेता कृष्णा शिरा मता ॥ ९ ॥ इन्द्रायुधा शिरान्ते
च धूम्रा कृष्णा शिरा मता ॥ १० ॥ रोहिण्यङ्गुलिमात्रेण सूत्रेण
विशदा समा ॥ विजया च यवाकारा वर्तुला विजया तथा ॥ ११ ॥
अन्या नृणां च विज्ञेया तण्डुलीकण्टकानिभा ॥ रोहिणी विजया
विंशा मांसस्थाने समाश्रिता ॥ १२ ॥ गुल्फे वा चास्थिसन्धौ च
दृश्यते भेदिनी नरे ॥ कुक्षौ कर्णान्तरेऽपाङ्गे कान्तारी विद्धि
पुत्रक ॥ १३ ॥ वज्रपुष्पा शिरसि च शिरान्ते चन्द्रायुधा मता ॥
अतो वक्ष्यामि भैषज्यं शृणु पुत्र प्रयत्नतः ॥ १४ ॥ सान्द्रपूय-
विस्रावश्च गरुभीरञ्च व्रणं विदुः ॥ अन्यं च सरुजं चैव पक्वजम्बू-
समप्रथम् ॥ १५ ॥ लूताव्रणानां चैतानि अपक्वं यावद्दृश्यते ॥

त्यक्त्वा सन्निवस्थमर्जस्यां लूतां चैव हि तद्गणम् ॥ तदा तत्तेन तैलेन
 दाहश्चागु विधीयते ॥ १६ ॥ अङ्गोलश्चैव मद्यानि पारिभद्र-
 दलानि च ॥ गृहधूसं कृष्णजीरं गोमूत्रेण तु पेपितम् ॥ लेपनं च
 प्रशस्तं च लूतानां मारण परम् ॥ १७ ॥ पिण्डीतकं विड-
 ज्ञानि तथा चेडुदिसूलकम् ॥ बीजधूरकसूलानि पेपितानि वि-
 लेपयेत् ॥ गण्डमालां तथा घोरां हन्ति शीघ्रं प्रकण्टकान्
 ॥ १८ ॥ लुहीक्षीरं चार्कक्षीरं लूतारन्ध्रं नियोजयत् ॥ तेन की-
 दस्तु तन्मध्यं त्रियते नात्र संशयः ॥ १९ ॥ आस्यतो गिरिक-
 णीश्च चन्दनञ्च समांशकम् ॥ पिष्ट्वा लेपः प्रयोक्तव्यो लूतां
 हन्ति सुदारुणाम् ॥ २० ॥ करवीरं चार्कदुग्धं तथा च कटु-
 तुम्बिकाम् ॥ निशाद्वयं जाङ्गलिकां तिलतैले विपाचयेत्
 ॥ २१ ॥ लूतामभ्यञ्जने हन्ति गण्डमालाञ्च दारुणाम् ॥ घृतं
 जात्यादिकं नाम तथा चात्र प्रयोजयेत् ॥ २२ ॥ अन्यान्यपि
 व्रणे यानि प्रोक्तानि च यथाविधि ॥ २३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते
 हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने लूतागण्डमालाचिकित्सा नामाष्ट-
 त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

हे पुत्र! उसके इलाजको कहते हैं सुनो, रोहिणी, विशदा, विजया, विभेदिनी ॥ ४ ॥ कान्तारी, वज्र-
 पुष्पा, इन्द्रायुवा, ऐसे सात प्रकारकी छत होती हैं सो हे पुत्र ! जुदी जुदी सुनो ॥ ५ ॥ रक्तमुखवाली,
 रक्तवर्णवाली, रक्तके स्थानमें होनेवाली ऐसी रोहिणी नामक छत होती है और सफेद वर्णवाली
 तथा दीर्घ ऐसी विशदानामवाली छत मांसस्थानमें होती है ॥ ६ ॥ विजयानामवाली छत
 पीलेवर्णवाली और शिरके मध्यमें होती है और ज्वरसीखी होती है ॥ ७ ॥ सफेदवर्णवाली
 नीलीरेखावाली ऐसी छत मेदके स्थानमें भेदिनीनामवाली होती है ॥ ८ ॥ सफेदवर्णवाली
 रक्तमुखवाली ऐसी कान्तारीनामवाली छत वस्तिस्थानमें होती है और वज्रपुष्पा नामक छत अस्थि-
 स्थानमें होती है और सफेदवर्णवाली तथा काले मुखवाली होती है ॥ ९ ॥ इन्द्रायुवा छत
 नसोंके मध्यमें होती है धूस्रवर्णवाली और काले शिरवाली होती है ॥ १० ॥ रोहिणी-
 नामवाली छत अंगुल प्रमाणमें होती है विशदा छत सूतके समान होती है, विजया
 छत जवके आकारवाली अथवा गोल आकारवाली होती है ॥ ११ ॥ अन्य छत
 मनुष्योंके चौलाईके कांटेके समान जाननी और रोहिणी विजया विशदा छत मांसस्थानके

आश्रय रहती है ॥ १२ ॥ टांकेकी गुल्फ अस्थि संधि इनमें विभेदिनी छत होती है और कोखी कानके समीपस्थान, नेत्रोंके समीप यह कांतारीनामक छत होती है ॥ १३ ॥ वज्रपुष्पा शिरमें होती है और नसोंके मध्यमें इंद्रायुधा छत होती है हे पुत्र ! अब इनकी औषध कहते हैं यत्नसे सुनो ॥ १४ ॥ कड़ीराध झिरती हो तहां गंभीर व्रण कहते हैं और अन्य पीडा सहित और पकेहुए जामनके फलके समान व्रण होता है ॥ १५ ॥ छतके व्रण जबतक पके नहीं उससे पहले मर्मसंधियोंको त्यागके लूतको और व्रणको गरम २ तैलसे दग्ध करना चाहिये ॥ १६ ॥ अंकोल मदिरा, नींबूके पत्ते, घरका धूम, कालाजीरा इनको गोमूत्रमें पीस लेप करनेसे लूतका नाश होता है ॥ १७ ॥ तगर, वायबिडंग, इंगुदीवृक्षकी जड़, विजोराकी जड़ इनको पीस लेप करनेसे घोर गंडमाला कंटकरोग इनका शीघ्र ही नाश होता है ॥ १८ ॥ और थोहरका दूध, आकका दूध, इनको लूतके छिद्रोंमें युक्त करनेसे उसके मध्यके कीड़े मरजाते हैं, ॥ १९ ॥ सफेद गोकर्णी, चंदन, इनको समान भाग ले पीसके लेप करनेसे दारुण लूतका नाश होता है ॥ २० ॥ कनेर, आकका दूध, कडुई तुंबी, दोनों हलदी कपूर, कचरी, इनको तिलोंके तैलमें पका ॥ २१ ॥ मालिस करनेसे लूत, गंडमाला, इनका नाश होता है और जात्यादिक नामवाला घृत यहां युक्त करना श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ और अन्य जो व्रणमें कहीहुई औषध हैं वे यहां करनी श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थानेलूतागंडमालाचिकित्सानानाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९.

अथ कुष्ठचिकित्सा ।

आत्रेयउवाच॥ विरुद्धपानानि गुरुणि चाम्लपापोदक सेवन-
केन वापि ॥ निद्रा दिवासुप्रतिजागराच्चपित्तं प्रकुप्येद्बुधिराश्रितं
तत् ॥ १ ॥ त्वचागतः सर्पति रोगदोषः कुष्ठेति संज्ञां प्रवदन्ति
वीराः ॥ पापोद्भवास्ते प्रभवन्ति देहे नृणां भृशं कोपयतां
विधिज्ञ ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—विरुद्धपान और गरिष्ठ भोजन, खट्टे तथा दूषित जलके सेवनेसे, दिनमें सोने और रातमें जागरण करनेसे रक्तके आश्रय हुआ पित्त कुपित होता है ॥ १ ॥ त्वचामें प्राप्त हुआ रोगरूपदोष फैलता है, तब कुष्ठ ऐसी संज्ञा होती है । पापसे उत्पन्न होनेवाले वे रोग मनुष्योंके शरीरमें कोपसे प्राप्त होजाते हैं अब तिनके जुदे जुदे लक्षणोंको कहेंगे ॥ २ ॥

कुष्ठोंके सामान्यभेद और लक्षण ।

कुष्ठानि चाष्टादशधा वदन्ति तेषां पृथक्त्वेन वदामि चित्तम् ॥
असाध्यसाध्यानि च कर्मजानि दोषोद्भवानि सहजानि तानि
॥३॥कारुण्यपारुण्यसथैव कण्डू रोमग्रहर्षःस्तिमितं तथैषाम्॥
तोदस्तथा संव्यथनं च देहे त्वचि स्थिते कुष्ठभवस्य चित्तम्॥४॥

कुष्ठोंको अठारहप्रकारके कहते हैं वहां कर्मसे उपजे कुष्ठ साध्य हैं और वातआदि दोषों-
से तथा स्वभावसे उपजे असाध्य हैं ॥ ३ ॥ दीनता, कठोरपना, खाज, रोमहर्ष, गीलापन, शरीरमें-
चुम्बनेकीसी पीड़ा ये लक्षण कुष्ठकी आदिमें होते हैं ॥ ४ ॥

अथ कुष्ठोंके नाम ।

कपालकं चैवमुदुम्बरञ्च तथैव दद्रूणि च मण्डलानि॥ विसर्पकं
हस्तिवलं किणञ्च गोजिह्वकं लोहितमण्डला वा॥५॥वैपादिकं
चर्मदलं तथान्यं विस्फोटकान्यथ बहुव्रणञ्च ॥ कण्डूर्विचर्ची
कथितं तथान्यद्वातुप्रभेदास्त्वचि रोगसिद्धाः ॥ ६

कपालकुष्ठ, उदुम्बरकुष्ठ, दद्रुमण्डल कुष्ठ, विसर्पकुष्ठ, हस्तिवलकुष्ठ, किणकुष्ठ, गोजिह्वक कुष्ठ,
लोहितमंडला॥ ५ ॥ वैपादिक, चर्मदल, विस्फोटक, बहुव्रण, कंडु, विचर्चिका ऐसे इसप्रकारसे
वातुओंके भेदसे उपजे हुए रोग त्वचामें प्रतीत होते हैं ॥ ६ ॥

कपाल व उदुम्बरकुष्ठलक्षण ।

कपालकामं सितवर्णकञ्च कपाल्यकं तद्गदितं विधिज्ञैः ॥
स्निग्धञ्च सर्वाङ्गगतं च कण्डूसुदुम्बरं तं प्रवदन्ति सन्तः॥ ७ ॥

कपालसरीखा सफेद वर्णवाला हो वह वैद्यजनोंने कपालककुष्ठ कहा है और चिकना हो सदा
अंगमें प्राप्त हो, खाजी हो वह उदुम्बरकुष्ठ कहाता है ॥ ७ ॥

अथ मंडलकुष्ठ तथा गजचर्मकुष्ठका लक्षण ।

दद्रूपमं यद्भवते च दद्रुर्दद्रूपमं मण्डलकं तमाहुः ॥

विसर्पकं सर्पति तद्विसर्पे तथान्यमान्त्रं गजचर्मतुल्यम्॥८॥

जो दाढ़के समान हो दादसरीखे मंडल हो वह दद्रुमंडल कुष्ठ कहाता है और जो विसर्परोगकी-
तरह शरीरमें फैले उसको विसर्पकुष्ठ कहते हैं, जिसकी हस्ती सरीखी त्वचा होजावे उसको गज-
चर्मकुष्ठ कहते हैं ॥ ८ ॥

अथ गोजिह्वक कुष्ठ लक्षण ।

यद्द्रव्यपारुष्यसर्कशश्च गोजिह्वकं स्यात्खलु भेदयोग्यम् ॥

यवासरक्तानि च मण्डलानि सकण्डुकानि व्रणसंयुतानि ॥ ९ ॥

जो रूपा हो कठोर हो कड़ा हो गौकी जिह्वके समान वर्णवाला हो वह गोजिह्वककुष्ठ कहाता है और रक्त मंडल हो कुंडलसरीखे हों व्रणसे संयुक्त हो वह लोहित मंडल कुष्ठ जानना ॥ ९ ॥

अथ विषादिका कुष्ठ लक्षण ।

ज्ञेयं तु तद्धोहितमण्डलञ्च रक्तोद्भवं तद्विषादितञ्च ॥

सवेदनार्तस्य परिस्फुटञ्च विषादिका सा कथिता विधेया १० ॥

जो रक्तसे उत्पन्न हो रक्तके आश्रय हो पीड़ायुक्त हो प्रकट हो वह विषादिका कुष्ठ कहाता है ॥ १० ॥

कोपेन रक्तानिलयोश्चजातातथैव विस्फोटकसन्निभा वा ॥ तथापरं
नाम बहुव्रणं च सूक्ष्मा च सा वै विदिता नरस्य ॥ ११ ॥ कण्डू-
र्विचर्चीभुवने प्रतीता श्वेतानि सूक्ष्माणि च पाटलानि ॥ विसर्पते
यस्य नरस्य रक्तं युवा न केनापि भवेच्च सिद्धः ॥ १२ ॥

जो रक्तवातके कुपित होनेसे उत्पन्न हो और विस्फोटकके समान हो और बहुतसे व्रण हों वह सूक्ष्मा विषादिका नामक कुष्ठ जानना ॥ ११ ॥ कंडू विचर्चिका ये संसारमें प्रसिद्ध हैं और जिसके सूक्ष्मवर्णवाले तथा सफेदवर्णवाले और पीले वर्णवाले ऐसे चिह्न दीखें, रक्त दुष्ट होके फैलाता है ऐसा तरुणरोग किसी प्रकारसे भी सिद्ध नहीं होता है ॥ १२ ॥

अथ वातादिजन्य कुष्ठका लक्षण ।

शिरीषपुष्पाणि शिरीषकाणि सन्त्यक्तभावः पुरुषश्च सूक्ष्मः ॥

तोदस्तथा वेपथुवातलिङ्गं पित्तेन शोषभ्रमदाहतृष्णाः ॥ १३ ॥

श्लेष्मोद्भवे कठिनशीतलपाण्डुरश्च नेत्रे नखेषु च वपुष्यभिलाषता

च ॥ मिश्रेण संशृतभवानि भवन्ति यस्य स्यात्सन्निपातिकभवं

बहुभिश्च लिङ्गैः ॥ १४ ॥

शिरसके पुष्पोंके समान और शिरसके समान वर्ण हो, कठोर हो, सूक्ष्म हो, व्यथा हो कंपना हो ये वातसे उपजे कुष्ठके लक्षण हैं और पित्तसे उपजे कुष्ठमें शोष हो, भ्रम हो दाह हो तृष्णा हो ॥ १३ ॥ कफसे उपजा कुष्ठ कठिन, शीतल होता है और नेत्र, नख, शरीर ये पीले होजाते हैं इसमें खाज करनेकी इच्छा रहे और सब मिलेहुए दोषोंसे मिलेहुए लक्षण होते हैं, सन्निपातसे उपजे कुष्ठमें बहुतसे लक्षण मिलते हैं ॥ १४ ॥

पथ्य है, पित्तसे उपजेमें शीतल उपचार करना श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ यह कुष्ठरोग कष्टसाध्य कहा है और सन्निपातसे उपजा असाध्य होता है, पहले रोगके कारणको जानके पीछे कर्म करनेका आचरण करे ॥ २१ ॥

पक्षान्पक्षाञ्छोधनं पाचनञ्च मासान्मासान्कारयेद्रेचनञ्च ॥
मासान्कुष्ठे शोधनाय प्रकर्षात्षष्ठे षष्ठ मास्यसृग्मोक्षणञ्च
॥ २२ ॥ वासापटोलफलनीलवणं वचाञ्च निम्बत्वचं कथि-
तमाशु पिबेत्कषायम् ॥ कुष्ठे करोति वमनं मदनान्विते च
पथ्याकषायवमने मदनान्वितेषु ॥ २३ ॥ फलत्रिकं त्रिवृद्धन्ती
भिषग्वर विरेचकम् ॥ काथो वचोष्णतोयेन पाने स्याद्विषगु-
त्तमः ॥ २४ ॥ श्वासप्रश्वासयोर्वेध्या शिरा शिरसि चेद्बहिः ॥ ततः
प्रयोजनीयञ्च काथस्नेहस्य भोजनम् ॥ २५ ॥

पक्षपक्षको प्रति शोधन और पाचनकर्म करे । महीना २ को प्रति जुलाव दिलानी चाहिये और कुष्ठरोगमें छठे २ महीनेके प्रति रक्तको निकसावे ॥ २२ ॥ वांसा, परवल, मालकांगनी, नमक, वच, नींबकी त्वचा, इनका काथ बना मैनफल मिला कुष्ठमें पीनेसे वमन होता है और पंचवृक्षोंका काथ बना मैनफल मिला वमनके वास्ते देना चाहिये ॥ २३ ॥ हे वैद्य ! त्रिफला, निशोत, इनसे जुलाव दिलानी श्रेष्ठ है और वचका काथ बना गरम २ जलके संग पीना श्रेष्ठ है ॥ २४ ॥ कुष्ठमें जो ज्यादा श्वास होवे तो शिरमें रहनेवाली बाहिरकी नस वीधनी चाहिये, पीछे क्वाथ और स्नेह अर्थात् घृत आदिक भोजन करवाना चाहिये ॥ २५ ॥

अथ शुण्ठ्यादिकाथ ।

शुण्ठीकणाखदिरपाटलिकापटोलीमञ्जिष्ठाकंटविषविल्वयवानि-
कानाम् ॥ वासाफलत्रिकजलेन कषायसिद्धः पानान्निहन्ति मनु-
जस्य च कुष्ठदोषम् ॥ २६ ॥ वासाविडङ्गपिचुमन्दपटोलपाठा-
शुण्ठीसुदारुतरुपञ्चकमूलपथ्याः ॥ काथो निहन्ति च मरुत्प्र-
भवं सुकुष्ठं त्रिःसतकेऽहनि महौषधमेव योज्यम् ॥ २७ ॥

सूठ, पीपल, खैर, पाडलवृक्ष, परवल, मँजीठ, लघुगोखरू, अतीश, वेलगिरी, अंजवायन, वांसा, त्रिफला, इनका काथ बना पीनेसे मनुष्यका कुष्ठरोग दूर होता है ॥ २६ ॥ वांसा, वायविडंग, नींब, परवल, पाठा, सूठ, देवदार, बड़ आदि पंचवृक्ष, लाख, मूली,

हरडे इनके काथसे वातसे उपजा कुष्ठका नाश होता है, इसीसे दिनतक यह महान् औषध पीना चाहिये ॥ २७ ॥

गुडूच्यादि काथ ।

नित्यं छिन्नोद्भवाचूर्णं तस्याः काथसमन्वितम् ॥ पीतं जीर्णं सघृ-
तञ्च पीतञ्च पाष्टिकं पयः ॥ २८ ॥ हन्ति कुष्ठानि सर्वाणि सप्त-
धातुगतानि च ॥ २९ ॥

गिलोयके काथके संग गिलोयके चूर्णको नित्य पीये । जर जावे तब घृत सहित
सांठि चावल्लोके मांडको पीये ॥ २८ ॥ यह सातों धातुओंमें प्राप्त हुए सब कुष्ठोंको
नाशता है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठरोगमें लेपविधि ।

रसेन्द्रकाश्मर्यवनञ्च कुष्ठं निशाद्वयं काञ्जिकुष्ठमेतत् ॥ लेपे
प्रशस्तं विनिहन्ति कुष्ठं विचर्चिकां चापि विसर्पदोषम् ॥ ३० ॥
पिष्टानि तत्र मधुकाञ्जिकमूत्रपिष्टलेपेन कुष्ठमपि दुष्टविचर्चि-
काञ्च ॥ ३१ ॥ विसर्पदोषे प्रोक्तानि धावनानि च कारयेत् ॥
सौवीरकरसेनापि धावनं त्रिफलाम्बुना ॥ ३२ ॥ वातिके चैव
कुष्ठे च प्रशस्तं कथितं बुधैः ॥ निम्बपत्रकषाये च यष्टीमधुक-
कल्कितम् ॥ ३३ ॥ दुग्धेन शीतलेनापि विदार्याः काथके-
न वा ॥ हन्ति कुष्ठं महाघोरं धावनं न प्रशस्यते ॥ ३४ ॥ अग्नि-
मन्थपटोलानि मातुलुङ्गदलानि च ॥ शटीपर्पटकः काथो धावनं
श्लेष्मरोगिणाम् ॥ ३५ ॥ विपादिकां नवनीतेन क्षालयित्वा
विदांवर ॥ स्वेदयित्वा कर्दुग्वैश्च मधुतैलेन लेपनम् ॥ ३६ ॥

खंभारी, सिंगरफ, नागरमोथा, कूठ, दोनों हलदी, कांजीमें शोधा हुआ लोहा, इनको
पीस कुष्ठपै लेप करना श्रेष्ठ कहा है और विचर्चिका, विसर्पदोष, इनका नाश होता है ॥ ३० ॥
सीसाकी रजको शहद, कांजी, गोमूत्र इनमें पीस लेप करनेसे कुष्ठ, दुष्ट विचर्चिका इनका नाश
होता है ॥ ३१ ॥ विसर्प दोषमें कहेहुए धोवनेके कर्म यहां करने चाहिये और कांजी, त्रिफलाका
रस इनसे धोना श्रेष्ठ है ॥ ३२ ॥ यह इलाज वैद्यजनोंने वातसे उपजे, कुष्ठमें श्रेष्ठ कहा है
और नींबूके पत्तोंके काथमें मुलहटीका कल्क बना ॥ ३३ ॥ शीतल दूधमें मिला अथवा विदा-
रीकंदके काथमें मिला उससे धोवनेसे महाघोर कुष्ठका नाश होता है ॥ ३४ ॥ अरुणी, पर-

बल, विजौराके पत्ते, कचूर, पित्तपापडा इनका काथ बना कफसे उपजे कुष्ठको धोना श्रेष्ठ है ॥ ३९ ॥ विपादिका कुष्ठको नौनी घृतसे संयुक्त कर तहां आकके दूधसे पसीना दिया शहद और तैलका लेप करे ॥ ३६ ॥

अथ खदिरआदि काथ ।

खदिरनिम्बकदम्बकमर्जुनसथ च पाटलिका च शिरीषकम् ॥
कुटजकिंशुकवासुसमोरटो वटकुटं नटपिप्पलिपीलुकम् ॥ ३७ ॥
धवमुदुम्बरवेतसमेकतः कथितपानविधानघृतेन तु ॥ सकल-
कुष्ठविनाशनकारकं भवति चेन्दुसमानवपुर्नरः ॥ ३८ ॥

खैर, नींब, कदंब, अर्जुनवृक्ष, पाडलवृक्ष, शिरस, कूडाकी छाल, टेशू, बांसा, मोर अर्थात् खैरका भेद, वड, टेंदूवृक्ष, पीछवृक्ष ॥ ३७ ॥ धव, गूलर, वैत, इनको एक जग-हकर काथ बना घृत मिला पीनेसे संपूर्ण कुष्ठोंका नाश होता है और चंद्रमाके समान सुन्दर शरीर होजाता है ॥ ३८ ॥

अथ आरग्वधआदिकाथ ।

आरग्वधाधातकिकर्णिकारधवार्जुनैः सज्जककिंशुकानाम् ॥
कदम्बनिम्बाकुटजाटरूपा मूर्वा च युक्ता खदिरेण चैषा ॥
॥ ३९ ॥ मूलानि चैषामुपहृत्य सम्यगष्टावशेषे कथितः कषायः ॥
घृतेन तुल्यं प्रतिमानवस्य निहन्ति सर्वाणि शरीरजानि ॥
॥ ४० ॥ कुष्ठानि सर्वाणि विसर्पदद्रुविचर्चिका हन्ति नरस्य
शीघ्रम् ॥ ४१ ॥

अमलतास, धाय, कनेर, धववृक्ष, अर्जुनवृक्ष, रालवृक्ष, टेशू, कदंब, नींब, कूडाकी छाल, बांसा, खैर, मूर्वा ॥ ३९ ॥ इनकी जडको ले काथ बना लेवे पीछे अष्टमांश बाकी रहे तब उतार उसमें समान भाग घृत मिला खानेसे मनुष्यके शरीरके सब प्रकारके कुष्ठोंका नाश होता है ॥ ४० ॥ सबप्रकारके कुष्ठ, विसर्प रोग, दाद, विचर्चिका इनका शीघ्र ही नाश होता है ॥ ४१ ॥

अथ खदिरादिघृतपानक ।

खदिरकदरमूर्वावालकं कर्णिकारः कुटजसपरिभद्रारग्वधाभिश्च
पिष्टाः ॥ कथितमिति समांशं पीतमाज्येन युक्तं जयति सकल-
कुष्ठान् वै विसर्पस्य दोषान् ॥ ४२ ॥

पयोदलाक्षारसमेव वासात्रायन्तिका बिल्वककुष्ठयष्टिः ॥४८॥
 संचूर्णितं क्षीरदधिसमेतं घृतं विषकं परिषेचने च ॥ हितञ्च कुष्ठ-
 क्षतदद्गुरक्तं पासाविचर्चीर्विनिहन्ति कण्डूम् ॥ ४९ ॥

नीव, परवल, चिरायता, जावित्री, इंद्रायण, सांठी, नागरमोथा, लाखका रस, वासा, त्रायमाण,
 बिल्व, कूठ, मुलहठी ॥ ४८ ॥ इनका चूर्ण बना दही और दूध मिलावे उसमें घृत मिला सिद्ध
 करे पीछे इस घृतसे सेक करनेसे कुष्ठक्षत, दद्गुरक्त, पासा, विचर्चिका कण्डू इनका नाश
 होता है ॥ ४९ ॥

अथ पांडुरकुष्ठकी चिकित्सा ।

पित्तञ्चैव गदं भूत्वा वातेनैव समीरितम् ॥ सरक्तञ्च प्रकुपितं कुरुते
 पाण्डुरच्छविम् ॥ ५० ॥ स्तब्धचित्तं विरूपञ्च शृणु तस्य च
 लक्षणम् ॥ असाध्यं कुष्ठं साध्यं वा विज्ञेयं तद्विषग्वरैः ॥५१॥
 ईषद्रक्तं भवेत् पाण्डु सन्निपातेन जायते ॥ असाध्यं तच्च
 सर्वाङ्गचित्रं स्निग्धं तदेव तु ॥ ५२ ॥ पीतच्छविं पाण्डुररूक्षमेव
 उपागतं साध्यतमं प्रतीतम् ॥ संपाचनं शोधनमेव शस्तं विरे-
 चनं रक्तविमोक्षणञ्च ॥ ५३ ॥ वासागुडूचित्रिफलाकरञ्जपटोल-
 निम्बार्जुनवेतसानाम् ॥ कृष्णासमङ्गासहितं च कल्कं पाने हितं
 चित्रकमण्डले च ॥५४॥ खदिरवासकनिम्बपटोलकैर्धवयवास-
 कमेव फलत्रिकैः ॥ सकलकुष्ठविसर्पमण्डलं विजयते मनुजस्य
 च पाण्डुरम् ॥५५॥ पाठाविडङ्गमगधासुरदारुचित्रं दद्रुधरात्रि-
 युगलं च तथा समङ्गा ॥ कुष्ठं वचामधुकसैन्धवकाञ्जिकेन मूत्रेण
 पिष्टमथ रक्तरसेन वापि ॥ ५६ ॥ प्रलेपने चित्रमथैव सिद्धं वि-
 नाशमायाति च कण्डुकुष्ठम् ॥ विचर्चिकां नाशयते च कण्डू-
 विस्फोटमाशु प्रतिसर्पणानि ॥५७॥ भृङ्गराजो हरिद्रा च दूर्वा
 जाती विडङ्गकाः ॥ कृष्णास्तिलाश्चित्रकाणि तथैव हरिचन्दनम्
 ॥५८॥ मूत्रेण पेपितं तत्तु लेपनं चित्रकुष्ठिनि ॥ हन्ति दद्रूणि
 सर्वाणि कुष्ठं दद्रूविचर्चिकाः ॥ ५९ ॥ न विदाहीनि चाम्लानि

वातलानि तथैव च ॥ ज्वरे श्लेष्मानि पृथ्यानि तानि चात्र
प्रयोजयेत् ॥ व्रणेषु कुष्ठराजीषु हितमेवोपचारिणाम् ॥ ६० ॥
इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कुष्ठचिकित्सानामै-
कोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ इति कायतन्त्रं समाप्तम् ॥

वातसे प्रेरण हुआ चित्त रोगरूप होके रक्तके संग कुपित हो शरीरको पांडुर अर्थात् कुछ पीला सहित समेद वर्णवाला करदेता है ॥ ५० ॥ चित्त दुखी रहे विरूप होजावे ऐसे लक्ष-
णोंको मुनो, वह कुछ असाध्य और नाध्य दो प्रकारका होता है ॥ ५१ ॥ जो कुछ लाल वर्णमें युक्त पीला वर्णवाला कुछ हो वह सन्निपातसे उपजा जानना वह असाध्य होता है उसमें सब अंगमें चिकने और चितले होते हैं ॥ ५२ ॥ जो रूखा तथा पीला वर्ण-
वाला पांडुरकुष्ठ हो वह नाध्य होता है उसमें पाचन और शोषन करना तथा जुलाव दिलानी और फस्त खुलानी श्रेष्ठ है ॥ ५३ ॥ वांसा, शिलोय, त्रिकला, करंजुवा, परवल, नींव, अर्जुनवृक्ष, वेत, पीपल, मँजीठ, इनका कल्क बना चित्रकमंडल कुष्ठमें पीना हित है ॥ ५४ ॥ खैर, वांसा, नींव, परवल, धव, जवांसा, त्रिफला, इनका कल्क बना पीनेसे सबप्रकारके कुष्ठ, चित्तर्ष, मंडल, पांडुरकुष्ठ, इनका नाश होता है ॥ ५५ ॥ पाठा, वायविडंग, पीपल, देवदार, चीता, पुआड, दोनों हलदी, मँजीठ, कूठ, वच, मुरहट्टी, सेंधानमक, इनको कांजीमें अथवा गोमूत्रमें अथवा रुविरके रसमें पीसि ॥ ५६ ॥ लेप करनेसे चित्रकुष्ठका नाश होता है और खाजिवाला कुष्ठ, विचर्चिका, कंझ, विस्फोटक, विसर्प इनका नाश होता है ॥ ५७ ॥ भंगरा, हलदी, दूब, जीरा, वायविडंग, काले तिल, चीता, लाल चंदन ॥ ५८ ॥ इनको गोमूत्रमें पीस लेप करनेसे चित्रकुष्ठका नाश होता है और सबप्रकारके दाद, दद्रुकुष्ठ, विचर्चिका, विस्फोटक और विसर्प इनका नाश होता है ॥ ५९ ॥ कुष्ठरोगमें विदाही, खट्टा, वातवाला ऐसा भोजन नहीं करना चाहिये, और ज्वरमें कहेंदुए जो पथ्य हैं वे यहाँ करने चाहिये और व्रणोंमें कुष्ठोंमें, यही उपचार करना श्रेष्ठ है ६० ॥

इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने कुष्ठचिकित्सानामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः ४०.

अथ शालाक्य तंत्र ।

अथ शिरोरोगचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अतिभारान्तियोगेन अतितीक्ष्णोष्णभावतः ॥

विनाभ्यङ्गेन वा शैत्यात्पित्तेनातिविशेषतः ॥१॥ किमिदोषेण
 वा पुंसां जायते च शिरोगदः॥वातरक्तकफात्पित्तात्पित्तेनापि
 विशेषतः॥२॥सन्निपातेन विज्ञेयाः क्रिमिजाश्च तथापरे॥अर्द्ध-
 शीर्षविकारश्च दिनवृद्धिकरस्तथा ॥ ३ ॥ वातेन रात्रौ भवते
 व्यथा च अथातुरस्य व्यथते शिरश्च ॥ सौख्यं लभेत्स्वेदन-
 मर्दनेन वातेन सा विड्बृषणे रुजा वा॥४॥यस्योष्णमङ्गं भवते
 शिरस्यं घर्मे सतापे च दिने च रात्रौ ॥ स धूमतो वा कटुको
 बलाशे शीतात्सुखं वा निशि स्वास्थ्यमेति ॥५॥ शीतात्सुख
 वा प्रथमश्च तृष्णा सतीव्रपित्ताद्भवते रुजा च ॥ सूर्योदये
 वा भवते दिनान्ते भ्रमश्च तृष्णा भवते सुतीव्रा॥६॥सजाड्य-
 मुण्डं भवते च शीतं स्वेदेन युक्तं युगलश्च नूनम् ॥ सुदृश्यनेत्रं
 नयते च तद्वा कफे यदीष्टः शिरसो विकारः॥७॥रक्तेन नासा-
 पुटकेऽपि जालं निरेति शेषा वदने च तृष्णा ॥ रक्ताक्षमन्या
 जठरे च यस्य तमाहू रक्तोद्भवशीर्षरोगम् ॥८॥ मध्यं प्रदूष्य
 प्रतनोति पीता नासापरिस्राविसविड्जलश्च॥सजाड्यमोहश्व-
 सनं च यस्य त्रिदोषरोधाद्भवते शिरोऽर्तिः॥९॥ यस्यातिमात्रं
 शिरसि प्रतोदो विभज्यमानेऽपि च मस्तकान्ते ॥घ्राणे परि-
 स्रावि सरक्तपूयं क्रिमिप्रसूता च शिरोव्यथा च ॥१०॥क्रोधा-
 च्छोकाद्भवेच्चान्या व्यायामेऽतिश्रमेषु च ॥ सा वातेन शिरः-
 पीडा सरुजे च नृणामपि ॥ ११ ॥ अतिलेखनपाठेन तथा
 सूक्ष्माग्निरीक्षणात्॥ दूरदृष्टेक्षणेनापि वेदना वातरक्तजा ॥१२॥
 नासिकाद्धे व्यथा तस्य व्यथाभ्रयुगले भवेत् ॥ नीलं कृष्णश्च
 पश्येत वेदना मस्तके भवेत् ॥ १३ ॥ न रक्तेन विना पित्तं
 रक्तं पित्तेन चाल्यते ॥ न पित्तेन शिरोऽर्तिः स्यात्पित्तं वातेन
 चाल्यते ॥ १४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अतिमारके अत्यन्त योगसे अतितीक्ष्ण भावसे तैलादिकी मालिस करे बिना शीतलता लगनेसे अत्यन्त पित्तसे ॥ १ ॥ अथवा क्रिमि दोषसे पुरुषोंके शिरोरोग होता है और वातरक्त, कफपित्त, पित्त ॥ २ ॥ अथवा सन्निपात, इनसे उत्पन्न होनेवाले शिरोरोग क्रिमिज शिरोरोग ऐसे होते हैं, और अवशिरका विकार तथा दिनके चढ़नेके समय शिरोरोग होता है ॥ ३ ॥ वातदोषसे उपजे शिरोरोगमें रात्रिमें पीडा हो, और पीड़ित हुएका शिर दुखे और पसीना दिलाने तथा मर्दन करनेसे सुख होवे । विष्टा उतरनेके समय अथवा वृषणस्थानमें दुःखहो वह वातसे उपजी पीडा जाननी ॥ ४ ॥ जिसका शिर गर्म रहे और वामसे संतापमें दिनमें अथवा रात्रिमें धुवांसे शिरमें पीडाहो, कड़ कफ गिरे वह पित्तसे उपजा शिरोरोग जानना जिसमें रात्रिमें सुख होता है ॥ ५ ॥ और शीतलतासे सुख हो, तृषा रुगे, तीव्र पीडाहो, वह पित्तसे उपजी पीडा जाननी और जो सूर्योदयमें अथवा दिनके अंतमें भ्रमहो तृषाहो पीडाहो ॥ ६ ॥ शिरमें जड़ताहो शीतलहो पसीनेसे युक्त दोनों नेत्रहों और सुंदर नेत्रहों वह कफसे उपजा शिरोविकार जानना ॥ ७ ॥ और रक्तसे उपजे शिरके विकारसे नासिकासे रक्त शिरे, मुखमें तृषा रहे, और जिसके कंधा, कंधाके समीप मन्यास्थान, पैर, ये लाल हों उसको कफसे उपजा शिरोरोग कहते हैं ॥ ८ ॥ मध्यमें दूषित हो, पीली नासिका होजावे, दुर्गन्धि सहित जल शिरे, जड़ता हो, मोहहो, श्वासहो वह त्रिदोषसे उपजी शिरकी पीडा जाननी ॥ ९ ॥ जिसके शिरमें अत्यन्त व्यथा हो और मस्तक फटाजावे नासिकासे रक्त और राव शिरे वह क्रिमियोंसे उपजी शिरकी पीडा जाननी ॥ १० ॥ और क्रोध, शोक, कसरत, अत्यन्त परिश्रम इनसे उपजी हुई पीडा वातके कोपसे होती है वहां व्यथा होती है ॥ ११ ॥ अत्यन्त लिखना, पढ़ना, सूक्ष्म देखना, दूरसे दृष्टिदेके देखना इनसे उपजी पीडा वात रक्तके कोपसे जाननी ॥ १२ ॥ उसकी आधी नासिकामें और दोनों भ्रुकुटियोंके आधे भागमें पीडा हो, नीला और काला वर्ण सरीखा दीखे, मस्तकमें पीडाहो ॥ १३ ॥ रक्तके बिना पित्त नहीं होती है और रक्त, पित्तसे चलायमान होता है और पित्तसे बिना शिरमें पीडा नहीं होती है, पित्त वातसे चलायमान होता है ॥ १४ ॥

तस्माद्वक्ष्याम्युपचारं शृणु भेषजलक्षणम् ॥ स्वेदः प्रलेपनं नस्यं पानाभ्यङ्गश्च मर्दनम् ॥ १५ ॥ स्वेदनं वातकफजे चाभिघाते तथा पुनः ॥ पित्तजे रक्तजे वापि न कुर्यात्स्वेदनं तयोः ॥ १६ ॥ रक्तजे च शिरा वेध्या पित्तजे वापि कुत्रचित् ॥ कोकिलाख्या च तर्कारि कटुका निम्बपत्रकैः ॥ १७ ॥ शोभाञ्जनकपत्रैस्तु क्वाथं वा तेन स्वेदयेत् ॥ अमीषाश्च प्रलेपेन सौख्यं चास्य प्रजायते ॥ १८ ॥ संशीतपरिषेकैश्च यष्टीमधुकचन्दनैः ॥ केसरै-

मातुलुङ्गैश्च पित्तजे शीतलेपनम् ॥ १९ ॥ कदम्बार्जुनसिन्धुश्च
लेपनार्थे भिषग्वर ॥ गुडेन नागरा वापि पथ्यां वापि गुडेन
वा ॥ २० ॥ गुडशोभाञ्जनरसैर्नस्ययोगात्पृथक्पृथक् ॥ नस्येन
वस्तसूत्रेण शिरोऽर्तिश्चोपशाम्यति ॥ २१ ॥ मरिचं पथ्या कटु-
फलं सूत्रेणोष्णोदकेन वा ॥ नस्यं कफोद्भवे घोरे शिरोरोगे
भिषग्वर ॥ २२ ॥ वचामधुकसारं वा मूलं वा गिरिकर्णिका ॥
नस्यप्रयोगे विहितं सन्निपाते शिरोगदे ॥ २३ ॥ वन्ध्याकर्कट-
कीमूलं पिष्टसूष्णेन वारिणा ॥ मितं नस्ये प्रयुञ्जीत क्रिमिजे च
शिरोगदे ॥ २४ ॥

इसवास्ते इसके उपचारको कहते हैं औषधोंको सुनो-पसीना दिवाना, लेप करना, नस्य
दिवानी, पान कराना, मालिस मर्दन कराना ॥ १९ ॥ वात कफसे उपजे तथा चोट
आदिसे उपजे शिरोरोगमें पसीना दिवावे और पित्तसे तथा रक्तसे उपजेमें पसीना नहीं
दिवावे ॥ १६ ॥ रक्तसे उपजे शिरोरोगमें फस्त खुलावे और कहींक पित्तसे उपजेमेंभी शिरावेध
श्रेष्ठ है और कंकोल, अरणी, कुटकी, नीबूके पत्ते ॥ १७ ॥ सहिजनाके पत्तेका काथ बना
उससे पसीना दिवावे अथवा इनके लेप करनेसे सुख होता है ॥ १८ ॥ पित्तके शिरोरोगमें
मुलहठी, महुआवृक्ष, चंदन, इनके शीतल काथसे परिषेक करे और विजौरेकी केशरसे
शीतल २ लेप करे ॥ १९ ॥ और हे उत्तमवैद्य ! कदंब, अर्जुनवृक्ष, सेंधानमक, इनका लेप
करना श्रेष्ठ है और गुडके संग सोंठ, तथा हरडैका लेप श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ और गुड सहिज-
नेका रस इनकी पृथक् २ नस्य देनी श्रेष्ठ है और बकरेके मूत्रकी नस्य देनेसे शिरकी पीडाका
नाश होता है ॥ २१ ॥ और कफसे उपजे घोर शिरोरोगमें मिर्च, हरडै, कायफल, इनको
पीस गरम २ गोमूत्रके संग नस्य देना श्रेष्ठ है ॥ २२ ॥ वच, महुआ, मूली, अमलतास,
इनको नस्यमें देनेसे सन्निपातसे उपजा शिरोरोग नाश होता है ॥ २३ ॥ बांझ ककोडीकी
जड़को पीस गरम जलके संग नस्य देनेसे कृमिसे उपजा शिरोरोग नाश होता है ॥ २४ ॥

अथ षड्बिन्दुनामकतल ।

शृङ्गराजरसं चैकं द्विभागं काञ्जिकेन च ॥ शोभाञ्जनं भागत्रयं
सर्वं तत्र विनिक्षिपेत् ॥ २५ ॥ सौवीरकरसं पञ्च षड्भागं तुम्बि-
कारसम् ॥ शुण्ठी सैन्धवमल्लीका पटोलं वासकं शिवा ॥ २६ ॥
अभया सुरसा चैव तैलञ्च चतुरंशकम् ॥ पाचितं तत् नस्येन

योजयेच्च पङ्क्तिन्दुकम् ॥२७॥ तथैव मस्तकाभ्यङ्गे हितं स्यात्
कर्णपूरके ॥ हितं वातादिजे रोगे शिरोऽर्त्तौ क्रिमिजे तथा ॥२८॥

भांगरेका रस एक भाग, कांजीदो भाग, हिंसजना ३ भाग ॥२९॥ वेरोंका रस पांच भाग तुम्ब्रीका रस ६ भाग इनको एक जगह मिला सोंठ, सेंधानमक, अमली, परवल, वांसा, हलदी ॥२६॥ हरडै, तुलसी इनको मिला पीछे इन सब रसोंसे चतुर्थांश तैल मिला उसको पकाके उस तैलकी छह बूंद नस्यमें देनेसे ॥ २७ ॥ तथा मस्तकपर लेप करनेसे अथवा कानमें पूरनेसे वातादिक शिरोग तथा क्रिमियोंसे उपजा शिरके रोगका नाश होता है ॥ २८ ॥

अथ विन्दुजयतैल ।

करञ्जबीजस्य विभीतकानां पुटेन तैलं परिक्षुत्य धीमन् ॥

विन्दुत्रयं नस्यविधौ प्रयोज्यं जघान कुष्ठं क्रिमिजं विकारम् ॥२९॥

करंजुवाके बीज, बहेड़ा, इनको पुटपाकमें धर तैल निकास उसकी तीन बूंद नस्यमें देवे यह तैल कुष्ठ, क्रिमिसे उपजा विकार इनका नाश करता है ॥ २९ ॥

अथ कुष्ठादिघृत ।

कुष्ठं च यष्टीमधुकं च नीत्वा पटोलजातीसुरसारसञ्च ॥ विपा-
चितं तन्नवनीतकञ्च घृतेन नूनं च सरक्तपित्ते ॥३०॥ सशर्क-
रायुक्तमिदं दिवा च गव्यं प्रवृद्धप्रभवे च दोषे ॥ ३१ ॥

कुष्ठ, मुलहठी, परवल, जावित्री, तुलसी रस, नौनी घृत इन्हेंको पकालेवे पीछे इस घृतकी नस्य रक्तपित्तसे उपजे शिरके रोगमें देवे ॥३०॥ और दिनके बढ़नेके समय जो दर्द बढ़ाता है ऐसे रोगमें इस घृतमें खांड मिलाके नस्य देना हित है ॥ ३१ ॥

अथ लाक्षादितैल ।

लाक्षारसं चन्दनयष्टिकानां पटोलधात्रीफलशर्कराणाम् ॥ दधि
सदुग्धं नवनीतकञ्च विपाचिते नस्यविधौ प्रयुज्यते ॥ ३२ ॥

भूदोषशङ्खक्षतजक्षये वा दिनादिवृद्ध्या प्रभवेऽपि दोषे ॥३३॥

लाखका रस, चंदन, मुलहठी, परवल, आंवला, खांड, दही, दूध, नौनीघृत इनको पका नस्य देनेसे ॥३२॥ भूदोष कनपटीस्थानका दर्द चोटसे तथा क्षयरोगसे उपजा तथा दिनवृद्धिके अनु-सार शिरोग इनका नाश होता है ॥ ३३ ॥

अथ कुङ्कुमादिघृत ।

कुङ्कुमं यष्टीमधुकं कुष्ठं च शर्करासमम् ॥ पक्कञ्च नवनीतेन घृतं

नस्ये प्रयोजयेत् ॥३४॥ नश्यन्ति पित्तजा रोगा दिनवृद्धयो-
पवर्जनात् ॥ अर्द्धशीर्षविकारश्च प्रशमं याति सत्वरम् ॥३५॥
इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने शिरोरोगचिकित्सा
नाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

केशर, मुलहठी, कूट, खांड, नौनीघृत इनको समान भाग ले पकाके नस्य देनेसे ॥ ३४ ॥
पित्तसे उपजे तथा दिनवृद्धि, शिरोरोग, अधसिरा इनका शीघ्र ही नाश होता है ॥३५॥ इति
वेरोनिवासिबुधशिवसद्वायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने
शिरोरोगचिकित्सानाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः ४१.



अथ भ्रूदोषलक्षण ।

आत्रेय उवाच॥अतिपठनशीलस्य सूक्ष्मवस्त्रेक्षणेन वा॥दूरालो-
केन चोष्णेन भ्रूदोषश्चोपजायते ॥ १ ॥ रक्तवाताश्रितो दोषः
पित्तेन सह मूर्च्छितः ॥ अव्यथा च प्रभवति नासावंशोद्भवा
शिरा ॥ २ ॥ व्यथते चोष्णवेलासु शीतेन स्याद्विशेषतः ॥
नेत्रमध्ये नीलपीतमण्डालानि च पश्यति ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अत्यंत पढ़नेसे सूक्ष्म वस्त्र आदिके देखनेसे दूरसे देखनेसे गरम
वस्तुके सेवनेसे भ्रूदोष रोग होजाता है ॥१॥ रक्त वातके आश्रयहुआ दोष पित्तके संग मूर्च्छित
भ्रुकुटियोंमें पीड़ाकर देता है और नासिकाकी डंडीपर होनेवाली नस ॥ २ ॥ पीड़ित होती है
गरमीके समय पीड़ा होती है और ठंडकमें ज्यादा पीड़ा होती है और नेत्रोंके मध्यमें नीले और
पीले मंडल दीखे ॥ ३ ॥

भ्रूदोषकी चिकित्सा ।

तस्यादौ च क्रियां कुर्याच्छिरा वेध्या प्रयत्नतः॥पूर्वोक्तं स्वेदनं
काय्य नस्ये षड्बिन्दुकादिकम् ॥ ४ ॥ देवदारु रजनी घनं
शटी पुष्करं कुटजबीजमागधी ॥ कुष्ठरोध्रचविकायवासकं
क्वाथितं च पुनरेव विस्नुतम् ॥ ५ ॥ तत्र गुग्गुलमपि क्षिपेत्पुनः

शुण्ठिसैन्धवफलत्रिकं हितम् ॥ चूर्णितं दधिपयोविमिश्रितं
पाचितं च नवनीतक च तत् ॥६॥ सिद्धमेव विदधीत शीतलं
शर्करायुतमिदं च नस्यदम् ॥ नस्यकर्म शिरसो रुजापहं भूल-
लाटभुजशंखमूलकम् ॥ ७ ॥ शर्पिरोगमपि चार्द्धशीर्षकं तो-
दने च विहिते न केवलम् ॥ कर्णरोगमपि वारयत्यपितैलमाशु
किल सायितं सुत ॥८॥ ताम्बूलपत्रस्य रसं विडङ्गं सिन्धूद्भवं
हिड्डुगुडेन युक्तम् ॥ जलेन पिष्टं विहितं च नस्यं भ्रूशंखदोषांश्च
किमीत्रिहन्ति ॥९॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने
भ्रूदोषचिकित्सानामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

इस रोगकी आदिमें यत्नसे सिरोवेध कर्म करे और पहले कहाहुआ पसीनेका कर्म
करवावे और नस्यमें पड्त्रिदुक आदि तैलको देवे ॥ ४ ॥ और देवदार, हलदी, नागर-
मोथा, कचूर, पोहकरमूल, कूड़ाका बीज, पीपल, कूठ, लोव, चव्य, जवासा इनका काथ-
वना उसको छान ॥ ५ ॥ पीछे उसमें गूगल, सूठ, सेंधानमक, त्रिफला इनका चूर्ण मिला दही
दूध ये मिला और नौनीवृत मिला ॥ ६ ॥ पीछे इसको पकावे । सिद्ध होजावे तब शीतल कर
खांड मिला इसकी नस्य देनेसे शिरके रोगका नाश और कुट्टि, मस्तक, भुजा, कनपटीका
स्थान ॥ ७ ॥ शिरोरोग, अधशिरका रोग इन और सब रोगोंकी पीडाका नाश होता है और
इसीप्रकारसे सिद्ध किये हुए तेलसे कानके रोगकी पीडा दूर होती है और शिरके रोग हर-
नेमें अति श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥ नागर पानका रस, वायविडंग, सेंधानमक, हींग, गुड़
इनको जलमें पीस नस्य देनेसे भ्रुकुटी, कनपटी इनकी पीडा, किमियोंसे उपजी शिरकी
पीडा, इनका नाश होता है ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां प्रदोष-
चिकित्सानाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ४२.

अथ नासारोग लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ नासारोगो भवद्धीमन् किमिजो दोषजः पुनः ॥
रक्तजश्च भिषक्छ्रेष्ठ लक्षणञ्च शृणुष्व मे ॥१॥ वाताच्छिरोऽर्तिः

शोफश्च सदोषे वातपैत्तिकम् ॥ कफजे सघनं शीतं क्रिमिजेऽसृग्-
पवाहनम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--हे बुद्धिमान् वैद्य ! नासिकाका रोग क्रिमिज और दोषज तथा रक्तज होता है उनके लक्षणोंको सुनो ॥ १ ॥ वातसे उपजेमें शिरमें पीड़ा होती है और वातपित्तसे उपजेमें शोजा होता है, कफके नासा रोगमें कड़ाई और ठंढकपना होती है, क्रिमिसे उपजे नासारोगमें रुधिर बहता है ॥ २ ॥

अथ नासारोगचिकित्सा ।

नासापाके गुडशुण्ठ्या वातिके नस्यमेव च ॥ शर्कराघृतयष्ट्या
च पैत्तिके नस्यमेव च ॥ ३ ॥ श्लेष्मिके सुरसावासारसेन विहि-
तश्च तत् ॥ विडङ्गहिङ्गुमगधाः क्रिमिदोषे हिता मताः ॥ ४ ॥
रक्तजेऽसृग्वरेकश्च शिरोरोगस्योपक्रमे ॥ ५ ॥ इत्यात्रेयभा-
षिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने नासारोगचिकित्सानाम द्विच-
त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

वातके नासापाक रोगमें गुड, सूंठ इनकी नस्य देवे, पित्तके रोगमें खांड, घृत, सुल-
हटी, इनकी नस्य देनी श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ कफके नासारोगमें तुलसी, वांसा, इनके
रसकी नस्य देनी श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ क्रिमिदोषके रोगमें वायविंडग, होंग पीपली,
इनकी नस्य देनी श्रेष्ठ है, रक्तसे उपजे नासारोगमें रुधिरकी फस्त खुलावे, शिरोरोगके अनु-
सार कर्म करे ॥ ५ ॥ इति वेरीनिवा० हारीतसंहिताभाषाटीकायां नासारोगचिकित्सा-
नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ४३.



अथ इन्द्रज्वररोगका लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ केशघ्नस्य चिकित्सां तु शृणु हारीत साम्प्र-
तम् ॥ रूक्षं सपाण्डुरं वातात्पित्ताद्रक्तं सदाहकम् ॥ १ ॥ कफा-
न्वितं भवेत्सिग्धं रक्तात् पाकं व्रजन्ति तत् ॥ सन्निपातेन सदृशं
जायते सर्वलक्षणम् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे हारीत ! अब इंद्रलुत अर्थात् बालोंका नाश होता है उसकी चिकित्सा कहते हैं, वातदोषसे रूखा और पांडुरवर्ण होजाता है पित्तसे रक्तवर्ण और दाह होती है ॥ १ ॥ कफसे चिकना वर्ण होता है और रक्तदोषसे स्थान पकजाता है सन्निपातके इंद्रलुतमें सब लक्षण मिलते हैं ॥ २ ॥

इंद्रलुतरोगकी चिकित्सा ।

गुडेन सुरसाशुण्ठीमातुलङ्गरसेन तु ॥ केशघ्ने वातसम्भूते धावनञ्च प्रशस्यते ॥३॥ त्रिफलावचारोहीतं गुडेनापि प्रपेषितम् ॥ धावनं कफसम्भूते चैन्द्रलुते प्रशस्यते ॥ ४ ॥ पैत्तिके च हितं दुग्धं नवनीतान्वितं तथा ॥ शिताशिवाफलं यष्टीपैत्तिके धावनं मतम् ॥५॥ भृङ्गराजरसं ग्राह्यं शृंगवेररसं तथा ॥ सौवीरकरसेनापि तिलान् पिष्ट्वा प्रलेपनम् ॥ पश्चात्कार्यं पूरुषेण स्नानमुष्णेन वारिणा ॥६॥ धवार्जुनकदम्बस्य शिरीषमपि रोहितम् ॥ काथमेपां शिरोदहं शमयेदिन्द्रलुतकम् ॥ ७ ॥ कुरबकस्य पुष्पेण जपायाःकुसुमेन च ॥ घृष्टस्य चैन्द्रलुतस्य कृतमेव निवारणम् ॥८॥ पैत्तिकानि च लिङ्गानि दृष्ट्वा दुग्धेन धावनम् ॥ शीतलानि प्रदेयानि पैत्तिकेन विधीयते ॥९॥ धत्तूरपत्राणि च मागधीनां निशाविशालागृहधूमकुष्ठम् ॥ घृतेन युक्तञ्च जलेन पिष्टं शिरःप्रलेपे क्षतवारणं स्यात् ॥१०॥ पित्तैःकृते दोषयुते च रोगे पटोलपत्रं पिचुमन्दकं वा ॥ तथामलक्याः फलमेव पिष्ट्वा घृतेन खण्डेन प्रलेपनञ्च ॥ ११ ॥ निवार्यते मस्तकजं क्षतञ्च शिरोऽर्त्तिसंघान्विनिहन्ति चैतत् ॥ गजेन्द्रदन्तस्य मषीं गृहीत्वा प्रलेपनं वा नवनीतकेन ॥ १२ ॥ तिलार्कभस्मातकदग्धमाषक्षारस्य लेपो नवनीतकेन ॥ सर्पस्य क्षारस्य तथा प्रयोगः खल्लाटके केशचयं करोति ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने इंद्रलुतचिकित्सा नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

वातसे उपजे इन्द्रलुप्त रोगमें गुड, तुलसी, सूठ, विजौराका रस, इनका लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥ त्रिफला, वच, बहेडा, गुड, इनको पीस कफसे उपजे इन्द्रलुप्तको धोवना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥ पित्तके इन्द्रलुप्तमें दूध, नौनीघृत, मिसरी, आंवला, मुलहठीको पीस धोना श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ भंगराका रस, अदरकका रस, कांजीका रस, इन्होंमें तिलोंको पीस लेप कर पीछे गरम जलसे स्नान करे ॥ ६ ॥ धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, शिरस, बहेडा, इनका काथ बना धोनेसे शिरके दाद, इन्द्रलुप्त इनकी शांति होती है ॥ ७ ॥ रक्तकोरंटा, जासवंद, इनके पुष्पोंको घिस लेप करनेसे इन्द्रलुप्तका नाश होता है ॥ ८ ॥ पित्तसे उपजे इन्द्रलुप्तमें दूधसे धोवना श्रेष्ठ है और शीतल वस्तु देवे पित्तको करनेवाले इलाज नहीं करे ॥ ९ ॥ धतूराके पत्ते, पीपल, हलदी, इंद्रायण, वरका धूवां, कूठ इनको जलमें पीस घृतमें मिला शिरपे लेप करनेसे इन्द्रलुप्तका नाश होता है ॥ १० ॥ पित्त दोषसे उपजे इन्द्रलुप्त रोगमें परवलके पत्ते, नींबू, आंवलाका फल, इनको पीस घृत और खांड मिला लेप करनेसे ॥ ११ ॥ मस्तकपै उपजा केशनाशरोग दूर होता है और यह लेप शिरकी पीडाओंके समूहोंका नाश करता है और हस्ती दांतको फूँकि उसकी स्याहीको नौनीघृतमें मिला लेप करनेसे ॥ १२ ॥ अथवा तिल, आक, भिलावा, उड़द इनको दग्ध करे इनके खारको नौनीघृतमें मिला लेप करनेसे तथा विधिसे निकासी हुआ सर्पके खारका लेप करनेसे गंजे शिरपे केशोंके समूह बढ जाते हैं ॥ १३ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्त० हारीतसंहिताभाषाटीकायां

इन्द्रलुप्तचिकित्सानाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ४४.

अथ कर्णरोगलक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ शेषेण वा तोयभृतेन वापि मलेन वा चाति भवेद्गुजा च ॥ उच्छ्वासरोधाद्भवते तथापि वातादिकैर्वा कुपितैरथापि ॥ १ ॥ संसर्गदोषैरपि सर्वदोषैः क्रिमिव्रणेनापि तथैव चान्या ॥ संजायते कर्णरुजा नरस्य शृणोति तेनापि बहुस्वनांश्च ॥ २ ॥ निःस्वानमेघध्वनिदन्तशब्दान् शूलं सदाहं च शिरो व्यथा च ॥ वेणुस्वनं वत्स शृणोति सर्वं पित्तन तं विद्धि भिषग्वरिष्ठ ॥ ३ ॥ तथा च मूच्छां प्रतनोति शब्दं मेघस्वनं वा कफजे शृणोति ॥ ४ ॥ क्रिमिदोषे सवेत्पूयं सरक्तं वाति

सत्तम ॥ तथाचैवाभिघातेन जायते तीव्रवेदना ॥ ५ ॥ क्षतेन
पूयं लवते बाल्याद्भवति चाररः ॥ तश्चापि हृतिदोषेण जायते
कर्णजा रुजा ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--कानमें शोथ हो, जल शोथ रह जावे और मैल हो उससे अति पीडा होनेसे ऊंचे श्वासके रोकनेसे तथा वातादिक दोषोंके दूषित होनेसे संसर्गदोषोंसे, सन्निपातसे अथवा क्रिमियोंसे उपजे द्रव्य होनेसे मनुष्यके कानमें अत्यंत पीडा हो जाती है उससे बहुतसे शब्दोंको सुनता है ॥ २ ॥ शब्दोंको मेयके गर्जनके समान और दांतोंके चाबनेके शब्दके समान सुनै शूल हो दाह हो शिरमें पीडा हो वह सब कुछ बीनके शब्दके समान सुनता है हे उत्तम वैद्य ! उसरोगको भित्तसे उपजा जानो ॥ ३ ॥ शब्द सुननेसे मूर्च्छासी हो और मेयके गर्जनसरीखा शब्द सुनै ये कफसे उपजे कर्णरोगके लक्षण हैं ॥ ४ ॥ क्रिमिदोषसे उपजे कर्णरोगमें रक्त सहित पीव गिरे और चौटसे उपजेमें तीव्र पीडा होती है ॥ ५ ॥ क्षतसे उपजेमें पीव गिरे और बालअवस्थामें हृतिरोगसे उपजे कर्णरोगमें पीडा उत्पन्न होती है ॥ ६ ॥

अथ कर्णरोगकी चिकित्सा ।

न कर्णरोगे जलपूरणञ्च न चूर्णमेतत्कथितं विविद्धैः ॥ तैलं हितं
स्वेदनमेव कर्णे सबाष्पविन्दुश्च हितो मतश्च ॥ ७ ॥ सैन्धवं
सुदुद्रफेनश्च सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ॥ सौवीरकरसेनापि वातिके
कर्णपूरणम् ॥ ८ ॥ आर्द्रसौवीररसं शुण्ठीसैन्धवगुग्गुलम् ॥
माषकुलमापरसेन तैलं पक्वातिचोष्णकम् ॥ ९ ॥ कटुतुम्बेन-
धार्येत कर्णरोगे प्रशस्यते ॥ १० ॥ यष्टीमधूकुष्ठपरिप्लवं निशा
विशालासुमनःप्रवालाः ॥ विपाचितं कर्णभवे च शूले सपैतिके
वा घृतमेव शस्तम् ॥ ११ ॥ ब्राह्मीरसं सैन्धवकं विडङ्गसमृङ्गराजस्य
घृतेन युक्तम् ॥ तथैव सौवीररसञ्च पथ्या सुतं च वस्त्रं परिपूर्ण-
मेतत् ॥ १२ ॥ हितं भवेत्तच्छ्रुतिपूरणाय पूयं सरक्तं क्रिमिजं
निहन्ति ॥ १३ ॥ सर्वे प्रोक्ताः शिरोरोगास्तैलानि च घृतानि
च ॥ जात्यादिकान्वा युञ्जीत शिरोरोगविदांवरः ॥ १४ ॥ वात-

हारीणि पथ्यानि विदाहीनि गुह्यणि च ॥ १५ ॥ इत्यात्रेयभा-
षिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सानाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

कानके रोगमें जल पूरना और चूर्णपूरना हित नहीं कहा है। कानरोगमें तैल पूरना और पसीना दिवाना हित है और भाफ दिवानेका कर्म हित कहा है ॥ ७ ॥ सैन्धानमक, समुद्रफेन, इनका बारीक चूर्ण बना कांजीके रसमें मिला वातसे उपजे कानके रोगमें हित है ॥ ८ ॥ ओदेवेरोंका रस, सोंठ, सैन्धानमक, गूगल, उड़दोंके बाकले इनमें तेलको पका गरम गरम ॥ ९ ॥ उस तेलके पुरानेसे कानका रोग दूर होता है इस तेलको कडुई तुंबीमें घालके धरे ॥ १० ॥ मुलहठी, कूठ, नींबूके पत्ते, हलदी, इन्द्रायणके पुष्प तथा कोमल २ पत्ते, इनमें घृतको पका पित्तसे उपजे कर्णशूलमें पूरण करना श्रेष्ठ है ॥ ११ ॥ ब्राह्मीका रस सैन्धानमक, वायविडंग, भंगरेका रस, घृत, कांजीका रस, हरडै, इनको पका पीछे बख्खमें छान कानमें पूरनेसे ॥ १२ ॥ क्रिमियोंसे उपजी कानमें रक्तसहित पीवका नाश होता है और कानमें पूरण करनेमें यह हित कहा है ॥ १३ ॥ जितने शिरके रोग कहे हैं उनमें तैल और घृतमें सिद्ध किये हुए औषधोंको वरते ॥ १४ ॥ चातको हरनेवाले विदाही तथा भारी ऐसे भोजन पथ्य कहे हैं ॥ १५ ॥

इति वेरीनिवासिबुधाशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने कर्णरोगचिकित्सानाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४५.



अथ नेत्ररोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ उष्णातिक्षारकटुकैरभिघातेन वा पुनः ॥ सूक्ष्म-
वस्त्रेक्षणेनापि दोषाः कुप्यन्ति नेत्रजाः ॥ १ ॥ सहजा य पराजेया
वक्ष्यामि शृणु लक्षणम् ॥ रूक्षः कण्डुश्च तोदश्च शुष्कशीतास्रस-
न्ततिः ॥ २ ॥ वातिकं तं विजानीयात्पैत्तिकं शृण्वतः परम् ॥
॥ ३ ॥ सरक्ते सदाहे नेत्र उष्णस्रावश्च पैत्तिके ॥ शोफकण्डू सन्नि-
पाते शीतजाड्ये कफात्मके ॥ ४ ॥ द्वन्द्वजो मिश्रलिङ्गैश्च सर्वैस्तैः
सन्निपातिके ॥ एतद्धि लक्षणं ज्ञात्वा चोपचारं शृणुष्व मे ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—गरम, अतिखारा, चर्चरा ऐसे भोजनोंसे तथा अभिघातसे और सूक्ष्म वस्त्र देखनेसे नेत्रमें रहनेवाले दोष क्रुपित हो जाते हैं ॥ १ ॥ जो स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं वे कष्टसाध्य होते हैं । अब उनके लक्षणोंको सुनो । नेत्र खुरा हो, खाज हो, पीडा हो, शुष्क हो और शीतल रुधिर क्षिरे ॥ २ ॥ वह वातका नेत्ररोग जानना । अब पित्तके लक्षणोंको सुन ॥ ३ ॥ पित्तसे उपजे नेत्ररोगमें गरम २ जल गिरे और लाल तथा दाह सहित नेत्र हों, कफके नेत्ररोगमें शीतल और जडता हो, सन्निपातके नेत्ररोगमें शोजा और खाज होती है ॥ ४ ॥ दो दोषोंसे उपजे नेत्ररोगमें मिले हुए लक्षण होते हैं और सन्निपातके नेत्ररोगमें सब लक्षण मिलते हैं, ऐसे त्रिलक्षण रोगको जानके उसकी चिकित्साको मुझसे सुनो ॥ ५ ॥

अथ नेत्ररोगकी चिकित्सा ।

शुण्ठीसुराह्वसुरसाः सह काञ्जिकेन चोष्णेन धावनमिदं सह पै-
त्तिकेच ॥ श्लेष्मोद्भवे त्रिफलकल्कमिदं समूत्रं शस्तं जनैश्च कथितं
न विचिन्तनीयम् ॥ ६ ॥ शुण्ठी शटी च रजनी त्रिफला सनिम्बा
पत्राणि सैन्धवयुतानि तुषाम्लकेन ॥ शस्तं वदन्ति नयनेषु स-
सन्निपाते रक्तोद्भवे च सरुजे च तथा च शस्तम् ॥ ७ ॥ फलत्रिकं
चारुनिशासु धूमो वचासु वर्षाभवसैन्धवेन ॥ प्रलेपनं श्लेष्मभवे
विकारे सवातिके वा हितमेव शस्तम् ॥ ८ ॥ शुण्ठीसैन्धवतुक्त्रेण
ताम्रभाण्डे विघर्षितम् ॥ अपामार्गस्य मूलं वा मूलं धत्तुरकस्य
वा ॥ ९ ॥ अञ्जनञ्च हितं तेषां वातनेत्रामयापहम् ॥ १० ॥ दुग्धो-
त्पन्नं नवनीतं यष्टी निम्बस्तिलाश्च संयोज्याः ॥ त्रिफला गुडसं-
युक्ता लेपनं कफनेत्रजरोगघ्नम् ॥ ११ ॥ शुण्ठी सैन्धवतुत्थं मा-
गधिका ताम्रभाजने घृष्टम् ॥ दध्ना घृतेनाञ्जनकं निहन्ति सर्वाश्च
नेत्ररोगान्वै ॥ १२ ॥ वातपित्तकफदोषसम्भवान्नेत्रयोर्बहुव्यथां
विनाशकः ॥ एक एव हरति प्रयोजितः शिशुपल्लवरसः स-
माक्षिकः ॥ १३ ॥

सोंठ, देवदार, तुलसी इनको कांजीमें काथ बना गरम २ से पित्तके उपजे नेत्ररोगमें नेत्रोंका धोवना श्रेष्ठ है और कफसे उपजे नेत्ररोगमें त्रिफलके कल्कको गोमूत्रमें पका धोवना श्रेष्ठ है ऐसे अन्य वैद्योंने भी कहा है ॥ ६ ॥ सोंठ, कचूर, हलदी, त्रिफला, नींबूके पत्ते, सेंधानमक, इनको जवोंकी कांजीमें सिद्ध कर सन्निपातसे उपजे नेत्ररोग तथा रक्तसे उपजे हुए पीडासहित

रोगमें ब्रोवना श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥ त्रिफला, दारुहलदी, धरका धूवा, वच, सांठी, सेंधानमक इनका लेप करनेसे कफसे उपजा अथवा वातसे उपजा नेत्ररोग दूर होता है ॥ ८ ॥ सोंठ, सेंधानमक इनको तांबेके पात्रमें तक्रके संग घिस अंजन घाले अथवा ऊंगाकी जड़ तथा धतूरेकी जड़को घिस ॥ ९ ॥ अंजन घालनेसे सब प्रकारके नेत्ररोगोंका नाश होता है ॥ १० ॥ दूधसे उत्पन्न हुआ नौनीवृत, मुलहटी, नींबू, तिल, त्रिफला, गुड़, इन सबोंको मिला पीसि लेप करनेसे कफसे उपजा नेत्ररोग नाश होता है ॥ ११ ॥ सोंठ, सेंधानमक, नीलाथोता, पीपली इनको तांबाके पात्रमें घिस, दही और घृतके संग नेत्रमें आंजनेसे नेत्रके सब रोगोंका नाश होता है ॥ १२ ॥ वात, पित्त, कफ इन दोषोंसे उपजे हुए नेत्ररोगकी बहुतसी पीडाका नाश शीघ्रही होता है और एक सहिजनेके पत्तोंके रसमें ही शहद मिला नेत्रोंमें आंजनेसे सब नेत्ररोग दूर होते हैं ॥ १३ ॥

अथ नेत्रके फूलेकी चिकित्सा ।

मिथ्याहारविहारैस्तु नेत्रे पुष्पञ्च जायते ॥ प्रथमं सुखसाध्यं
स्याद्वितीयं कष्टसाध्यकम् ॥ १४ ॥ तृतीयं शस्त्रसाध्यं तु चतुर्थं
तदसाध्यकम् ॥ १५ ॥ शङ्खपुष्पं तथा रोध्रं शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥
काञ्जिकेन तु संपिष्टा छायाशुष्का भिषग्वर ॥ १६ ॥ वातिके
काञ्जिकेनापि पैत्तिके पयसा हिता ॥ श्लेष्मले मूत्रसंयुक्ता पुष्प-
स्याञ्जनके हिता ॥ १७ ॥ भृङ्गराजरसेनापि त्रिदोषशमने
हिता ॥ हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ॥ १८ ॥
विभीतकस्य मज्जा वा शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥ एतानि सम-
भागानि अजाक्षीरेण पेषयेत् ॥ १९ ॥ नाशयेत्तिमिरं कण्डू-
पाटलान्यर्बुदानि च ॥ हन्ति पुष्पं सपटलं राज्यन्ध्यञ्च निय-
च्छति ॥ २० ॥ क्षताभिघाति शोकेन अग्निदग्धं च वा पुनः ॥
काचञ्च नीलिका चैव सिद्धिमिच्छन्ति नेत्रयोः ॥ २१ ॥

अपथ्य आहारविहार करनेसे नेत्रमें फूल होजाता है । एक तो सुखसाध्य होता है और दूसरा कष्टसाध्य होता है ॥ १४ ॥ और तीसरा शस्त्रसाध्य होता है, चौथा असाध्य होता है ॥ १५ ॥ हे उत्तमवैद्य ! शंखपुष्पी, लोघ, शंखकी नाभि इनको कांजीमें पीस छायामें सुखा ॥ १६ ॥ उस अंजनको वातके फूलेमें कांजीके संग और पित्तमें दूधके संग कफकेमें गोमूत्रमें घिस नेत्रमें घालना हित है ॥ १७ ॥ त्रिदोषसे उपजे फूलेमें भंगरेके रसके संग घाले और हरडै, वच, कूठ, पीपल, मिर्च ॥ १८ ॥ बहेड़ेकी मज्जा, शंखकी नाभि,

मनसिल, इनको समान भाग ले बकरीके दूधमें पीस ॥ १९ ॥ अंजन बालनेसे तिमिर-
रोग, नेत्रकी खाज, नेत्रके पटलदोष, अर्बुद रोग, नेत्रका फूला, पटलमें प्राप्त हुआ फूला,
रतौथा, इनका नाश होता है ॥ २० ॥ चोटआदिके अभिवात्तसे, शोकसे, तथा अग्निसे
दग्ध हुआ काचपटल और नीलिका इन नेत्ररोगोंकी भी सिद्धि होजाती है ॥ २१ ॥

अथ नेत्रपटलका लक्षण ।

दाह्यादोषपलाजैव दुष्टाहाराभिपेवणात् ॥ वार्द्धक्याच्च पटलं
स्यात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २२ ॥ वातात्सकश्मलं रूक्षं
पित्ताग्नीलं च पीतकम् ॥ कफेन शुभ्रं सघनं रक्तेनारक्तकं विदुः
॥ २३ ॥ सन्निपातादिलिङ्गश्च अतो वक्ष्यामि भेषजम् ॥ २४ ॥

बालक अवस्थासे दोषका बलसे और दूषित भोजन खानेसे वृद्ध अवस्थामें नेत्रमें पटल
होजाता है तिनके लक्षणको कहते हैं ॥ २२ ॥ वातसे उपजा मैला हो और पित्तसे नीला-
वर्णवाला हो अथवा पीला हो और कफसे करडा हो, सफेद हो और रक्तके दोषसे लाल पटल
होजाता है ॥ २३ ॥ और सन्निपातसे उपजे हुएमें मिले हुए लक्षण होते हैं अब इन्होंकी
औषधको कहते हैं ॥ २४ ॥

अथ नेत्रपटलचिकित्सा ।

शुण्ठीवचारजनितुत्थमनःशिला चशोभाजनाजनविशालजटा
च शंखम् ॥ वास्तूकमूलखडुसैन्यवकटफलानां सौवीरकेण परि-
मर्दनवर्तिरेषा ॥ २५ ॥ छायाविशुष्कनयनाजनके प्रशस्तं नाश
नयेत्पटलनेत्रजरोगसङ्घात् ॥ २६ ॥ साजना कट्फला चैव हरी-
तकि मनःशिला ॥ गुडेन कट्फलश्चापि निहन्ति नेत्रप्रच्छदम्
॥ २७ ॥ महाविभीतकफलस्य च शङ्खनाभि घृष्टं ससैन्यवयुतं
पयसाम्लकेन ॥ वर्तिगुडेन नयनाजनके हिता च पित्तप्रसूतपट-
लस्य निवारणञ्च ॥ २८ ॥

सोंठ, बच, हलदी, नीलाथोथा, मनसिल, सहिजना, काला सुरमा, इन्द्रायण, जटामांसी,
शंख, बथुवाकी जड, शहद, सेंधानमक, कायफल इनको कांजीमें खरल करि बत्ती बना
॥ २५ ॥ छायामें सुखा नेत्रोंमें आंजनी श्रेष्ठ कही है। पटलरोग, अन्य नेत्र रोगोंका समूह
इनको नाश करती है ॥ २६ ॥ और काला सुरमा, कायफल, हरडै, मनसिल इनको

पीस आंजनेसे अथवा गुडके संग कायफलको पीस नेत्ररोगोंका नाश होता है ॥ २७ ॥ बड़ा बहेड़ा, शंखकी नाभी, सेंधामक इनको दूधमें तथा कांजीमें घिस पीछे गुड़ मिला बत्ती बना नेत्रमें आंजनेसे नेत्रके पटल रोगका नाशहोता है ॥ २८ ॥

नेत्ररोगमें वर्ज्य ।

सधूमश्च सवातश्च रूक्षमुष्णादिकं तथा ॥ कटुकाम्लं व्यवायश्च
वर्जयेन्नेत्ररोगिणाम् ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे
तृतीयस्थाने नेत्ररोगचिकित्सानाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ४६

नेत्ररोगवालेको घुवांसहित वायु रूपा और गर्म भोजन कड़ुआ तथा खट्टा भोजन और मैथुन करना ये वर्ज देने चाहिये ॥ २९ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने नेत्ररोगचिकित्सानाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६.



अथ मुखरोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ ओष्ठौ च स्फुटितौ यस्य वातिवाहेन वाति-
कात् ॥ तस्य सर्पिर्भक्षणश्च ओष्ठदारणवारणे ॥ १ ॥ सदाहश्च
भवेत्सौख्यं पैत्तिकं तं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--जिससे ओष्ठ फटे रहे वायु बहै वह वातसे उपजा मुखरोग जानना वहां मुख फटे हुएको निवारणकेवास्ते घृतकी मालिस करे ॥ १ ॥ दाहहो कमी शीतता उठे तहां पित्तसे उपजा रोग जानना ॥ २ ॥

ओष्ठरोगकी चिकित्सा ।

सधुना नवनीतेन ओष्ठयोर्भक्षणं मतम् ॥ लेपनं चोष्ठरोगेषु
शर्करासहितं दधि ॥ ३ ॥ सरक्तमोष्ठरोगश्च दृष्ट्वा रक्तावसेचनम् ॥
ध्वार्जुनकदम्बानां प्रलेपः स्यात्सुखावहः ॥ ४ ॥

यहां नैनीवृत शहद इनकी मालिस करना श्रेष्ठ है और इन पित्तके ओष्ठरोगोंमें खांड, दही, इनकी मालिस करना श्रेष्ठ है ॥ ३ ॥ रक्तसहित ओष्ठरोग जानके रक्त निकलाना श्रेष्ठ है और धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब इनका लेप करना श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ दंतरोगलक्षण ।

कृष्णा दन्तावलिर्यस्य दन्तमूलं च वातिकात् ॥ चलनं वा
 प्रदृश्येत वातिकश्च विनिर्दिशेत् ॥ ५ ॥ पैतिकात्पित्तवाहश्च
 दंतमांसं विनिर्दिशेत् ॥ श्लेष्मिके दन्तपाके च शोफः स्याच्छे-
 तता भृशम् ॥ ६ ॥ रक्तजे जायते कण्डू रक्तस्रावश्च दृश्यते ॥
 सूयते दन्तमांसश्च सरक्ते दत्पुटे तथा ॥ ७ ॥ सच्छिद्रं दन्तमू-
 लश्च सबलं शूलमेव च ॥ दन्तमांसं विशीर्येत क्रिमिजा दन्त-
 रुम्भवेत् ॥ ८ ॥

जिसके दांत और दांतोंकी जड़ काली होजावे और दांत हिलने लगजावे वह वातसे
 उपजा रोग जानना ॥ ५ ॥ पित्तसे उपजेमें पित्त वहै, दांतोंमें मांस बढ़ जावे और
 कफसे उपजे दंतपाकरोगमें शोजा हो और बहुतसे सफेद होजावे ॥ ६ ॥ रक्तसे उपजेमें
 खाजहो रक्तस्रावहो और दांतोंके मांससे शोजाहो और दांतोंके पुट रक्त हो ॥ ७ ॥ दांतोंकी
 मूल छिद्रसहित दीखै और अत्यंत शूल हो और दांतोंका मांस बिखर जावे वह क्रिमिज
 दंतरोग जानना ॥ ८ ॥

अथ दंतरोगचिकित्सा ।

वचायवानीसहचित्रकेण सिन्धूत्थविश्वासहसिन्धुवारम् ॥ कल्कं
 तथोष्णञ्च सदन्तरोगे मुखे च गण्डूषशतानि पञ्च ॥ ९ ॥ सर्वेषु
 मुखरोगेषु हितमेतत्प्रशस्यते ॥ वचासैन्धवशुण्ठ्या च घषणं
 दन्तमूलके ॥ १० ॥ यवानीं च वचां रात्रौ दन्तमूले च धारयेत् ॥
 पित्तजदन्तरोगेषु नवनीतं सशर्करम् ॥ ११ ॥ धात्रीफलेन संघृष्टं
 दन्तरोगनिवारणम् ॥ श्लेष्मिकदन्तरोगेषु हरीतक्या गुडेन वा
 ॥ १२ ॥ घषणं च प्रशस्तं च त्रिफलाकाथसंयुतम् ॥ अहिमार-
 कमूलस्य काथो गण्डूषधारणात् ॥ १३ ॥ खदिरस्य तथा
 काथो यवानीक्वाथ एव च ॥ काथश्च निम्बमूलस्य दन्तरोग-
 निवारणः ॥ १४ ॥ रक्तजे च विकारे च घर्षो लवणसर्षपैः ॥
 रक्तश्च स्रावयेत्तस्य इष्टमोष्ठपुटे च तत् ॥ १५ ॥ विडङ्गं हिड्डु

सिन्धुञ्च वचाचूर्णेन घर्षयेत् ॥ क्रिमिजदन्तरोगेषु हितमेतत्प्र-
शस्यते ॥ १६ ॥

वच, अजमान, चीता, सेंधानमक, सूठ, संभालू, इनका कल्क बना गरम २ दंत रोगमें लेपित करे और मुखमें पांचसौ कुले करे ॥ ९ ॥ सब मुखरोगोंमें यही विधि करनी श्रेष्ठ है और वच, सेंधानमक, सूठ, इनको दांतोंकी जड़में घिसे ॥ १० ॥ अजमान, वचको रात्रीमें दांतोंकी जड़में धारण करे और पित्तसे उपजे दंतरोगोंमें नौनीवृत खांड इनको लगावे ॥ ११ ॥ आंवलाके फलको घिसके लगानेसे दंतरोगोंका निवारण होता है और कफसे उपजे दंतरोगमें हड्डें, गुड इनको घिस ॥ १२ ॥ त्रिफलाके काथमें मिला दांतोंके लगानेसे दंतरोग दूर होता है और रियांकी जड़का काथ बना कुले करे ॥ १३ ॥ तथा खैरका काथ, अजमानका क्वाथ, नींवकी जड़का क्वाथ इनसे दंतरोगका निवारण होता है ॥ १४ ॥ रक्तसे उपजे दंतरोगमें नमक, सेंधानमकसे दांतोंको घिसे और ओष्ठपुटमांससे रक्तको गिरवावे ॥ १५ ॥ वायविड्ग, हिंग, सेंधानमक, वच, इनके चूर्णको दांतोंमें घिसे और क्रिमिज दंतरोगमें भी यही विधि करनी हित है ॥ १६ ॥

अथ जिह्वारोग लक्षण ।

जिह्वायां पिडिका यस्य जिह्वापाकं विनिर्दिशेत् ॥ वातिके
सरुजा कृष्णा पित्तेन दाहसंयुता ॥ १७ ॥ श्लेष्मणा सघना श्वेता
सर्वे वै सान्निपातिके ॥ १८ ॥

जिसको जिह्वापै पिडिका हों वह जिह्वापाक जानना । वातसे उपजी पिडिका पीडा-
सहित होती है और काली होती है पित्तसे दाह करके युक्त हों ॥ १७ ॥ कफसे कड़ी हो सफेद
वर्णवाली हो और सन्निपातसे उपजी पिडिकाओंमें सब लक्षण मिलते हैं ॥ १८ ॥

अथ जिह्वारोगचिकित्सा ।

वचाभयाविडङ्गानि शुण्ठी सौवर्चलं कणा ॥ घृतेन युक्तं जिह्वा-
यां घर्षणं वातिके गदे ॥ १९ ॥ काञ्जिकेन तु त्रेकेण सोष्णग-
ण्डूषधारणम् ॥ यष्टीकं चन्दनं सुस्ता मागधी मधुसंयुतम् २० ॥
लेपनं पैत्तिके दोषे जिह्वास्फोटकवारणम् ॥ दुग्धेन च शीते-
नापि हन्ति गण्डूषधारणम् ॥ २१ ॥ दन्तरोगे तथा जिह्वापाके
तच्च हितं विदुः ॥ रोध्रार्जुनकदम्बानां काथश्चोष्णः सुखावहः ॥

॥२२॥ श्लेष्मोद्भवे मुखपाके हितं गण्डूषधारणम् ॥ रक्तजेषु
विकारेषु रक्तलावं च कारयेत् ॥२३॥ कण्ठकेनापि जिह्वायाश्ची-
रयित्वा च लेपनम् ॥ मूर्नामुस्ताभयाशुण्ठीमागधीरजनीद्वयम्
॥२४॥ गुडेन मधुना युक्तं लेपनं रक्तजिह्वके ॥ मरिचञ्च वचा
कुष्ठं हरीतक्याश्च चूर्णितम् ॥ वर्षणं श्लेष्मणि जाते जिह्वापाके
हितं विदुः ॥ २५ ॥

वच, हरडै, वायविडंग, सोंठ, कालानमक, पीपली इनको घृतमें युक्त कर जिह्वापै घिसनेसे
वातसे उपजा जिह्वारोग दूर होता है ॥ १९ ॥ कांजी, तक्रको गरम २ कर कुछे करे
और मुलहठी, चन्दन, नागरमोथा, पीपलीको पीस शहदमें मिला ॥ २० ॥ लेप
करनेसे पित्तदोषसे उपजा जिह्वास्फोटक रोग दूर होता है और ठंडे २ दूधके कुछे
धारण करना ॥ २१ ॥ दंतारोग, जिह्वापाकमें हित है और लोघ, अर्जुनवृक्ष,
कदंबका काथ सुखसे सुहाता हुआ गरम २ मुखमें धारण करना ॥ २२ ॥
कफसे उपजे मुखपाक रोगमें हित है और रक्तसे उपजे विकारोंमें रक्त निकलाना
श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ कांटेसे जिह्वाको चीरके वहां मूर, नागरमोथा, हरडै, सोंठ, पीपली,
दोनों हलदी ॥ २४ ॥ गुड, शहद, इनको मिला रक्तसे उपजे जिह्वारोगपै लेप करे और
मिरच, वच, कूटका चूर्ण बना कफसे उपजे जिह्वारोगमें मसलना हित है ॥ २५ ॥

अथ गलगडूरोगके लक्षण ।

तिलपिच्छिलगौल्यादिसेवनातिद्रवादपि ॥ नवोदकेन कफजो
जायते घण्टिकागदः ॥ २६ ॥ जिह्वामूले कण्ठसन्धौ श्लेष्मरक्त-
समुद्भवः ॥ तेनास्यशोषो जडता ज्वरो मन्दश्च जायते ॥ २७ ॥
शिरोव्यथारुचिस्तन्द्वा तथास्य जडता भवेत् ॥

तिल और झागोंवाला तथा गुल्ली बंधनेवाला और पतला ऐसे भोजनके सेवनेसे और नवीन
जलसे कफसे उपजा हुआ घण्टिका संत्रक रोग हो जाता है ॥ २६ ॥ जिह्वाकी मूलमें कंठकी
सन्धिमें कफरक्तसे उपजा हुआ यह रोग होता है उससे मुखमें शोष हो, जडता हो, मन्दज्वर हो
॥ २७ ॥ शिरमें पीडा हो, अरुचि हो, तन्द्रा हो, मुखमें जडता हो ॥

अथ गलगडू रोगकी चिकित्सा ।

तर्जन्यां कण्ठमध्ये तु संपीड्य रक्तपान्थिका ॥ २८ ॥ परिशुतं
तथा रक्तं तदा विम्लापनं हितम् ॥ वचाश्च मरिचं कृष्णाचूर्णं

तत्र निधापयेत् ॥२९॥ मर्दनं स्यात्कण्ठदेशे तेन ग्रन्थिर्विली-
यते ॥ धान्यनागरजीसूतवचा ह्येताः समांशकाः ॥३०॥ काथ-
स्वेदो घण्टिकाया मुखे गण्डूषधारणम् ॥ दिवारात्रौ वचाग्रन्थि
मुखे संधारयेद्भिषक् ॥ ३१ ॥ तेन सौख्यं भवेत्तस्य मुखरोगा-
द्विमुच्यते ॥ ३२ ॥

तर्जनी अंगुलीसे कंठके मध्यमें रक्तकी ग्रंथीको पीडित करे ॥ २८ ॥ जब रक्त
निकल जावे तब विम्लापन कर्म करना हित है । वहां वच, मिर्च, पीपल इनके चूर्णको
बुरकावे ॥ २९ ॥ कंठके मध्यमें मर्दन करे इससे वह ग्रंथि शांत हो जाती है और व-
नियां, सूंठ, नागरमोथा, वच इन औषधोंको समान भाग ले ॥ ३० ॥ काथ बना पसीना
दिवावे और गडुरोगवाले पुरुषके मुखमें इस काथके कुले करवावे ॥ ३१ ॥ दिनराति
मुखमें वचको धारण करावे ऐसे करवानेसे रोगीको सुख उत्पन्न होता है और मुखरोगसे
छुट जाता है ॥ ३२ ॥

अथ गलशुण्डिका रोगके लक्षण ।

गले घण्टिकामार्गे च रक्तश्लेष्मविकारजा ॥ लम्बिका वर्धते तृणां
विज्ञेया गलशुण्डिका ॥३३॥ रुन्धते चास्य मार्गश्च नेत्रस्त्रावः
प्रदृश्यते ॥ शिरोऽर्त्तिः श्वासकासश्च ज्वरेणैव प्रपच्यते ॥३४॥

मनुष्योंके गलमें घाटीके मार्गमें रक्तकफके विकारसे उपजी हुई लंबी ग्रंथि हो जाती है
वह गलशुण्डिका रोग कहाता है ॥ ३३ ॥ वह रोग मुखके मार्गको रोक लेता है और नेत्रों-
में स्त्राव होता है, शिरमें पीडा हो, श्वास हो, खांसी हो, ज्वरकी तरह बाधा हो ऐसा यह रोग
होता है ॥ ३४ ॥

अथ गलशुण्डिकारोगकी चिकित्सा ।

आशुकारी महाप्राज्ञः शीघ्रं कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ शस्त्रेण शुण्डि-
कां छित्त्वा कुर्याद्विम्लापनं हितम् ॥३५॥ मागधी मरिचं पथ्या
वचाधान्ययवानिकाः ॥ काथः सोष्णः स्वेदमायाद्गलशुण्डोप-
शान्तये ॥३६॥ दिवा रात्रौ यवान्याश्च मुखे संधारणं हितम् ॥
मर्दनं कण्ठदेशे तु तेन संपद्यते सुखम् ॥ ३७ ॥ सिद्धार्थकं वचा
कुष्ठं रजनी पारिभद्रकम् ॥ गृहधूमं सलवणं कण्ठे वा लेपनं हि-

तम् ॥ ३८ ॥ ज्वरे प्रोक्तानि पथ्यानि यानि तानि सहासते ॥
न गौल्यं पिच्छलं सेव्यं तैलं नैव गलामये ॥ ३९ ॥ इति
गलशुण्डिकाचिकित्सा ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीय-
स्थाने मुखरोगचिकित्सानाम पट्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

शीघ्रकार्य करनेवाला महान् वैद्य इस रोगका इलाज शीघ्रही करे, शस्त्रसे गलशुण्डिकाको
छेदन कर विम्लापन कर्म करना हित है ॥ ३९ ॥ पीपली, मिर्च, हरडै, वच,
घनियां, अजमान इनका काथ बना इससे पसीना दिवानेसे गलशुण्डिकारोगकी शांति
होती है ॥ ३६ ॥ दिनराति अजमानको मुखमें धारण रखना हित है और कण्ठकी
जगह मर्दन करना हित है इससे रोगीको सुख उत्पन्न होता है ॥ ३७ ॥ सरसों, वच,
कूठ, हलदी, नींबू, घरका धुआं, नमकका लेप कंठपै करना हित है ॥ ३८ ॥ और हे
सहासते ! ज्वरमें कहे हुए जो पथ्य हैं उनको करे और गलरोगमें गुल्ली बंधनेवाला तथा
पिच्छल भोजन और तैलको नहीं सेवे ॥ ३९ ॥

इति वैरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने मुखरोगचिकित्सानाम पट्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७.

अथ वृद्धक्षीणानां वाजीकरण ।

आत्रेय उवाच ॥ क्लैब्यं पञ्चविधं प्रोक्तं समासेन शृणुष्व मे ॥
॥ १ ॥ निरोधातिव्यवायेन वयःश्रान्तेऽपि मानवे ॥ जायते
रेतसो हानिः क्लीबत्वश्चापि जायते ॥ २ ॥ त्रिविधं जायते क्लैब्यं
मानसं रेतसः क्षयात् ॥ सहजं शुष्कसंस्वेदाज्जायते क्लीबता
नरे ॥ ३ ॥ यस्य वैममता चित्ते दृष्टा स्त्रीणां विरागिताम् ॥ स्पर्शने
स्वेदकं पञ्च तत्साध्यं मानसं स्मृतम् ॥ ४ ॥ यस्य विद्वेषतः स्त्री-
णां व्यवायेन मनःक्षितिः ॥ ध्वजभङ्गो भवेच्छीघ्रं तत्क्लैब्यं
रेतसःक्षयात् ॥ ५ ॥ समप्रकृतिर्यस्यान्यः सोऽप्यसाध्यतमः
स्मृतः ॥ मनःक्षये मनोद्रेको मुग्धस्त्रीसहसङ्गमः ॥ ६ ॥

सरागविभ्रमकथालापैः संवर्द्धते मनः ॥ शुक्रक्षये शुक्रवृद्धि
कथयिष्यामि साम्प्रतम् ॥ ७ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—नपुंसकपना पांचप्रकारका होता है सो संक्षेपमात्रसे कहते हैं सुनो ॥ १ ॥ मैथुनके रोकनेसे अथवा ज्यादा मैथुन करनेसे अवस्थाकी हार होनेसे मनुष्योंके वीर्यकी हानि हो नपुंसकपना होजाता है ॥ २ ॥ मनुष्योंके तीनप्रकारका नपुंसकपना होता है मानस, वीर्यक्षय, और शुष्क पसीनासे उपजा सहज ॥ ३ ॥ ऐसे होता है जिस पुरुषके स्त्रियोंके विरागभाव देखिके मनमें ममता हो, स्पर्श करनेमें पसीना आजावे यह मानस कहाता है सो सुखसाध्य होता है ॥ ४ ॥ और जिसके द्वेषयुक्त स्त्रियोंके संग मैथुन करनेसे मनकी हानि होजाती है और जिसके शीघ्रही लिंगका भंग होजाय वह वीर्यक्षय होनेसे नपुंसकपना होता है उसे ध्वजभंग कहते हैं ॥ ५ ॥ और जिसकी सदा समान प्रकृति रहे अर्थात् कभी चैतन्यता हो ही नहीं वह असाध्यरोग कहाता है । मनके क्षय होनेमें मनको बढावे और सुन्दर भोली स्त्रीके संग विषय करवावे ॥ ६ ॥ और स्नेहसहित विभ्रमके वचन, स्त्रियोंकी कथाके आलाप इनसे मनको बढावे और वीर्यक्षयके नपुंसकपनेमें वीर्यवर्द्धक औषधोंको कहते हैं ॥ ७ ॥

अथ शुक्रवृद्धिके उपाय ।

विदारिकागोक्षुरमूषकानां धात्रीफलं स्यात्सहस्रैन्धवानाम् ॥
समानि चैतानि च मागधीनां युक्तं सिताढ्यं पयसा पिबेच्च ॥ ८ ॥
विषं बृहत्सौ मगधात्रिकण्टास्तथात्मगुप्ता सशतावरी च ॥ सश-
करं गोपयसो घृतेन पानं नराणां प्रकरोति बीजम् ॥ ९ ॥ यव-
गोधूममाषाणां निस्तुषाणाञ्च चूर्णकम् ॥ दुग्धेनेक्षुरसेनापि
संस्कृत्य तु घृतेन तु ॥ १० ॥ पाचितं वटकश्रेष्ठं भक्षयेत्प्रातरु-
त्थितः ॥ तस्योपरि पयःपानं पिप्पलीशर्करान्वितम् ॥ ११ ॥
यवक्षारविदारीञ्च माषचूण तथा यवान् ॥ मरिचानां सिताढ्यञ्च
घृतानाञ्च प्रपोलिकाम् ॥ १२ ॥ पाचयेद्भक्षयेत्प्रातः पयःपानं
तथोपरि ॥ वीर्यञ्च कुरुते पुंसां वनिता रमते भृशम् ॥ १३ ॥
गुडची शतमूली च स्वयंगुप्ता बला तथा ॥ १४ ॥ शालमली
मुसलीमूलं चूर्णं गोपयसान्वितम् ॥ पानं नराणां श्रेष्ठं तु
बीजमिन्द्रियकारकम् ॥ १५ ॥

विदारीकंद, गोखरू, मूलापर्णी, आंवला, सेवानमक, पीपली इनको समान भाग ले मिश्री मिला गौंके दूधके संग पीवे ॥ ८ ॥ अतीश, दोनों कटेहली, पीपली, गोखरू, और कौंचके बीज, शतावरी, इनका चूर्ण बना खांड मिला पीछे गौंके दूध घृतके संग पीनेसे मनुष्योंके वीर्यवृद्धि होती है ॥ ९ ॥ जव, गेहूँ, उड़द इनके तुप उतारि चूर्ण बना पीछे दूधमें और ईखके रसमें मिला घृतमें ॥ १० ॥ पका उनको प्रातःकाल उठके खाये और उसके ऊपर पीपली, खांड इनसे युक्त दूधको पीवे ॥ ११ ॥ जवाखार, विदारीकंद, उड़दोंका चूर्ण, जव, मिर्च, इनका चूर्ण बना मिश्री मिला पीछे पोली बना घृतमें सिद्ध करलेवे इन पोलियोंको ॥ १२ ॥ प्रातःकाल भक्षण करे और ऊपरसे दूध पीवे ऐसे करनेसे पुरुषोंका वीर्य बढ़ता है और स्त्रीके संग बहुतसा रमण करता है ॥ १३ ॥ गिलोय, शतावरी, कौंचके बीज, खरेहटी ॥ १४ ॥ सेमर, मुसलीकी जड़ इनका चूर्ण बना गौंके दूधके संग पीना श्रेष्ठ है और मनुष्योंकी इन्द्रियमें वीर्यको बढ़ानेवाला है ॥ १५ ॥

अथ विदार्यादि औषध ।

विदारिकन्दांशुवती बृहत्यौ काकोलिका भीरु पुनर्नवे द्वे ॥
शृङ्गाटकं सागविका बला च चूर्णं सिताढ्यं सितया प्रयोज्यम् ॥
॥ १६ ॥ जीर्णे पयः पायसमेव योज्यं करोति पुंसां बलमेव मो-
जः ॥ स्त्रीणां सहसंभजतेऽपि षण्ढो मासद्वये प्रस्तुतमेव शस्तम् ॥ १७

विदारीकंद, शालवन, दोनों कटेहली, काकोली, शतावरी, दोनों प्रकारकी सांठी, सिंवाड़ा, पीपली, खरेहटी इनका चूर्ण बना मिश्री मिला ॥ १६ ॥ दूधके संग पीनेसे पुरुषोंके बल और वीर्य बढ़ता है और हीजडा हो वह भी हजारों स्त्रियोंके संग रमणकर सकता है, दो महीनेतक इस औषधका सेवन श्रेष्ठ है ॥ १७ ॥

अथ शुक्रवृद्धिमें वर्ज्य ।

वर्जयेत्कटुकं चाम्लं तीक्ष्णं चोष्णं विदाहि च ॥ रुक्षं वापि च
सौवीरं प्रोक्तानि चेन्द्रियक्षतौ ॥ १८ ॥ पलाण्डुयवनं कन्दांस्ति-
लान्माषान्यथाबलम् ॥ तथौदनं विशालीनां दुग्धं चेशुरसं
तथा ॥ १९ ॥ वास्तुकं चिह्नकानाञ्च पथ्ये शुक्रक्षयादपि ॥ वर्जित्वा
सूरणं शुण्ठीं योगयुक्तो न योजयेत् ॥ २० ॥ इत्यात्रेयभा-
षिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वाजीकरणं नाम सप्तचत्वा-
रिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

चर्चरा, खट्टा, तीक्ष्ण ऐसे भोजनको वर्ज दे और गरम, विदाही, रूषा ऐसा भोजन, कांजी इनको वीर्यक्षयमें वर्ज देवे ॥ १८ ॥ प्याज, तथा अन्यकंद, उड़द, और शालीसंज्ञक चावलों-का भात, दूध, ईखका रस ॥ १९ ॥ वथुआका शाक और चिल्लक अर्थात् अन्य वथुआका भेद इनको अग्नि बलके अनुसार खावे ये वीर्यक्षयमें पथ्य हैं और जमीकंद, सोंठ, इनको नहीं देवे ॥ २० ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशाह्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने वाजीकरणं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८.

अथ वन्ध्यारोगके लक्षण ।

आत्रेय उवाच ॥ वन्ध्या स्यात्पद्मकारेण बाल्येनाप्यथवापुनः ॥
गर्भकोशस्य भङ्गाद्वा तथा धातुक्षयादपि ॥ १ ॥ जायते न च गर्भस्य
सम्भूतिश्च कदाचन ॥ काकवन्ध्या भवेच्चैका अनपत्या द्विती-
यका ॥ २ ॥ गर्भस्त्रावी तृतीयाऽथ कथिता मुनिसत्तमैः ॥ मृत-
वत्सा चतुर्थी स्यात्पञ्चमी च बलक्षयात् ॥ ३ ॥ तस्योपक्रमण-
वक्ष्ये येन सा लभते सुतम् ॥ ४ ॥ अजातरजसां स्त्रीणां
क्रियते यदि मैथुनम् ॥ तेनैव गर्भसंकोचं भगत्वमुपगच्छति ॥
॥ ५ ॥ तेन स्त्री भवते वन्ध्या गर्भं गृह्णाति नो भृशम् ॥ सा च
कष्टेन भवति रामा गर्भवती भिषक् ॥ ६ ॥ औषधैश्चोपचारैश्च
सिद्धिश्चापि न संशयः ॥ अनपत्यबलेनापि जायते भिषजां वर
॥ ७ ॥ न भवेत्काकवन्ध्या च अनपत्यापि सिध्यति ॥ सिध्यन्ती
क्षीणधातुत्वाज्जायते सा भिषग्वर ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—वन्ध्या रोग छह प्रकारका होता है, बालक अवस्थामें गर्भकोशके भंग हो जानेसे अथवा धातुके क्षय होनेसे ॥ १ ॥ गर्भ कदाचित्भी नहीं ठहरता है और एक तो काकवन्ध्या होती है दूसरी अनपत्या होती है ॥ २ ॥ तीसरी गर्भस्त्रावी होती है, चौथी मृतवत्सा होती है और पांचवीं बलके क्षय होनेसे होती है ॥ ३ ॥ अब इनकी चिकित्सा कहते हैं जिसकरके सुख उत्पन्न होता है ॥ ४ ॥ जो यदि रजस्वला नहीं हुई हो ऐसी स्त्रीके संग मैथुन कर लेवे तो गर्भस्थान भगमें संकोचको प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥ उसकरके स्त्री वन्ध्या हो जाती है विशेषकरके गर्भको धारण नहीं करती है हे वैद्य ! वह स्त्री

कष्टसे गर्भवती होती है ॥ ६ ॥ हे उत्तम वैद्य ! जो अनपत्या वंघ्या होती है वह औषधोंसे गर्भवती होती है ॥ ७ ॥ फिर वह काकवंघ्या भी नहीं होती और अनपत्या भी नहीं होती है और जो क्षीणवातु होनेसे वंघ्या हो वह भी औषधोंसे गर्भवती हों जाती है ॥ ८ ॥

अथ वंध्यारोगको दूर करनेवाले औषध ।

चन्दनोशीरमज्जिष्ठापटोलं घनवालकम् ॥ मधुकं मधुयष्टी च
तथा लोहितचन्दनम् ॥ ९ ॥ सारिवा जीरकं मुस्तं पद्मकञ्च
पुनर्नवा ॥ क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं पित्तोद्भवे गदे ॥ १० ॥
ज्ञात्वा योनिविशुद्धिञ्च तत्र दद्यान्महौषधम् ॥ चन्दनोशीरम-
ज्जिष्ठा गिरिकर्णी सिता तथा ॥ ११ ॥ क्षीरेणालोडिता पित्ते
पुष्पसिद्धिं करिष्यति ॥ १२ ॥

चंदन, खश, मँजीठ, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआवृक्ष, मुलहठी, लालचंदन ॥ ९ ॥
अनंतमूल, जीरा, नागरमोथा, पद्माख, इनको दूधमें मिला खांड मिला पान करना पित्तसे उपजे
वंघ्यारोगमें हित है ॥ १० ॥ योनिकी शुद्धिको जानके पीछे ये महान् उत्तम औषध देनी
चाहिये । चंदन, खश, मँजीठ, सफेद गोकर्णी, मिश्री ॥ ११ ॥ इनको दूधमें मिला घोटि पीनेसे
पित्तसे उपजे रोगमें स्त्रीके पुष्प होते हैं ॥ १२ ॥

त्रिदोषदूषितरजकी चिकित्सा ।

रजोरक्तं परीक्षेत वातपित्तकफात्मकम् ॥ सरुजञ्च सकृष्णञ्च
पक्वजम्बूनिभं च यत् ॥ वातेन बाधितं पुष्पं तच्च संलक्षयेद्बुधः
॥ १३ ॥ तस्य नागरपिप्पल्यौ मुस्ताधन्वयवासकम् ॥ बृहत्यौ
पाटला चैव काथः सगुडको दधि ॥ १४ ॥ सप्ताहं पाययेद्धी-
मान्यावत्स्रवति शोणितम् ॥ विशुद्धे च तथा रक्ते पाययेत्पय-
सान्वितम् ॥ १५ ॥ श्वेता च गिरिकर्णी च श्वेता गुग्गा पुन-
र्नवा ॥ तेन सा लभते गर्भं मासमेकं प्रयोगतः ॥ १६ ॥

वात, कफ, पित्त इनसे दूषित रजस्वलाके रक्तको जाने । पीडासहित और कृष्णवर्णवाला
पकेहुए जामनके फलके समान वर्णवाला ऐसे रक्तको वातके कोपसे उपजा हुआ जाने ॥ १३ ॥
सोंठ, पीपली, नागरमोथा, धमासा, दोनों कटेहली, पाड़लवृक्ष, इनका काथ बना गुड़ और
दही मिला ॥ १४ ॥ रजस्वलाकालमें सात दिनतक पिलावे और रक्त शुद्ध होजावे तब इस

काथको दूधके संग पीवे ॥ १५ ॥ सफेद गोकर्णी, सफेद चिरभठी, सफेद सांठी इनको एक महीना तक पीवे तो वन्ध्या स्त्री गर्भको प्राप्त हो जाती है ॥ १६ ॥

अथ पित्तदूषितरजकी चिकित्सा ।

जपाकुसुमसङ्काशं कुसुम्भरससन्निभम् ॥ दाहशोषमूत्रकृच्छ्रयुक्तं
तत् पित्तदूषितम् ॥ १७ ॥ चन्दनोशीरमञ्जिष्ठापटोलं वनवाल-
कम् ॥ मधुकं यष्टिमधुकं तथा लोहितचन्दनम् ॥ १८ ॥ पद्म-
कं पुनर्नवे द्वे शारिवा जीरकं वनम् ॥ क्षीरेण शर्करायुक्तं पानं
पित्तकृते गदे ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा योनिविशुद्धिश्च तत्र दद्यान्म-
हौषधम् ॥ श्वेतार्कमूलं पयसा श्वेता च गिरिकर्णिका ॥ २० ॥
श्वेताद्रिकर्णीमूलञ्च पानं गोक्षीरसंयुतम् ॥ वन्ध्यानां गर्भज-
ननं भवेत्तल्लक्षणान्वितम् ॥ २१ ॥

पुष्पके समान तथा कुसुमाके रंगके समान वर्णवाला रजका रक्त हो, दाह हो, शोष हो, मूत्रकृच्छ्र हो, वह पित्तदूषित रक्त जानना ॥ १७ ॥ चंदन, खश, मँजीठ, परवल, नागरमोथा, नेत्रवाला, महुआ, मुलहठी, लाल चन्दन ॥ १८ ॥ पद्माक, दोनों सांठी, अनंतमूल, भद्रमोथा इनको दूधमें मिला खांड मिला पित्तसे उपजे रोगमें पीना हित है ॥ १९ ॥ पीछे योनिकी शुद्धिको जानके आगे कही हुई ये महान् औषध देनी चाहिये । सफेद आककी जड़, दूधी, सफेद गोकर्णी ॥ २० ॥ सफेद गोकर्णीकी जड़ इनको गौके दूधके संग पीवे और सफेद कटेहलीकी जड़को दूधके संग पीनेसे वन्ध्या स्त्रीको गर्भ रहता है ॥ २१ ॥

अथ कफदुष्टरजकी चिकित्सा ।

सघनं पिच्छलं चापि जाड्यं स्यान्मूत्ररोधनम् ॥ आलस्य-
तन्द्रा निद्रा च कफदुष्टं रजो विदुः ॥ २२ ॥ त्रिफला गिरि-
कर्णी च तथारग्वधवत्सकौ ॥ पयसा पयसा पानं स्त्रीणां च
गर्भकारणम् ॥ २३ ॥ पलायं चन्दनायं च द्राक्षायं चूर्णमेव
च ॥ दापयेद् गर्भजननं नारीणां भिषगुत्तमः ॥ २४ ॥ खण्ड-
कायश्च चूर्णं च नारीणां भिषगुत्तमः ॥ पुनर्नवायं देयं वा स्त्रीणां
गर्भप्रदायकम् ॥ २५ ॥

करंडा २ ज्ञागोंवाला, जड़रूप; मूत्रको रोकनेवाला, ऐसा रक्त गिरे और आलस्य हो निद्रा हो

तंत्रा हो वह कफसे दूषित हुआ रक्त जानना ॥ २२ ॥ त्रिफला, गौकर्णी, अनलतास, कूडाकी छाल, दूवी, इनको दूधके संग पीनेसे स्त्रियोंके गर्भस्थिति होती है ॥ २३ ॥ पहले कहा-
हुआ बलआदिक चन्दनादिक और द्राक्षादिक चूर्णके देनेसे हे उत्तमवैद्य ! गर्भस्थिति होती है ॥ २४ ॥ हे उत्तमवैद्य ! खण्डूकाच चूर्ण अथवा पुनर्नवाच चूर्ण देनेसे स्त्रियोंको गर्भस्थिति होती है ॥ २५ ॥

अथ स्त्रियोंके गर्भार्थ पथ्य ।

अथ पथ्यं प्रवक्ष्यामि स्त्रीणां च शृणु पुत्रक ॥ कच्चरं सूरणं
चैव तथा चाम्लं च काजिकाम् ॥ २६ ॥ विदाहिकं च तीव्रं
च स्त्रीणां दूरे परित्यजेत् ॥ वन्ध्याकर्कटकीमूलं लांगली कटु-
तुम्बिका ॥ २७ ॥ देवदाली द्विवृहती सूर्यवल्ली च भी-
रुका ॥ निर्माल्यं माल्यवस्त्रञ्च तथा स्यादुतुसङ्गमः ॥ २८ ॥
अन्यस्त्रीसातमुद्रकं स्त्रीणां पथ्यमुपक्रमः ॥ २९ ॥ इत्यात्रे-
यमापिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने वन्ध्योपक्रमो नामाष्टच-
त्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

और हे पुत्र ! अब स्त्रियोंके वास्ते पथ्य कहते हैं । कचरी, जमीकन्द, चूकाका शाख, कांजी,
॥ २६ ॥ विदाही और तीक्ष्ण ऐसे भोजन स्त्रियोंको दूरसे ही त्याग देने चाहिये और बांझ
कक्रोड़ीकी जड़, कलहारी, कडुई तुंबी ॥ २७ ॥ देवदाली, दोनों कटेहली, सूर्यमुखी,
शतावरी, ये वस्तु वन्ध्यास्त्रीको पथ्य हैं और जिस स्त्रीके बालक होते हों उसका जूठा भोजन
आदिक और उसका वस्त्र और उसका रजस्वला अवस्थामें स्पर्श ॥ २८ ॥ उसका ऋतुसम-
यमें स्नान किया हुआ जल, ऋतुसमयमें अपने पतिके संग भोग ये पथ्य हैं ॥ २९ ॥

इति वेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रयनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने वन्ध्योपक्रमो नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ४९.



अथ गर्भोपचारविधि ।

आत्रेय उवाच ॥ प्रथमे मासि यष्टीमधुपरुषकं मधुपुष्पाणि
यथा लाभम् ॥ नवनीतेन पयो मधु मधुरं पाययेच्च ॥ १ ॥

द्वितीये मासि काकोली मधुरं पाययेत्तथा ॥ तृतीये कृशरा
 श्रेष्ठा चतुर्थे च कृतौदनम् ॥ २ ॥ पञ्चमे पायसं दद्यात्
 षष्ठे च मधुरं दधि ॥ सप्तमे घृतखण्डेन चाष्टमे घृतपूकरम् ॥
 ॥ ३ ॥ नवमे विविधान्नानि दशमे दोहदं तथा ॥ मासे
 तृतीये सम्प्राप्ते दोहदं भवति स्त्रियः ॥ ४ ॥ यद्यत् कामयते
 सा च तत्तद्व्याङ्घ्रिषग्वरः ॥ ५ ॥ वर्जयेद्विदलान्नानि विदाहीनि
 गुरूणि च ॥ अम्लानि सोष्णक्षीराणि गुर्विणीनां विवर्जयेत् ॥
 ॥ ६ ॥ मृत्तिका भक्षणीया न न च सूरणकन्दकाः ॥ रसोनश्च
 पलाण्डुश्च संत्याज्यो गुर्विणीस्त्रिया ॥ ७ ॥ सूरणानि प्रदे-
 यानि गौल्यानि सरसानि च ॥ पथ्ये हितानि चैतानि गुर्वि-
 णीनां सदा भिषक् ॥ ८ ॥ व्यायामं मैथुनं रोषं शोषं चक्रमणं
 तथा ॥ वर्जयेद्गुर्विणीनाञ्च जायन्ते सुखसम्पदः ॥ ९ ॥ अथो-
 पपन्नं विहितमपि स्वकीयाचारेण पञ्चमासिकमष्टमासिकं वा ॥
 ब्राह्मणमङ्गलादिभिर्गोत्रभोजनमपि कर्त्तव्यम् ॥ दोहदादिषु परि-
 पूर्णेषु रूपवान् शूरः पण्डितः शीलवान् पुत्रो जायते ॥ १० ॥
 इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपचारो नाम
 एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पहले महीनेमें मुलहटी, फालसा, महुवृक्ष, इनसे जितने मिलें उतनेहीको नौनी घृत, दूध, इनके संग खांड मिलाके मीठा २ प्यावे ॥ १ ॥ दूसरे महीनेमें काकोली, शहद, इनको प्यावे, तीसरे महीनेमें श्रेष्ठ कृशरा अर्थात् खिचड़ी और चौथे महीनेमें चावलोंके भातका भोजन करे ॥ २ ॥ और पांचवें महीनेमें दूध और छठे महीनेमें मीठा दही देना चाहिये और सातवें महीनेमें घृत, खांड, आठवें महीनेमें घेवर ॥ ३ ॥ और नवमें महीनेमें अनेक प्रकारके भोजन, दशवें महीनेमें गर्भवती स्त्रीके इच्छापूर्वक भोजन देने चाहिये. और जब तीसरा महीना प्राप्त होता है तब स्त्रियोंकी इच्छा अनेक वस्तुओंमें होती है ॥ ४ ॥ तब स्त्री जिस २ वस्तुकी इच्छा करे वही २ भोजन देना चाहिये ॥ ५ ॥ और द्विदल धान्य, विदाही तथा भारी भोजन, खट्टे भोजन, गरम दूध, इन वस्तुओंको गर्भवती स्त्री वर्ज देवे ॥ ६ ॥ और मृत्तिका नहीं भक्षण करनी चाहिये और जमीकंदको भक्षण नहीं करे और लहसुन

प्याज, ये गर्भवती स्त्रीको त्याग देने चाहिये ॥ ७ ॥ और जमीकंद आदिक तथा गुल्ली बंदनवाले अन्न इनको देने तो रससहित देने । हे वैद्य ! इसप्रकार कहे हुए पथ्य गर्भवती स्त्रीको तदा पथ्य कहे है ॥ ८ ॥ कसरत, मैथुन, क्रोध, शोक, जादे फिरना ये सब गर्भवतीस्त्रियोंको बर्ज देने चाहिये तब मुखकी उत्पत्ति होती है ॥ ९ ॥ कहे हुए इस विधानको करते हुए भी अपने आचरण करके पांचवें महीनेमें अथवा छठे महीनेमें मंगलादिक करवाके श्राद्ध और गोत्री भार इनको भोजन करावे और गर्भवतीकी इच्छापूर्वक वस्तु मिलती रहे तो स्वयंवात्, शूर, वीर, पंडित, शीलवान् ऐसा पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

इति वैरीन्यासियुवशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभापाटीकायां
तृतीयस्थाने गर्भोपचारो नाम एकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५०.



अथ चलितगर्भचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ प्रथमे मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदि ॥
तदा मधुकमृद्रीकाचन्दनं रक्तचन्दनम् ॥१॥ पयसालोडितं पीतं
तेन गर्भः स्थिरो भवेत् ॥२॥ द्वितीये मासि चलिते कृणाले नाग-
केशरम् ॥ तृतीये मासि गर्भस्य चलनं दृश्यते यदा ॥३॥ तदा मूष-
ककिहं तु शर्करापयसा पिबेत् ॥ चतुर्थे मासि दाहश्च पिपासा
शूलमेव च ॥४॥ ज्वरेण स्त्रीणां यदि गर्भश्चलति तदोशीरचन्द-
ननागकेशरधातकीकुसुमशर्कराघृतमधुदधि पाययेत् ॥ पञ्चमे
मासे चलिते गर्भे दाडिमीपत्राणि चन्दनं दधि मधु च पाय-
येत् ॥ षष्ठे मासि गैरिकं कृष्णमृत्तिकागोमयभस्म उदकं परिजुतं
शीतलं चन्दनं शर्करया सह पिबेत् ॥ सप्तमे मासि गोक्षुरसम-
ङ्गपद्मकघनसुशीरनागकेशरं मधुरं पाययेत् ॥ अष्टमे मासि
रोध्रं मधु मागधिकाश्च सह दुग्धेन पीतवतीनां चलिते गर्भे
स्त्रीणां सुखं सम्पद्यते ॥५॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीय-
स्थाने चलितगर्भचिकित्सानाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

आत्रेयजी कहते हैं—यदि पहिले महीनेमें गर्भ चलायमान दीखे तो मुलहटी, मुनका, दाख, चंदन, लाल चंदन ॥ १ ॥ इनको दूधमें घोल पीनेसे गर्भ स्थिर हो जाता है ॥ २ ॥ दूसरे महीनेमें गर्भ चलायमान होजावे तो कमलकी नाली, नागकेशर इनको देवे और तीसरे महीनेमें गर्भ चलायमान हुआ दीखे ॥ ३ ॥ तो मूसाकी बीठको, खांड और दूधके संग पीवे और चौथे महीनेमें जो दाह हो, तृषा हो, झूल हो ॥ ४ ॥ और ज्वरसे स्त्रियोंका गर्भ चलता हुआ मालूम होवे तो खश, चंदन, नागकेशर, धायके फूल, खांड, घृत, शहद, दहीको पिलावे और पांचवे महीनेमें गर्भ चलता हुआ दीखे तो अनारके पत्ते, चंदन, दही, शहद इनको पिलावे, छठे महीनेमें गेरू, काली मृत्तिका, गोबर, आरनोंकी भस्म इनको जलमें घोल छानके दालचीनी, चंदन, खांड, ये मिला पीवे और सातवें महीनेमें गोखरू, लज्जावंती, पद्माक, नागरमोथा, खश, नागकेशर, शहद, इनको पिलावे और आठवें महीनेमें लोध, शहद, पीपली इनको पीवती हुई स्त्रियोंका चलायमान गर्भ स्थिर रह जाता है और सुख होता है ॥ ५ ॥ इति वेरीनि ० हारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने चलितगर्भचिकित्सानाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५१.

अथ गर्भोपद्रवचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ हृल्लासच्छर्दिशोषश्च ज्वरः शोफस्तथारुचिः ॥ विवर्णत्वमतीसारोऽष्टौ गर्भोपद्रवास्स्मृताः ॥ १ ॥ वक्ष्यामि भेषजं तस्य यथायोगेन साम्प्रतम् ॥ वटप्ररोहं मगधाशुशीरं घनमेव च ॥ २ ॥ युता खण्डगुटिकास्ये विहिता शोषवारिणी ॥ ३ ॥ वत्सकं मगधाशुण्ठी तथा चामलकीफलम् ॥ युक्तं कोमलबिल्वेन दध्ना पिष्टं तु दापयेत् ॥ ४ ॥ शर्करासंयुतं पानं स्त्रीणां गर्भे हितं सदा ॥ ५ ॥ पीतो भूनिम्बकल्कश्च शर्करासमभावितः ॥ छर्दिं हरेच्च हृत्क्लेदं मधुना वा समन्वितः ॥ ६ ॥ शृङ्गवेरं सकटुकमातुलुङ्गस्य केशरम् ॥ मार्जनं दन्तजिह्वासु गण्डूषश्चोष्णवारिणा ॥ ७ ॥ गुर्विणीनाञ्च सर्वासामरुचिं च नियच्छति ॥ वत्सकं दाडिमं पाठा बिलबिल्वबलास्तथा ॥ ८ ॥ जम्ब्वाम्रपल्ल-

वाश्चैव यथा लाभेन सत्तम ॥ शर्करादधिसंयुक्तं स्त्रीणाञ्चै-
वातिसारके ॥ ९ ॥ हरीतकी नागरकं गुडेन वा त्रिफलाकषा-
यः ॥ शीतः स्त्रीणां विनिहन्ति पाने विबन्धविद्रधींश्च ॥ १० ॥
मूत्रविबन्धनस्य त्रपुसैर्वारिबीजानि सागधी ॥ शिलाभेदं
सिताब्जश्च पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥ मूत्ररोधं गुर्विणीनां वारय-
त्याशु निश्चितम् ॥ ११ ॥

आग्नेयजी कहते हैं—थुकयुकी, छर्दि, शोष, शोजा, ज्वर, अरुचि, अतिसार, विवर्ण
ये आठ गर्भके उपद्रव हैं ॥ १ ॥ अब योगसे उसकी औषधको कहेंगे । वडके अंकुर, पीपली,
खरश, नागरनोथाका चूर्ण ॥ २ ॥ खांड गोली बनाके सुखमें धारण करनेसे शोषका निवा-
रण होता है ॥ ३ ॥ कूडाकी छाल, पीपली, सूठ, आवले, कच्ची बेलगिरीको दहीमें
पीस ॥ ४ ॥ खांड मिला पीनेसे स्त्रियोंके गर्भमें सदा सुख होता है ॥ ५ ॥ चिरायतेका
कल्क बना बराबरकी खांड मिला पीनेसे गर्भवती स्त्रीकी छर्दिका निवारण होता है, शहदमें
मिलाके पीनेसे हृदयकी ग्लानिका नाश होता है ॥ ६ ॥ अदरख मिर्च विजौराकी केशरसे
दांत जिहा इनको धोवे और कुल्ले धारण रखे ॥ ७ ॥ तो गर्भवती स्त्रियोंकी अरुचिका नाश
होता है और कूडाकी छाल, अनारदाना, पाठा, बड़ी सेमफली, बेलगिरी, खरेहटी ॥ ८ ॥
जामन, आव इनके पत्ते इनमेंसे जितनी औषधें मिलें उनको खांड दहीमें मिलादेनेसे वातसे
उपजा स्त्रियोंका अतिसार रोग दूर होता है ॥ ९ ॥ हरडै, सूठ इनको त्रिफलाके काथमें
मिला और गुड मिला शीतलकर पीनेसे गर्भवती स्त्रीका मलका बंधा, विद्रधी इनका
नाश होता है ॥ १० ॥ काकडीके बीज, नेत्रवाला, पीपली, पाषाणभेद, मिश्री,
इनको चावलके धोवनके जलके संग पीवे तो स्त्रियोंका बंध हुआ मूत्र शीघ्र ही उतारता है ॥ ११ ॥

मधुकादिकल्क ।

मधुकविषमृणालं पद्मकिञ्जल्ककल्कं घनमतिविषमैन्द्रं बीज-
सौशीरनीरम् ॥ समकृतमथ कल्कं देयमाशु प्रपाने हितमपि
युवतीनां गर्भचाले सिताढ्यम् ॥ १२ ॥

मुलहटी, अतीश, कमलकी नाली, कमलकेशर इनका कल्क बना अथवा नागर-
मोथा, अतीश, इंद्रजय, खरश, नेत्रवाला इनको समान भाग ले कल्क बना शीघ्र ही गर्भवती
स्त्रीको पान करावे तथा गर्भवती स्त्रियोंका गर्भ चलित होनेमें मिश्रीसे युक्त इन औषधोंको
पान कराना श्रेष्ठ है ॥ १२ ॥

अथ गर्भोपद्रवमें उपचारकी शिक्षा ।

गर्भस्योपद्रवाः शोफाः स्वेदयेदुष्णवारिणा ॥ न दातव्यो मति-
मता विरेको दारुणो महान् ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारी-
तोत्तरे तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सा नामैकपञ्चाशत्तमो-
ऽध्यायः ॥ ५१ ॥

गर्भके उपद्रव जो शोजे हो जावें तो गरम जलसे पसीना दिलावे और बुद्धिमान् वैद्य
गर्भवती स्त्रीको दारुण जुलाव नहीं देवे ॥ १३ ॥

इति बेरीनिवासिवुधशिवसहायसूनुवैचरविदत्तशाहयनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
तृतीयस्थाने गर्भोपद्रवचिकित्सानाम एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२.

अथ मूढगर्भचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ विरुद्धाहारसेवाभिस्तथा गर्भव्यथासु च ॥
अतिमूर्द्धनपीडायाः पीडां प्राप्नोति चार्भकः ॥१॥ तिर्यग्भाषि-
च गर्भश्च त्यक्त्वा द्वारं भगस्य च ॥ अन्यद्वा प्रियतेऽपत्यं तेन
कष्टं प्रपद्यते ॥ २ ॥ अथवा लज्जया स्त्रीणां सङ्कोचात्सङ्कुचिते
भगे ॥ मूढगर्भश्च जानीयात्तस्य वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ३ ॥ व-
स्तिशूलश्च भवति योनिद्वारं निरुन्धति ॥ गर्जते जठरं यस्या
आध्मानश्चैव जायते ॥४॥ तोदनं चाङ्गभङ्गश्च निद्राभङ्गश्च
जायते ॥ वाताद्भवति गर्भस्य संरोधो भिषगुत्तम ॥ ५ ॥ शूलं
ज्वरस्त्रिदोषश्च तृष्णादोषो भ्रमस्तथा ॥ मूत्रकृच्छ्रं शिरोऽर्तिः
स्यात्पित्ताद्वोधोभ्रूणस्य च ॥ ६ ॥ आलस्यतन्द्रानिद्रा च जा-
व्याध्मानं च वेपथुः ॥ कासो विरसता चास्ये श्लेष्मणा मूढगर्भ-
के ॥७॥ द्वन्द्वैश्च द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वं स्यात्सान्निपातिकम् ॥ ८ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—विरुद्धआहारादिक करनेसे गर्भमें बाधा होनेसे बालकके मस्तकमें
पीड़ा होनेसे बालक दुःखित होजाता है ॥ १ ॥ वह तिरछा हो भगके द्वारको त्याग देता है

और कहीं मरजाता है इससे स्त्रीको काट होता है ॥ २ ॥ अथवा लजासे स्त्रीकी भ्रमका नैकोच होनेसे मूढगर्भ होजाता है उसके लक्षणको कहते हैं ॥ ३ ॥ वस्त्रिमें शूल, योनिद्वार रुकजावे और जिसका उदर गंजे और अमारा हो ॥ ४ ॥ पीड़ाहो, अंगभंगहो, निद्राभंगहो, हे उत्तम वैद्य ! उसे वातसे उपजा गर्भका निरोध जानना ॥ ५ ॥ शूलहो त्रिदोषसहित ज्वरहो, तृपाहो, दोषका भ्रमहो, सूत्रकृच्छ्रहो, शिरमें पीड़ाहो वह पित्तसे उपजा गर्भनिरोध जानना ॥ ६ ॥ आलस्यहो, तंद्राहो, निद्राहो, जड़पनाहो, अमाराहो, कंपनाहो, खाँसीहो, मुखमें विरसताहो, ये लक्षण कफसे उपजे मूढगर्भके हैं ॥ ७ ॥ दोदोषोंसे मिलेहुए लक्षण जानने जिसमें सब लक्षण मिलें वह सन्निपातका मूढगर्भ जानना ॥ ८ ॥

अथ मृतगर्भका लक्षण ।

असमूर्च्छातृपाध्मानं वातरोधश्च विह्वलम् ॥ मूर्च्छावमिं सपा-
रुण्यं दीनत्वमुपगच्छति ॥ ९ ॥ मृतगर्भं विजानीयादाशुकारी
स्त्रियामपि ॥ अतो वक्ष्यामि भैषज्यं महामोहे विशारद ॥ १० ॥

जनहो, मूर्च्छाहो, तृपाहो, अमाराहो, वातका रोधहो, विह्वलहो, मूर्च्छाहो, वमनहो, कठोर-
ताहो, गरीबपनाहो ॥ ९ ॥ वहाँ स्त्रीके मराहुआ गर्भ जानना इसका इलाज शीघ्र ही करे,
हे वैद्य ! इन महामोहकी अब औषधोंको कहेंगे ॥ १० ॥

अथ वातिकमूढगर्भचिकित्सा ।

वातिके मर्दनाभ्यङ्गं स्वेदनं वाल्पमेव च ॥

यवागूं पञ्चकोलश्च पाययेद्विषयुत्तमः ॥ ११ ॥

वातके मृतगर्भमें मर्दन करै मालिस करै अल्प २ पसीना दिलावै और पंचकोल, अर्थात्
सूँठ, पीपली, पीपलामूल, चव्य, चीता, इनकी यवागू पिलावे ॥ ११ ॥

अथ पैत्तिकमूढगर्भचिकित्सा ।

पैत्तिके शीतलं पानं शीतान्नसहितानि च ॥

व्यञ्जनानि तथा तस्य यष्टिकं पयसा पिबेत् ॥ १२ ॥

पित्तके मृतगर्भमें शीतल पान, शीतल अन्न और शाक आदिक देवे और मुलहठीको
दूधके संग पीवे ॥ १२ ॥

अथ कफजमूढगर्भचिकित्सा ।

त्रिकटु त्रिफला कुष्ठं रोध्रं वत्सकधातुकी ॥

सगुडं कथितं पाने श्लेष्मणा मूढगर्भके ॥ १३ ॥

ककूके मूढगर्भमें सोठ, मिरच, पीपली, त्रिफला, कूठ, लोध, कूडाकी छाल, धायके फूल, गुड इनका काथ बना पान कराना हित है ॥ १३ ॥

अथ रक्तपित्तज मूढगर्भचिकित्सा ।

मूर्वाचिश्चावास्तुकर्णीमज्जिष्ठारोधनीलिकाः ॥ कर्कण्डुमूलं सौ-
राष्ट्री काथश्च सगुडो हितः ॥ १४ ॥ रक्तपित्तविकारेषु कुक्षि-
शुद्धिश्च जायते ॥ मृतगर्भस्य वक्ष्यामि भेषजं भिषजावर ॥ १५ ॥
मर्दयित्वा मानुषीश्च ततश्चापि प्रयत्नतः ॥ निराहाराच्च त्रियते
यदिगर्भोऽन्तरे स्त्रियः ॥ १६ ॥

मरोडफली, अमली, वास्तुकर्णी, मंजीठ, लोध, नील, बेरीकी जड़, फिटकिरी इनका काथ बना गुड मिला ॥ १४ ॥ रक्तपित्तके विकारोंमें कुक्षिकी शुद्धिकेवास्ते देना श्रेष्ठ है और हे उत्तम वैद्य ! अब मृतगर्भकी औषधको कहते हैं ॥ १५ ॥ यदि निराहार लंघन करनेसे स्त्रीके उदरमें गर्भ मरजावे तो यत्नसे स्त्रीको मर्दन करि पीछे शस्त्रक्रिया करै उसको मुझसे सुनो ॥ १६ ॥

अथ मूढगर्भमें शस्त्रचिकित्सा ।

तदा शस्त्रप्रतीकारं भेषजानि शृणुष्व मे ॥ नाभिविलशयाच्च
सुकुण्डलिकां कृत्वा तु तस्योपरि मूढगर्भासुपवेश्य जानुनी प्र-
सार्य किञ्चित्पृष्ठभागे साधारणमवष्टभ्य उदरादधोऽवतारयेत्
योनिद्वारे प्रगलति तिलतैलेन वारिणा परिभ्यज्य हस्तो याति
योनिद्वारश्च तस्मात्तर्जन्याङ्गुष्ठेन गलप्रदेशे धृत्वा निःसारयेत् ॥
अथार्द्धचन्द्रेण शस्त्रेणैव मृतगर्भस्य बाहुयुगलं संच्छिद्य बाहू-
निःसारयेत् ॥ १७ ॥

नाभिके विलके समान गोल और डूँधी कुंडलिका अर्थात् ईडबीसी बनाके उसके ऊपर, मूढगर्भवाली स्त्रीको बैठाके उसके गोडे पसराके पीठकी ओरसे साधारण कछुक दबाव और उदरसे नीचेको गर्भको उतारे । जब योनिके द्वारपै गर्भ आजावे तब तिलोंका तेल जल इनकी मालिस करे पीछे योनिद्वारसे बालकका हाथ निकसे तब तर्जनी अंगुली और अंगूठेको योनिके भीतर कर उस बालकके गलेको पकड़ि बाहिरको खींच लेवे अथवा अर्द्धचंद्र नामवाले शस्त्रसे उसे मरेहुए बालककी दोनों बाहुओंको काटि बाहिरको निकास देवे ॥ १७ ॥

अथ उत्पत्तिके उपायके वास्ते मंत्र और औषध ।

लाङ्गल्या मूलेन उष्णेन वारिणा योपितां नाभिलेपेन शीघ्रं
गर्भो जायत प्रसूयते च ॥ वलामूलं सूर्यकान्तिसोमवल्लीकानि
कज्जलेन पिष्ट्वा लेपनं करोतु ॥ १८ ॥

कलहारीकी जड़को गरम जलमें पीस गर्भवती स्त्रियोंको नाभिपे लेप करनेसे शीघ्रही बालक उत्पन्न होता है और खरेहटाकी जड़, सूर्यमुखी, चांदवेल इनको कज्जलके संग लेप करना हित है ॥ १८ ॥

अथ सुखसे बालकहोनेका यत्न ।

भीरुभूनिम्बवार्ताकी मूलञ्च पिप्पलीयकम् ॥ यवान्यग्रवचाः पिष्ट्वा
तथा चोष्णेन वारिणा ॥ १९ ॥ नाभिदेशादधस्ताच्च प्रलेपेन
प्रसूयते ॥ मूलञ्च लाङ्गलिक्याश्च देवदाल्याश्च तुम्बिका ॥ २० ॥
कोशातक्यादिकं सर्वं लेपने परिकल्पितम् ॥ सूतिलेपाः स्त्रियो
ह्येते सुखेन सा प्रसूयते ॥ २१ ॥

अतावरी, चिरायता, वार्ताकी, कटेइलीका भेद, उसकी जड़, पीपली, अजवायन, वज्र, इनको गरम जलके संग पीस ॥ १९ ॥ नाभिस्थानसे नीचेको लेप करनेसे बालक उत्पन्न होता है और कलहारीकी जड़, देवताडकी जड़, तुंबी ॥ २० ॥ कड़वी तोरी, इनको पीस लेप करना श्रेष्ठ है । कहे हुए ये सब लेप करनेसे स्त्री सुखसे बालकको जनती है ॥ २१ ॥

अथ मन्त्रः ।

हिमवदुत्तरे कूले सुरसा नाम राक्षसी ॥ तस्या नूपुरशब्देन
विशल्या गुर्विणी भवेत् ॥ २२ ॥ ऐं ह्रीं भगवति भगमालिनि !
चल चल भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा ॥ ॐ नमो
भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने प्रतिचालितसकलसुरासुरचि-
त्ताय युवतिभगवासिने ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा ॥
एभिर्मन्त्रितं पयः पाययेत्तेन सुखप्रसवः ॥ २३ ॥

हिमवान् पर्वतकी दाहिनी तर्फको किनारेपे सुरसा नामवाली राक्षसी रहती है उसके नूपुर विछुवोंके शब्दसे मूढ़गर्भवाली स्त्री बालकको जनती है ॥ २२ ॥ ऐं ह्रीं भगवति भगमालिनि चलचल, भ्रामय पुष्पं विकाशय विकाशय स्वाहा । ॐ नमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्विने प्रतिचालितसकलसुरासुरचित्ताय युवतिभगवासिने ह्रीं गर्भं चालय चालय स्वाहा, इन मंत्रोंसे पढ़ाहुआ दूध पिलावे इससे सुखसे बालक होता है ॥ २३ ॥

अथ यन्त्र ।

ऐं ह्रीं ह्रीं हूं ह्रैं ह्रौं ह्रौं ह्रः ॥२४॥ इदं यन्त्रं भूर्जपत्रस्योर्ध्वभा-
गे लिखित्वा मूढगर्भायै दर्शयेच्छय्यातले च स्थापयेत्तेन
सुखेन प्रसवः ॥ २५ ॥

ऐं ह्रीं ह्रीं हूं ह्रैं ह्रौं ह्रौं ह्रः ॥ २४ ॥ इस यन्त्रको भोजपत्रके ऊपर लिखके मूढगर्भवाली
को दिखावे उसकी शय्याके नीचे स्थापित करदेवे इससे सुखसे बालक उत्पन्न होता है ॥ २५ ॥

अथ मन्त्र ।

गङ्गातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये ॥ तस्याः पक्षच्युतं तोयं
पाययेच्च ततः क्षणात् ॥ २६ ॥ ततः प्रसूयते नारी काकरुद्रवचो
यथा ॥ अनेन दूतो व्याकुलो भवेत्तावच्च पाययेत् ॥ २७ ॥ तेन
प्रसूयते नारी गृहे काकसुखेन च ॥ २८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते
हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने मूढगर्भचिकित्सानाम द्विपञ्चाशत्तमो-
ऽध्यायः ॥ ५२ ॥

“गङ्गातीरे वसेत्काकी चरते च हिमालये । तस्याः पक्षच्युतं तोयं पाययेच्च ततः क्षणात् ॥
ततः प्रसूयते नारी काकरुद्रवचो यथा” ॥ अर्थ—गङ्गाके तीरपर हिमालयपर्वतमें एक काकी विचरती
है, उसके पंखसे गिराहुआ पानी स्त्रीको पिलावे, इससे स्त्री प्रसवती है ऐसा काकरुद्रका वचन
है ॥ २६ ॥ इसमन्त्रको कहता हुआ दूत एक श्वाससे थकजावे तब गर्भवती स्त्रीको उस जलको
पिलादेवे ॥ २७ ॥ फिर वह स्त्री सुखसे बालकको जनती है जैसे काकी अंडेको ॥ २८ ॥ इति बेरी-
निवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने मूढग-
र्भचिकित्सानाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५३.

अथ सूतिकारोगकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ प्रसूत्यनन्तरं रोध्रा र्जुनकदम्बदेवदारुबीजकाह्वं
कर्कन्धूश्च यथा लाभं लौहितविशुद्धे दापयेत् ॥ प्रसूतिजाता योनिः
संशोध्यते ॥ तैलेनापूर्य्याभ्यज्य चोष्णेन वारिणा स्वेदयेत् ॥
उपवासमेवं कृत्वा द्वितीयदिवसे गुडानागरहरीतकीश्च दापयेत्

द्वययामोर्ध्वं कुलत्थयूपं व सोष्णं पाययेत् ॥ तृतीयदिवसे
पञ्चकोलयवागूर्दापयेत् ॥ चतुर्जातकमिश्रा यवागूर्दापयेत् ॥
पञ्चमेऽहनि शालिपट्टिकौदनं योजयेत् ॥ अनेन क्रमेण दशपञ्च-
दशाहं चोपचारयेत् ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—बालक जननेके पीछे लोव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, देवदार, विजौरा, बेरी इनमें जितनी चीजें मिलें उतनी ही लहूकी शुद्धिके वास्ते काथ बनाके देवे इससे प्रसूति स्त्रीकी योनी शुद्ध हो जाती है और तेलकी मालिस कर गरम जलसे पसीना दिलावे । पहले दिन स्त्रीको लंबत करावे और दूसरे दिन गुड़, सोंठ, हरडे इनको देवे फिर दोपहर पीछे कुलथीका यूप गरम २ देवे और तीसरे दिन पञ्चकोल अर्थात् पीपली, पीपलामूल, सोंठ, चव्य, चीता इनकी यवाग् बनाके देवे और चौथे दिन इस यवागूमें चातुर्जातक अर्थात् दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर, ये मिलाके देवे और पांचवे दिन शालिसंज्ञक चावलोंके भातका भोजन करे इसी क्रमके अनुसार पन्द्रह दिन पथ्य भोजनका उपचार करना चाहिये ॥ १ ॥

अथ स्त्रीके दूध बढानेके उपाय ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं नागरं वनवालुकम् ॥ कुस्तुम्बुह्मणि
सज्जिष्ठां सहक्षीरेण कल्कयेत् ॥ २ ॥ पानं क्षीरविशुद्ध्यर्थं कल्क-
सश्चात्यनन्तरम् ॥ मरीचं पिप्पलीमूलं क्षीरं क्षीरविशुद्ध्यर्थे ॥
॥ ३ ॥ सागधी नागरी पथ्या गुडेन सघृतं पयः ॥ पानं
जनयते क्षीरं स्त्रीणाञ्च क्षीरपादपि ॥ ४ ॥ एवं कृत्वा च
नारीणां द्वादशाहे भिषग्वरः ॥ माङ्गल्यं वाचनं कृत्वा योषा-
र्थञ्च प्रदर्शयेत् ॥ ५ ॥ जातके सुतमोक्षञ्च द्वादशाहं तथा
पुनः ॥ नामकर्मकृतौ सत्यां कर्णवेधनमेव च ॥ ६ ॥ वस्त्र-
बन्धं विवाहञ्च कारयेद्बालकस्य च ॥ ७ ॥ इत्यात्रेय भा-
षिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने सूतिकोपचारो नाम त्रिपञ्चा-
शत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

पीपल, पीपलामूल, सोंठ, नागरमोथा, नेत्रवाला, धनियां, मँजीठ इनको दूधमें पीस कल्क बना ॥ २ ॥ इस कल्कको खावे और दूध पीवे ऐसे करनेसे स्त्रीके दूधकी शुद्धि हो जाती है और मिरच, पीपलामूल, इनसे युक्त दूधके पीनेसे स्त्रियोंके दूधकी शुद्धि होती है ॥ ३ ॥ पीपली, सोंठ, हरडे, इनको गुड़ घृतसहित दूधमें मिला पीनेसे स्त्रियोंके दूध बढता है ॥ ४ ॥ इस प्रकारके

बारहमें दिन मंगलाचरण करवाके पीछे स्त्रियोंका (अर्थात् मंगलादिकके) दर्शन करवावे ॥ ५ ॥ जातककर्ममें सुतकी उत्पत्ति होनेका मंगल करवावे पीछे बारहमें दिन मंगल करवाके नामकर्म करवावे पीछे कर्णवेधकर्म करवावे ॥ ६ ॥ फिर वस्त्रबन्ध, तागड़ी आदि बांधनेका कर्म और विवाह-कर्म ये सब कर्म बालकके करवाने चाहिये ॥ ७ ॥ इति वेरीनि० दितहारीतसंहिताभाषाटीकायां तृतीयस्थाने सूतिकोपचारो नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५४.

अथ बालरोगनिदानलक्षणम् ।

आत्रेय उवाच ॥ पञ्चैव क्षीरदोषाश्च स्त्रीणाञ्च कथिता बुधैः ॥ घनक्षीरोष्णक्षीराम्लक्षीरा च तथा परा ॥ १ ॥ अल्पक्षीरा क्षारक्षीरा मृदुक्षीरा तथा परा ॥ मृदुक्षीरा भवेत्सौख्या पञ्चान्या दोषकारकाः ॥ २ ॥ घनाध्माननिरोधत्वं श्वासकासादिसम्भवः ॥ उत्फुल्लकुक्षितैवं हि घनक्षीरस्य सेवनात् ॥ ३ ॥ अल्पसत्त्वः कुशो दीनः श्वासातीसारपीडितः ॥ अल्पक्षीरस्य दोषेण सम्भवेद्वतवाक्सुतः ॥ ४ ॥ ज्वरः शोषस्तथाल्पत्वमुष्णक्षीरेण बालके ॥ तथैव चोष्णक्षीरेण ज्वरातीसार एव च ॥ ५ ॥ सुसत्त्वं बलमाप्नोति चारोग्यं लभते शिशुः ॥ मृदुक्षीरेण नियतं जायते रूपवानपि ॥ ६ ॥ चक्षुरोगश्च कण्डूश्च क्षतश्लेष्मावसाविताः ॥ संक्लेदयुक्तं नासास्थं जायते क्षारदुग्धके ॥ ७ ॥

पंडितजनोंने स्त्रियोंके दूधके दोष पांच कहे हैं गाढ़ा दूध, गरम दूध, खट्टा दूध, ॥ १ ॥ थोड़ा दूध, खारा दूध, ये पांच दोष हैं और कोमल, स्वच्छ दूधवाली स्त्री सुखसे युक्त कही और ये अन्य सब दूषित दूधवाली हैं ॥ २ ॥ जो बालक गाढ़ा दूध पीवे तो करड़ा अफारा हो, श्वास रोग हो, खांसी हो और कूखि, जांघोंकी संधि ये फूली हुई रहे ॥ ३ ॥ और अल्प दूधके पीनेसे थोड़ा बल हो, कुश हो, दीन हो, श्वास, अतिसार, इन्होंसे पिड़ित हो और वाणी नष्ट हो जावे ॥ ४ ॥ ज्वर हो अल्पशोष हो अतिसार हो ये स्त्रीका गरम दूध पीनेवाले बालकके रोग हो जाते हैं ॥ ५ ॥ और कोमल स्वच्छ दूध पीनेसे बालक मोटा होता है और बल बढ़ता है, निरन्तर आरोग्य सुखमें प्राप्त रहता है और रूपवान् होता है ॥ ६ ॥ आंखोंमें रोग हो, खाजि हो, गुमड़े, फुंसी

अधिकदोःकाफगिरे, जलने युक्त नासिका और मुख रहे ये द्वारा दूध पीनेवाले बालकके रोग हैं ॥ ७ ॥

अतो वक्ष्यामि सैपज्यं शृणु हारीत से मतम् ॥ ८ ॥

हे हारीत ! अब इनकी औषधोंको कहूँगे तू सुन यह मेरा मत है ॥ ८ ॥

अथ उत्फुल्लरोगकी चिकित्सा ।

आय्वानात्फुल्लकुक्षिश्च श्वासदोषादिपीडितः ॥ उत्फुल्लिका च
विज्ञेया बालानां दुःखकारिणी ॥ ९ ॥ उदरे च जलौकादि-
रक्तं चादौ विमोक्षयेत् ॥ उत्फुल्लिदोषे दातव्यं क्षीरदोषनिवार-
णम् ॥ १० ॥ अग्निना प्रवलः स्वेदो दहेद्वापि शलाकया ॥
जठरे विन्दुकाकारा जायन्ते भिषयुत्तम ॥ ११ ॥ विष्वमूलफलं
पाठा त्रिकटु बृहतीद्वयम् ॥ काथश्च गुडयुक्तश्च बालानाञ्च
ज्वरे हितः ॥ १२ ॥ स्त्रीणां स्यात्पानमेतेषां बालानां
ज्वरनाशनम् ॥ १३ ॥

अफारासे कृत्ति फूली रहे, श्वासआदि दोषोंसे पीडित हो वह उत्फुल्लिकासंज्ञरोग होता है बालकोंको दुःख करनेवाला है ॥ ९ ॥ कुक्षि उत्फुल्लित रोगमें पहले जो दोष आदिकोंसे रुधिरको निकसावे पीछे दूधके दोषको निवारण करे ॥ १० ॥ अग्निसे अति प्रवल पसीना दिलावे, शलाकासे दग्ध करे, उदरमें विंदुवोंसरीखे आकार होजावे ऐसा दग्ध करे ॥ ११ ॥ बेलगिरीकी जड़ और फल, पाठा, त्रिकटु अर्थात् सूँठ, मिरच, पीपल, दोनों कटेहली, इनका काथ बना गुड मिला देना बालकोंको हितदायक कहा है ॥ १२ ॥ इस काथको बालककी माता स्त्रीको पिलावे तो बालकोंके ज्वरका नाश होता है ॥ १३ ॥

अथ बालरोगचिकित्साके अन्य उपाय ।

हितः पर्पटककाथः शर्करामधुयोजितः ॥ बालानां ज्वरनाशाय
कैरातं मधुसंयुतम् ॥ १४ ॥ रास्नाकर्कटकं भाङ्गीचूर्णं च मधुसं-
युतम् ॥ लेहो वा बालकस्यापि श्वासकासनिवारणः ॥ १५ ॥
पथ्यावचानागरकं घनं कर्कटमेव च ॥ चूर्णं सगुडमेवं हि
बालानां कासनाशनम् ॥ १६ ॥ पलाशभेदं त्रिफलात्रपुसीवरी-
मागधीः ॥ पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन सिताढ्यं मूत्ररोधजित् ॥ १७ ॥

नागरीसंभयादन्तीगुडचूर्णं प्रदापयेत् ॥ बालानां विद्वधिञ्चैव
 नाशयेच्च न संशयः ॥ १८ ॥ पाठाबिल्वशिलादीनि वत्सकं
 शाल्मलीत्वचम् ॥ दुग्धेन पानं बालानामतिसारनिवारणम् १९
 अर्जुनञ्च कदम्बञ्च कुष्ठं गैरिकमेव च ॥ लेपनं त्वचि दोषाणां
 वारणं बालकस्य च ॥ २० ॥ रोध्रं रसाञ्जनं धात्री गैरिकं मधुना
 युतम् ॥ अञ्जनं चैव बालानां नेत्ररोगनिवारणम् ॥ २१ ॥

पित्तपापडाके क्वाथमें खांड और शहद मिलाके देना हित है और बालकोंके ज्वरके
 नाशकेवास्ते चिरायता, शहद इनका पिलाना हित है ॥ १४ ॥ और भारंगी, रास्ना,
 काकड़ासींगी इनके चूर्णमें शहद मिला लेह बना चटानेसे बालकका श्वास, खांसी इनका
 नाश होता है ॥ १५ ॥ हरडै, वच, सूठ, नागरमोथा, काकड़ासींगी, इनका चूर्ण
 बना बराबरका गुड़ मिला देनेसे बालकोंकी खांसीका नाश होता है ॥ १६ ॥ टेकू,
 त्रिफला, खीर, शतावरी, पीपली, इनको चावलके धोवनेके जलमें पीस प्यानेसे बालमूत्र-
 रोध दूर होता है ॥ १७ ॥ सूठ, हरडै, जमालगोटकी जड़, इनके चूर्णमें गुड़ मिलाके
 देनेसे बालकोंके विद्वधीरोगका नाश होता है ॥ १८ ॥ पाठा, वेलगिरी, शिलाजीत,
 कुड़ाकी छाल, सेमलकी छाल इनको पीसि दुधके संग प्यानेसे बालकोंके अतिसारका नाश
 होता है ॥ १९ ॥ अर्जुनवृक्ष, कदंब, कूठ, गेरू, इनको शहदमें मिला अंजन करनेसे
 बालकोंके नेत्ररोगका नाश होता होता है ॥ २० ॥ लोध, रसांजन, धामला, गेरू इनको
 शहदके संग पीसकर अंजन करनेसे बालकोंके नेत्रका रोग नष्ट होता है ॥ २१ ॥

अथ बालकोंकी वृद्धिको बढानेवाले औषध ।

वचा ब्राह्मी च मण्डूकी घनकुष्ठं सनागरम् ॥ घृतेन प्रातर्देयञ्च
 बालानां पुष्टिकारकम् ॥ २२ ॥ गुडूचिकापामार्गश्च विडङ्गं
 शंखपुष्पिका ॥ विष्णुकान्ता वचा पथ्या नागरञ्च शतावरी ॥
 ॥ २३ ॥ चूर्णं घृतेन संमिश्रं लिहतो धीः प्रवर्तते ॥ त्रिभिर्दिनैः
 सहस्रकं श्लोकानामवधारयेत् ॥ २४ ॥

वच, ब्राह्मी, सूर्यफूलबेल, नागरमोथा, कूठ, इनको घृतमें मिला प्रातःकाल देनेसे बाल-
 कोंकी पुष्टि होती है ॥ २२ ॥ गिलोय, उंगा, वायविडंग, शंखपुष्पी, विष्णुकान्ता, वच,
 हरडै, सूठ, शतावरी ॥ २३ ॥ इनके चूर्णको घृतमें मिला चटानेसे बालककी बुद्धि बढती
 है । तीन दिनमें हजार श्लोकोंको धारण कर सकता है ॥ २४ ॥

ऊर्ध्वकेशी तथा सेना ह्यष्टौ चैताः प्रकीर्तिताः ॥३३॥ तथान्या-
 साश्च मत्तस्त्वं नामानि शृणु साम्प्रतम् ॥ रोहिणी विजया
 काली कृतिका डाकिनी निशा ॥३४॥ भूतकेशी कृशाङ्गी च
 अष्टौ चैताः प्रकीर्तिताः । लक्षणञ्च प्रवक्ष्यामि शृणु पूजाबलि-
 क्रमम् ॥३५॥ जातमात्रस्य बालस्य लोहिता नाम पूतना ॥
 विस्रगन्धा लोहितञ्च स रोदिति मुहुर्महुः ॥३६॥ बलिं तस्याः
 प्रवक्ष्यामि येन सौख्यं प्रजायते ॥ द्वितीये दिवसे बालं रेवती
 नाम पूतना ॥३७॥ गृह्णाति लक्षणं तस्य रोदिति कम्पते भृशम् ॥
 कृष्णमृन्मयीं प्रतिमां कृत्वा गन्धानुलेपनैः ॥३८॥ कृशरारालचू-
 र्णं च दीपधूपैस्तथाक्षतैः ॥ ताबूतैः कृष्णसूत्रैश्च रात्रौ नैर्ऋतिके
 क्षिपेत् ॥३९॥ तृतीये दिवसे प्राप्ते वायसी नाम पूतना ॥ तथा
 गृहीतमात्रेण रोदिति न पिबेत्स्तनम् ॥४०॥ ज्वरश्चैवातिसा-
 रश्च काकवद्ब्रूदति भृशम् ॥ तस्या दध्योदनं पात्रे यवकृशरपो-
 लिकाः ॥४१॥ ध्वजाभिः सगुडश्चैव कृष्णगन्धानुलेपनम् ॥
 धूपदीपाक्षतैश्चैव मध्याह्ने बलिमाहरेत् ॥४२॥ चतुर्थे दिवसे
 बालं कुमारी नाम पूतना ॥ गृह्णाति बालकस्तेन ज्वरेण परि-
 तप्यते ॥४३॥ शून्यं विगाहते बालस्तन्मुखं परिशुष्यति ॥
 भृशं स रोदिति तस्याः शृणु पूजावलिक्रमम् ॥४४॥ पायसं
 सघृतं खण्डं घृतस्य दीपकत्रयम् ॥४५॥ मृन्मयीं प्रतिमां
 कृत्वा पुष्पधूपाक्षतैरपि ॥ कृतान्तदिशि मध्याह्ने बलिं दत्त्वा
 सुखी भवेत् ॥४६॥ पञ्चमे दिवसे बालं शाकुनी नाम पूतना ॥
 गृह्णाति स तथाक्रान्तः स्तन्यं नाकर्षते शिशुः ॥४७॥ संज्वरो
 वमति रौति कासमानोऽथ वेपते ॥४८॥ तस्याः शोभनिका
 पूजा क्रियते तिललङ्घुकैः ॥ श्वेतगन्धाक्षतैर्धूपैः पूजयेन्मृ-
 ण्मयाकृतिम् ॥४९॥ उत्तराशां समाश्रित्य पूर्वाह्णं बलिमाह-

रेत् ॥ पष्टे च दिवसे प्राप्ते शिवा नाम कुमारिका ॥५०॥ रौति
निःश्वसिति तेन वमति कम्पते तथा ॥ स्तन्यञ्च नाहरेद्बालो
ज्वरतीसारपीडितः ॥५१॥ तस्यै बलिः प्रदेयश्च सप्तग्रीहिम-
यश्चरुः ॥ वायसैर्दधिदीपैश्च पूज्या सा तिलचूर्णकैः ॥५२॥ गन्ध-
पुष्पाक्षतैर्वृषैः पूजयेन्मृण्मयाकृतिम् ॥ ऐशानीं दिशमाश्रित्याप-
राह्णे बलिमाहरेत् ॥५३॥ सतमेऽहिं पूतनाया उर्ध्वकेश्याः शि-
शौ तथा ॥ पूर्ववदृश्यते चित्तं तथैव बलिमाहरेत् ॥५४॥ अष्टमे
दिवसे प्राप्ते सेना नाम च पूतना ॥ तथा गृहीतः श्वसिति
हस्तौ कम्पयते भृशम् ॥५५॥ तस्य दध्योदनं दद्यात्तिलचूर्ण-
ञ्च पोलिकाम् ॥ धूपदीपगन्धपुष्पताम्बूलान्यक्षतानि च ॥
॥५६॥ आग्नेयीं दिशमाश्रित्य प्रदोषे बलिमाहरेत् ॥ एवं
क्रमेण मासस्य वर्षस्य बलिकर्म च ॥५७॥ इत्यात्रेयभाषिते
हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने बालचिकित्सानाम चतुःपञ्चाशत्तमो-
ऽध्यायः ॥ ५४ ॥ इति कौमारतन्त्रम् ॥

शून्य मकानमें और देवताओंके मंदिरमें तथा देवताओंकी मूर्तियोंके समीपमें, चौराहामें तथा
नदीके संगममें भयसे क्षुभित बालक होजावे ॥ ३१ ॥ तब हे उत्तम वैद्य ! उस बालकको
पूतना ग्रहण करलेती है ॥ ३२ ॥ और लोहिता, रेवती, ध्वाक्षी, कुमारी, शाकुनी, शिवा,
उर्ध्वकेशी, सेना, ऐसे आठ प्रकारकी पूतना होती हैं ॥ ३३ ॥ और अन्य पूतनाओंके नाम
तू अब मुझसे सुनो । रोहिणी, विजया, काली, कृत्तिका, डाकिनी, विशा ॥ ३४ ॥ भूत-
केशी, कृशांगी, ये आठ कही हैं इनके लक्षण और पूजा, बलिके क्रमको कहते हैं सुनो
॥ ३५ ॥ जन्ममात्र लियेहुए बालकके लोहिता पूतना लगती है उससे बालकमें बुरी गंध
आवे बारंवार रोवे ॥ ३६ ॥ उसकी बलिको कहेंगे इससे सुख होता है और जन्मसे
दूसरेदिन बालकको रेवती नामवाली पूतना ग्रहण करती है ॥ ३७ ॥ इससे रोवे और बारं-
वार कांपे तहां काली मृत्तिकाकी मूर्ति ब्रनाके गंध चंदन ॥ ३८ ॥ खीचडी, रालका चूर्ण,
दीप, धूप, अक्षत, नागरपान, काला सूत इनसे पूजन कर इनको निकट दिशामें गेर
देवे ॥ ३९ ॥ और जन्मसे तीसरे दिन बालकको वायसी नामवाली पूतना ग्रहण करती
है इससे ग्रहण होनेसे बालक रोवे चूंची नहीं पीवे ॥ ४० ॥ ज्वर हो, अतिसार हो, बारंवार
आंककी तरह पुकारे उस पूतनाके वास्ते दही, चावल, जवोंकी कृशरा, पोलिका ॥ ४१ ॥

इनको पात्रमें वाल ध्वजाढांक उसमें गुड, काले पुष्प, काला चंदनआदि अनुलेप गेर, धूप, दीप, अक्षत इनसे युक्त करि मध्याह्न समयमें इस बलिको देवे ॥ ४२ ॥ और चौथेदिन बालकको कुमारी नामकी पूतना ग्रहण करती है इससे बालकको अति ताप होती है ॥ ४३ ॥ और शूना रहजावे तब पीडित हो और उसका मुख सूख जावे वारंवार रोवै ऐसी इसपूतनाकी पूजा और बलिको सुनो ॥ ४४ ॥ खीर, घृत, खांड, घृतके तीन दीप कर ॥ ४५ ॥ माटीकी मूर्ति, पुष्प, धूप, अक्षत, इन सबोंको मध्याह्न समयमें दक्षिणकी दिशामें स्थापित कर देवै ऐसे करनेसे बालक सुखी होता है ॥ ४६ ॥ और पाचवें दिन बालकको शाकुनी नामवाली पूतना ग्रहण करती है इससे ग्रसितहुआ बालक चूंचीको नहीं लेता है ॥ ४७ ॥ ज्वरसे युक्त हो वमन करे, रोवे खांसताहुआ कांपे ॥ ४८ ॥ इस पूतनाकी सुन्दर पूजा तिललड्डुओंसे करे और सफेदगंध, अक्षत, धूप इनसे मृत्तिकाकी मूर्ति बनाके उसका पूजन करे ॥ ४९ ॥ उत्तरकी दिशामें मध्याह्न समयसे पहिले इस बलिको देवे और छठे दिन शिवानामवाली पूतना बालकको ग्रहण करती है ॥ ५० ॥ इससे बालकरोवे अत्यंत श्वास लेवे वमन करे कभी कांपे और चूंची नहीं पीवे, ज्वर, अतिसार इनसे पीडित होजावे ॥ ५१ ॥ इसकेवास्ते सातव्रीही धान्य और खीर, हही, दीपक, इनकी बलि देवे और तिलोंके चूर्णसे उसका पूजन करे ॥ ५२ ॥ और माटीकी मूर्त्तिका गंध पुष्प धूप अक्षत इनसे पूजन करे, ऐशान्यदिशामें तीसरे पहरमें इस बलिको देवे ॥ ५३ ॥ सातवेंदिन बालकको उर्व्वकेशी नामवाली पूतना ग्रहण करती है जिसके लक्षण पहिली कही पूतनाके समान होते हैं और पहली कहीहुई बलि देवे ॥ ५४ ॥ और आठवें दिन सेनानामवाली पूतना ग्रहण करती है इससे ग्रसित हुआ बालक अत्यंत श्वास लेवे, वारंवार हाथ कांपे ॥ ५५ ॥ इसकेवास्ते दही, चावल, तिलोंका चूर्ण, पोलिका, इनकी बलि देवे और धूप, दीप, अक्षत, गंध, पुष्प, नागरपान, इनसे पूजन कर ॥ ५६ ॥ अग्नि कोण दिशामें प्रदोष समयमें इस बलिको देवे इसीप्रकारके क्रमसे महीनोंकी और वर्षोंकी भी देवे ॥ ५७ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने बालचिकित्सानाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५.

—००००००—

अथ भूतविद्या ।

आत्रेय उवाच ॥ शून्ये देवकुले श्मशानभुवि वा वीथीप्रतोली-
तले रथ्याकारविहारशून्यनगरे चारामके चत्वरं ॥ जायन्ते
क्षुभिते बलानि हृदये क्षुद्रग्रहाणां नरे ते चापि प्रथिता ग्रहा दश-

विधा वक्ष्याम्यनः सान्प्रतम् ॥ १ ॥ दश प्रोक्ता महाचार्यैः
 केचिदप्येकविंशतिः ॥ दशग्रहाणां वक्ष्यामि चिकित्सां शृणु
 पुत्रक ॥ २ ॥ ऐन्द्राग्नेयौ यमश्चान्यो नैऋतो वरुणो ग्रहः ॥
 मरुतोऽपि कुबेरश्च ऐशान्यो ग्रहको ग्रहः ॥ ३ ॥ पैशाचिको
 ग्रहश्चान्यो दर्शते ग्रहनायकाः ॥ आरादे च विहारे च देवस्थाने
 च यो भवेत् ॥ ४ ॥ ऐन्द्रग्रहं विजानीयात्तेन हर्षति गायति ॥
 सदर्पश्चासदर्पश्च उन्मादग्रस्त एव च ॥ ५ ॥ श्मशाने चत्वरं
 चैव गृह्णात्याग्नेयकुग्रहः ॥ तेनैव रोदित्यत्यर्थं पश्यति
 सर्वतो भयम् ॥ ६ ॥ युद्धभूमौ श्मशाने च यमश्चापि
 उदीर्यते ॥ तेन विह्वलो दीनश्च प्रेतवच्चेष्टते नरः ॥ ७ ॥
 वाल्मीकचत्वरं चत्ये गृह्णाति नैऋतो ग्रहः ॥ तेनासौ वर्त्तते
 द्वेष्टि धावति मारयत्यपि ॥ ८ ॥ हस्तनेत्रो विवर्णास्यो बलिष्ठो
 दुष्टचेतनः ॥ नदीतडागतीरे च चलति वारुणग्रहः ॥ ९ ॥
 तेनास्यात्स्रवति लाला भृशं सूत्रयति नरः ॥ नेत्रप्लावश्च दृश्येत
 सूकवत्प्रविलोक्ष्यते ॥ १० ॥ वातगण्डलीमध्ये च गृह्णाति मारु-
 तग्रहः ॥ तेनास्यं शोषयेद्दीनः रोदित्यथ च कम्पते ॥ ११ ॥
 विह्वलः श्रान्तनेत्रश्च निषीदति क्षुधातुरः ॥ हर्षगर्वाभिमाने च
 गृह्णाति यक्षराड् ग्रहः ॥ १२ ॥ तेन गर्वीकृतश्चैव तथालंकारसु-
 प्रियः ॥ १३ ॥ देवस्थाने च रम्ये च शिवग्रहश्छलप्रदः ॥
 भस्माङ्गरागं कुरुते भ्रमते च दिगम्बरः ॥ १४ ॥ शिवध्यानरतो
 नित्यं गीतवाद्यप्रियस्तु सः ॥ १५ ॥ शून्यागारे शून्यकूपे
 ग्रहको ग्रहनामकः ॥ क्षुधातो न तृषार्त्तश्च कथयन्न शृणोति च
 ॥ १६ ॥ उच्छिष्टे वाशुचौ यस्य छलति पिशाचग्रहः ॥ तेन
 नृत्यति रौति वा गायति जल्पति तथा ॥ १७ ॥ मत्तवद्भ्रमते
 नम्रो लालास्रावः क्षुधादिकः ॥ एवं दशग्रहाणाञ्च लक्षणं कथितं

मया ॥१८॥ वक्ष्याम्यतः प्रतीकारं शृणु पुत्र समासतः॥जल-
स्नानं सातिशयं तथा च बलिकर्म च॥१९॥पूजां यथावाच्य-
मानां तेन संलभते सुखम् ॥२०॥ एलाजातिफलं मधूकयुगलं
रास्ना तथा खादिरःकर्पूरामलकी जटा बहुसुता घोण्टाम्लसारा-
स्तथा ॥ सीसं पारदसारदाडिमफलं मध्वैश्च संमीलितं प्रत्येकं
दधिदुग्धलाङ्गलरसैर्युक्तं समं कल्कितम् ॥२१॥ रसेन भावितं
तस्य गुटिका च प्रकल्पिता॥जयेच्चन्द्रप्रभा नाम तीव्रान्मोहा-
दिकान्गदान् ॥२२॥शुण्ठी मधुकसारश्च चव्यं किंशुकमेव च॥
वचाहिंशुसमायुक्तं वस्तमूत्रेण संयुतम्॥देयं ग्रहविकारघ्नं ग्रहाणां
नाशनं परम् ॥ २३ ॥

आग्नेयजी कहतेहैं-देवताके शून्य मंदिरमें, स्मशानभूमिमें, मार्गमें और उजड़े पड़े
हुवे शहर ग्राम आदिककी गलियों बगीचेमें चौराहेमें ॥ १ ॥ मनमें त्रास होनेसे बलवंत ग्रह
लगजाते हैं,वे बलवंत ग्रह दश प्रकारके होते हैं उनको अब कहते हैं ॥ २ ॥ बड़े
अचार्योंने दश ग्रह कहे हैं और छ इक्कीस कहते हैं हे पुत्र ! उन दश ग्रहोंकी चिकि-
त्साको कहते हैं सुनो ॥ ३ ॥ ऐंद्र, आग्नेय, धर्मराज, राक्षस, वरुण, वायु, कुबेर, ऐशान्य
ग्रहक ॥ ४ ॥ पैशाचिक ऐसे ये दश ग्रहनायक हैं जो बगीचेमें तथा क्रीडास्थानमें देवताके
मंदिरमें मालूम हुआ हो ॥ ५ ॥ वह ऐंद्रग्रह जानलेना उससे हर्ष हो, कभी गावे, कभी अभि-
मानहो, कभी नहींहो और उन्मादसे ग्रस्तहुआ रहे ॥ ६ ॥ और आग्नेयग्रह स्मशान, चूराहा,
इनस्थानोंमें ग्रहण करता है इससे अत्यंत रोवे चारों ओर भय सहित देखै ॥ ७ ॥ और
युद्धकी भूमि, स्मशान, इनमें यमग्रह लगता है इससे विह्वल होजावे दीन हो और प्रेत
सरीखी चेष्टा करै ॥ ८ ॥ बंबई चौराहा यज्ञस्थान इनमें राक्षसग्रह लगता है इससे सबसे वैर
करता हुआ रहे भाजै किसीको मारदेवै ॥ ९ ॥ और वरुणग्रहसे ग्रसित हुआ मनुष्यके
गर्वित नेत्र रहें वर्ण और मुख विगडा हुआ रहे, बलवान् हो, दुष्टचित्त हो, नदी तालावके
तीरपै चलता हुआ रहे ॥ १० ॥ लाल गिरे, बहुत ज्यादा मूते और नेत्रोंमें
जल भरा रहै गंगासरीखा दीखै ॥ ११ ॥ और जो वायुके मंभूलेमें पीडित होवे मरुतग्रहसे
पीडित जानना उससे मुखमें शोषहो दीनहो कांपे और रोवे ॥ १२ ॥ और विह्वल हो
नेत्रोंमें हारसी रहै, पीड़ाहो क्षुधासे पीडितहो और कुबेर ग्रहसे ग्रसित वह होता है ॥ १३ ॥
जोकि हर्ष गर्व अभिमान इनसे युक्त रहै उस पुरुषके गर्भ उठारहे और गहिने पहरनेमें
प्रियरहे ॥ १४ ॥ देवताके रमणीक स्थानमें शिवग्रहकी पीड़ा होती है इससे शरीरपै

मस्त लगावे और नम्रहोके नमता रहै ॥ १५ ॥ नित्य शिवजीके स्थानमें रत रहै, गीत-
वाजा स्तोमें रत रहै ॥ १६ ॥ और शूना मकान, शूना कूया इनमें ग्रहकनाम ग्रह पीड
करता है और क्षुधावृगसे युक्त नहीं हो और कुटिलता कर चुने नहीं ॥ १७ ॥
और शूनाहो अथवा अशुद्धहो तब पिशाच ग्रह पीडा करता है इससे नाचै और गावे और
रोवै और शब्द करै ॥ १८ ॥ और नम्रहोके मद्योन्मत्तकी तरह त्रमें लाल गिरे क्षुधा आदि-
कोसे पीड़ित हो इस प्रकारसे मैंने दश ग्रहोंके लक्षण कह दिये ॥ १९ ॥ अब इनकी
चिकित्साको नेश्वर नामसे जुतो । अत्यन्त जलमें स्नान और बलि देनेका कर्म कही हुई पूजा
ऐसे करनेसे मुक्त होता है ॥ २० ॥ और इलायची, जायफल, मुलहठी, महुआ, रास्ता,
खैर, काहर, आंवला, जटामांसी, महाशतावरी, सुपारी, विजौरा, सीसा, पारा, चिरौंजी,
कनारदाना, मदिरा इनको समान भागले कल्क बना ॥ २१ ॥ पीछे दही, दूध, कलहारीका रस
इनमें भावनादे तिलकी गोली बना लेवे यह चंद्रप्रभा नामवाली गोली मोह अज्ञान आदिक
तीक्ष्णरोगोंको नाशती है ॥ २२ ॥ मूठ, मधुकसार, चण्य, केश, वच, होंग इनको बकराके
मूत्रके साथ देना इससे ग्रहोंका नाश होता है यह ग्रहविकारनाशक उपाय है ॥ २३ ॥

अथ ग्रहदोषनाशक धूप ।

विडालविष्टाहिममोचनिम्बमयूरपिच्छं समराजिका च॥निर्मो-
कपिण्डीतकसर्जसोचधूपं घृताक्तं ग्रहदोषशान्त्यै॥२४॥ चेतना
नाम गुटिका तथा ब्राह्मीघृतं स्मृतम् ॥ अपस्मारे प्रयुक्तानि
तानि चात्र प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

विलावकी विष्टा, कदूर, मोचरस, नींब, मोरका चन्दा इन सबोंके समान राई और सांपकी
कांचली, मैनफल, राल, मोखावृक्ष इनकी धूप बना उसमें घृत मिला धूप देनेसे ग्रहदोषकी शांति
होती है ॥ २४ ॥ पहली कही हुई चेतना नामवाली गुटिका और ब्राह्मीघृत और अपस्मार
रोगमें कहे हुए अन्य औषध इन सबोंको यहां ग्रहदोषमें देवे ॥ २५ ॥

अथ भूतेश्वरमन्त्र ।

हुग्गुलुं समधुघृतं तेन धूपेन धूपयेत् ॥ मन्त्रेण तेन हारीत
तर्जयेद्ग्रहपीडितम् ॥ २६ ॥ ओं नमो भगवते भूतेश्वराय कलि-
कलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्राय त्रिनयनधगधगितपिशङ्ग-
ललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूलखट्वाङ्गडम-
रुकधनुर्बाणमुद्गराभयदण्डत्रासमुद्राव्ययदसंयद्दार्द्रदण्डमण्डि-

ताय कपिलजटाजूटार्द्धचन्द्रधारिणे भस्मरागरञ्जितविग्रहाय
 उग्रफणिकालकूटाटोपमण्डितकण्ठदेशाय जय जय भूतनाथा-
 मरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्य नृत्य चल चल पाशेन बन्ध
 बन्ध हुङ्कारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन हन निशितख-
 ड्गेन छिन्धि छिन्धि शूलाग्रेण भिन्धि भिन्धि मुद्गरेण चूर्णय
 चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशयावेशय स्वाहा ॥ २७ ॥

गूगल, शहद, घृत इन्होंकी धूप बनाके धूपित करे और हे हारीत ! ग्रहपीडित पुरुषको इस
 मन्त्रसे ताड़ना दे ॥ २६ ॥ ओ नमो भगवते भूतेश्वराय कलिकलिनखाय रौद्रदंष्ट्राकरालवक्त्राय
 त्रिनयनधगधगितपिशङ्गललाटनेत्राय तीव्रकोपानलामिततेजसे पाशशूलखड्गाय डमरुकधनुर्बाणमुद्ग-
 रामयदण्डत्रासमुद्राव्ययदसंयदारद्रडमंडिताय कपिलजटाजूटार्द्धचन्द्रधारिणे भस्मरागरञ्जितविग्रहाय
 उग्रफणिकालकूटाटोपमण्डितकण्ठदेशाय जय जय भूतनाथामरात्मने रूपं दर्शय दर्शय नृत्य नृत्य
 चल चल पाशेन बन्ध बन्ध हुङ्कारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन हन, निशितखड्गेन छिन्धि छिन्धि
 शूलाग्रेण भिन्धि भिन्धि मुद्गरेण चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहाणामावेशयावेशय स्वाहा ॥ २७ ॥

अथ आवेशमन्त्र ।

ग्रहाविष्टेन चेतस्मै दीयते बलिरुत्तमः ॥ सुक्तो भवति तस्मान्च
 संशयो नास्ति तत्र च ॥ २८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे
 तृतीयस्थाने भूतविद्यानाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

जिस पुरुषमें ग्रह प्रवेश होरहाहो उसके इस मन्त्रको पढ़ताड़ना दे जो ग्रह प्रवेश मालूम होता
 हो उसी ग्रहके वास्ते बलिदान देनेसे वह पुरुष ग्रहसे छूट जाता है इसमें सन्देह नहीं ॥ २८ ॥

इति बेरीनिवा० वैद्यविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारी० भाषाटीकायां तृतीयस्थाने भूतविद्यानाम

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५६.

अथ विषतन्त्र ।

आत्रेय उवाच ॥ द्विविधं विषमुद्दिष्टं स्थावरं जङ्गमं भिषक् ॥
 शृङ्गिको वत्सनाभश्च तथा च शार्ङ्गवैरिकः ॥ १ ॥ दारुकः
 कालकूटश्च शंखः स्यात्सत्सुकन्दुकः ॥ हालाहलश्चाष्टभिश्च तथा-

श्रौ विषजातयः॥२॥ शृङ्गिकः कृष्णवर्णश्च वत्सनाभश्च पीतकः
 ॥ शुण्ठीसमानवर्णश्च शार्ङ्गवेरः स उच्यते ॥३॥ दारको हरिव-
 र्णश्च कालकूटो मधुग्रमः ॥ शंखश्चातिविषाभासः पीताभः सत्सु-
 कन्दुकः ॥४॥ हालाहलः कृष्णवर्णश्चाश्रौ चापि विजातयः ॥
 पीतं विषं नरं दृष्ट्वा सद्यो वमनमुत्तमम् ॥५॥ यावत्पीतातिवि-
 षश्च तावत् वमयेत्सदा ॥ सिञ्चेच्छीताम्भसा वक्रं मन्त्रपूतेन
 सत्वरम् ॥ ६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे वैद्य ! स्थावर और जंगम दो प्रकारका विष कहा है । शृङ्गिक, वत्सनाभ, शृङ्गवेरक ॥ १ ॥ दारक, कालकूट, शंख, सत्सुकन्दुक, हालाहल ऐसे आठ प्रकारके विष कहे हैं ॥ २ ॥ शृङ्गिक विष काला वर्णवाला, वत्सनाभ विष पीला होता है और जो सोंठके समान आकार वर्णवाला हो वह शृङ्गवेरक विष होता है ॥ ३ ॥ दारक विष हरावर्णवाला और कालकूट विष शहद समान वर्णवाला होता है और शंख विष अतीसके समान होता है और सत्सुकन्दुक विष पीला होता है ॥ ४ ॥ हालाहल विष कालावर्णवाला होता है ऐसे आठ प्रकारकी विष जाति कही हैं जहर पीये हुए मनुष्यको देखि शीघ्र ही वमन करावे ॥ ५ ॥ जबतक पिये हुए जहरको गेरे तबतक वमन कराता ही रहे और मन्त्रसे पवित्र हुआ शीतल जलसे उसके मुखको सींचे ॥ ६ ॥

अथ मुखसिंचन मन्त्र ।

ॐ हर हर नीलकंठ ! अमृतं प्लावय प्लावय हुंकारेण विषं ग्रस
 ग्रस क्लीङ्कारेण हर हर ह्रौंकारेण अमृतं प्लावय प्लावय हर
 हर नास्ति विष उच्छिरे उच्छिरे ॥ ७ ॥

ॐ हर हर नीलकंठ अमृतं प्लावय प्लावय हुंकारेण विषं ग्रस ग्रस क्लींकारेण हर हर ह्रौंका-
 रेण अमृतं प्लावय प्लावय नास्ति विष उच्छिरे उच्छिरे ॥ ७ ॥

अथ कानमें जपनेके वास्ते मन्त्र ।

ॐ नमो हर हर नीलग्रीव श्वेताङ्गसङ्गजटाग्रमण्डितखण्डेन्दु-
 स्फूर्तमन्त्ररूपाय विषमुपसंहर उपसंहर हर ३ नास्ति विष ३
 उच्छिरे ३ इति कर्णेजपमन्त्रेण वारंवारं तालुमुखं सिञ्चेच्छीत-
 वारिणा ॥ ८ ॥

ॐ नमो हर हर नीलग्रीव श्वेतांगसंगजटाग्रमंडितखंडेन्दुस्फूर्तमंत्ररूपाय विषमुपसंहर उपसंहर हर हर ३ नास्तिविष ३ उच्छिरे ३ इस कर्णेजपमंत्रसे वारंवार तालुवाको और मुखको शीतल जलसे सींचे ॥ ८ ॥

अथ विषशमन औषध ।

ताण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा चोष्णेन वारिणा ॥ पीतं पीतविषं हन्ति वमने लाघवं भवेत् ॥ ९ ॥ काकजङ्घा सहचरीमूलं चैड-गजस्य च ॥ कदरं कार्मुकञ्चापि त्वचं पीतोष्णवारिणा ॥ पीतं तच्च विषं घोरं नाशयत्याश्वसंशयः ॥ १० ॥ खदिरस्य च मूलञ्च तथा निम्बफलानि च ॥ उष्णोदकेन पीतानि जयेयुस्तत्क्षणाद्विषम् ॥ ११ ॥ वत्साह्वञ्चाश्वगन्धाञ्च पीत्वा चोष्णेन वारिणा ॥ प्रपीतञ्च विषं पाति चाशु नरस्य वेदवाक् ॥ १२ ॥ अथ प्रधान-रक्तस्य क्षते रक्तं विषस्य च ॥ तस्य वक्ष्यामि भेषज्यं येन सम्पद्यते सुखम् ॥ १३ ॥ मर्मस्थाने मर्मगतं तदसाध्यं भवेन्म-तम् ॥ साध्यञ्च तत्त्वग्रक्तस्थं मांसस्थं कष्टसाध्यकम् ॥ १४ ॥ असाध्यं धातुसंप्राप्तं सखे वक्ष्यामि भेषजम् ॥ विषलितं नरं ज्ञात्वा ततः कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥ रजनीयुग्माम्लकेन काञ्जिकेन तु पेपितम् ॥ लेपेन च विषं हन्ति प्रलितं नात्र संशयः ॥ १६ ॥ मातुलुङ्गरसेनापि धावनं काञ्जिकेन वा ॥ अतिशीतेन तोयेन प्रलितं नात्र संशयः ॥ १७ ॥

चौलाईकी जड़को गरम जलके संग पीसि पीनेसे पीया हुआ विषका नाश होता है और वमन होके हलका होता है ॥ ९ ॥ कावली, पीला, कोरंटा, पुवाड़की जड़, सफेद खैरकी छाल इनको गरम जलके संग पीनेसे घोर विषका नाश होता है ॥ १० ॥ खैरकी जड़, नींबूके फल, निंबोली, इनको गरम जलके संग पीनेसे शीघ्र ही विषका नाश होता है ॥ ११ ॥ कूडाकी छाल, असमंघ इनको गरम जलके संग पीनेसे पीया हुआ विष दूर होता है ॥ १२ ॥ इससे अनंतर जो रक्तमें प्रधान उस विषके वास्ते उसकी औषधोंको कहेंगे उससे सुख होता है ॥ १३ ॥ जो मर्मस्थानमें विष प्राप्त हो जावे तब असाध्य जानना और त्वचा रक्त इनमें स्थित हुआ विष कष्टसाध्य होता है ॥ १४ ॥ और धातुमें प्राप्त हुआ विष असाध्य होता है, हे प्रिय ! उनकी

औषधोंको कहते हैं विषसे लिये हुए मनुष्यको जानके पीछे उसकी चिकित्सा करे ॥ १९ ॥
दोनों हृदयोंको विजौराके रक्तमें और कांजीमें पीस लेप करनेसे शरीरके लिपा हुआ विषका
नाश होता है ॥ १६ ॥ विजौराके रससे अथवा कांजीसे तथा शीतल जलसे धोवनेसे शरीरके
लिपा हुआ विषका नाश होता है ॥ १७ ॥

अथ जंगमविषकी चिकित्सा ।

विषं जङ्गममित्युक्तमष्टधा भिषगुत्तम । दर्वीकरा मण्डलिनी
राजिमन्तश्च गुण्डसाः ॥ १८ ॥ वृश्चिको गोरकश्चापितथा च
खण्डविन्दुकः ॥ अलर्कमूषमार्जारविषं प्रोक्तमनेकधा ॥ १९ ॥
दर्वीकराणां सर्वेषामुक्तं वातात्मकं विषम् ॥ मण्डलीनाश्च
सर्वेषां पैत्तिकं विषमुच्यते ॥ २० ॥ राजिमन्तश्च ये प्रोक्तास्तेऽपि
कफात्मका विषाः ॥ विचित्रगमनं मूर्ध्नः पीडनं चातिदुर्भरम् ॥
॥ २१ ॥ हृदये व्यथनं यस्य तमसाध्यं वदन्ति च ॥ नासारक्त-
स्रुतिर्यस्य नेत्रे प्लावश्च दृश्यते ॥ २२ ॥ जडा च जायते जिह्वा
तमसाध्यं विदुर्बुधाः ॥ यस्य लोमानि शीर्यन्ते पीताभं शरीरं
भवेत् ॥ २३ ॥ न स्थिरं मस्तकं यस्य तमसाध्यं भिषग्वर ॥
एभिर्विरहितं दृष्ट्वा कुर्व्यात्तस्य प्रतिक्रियाम् ॥ २४ ॥

हे उत्तम वैद्य ! जंगम विष आठ प्रकारका होता है । दर्वीकर सर्प, मंडलि, राजिमंत सर्प,
गुण्डसा ॥ १८ ॥ वृश्चिक, गोरक, खण्डविन्दुक, ऐसे इन सपाके विष कहे हैं और कुत्ता, मूसा,
बिलाव इत्यादिकोंके अनेक विष कहे हैं ॥ १९ ॥ दर्वीकर अर्थात् करछी सरीखे फणवाले
सब सर्पोंका वातवाला विष होता है, मंडलवाले सर्पोंका पित्तवाला विष होता है ॥ २० ॥
और जो राजिमंत अर्थात् रेखावाले सर्प कहे हैं उनका कफवाला विष होता है और जिस
पुरुषका विचित्र गमन हो और मस्तकमें अत्यंत दुर्भर पीडा हो ॥ २१ ॥ जिसके
हृदामें पीडाहो विषवाले उस मनुष्यको असाध्य जाने और जिसकी नासिकासे रक्त क्षिरे
नेत्रोंमें पानी भरा रहे ॥ २२ ॥ जिह्वा जड होजावे उसको वैद्यजन असाध्य कहते हैं और
जिसके रोम बिखर जावें और शरीर पीला होजावे ॥ २३ ॥ मस्तक स्थिर नहीं हो हे उत्तम-
वैद्य ! उसको असाध्य जाने और जो पुरुष इन लक्षणोंसे रहित हो उसका इलाज करे ॥ २४ ॥

अथ विषबंधनमंत्रः ।

ॐ नमो भगवते सुग्रीवाय सकलविषोपद्रवशमनाय उग्रकाल-

कूटविषकवलिने विषं बन्ध बन्ध हर हर भगवतोनीलकण्ठस्या-
ज्ञा ॥ ॐ नमो हर हर विषं संहर संहर अमृतं प्लावय प्लावय
नासि अरेरे विष नीलपर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ॐ
हाहा ऊचिरे ३॥ अनेन मंत्रेण मुखमुदकेन त्रासयेत् ॥ ॐ नमो-
ऽरेरे हंस अमृतं पश्य पश्य ॥ २५ ॥

ॐ नमो भगवते सुग्रीवाय सकलविप्रोपद्रवशमनाय उपकालकूटविषकवलिने विषं बन्ध २
हर २ भगवतो नीलकण्ठस्याज्ञा । ॐ नमो हरहर विषं संहर संहर अमृतं प्लावय प्लावय नासि
अरेरे विष ! नीलपर्वतं गच्छ गच्छ नास्ति विषम् ॐ हाहा ऊचिरे ३ ॥ इस मंत्रको तीनवार
पठ मुखपे जलके छिड़के मारे ॐ नमो अरेरे हंस ! अमृतं पश्य पश्य ॥ २५ ॥ इति मंत्रः ॥

अथ लेप ।

जयकूटं वचाकुष्ठं सैन्धवं मगधा निशा ॥ लेपो दष्टव्रणे प्रोक्तो
विषं हन्ति सुदारुणम् ॥ २६ ॥ सुरसा रजनी व्योषं यवानी
पारिभद्रकम् ॥ सर्पदष्टव्रणे प्रोक्तं लेपनं विषशान्तये ॥ २७ ॥
कुष्ठं मुस्ता अजाजी च विडङ्गं मधुयष्टिका ॥ गुआमूलं शीततो-
यैलेपो मण्डलिना हितः ॥ २८ ॥ राजिमन्तो विषा यस्य गृह-
धूमं वचा घनम् ॥ सर्षपाश्च यवानी च पिचुमन्दफलत्रयम् ॥
लेपनं राजिमताञ्चैव व्रणतैलेन संयुतम् ॥ २९ ॥

इति राजिमतां लेपः ।

लोहाका चूर्ण, वच, कूठ, सैन्धानमक, पीपल, हलदी, इनका लेप दष्टव्रणमें कहा है यह
दारुण विषको नाशता है ॥ २६ ॥ और ब्राह्मी, हलदी, सोंठ, मिर्च, पीपली, अजवायन, नीबू
इनका लेप सर्पसे उपजा दष्टव्रणपे करना हित कहा है विषकी शांति होती है ॥ २७ ॥
कूठ, नागरमोथा, जीरा, वायविडंग, मुलहठी, चिरभटीकी जड़ इनको शीतल जिलमें पीसि
लेप करनेसे मंडलवाले सर्पोंके विषका नाश होता है ॥ २८ ॥ रेखावाले सर्पोंके विषके
नाशकेवास्ते घरका धूँवा, वच, नागरमोथा, शिरसम, अजवायन, नीबू, त्रिफला इनको व्रणमें
कहेहुए तेलमें पीसि लेप करे ॥ २९ ॥

सटीकिरातं सकटुत्रयं च वचाविशालापिचुमन्दकञ्च ॥ पथ्याय-
वानीरजनीद्वयञ्च दष्टव्रणे लेपनमेव शस्तम् ॥ ३० ॥ स्थावरं

जङ्गमं वापि विषं जग्धं सिपम्बर ॥ शीघ्रं दद्याद्ब्रथां गुर्वी
प्रोक्तञ्च नरसत्तयैः ॥ ३१ ॥

कचूर, चिरायता, सोंठ, मिरच, पीपली, वच, इंद्रायण, नींबू, हरड़, अजवायन, दोनों हलदी इनका लेप दृष्टवर्णने करना श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ हे उत्तम ! वैद्य ! स्थावर अथवा जंगम भक्षण कियाहुआ विष शीघ्रही अत्यंत पीड़ा करता है ऐसा श्रेष्ठ मनुष्योंने कहा है ॥ ३१ ॥

अथ मंत्र ।

ॐ नमो भगवते शिरसिशिखराय अमृतधाराधौतसकलविग्र-
हाय अमृतकुम्भपरितोऽमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा ॥ ३२ ॥
इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने विषतन्त्रं नाम षट्-
पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

ॐ नमो भगवते शिरसिशिखराय अमृतधाराधौतसकलविग्रहाय अमृतकुम्भपरितोऽमृतं प्लावय प्लावय स्वाहा ॥ ३२ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिता-
भाषाटीकायां तृतीयस्थाने विषतन्त्रनाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५७.

अथ भिन्न अर्थात् शस्त्रआदिसे टूटेहुएकी चिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ छिन्नं भिन्नं तथा भग्नं घृष्टं पिष्टं तथैव च ॥
आस्फालितं सम्प्रहारः संघातः कथ्यते बुधैः ॥१॥ शस्त्रभिन्नं
नरं दृष्ट्वा कर्तव्या च प्रतिक्रिया ॥ २ ॥ अस्थिस्थं विद्यते
मांसमस्थि संच्छिद्यते यदि ॥ शाखाप्रशाखयोर्वापि छिन्नं तच्च
निगद्यते ॥३॥ असन्धौ परिसंच्छिन्नं तदसाध्यं विनिर्दिशेत् ॥
खट्वाब्धचन्द्रपरशुच्छिन्नं तु कथितं सदा ॥४॥ तस्यादौ चारणा-
लेपधावनं परिकीर्तितम् ॥ पिचुना तिलतैलेन शीघ्रं संस्वेदना-
न्वितम् ॥५॥ यावद्वै स्रवती रक्तं तावत्तैलेन चाभ्यजेत् ॥ रक्ते वै
विकृतिं प्राप्ते तैलेनाभ्यञ्जनं मतम् ॥६॥ शोफाद्याश्च प्रजायन्ते

बहुलोपद्रवा व्रणे ॥ सन्धौ छिन्नं नरं दृष्ट्वा सेचयेत्तप्तवारिणा
॥ ७ ॥ सञ्चितस्य व्रणस्यापि प्रशस्तं पिचुतैलकम् ॥ पूये वापि
विनिर्याति निम्बारग्वधपत्रकम् ॥ ८ ॥ गुडेन पथ्यां पिष्ट्वा च
लेपनं पूयशोधनम् ॥ दिनत्रये विशुद्धेऽपि तत्रैव लेपनं हितम्
॥ ९ ॥ धवार्जुनकदम्बस्य वृक्षोदुम्बरयोस्त्वचम् ॥ जलेन पिष्ट्वा
लेपश्च तेन संरोहते व्रणः ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं—छिन्न कटाहुआ, भिन्न टूटाहुआ, भग्न फूटाहुआ, घृष्ट घिसाहुआ, पिष्ट पिसाहुआ, आस्फालित फटा हुआ, संप्रहार, संघात, लाठी आदिकी चोट ऐसे ये हाड आदिके टूटनेके रोग होते हैं ॥ १ ॥ शस्त्रसे कटे हुए मनुष्यको देखि उसकी क्रिया करे ॥ २ ॥ अस्थिमें स्थित हुआ मांसभेदन होजावे अथवा शाखा प्रशाखाओंकी अस्थि छेदन होजावे वह छिन्न कहाता है ॥ ३ ॥ जो संधिके बिना अन्य जगहकी हड्डी टूट जावे वह असाध्य कहाती है, खड्ग अर्धचंद्रमाके समान शस्त्र फरशा इनसे छिन्न अस्थि कही है ॥ ४ ॥ उसकी आदिमें चारण, लेप, धोवना, ये कर्म करे फिर नींव और तिलोंके तेलसे रुईके फोहे करके चोपरिके पसीना दिवावे ॥ ५ ॥ जबतक रुधिर गिरे तबतक तेलसे चोपरता रहै और जब रक्त विकारको प्राप्त होजाता है तब तेलसे मालिस करना हित कहा है ॥ ६ ॥ और व्रणपै शोजा आदिक बहुतसे उपद्रव होजाते हैं, संधिमें छिन्न हुए मनुष्यको देखिके गरम जलसे सेक करे ॥ ७ ॥ फिर गरम जलसे सेक करलेवे तब फोहेंसे तेल लगाना श्रेष्ठ है और जो पीव निकलती हो तो नींव, अमलतास इनके पत्ते बांधने श्रेष्ठ है ॥ ८ ॥ और हरडोंको पीस गुडके संग लेप करनेसे पीवकी शुद्धि होती है । तीन दिनतक शुद्ध होजावे तब इन आगे कही औषधोंका लेप करना हित है ॥ ९ ॥ धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, पिलखनवृक्ष, गूलर इनकी छालको जलमें पीस लेप करनेसे घाव भरता है ॥ १० ॥

अथ भिन्नअस्थिकी चिकित्सा ।

शक्तिशूलैश्च बाणैश्च भल्लैर्वा खड्गतोमरैः ॥ क्षुरिकामुखधाराभि-
भिन्नं तत्कथ्यते भिषक् ॥ ११ ॥ साध्यममर्मजं प्रोक्तं मर्मस्थं
तन्न सिध्यति ॥ अपामार्गरसेनापि तथा कूष्माण्डकस्य च ॥ १२ ॥
धावनं काञ्जिकेनापि प्रशस्तं कथ्यते बुधैः ॥ तिलतैलेन
चाभ्यङ्गो हितः स्यात्स्वस्थभिन्नके ॥ लेपनञ्च प्रयोक्तव्यं
पूर्वोक्तञ्च हितावहम् ॥ १३ ॥

हे वैद्य ! शक्ति, शूल, बाण, माला, तलवार, तोमर शस्त्र, छुरी, खांडा, जिनके नोकहों-
उनसे मेदन हुआ हाड भिन्न कहा है ॥ ११ ॥ जो मर्ममें नहीं लगा हो वह साध्य कहा है
और मर्मस्थानमें लगा हुआ वह असाध्य कहा है वहां जंगके रससे अथवा कोहलके रससे
तथा कांजीसे धोयना श्रेष्ठ कहा है ॥ १२ ॥ और वीथीने कांजीसे धोना श्रेष्ठ कहा है और
भिन्न हुए हाडमें तिलोंके तेलकी मालिस करनी हित कही है और पहले कहा हुआ लेप करना
हित कहा है ॥ १३ ॥

अथ शल्योद्धारचिकित्सा ।

उरसि शिरसि शंखे कक्षयोः पादयोर्वा त्रिकजठरमुखाग्रे नेत्रयोः
कर्णयोर्वा ॥ भवति हि यदि शल्यं कष्टसाध्यञ्च शस्त्रैर्भवति
यदि न गूढं भेषजैस्तैर्विधिज्ञ ॥ १४ ॥ शाखाप्रशाखयोर्यच्च
समस्थं तन्न सिध्यति ॥ यन्त्रशस्त्रप्रतीकारैः शल्यं प्राज्ञः समु-
द्धरेत् ॥ १५ ॥ द्वादशैव तु यन्त्राणि शस्त्राणि द्वादशैव तु ॥
चत्वारि च प्रवन्थानां शल्योद्धारं विनिर्दिशेत् ॥ १६ ॥ गोधा-
मुखं वज्रमुखं च नाम संदंशचक्राकृति कंकपादम् ॥ अथानकं
शृङ्गककुण्डलञ्च श्रीवत्ससौवत्सिकपञ्चवक्रम् ॥ १७ ॥ द्वादशै-
तानि यन्त्राणि कथितानि भिषग्वरैः ॥ अथ शस्त्राणि प्रोक्तानि
नामानि च पृथक्पृथक् ॥ १८ ॥ अर्द्धचन्द्रं व्रीहिमुखं कंकपत्रं
कुठारिका ॥ करवीरकपत्रञ्च शलाकाकारपत्रकम् ॥ १९ ॥ वडिशं
गृध्रपादञ्च शूली च घनमुद्गरम् ॥ शस्त्राण्येतानि प्रोक्तानि शल्यो-
द्धारं पृथक्पृथक् ॥ २० ॥ अतिगुप्तं च शल्यञ्च संदंशेन समु-
द्धरेत् ॥ भिन्नेन तत्प्रतीकारः कर्तव्यश्च सुधीमता ॥ २१ ॥
गम्भीरशल्यं ज्ञात्वा च प्रतीकारञ्च कारयेत् ॥ पाटनं कुशपत्रेण
चोद्धरेत्कुङ्कुमेन च ॥ २२ ॥ भिन्नवत्प्रतीकारश्च कर्तव्यश्च सुधी-
मता ॥ २३ ॥ यत्र शोफो भवेत्तीव्रस्तत्र शल्यं विनश्यति ॥
सशल्यं सघनं चैव रुजावन्तं निहृण्य च ॥ २४ ॥ तत्र योग्यं च
यंत्रं च यन्त्रशस्त्रञ्च योग्यकम् ॥ तत्तत्र योजनीयञ्च ऊहापोह-

विशारदैः ॥ २५ ॥ या वेदना शल्यनिपातजाता तीव्रा शरीरे
प्रतनोति जन्तोः ॥ घृतेन संशान्तिमुपैति तिका कोष्णेन यष्टी-
सधुनान्वितेन ॥ २६ ॥ सर्जार्जुनोदुम्बरमर्कटीनां रोध्रं समझा-
सुरसासमेतम् ॥ जलेन पिष्ट्वा प्रतिलेपनाय शल्योद्धृतौ सौख्य-
मिदं करोति ॥ २७ ॥ शेषा क्रिया च पूर्वोक्ता छिन्ने भिन्ने हिता
तु या ॥ कर्तव्यो वालुकास्वेदो घटीस्वेदश्च तत्र च ॥ २८ ॥

छाती, शिर, कनपटी, दोनों कांख, दोनों पैर, कटिस्थान, उदर, मुख इनके आगे नेत्र कानमें
यदि बाण आदि शल्य हो तो शस्त्रोंसेभी कष्टसाध्य कही है, जो अधिक भीतर नहीं होवे तो औष-
धोंसे निकल जाती है ॥ १४ ॥ शाखा प्रशाखा हाथ पैर अंगुली आदिस्थान मर्मस्थान, इनमें लगी
हुई शल्य नहीं निकलती है और यंत्र शस्त्रोंके प्रकार इनसे बुद्धिमान् पुरुष शल्यको निकासे
॥ १५ ॥ बारह यंत्र हैं और बारह प्रकारके शस्त्र कहे हैं और शल्योद्धारमें चार प्रबंध अर्थात्
बंधन आदिक पट्टी कही है ॥ १६ ॥ गोवामुख, वज्रमुख, संदंश, चक्राकृति, कंकपाद, आनक,
शृंगक, कुंडल, श्रीवत्स, सौवत्सिक, पंचवक्त्र ॥ १७ ॥ ऐसे ये बारह प्रकारके यंत्र, वैद्यजनोंने
कहे हैं और जुदे २ नामोंवाले बारह प्रकारके शस्त्र कहे हैं ॥ १८ ॥ अर्धचंद्रमाके समान, त्रीहिमुख,
कंकपत्र, कुठारिका, करवीरकपत्र, कुशपत्र, शलाकाकारपत्र ॥ १९ ॥ बडिशशस्त्र, गृध्रपाद, शूली,
घनमुद्गर, ऐसे ये जुदे २ शस्त्र शल्योद्धारमें कहे हैं ॥ २० ॥ जो अतिगुप्त शल्य हो वह संदंश अर्थात्
चिमटासरीखे यंत्रसे निकालना चाहिये और भिन्न हुई अस्थिके समान उसकी चिकित्सा करनी
चाहिये ॥ २१ ॥ गंभीर शस्त्रको जानले उसको कुशपत्र शस्त्रसे फाटना चाहिये, कुंकुमशस्त्रसे निकासे
और ॥ २२ ॥ उस शल्यकी चिकित्सा भिन्नहुए अस्थिके समान करे ॥ २३ ॥ जहां अत्यंत शोजा हो
गया हो वहां शल्य नहीं दीखता है वहां शल्य सहित और कड़ा पीड़ावाला ऐसा शोजा जानके
॥ २४ ॥ वहां जैसा योग्य हो वैसाही यंत्र और शस्त्रको बुद्धिमान वैद्य अपनी बुद्धिसे विचारके
प्रयुक्त करे ॥ २५ ॥ जो बाण आदि शल्यके लगनेसे पीड़ा हुई हो वह मनुष्यके शरीरमें ज्यादा
बढ़जावे वहां कुटकी, मुलहटी, शहद, इनसे संयुक्त किये हुए, कल्लुक गरम २ घृतसे सेकनेसे
वह पीड़ा शांत होती है ॥ २६ ॥ और रालका वृक्ष, अर्जुनवृक्ष, गूलर, कौंच, लोध, मंजीठ,
तुलसी, इनको जलमें पीस शल्य निकासी हुई जगहपे लेप करनेसे सुख होता है ॥ २७ ॥
बाकी जो पहले वालुकास्वेद, घटीस्वेद, इत्यादिक क्रिया कही है वे और अस्थिच्छिन्न, भिन्नअस्थि
इनमें जो क्रिया हित कही है वे सब करनी चाहिये ॥ २८ ॥

अथ अस्थिभग्नकी चिकित्सा ।

भग्नास्थिश्च नरं दृष्ट्वा तस्य वक्ष्यामि भेषजम् ॥ मणिवन्धे

कूर्परे च जानौ भग्नं कटौ तथा ॥ २९ ॥ पृष्ठवंशे विभग्नं च
 साध्यान्येतानि सप्तम ॥ ग्रीवादेशे चेन्द्रवस्तौ रोहिण्यां कूर्परा-
 दधः ॥ ३० ॥ स्कन्धकूर्परमध्ये च तथा च त्रिकमध्यतः ॥ उर-
 सि चैव गोडे च विभग्नं तदसाध्यकम् ॥ ३१ ॥ विभग्नं च नरं
 दृष्ट्वा वेणुखण्डेन बन्धयेत् ॥ मृक्षयेन्नवनीतेनैरण्डपत्रैश्च वेष्टयेत्
 ॥ ३२ ॥ उष्णाम्भसा सेचयेच्च वस्त्रेण मृदु बन्धयेत् ॥ ३३ ॥
 धवार्जुनकदम्बानां वल्कलं काजिकेन तु ॥ पिष्ट्वा हितः प्रले-
 पश्च तेन सौख्यं प्रजायते ॥ ३४ ॥ स्वेदयेत्तानि चोष्णेन आ-
 वासं कारयेत्पुनः ॥ एवं क्रियासमापत्तौ ततो बन्धं विमोचयेत्
 ॥ ३५ ॥ एकाहान्तरितेनापि पूर्ववत्तत्प्रबन्धयेत् ॥ यावद्ग्रन्थि
 न वज्राति तावन्न स्नापयेन्नरम् ॥ ३६ ॥

भग्न अस्थिघाते मनुष्यकेवास्ते औषध कहते हैं, पौंहचा कोहनी, गोडे कटी ॥ २९ ॥ पीठका
 वांस, ये जो भग्न हो जायें तो साध्य कहे हैं और ग्रीवाके समीप, वक्षिस्थान कोहनी
 के नीचेकी जगह ॥ ३० ॥ कांधा, कोहनीके बीचका स्थान, कटि, कलेजा, छाती, इनमें
 भग्न हुई अस्थि असाध्य कही है ॥ ३१ ॥ भग्न अस्थि हुए मनुष्यको देखिके वांसकी फाटकोंसे
 बांध देवे और नौनीवृत्तका लेप कर अरंडके पत्तोंसे बांध देवे ॥ ३२ ॥ और गरम जलसे
 सेंक करे वस्त्रसे कोमल बांध देवे ॥ ३३ ॥ धव, अर्जुनवृक्ष, कदंब, इनकी छालको कांजीमें
 पीस लेप करनेसे सुख होजाता है ॥ ३४ ॥ पीछे गरम २ वस्त्र होजावे तबतक पसीना
 दियावे वस्त्रको वहां बांधा रखे ऐसी क्रिया हो लेवे तब बंधनको खोल देवे ॥ ३५ ॥ एकदिन
 खुला रखे और एकदिन बांधा रखे और जबतक टूटे हुए हाड़की जगह ग्रंथि नहीं बंधे
 तबतक स्नान नहीं करवावे ॥ ३६ ॥

अथ घृष्ट हाडकी चिकित्सा ।

घृष्टश्चैव नरं दृष्ट्वा धावनं काजिकेन च ॥ सूत्रेण शीततोयेन
 धावनञ्च हितं मतम् ॥ ३७ ॥ यावद्वै स्रवति रक्तं तावत्तैलेन से-
 चयेत् ॥ अल्पानि चोषधान्यत्र कारयेद्विविधानि च ॥ ३८ ॥

घृष्ट अर्थात् किसी वस्तुसे घिसके दब जावे वह घृष्ट हाड कहाता है, उसको कांजीसे धोवे
 अथवा गोमूत्रसे तथा शीतल जलसे धोवना हित है ॥ ३७ ॥ जबतक रुधिर गिरे तबतक
 तेलसे सेकता रहे और वैद्यजनको यहां स्वरूप औषध करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

अथ आस्फालित हाडकी चिकित्सा ।

विपाके रक्तसावश्च स्वेदनश्च विधीयते ॥ भग्नवत्प्रतीकारश्च का-
रयेद्विधिपूर्वकम् ॥ ३९ ॥ आस्फालिते प्रतीकारे ज्ञातव्यश्च
भिषग्वर ॥ ऊहापोहैश्च कर्तव्यस्तेन सम्पद्यते सुखम् ॥ ४० ॥
पकेहुए हाडमें रुधिर गिरता हो तो पसीना दिवाना हित है और भग्न हुए हाडके समान
इसका इलाज करे ॥ ३९ ॥ ऐसे वैद्यजनोंको जानना चाहिये और अपनी बुद्धिके बलके अनुसार
चिकित्सा करे, इससे रोगीको सुख होता है ॥ ४० ॥

अथ अभिघात अर्थात् चोट लगी हुईकी चिकित्सा ।

शिरोऽभिघातजो दोषः शिरोरोगः प्रकीर्तितः ॥ उरसा चाभि-
घातेन यकृद्गुल्मश्च जायते ॥ ४१ ॥ इत्येवश्च प्रतीकारं कुर्या-
द्भक्तावसेचनम् ॥ स्वेदनश्च प्रयोक्तव्यं भिषजा कर्मसिद्धये
॥ ४२ ॥ न च तैलश्च भोक्तव्यं नात्युष्णकटुकं तथा ॥ मत्स्यानि
न च मांसानि घनानि च गुरुणि च ॥ ४३ ॥ श्वेतशालिसमुद्भूतं
यूषं चैवाढकीषु च ॥ शशलावकवार्त्ताककक्कोलं तण्डुलीयकम् ॥
॥ ४४ ॥ शतपुष्पाद्यमन्यच्च न च हिङ्गुसमन्वितम् ॥ लवणं नाति-
भोक्तव्यं यदीच्छेदात्मनः सुखम् ॥ ४५ ॥ व्यायामश्च व्यवायश्च
दिवानिद्रां तथा क्रमम् ॥ वर्जयेत्सुखसम्पत्तिर्नरश्च प्रतिपद्यते ॥
॥ ४६ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सा-
नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

शिरमें चोट लगनेसे कुपित हुए दोषको शिरोरोग कहते हैं और छातीमें चोट लगनेसे यकृत
रोग गुल्म ये रोग होते हैं ॥ ४१ ॥ इनको दूर करनेके वास्ते रक्तको निकसावे और पसीना
दिवावे ॥ ४२ ॥ और तेलका भोजन नहीं करे और अत्यंत गरम चर्चरा ऐसा भोजन नहीं
करे और मछलियोंका मांस, कडे तथा भारी पदार्थ इनको नहीं खावे ॥ ४३ ॥ शालिसंज्ञक
सफेद चावलोंका यूष, तूरीधान्य, शशा, लावापक्षी, बत्तक इनका मांस, कंकोला, चौलाईका
शाक ॥ ४४ ॥ सौंफ, होंग आदि और नमक, इनको इच्छापूर्वक कम खावे इनसे सुख होता
है ॥ ४५ ॥ और कसरत, स्त्रीसंग, दिनमें सोना, टहल, कदमी करना इन्हेंको वर्जदेवे तब सुख
उत्पन्न होता है ॥ ४६ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

तृतीयस्थाने भग्नचिकित्सानाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८.

अथान्निदग्धचिकित्सा ।

आत्रेय उवाच ॥ अग्निदग्धं नरं दृष्ट्वा तच्च दग्धं चतुर्विधम् ॥
 ईषदग्धं मध्यदग्धमतिदग्धञ्च वेदभाक् ॥ १ ॥ सम्यग्दग्धं
 भिषक्छेष्ट लक्षणं शृणु पुत्रक ॥ २ ॥ अतिदग्धं मांसगं स्या-
 द्वातपित्तकफाश्रितम् ॥ सम्यग्दग्धञ्च निर्दोषं विज्ञेयं च चतुर्वि-
 धम् ॥ ३ ॥ त्वचां विशीर्यते येन स दाहः पित्तजो भवेत् ॥
 सरक्तञ्च सपित्तञ्च पित्तकोपात्प्रदृश्यते ॥ ४ ॥ कृष्णवर्णञ्च
 तत्पित्तं मांसगं तीव्रवेदनम् ॥ तस्य वक्ष्यामि संसिद्धयै भेषजं
 भिषजां वर ॥ ५ ॥ ईषदग्धे काञ्जिकस्य लेपनं सुखहेतवे ॥
 निम्बपत्राणि सुरसा कुष्ठं धात्रीफलानि च ॥ ६ ॥ ईषदग्धे
 यथालाभे लेपनं भिषगुत्तम ॥ मध्यदग्धे पयस्या या लेपनी
 सुखकारिणी ॥ ७ ॥ मधुकुष्ठकमज्जिष्ठाघृतं पक्वं हितं मतम् ॥
 कुष्ठञ्च यष्टीमधुकं चन्दनैरण्डपत्रकम् ॥ ८ ॥ मध्यदग्धे हितो
 लेपो दुग्धेन परिपेषितः ॥ ९ ॥ घृतकर्पूरचूर्णञ्च गैरिकं रोध्र-
 मेव च ॥ शुष्कचूर्णं पूयहरं दग्धं संरोहयत्यपि ॥ १० ॥ आम-
 लक्या तिलं कुष्ठं लेपनं वाग्निदग्धके ॥ रोध्रोशीरं समङ्गा च
 लेपनं शीतवारिणा ॥ ११ ॥ अतसीस्निहमभ्यङ्गमधुयष्टीघृतेन
 तु ॥ लेपाभ्यङ्गे हितं दग्धरोहणं दाहवारणम् ॥ १२ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अग्निसे दग्ध हुए मनुष्यको देखै, चारप्रकारका अग्निदग्ध होता है कुष्ठक दग्ध, मध्यदग्ध, अतिदग्ध ॥ १ ॥ सम्यक्दग्ध, ऐसे चारप्रकारका होता है । हे पुत्र ! अब इनके लक्षणोंको सुनो ॥ २ ॥ जो अत्यन्त दग्ध हो वह मांसमें प्राप्त होता है और वात, पित्त, कफ इनके आश्रय होता है, जो सम्यक् अर्थात् सारा दग्ध होजावे वह दोषोंसे रहित दग्ध होता है वह चार प्रकारका दग्ध होता है ॥ ३ ॥ जिसमें त्वचा बिखर जावे और दाह हो और रक्त तथा पित्त दीखे वहां दग्ध हुएमें पित्तका कोप जानना ॥ ४ ॥ और

जहां काला वर्ण हो जावे वह मांसमें प्राप्त हुआ पित्त जानना उसमें तीव्र पीड़ा होती है । हे उत्तम वैद्य ! इसकी सिद्धिके वास्ते औषधको कहेंगे ॥ ५ ॥ कुछ दग्ध हुए पुरुषके सुखके वास्ते कांजीका लेप करना हित है और हे उत्तम वैद्य ! नींबूके पत्ते, सफेद संभालू, कूठ, आंवलाके फल ॥ ६ ॥ इनमेंसे जौनसी मिले उसीका लेप करना कछुक दग्ध हुए पुरुषको हित है और मध्यम दग्ध हुए पुरुषके दूधिका लेप करनेसे सुख होता है ॥ ७ ॥ शहद कूठ मंजीठ इनमें घृतको पका लेप करना हित है और कूठ, मुलहटी, चंदन, अरंडके पत्ते ॥ ८ ॥ इनको दूधमें पीस मध्यमदग्धहुए पुरुषके लेप करना हित है ॥ ९ ॥ और घृत, कपूरका चूर्ण, गेरू, लोघ इनके सूखे चूर्णको बुरकानेसे राखका नाश होता है और दग्ध हुएका व्रण भर जाता है ॥ १० ॥ आंवला, तिल, कूठ इनका लेप करनेसे अग्निसे दग्ध हुआ अच्छा होता है और लोघ, खश, मंजीठ इनको शीतल जलमें पीस लेप करना ॥ ११ ॥ अथवा अलसीका तेल, मुलहटी, घृत इनका लेप करना हित है । दग्ध हुएका घाव भरता है और दाहका नाश होता है ॥ १२ ॥

अथ धूमपानचिकित्सा ।

धूमोपघाते वमनं क्षीरपानं तथोपरि ॥ जल च तरणं श्रेष्ठं
धूमदाहोपशान्तये ॥ इत्यान्नेयभाषिते हारीतोत्तरे चिकि-
त्सास्थानं नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इति तृतीयस्थानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

धूवाँसे व्याकुल हुए पुरुषको दूध पिलाना हित है और जलमें तैरना श्रेष्ठ है और धूवाँके दाहकी निवृत्ति होती है ॥ १३ ॥

इति वेरीनिवासि० हारीतसंहितामाषाटीकायां चिकित्सास्थाने

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

इति तृतीयस्थानं समाप्तम् ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथ तुलामानविधिः ।

आत्रेय उवाच ॥ सर्पस्य चतुर्थांशोऽणुः ॥ चतुःसर्पपैर्मापः ॥
चतुर्मापैर्वलः ॥ चतुर्वलैः सुवर्णैः कर्पः ॥ चतुष्कर्पैः पलम् ॥ चतु-
ष्पलैः कुडवः ॥ चतुष्कुडवैः प्रस्थः ॥ चतुष्प्रस्थैराढकः ॥ चतु-
भिराढकैर्द्रोणः ॥ १ ॥ शुष्काणामौषधानाञ्च मानञ्च द्विशुणं
भवेत् ॥ आर्द्राणामथ सर्वेषां विज्ञातव्यस्तुलाविधिः ॥ २ ॥

सरसोंके चौथे हिस्सेको अणु कहते हैं, चार सरसोंका एक माप, चार मापोंका एक बल और बल प्रमाणको सुवर्णनामक भी कहते हैं और चार बलोंका अर्थात् चार सुवर्णोंका एक कर्प होता है, चार कर्पोंका एक पल और चार पलोंका एक कुडव, चार कुडवोंका एक प्रस्थ, चार प्रस्थोंका एक आढक, चार आढकोंका एक द्रोण होता है ॥ १ ॥ सूखी हुई औषधोंका दूना प्रमाण लेवे और गीली औषधोंको कहे हुए प्रमाणके अनुसार लेवे ॥ २ ॥

अथ अन्यमतः ।

स्तम्भिर्यवशतैः साष्टणष्टिभिः पलं भवति ॥ चतुर्भिः पलैः कु-
डवः ॥ चतुर्भिः कुडवैः प्रस्थः ॥ प्रस्थैश्चतुर्भिराढकः ॥ चतुर्भि-
राढकैः कंसः ॥ द्वे पले प्रसूतिर्भवेत् ॥ ३ ॥ मस्तुतैलारत्नालानां
क्षीरमण्डगुडं सिता ॥ मधु मद्यं तथा द्राक्षा स्वर्जूरं गुग्गुलुस्तथा
॥ ४ ॥ रसोनलवणानाञ्च प्रोक्तावर्द्धार्धमानकौ ॥ विडालपदिका-
मात्रं कर्पशब्दोऽभिधीयते ॥ ५ ॥ वटोदुम्बरमात्रेण पलमौदु-
म्बरं विदुः ॥ चतुष्पलं बिल्वमानं पले द्वेऽञ्जलिरुच्यते ॥ ६ ॥
कुडवं चाञ्जलिद्वे च वक्ष्यमाणं महामते ॥ ७ ॥ चतुरंगुलविस्तारं
चतुरंगुलमुन्नतम् ॥ काष्ठजं मृन्मयं वापि कुडवं तं विनिर्दिशेत्

॥८॥ चतुष्कुडवैः प्रस्थः स्याच्चतुष्प्रस्थैस्तथाढकः॥ चतुराढ-
कः स्याद्द्रोणो मानसंख्या प्रकीर्तिता ॥ ९ ॥ वमनं च विरे-
कञ्च प्रदद्यात्कर्षमात्रकम् ॥ सन्तर्पणं पलमात्रं चूर्णं कर्षकमा-
त्रकम् ॥ १० ॥ क्षारमेव पलाद्धं च कर्षं चैव हरीतकीम् ॥ पलं
रसोनकल्कञ्च पलं गुग्गुलुमेव च ॥ ११ ॥ पलञ्च सूरणं कल्कं
दापयेच्च सुपण्डितः॥अन्यानि चूर्णलोहानि कर्षमात्राणि दाप-
येत्॥१२॥ज्ञात्वा देहबलं सम्यगुत्तमाधममध्यमम् ॥ लेहं चूर्णं
कषायं च दापयेद्विधिवत्सुधीः ॥ १३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारी-
तोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने तुलामानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः॥१॥

सातसौ अरसठ ७६८ जवोंका एक पल, चार पलोंका एक कुडव, चार कुडवोंका एक प्रस्थ, चार प्रस्थोंका एक आढक होता है, चार आढकोंका एक कंस होता है और दो पल्लोंकी एक प्रसृति होती है ॥ ३ ॥ दहीका मस्तु, तेल, कांजी, दूध, मंड अर्थात् छाहकी कूही, गुड़, मिसरी और शहद, मदिरा, दाख, खिजूर, गूगल ॥ ४ ॥ लस्सन, नमक इनका गीला प्रमाण अर्थात् सूखी औषधोंसे दूना प्रमाण कहा है और विडालपदिका यह शब्द कर्ष प्रमाणका वाचक है ॥ ५ ॥ बट, उदुम्बर अर्थात् गूलरका फल इन शब्दोंसे पल अर्थात् चार तोला प्रमाणका ग्रहण जानना और चार पलोंका त्रिल्वसंज्ञक प्रमाण होता है और दो पलोंको अञ्जलि कहते हैं ॥ ६ ॥ दो अञ्जलियोंका एक कुडव होता है । हे महामते ! ऐसे प्रमाण कहा है ॥ ७ ॥ चार अंगुल प्रमाणका और चार अंगुल ऊंचा ऐसा काष्ठका पात्र अथवा मृत्तिकाका पात्र उसको कुडव कहते हैं ॥ ८ ॥ और चार कुडवोंका प्रस्थ होता है और चार प्रस्थोंका आढक होता है, चार आढकोंका द्रोण होता है, ऐसे प्रमाणकी संख्या कही है ॥ ९ ॥ वमन और जुलाबमें कर्षप्रमाण मात्रा देनी और संतर्पण औषध पलप्रमाण देनी और चूर्ण कर्षप्रमाण देना चाहिये ॥ १० ॥ क्षार औषधका आधा पल प्रमाण है हरड़का कर्षप्रमाण देना है और लहसुनका कल्क, गूगल, इनका पलप्रमाण है ॥ ११ ॥ उत्तम वैद्य जमीकन्दके कल्कको भी पलप्रमाण देवे और अन्य लोहआदिकोंके चूर्णको कर्षप्रमाण देवे ॥ १२ ॥ सम्यक् प्रकारसे देहके बलबलको विचारि उत्तम, मध्यम, अधम ऐसे तीन प्रकारकी मात्रा देनी चाहिये ॥ १३ ॥ इति वेरीनिवासि-
बुधशिवसहाय० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने तुलामानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ तैलपाकविधिः ।

आत्रेय उवाच ॥ पाकश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तैलानां शृणु पुत्रक ॥
 खरचिक्कणमध्यस्तु विशोषी चापरो मतः ॥ १ ॥ दुग्धारनाल-
 काथश्च दधि वा शोषयत्यपि ॥ न चार्द्रता चौषधानां निष्फेनो
 विमलस्तु यः ॥ २ ॥ मज्जिष्ठारससङ्काशो भवेत्सुखरपाकगः ॥
 वातघ्नः सोऽपि विज्ञेयो मर्दनाभ्यञ्जने हितः ॥ ३ ॥ सफेनो मध्य-
 पाकी च द्रवो भवति पिण्डितः ॥ नातिफेनमफेनं वा मध्यपाकं
 विनिर्दिशेत् ॥ ४ ॥ वस्तौ पाने च शस्तश्च त्रिदोषघ्नं भिषग्वर ॥
 सफेनश्चन्द्रभो यस्य भवेत्स्वस्थसमो द्रवः ॥ ५ ॥ स च चि-
 क्कणकः पाको नस्ये प्रोक्तो हितः सदा ॥ ६ ॥ सधूमश्चातिदु-
 ग्धश्च दुग्धगन्धरसस्तथा ॥ विज्ञेयो वातशोषी च वर्जितः सर्व-
 कर्मसु ॥ ७ ॥ मर्दने खरपाकश्च वस्तौ चिक्कणपाकितः ॥ वस्तौ
 पाने मध्यपाको विशोषी वर्जितस्तथा ॥ ८ ॥ पक्षे सिध्यति तै-
 लश्च सप्ताहे घृतमेव च ॥ कपायः प्रहरेणापि यत्नेनैव प्रसाधयेत्
 ॥ ९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने तैलपाक-
 विधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे पुत्र ! तैलोंका पाक चार प्रकारका कहा है सो सुनो । खर, चिक्कण, मध्य, विशोषी ऐसे हैं ॥ १ ॥ जहां दूध, कांजी इत्यादिकोंके काथको सुखाकेवल तैलमात्र बाकी रह जावे और औषधोंका आलापन नहीं हो, झाग नहीं हो, निर्मल हो ॥ २ ॥ मँजीठके रंगके समान वर्णवाला हो वह खरपाक अर्थात् तीक्ष्ण पाकवाला तैल जानना । वह वातको नाशता है, मर्दन मालिस इनमें हित है ॥ ३ ॥ झागोंसहित हो, मध्यम पाकवाला हो और जिसके द्रवमें चलनेमें बृंदसी बंधजावे, अत्यंत झाग नहीं हों अथवा झाग हों वह मध्यमपाकी तैल कहाता है ॥ ४ ॥ हे उत्तम वैद्य ! वह तैल वस्तिर्कर्ममें, पीनेमें श्रेष्ठ है, त्रिदोषको नाशता है और जिसमें चंद्रमाके समान सफेद २ झाग हों और बिना पका हुआ, स्वच्छ तैलके समान पतल हो ॥ ५ ॥ वह चिक्कणपाकवाला तैल कहाता है, नस्य देनेमें हित है ॥ ६ ॥ जिसमें

धूँँ हो, अत्यन्त दग्ध हो गया हो और जिसका रस गंध दग्ध हो गया हो वह विशोषी पाकवाला तेल कहाता है वह सब कर्मोंमें वर्जित है ॥ ७ ॥ मर्दन करनेमें खरपाक अर्थात् तीक्ष्ण पाकवाला तेल हित है और वस्तिकर्ममें चिक्कणपाकवाला तेल हित है और मध्यपाकी तेल वस्तिमें तथा पीनेमें श्रेष्ठ है, विशोषी तेल सब कर्मोंमें वर्जित है ॥ ८ ॥ तेल पंद्रह दिनमें सिद्ध होता है अर्थात् वरतनेलायक होता है, घृत सात दिनमें सिद्ध होता है, काथ एक पहरमें सिद्ध होता है ऐसे यत्नकरके सिद्ध करे ॥ ९ ॥ इति वेरीनिवासि० हारीतसंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने तेलपाकविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ निरूहबस्तिकर्मविधिः ।

आत्रेय उवाच ॥ चतुरङ्गुलां वेणुमयीं नाडीं प्रतिलक्षणं कृत्वा तथा बस्तिप्रतिकर्म कुर्यात् ॥ १ ॥ नातिचोष्णे च काले च न शीते न च भोजिते ॥ न च निद्रालौ सूत्रार्ते विष्टार्ते न च वेदभाक् ॥ २ ॥ निरूहं बस्तिकर्म च कारयेत् नरस्य च ॥ ३ ॥ आदौ सूत्रविष्टोत्सर्गं कृत्वा शुद्धं प्रक्षाल्य नातिशिथिलशय्यायां शाययित्वा वामाङ्गे वामपादं दक्षिणाङ्गे दक्षिणपादं च संकोच्य जघोपरि संस्थाप्य शुद्धाभ्यन्तरे द्व्यङ्गुलमात्रां नाडीं सञ्चारयेत्सुधीः ॥ ततः शनैः शनैर्बस्तिं निष्पीड्य द्विपलपरिमिततैलेन निरूहं कुर्यात् ॥ निरूहानन्तरं शनैः शनैरुत्तानं शाययित्वा ऊर्ध्वीकृत्वा च पश्चात्संकोच्य पाणिभिः पञ्चवारान्स्फुटिपण्डांस्त्रोटयेत् ॥ ततः स्वस्थं कृत्वा क्षणेनापि आमाशयं मलस्थानं बोधयति ॥ वस्त्युदरवातान्दोषान्निवारयति ॥ पण्डितास्तं बस्तिनिरूहं तद्बस्तिकर्म च विदुः ॥ ४ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने निरूहबस्तिकर्मविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—चार अंगुल प्रमाण बाँसकी नलिका बना उसके चर्मकी वस्ति बांध भीतर प्रवेश करनेको पिचकारी बना उससे वस्तिकर्म अर्थात् पिचकारी चढ़ानेका कर्म करे ॥ १ ॥ अत्यंत गरमीका समय न हो और अत्यंत ठंडकका समय न हो, भोजन नहीं किया होता नींद नहीं आवती हो, मूत्र तथा विष्टाकी हाजितसे पीड़ित नहीं हो ॥ २ ॥ ऐसे पुरुषको देखि उसके वस्तिकर्म करे ॥ ३ ॥ पहिले मूत्र और विष्टाका विसर्जन करवा गुदाको धुवाके पीछे अत्यंत शिथिल न हो ऐसी शय्यापै सुला फिर बाँये अंगकी ओर बाँये पैरको और दाहिने अंगकी ओर दहने पैरको समेटके दवा जंघाके उपरि स्थापित करि उस नलिकाको दो अंगुल प्रमाण गुदाके भीतर चढ़ा देवे पीछे बुद्धिमान् वैद्य शनैः शनैः वस्ति को पीड़ित कर दो पल अर्थात् ८ तोला प्रमाण तेलसे निरुहवस्तिकर्म करे, पीछे निरुहवस्तिकर्म अर्थात् पिचकारी चढ़ानेका कर लेवे, तब शनैः शनैः सूंघा सुलाके ऊपरको करवाके संकोच करवा वैद्य जन अपने हाथसे पांच वार स्क्रिक् अर्थात् कूलाको मसले उससे पीछे स्वस्थ बिठाकर आमाशय और मलाशयको जरा मले इससे वस्तिदोष, उदरवातरोग इनका निवारण होता है पंडित-जन इसको निरुहवस्ति कहते हैं और इसीको वस्तिकर्मभी कहते हैं ॥ ४ ॥ इति वेरोनि-यासि० हारीतमंहिताभाषाटीकायां सूत्रस्थाने निरुहवस्तिकर्मविधिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.

अथ स्वेदनविधि ।

स्वेदः सप्तविधिः प्रोक्तो लोष्ट्वेदो वाष्पस्वेदोऽग्निज्वालास्वेदः घटीस्वेदो जलस्वेदः फलस्वेदो बालुकास्वेदश्च ॥ न तैलेन विना स्वेदं कदाचिदपि कारयेत् ॥ तैलेनाभ्यजयेत्स्वेदं स स्वेद-द्रुणकारकः ॥ १ ॥ तीव्रज्वरे दाहशोषे तथा तीसारपीडिते ॥ मूर्च्छाभ्रमदाहार्ते च विषे स्वेदं न कारयेत् ॥ २ ॥ शूलशोफातुरे वाते शीतश्लेष्मातुरेषु च ॥ एतेषां शस्यते स्वेदो नराणां सुखदा-यकः ॥ ३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे सूत्रस्थाने स्वेद-नविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

स्वेद अर्थात् पसीना सात प्रकारका होता है । लोष्ट्वेद, अर्थात् मृत्तिकाके पिंडआदिका स्वेद १ वाष्पस्वेद मांफोंका स्वेद २ अग्निज्वालास्वेद ३ घटीस्वेद ४ जलस्वेद, ५ फलस्वेद ६ बालुकास्वेद ७ ऐसे सात प्रकारका है ॥ तेलके चोपरे बिना किसी समयमें भी पसीना नहीं

दिवाना चाहिये, तेल चोपरिके जो पसीना दिवाया जाता है वह गुण करनेवाला है ॥ १ ॥
तीव्रज्वर, दाहशोष, अतिसारसे पीड़ित, मूर्च्छा, अम, दाह इनसे पीड़ित विषसे युक्त इन
पुरुषोंके पसीना नहीं दिवावे ॥ २ ॥ शूल, शोष्मा इनसे पीड़ित, वातसे युक्त, शीत, कफ
इनसे पीड़ित इन पुरुषोंको पसीना दिवाना श्रेष्ठ कहा है । सुख देनेवाला है ॥ ३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां
सूत्रस्थाने स्वेदविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ रक्तावसेचन फस्त खुलानेकी विधि ।

रक्तावसेचनं चतुर्भिः प्रकारैर्भवति ॥ शिराविरेचनेनापि अला-
बुभिस्तथैव च ॥ श्लक्ष्णशृङ्गजलौकाभी रक्तञ्च स्रावयेद्बुधः
॥१॥ पूर्वाह्णे चापराह्णे च नात्युष्णे नातिशीतले ॥ यवागूपरि-
पीतस्य शोणितं मोक्षयेद्विषकू ॥२॥ शिरोरोगेषु सर्वेषु नासा-
मध्यपुटे तथा ॥ असृजं रेचयेद्यत्नात्सर्वदा भिषगुत्तमः ॥ ३ ॥
ललाटमध्ये भ्रुवोरुपरिष्ठादङ्गुलद्वयं त्यक्त्वा शिरां रेचयेत् ॥
बाह्वोः कूर्परमध्ये शिरां बन्धयेत् ॥ मणिवन्धसन्धौ अङ्गुष्ठ-
मूलचतुष्टयमङ्गुलञ्च विहाय शिरां बन्धयेत् ॥ नातिपाश्वे चतु-
रङ्गुलं विहाय शिरां बन्धयेत् ॥ घुण्टिकां शिरां पादे बन्धयेत्
॥ अपरमपि ग्रन्थविस्तारभयान्नोक्तम् ॥ अलाबुशृङ्गै रक्तावसेचनं
सर्वैरपि ज्ञातव्यम् ॥ ४ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—बुद्धिमान् मनुष्य चारप्रकारसे रक्तकी फस्त खुलावे । नसोंपे फस्त
खुलाना, बुधियोंसे फस्त खुलाना, बारीक सीगियोंसे फस्त खुलाना, जोकोंसे रुधिर निकसाना
ऐसे चारप्रकारसे रक्तावसेचन होता है ॥ १ ॥ दुपहरे पहिले अथवा तीसरे पहरमें अत्यंत
गरमी नहीं हो और अत्यंत ठण्डक नहीं हो तब यवागू अर्थात् गुड़ियानी पिलाये हुए मनुष्यका रुधिर
निकसावे ॥ २ ॥ और उत्तम वैद्यको सम्पूर्ण शिरके रोगोंमें नासिकाके मध्य पुटमें फस्त
खुलानी चाहिये ॥ ३ ॥ मस्तकमें भ्रुकुटियोंसे ऊपरि दो अंगुल जगहको त्याग नाड़ीको
बीधे और बाहुओंकी नाड़ीको कोहनीके मध्यमें बीधे और पोहचेकी सन्धिमें अंगुठेकी जड़में

चार अंगुल जगहको त्यागके नाडीको बीचें, चार अंगुल जगहको त्याग अतिसमीपकी नसको नहीं बीचें और पैरमें टांकनेकी नसोंको बीचें और अन्य प्रकरण ग्रन्थके विस्तार होनेके भयसे नहीं कहा है । इस प्रकरणमें तुन्वी सींगी इत्यादिकोंसे रुधिरका निकसाना सबको ज्ञात है और श्रेष्ठ है ॥ ४ ॥

अथ रक्तलक्षण ।

सकृष्णं फेनिलं श्यामं रक्तं तद्वातदोषजम् ॥ सर्वलक्षणसंपन्नं
विज्ञेयं तत्रिदोषजम् ॥५॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे चतुर्थे
सूत्रस्थाने रक्तावसेचनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो काला तथा झागोंवाला रक्तहो वह वातके दोषका रुधिर जानना, जो सब लक्षणोंसे संयुक्त हो वह त्रिदोषसे रुधिर जानना ॥ ५ ॥ इति वेरीनिवासितुवशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रयनुवादि-
तहारीतसंहिताभाषाटीकायां चतुर्थे सूत्रस्थाने रक्तावसेचनविधिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ६.



अथ जलौकाचारविधि ।

आत्रेय उवाच ॥ जलौकाश्चतुर्विधाः प्रोक्ता इन्द्रायुधा रोहिणी
कालिका धूम्रा चेति ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—जोंख चार प्रकारकी कही हैं इन्द्रायुधा १ रोहिणी २ कालिका ३
धूम्रा ४ ॥ १ ॥

अथ इन्द्रायुधाके लक्षण ।

नीलवर्णा पार्श्वरक्ता तीक्ष्णमुखी गम्भीरनिर्मलोदके पाषाण-
सन्धौ च प्रविशति ॥ तथा विद्रध्युदरदाहशोफमूर्च्छाविषाद्युप-
द्रवयति ॥ २ ॥

जो नीलवर्णवालीहो, पशलियोंकी ओर लालहो, तीक्ष्णमुखवाली हो यह जोख गंभीर
निर्मलजलमें और पर्वतकी संधिमें रहती है इसकरके विद्रधि, उदररोग, दाह, शोष, मूर्च्छा
विष इत्यादिकोंको करती है ॥ २ ॥

अथ रोहिणीके लक्षण ।

नीलवर्णा पार्श्वपीता शङ्कुमुखी पद्मनाले प्रविशति ॥
तथा विद्रधिविसर्पशोफाद्युपद्रवयति ॥ ३ ॥

नीलेवर्णवाली और पशलियोंकी ओर पीलेवर्णवाली शंखसरीखे मुखवाली ऐसी रोहिणी जोख होती है यह कमलकी नालीमें रहती है इसके लगानेसे विष, विद्रधि, शोजा ये उपद्रव होते हैं ॥ ३ ॥

अथ कालिका जोखके लक्षण ।

कृष्णा कालिका मत्स्याशये दूरे त्याज्या ॥ ४ ॥

कालेवर्णवाली जोख मत्स्याशय अर्थात् मच्छोंके वासमें रहती है । यह दूरसे त्याग देनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ धूम्राजोखके लक्षण ।

धूम्रा कपोतमहिषवर्णा पीतोदरी अर्द्धचन्द्रमुखी कर्दमे कलुषोदके प्रविशति ॥ सा रक्तावसेचनयोग्या निरुपद्रवा च ॥ ५ ॥

धूम्रा जोख, कपोत और भैंससरीखे वर्णवाली होती है, पीले उदरवाली होती है, आध चंद्रमाके समान मुखवाली होती है । यह कीचमें और गिघलेहुए जलमें रहती है यह रुधिर निकालनेके योग्य कही है और उपद्रवोंसे रहित है ॥ ५ ॥

अथ जोख लगवानेका क्रम

अवस्थानं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य नवनीतेन प्रक्षयित्वा उष्णोदकेन प्रक्षालयेत् ॥ पश्चात् तत्र जलौकावचारणीया ॥ ६ ॥ जलौका रक्तपूर्णा पश्चात् पातिता ॥ तस्या मुखं लवणेन मूत्रेण वा प्रक्षालयेत् ॥ अथवा शनैर्गोस्तनवदुह्यते ॥ पुनर्नवनीतेन मुखमालिप्यावचारणीया ॥ दुष्टरक्ते विनिर्गते दंशं काञ्जिकेन प्रक्षाल्य घृतमधुनाभ्यज्य वस्त्रेण बध्नीयात् ॥ ७ ॥ इत्यात्रेयभा० हा० चतुर्थसूत्रस्थाने जलौकावचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥
इति सूत्रस्थानं समाप्तम् ॥

जोख लगवानेके योग्य जगहको कांजीसे धोके नौनीघृत लगा पीछे गरम जलसे धोके पीछे जोख लगवानी चाहिये ॥ ६ ॥ जब जोख रक्तसे पूरण होजाये तब उसको गिरा देवे और उसके मुखको नमकसे अथवा गोमूत्रसे धो देवे अथवा शनैः शनैः गौके थनकी तरह सूत देवे पीछे मुखके नौनीघृत लगाके फिर लगवा देवे और जब दुष्ट रुधिर निकल जावे तब जोखके डंकस्थानको कांजीसे धोके घृत और शहदसे चोपरी वस्त्रसे बांध देवे ॥ ७ ॥

इति वेरीनिवासि० हारीतसं० भा० सूत्रस्थाने जलौकाचारविधिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

इति सूत्रस्थानं समाप्तम् ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमं कल्पस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः

हिमवच्छिखरे रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ तत्रस्थं तपस्तेजस्थ
मन्त्रिञ्च मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥ कल्पानाञ्च प्रयत्नेन हारीतः परि-
पृच्छति ॥ २ ॥

सिद्ध गन्धर्व इनसे सेवित हिमवान् पर्वतके रमणीक शिखरपै बैठे हुए तप और तेजमें
स्थित मुनिवोंने श्रेष्ठ ऐसे आत्रेयजीको ॥ १ ॥ हारीतमुनि कल्पोंकी विधिको यत्नसे
पूछते भये ॥ २ ॥

ज्ञातं चैतन्मया तात ! समासेन चिकित्सितम् ॥

इदानीं श्रोतुमिच्छामि कल्पस्थानं तु सुव्रत ॥ ३ ॥

हारीत पूछता है—हे पिता ! मैंने चिकित्सास्थान संक्षेपमात्रसे जाना है, हे सुव्रत ! अब
मैं कल्पस्थानको सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ ३ ॥

अथ हरीतकीका कल्प ।

अत्रिरुवाच ॥ कल्पानामभया श्रेष्ठा तस्याः शृणु गुणागुणम् ॥

॥ ४ ॥ स्वर्गस्थामराध्यक्षस्य अमृतं पिवतस्ततः ॥ पतिता

विन्दवो भूमौ तेभ्यो जाता हरीतकी ॥ ५ ॥ रसैः पञ्चभिः संयुक्ता

रसेनैकेन वर्जिता ॥ कषायाम्लं च कटुका तिक्ता स्वादुरसा

स्मृता ॥ लवणेन वर्जिता च शृणु तस्याः पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥

त्वचाश्रितञ्च कटुकं मेदस्तस्याः कषायकम् ॥ मेदोऽन्तरे तथा

चाम्लं मधुरं चास्थिसंश्रितम् ॥ ७ ॥ तिक्तञ्चान्तरे तावत् तु

रसैः पञ्चभिः संयुता ॥ आम्लत्वान्मारुतं हन्ति पित्तं मधुरति-

क्ततः ॥ कफं कटुकषायत्वात्रिदोषघ्नी हरीतकी ॥ ८ ॥ हरीतकी

देहभृतां हिता स्यान्मातेव चैषा हितकारिणी च ॥ वरं कदाचि-

त्कुपितापि माता न कुप्यते चाचरितापि पथ्या ॥ ९ ॥ तस्या

उत्पत्तिनामानि वक्ष्यामि शृणु कोविद ॥ १० ॥ विजया
 रोहिणी च व पूतना चामृता तथा ॥ चेतकी चामया चैव
 जीवन्ती चैव सप्तमी ॥ ११ ॥ विन्ध्ये च विजया जाता
 अभया च हिमालये ॥ रोहिणी वैदिशे जाता पूतना मगधे
 स्मृता ॥ १२ ॥ जीवन्तिका सुराष्ट्रायां चम्पायां चेतकी मता ॥
 अमृता सरयूतीर इत्येताः सप्त जातयः ॥ १३ ॥ अभया नेत्र-
 रोगेषु शिरोरोगेषु कालिका ॥ सर्वप्रयोगे विजया रोहिणी क्षत्रो-
 हिणी ॥ १४ ॥ पूतना लेपनार्थं च अमृता च तथा मता ॥
 चेतकी सर्वतो योज्या जीवन्ती चूणयोगतः ॥ १५ ॥ बालानामु-
 पकारार्थं विजयां परिलक्षयेत् ॥ त्र्यस्रा च रोहिणी प्रोक्ता
 अमृता स्थूलमांसला ॥ १६ ॥ पञ्चास्रा चामया प्रोक्ता पूतना
 चतुरस्रका ॥ त्र्यस्रा तु चेतकी प्रोक्ता जीवन्ती दीर्घमांसला ॥
 ॥ १७ ॥ विजया नीलवर्णा च पीता स्याद्रोहिणी भिषक् ॥
 अमृता कृष्णवर्णा च किञ्चिच्छुभ्राभया तथा ॥ १८ ॥ सार्द्ध-
 द्व्यङ्गुलमानेन अमृतां लक्षयेद्बुधः ॥ १९ ॥ पथ्या भवेत्पथ्य-
 तमा नराणां रोगांश्च सर्वान्विनिहन्ति सद्यः ॥ आयुःप्रदा तुष्टि-
 मतीवमेधावर्णो जतेजः स्मृतिमातनोति ॥ २० ॥ उन्मूलिनी पि-
 त्तकफानिलानां सन्मीलिनी बुद्धिबलेन्द्रियाणाम् ॥ विस्रंसिनी
 सूत्रशकृन्मलानां हरीतकी रोगहरा नराणाम् ॥ २१ ॥ इत्यात्रे-
 यभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पो नाम प्रथमो-
 ऽध्यायः ॥ १ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—कल्पोंमें हरडै श्रेष्ठ हैं उसके गुण अवगुणोंको सुनो ॥ ४ ॥
 स्वर्गमें स्थित हुए इंद्रके अमृत पीवते हुए पृथ्वीमें अमृतकी बिंदु गिरती भयीं उनसे हरडै उत्पन्न
 होती भयीं ॥ ५ ॥ वह पाँच रसोंसे संयुक्त है और एक रससे रहित है, कसैली, खट्टी, चर्चरी,
 कड़ुई और मधुर रसवाली कही है, नमकके रससे वर्जित है उसके जुदे २ लक्षणोंको सुनो
 ॥ ६ ॥ इसकी त्वचा चर्चरी है और इसका मेद कसेला है मेदके भीतर खट्टापन है, अस्थि

मधुर है और भीतरसे कड़ुई है ऐसे पांच रसोंसे संयुक्त है ॥ ७ ॥ यह खट्वापनसे वातको नाशती है और मीठी तथा कड़वेपनसे पित्तको नाशती है और चर्चरे तथा कसेलेपनसे कफको नाशती है ऐसे त्रिदोषको नाशनेवाली हरडैं हैं ॥ ८ ॥ देहवारियोंको हरडैं हित हैं और यह माताकी तरह हित करनेवाली है किसी समयमें माता तो कुपित भी हो जाती है परंतु हरडैं कुपित नहीं होती है ॥ ९ ॥ हे पंडितजन ! उसकी उत्पत्ति और नामोंको कहते हैं सुनो ॥ १० ॥ विजया १ रोहिणी २ पूतना ३ अमृता ४ चेतकी ५ अभया ६ जीवन्ती ७ ऐसे सातप्रकारकी है ॥ ११ ॥ विजया तो विंध्याचलमें उत्पन्न हुई है और अभया हिमांचलमें हुई है रोहिणी वैदिश नगरमें उत्पन्न हुई है, पूतना मगध देशमें उत्पन्न हुई है ॥ १२ ॥ जीवन्ती हरडैं सुराष्ट्रानदीपै हुई हैं, चम्पानदीपै चेतकी हुई है, अमृता हरडैं सरयू नदीके तीरपै उत्पन्न भई हैं ॥ १३ ॥ नेत्ररोगमें अभया और शिरोरोगमें कालिका हरडैं श्रेष्ठ हैं और संपूर्ण रोगमें विजया और क्षतरोगमें रोहिणी हरडैं हित हैं ॥ १४ ॥ पूतना और अमृता हरडैं लेपमें हित कही हैं, जीवन्ती हरडैं सत्र योगोंमें युक्त करनी चाहिये । जीवन्ती हरडोंको चूर्णके योगमें प्रयुक्त करे ॥ १५ ॥ बालकोंके वास्ते विजया हरडैं श्रेष्ठ कही हैं रोहिणी हरडैं तिकूटी कही हैं और अमृता हरडैं स्थूल मांसवाली होती हैं ॥ १६ ॥ अभया पांच कूटोंवाली और पूतना चौकूटी कही है और चेतकी तीन कूटोंवाली कही है और जीवन्ती दीर्घ मांसवाली कही है ॥ १७ ॥ और विजया नीलवर्णवाली कही है और हे वैद्य ! रोहिणी पीले वर्णवाली कही है, अमृता कालेवर्ण कही है और अभया किंचित् सफेदवर्णवाली कही है ॥ १८ ॥ और जो अढाई अंगुल प्रमाणकी हो उसको बुद्धिमान् वैद्य अमृता जानें ॥ १९ ॥ पथ्या अर्थात् हरडैं मनुष्योंको अत्यंत पथ्य हैं, सम्पूर्ण रोगोंको तत्काल नाशती हैं, आयुको देनेवाली हैं, तुष्टी, अत्यंत मेधा, वर्ण, पराक्रम, तेज, स्मृति इनको बढ़ानेवाली हैं ॥ २० ॥ पित्त कफ वात इनको समान करनेवाली हैं, बुद्धि बल इंद्रिय इनको तुष्ट करनेवाली हैं, मूत्र, विष्टा, मल इनको बहानेवाली हैं, हरडैं मनुष्योंके रोगोंको हरनेवाली कही हैं ॥ २१ ॥

इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

पञ्चमे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः २.

अथ त्रिफला काथ ।

आत्रेय उवाच ॥ धात्र्या विभीतकस्यापि हरीतक्यास्तथा
फलम् ॥ त्रिफलेत्युच्यते वैद्यैर्वक्ष्यामि भागनिर्णयम् ॥ १ ॥

एक भागो हरीतक्या द्वौभागौ च विभीतकम् ॥ आमलक्यास्त्रि-

भागश्च सहैकत्र प्रयोजयेत् ॥२॥ त्रिफला कफपित्तघ्नी महाकुष्ठ-
 विनाशिनी ॥ आयुष्या दीपनी चैव चक्षुष्या व्रणशोधिनी ॥३॥
 वर्णप्रदायिनी घृष्टा विषमज्वरनाशिनी ॥ दृष्टिप्रदा कण्डु-
 हरा वमिगुल्मार्शनाशिनी ॥ ४ ॥ सर्वरोगप्रशमनी मेधा-
 स्मृतिकरी परा ॥ वक्ष्यामि योगयुक्तिश्च रोगेरोगे पृथक् पृथक्
 ॥ ५ ॥ वाते घृतगुडोपेता पित्ते समधुशर्करा ॥ श्लेष्मे त्रिकटु-
 कोपेता मेहे समधुवारिणा ॥ ६ ॥ कुष्ठे च घृतसंयुक्ता सैन्धवे-
 नाग्निमान्द्यहा ॥ चक्षुर्धावनके काथो नेत्ररोगनिवारणः ॥७॥
 घृतेन हरते कण्डूं मातुलुङ्गरसैर्वमिम् ॥ ८ ॥ गुल्माशौ गुडसू-
 रणैः स स्यात्तु गुडकारकः ॥ क्षीरेण राजयक्ष्माणं पाण्डुरोगं
 गुडेन च ॥ ९ ॥ भृङ्गराजरसेनापि घृतेन सह योजितः ॥ वली-
 पलितहन्ता च तथा मेधाकरः स्मृतः ॥ १० ॥ सक्षीरः सगुडः
 काथो विषमज्वरनाशनः ॥ सशर्कराघृतः काथः सर्वजीर्णज्व-
 रापहः ॥ ११ ॥ एषा नराणां हितकारिणी च सर्वप्रयोगे
 त्रिफला स्मृता च ॥ सर्वाभयानां शमनी च सद्यः सतेजकान्ति
 प्रतिमां करोति ॥ १२ ॥ शोफे तथा कामलपाण्डुरोगे तथोदरे
 मूत्रयुता हिता च ॥ हिताऽतिसारे ग्रहणीविकारे हिता च
 तक्रेण फलत्रिका च ॥ १३ ॥ क्षीणेन्द्रिये जीर्णज्वरे च यक्ष्मे
 क्षीरेण युक्ता त्रिफला हिता च ॥ स्यान्नेत्ररोगे च शिरोगदे च
 कुष्ठे च कण्डूव्रणपीडने च ॥ १४ ॥ मूत्रग्रहे कामलकेऽग्निमा-
 न्द्ये जलेन पीतस्त्रिफलादिकल्कः ॥ सशीतकाले गुडनागरेण
 सशर्करा क्षीरयुता तथोष्णे ॥ १५ ॥ वर्षासु शुण्ठीसहिता
 फलत्रिका फलत्रिका सर्वरुजाहरा स्यात् ॥ १६ ॥ इत्या-
 न्नेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने त्रिफलाकाथो नाम द्विती-
 योऽध्यायः ॥ २ ॥

आत्रेयजी कहते हैं--हरडै, आंवला, बहेड़ा इनके फलको त्रिफलन त्रिफला कहते हैं ।
 अब इनके भागका निर्णय करते हैं ॥ १ ॥ हरडै १ भाग, बहेड़ा २ भाग, आंवला ३ तीन
 भाग इस प्रकार इनको एक जगह मिलावे ॥ २ ॥ यह त्रिफला कफपित्तको नाशता है, महाकु-
 ष्ठको नाशता है, आयुमें हित है, दीपन है, नेत्रोंमें हित है, व्रणको शोधन करनेवाला है ॥ ३ ॥
 विसके लगनेसे व्रणको भरनेवाला है, ज्वरको नाशता है, दृष्टिको देनेवाला है, खाजिको हरता है,
 वमन, गुल्म, बवासीर इनको नाशता है ॥ ४ ॥ संपूर्ण रोगोंको शांत करता है और मेघा,
 स्मृति इनको करनेवाला है । अब रोग २ में जुड़ी २ योगकी युक्तिको कहेंगे ॥ ५ ॥ वितमें घृत
 और गुडसे संयुक्त त्रिफला देना चाहिये । पित्तमें शहद और खांडके संग, कफमें सूठ,
 मिरच, पीपल इनके संग देना चाहिये । प्रमेह रोगमें शहद और जलके संग देवे ॥
 ॥ ६ ॥ कुष्ठ रोगमें घृतके संग, मन्दाग्रिमें सेंवानमकके संग देना चाहिये और इसके
 काथसे नेत्रोंको धोनेसे नेत्रोंके रोगोंका नाश होता है ॥ ७ ॥ और घृतके संग सेवनेसे
 खाजिका नाश होता है, विजौराके रसके संग देनेसे वमनका नाश होता है ॥ ८ ॥ गुड और
 जमीकंदके संग देनेसे गुल्म, बवासीर इनका नाश होता है, दूधके संग देनेसे राजयक्ष्मा
 रोगका नाश होता है गुडके संग देनेसे पांडुरोगका नाश होता है ॥ ९ ॥ और मंगराके रस
 तथा घृतके संग देनेसे बलीपलित अर्थात् बुडापेके सफेद बालआदिरोग इनका नाश होता है
 और बुद्धि बढती है ॥ १० ॥ और गुड मिला दूधका काथ बना उसके संग देनेसे विप-
 मज्वरका नाश होता है और खांड तथा घृतके संग काथ बनाके देनेसे संपूर्ण जीर्णज्वरोंका
 नाश होता है ॥ ११ ॥ यह त्रिफला मनुष्योंको हित करनेवाली है और सब प्रयोगोंमें
 त्रिफला कहाता है तत्काल सब रोगोंको शांत करनेवाला कहा है और तेज कांति सुंदर मूर्ति
 इनको करनेवाला कहा है ॥ १२ ॥ और शोजा, कामला, पांडुरोग, उदररोग इनमें गोमूत्रके
 संग त्रिफला देना हित है और अतीसार संग्रहणी इन रोगोंमें तक्रके संग त्रिफला देना हित है
 ॥ १३ ॥ और क्षीण इंद्रियवाला, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा, इनमें दूधके संग त्रिफला देना हित है
 और नेत्ररोग, शिरोरोग, कुष्ठ, खाजी, व्रणकी पीड़ा ॥ १४ ॥ मूत्रग्रह, कामला, मन्दाग्रि इन
 रोगोंमें जलके संग त्रिफलाका कल्क बनाके देना हित है और ठंडककी समयमें गुड सोंठके संग
 और गरमीके समय खांड दूध इनके संग देना हित है ॥ १५ ॥ और वर्षासमयमें सोंठके संग
 त्रिफला दीडुई हित है यह त्रिफला सबरोगोंको नाशनेवाली है ॥ १६ ॥ इति वेरीनिवासिबुध०

हारीतसंहिताभाषाटीकायां पंचमे कल्पस्थाने त्रिफलाकाथो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ३.

अथ हरडोंके कलन और वर्णोंका भेद ।

आत्रेय उवाच ॥ अभया द्व्यङ्गुला प्रोक्ता पूतना चतुरङ्गुला ॥
 सार्द्धाङ्गुला च जीवन्ती चेतकी स्यात्षडङ्गुला ॥ १ ॥ चेतकी
 द्विविधा प्रोक्ता आकारवर्णतस्तथा ॥ षडङ्गुलासिता प्रोक्ता शुक्ला
 चैकाङ्गुला स्मृता ॥ २ ॥ श्रेष्ठा कृष्णा समाख्याता रेचनार्थं
 जिगीषुणा ॥ ३ ॥ चेतकी वृक्षशाखायां यावत्तिष्ठति तां पुनः ॥
 भिन्दन्ति पशुपक्ष्याद्या नराणां कोऽत्र विस्मयः ॥ ४ ॥
 चेतकीं यावद्विधृत्य हस्ते तिष्ठति मानवः ॥ तावद्भिनत्ति रोगा-
 स्तु प्रभावान्नात्र संशयः ॥ ५ ॥ नृपाणां सुकुमाराणां तथा भेष-
 जविद्विषाम् ॥ कृशानां हितमेवं स्यात्सुखोपायविरेचनम् ॥ ६ ॥
 हरीतकी दरिद्राणामनपायरसायनम् ॥ पथ्यस्यान्तेऽथवा चादौ
 भक्षेच्चामयनाशिनीम् ॥ ७ ॥ तृषातुराणां हृदि कण्ठशोषे हनु-
 ग्रहे चापि गलग्रहे च ॥ नवज्वरे क्षीणबलेन्द्रियाणां न गर्भिणी-
 नां कथिता प्रशस्ता ॥ ८ ॥ हरीतकी वा गुडनागरेण सिन्धूत्थ-
 युक्ता कथिता प्रयोगे ॥ आमाशयस्था जठरामयश्च जघान
 चेन्द्रायुधवद्दुःमाणाम् ॥ ९ ॥ सशरदे वा सितया प्रयुक्ता शुण्ठी
 गुडेनापि हिमे प्रयोज्या ॥ ससैन्धवापिप्पलिका च शैशिरे हितो
 वसन्ते त्रिकटुगुडेन ॥ १० ॥ ग्रीष्मे सितानागरकैश्च पथ्या वर्षासु
 सिन्धूत्थयुता हिता च ॥ निहन्ति सर्वामयमेव सद्यो घृतेन पथ्या
 विहिता हरीतकी ॥ ११ ॥ घृतेन देयं मनुजाय कल्कमामानिलं
 हन्ति नरस्य कोष्ठे ॥ दुष्टान्विकारान्हरतीति सद्य एरण्डतै-
 लेन विपाच्य पथ्यम् ॥ १२ ॥ खादेत्तदेवामुपिबेच्च तैलं सञ्जल-
 विष्टम्भकृतान्विकारान् ॥ सर्वाञ्जयेत्पित्तकफानिलोत्थान्मूत्रे

स्थितं सतदिनं सहिष्याः ॥ १३ ॥ पञ्चाभया सूत्रपलानि पञ्चक्षीरेण
 सप्ताहमतिप्रशस्तम् ॥ क्षीरोदशोष्णी परतस्तथान्ये एष त्रिसप्ताद-
 परः प्रयोगः ॥ १४ ॥ वातोदरं शीघ्रमियं निहन्यात्प्लीहानमाना-
 हसुरोगग्रहश्च ॥ स पाण्डुरोगं च कृमींश्च हन्ति हरीतकी धान्यतुषा-
 म्बुसिद्धा ॥ १५ ॥ सपिप्पलीसैन्धवयुक्तचूण सोद्गारधूपं भृशम-
 प्यजीर्णम् ॥ निहन्ति सद्यो जनयेत्क्षुधाञ्च कल्कञ्च तस्याः सह
 नागरेण ॥ १६ ॥ ससैन्धवेन ज्वरमाशु हन्ति दध्ना च तत्रेण
 हितातिसारो ॥ सराजयक्ष्मे मधुनावलिह्यान्मूत्रेण शोफोदरना-
 शहेतोः ॥ १७ ॥ सपाण्डुरोगे समशर्करायाः शोषे सदाहे सह
 सातुलङ्गया ॥ रसेन युक्ता विहितातिपथ्या कल्कं समाप्तं कथितं
 सुतीन्द्रैः ॥ १८ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने
 हरीतकीकल्पवर्णनभेदो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—अभया दो अंगुल प्रमाणकी होती है घृतना चार अंगुल प्रमाण
 की होती है जीवन्ती डेढ़ अंगुल प्रमाणकी होती है, चेतकी छह अंगुल प्रमाणकी होती है ॥ १ ॥
 यहां आकारसे और वर्णसे चेतकी हरडै दो प्रकारकी कही है वहां छह अंगुल प्रमाणवाली काली
 कही है और एक अंगुल प्रमाणवाली सफेद कही है ॥ २ ॥ जुलाबके वास्ते काली चेतकी हरडै
 श्रेष्ठ कही है ॥ ३ ॥ और जबतक चेतकी हरडों वृक्षके नीचे स्थित रहे तबतक पशु पक्षी-
 आदिकको भी दस्त लग जाते हैं मनुष्योंकी तो कौन बात है ॥ ४ ॥ और मनुष्य जबतक
 चेतकी हरडैको हाथमें रखे तबतक उसके दस्त लगे रहते हैं और रोगोंका नाश हो जाता है
 ॥ ५ ॥ और राजे तथा सुंदर कोमल शरीरवाले जन अथवा जिनसे औषध नहीं लीजावे
 तथा कृश, ऐसे मनुष्योंके मुखके उपायके वास्ते यही जुलाब दिवानी कही है ॥ ६ ॥ दरिद्री
 पुरुषोंको द्रव्य खरच करे बिनाही यह हरड रसायनरूप औषध कही है पथ्य भोजनके अंतमें
 अथवा आदिमें भक्षणकीहुई यह हरडै रोगोंको नाशनेवाली कही है ॥ ७ ॥ और तृपासे पीडित
 पुरुष, हृदय, कंठ इनमें शोषवाले, हनुग्रह तथा गलग्रहरोगवाले, नवीनज्वर क्षीणबल इंद्रियवाले
 पुरुष गर्भिणी स्त्री इनको यह हरड देनी पथ्य नहीं कही है ॥ ८ ॥ गुड़, सोंठ, सेंधानमक,
 इनके संग हरडको देवे तो आमाशयमें स्थित होनेवाले उदररोगोंका ऐसे नाश होता है कि जैसे
 बिजलीसे वृक्षोंका नाश हो जाता है ॥ ९ ॥ शरदऋतुमें मिश्रीके संग देनी और हिमऋतुमें
 गुड़, सोंठ, इनके संग देनी, शिशिरऋतुमें सेंधानमक, पीपली, इनके संग देनी और

त्रसंतक्रतुमें सूठ, मिरच, पीपली, गुड, इनके संग देनी हित है ॥ १० ॥ ग्रीष्मक्रतुमें मिसरी, सोंठ इनके संग देनी पथ्य है और वर्षासमयमें सेंधानमकके संग देनी हित कही है और घृतके संग हुई हरड़ सब रोगोंको नाशती है ॥ ११ ॥ इसका कल्क बना घृतके संग देनेसे मनुष्यके कोष्ठकी आमवातका नाश होता है और दुष्ट विकारोंको तत्काल नाशती है और अरंडीके तेलमें पकाके देना पथ्य है ॥ १२ ॥ त्रिफलाको खाके उसपै यही तेल पीवे तो शूल मलके बंधाके किये हुए विकार इनका नाश होता है और पित्त, कफ, वात, इनसे उपजे सब विकारोंके नाशके वास्ते, महिषीकेमें मूत्रमें सात दिनतक स्थापित करी हरड़के खानेको खावे ॥ १३ ॥ और पांच हरड़े बीस तोले गोमूत्रमें और दूधमें स्थापितकर रखे सात दिनतक स्थापित करना श्रेष्ठ कहा है और कुछ वैद्य ऐसे कहते हैं कि सात दिनपीछे दूध और गोमूत्र सूखा जावे तबतक स्थापित रखे और कुछ ऐसे कहते हैं कि, इक्कीस दिन पीछेतक स्थापित रखे ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे सिद्ध की हुई यह हरड़ें वातोदररोग तिछी अफारा छातीको ग्रहण करनेवाला रोग इन रोगोंको नाशती है और धान्यकी कांजीमें सिद्ध की हुई हरड़ पांडुरोग, क्रिमिरोग इनका नाश करती है ॥ १५ ॥ पीपली, सेंधानमक इनके चूर्णके संग दी हुई हरड़ें अठकारका धुवाँ अत्यन्त अजीर्ण इनका नाश करती है और तत्काल क्षुधाको उत्पन्न करती है और सोंठके संग इसका कल्क देनेसे ॥ १६ ॥ तथा सेंधानमकके संग देनेसे ज्वरको नाशती है और दही तथा तक्रके संग देनेसे अतिसारको नाशती है राजयक्ष्मा रोगमें शहदेके संग चाटे और शोजा उदररोग इनके नाशकेवास्ते गोमूत्रके संग देवे ॥ १७ ॥ पांडुरोगमें वरावरकी खांडके संग और दाह, शोष इनमें विजौराके संग देनी हित कही है इस प्रकारसे मुनियोंसे कहा हुआ यह हरड़को कल्क समाप्त हो चुका है ॥ १८ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनु० हारीतसंहिताभाषा-टीकायां पंचमे कल्पस्थाने हरीतकीकल्पवर्णनमेदो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ४.



अथ रसोनकल्पः ।

अमृतस्य मन्थने जातं भीष्मं जन्यं सुरासरैः ॥ जहार वै न ते यस्तं चञ्चुना त्रिदिवं गतः ॥ १ ॥ संग्रामश्रमसंप्राप्ते श्रमवेगप्रधाविते ॥ आहूढे वैकुवं प्राप्ते च्युता ह्यमृतविन्दवः ॥ २ ॥ सकृत्संदूषिते देहे पतितास्तत्र संस्थिताः ॥ तस्मात्कालवशाज्जातं दुर्भिक्षं द्वाद-
शाब्दिकम् ॥ ३ ॥ विभुष्काः कानने सर्वा वृक्षकण्टप्रतानिकाः ॥ तस्माच्च ऋषयः सर्वे प्रकृष्टं गहनं गताः ॥ ४ ॥ तेषां मध्ये जरा-

अस्तो गतिहीनोऽतिजर्जरः ॥ सयष्टिः सरणिक्षुण्णः शीर्णदन्ता-
वलीमुन्वः ॥ ६ ॥ सव्यक्तस्थेः क्षुधापन्नैर्ऋषिभिस्तत्र विश्रुतः ॥
सोऽपि क्षुधानुरः सर्वा पर्य्यटत्युर्वरां महीम् ॥ ६ ॥ कुत्रचित्
पुण्ययोगेन दृष्टवान्विटपान् शुभान् ॥ नीलशैवालसंकाशान्
शाद्वलान्वहुलान् सुवि ॥ ७ ॥ क्षुधासंपीडनेनापि श्रुतवान्
सद्वलानपि ॥ ८ ॥ पण्मासानन्तरं शुष्कान् विटपांस्तदनन्तरम् ॥
श्रुतवान्कन्दकां सोऽपि मासमेकं तथा ऋषिः ॥ ९ ॥ पश्चात्
सुभिक्षे सजाते सर्वे चैकत्र संस्थिताः ॥ सोऽपि वृद्धो युवा भूत्वा
गतस्तत्र च यत्र ते ॥ १० ॥ तं दृष्ट्वा विस्मयापन्नाः पप्रच्छुः किं
कृतं त्वया ॥ नोक्तवान्स तु किञ्चिच्च रुषा तैः शापितस्ततः ॥ ११ ॥
यत्त्वया खादितं द्रव्यं तदभक्ष्यं द्विजातिभिः ॥ दुर्गन्धमपि चि-
त्रञ्च तस्माज्जातं रसोनकम् ॥ १२ ॥ अथ वीर्य्यञ्च वक्ष्यामि रसो-
नस्य महामते ॥ रसेः पञ्चभिः संयुक्तो रसोनस्तेन वर्जितः ॥ १३ ॥

अमृतमयनेक समय देवताओंका और दैत्योंका महान् युद्ध होता भया तब गरुड अमृतको
हारके चोंचमें ग्रहणकर स्वर्गमें जाते भये ॥ १ ॥ फिर युद्धकी हारके श्रमसे और मार्गके खेद
होनेसे युक्त हो गया तब बैठ गया वहां अमृतकी बिंदु गिरती भयी वे बूंद ॥ २ ॥
विष्टासे दूषित किसीके शरीरसे गिरके वहां ही स्थिति होती भई पीछे कालके वशसे
उस देशमें बारह वर्षतक दुर्भिक्ष काल पड़ता भया ॥ ३ ॥ उस वनमें सब बेल वृक्ष पत्ते
सूखते भये इससे सब ऋषि दूर गहरवनमें जाते भये ॥ ४ ॥ उन ऋषियोंमें बुढ़ापेसे
असित हुआ गमन करनेमें समर्थ नहीं, जर्जर अंगवाला यष्टिकाको पकड़े हुए क्षुधासे युक्त-
हुआ, दाँत हिलते हुए ऐसा एक ऋषि था ॥ ५ ॥ सो क्षुधामें युक्त हुए कहीं एकांतमें
वेमात्स्य हुए ऐसे अन्यऋषियोंसे विछुड़ता भया पीछे वह भी क्षुधासे युक्तहुआ सब पृथ्वीपे
विचरता भया ॥ ६ ॥ पीछे पुण्यके योगसे कहींक सुंदर वृक्षोंको देखता भया और नीली
सिवालाके समान कांतिवाले बहुतसे घासोंको पृथ्वीपे देखता भया ॥ ७ ॥ पीछे क्षुधासे
पीड़ित होनेसे उन वृक्षोंके पत्तोंको खाता भया ॥ ८ ॥ फिर छह महीने पीछे सूखे वृक्षोंको
खाता भया पीछे वह ऋषि एक महीनातक कंद अर्थात् लसुनकी जड़ोंको खाते भये वहां
लहसन कंद भी खाया, फिर सुभिक्ष संवत् होगया ॥ ९ ॥ तब सब ऋषि एक जगह
इकट्ठे हुए और वह वृद्ध ऋषि भी जहां वे थे उसी जगह जवान होके आया ॥ १० ॥
तब उसको देख आश्चर्यमें युक्त हो पूछते भये कि तैने क्या किया ? फिर वह कुछ भी नहीं

बोला तब उन्होंने क्रोधित होके शाप दे दिया ॥ ११ ॥ कि 'जो द्रव्य तेने खाया है वह द्विजाति ब्राह्मणआदि जातियोंको भक्षण करनेको योग्य नहीं है इसवास्ते दुर्गंधवाला और चित्र ऐसा लहसन हो गया ॥ १२ ॥ हे महामते ! अब लहसनके गुणोंको कहेंगे यह पांच रसोंसे युक्त है और एक रससे वर्जित है इसवास्ते इसको रसोन कहते हैं ॥ १३ ॥

अथ लहसनके गुण ।

कट्वम्लवीर्यो लघुनो हितश्च स्निग्धो गुरुः स्वादुरसोऽथ बल्यः॥
वृद्धस्य मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्रास्थिसन्धानकरःसुतीक्ष्णः॥१४॥
हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलप्रमेहहिकारुचिगुल्मशोफान् ॥ दुर्नाम-
कुष्ठानलश्यावजं तु समीरणं श्वासकफान् निहन्ति ॥ १५ ॥
तेन च रसोनकं नाम विख्यातं भुवनत्रये॥कुक्कुटाण्डनिभं ग्रीष्मे
शीर्णपर्णं समुद्धरेत् ॥ १६ ॥ बद्धा पुटे सुनिर्गुप्तं धारयेत्तं महा-
मते ॥ वर्षासु शिशिरे चैव कारयेन्मात्रया युतम् ॥ १७ ॥
रामठं जीरके द्वे च अजमोदा कटुत्रयम् ॥ घृतसौवर्चलोपेतं
वातरोगे विशेषतः॥१८॥मातुलुङ्गरसेनापि शूलानाहे प्रकी-
र्तितः ॥ दध्ना वातादिशमनो रसनो विहितो बुधैः ॥ १९ ॥
जांगलादि रसान्येव भोजनार्थे प्रदापयेत् ॥ २० ॥

लहसन चर्चरा और खट्टा है, हित है, स्निग्ध है, भारी है, स्वादु रसवाला है, बलदायक है, वृद्ध पुरुषकी वृद्धि, स्वर, वर्ण, नेत्र, भग्नअस्थि इनको जोड़नेवाला है सुंदर तीक्ष्ण है॥१४॥ और हृदयरोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, प्रमेह, हिचकी, अरुचि, गुल्म, शोजा, बवासीर, कुष्ठ, वायुसे उपजे हुए क्रिमि, वात, श्वास, कफ इनको नाशता है ॥ १५ ॥ पांच रसोंवाला होनेसे यह रसोन नामसे प्रसिद्ध है यह ग्रीष्मऋतुमें मुरगेके अंडेके समान होता है शिथिल २ पत्ते होते हैं ॥ १६ ॥ बुद्धिमान् जन इसको पुटविधिसे बांधके गुप्त धारण रक्खे और वर्षाऋतुमें तथा ग्रीष्मऋतुमें इसको मात्रासे युक्त करे ॥१७॥ और हिंग, दोनों जीरे, अजमोद, सूठ, मिरच, पीपल, घृत, कालानमक इनसे युक्तकर वातरोगमें देना श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥ और विजौराके रसके संग देनेसे शूल अफारा इनका नाश होता है और दहीके संग दिया हुआ लहसन वातआदि दोषोंको शांत करता है ॥ १९ ॥ और इसपर जांगल देशके जीवोंका रस भोजनमें हित कहा है ॥ २० ॥

अथ पेयरसोनविधि ।

निष्पीड्य च रसं तस्य गृहीत्वा मुनिसत्तम॥दुग्धेन शर्करोपेतं

पित्तरोगे पिवन्नरः ॥ २१ ॥ राजयक्ष्मक्षये पाण्डौ कामलायां
हलीमके ॥ शिरोरुजासु सर्वासु रक्तपित्तद्रमेषु च ॥ २२ ॥ शोष-
मूर्च्छापरस्मारे च हितं चैतद्रसायनम् ॥ २३ ॥

हे उत्तम मुनि ! लहसनके रसको निचोड़ उसमें दूध और खांड मिला पीनेसे पित्तरोग
शांत होता है ॥ २१ ॥ और राजयक्ष्मा, क्षयरोग, पांडुरोग, हलीमक, संपूर्ण शिरके रोग और
रक्तपित्तसे उपजे अम ॥ २२ ॥ शोष, मूर्च्छा, मृगीरोग इनमें हित है और रसायन है ॥ २३ ॥

परिपिप्य रसोनञ्च तत्समा त्रिवृता मता ॥ गुडेनैरण्डतैलेन
शीतं दत्त्वा च लेहकम् ॥ २४ ॥ भवत्येतत्समादृत्य पायये-
न्मूत्ररोगिणाम् ॥ शोफे गुल्मे वाऽऽमवाते हितमेतत्तदार्शसाम्
॥ २५ ॥ हरिणशशकलावातित्तिराणाञ्च मांसं ह्यथ च अज-
शिखीनां कर्करासारसानाम् ॥ घृतमधुररसानां शालिगोधूमसासां
हितमिति सनुजानां गुग्गुले वा रसोने ॥ २६ ॥ व्यायामयानात-
पमैथुनानि क्रोधाध्वजीर्णान्परिवर्जयेच्च ॥ विवर्जयेद्वापि तथा-
तिसारं मेहामये पाण्डुगुदामये च ॥ २७ ॥ न गर्भिणीनां न
च बालकानां भ्रमातुरे वा न मदातुरे च ॥ न रक्तपित्ते न च
कुष्ठिनेऽपि न रक्तवाते न विसर्पके च ॥ २८ ॥ दत्तो रसोनो यदि
मूढबुद्ध्या विरेचनं वा वमनं विधेयम् ॥ न वान्यथा कुष्ठमथापि
पाण्डुं त्वद्गोपरोषं कुरुते नरस्य ॥ सुयोगयुक्त्याऽमृतवन्नराणां
वीर्येन्द्रियं पुष्टिवलं तनोति ॥ २९ ॥ इत्यात्रेयभाषिते
हारीतोत्तरे कल्पस्थाने रसोनकल्पो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

लहसनको पीस उसके समान निशोत मिला और गुड, अरंडीका तैल, दालचिनी,
इनका अवलेह बना देनेसे ॥ २४ ॥ मूत्ररोगवाले पुरुषोंके सुख होता है और शोजा,
गुल्म, आमवात, बवासीर इन रोगवालोंको हित है ॥ २५ ॥ हिरन, शशा, लावा
तीतर, ककेरा, मोर, सारस, बकरा इत्यादिकोंका मांस, घृत, मधुररस, शालिसंज्ञक चावल,
गेहूं इनका भोजन करना गूगल तथा लहसन खानेके पीछे हित कहा है ॥ २६ ॥
कसरत, गमन करना, घाम सेवना, मैथुन करना, क्रोध, मार्गका श्रम इनको वर्ज देवे और
अतिसार, प्रमेह, पांडुरोग, गुदाके रोग इन रोगोंमें लहसन नहीं देना ॥ २७ ॥ गर्भिणी
स्त्री, बालक, भ्रमातुर पुरुष, मदातुर, रक्तपित्तवाले, कुष्ठवाले, रक्तवातवाले, विसर्प रोगवाले

इन मनुष्योंको भी लहसन नहीं देवें ॥ २८ ॥ यदि मूर्खपनेसे दियाजावे तो जुलाव दिवाना अथवा वमन कराना चाहिये नहीं तो मनुष्यके शरीरमें कुष्ठ, पांडुरोग, त्वग्दोष, इनको करदेता है और सुन्दर योगयुक्तिसे दियाहुआ लहसन मनुष्योंको अमृतके समान है वीर्य, इंद्रिय-पुष्टि, बल इनको बढ़ाता है ॥ २९ ॥ इति वेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्रनुवादित हारीतसंहिताभाषाटीकायां कल्पस्थाने रसोनकल्पो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ५.

अथ गुग्गुलकल्पः ।

हारीत उवाच ॥ भगवन् गुग्गुलो नाम योगवीर्यमथोगुणम् ॥
वक्तुमर्हसि रोगेषु येषु वापि प्रशस्यते ॥ १ ॥ एवमुक्तस्तु शिष्येण
प्रत्युवाच महातपाः ॥ २ ॥

हारीत पूछता है--हे भगवन् ! गुग्गुलनामक औषधके योग वीर्य और गुणको आप कहो जिन २ रोगोंमें श्रेष्ठ कहा है सो कहो ॥ १ ॥ ऐसे शिष्यसे पूछे हुए महान् तपवाले आत्रेयजी प्रतिवचन कहते हैं ॥ २ ॥

आत्रेय उवाच ॥ मरुभूमौ प्रजायन्ते प्रायशः पुरपादपाः ॥
भानोर्मयूखैः सततं ग्रीष्मे मुञ्चन्ति गुग्गुलम् ॥ ३ ॥ हिमाद्रितो
वा हेमन्ते विधिवत्तं समाहरेत् ॥ जातरूपनिभं शुभ्रं पद्मराग-
निभं क्वचित् ॥ ४ ॥ क्वचिन्महिषनेत्राभं यक्षदैवतवल्लभम् ॥ विधा-
नं तस्य विधिवन्निबोध गदतो मम ॥ ५ ॥ त्रिदोषशमनो वृष्य-
स्निग्धो बृंहणदीपनः ॥ गुग्गुलः कटुकः पाके वर्णप्रबलवर्द्धनः ॥
॥ ६ ॥ आयुष्यः श्रीकरः पुत्रस्मृतिमेधाविवर्द्धनः ॥ पापप्रश-
मनः श्रेष्ठः शुक्रार्तवकरः स्मृतः ॥ ७ ॥ वर्णगन्धरलोपेतो
गुग्गुलो मात्रया युतः ॥ भेषजैः सह निष्काथ्यो यथा व्याधिहरैः
पृथक् ॥ ८ ॥ मात्रावशिष्टं तं दृष्ट्वा चालयेच्छुक्लवाससा ॥ सूक्ष्मये
हेमपात्रे च राजते स्फाटिकेऽपि वा ॥ ९ ॥ पुण्ये तिथौ शुभे भे
च जीर्णाहारः क्षमान्वितः ॥ हुत्वाग्निं पर्युपासीत देवब्राह्मण-
भक्तितः ॥ १० ॥ प्रविश्य कुसुमाकीर्णं मन्दिरे च समाश्रिते ॥

राक्ता गुडूची चैरण्डो दशमूलं प्रसारिणी ॥ ११ ॥ काथं तेषां
 यथायोग्यं यवान्या वातिके पिवेत् ॥ वृषकृतैर्जीवनीयेः पिवे-
 त्पित्तालयादितः ॥ १२ ॥ वासाचन्दनद्विवेरं वृद्धीका तित्तरो-
 हिणी ॥ खजूरश्च परुषश्च तथा जीवककर्पको ॥ क्षपित्तरोगे
 पानाय काथः स्याद्गुगुलान्वितः ॥ १३ ॥ त्रिफलाव्योपगोमूत्र-
 निम्बवान्यकपुष्करैः ॥ अमृता दीप्यकः काथः पटोली च कफा-
 दितः ॥ १४ ॥ नाडीदुष्टघ्नप्रन्थिगण्डमालार्बुदान्वितः ॥ त्रिफ-
 लाकाथसंयुक्तं पिवेन्मेही व्रणी तथा ॥ १५ ॥ किरातकामृतानि-
 म्बवृषाव्याघ्रीदुरालभाः ॥ एषां काथेन संयुक्तं गुग्गुलं पाययेद्भि-
 षक् ॥ १६ ॥ गुल्मे कासे क्षते श्वासे विद्रवावरुचौ व्रणे ॥ दावीं
 पटोलकाथेन संयुक्तं गुग्गुलं पिवेत् ॥ १७ ॥ कण्डूपिटकशो-
 फाद्ये पिवेद्वातकफापहम् ॥ पथ्या पुनर्नवा दावीं गोमू-
 त्रममृतं तथा ॥ १८ ॥ एषां काथो हितः पाण्डौ शोथो-
 दरकिलासिनाम् ॥ भवेन्मात्रां पलं यावत्कर्पादारभ्य यत्नतः
 ॥ १९ ॥ जीर्णेऽश्रीयान्मुद्गयूपै रसैर्वा जाङ्गलैस्तथा ॥ पयसा
 षट्पिकाव्रश्च शालीनामोदनं मृदु ॥ २० ॥ दिनाः सप्त प्रथमा
 च मध्यमा द्विगुणाः स्मृताः ॥ त्रिगुणाः परमा सात्रा विज्ञेया
 योगाचिन्तकैः ॥ २१ ॥ सेवते गुग्गुलं यो वै वर्षेणापि नरः क्र-
 मात् ॥ स्थावराजङ्गमाच्चैव न स्यादस्य क्षतिर्विषात् ॥ २२ ॥
 निर्मुक्तो वलितत्वचोपि पलितो वृद्धो युवा जायते मेधादृष्टिब-
 लौजवीर्यमविकं वृद्धत्वहीनो भवेत् ॥ गुल्माष्ठीलहृदामवातश-
 मनः कुष्ठं प्रमेहाश्मरीं शूलानाहविसर्परक्तशमनो भूतोपसृष्टे
 हितः ॥ २३ ॥ इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे कल्पस्थाने गुग्गुल-
 कल्पो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—विशेष करिके गुग्गुलके वृक्ष मरुदेशमें होते हैं सो निरन्तर सूर्य-
 की किरणोंसे ग्रीष्मऋतुमें गुग्गुलको त्यागते हैं ॥ ३ ॥ और हिमाद्रिपर्वतमें गुग्गुलवृक्षोंसे

हेमंतऋतुमें गूगल निकसता है कहीं तो चांदीके समान सफेद होता है कहीं पद्मरागके समान होता है ॥ ४ ॥ कहीं भैंसाके नेत्रोंके समान वर्णवाला होता है वह यक्षदेवता इनको प्रिय है सो इसका विधान विधिसे कहते हुए मुझसे सुनो ॥ ५ ॥ यह त्रिदोषको शांत करनेवाला है वीर्यमें हित है स्निग्ध है धातुओंको बढ़ानेवाला है अग्निको दीप्त करनेवाला है और गूगल पाकमें चर्चरा है वर्ण बल इनको बढ़ानेवाला है ॥ ६ ॥ आयुमें हित है लक्ष्मी बढ़ानेवाला है, पुत्र, स्मृति, मेधा इनको बढ़ानेवाला है पापको शांत करनेवाला है श्रेष्ठ है पुरुषके वीर्य स्त्रीके आर्तव इनको करनेवाला है ॥ ७ ॥ और वर्ण, गंध, रस इनसे संयुक्त गूगलमात्रसे युक्त किया हुआ और औषधोंके संग काथ बनाके दिया हुआ व्याधिके अनुसार दिया हुआ सब व्याधियोंको नाशता है ॥ ८ ॥ मात्राके अनुसार उस गूगलको देखके सफेद वस्त्रसे छान लेवे पीछे मट्टीके पात्रमें अथवा सुवर्णके पात्रमें तथा चांदीके पात्रमें तथा कांचके पात्रमें ॥ ९ ॥ शुभ तिथिमें और शुभ नक्षत्रमें घाल धरे पीछे भोजन जर जावे तब क्षमासे युक्त हुआ पुरुष सुंदर पुष्पोंसे आकीर्ण हुए मंदिरमें जाके देवता ब्राह्मण इनकी भक्ति और उपासना कर ॥ १० ॥ उस गूगलको स्थापित करदेवे और वातसे उपजे रोगमें खाये हुए गूगलके ऊपर रास्ना, गिलोय, अरंड, दशमूल, खीप ॥ ११ ॥ अजवायन इनका काथ यथायोग्य पीवे और पित्त रोगसे पीड़ित हुए पुरुष पृथक् २ जीवनीयगणकी औषधोंमें पकाया हुआ काथ पीवे ॥ १२ ॥ वांसा, चंदन, नेत्रवाला, मुनक्का, दाख, कुटकी, खजूर, फालसा, जीवक, ऋषभक इनका काथ गूगलमें युक्तकर पित्तके रोगोंमें पीना हित है ॥ १३ ॥ त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपली, गोमूत्र, नींबू, धनियां, पोहकरमूल, गिलोय, अजवायन, परवल, इनके काथके संग गूगल लेना कफके रोगोंमें हित है ॥ १४ ॥ दुष्टनाडीव्रण, ग्रंथिरोग, गंडमाला, अर्बुद, प्रमेह, व्रण, इन रोगोंवाला पुरुष त्रिफलाके काथके संग पीवे ॥ १५ ॥ चिरायता, गिलोय, नींबू, वांसा, कटेहली, धमासा इनके काथके संग गूगलको पीवे ॥ १६ ॥ तो गुल्म, खांसी, चोट, श्वास, चिद्रधि, अरुचि व्रण इनका नाश होता है और दासहलदी, परवल इनके काथके संग गूगलको पीवे ॥ १७ ॥ तो खाज, पिडिका, शोजा आदिक वात, कफ इनका नाश होता है और हरडै, सांठी, दासहलदी, गोमूत्र, दूध ॥ १८ ॥ इनके काथके संग गूगल पीनेसे पांडुरोग, शोजा, उदररोग, किलासकुष्ठ इनका नाश होता है और एक तोलासे लेकर चार तोला प्रमाणतक गूगलका खाना हित है ॥ १९ ॥ जब खाया हुआ गूगल जरजावे तब मूंगोंका यूष और जांगलदेशके जीवोंके रसके संग भोजन करना हित है और दूधके संग सांठी चावल और शालीसंज्ञक चावलोंको खावे ॥ २० ॥ सातदिन गूगलका सेवन करना प्रथम मात्रा है और १४ दिनतक मध्यम मात्रा और इक्कीस दिनतक सेवन करनेको परममात्रा कहते हैं, ऐसे योग युक्तिको जाननेवालोंने कहा है ॥ २१ ॥ और जो पुरुष क्रमसे वर्ष दिनतक गूगलको सेवता है उसको स्थावर और जंगमाविषोंकी मात्रा दुःख नहीं देती है

॥ २२ ॥ और जिसकी त्वचा ढीली पड़े, बाल लफेद होजावे ऐसा वृद्ध पुरुष भी इसके खानेसे जवान हो जाता है और बुद्धि, दृष्टि, बल, वीर्य इनकी वृद्धि होती है, वृद्ध-
यनेके दुःखोंसे दूर हो जाता है और गुल्म, अट्टीला, हृदयका रोग, आमवात इनको शांत करता
है, कुष्ठ, प्रमेह, पथरी, शूल, अफारा, विसर्प, रक्तदोष भूतव्याधि इनको शांत करता है ॥ २३ ॥

इति वैरोनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभापाटीकायां

कल्पस्थाने गुग्गुलकल्पो नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति पञ्चमं कल्पस्थानं समाप्तम् ॥

अथ षष्ठं शारीरस्थानम् ।

प्रथमोऽध्यायः १.

अथ शारीराध्यायः ।

आत्रेय उवाच ॥ पञ्चभूतात्मकं देहं पञ्चेन्द्रियसमायुतम् ॥
सप्तधातुगुणोपेतं दशवातात्मिकं विदुः ॥ १ ॥ जीवो मनस्त-
थाकाशस्तथैव त्रिगुणात्मिकः ॥ शुक्रशोणितसम्भूतं शरीरं दोष-
भाजनम् ॥ पञ्चभूतमयं चैतद्विज्ञेयं भिषजां वर ॥ २ ॥ चतुर्विधं
शरीरं स्याद्बाल्यं प्रौढं प्रगल्भकम् ॥ स्थविरञ्च तथा प्रोक्तं
बाल्यमल्पशरीरकम् ॥ षोडशवार्षिकं यावद्बाल्यं तावत् प्रवर्तते
॥ ३ ॥ धातूनाञ्च बलं तत्र धातुमूलं शरीरकम् ॥ धातूनां पुष्टि-
योगेन शरीरञ्चातिवर्द्धते ॥ ४ ॥ जीवितं धातुमूलं तु मृत्युर्धा-
तुक्षयादपि ॥ हीनधातोश्च योगेन लभते स्वल्पजीवनम् ॥ ५ ॥
नरो धातुबलेनापि जीवितश्चात्र दृश्यते ॥ तस्माच्च मैथुनात्स-
म्यगजायते गर्भसम्भवः ॥ ६ ॥ आदौ धातुबलं तस्मात्सत्त्वं
तस्माद्भ्रजो विदुः ॥ रजसा जायते कामः कामात्सुरतसङ्गमः
॥ ७ ॥ मासे मासे ऋतुः स्त्रीणां दृष्ट्वा ऋतुमतीस्त्रियः ॥ रजः
सप्तदिनं यावद्दुतश्च भिषजां वर ॥ ८ ॥ सप्तरात्राद्योनिशुद्धि-
स्तस्माद्दुतमती भवेत् ॥ दृश्यते च रजः स्त्रीणां विना योगेन
पुत्रक ॥ ९ ॥ दृश्यते न विना योगात्फलं स्त्रीणां तु पुत्रक ॥
संशयाद्विस्मितश्चित्ते हारीतः परिपृच्छति ॥ १० ॥

आत्रेयजी कहते हैं—पांच तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाला पांच इंद्रिय और सात धातु तथा दश वायुओंसे युक्त ऐसे देहको कहते हैं ॥ १ ॥ जीव, मन, आकाश, ऐसे त्रिगुणात्मक शरीर है, वीर्य और शोणितसे उपजे हुए शरीरको दोषका पात्र कहते हैं । हे उत्तमवैद्य ! पांच तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाला शरीर जान ॥ २ ॥ चार प्रकारका शरीर होता है, बालक १, जवान २, प्रगल्भ ३, वृद्ध ४, ऐसे चार प्रकारका कहा है, वहां बालक अल्पशरीर कहा है जबतक सोलह वर्षका हो तब तक बालक अवस्था रहती है ॥ ३ ॥ शरीरमें धातुओंका बल होता है और धातुओंकी जड़वाला शरीर कहा है और धातुओंकी पुष्टिके योगसे शरीर अत्यंत बढ़ता है ॥ ४ ॥ जीवन धातुओंकी जड़से है और धातुक्षय होनेसे मृत्यु हो जाती है और हीन धातुके योगसे थोड़ा जीवन होता है ॥ ५ ॥ मनुष्यका जीवन धातुकेही बलसे दीखता है इस वास्ते मैथुनसे सम्यक् प्रकारसे गर्भ स्थित होता है ॥ ६ ॥ पहले धातुका बल, उससे सत्त्वगुण, सत्त्वगुणसे रजोगुण, उससे काम व कामसे मैथुनका संगम होता है ॥ ७ ॥ महीना २ के प्रति ऋतु अर्थात् स्त्री रजस्वला धर्ममें होती है । हे उत्तमवैद्य ! सात दिन-तक स्त्रियोंके रज रहता है तबतक ऋतुसमय कहा जाता है ॥ ८ ॥ और सात रात्री पीछे योनिकी शुद्धि हो जाती है तब वह ऋतुमती कहाती है हे पुत्र ! स्त्रियोंके रज विनाही योगसे होता है ॥ ९ ॥ फल अर्थात् गर्भस्थिति संयोगके विना नहीं होती है ऐसे सुनके सन्देहमें युक्त हो हारीत फिर पूछता भया ॥ १० ॥

हारीत उवाच ॥ संयोगेन विना प्राज्ञ कथं गर्भो न जायते ॥
संयोगेन विना पुष्पं फलं वा न कथं भवेत् ॥ ११ ॥ वृक्षवन्न कथं
स्त्रीणां फलोत्पत्तिः प्रदृश्यते ॥ एतत्पृष्टो महाचार्यः प्रोवाच
ऋषिपुङ्गवः ॥ १२ ॥

हारीत पूछने लगा—हे महाराज ! संयोगके विना स्त्रियोंके गर्भ क्यों नहीं ठहरता है क्योंकि संयोगके विना पुष्प तो हो गये फिर फल भी क्यों नहीं होता है ? ॥ ११ ॥ वृक्षकी तरह स्त्रियोंके भी गर्भकी उत्पत्ति क्यों नहीं होती ऐसे पूछा हुआ ऋषियोंमें उत्तम महान् आचार्य फिर बोलता भया ॥ १२ ॥

आत्रेय उवाच ॥ विरुद्धानाञ्च वल्लीनां स्थावराणाञ्च पुत्रक ॥
तत्र धातुसमं बीजं सह योगेन वर्तते ॥ १३ ॥ न भिन्नदृष्टि-
स्तस्येव दृश्यते शृणु पुत्रक ॥ स्थावराणाञ्च सर्वेषां शिवशक्ति-
मयं विदुः ॥ १४ ॥ निश्चलोऽपि शिवो ज्ञेयो व्याप्तिशक्तिर्महा-
मते ॥ तत्र स्त्रीपुरुषगुणा वर्तते समयोगतः ॥ १५ ॥ आम्र-
पुष्पं फलं तद्वद्बीजं शुक्रमयं विदुः ॥ स्त्रीणां रजोमयं रेतो बीजा-

व्यमिन्द्रियं नरे ॥ तस्मात्संयोगतः पुत्र जायते गर्भसम्भवः ॥
 ॥ १६ ॥ प्रथमेऽहनि रेतश्च संयोगात्कललं च यत् ॥ जायते
 बुद्बुदाकारं शोणितञ्च दशाहनि ॥ १७ ॥ घनं पञ्चदशाहे
 स्याद्विंशाहे मांसपिण्डकम् ॥ पञ्चविंशत्तमे प्राप्ते पञ्चभूतात्म-
 सम्भवः ॥ १८ ॥ मासैकेन च पिण्डस्य पञ्चतत्त्वं प्रजायते ॥
 पञ्चाशद्दिनसंप्राप्ते अङ्गुराणाञ्च सम्भवः ॥ १९ ॥ मासत्रये
 तु संप्राप्ते हस्तपादौ प्रवर्धते ॥ सार्द्धमासत्रये प्राप्ते शिरश्च
 सारवद्भवेत् ॥ २० ॥ चतुर्थके च लोमानां सम्भवश्चात्र
 दृश्यते ॥ पञ्चमे च सुजीवः स्यात्पष्टे प्रस्फुरणं भवेत् ॥ २१ ॥
 अष्टमे मासि जाते च अग्नियोगः प्रवर्तते ॥ मासे तु नवमे प्राप्ते
 जायते तस्य चेष्टितम् ॥ २२ ॥ जायते तस्य वैराग्यं गर्भवा-
 सस्य कारणात् ॥ दशमे च प्रसूयेत तथैकादशमेऽपि वा
 ॥ २३ ॥ अथ दोषबलेनापि गर्भो वापि प्रसूयते ॥ वातसंप्रेरिते
 गर्भे अपूर्णे दिवसैर्यदि ॥ २४ ॥ प्रसूयते वाप्यथ तद्गर्भे बालः प्रदृ-
 श्यते ॥ अथ वक्ष्यामि देहस्य वर्णज्ञानं महामते ॥ २५ ॥ नररेतो-
 ऽधिकत्वेन तथा शुक्राधिकेन तु ॥ हीनरसेन्द्रियैर्वापि जायते
 पुरुषाधिकः ॥ २६ ॥ स्त्रीरेतसोऽधिकत्वेन हीनशुकेन्द्रियादपि ॥
 रजसोऽप्यधिकत्वेन स्त्रीसम्भूतिः प्रजायते ॥ २७ ॥ सप्तधा तु बले-
 नापि प्रकृत्या विकृतेः समे ॥ ऋतुव्याप्तरजःस्त्रीणां या या भवति
 भावना ॥ २८ ॥ सात्त्विकी राजसी वापि तामसी वापि सत्तमा ॥
 तादृशं जनयेद्बालं गुणैर्वा तादृशैरपि ॥ २९ ॥ या च भावयते
 चित्ते भ्रातरं पितरं नरम् ॥ येन वा तेन सदृशं सूयते सा भिष-
 ग्वर ॥ ३० ॥ वातेन श्यामः पुरुषो वातप्रकृतिसम्भवः ॥
 पित्तेन गौरो भवति पित्तप्रकृतिवान्भवेत् ॥ ३१ ॥ श्लेष्मणा
 जायते स्निग्धः श्यामश्च लोमशस्तथा ॥ दीर्घशिरोरुहः स्थूलो
 दीर्घप्रकृतिसंयुतः ॥ ३२ ॥ वातरक्तेन कृष्णोऽपि पित्तरक्तेन

पिङ्गलः ॥ पित्तवांश्च नरो रूक्षः स्निग्धः श्यामः कफासृजा
 ॥३३॥ भृङ्गराजाज्जनाकारं वातेन दृष्टिमण्डलम् ॥ सूक्ष्मलोमा
 च कृष्णश्च रूक्षमूर्धजयान्वितः ॥ यस्य वातेन तं विद्धि नखसू-
 क्ष्मासितच्छविम् ॥३४॥ पित्तेन पीतश्च भवेदलोमा पिङ्गेक्षणा-
 भासपिशङ्गककेशः ॥ अलोमशः पीतनखप्रभः स्यात्क्षुधातुरश्चो-
 ष्मणकेन दृप्तः ॥ ३५ ॥ सलोमशो दृप्तकठोरकेशः श्याम-
 च्छविर्दृप्ततनुर्विशालः ॥ सुस्निग्धदन्तः सितनेत्ररम्यो नख-
 च्छविः पाण्डुसुदीर्घनासः ॥ ३६ ॥

आत्रेयजी कहते हैं—हे पुत्र ! विरुद्ध जो स्थावर वृक्ष वेल आदिक हैं उनको तो
 धातुके संग बीज योगसहित प्रवृत्त होता है ॥ १३ ॥ हे पुत्र ! उनके भिन्न दृष्टि नहीं है
 सो सुनो संपूर्ण स्थावर वृक्ष आदिकोंके शिव और शक्तिको जान ॥ १४ ॥ वहां निश्चल तो
 शिव है और शक्ति व्याप्त हो रही है वहां स्त्री पुरुषके गुण संग ही प्रवृत्त होते हैं ॥ १५ ॥
 इसवास्ते आमके पुष्प और फल संगमें ही प्रवृत्त होता है और बीजको बीयकी जगह जन्म
 और स्त्रियोंके रज ही वीर्य है और पुरुषके वीर्य बीजरूप है हे पुत्र ! इस वास्ते संयोगसे ही
 गर्भकी उत्पत्ति होती है ॥ १६ ॥ और पहले दिन वीर्यके संयोगसे बुलबुलाके आकार वीर्य
 स्थित होता है दिशदिनमें रुधिर होजाता है ॥ १७ ॥ पंद्रह दिनमें कड़ा होजाता है और
 बीसमें दिनमें मांसकी पिंडी होती है, २५ दिनमें पांच तत्त्वोंका संभव होता है ॥ १८ ॥
 एक महीनामें उसके पांचों तत्त्व प्रकट होजाते हैं, पंचाशदिनोंमें अकुरोंकी उत्पत्ति होजाती है
 ॥१९॥ तीन महीने होजावे तब हाथ पैर बढ़ने लग जाते हैं साढे तीन महीनोंमें शिर प्रकट
 होजाता है ॥ २० ॥ चौथे महीनेमें रोम होते हैं और पांचवें महीनेमें जीव प्रकट होजाता
 है, छठे महीनेमें फुरने लगजाता है ॥ २१ ॥ पीछे आठमें महीनेमें उसके जठराग्निका योग
 होजाता है, नवमें महीनेमें उसको चेष्टा होती है ॥ २२ ॥ पीछे उसको गर्भवासके कारणसे
 वैराग्य होता है अर्थात् संसारसे दूर होनेका ज्ञान होता है, फिर दशवें महीनेमें उत्पन्न होता
 है ॥ २३ ॥ वातआदिक दोषोंके बलसे गर्भ जनता है, जो दशवां महीनातक दिन पूरे
 नहीं हुए हों ॥ २४ ॥ तो वह वातदोषसे प्रेरित हुआ गर्भ पहले ही उत्पन्न होजाता है हे
 महामते ! अब देहके वर्णज्ञानको कहते हैं ॥ २५ ॥ मनुष्यका वीर्य शुक्र अधिक होवे तो
 पुरुष जन्मे ॥ २६ ॥ और स्त्रीका वीर्य रज अधिक होवे और शुक्र हीन होवे तो कन्या
 जन्मे ॥ २७ ॥ सात धातुओंके बलसे प्रकृति और विकृति जब समान होजावे और रजस्वला
 होनेके स्त्रीके ऋतुसमयमें स्त्रियोंकी जैसी २ भावना हो ॥ २८ ॥ सत्त्वगुणी अथवा रजोगुणी

तथा तामसी जैसी प्रकृति हो तैसेही गुणोंसे युक्त वैसे ही बालकको स्त्री जनती है ॥ २९ ॥ जो स्त्री उस समयमें चित्तमें भ्राता अथवा पिता अथवा अन्यपुरुष जिसका स्मरण करती है हे उत्तमवैद्य ! उसीके सदृश पुत्रको जनती है ॥ ३० ॥ और वात-दोषसे श्यामवर्णवाला पुरुष, वातकी प्रकृतिवाला होता है, पित्तसे गौर वर्णवाला और पित्तकी प्रकृतिवाला होता है ॥ ३१ ॥ कफसे चिकना और श्यामवर्णवाला तथा रोमोंवाला होता है और बड़े बाल हों, स्थूल हो दीर्घ प्रकृतिसे युक्त होता है ॥ ३२ ॥ वात-रक्तसे काले वर्णवाला और पित्तरक्तसे पिंगल वर्णवाला होता है और पित्तवाला मनुष्य रूपा होता है और कफरक्तसे सिन्ध और कालेवर्णवाला होता है ॥ ३३ ॥ और वात दोषसे भौंरा तथा अंजनके आकारवाले दृष्टिमंडल होते हैं और जिसके सूक्ष्म रोम हों, काले और रखे बाल हों और जिसके सूक्ष्म लाल नख हों उसकी वातकी प्रकृति जाननी ॥ ३४ ॥ पित्तसे पीले रोम होते हैं और पीले नेत्र तथा बांदरसरीखे केश होते हैं और रोम नख ये पीले होते हैं और क्षुधासे युक्त रहता है, मुखसे भाऊ निकलती रहती है और बहुतसे रोम होते हैं गर्वीला होता है ॥ ३५ ॥ तथा कफसे कठोर बाल होते हैं श्याम कांति हो और गर्वीला तथा सुन्दर शरीर होता है चिकने दाँतहों सुन्दर रमणीक सफेद नेत्र रहते हैं नख पीले रहते हैं और दीर्घ नासिका होती है ॥ ३६ ॥

अथ नपुंसक तथा अपत्ययुग्मका विचार ।

समवीर्य्यरजस्त्वेन नरः स्त्रीप्रकृतिर्भवेत् ॥ नपुंसकमिति ख्यातं
न स्त्री न पुरुषो वदेत् ॥ ३७ ॥ दोषधातुविशेषेण सङ्गे सत्यङ्गसं-
भवः ॥ कृतभ्रान्ते च संभोगे द्वाभ्याश्च द्रवते मनः ॥ ३८ ॥ दृश्य-
ते यमलोत्पत्तिरन्यचित्तप्रियङ्करी ॥ ३९ ॥

मैथुन करनेके समय पुरुषका वीर्य और स्त्रीका रज जो समान होवे तो नपुंसक जन्मता है वह न तो पुरुष न स्त्री होता है ॥ ३७ ॥ दोष धातु इनका विशेष करिके संग होनेसे जो अंगका संभव होता है और भ्रांत चित्त होके जो भोग करते हैं वहां दोष और धातु दोनोंसे मन द्रवता है ॥ ३८ ॥ वहां यमल अर्थात् जोड़ेले बालक उत्पन्न होते हैं वे अन्योके चित्तको प्रसन्न करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥

अथ नपुंसकका विचार ।

समदोषबलेनापि प्रकृत्या विकृतेरपि ॥ शुक्रासृक्च भवेच्छया-
मा नपुंसकसमुद्भवः ॥ ४० ॥

रज वीर्य और प्रकृति विकृति दोषधातु इनके समान होनेसे स्त्री जन्मे तो वहभी हीजडी होती है ॥ ४० ॥

अथ गर्भका विवर्णन ।

अथ बीजलेहिपञ्चभूताग्निना परिपक्वं कललं क्रियते ॥ सोऽ-
पिचान्तःस्थो वायुर्बुद्बुदाकारो बाह्यवातेन संभृतो भवति ॥ स च
कललं भूत्वा पञ्चभूताग्निना पिण्डं जनयति च तच्च पिण्डं परि-
पाकगतं घनसंघातञ्च जातं व्यानवातेन पञ्च तत्त्वानि हस्तपादा-
दीज्जिह्वरोवयवान्संजनयति अन्तःस्थो वायुरेकोऽपि नानास्थानं
समाश्रित्य देहाकारं करोति ॥ उदानो गलहृदयसंस्थितो देहमुख-
द्वारं प्रकाशयति ॥ उदानो गलहृदयसंस्थितो देहमुखद्वारं प्रकाश-
यति ॥ अपानवायुरधःस्थोऽपानद्वारं विशोधयति ॥ एते चान्तः-
स्थाः पृथक्पृथक् मार्गे छिद्रं कृत्वा निर्गच्छन्ति ॥ तान्येव नव-
द्वाराणि मुखघ्राणकर्णनेत्रापानमेहनानि चैतानि द्वाराणि वातेन
प्रभवन्ति ॥ तत्रान्तःस्थो वायुः प्रतानत्वेन हस्तपादाद्यानवय-
वान्संजनयति ॥ ४१ ॥ त्वङ्मांसकेशरोमास्थिभूभागं जनये-
त्तथा ॥ रसं रक्तञ्च लालाञ्च मूत्रं शुक्रं जलानि च ॥ ४२ ॥
अग्निं पित्तञ्च नेत्रञ्च तमः क्रोधादिपञ्चकम् ॥ श्रुतिः स्पर्शस्तथो-
च्छ्वासः स्वेदञ्चक्रमणादि च ॥ ४३ ॥ वाता ह्येते परिज्ञेया अन्या
प्रकृतिरेव च ॥ मनो बुद्धिस्तथा निद्रा आलस्यं मद एव च
॥ ४४ ॥ शून्यात्पञ्च प्रजायन्ते देहे देहे व्यवस्थिताः ॥ वात-
रक्तेन त्वग्देहे मांसं त्वगाश्रितं सतम् ॥ ४५ ॥ शुक्रश्लेष्मोद्भवो
मेदो रसोऽस्थिरक्तसंभवः ॥ पित्ताश्रितं हृदयस्थं वातरक्तमयं
यकृत् ॥ ४६ ॥ रक्तश्लेष्मरसाश्रित ऊरुः कफरक्तश्लेष्ममयः ॥
प्लीहाकफरक्तमयः पेश्यश्च ॥ ४७ ॥ पञ्चभूतमयं देहमाकाशं
शून्यमेव च ॥ शून्याद्वायुः समुत्पन्नो वायोः प्राणः प्रजायते ॥
प्राणांशश्च तथा जातः सर्वसत्त्वे प्रतिष्ठितः ॥ ४८ ॥

मैथुन समयमें योनिमें प्राप्त हुए वीर्यको पंच तत्त्वोंकी अग्नि पकाके कलल कर देती है पीछे
उदरमें स्थित हुआ वह कलल बाहिरकी वायुसे बुलबुलेके आकार होजाता है फिर वह कललहोके

पांच तत्त्वोंकी अग्निसे पिंड होजाता है, पीछे पका हुआ वह पिंड कड़ा इकट्ठा होजावे तब उदान वायु पांच तत्त्व हाथ पैर आदिक—शिरआदिक अंग इनको उत्पन्न कर देता है और अन्तर हृदयमें स्थित हुआ एक ही वायु अनेक स्थानोंके आश्रय होके उस पिंडको देहके आकार कर देता है । उदान वायु तो गल हृदय इनमें स्थित होके देहमें मुखके द्वारको प्रकाशित कर देता है और अपानवायु नीचेको स्थित हो गुदाके द्वारको शोध देता है । ये सब भीतर रहनेवाले वायु पृथक् पृथक् मार्गमें छिद्र करके निकलते हैं वे ही नव द्वारोंको करते हैं । मुख, नासिका, कर्ण, नेत्र, गुदा, लिंग ऐसे ये ९ द्वार वायुसे होते हैं । वहां भीतर रहनेवाला वायु विस्तृत होके हाथ पैरआदिक अंगोंको उत्पन्न कर देता है ॥ ४१ ॥ और त्वचा, मांस, केश, रोम, अस्थि ये पृथ्वीतत्त्वसे उत्पन्न होते हैं । रस, रक्त, लार, मूत्र, वीर्य ये जलतत्त्वसे उत्पन्न होते हैं ॥ ४२ ॥ पित्त, नेत्र, अंधेरा, क्रोध, मोहादिक पांच ये अग्निसे होते हैं । कान, स्पर्श, ऊंचा ध्वास, पसीना, चहलकदमी आदि करना ॥ ४३ ॥ ये वातसे उत्पन्न होते हैं और मन, बुद्धि, निद्रा, आलस्य, मद ॥ ४४ ॥ ये पांच आकाश तत्त्वसे होते हैं । ऐसे सब शरीरोंमें व्यवस्था है और वातरक्तसे शरीरमें त्वचाहोती है ॥ ४५ ॥ और मांस त्वचाके आश्रय कहा है और वीर्य तथा कफसे मेद उत्पन्न होता है और अस्थिरक्त इनसे रस होता है और हृदयमें पित्तका आश्रय है और वातरक्तसे युक्त यकृत स्थान है ॥ ४६ ॥ रक्त, कफ, रस इनके आश्रय जांव है और कफरक्तके आश्रय तिहरीस्थान है और कफरक्तके आश्रय मांसकी पेशी है ॥ ४७ ॥ यह पंच तत्त्वोंका शरीर है वहां आकाश शून्य है शून्यसे वायु उत्पन्न होता है वायुसे प्राण होते हैं फिर प्राणोंके अंशसे संपूर्ण जीवोंमें होनेवाला सत्त्वगुण होता है ॥ ४८ ॥

आकाशाज्जलमुत्पन्नं जलाज्जाता वसुन्धरा ॥ तस्यास्तेजस्तथा जातं तेजसो जायते तमः ॥ ४९ ॥ पञ्चभूतात्मके देहे पञ्चेन्द्रियसमायुते ॥ भूतानाञ्च प्रधानो य आकाशमिति शब्दितः ॥ ५० ॥ आकाशात्तेजस्तेजसो दुर्पो दर्पात्पराक्रम स्तस्मादहङ्कारस्ततः कोपः कोपात्तमस्तमसः पापमिति ॥ आकाशात्सत्त्वं सत्त्वात्सत्यं सत्यात्तपस्तपसो नयो नयाद्विवेको विवेकाच्छान्तिः शान्त्या धर्म इति ॥ सत्त्वाद्भ्रजो रजसः कामः कामाच्छौल्यं लौल्यादसत्यमसत्यात्पापमिति ॥ रसात्कामः कामाद्भिलाषोऽभिलाषात्प्रजा प्रजाया मैत्री मैत्र्याः स्नेहः स्नेहान्मोहो मोहान्माया ततो आन्ति-
र्भ्रान्त्या मिथ्या ततोऽविद्या अविद्यायाः पुण्यपापानि पुण्यपापेभ्यः सम्भव इति ॥ ५१ ॥ सत्त्वाच्च तम एव स्याज्जाग्रते स्वपते

प्रभुः॥ तमसा प्रवृत्तो देही व्योमेन शून्यतां गतः ॥५२॥ देहं
 विश्रमते यस्मात्तस्मान्निद्रा प्रकीर्तिता ॥ नासाद्धे च ध्रुवोर्मध्य
 लीयते चान्तरात्मना ॥५३॥ तस्माच्चेतो भवेत्तत्रनिद्रा व्याली-
 यते नृणाम् ॥५४॥ सत्त्वात्तेजःसमाख्यातं तेजसा पित्तमेव च ॥
 जायते वायुर्मनसः स्वपते तमसा वृतः ॥५५॥ वायोस्तमः
 समायोगात्स्वप्नावस्थेति गीयते ॥ सत्त्वं तमस्तथा वायुर्वर्त्तते
 चैकयोगतः ॥५६॥ आहारनिद्रा च क्षुधा च तृष्णा भयञ्च
 मात्सर्ग्यमदश्च मोहः ॥ क्रोधाभिलाषः सुखतृतिशान्तिर्भवन्ति
 वै देहभृतां शृणु त्वम् ॥ ५७ ॥ आहारस्येच्छया देहे विचरते
 हुताशनः ॥ तृप्तिं वापि समाप्नोति रसस्वादरजस्य च ॥५८॥
 यदा यदा शोषयते मलानामग्निस्तदा तृप्तिमिवातनोति ॥ यदा
 च यस्यैव भवेदतृप्तिस्तदैव तृष्णां प्रतनोति चेतः ॥ ५९ ॥
 इत्यात्रेयभाषिते हारीतोत्तरे शारीरस्थाने शारीराध्यायो नाय
 प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ इति शारीरस्थानं समाप्तम् ॥

आकाशसे जलतत्त्व होता है उससे पृथ्वी होती है उससे अग्नि तत्त्व होता है अग्निसे
 तमोगुण होता है ॥ ४९ ॥ पंचभूतात्मक तथा पांच इंद्रियोंसे युक्त ऐसे शरीरमें जो
 तत्त्वोंमें प्रधान है वह आकाश कहाता है ॥ ५० ॥ आकाशसे अग्नि होता है अग्निसे अभि-
 मान होता है उससे पराक्रम होता है उससे अहंकार अहंकारसे क्रोध होता है उससे तमो-
 गुण और तमोगुणसे पाप होता है और आकाशसे सत्त्वगुण उससे सत्य सत्यसे तप तपसे
 नीति नीतिसे विवेक विवेकसे शांति शांतिसे धर्म होता है और सत्त्वसे रजोगुण होता है
 रजोगुणसे कामना कामनासे चंचलपना होता है चंचलपनेसे असत्य और असत्यसे पाप होता
 है और रससे कामना कामसे अभिलाषा अभिलाषासे प्रजा अर्थात् संतान और प्रजासे मित्र-
 भाव होता है उससे स्नेह स्नेहसे माया होती है उससे भ्रंति भ्रंतिसे मिथ्या उससे अविद्या
 और अविद्यासे पुण्य तथा पाप दोनों होते हैं फिर पुण्यपापोंसे जन्म होता है ॥ ५१ ॥
 सत्त्वगुणसे तमोगुण होता है वह जाग्रत् अवस्था तथा स्वप्न अवस्थामें बलवंत है और तमो-
 गुणसे प्रवृत्त हुआ जीव आकाशके संग शून्यभावको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ तब देहको
 विश्राम देता है उसको निद्रा कहते हैं, नासिकाका अर्द्धभाग और भ्रुकुटिमध्यवहां अंतरात्मके
 संग लीन होता है ॥ ५३ ॥ वहां चित्त रहता है उससे मनुष्योंकी निद्रा दूर होती है ॥ ५४ ॥
 और सत्त्वगुणसे तेज तेजसे पित्त होता है और मनसे वायु उत्पन्न होता है और तमोगुणसे

शम्भुस्तथात्रयोऽस्ति वैद्यके ॥१२॥ तस्माद्यत्नेन सद्बैद्यैः साद-
 रार्द्रसुमानसैः ॥ अर्चनीयोऽनुमन्तव्यो दास्यति सुखसम्पदः ॥
 ॥ १३ ॥ इत्यात्रेय भाषिते हारीतोत्तरे परिशिष्टाध्यायः ॥ १॥

इति हारीतसंहिता समाप्ता ॥

इस प्रकारसे आत्रेयजीने शरीरकी चिकित्सा विस्तारसे कह दी तब महान् तेजवाला उत्तम हारीत मुनि सुनके ॥ १ ॥ उस श्रेष्ठ गुरुको प्रणाम कर अंतःकरणमें प्रसन्न हो देव-
 ताओंकी नदीके तीरपै जा वहां स्नान ध्यानमें रत होता भया ॥ २ ॥ महर्षिके वचनोंसे
 कहे हुए इस शास्त्रको जो सुनता है वह सब पापोंसे छुटके सुखको प्राप्त होता है ॥ ३ ॥
 पहले यह शास्त्र ब्रह्माजीने कहा, पीछे अत्रिमुनिने फिर धन्वंतरीने कहा है और अश्विनी-
 कुमारोंने कहा है ॥ ४ ॥ ऐसे वेदमें युक्तहुआ यह शास्त्र चला आता है, निंदित करनेके
 योग्य नहीं है और अनेक शास्त्रोंको जाननेवाले अन्य बहुतसे ऋषियोंने अनेकप्रकारसे कहा है
 ॥ ५ ॥ इन आगे कहे हुए ऋषियोंका मत है इसवास्ते सबको माननेलायक है । चरक,
 सुश्रुत, वाग्भट इत्यादिक ॥ ६ ॥ मुख्य ऋषियोंसे यह संहिता युग २ में कही हुई है
 ॥ ७ ॥ अत्रिमुनि सतयुगमें वैद्य होते भये और द्वापरमें सुश्रुत होते भये और कलियुगमें वाग्भ-
 टनामवाला महान् वैद्य दीखता है ॥ ८ ॥ वैष्णवी, आश्विनी, गार्गी, माध्याह्निका,
 मार्कण्डेया, ये संहिता योगराजने कही है ॥ ९ ॥ आयुर्वेद संहिता ऋषियोंने अनेक
 प्रकारके मंत्र और औषधोंसे युक्त करदी है ॥ १० ॥ अग्निवेष, भेड, जातूकर्ण्य,
 पराशर, हारीत, क्षीरपाणि, ये छह ऋषि कहे हैं ॥ ११ ॥ जैसे मृगोंमें सिंह है और
 सर्पोंमें शेष नाग है, देवताओंमें शिवजीहैं वैसेही वैद्योंमें आत्रेयमुनि उत्तम हैं ॥ १२ ॥ इस
 वास्ते यत्नसे उत्तम वैद्योंकी आदरसे सुन्दर मनसे अत्रिमुनि पूजन करनेको योग्य हैं और
 माननेको योग्य हैं वे सुख संपत्ति इनको देंगे ॥ १३ ॥

इति बेरीनिवासिबुधशिवसहायसूनुवैद्यरविदत्तशास्त्र्यनुवादितहारीतसंहिताभाषाटीकायां

परिशिष्टाध्यायः ॥ १ ॥

इति हारीतसंहिता संपूर्णा ।

पुस्तक मिलनेका पता-

खेमराज श्रीकृष्णदास,
 "श्रीवैद्येश्वर" स्टीम प्रेस-बम्बई.

{ गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
 "लक्ष्मीवैद्येश्वरप्रेस" कल्याण-मुम्बई.

